आधुनिक भारत के निर्माता

लाजपत राय

जीवन तथा कार्य

फिरोज चन्द

अनुवादक मोहिन्दर सिंह

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार

वैशाख 1909, ● (अप्रैल) 1987

प्रकाशन विभाग

मूल्य 50 रुपए ।

निदेशक, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110 001 द्वारा प्रकाशित ।

विक्रय केन्द्र ● प्रकाशन विभाग

- सुपर बाजार (दूसरी मंजिल) कनाट सर्कस, नई दिल्ली 110 001
- कामर्स हाउस, करीमभाई रोड, बालार्ड पायर, बम्बई 400 038
- 8, एस्प्लेनेड ईस्ट, कलकत्ता-700 069
- एल० एल० आडीटोरियम, 736 अन्नासलै, मद्रास 600 002
- बिहार राज्य सहकारी बैंक बिल्डिंग अशोक राजपथ, पटना 800 004
- निकट गवर्नमेंट प्रेस, प्रेस रोड, त्रिवेन्द्रम 695 001
- 10 बी, स्टेशन रोड, लखनऊ-226 019
- राज्य पुरातत्वीय संग्रहालय बिल्डिंग पब्लिक गार्डन्स, हैदराबाद 500 004

महाप्रबन्धक, भारत सरकार मुद्रणालय नासिक द्वारा मुद्रित ।

भूमिका

I

आपको अपने सस्मरणो का पुस्तक रूप देने के लिए कुछ समय अवश्य निकालना चाहिए", यह सुझाव मैं अपने चीफ का बार-बार देता, विशेषकर उस समय, जब मैं उन्हे अपने अतीत के बारे मे सोचते हुए और सस्मरण के भडार में से कुछ न कुछ सुनाते हुए पाता । मैं सोचता हू कि अन्य लोग भी ऐसा ही अनुरोध उनसे करते होगे । अन्य लोगा को क्या उत्तर मिलता होगा, यह मुझे मालूम नही । मेरे लिए तो उत्तर होता था—"भई, यह काम आप ही करना" या कुछ इसी प्रकार के शब्द निस्सदेह, कई बार (और अनेक बार बिना सुझाव दिए) कोई रोचक सस्मरण सुनाने के बाद, वह कह दिया करते—"मैं इसे अपने सस्मरणो मे शामिल करूगा ।"

मैं पूरी गभीरता से सुझाव देता था । उनके उत्तर को मैं कभी गभीरता से नही लेता था—न ही उनके इकार को और न ही किसी अन्य उत्तर को । यदि मैं उनकी बात को गभीरतापूवक लेता, तो स्वाभाविक था कि मैं उन्हें मागदशन करने के लिए कहता । पूछता कि इसके लिए क्या करना है, सामग्री कहा से ढूढनी है, इसे कैसे एकत्र करना है, कौन से साधन जुटाने हैं, किन लोगो से जानकारी या पत्र प्राप्त करने हैं आदि । और निस्सदेह, अपनी रचना के लिए सामग्री का मुख्य स्रोत उन्हें मानते हुए मैं बार बार उन पर प्रश्नो की बौछार करता—कई बार वह धैय भी खो बैठते—परन्तु मह सब मैंने नही किया । इस प्रकार की कोई बात मेरे मन मे आई ही नही । उनके साधारण उत्तर को मैं केवल टाल देने का एक सरल तरीका ही मानता रहा ।

एक दिन प्रमुख स्रोत से मागदशन मिलना बन्द हो गया । उनके उस सरल उत्तर को गभीरतापूवक लेना पडा । वह बात जो टालमटोल का एक तरीका दिखाई पडती थी, एक विधान अथवा आदेश का रूप लेती दिखाई पडी । इस तथ्य से अवगत होते हुए कि लाजपत राय की

जीवनी एक महाकाव्य का विषय है, मैं अपनी सीमित योग्यता से भी पूरी तरह अवगत था। मैंने संक्षिप्त रूप मे भी कभी किसी का जीवन चरित लिखने का प्रयास नही किया था। एक बात और जो मैं निरतर महसूस करता था, वह यह कि जीवनी लिखना मेरे स्वभाव के अनुकूल नही। जीवन चरित से मेरा सबध पाठक के रूप में तो सभव था, पर लेखक के रूप मे नही।

इधर महाकाव्य का विषय मुझे पुकार रहा था। पुकार भी बनी हुई थी और हिचकिचाहट भी। क्योंकि मैं जो कुछ आसानी से कर सकता था, वह भी मैंने नही किया था अर्थात अपनी यादो को थोडा बहुत लिखते रहना या भविष्य मे उपयोग के लिए कोई रोजनामचा-सा लिखना, जिसमे जो कुछ महत्वपूर्ण लगे उसे दर्ज करते रहना आदि।

सी० एफ० एड्रयूज से लालाजी को विशेष प्रेम था। युद्ध काल के निर्वासन से लौटने के बाद श्री एड्रयूज लालाजी के बहुत निकट रहे थे और हमारे साप्ताहिक 'द पीपुल' मे इसके आरम्भ काल से ही उनकी गहरी रुचि रही थी और मेरी क्षमता का अनुमान लगा सकने का उन्हे पूरा अवसर मिला था। इस महाकाव्य के विषय के लिए मेरी योग्यता की जाच-परख करने के लिए वह बहुत उपयुक्त व्यक्ति थे। उन्होंने मेरा मार्गदर्शन करने और प्रत्येक चरण पर मुझे सलाह-मशविरा देने तथा सहायता करने की पेशकश की। पाडुलिपि पढने तथा इसको किसी अच्छे से प्रकाशक को सौंपने का दायित्व भी उन्होंने लिया। इस कार्य को आरभ करने का श्रेय निश्चय ही उनको जाता है क्योंकि उनकी उदार पेशकश तथा आग्रह से ही यह कार्य शुरू हुआ। परन्तु, इसे शुरू करने से पूर्व प्रारभिक विचार विमर्श मे इस बात पर सहमति हो गई कि पाण्डुलिपि का अधिकाश भाग तैयार होने तक इस सबध मे ब्यौरेवार बातचीत स्थगित रखी जाए।

इस कार्य म बार-बार विलम्ब होने की कहानी शायद उबा देने वाली और निरर्थक लगे। ऐसी स्थिति मे लेखक का सारा दोष अपने आप पर ले लेना चाहिए और निर्णय पाठक पर छोड देना चाहिए।

परन्तु देश के विभाजन की चर्चा करना जरूरी है। इसलिए नहीं कि लेखक को उसके दोष के कुछ भाग से मुक्त किया जा सके बल्कि

इसका कारण है—पाठक को इस बात से अवगत कराना कि बटवारे के दौरान अमूल्य दस्तावेजो का एक बडा भाग सदा के लिए अप्राप्य हो गया, जिनमे स्वय लालाजी के पत्र-व्यवहार की फाइलें तथा समाचारपत्रो आदि की कतरने भी शामिल थी। कई अन्य स्रोत जिनसे लाभ उठाया जाना था या तो अनुपयोगी हो गये या पहुच से दूर हो गये। ऐसी असुविधाजनक स्थिति मे यह कार्य—जो उखाडे जाने के बाद फिर शुरू किया गया —पूर्ण करना पडा। इन परिस्थितियो मे यह दैवी-विधान ही था कि प्रथम-पाण्डुलिपियो में, जो किसी-न किसी तरह बचा ली गईं, ऐसे बहुत से दस्तावेजो के व्यापक हवाले दर्ज थे जो विभाजन के वज्रपात के पश्चात् उपलब्ध नही है।

लम्बी अवधि के इस कार्य के विभिन्न चरणो मे मेरे परिवार के कई सदस्यो तथा मेरे कई मित्रो ने कई प्रकार से मेरी सहायता की। साहित्यिक पक्ष मे मैं सर्वप्रथम और सर्वाधिक स्वर्गीय श्री आर्थर मूर का आभारी हू। लाला लाजपत राय के साथ उनका सम्पर्क उस समय हुआ, जब वह दोनो विधान सभा के सदस्य थे। उनके साथ मेरा व्यक्तिगत सम्पर्क दिल्ली मे उस समय हुआ, जब लाहौर देश का भाग नही रहा था। वह 'द स्टेट्समैन' के सम्पादक के पद से अवकाश प्राप्त कर चुके थे। हमने पत्रकारिता का एक सयुक्त प्रयास शुरू करने की योजना तैयार की, जिसमे हमे आपसी सहयोग करना था। सहयोग की यह योजना तो सफल न हो सकी, परन्तु इसके कारण हमारे बीच परस्पर मैत्रीपूर्ण सबध स्थापित हो गए। उन्होने पाण्डुलिपि ध्यान से पढी। ऐसा महसूस हुआ जैसे सी० एफ० एड्रयूज से मुझे जो आशा थी, वही अब मुझे मिल रही थी। एड्रयूज की तरह वह केवल साहित्यिक सुधार मे ही रुचि नही रखते थे, वे इसका प्रकाशन भी करवाना चाहते थे। उन्होंने एक प्रमुख दैनिक समाचारपत्र के सम्पादक के पास इस पाण्डुलिपि की जोरदार सिफारिश की और इसे सिलसिलेवार प्रकाशित करने का सुझाव दिया। मैंने इस प्रकार की सहायता की आशा उनसे नही की थी और उन्होंने मुझे इस बात की जानकारी भी नही दी कि वह इस सबध मे क्या कर रहे है। मुझे इस बात का ज्ञान केवल तब हुआ जब वह इग्लड चले गए। परिणाम यह हुआ कि इस पाण्डु-

लिपि का काफी बडा भाग एक ही समय पर तीन प्रमुख अंग्रेजी दनिक समाचारपत्रों मे प्रकाशित होने लगा और इसके साथ ही हिन्दी, बगला, मराठी, गुजराती, तलुगु तथा उडिया के एक एक प्रमुख दैनिक समाचार पत्र में भी पाण्डुलिपि प्रकाशित हाने लगी। यह शृखला बारह से भी अधिक किस्तो म चली। इस प्रकार लाजपत राय लेखमाला उस समय का एक प्रमुख राष्ट्रीय प्रकाशन बन गई। इतने बडे पमान पर प्रकाशन की योजना मेरे मित्र स्वर्गीय श्री के० ईश्वर दत्त के प्रयासा का परिणाम थी, वह उन दिनो 'द हिन्दुस्तान टाइम्स' म थे।

मुझे पजाब विश्वविद्यालय के तत्कालीन रजिस्ट्रार स्वर्गीय प्रा० मदन गापाल सिंह की चर्चा अवश्य करनी चाहिए। वे कालिज के दिनो मे मेरे अध्यापक थे तथा अपने इस छात्र मे उन्हाने स्नेहपूर्वक रुचि बनाए रखी थी। उन्हे उस विषय मे गहरी रुचि भी थी, जिस पर मैं काय कर रहा था। उन्हाने प्रथम पाण्डुलिपि के आरम्भिक अध्याया का पढकर अपने मूल्यवान सुझाव भी दिए। पर वह उस काय को पूरा न कर पाए क्योंकि 1947 के खून खराबे मे उनकी हत्या कर दी गई।

'सर्वेंट्स आफ द पीपुल्स सासायटी' के मित्रा न स्वाभाविक ही इस काय म गहरी रुचि दिखाई। स्वर्गीय श्री मोहन लाल ने अनुरोध किया कि म अन्य काम छोडकर यह जीवनी लिखने का काय पूरा करू और अन्य मित्रो की भी यही राय थी। मुझे इस बात का दुख है कि इस काय के पूरा होने मे विलम्ब के कारण एक प्रिय मित्र का मुझ पर विश्वास कुछ कम हुआ। पर वह मेरे प्रति इतने कृपालु थे कि उन्होंने मुझसे स्पष्ट तौर पर ऐसा कुछ नही कहा।

II

जो मैंने स्वय देखा केवल उसे अकित भर कर देना या उस व्यक्ति का, जिसके साथ निकट सम्पक का अवसर मुझे मिला, रेखाचित्र सा तैयार करना, सभवत आसान था परन्तु मुझसे इससे कही अधिक की आशा की गई थी। मैंने तो केवल अन्तिम आठ वर्ष देखे थे और इस अवधि म भी, सही अर्थों म, मेरी निजी जानकारी केवल उन दिना

तक ही सीमित थी जिन दिनो वह लाहौर मे हमारे साथ थे। प्रारम्भिक विकास काल और मेरे उनके सपक में आने से पूव के सावजनिक जीवन के तीन दशको से सम्बद्ध सामग्री तीन महाद्वीपा मे बिखरी पडी थी। उसका सग्रह करने के लिए लगन, प्रतिभा और साधना की आवश्यकता थी और इसी कारण आरम्भ मे हिचकिचाहट हुई। पर इस दिशा में उत्साहजनक बात यह थी कि लालाजी को शुरू से ही लिखते रहने की आदत थी, जो सदा बनी रही। मैंने उनके साथ सम्पक के दिना मे भी कोई डायरी या विवरण नही रखा था कि लालाजी ने क्या कहा या क्या किया पर 1925 के मध्य से लेकर अन्त तक 'द पीपुल' की फाइला से बहुत सहायता मिली। आरम्भिक काल के बारे म ऐसे सुलभ दस्तावेज मिलना आसान नही था, परन्तु जा कुछ भी उपलब्ध था—कुछ प्रकाशित कुछ अप्रकाशित—उससे काफी सामग्री प्राप्त हो सकती थी। यहा तक कि किसी व्यापक सगठन के न होते हुए भी म बिना कुछ खोए उनसे काफी लाभ प्राप्त कर सकता था।

क्षमायाचना के साथ मैं अपनी स्मृति पर अकित चित्र की आवश्यक रूपरेखा का कुछ पक्तिया मे वणन करने का प्रयत्न करूगा। घटनाआ का ब्योरा समय बीतने के साथ पूरी तरह याद नही रहता, अकित मूर्ति सदा ही स्पष्ट रहती है। मेरा वणन इस मूर्ति का ऐसा चित्र पाठक तक पहुचा सकने म सफल हो पाता है या नही, यह अलग बात है। मैं अपनी वणन शैली द्वारा ऐसा प्रेषित कर पाने की क्षमता या तकनीकी श्रेष्ठता का दावा नही करता, मैं तो भूमिका मे रेखाचित्र देने की कोशिश कर रहा हू।

बीस के दशक के उन आठ वर्षों की आर दृष्टिपात करने मे मेरे मन मे सदा ही इस बात के प्रति आश्चय होता है कि उस समय मेरे मन मे उस विशाल दूरी का जरा सा भी भान नही था, जा एक कालिज के सामान्य छात्र (जिसने कभी भी ऐसी कोई सफलता प्राप्त न की हो, जो कालिज जीवन मे प्राप्त की जा सकती है) और एक यशस्वी व्यक्ति के बीच होती है। विशेष तौर पर जब वह यशस्वी व्यक्ति ऐसा हो जो अपनी स्वाभाविक प्रतिभा तथा परिश्रम मे ही नही, बल्कि बलिदान और लगन स ख्याति की चरमसीमा पर

पहुच चुका हो और कई दशकों तक लोग उस महान नेता तथा नायक के रूप में सम्मान देते रहे हो। पहली मुलाकात निश्चय ही उस सामान्य युवक के लिए विस्मयकारी रही होगी। यदि यह सम्पर्क लम्बे समय के लिए बना रहे तो विस्मय की यह स्थिति शायद समाप्त हो जाए परन्तु जो बीच का अन्तर है वह तो बना रहेगा और श्रद्धा तथा सम्मान के रूप में प्रकट होगा।

हा, सन्दर्भ बिल्कुल ऐसा ही था जिस प्रकार ऊपर कल्पना की गई है। फिर भी पहली भेंट तथा उसके बाद आठ वर्ष का सम्पर्क एक अलग ही प्रकार का अनुभव था। पहली मुलाकात के समय यशस्वी व्यक्ति ने युवक का भद्र मुस्कान के साथ स्वागत किया, चाहे ऐसी दृष्टि से जो किसी भी अनजान व्यक्ति की जाच-परख के लिए इस्तेमाल की जाती है, परन्तु आखो में एक विशेष चमक बनी हुई थी। जिस पल जो कोई उनके आमने सामने होता, उसी पल उसके मन से विस्मय और भय दूर हो जाता। जैसे ही उनसे बात करता वह तुरत सहज भाव में आ जाता और स्वय को अजनबी बिल्कुल महसूस नही करता, बल्कि बिल्कुल परिचित सा महसूस करता और बिना किसी भी प्रकार की भूमिका बाधे *उनसे मतलब की बात की जा सकती थी। यशस्वी व्यक्ति न केवल ऐसा* था जिस पर कोई प्रभामडल हो या जो आपके मन में जबरदस्ती सम्मान पैदा करे, बल्कि उसकी एक विशेषता तो यह थी कि उस व्यक्तित्व में कुछ ऐसा प्रभाव अवश्य था, जिससे समानता का वातावरण उत्पन्न हो। उसके लिए 'प्रजातन्त्र' केवल एक राजनीतिक सिद्धान्त ही नही था बल्कि जीवन की प्रत्येक सास थी।

यदि पहली भेंट की यह तस्वीर है, तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नही कि उसके पश्चात आठ वर्ष का सहयोग तो इसकी पूर्ण परिणति ही थी। उनकी बुद्धिमत्ता तथा महानता का परिचय निरतर मिलता रहा पर इससे समानता के सतुलन में कोई गडबडी नही हुई और न ही स्वतत्र तथा स्पष्ट विचार विमर्श पर इसका कोई प्रभाव पडा। वह अपनी बात को अन्तिम नही मानते थे। वह असहमति को केवल सहन ही नही करते थे या इसको आना हो नही देते थे बल्कि ऐसा लगता था कि वह इसे प्रोत्साहन भी देते थे। जब कभी कोई

नया सहयोगी स्पष्टतया गलती पर होता तो भी वह इस बात की प्रायमिकता देते कि तर्क से या अपने अनुभव से वह स्वयं ही अपनी गलती समझ ले और उसकी गलतफहमी दूर हो जाए न कि वह निर्णय को केवल इसी लिए स्वीकार कर ले, क्योंकि किसी वरिष्ठ सहयोगी ने ऐसा कहा है । वह बहुत स्पष्टवादी थे और तोड़मरोड़कर बातें नहीं कहते थे । जो युवक दूसरे दशक में गठित 'सर्वेंट्स आफ द पीपुल्स सोसायटी' के आजीवन सदस्य के रूप में उनके सम्पर्क में आ गए थे, वे भी इस बात के आदी हो गए थे कि उनसे असहमत होने या उनकी आलोचना करने का अर्थ किसी प्रकार से उनका अनादर करना नहीं माना जाता था और न ही यह समझा जाता था कि ऐसा कोई उद्देश्य रहा होगा ।

हमारे संबंध और हमारे कर्तव्य तथा अधिकारों की औपचारिक रूप से एक संक्षिप्त ज्ञापन में व्याख्या कर दी गई थी जिसके अनुसार संस्थापक आजीवन निदेशक नियुक्त किया गया था और जो युवक सदस्य बनते थे, उनके अधीन प्रशिक्षण प्राप्त करते थे, हमारे संस्थापक सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन में पूर्णकालिक कार्यकर्ता के जीवन की कल्पना का श्रेय गोखले को देते थे । गोखले द्वारा पुणे में स्थापित संस्था के नमूने का यहां काफी परिवर्तन के बाद अपनाया गया था । एक परिवर्तन, जो सोसायटी के वर्तमान सदस्यों के गले नहीं उतरता वह यह है कि संस्थापक स्वयं इस संगठन का सदस्य नहीं था । आजकल सदस्य साधारण तौर पर यह अनुमान लगा लेते हैं कि संस्थापक इस संगठन का प्रथम सदस्य था और जब उन्हें यह बताया जाता है कि वह इसका सदस्य नहीं था, तो साधारणतया उन्हें विश्वास नहीं होता । वे सोचते हैं स्वयं व्रत लिए बिना वह अन्य लोगों को कैसे निष्ठा के बंधन में बांध सका । क्या गोखले ने स्वयं अपने जीवन को समर्पित करने का प्रण नहीं लिया था ?

वास्तविकता यह है कि लालाजी व्रत तथा प्रण को वह महत्व नहीं देते थे, जो गोखले देते थे और उनकी दृष्टि में इन चीजों का बहुत नगण्य स्थान था । जहां तक उनके अपने समर्पण का प्रश्न है वह कई वर्ष पूर्व कर चुके थे । इस दृढ़ निश्चय की घोषणा उन्होंने लाहौर आर्य समाज के मंच से की थी । इस निश्चय के अनुसार

सार्वजनिक कार्य उनके लिए व्यावसायिक कार्य से पहले था और इस निश्चय को पूरी ईमानदारी के साथ लागू करने के बाद उन्हें जो आय होती थी, उसम से अपने सामान्य घरलू खच पूरे करने के बाद शेष बचने वाली राशि वह सार्वजनिक कार्यों के लिए दे देते थे। इस प्रकार एक वर्ष उन्होंने घोषणा की कि उनकी आय साठ हजार हुई है इसम से कोई पचास हजार उन्होंने सस्था को दे डाले। इस पद्धति पर वह जीवनपर्यन्त चलते रहे। इस घोषणा के कुछ ही समय बाद उन्होंने अपना व्यवसाय पूरी तरह छोड दिया और अपना सारा समय सार्वजनिक कार्यों मे लगाने लगे। अब पुस्तकों की रायल्टी अथवा समाचारपत्रों म लिखने के पारिश्रमिक की राशि और लक्ष्मी तथा पजाब नेशनल बैंक के डायरेक्टर के रूप म प्राप्त होने वाले शुल्क आदि से जो धन मिलता था उसमें से साधारण खच पूरे करने के पश्चात् वह शेष रकम सोसायटी को दे देते।

उनके प्रबधाधीन कुछ सार्वजनिक कोष भी थे, पर अपने व्यक्तिगत खच के लिए वह उससे कभी कुछ नही लेते थे, हालांकि वह इनमें से कुछ भी खच करने के लिए स्वतत्र थे। शताब्दी के आरम्भ मे किये गए निश्चय ने आगामी दशकों म उनकी जीवन पद्धति को निश्चित कर दिया था। यह उनके जीवन का अग बन गया और ऐसा करने के लिए उन्होंने कोई व्रत आदि लेने की आवश्यकता नही समझी थी। अपने निश्चयों को लागू करने के लिए उन पर कोई बाहरी बधन नही था। यह पूर्णरूप से उनका निजी मामला था।

ऐसे व्यक्ति से समर्पण की माग कौन कर सकता था? गोखले ने 'डक्कन एजुकेशन सोसायटी' मे प्रचारक की भावना के साथ काम किया था और बाद मे इसी पद्धति को उन्होंने एक भिन्न तथा व्यापक क्षेत्र मे लागू करने के लिए 'सर्वेंटस आफ इडिया सोसायटी' की स्थापना की। इस सोसायटी म उन्होंने फर्गुसन कालिज वाली अपनी पुरानी पद्धति जारी रखी। लाजपत राय द्वारा स्थापित सोसायटी का नमूना तो गोखले की सोसायटी जैसा ही था पर समर्पण की भावना उनकी अपनी ही थी। 'सर्वेंटस आफ द पीपुल्स सोसायटी' की स्थापना करते समय सोसायटी

को जो कुछ भी वह दे सकते थे उन्होंने उदारतापूर्वक दिया पर इसके कोष में से अपने जीवन निर्वाह के लिए वह कुछ न लेते थे। उन्होंने अपनी आजीविका अर्जित करना जारी रखा। इसकी व्यवस्था वह अपने सार्वजनिक कार्य में किसी प्रकार की बाधा डाले बिना ही कर लेते थे। यदि उन्हें लक्ष्मी या पंजाब नेशनल बैंक से या जब वह विधायक बन गए तो विधान सभा से या समाचारपत्रों में लिखने से उन्हें अपने अति साधारण व्यय से अधिक धन मिल जाता, तो वह अतिरिक्त धन सोसायटी को या गुलाबदेवी अस्पताल ट्रस्ट आदि जैसी किसी समाज कल्याण योजना को दे डालते थे।

सामान्य सांसारिक इच्छाओं को वह बहुत पीछे छोड़ चुके थे। यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं कि उन्होंने संसार से सन्यास ले लिया था। पर यह विरोधाभास ही है कि 'सन्यास' भी उनके लिए अभिशाप था। आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द ने, जिन्हें अपनी युवावस्था से ही उन्होंने अपना गुरु मान लिया था, उन नव वेदांतियों की जोरदार शब्दों में भर्त्सना की थी, जो संसार को केवल मिथ्या और भ्रम जाल ही मानते थे। स्वामीजी के अनुसार इन लोगों के उपदेशों के कारण ही हमारे समाज का भारी नैतिक पतन हुआ। शंकराचार्य के बाद भारतीय दर्शन में 'संन्यास' का अर्थ संसार को मिथ्या समझना ही माना जाता था। उस समय भी जब लाजपत राय की इस दृष्टिकोण के संकीर्ण विरोध में रुचि नहीं रही थी, वह 'संन्यास' की चर्चा करने के बहुत विरुद्ध थे। वे समझते थे कि आधुनिक संदर्भ में भारत के लक्ष्य की प्राप्ति में यह सबसे बड़ी बाधा है।

लाजपत राय की इसी प्रकार की एक और विशेषता की चर्चा भी यहां प्रासंगिक है, वह है पुनीतता के प्रति अरुचि। संभव है उन्होंने स्वार्थपरायण सांसारिक प्रयत्नों तथा इच्छाओं का त्याग कर दिया हो—जिस प्रकार केवल संत ही कर सकते हैं—परन्तु उन्हें संतता से भय लगता था। मेरे विचार में इसका एक कारण यह था कि इससे प्रजातांत्रिक दृष्टिकोण समाप्त हो जाता है जिसे उन्होंने अपने जीवन में पूर्णरूप से शामिल कर लिया था। संत लोग, सामान्य जन समूह

से अलग श्रेणी बद्ध थे, "दुष्ट या अपवित्र" लोगो के ऊपर, जो इन महा धर्माधिकारियो के आगे नतमस्तक होते थे । एक बात और कि 'सतता' आम तौर पर 'सन्यास' से सम्बद्ध मानी जाती थी, किसी दूसरे लोक से सम्बद्ध, जिसके कारण इस ससार की उपेक्षा की जाती थी। एक समय पर एक ही ससार–जैसा कि थोरो ने उस समय कहा था, जब उससे दूसरे ससार के बारे मे पूछा गया था । वह किसी चर्च या धर्मसार को नही मानता था, भगवान का नाम कम ही लेता था और कभी प्रार्थना भी नही करता था । परन्तु उसने अपने अडोस पडोस के लोगो से कभी ऐसा करने को नही कहा और न ही ऐसी आशा की । ऐसा चुम्बक जिसमे अथाह आकर्षण शक्ति हो, फिर भी यह अजीब लगेगा कि वह कभी नहीं चाहता था कि सुइया उसके साथ चिपकें । ऐसा दिखाई पडता था कि परिपक्वता के साथ उनके जीवन से धर्मसिद्धान्तवादी आर्य समाज दूर हट गया हो–चाहे इसका उनके जीवन में दृढसमर्पण तथा सार्वजनिक जीवन में नैतिक सवेदनशीलता पैदा करने मे योगदान अवश्य रहा हो ।

हम उनके जन्मदिन के बारे म कुछ ज्ञान न था, न ही उन्हें हमने श्रद्धाजलि अर्पित करने का कोई अन्य अवसर सोचा–और जब वह हमारे बीच न रहे तो हमम से किसी को भी उनके 'अवशेषो' के बारे म ख्याल न आया । वह केवल मानवीय स्तर की चीजो को ही पसद करते थे । मानवीय दुर्बलता का अपना ही आकर्षण है जोश मे आकर दी गई दलील निम्नता का कोई दिखावा नही थी । ऐसी मानवीय खूबियो के कारण स्नेह और वफादारी के बधनो को एक विशेष आकर्षण तथा शक्ति मिलती थी । उनके तुनक मिजाज होने तथा मामूली बातो पर खफा होने के पीछे भी यही बात थी । अक्सर ऐसा होता था कि गुस्से या किसी कटु शब्द के कहे जाने के थोडी देर बाद बहुत अधिक उदारता इसकी क्षतिपूर्ति कर देती थी ।

III

यह वृतात स्वाभाविक रूप से मेरी उनके कार्यों, विश्वासो, व्यवहार तथा विचारो की आतरिक जानकारी के आधार पर है । इसलिए उनके साथ मेरे सम्पर्क की सीमा के बारे म सकेत देना गलत नही

होगा। यह निकट सम्पर्क 'सर्वेंट्स आफ द पीपुल्स' सोसायटी की स्थापना से आरम्भ हुआ और बहुत ही कम समय में यह सम्पर्क घनिष्ठता में बदल गया। इस प्रकार युवा संस्थापक सदस्यों का यह छोटा-सा दल लाजपत राय के विश्वस्त सहायकों का दल बन गया, जिन्हें जिम्मेदारी का कार्य सौंपा जा सकता था। इस प्रकार यह उनका अन्तरंग दल था। परन्तु, वह मुख्यालय में कभी-कभार ही आते। लगातार कई सप्ताह तक नहीं ठहरते थे। कोई व्यक्ति लगातार कई सप्ताह के लिए उनके साथ तभी रह सकता था, यदि वह उनके साथ यात्रा करे या उनके विधान सभा का सदस्य निर्वाचित हो जाने पर अधिवेशन के दौरान उनके साथ रहे। मुझे साप्ताहिक समाचार-पत्र के कार्य के कारण लाहौर में ही रहना पड़ता था। यह समाचार पत्र जुलाई 1925 में आरम्भ हुआ था और इससे पूर्व एक बार ही मुझे अच्छा अवसर मिला था। लालाजी की जेल से रिहाई के थोड़े समय पश्चात, जब डाक्टरों ने उनके स्वास्थ्य के हित में उन्हें सागर-तट पर रहने की सलाह दी थी, मैं दिसम्बर 1923 में लालाजी के साथ कराची में रहा और वहीं से मैं 1924 के आरम्भिक महीनों में लालाजी के साथ यात्रा पर चला गया।

एक अन्य अवसर पर, जब बेलगांव में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ (1924 का अन्त) मैं लालाजी के साथ रहा। यद्यपि यह अवसर लम्बी अवधि का नहीं था, परन्तु काफी महत्वपूर्ण था। उन दिनों मैं वहां 'बम्बई क्रानिकल' में शागिर्द के तौर पर काम करता था और वहीं से लालाजी के साथ हो लिया, पर बेलगांव आते जाते समय उनके साथ न था।

साप्ताहिक समाचारपत्र आरम्भ हो जाने के पश्चात केवल 1927 के अन्तिम दिनों में एक ऐसा अवसर आया, जब लालाजी मुझे अपने साथ कलकत्ता ले गए ताकि 'अनहेप्पी इंडिया' लेख को शीघ्रता से पूरा किया जा सके। इन दो या तीन अवसरों के अतिरिक्त उनके साथ सीधा सम्पर्क केवल उन दिनों में ही सम्भव होता था, जब लालाजी थोड़ी-सी अवधि के लिए मुख्यालय में ठहरते थे (कभी-कभी पंजाब के नगरों की अल्पकालीन यात्राओं के दौरान भी) और कभी-कभी विधानसभा अधिवेशन के लिए दिल्ली की संक्षिप्त यात्रा के दौरान। 'द पीपुल' लालाजी के साथ इधर-उधर घूमने से मुझे प्रभावशाली

ढग से रखता था, परन्तु इसी के कारण लालाजी के साथ निरतर और निश्चित रूप से लाभदायक सम्पर्क बना रहता था, क्योंकि वह कहीं भी जाए लेकिन नियमित रूप मे समाचार पत्र के लिए लिखते रहते थे । इसका अर्थ था कि वह मुझे हर सप्ताह लिखते और जब भी मिलते सामयिक विषयो पर मेरे साथ अधिक गभीरता से विचार करते जो शायद किसी अन्य अवसर पर आवश्यक न हो ।

मैं उन विशेष अवसरो के बारे मे, जिनकी चर्चा पहले की गई है, कुछ और विवरण दर्ज करना चाहूगा । इन विशेष अवसरो मे से 1923 के अत मे शुरू होने वाला विशेष अवसर सबसे अधिक महत्वपूर्ण था, जो लगभग 3 महीनो का था । विकासकाल से शिक्षा के दृष्टिकोण से इसका मेरे लिए बहुत महत्व था और मैं अब महसूस करता हू कि यह मेरे इस वर्णन के लिए अमूल्य है । विशेषकर उस निर्णायक काल मे लालाजी के साक्षात सम्पर्क से सोचने के ढग तथा कार्य प्रणाली की पृष्ठभूमि को अधिक भलि भाति समझ सका जो मैं किसी अन्य ढग से नहीं समझ सकता था । यह समय लेखा जोखा करने तथा नई दिशा देने का था । महात्मा गाधी के नेतृत्व मे, जो साम्प्रदायिक एकता स्थापित की गई थी वह दृढ तथा स्थिर साबित नहीं हुई । निस्सदेह, कुछ समय पूर्व लालाजी ने 'साम्प्रदायिक' सस्थाओ के बारे मे, विशेषकर हिन्दुओ को सम्बोधित करते हुए बहुत कडे शब्दो का प्रयोग किया था । अब उन्होंने देखा कि इस पर पुनर्विचार किए जाने की आवश्यकता थी । 'अछूतो' के बारे मे भी फिर से विचार करने की विशेष आवश्यकता थी । नई दिशा निर्धारित करने का अर्थ हिन्दू समस्याओ, जैसे अछूतो के मामलो के समाधान के समर्थन हेतु हिन्दू मच जरूरी था । दुर्भाग्यपूर्ण परिस्थितियो से निपटने के लिए भी इसकी जरूरत थी । सिंध, बम्बई, महाराष्ट्र बगाल और उत्तर प्रदेश के राष्ट्रीय नेताओ के साथ अनौपचारिक सलाह मशविरे और विचार विमर्श के पश्चात हिन्दू महासभा की दिशा पुन निर्धारित की गई । मेरे विचार मे इस सस्था का यह बहुत ही अच्छा समय था जिस समय इस सस्था की नीतियो तथा कार्यक्रमो की रूपरेखा मालवीयजी तथा लाजपत राय ने तैयार की और जिससे हिन्दू वर्ग को बहुत लाभ हुआ और इसका राष्ट्रीय हितो तथा प्रगतिशील राजनीतिक कार्यक्रमो पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पडा ।

1—136 M of I&B/ND/85

लालाजी के साथ बम्बई यात्रा की एक याद उनके साथ मेरे सम्पर्क का अनूठा अनुभव था । उसकी भी संक्षेप में यहां चर्चा कर देनी चाहिए । जैसे ही हम सावरकर के घर से निकलकर अपने मेजबान के घर जाने के लिए कार में बैठे, लालाजी पूरी तरह अपने विचारों में डूबे हुए दिखाई पड़े और शीघ्र ही उन्होंने अपने आपसे बातें करनी शुरू कर दी। वह मेरे साथ बातें नहीं कर रहे थे और न ही हमारा कोई और साथी वहां था। ऐसा दिखाई पड़ता था कि उन्हें इस बात का भी ज्ञान नहीं कि कोई और उनके साथ भी है और उन्होंने कई ऐसी बातें भी कीं, जिनके बारे में मैंने उनसे पहले कभी सुना भी नहीं था । यह स्वगत कथन कुछ इस प्रकार था —हमने ऐसा करके देखा यह भी किया वह भी किया कोई कोर-कसर बाकी नहीं छोड़ी अपनी ओर से पूरा यत्न किया फिर भी किसी भी तरह सफलता नहीं मिली ? इन बातों में गहरी निराशा ही मुख्य थी, ऐसी निराशा जिसकी झलक मैंने उनकी बातों में पहले कभी भी नहीं देखी थी । इस स्वगत कथन में नेपाल की घटनाएं भी शामिल थीं और अन्य बातें भी जिनके साथ मैंने कभी उनका संबंध होने की कल्पना भी नहीं की थी । विनायक सावरकर के साथ भेंट ने उनमें ऐसी मन:स्थिति पैदा कर दी थी, जो मैंने उनमें पहले कभी नहीं देखी थी और न ही बाद में कभी देखने में आई । मैं चुपचाप बैठा रहा । अपने आपसे की गई उनकी बातों के बारे में बाद में मैं कभी जानने का साहस नहीं कर पाया ।

दिवास्वप्न में अपने आपसे की गई इन बातों से हमें एक ऐसी झलक दिखाई दे गई, जो चाहे अपूर्ण थी, परन्तु ऐसा पार्श्वचित्र दिखा गई, जो अपरिचित था और जिससे यह संकेत मिलता था कि इस बात की संभावना है जो कुछ हमें दिखाई दे रहा है, उससे बहुत अधिक छुपा हुआ है । बाद में जब मैंने उनकी आत्मकथा के कुछ खंड मरणोपरान्त प्रकाशन के उद्देश्य से पढ़े, तो उनमें कुछ संक्षिप्त तथा महत्वपूर्ण अंश दृष्टिगत हुए — कलकत्ता में निवेदिता के साथ उनकी बातचीत या गायकवाड़ के साथ उस समय हुआ वार्तालाप जब सभी अतिथि जा चुके थे और उस राजकुमार ने श्यामजी और लालाजी को जान बूझकर रोक लिया था या उनके पत्र में मैंने उनके स्पेनिश भाषा की कक्षा में

दाखिल होने के बारे मे पढा । यह एक उलझनपूर्ण प्रश्न था, जिसका उत्तर मुझे उनके अप्रकाशित कागजो मे मिला, जिसमे उन्होने गदर पार्टी के अपने मित्रो से बार-बार यह अनुरोध किए जाने की चर्चा की थी कि वह अपना कुछ धन दक्षिण अमरीका मे एक बस्ती बसाने के लिए दें, जहा भारतीय देशभक्तो को आवश्यकता पडने पर आश्रय प्राप्त हो सके । स्पष्ट है, उन्होने इस सभावना से इन्कार नही किया था कि सभवत उन्हें ऐसी परिस्थिति का सामना करना पडे ।

मेरे लिए अजीब किस्म का आश्चर्य वैजवुड के उस पत्र मे था, जिसमे उन्होने लालाजी से यह जानना चाहा था कि क्या वह ब्रिटिश सरकार की ओर से पर्शिया जाने को तैयार हैं । निस्सदेह, यह नियुक्ति कार्यान्वित नही हो पाई । सम्भवत वैजवुड ने उस अवसर पर सामने आने वाली बाधाओ के बारे मे नही सोचा था । हमने लालाजी को ऐसे साधारण प्रस्ताव की कभी चर्चा करते नही सुना था— परन्तु मुझे तुरत याद आया कि उन्होने ईरान की इस नियुक्ति के बारे मे आगा खा द्वारा दिलचस्पी दिखाने की चर्चा की थी । स्पष्ट है कि लालाजी को इसकी कुछ आन्तरिक जानकारी थी— चाहे वह उस समय लन्दन मे नही, बल्कि न्यूयाक मे ठहरे हुए थे । 'द ट्रिब्यून', लाहौर के सम्पादक कालीनाथ राय मेरे इस आश्चय पर बहुत हैरान हुए जब मैंने उनसे यह सुना कि सर जान मेनार्ड ने लालाजी से यह जानना चाहा था कि क्या वह मत्री बनना पसद करेंगे । असहयोग के तौर पर विधान मडलो का बहिष्कार करने का प्रस्ताव सबसे पहले लालाजी ने ही किया था और यह प्रस्ताव करते समय उन्होंने उन अधिकारियो के प्रति भावुकतापूर्ण घृणा व्यक्त की थी, जो पजाब की यत्रणा तथा अपमान के लिए जिम्मेदार थे । सभवत, लालाजी पद स्वीकार नही कर सकते थे, परन्तु इस समय मेरा तात्पर्य यह है कि निस्सदेह हमारा उनके साथ सपर्क इसके थोडी देर बाद ही हुआ, उन्होने इस सबध मे एक शब्द भी नही कहा ।

IV

बेलगाव मे कांग्रेस अधिवेशन के अवसर पर मुझे लालाजी के साथ बातचीत करने का एकमात्र अवसर मिला । नई दिशा निर्धारण का

काम जारी था, जिसके आरम्भ होने की चर्चा मैंने पहले की है। एक घटना और मेरी स्मृति मे अभी भी स्पष्ट है, वह है श्रीनिवास अय्यगार के साथ विचार विनिमय, जिसका उन्होंने उत्तर भी दिया था। "हा, मैं आपके विचारो से सहमत हू, परन्तु इस मामले मे मैं अपने आपको सार्वजनिक रूप से वचनबद्ध नही कर सकता। मुझे एक वर्ष के लिए अकेला छोड दो, मैं आपके साथ हू।" गुप्त रूप से इस प्रकार सहमत होना श्रीनिवास अय्यगार के लिए विशेष बात बिल्कुल नही थी चाहे इसका विशेष कारण कुछ भी हो जिसकी वजह से उन्होंने बुद्धिमानी से इस प्रकार इन्कार किया—फिर भी उन्हें आशा थी कि उन्हें (कांग्रेस का) अध्यक्ष बना दिया जाएगा।

लालाजी इस प्रकार का व्यवहार करने वाले लोगो के साथ झगडते नही थे, निस्सदेह इससे उनके मन मे राजनीति के प्रति अप्रसन्नता बढती थी।

पुनरावलोकन से पता चलता है कि बेलगाव की घटनाओ से पडित मोतीलाल और लालाजी के दृष्टिकोण तथा तौर-तरीको मे भिन्नता आ गई थी। कांग्रेस अधिवेशन ने गाधीजी को प्रसन्न करने के लिए कताई करने वाले मतदाता स्वीकार कर लिए। लालाजी ने इन मत-दाताओ से सम्बद्ध प्रस्ताव का विरोध तथा उपहास किया। उनके विचार मे यह प्रस्ताव गलत था और स्वराज पार्टी के नेताओ द्वारा इसका समर्थन कुटिलतापूर्ण था। उनका यह विरोध राजनीतिक कारणो से भी अधिक नैतिक कारणो से था। उनकी यह नैतिक सवेदनशीलता थी जिसकी वजह से वह इस प्रकार की कुटिलतापूर्ण अवसरवादिता को स्वीकार न कर सके और उनके अलग अलग होने का यही बडा कारण था। कुछ ही महीनो मे गाधीजी को बेलगाव की अपनी सफलता के खोखलेपन का पता चल गया और उन्होंने स्वय ही यह 'मतदान' व्यवस्था समाप्त कर दी।

V

"अलगाव" के दौर की झलक मैंने बेलगाव मे देख ली थी। जब इस बात की पुष्टि आने वाले महीनो मे उस समय हो गई जब लाहौर

मे नहर के किनार कई बार टहलते हुए मैंने उन्हें अपन आपमें टैगार के "एकला चलो" नारे को गुनगुनात हुए सुना ।

"एकला चला" विशेषकर उस घटना के बाद स्पष्ट हा गया, जिसे मैंने उबेदुल्ला घटना का नाम दिया है (यह "साम्प्रदायिकतावादी ?" अध्याय मे वर्णित है) । मैंन इस घटना का कुछ ब्यौरेवार वणन किया है, क्योकि व्यक्तिगत सम्पक के कारण मुझे इस बात की पूण जानकारी है कि काबुल म एक शाखा को सम्बद्ध करने मे बहुत-सी अनियमितताओ के प्रति नताओ की लापरवाही से उन पर कितना प्रभाव पडा था, जब उन्होने इसकी ओर नताओ का ध्यान दिलाया था । तो उन्होने उनकी बात अनसुनी और व्यग्य करन के सिवाय कुछ नही किया । लाजपत राय शताब्दी के अवसर पर लिखे एक लेख में, जो 'द हिंदुस्तान टाइम्स' म प्रकाशित हुआ था, मैंने उन बातो का स्मरण किया, जिनकी लालाजी ने कई बार चर्चा की थी । उन्होने अपने आपको उस मामले मे, जिसे वह छोटी-सी साम्प्रदायिक उलझन समझत थे, उलझने दिया, क्योकि उन्ह इसमे "पृथकतावादी" माग का रूप दिखाई देता था । उबेदुल्ला घटना न उनकी गलतफहमिया म बहुत वृद्धि कर दी । जहा तक मेरी जानकारी है, काग्रेस के किसी अन्य नेता को उस समय "पृथकता" का पूवज्ञान नही था । लालाजी ने इसका केवल अनुमान ही नही लगाया था, बल्कि लिकन की भाति निश्चय कर लिया था कि इसका हर मूल्य पर विरोध करना है ।

म यहा यह बता देना चाहता हू कि मैंन उबेदुल्ला से भेट की थी (तब उनकी उम्र 70 वर्ष के करीब थी और वह इससे भी अधिक बूढे दिखाई पडते थे) । मैं उनसे 1940 मे लाहौर मे मिला और काफी लम्बा वार्तालाप चला, जिसम उन्होने "ब्रिटिश एजेंटो द्वारा लालाजी के मन मे पैदा की गई 'गलतफहमियो" के बारे मे स्पष्ट कर देना चाहा — परन्तु मुझे इस बात की कोई जानकारी न मिल सकी कि काबुल म शाखा स्थापित करने के लिए काग्रेस की रुचि का कारण क्या हो सकता था ।

VI

फिर भी, एकता म उनकी बेहद रुचि थी । वह आखिर तक इस प्रयत्न मे रहे कि किसी प्रकार सहमति से समझौता हो जाए । जिन्ना के साथ समय-समय पर उनकी बातचीत अत तक जारी रही, जो इस बात का काफी बडा प्रमाण है । अतीत की ओर दृष्टिपात करने पर मै अक्सर महसूस करता हू कि लालाजी के दिनो के बाद काग्रेस के नेताओ का जिन्ना के प्रति व्यवहार बिल्कुल ही बदल गया, जिसके कारण कई ऐसी कठिनाइया पैदा हो गईं, जिन्हें टाला जा सकता था । 1940 मे लीग के लाहोर अधिवेशन के कुछ समय बाद जहा पहली बार पाकिस्तान का सूत्रपात हुआ और जब जिन्ना साहब लाहौर आए थे, मैंने उनसे मुलाकात की और उनसे काफी लम्बी बातचीत की । मैंने उन्हें याद दिलाया कि लाजपत राय और वह कितनी सद्भावना और अनौपचारिकता से विभिन्न विषयो पर विचार विनिमय किया करते थे । यदि उनका समाधान न हो सके, तो भी सच्चे मन से इस सिलसिले मे प्रयत्न तो जारी रखें । जिन्ना ने उत्तर दिया—"मैं तो वही हू जसा तुम पहले देखा करते थे, पर आज मेरे साथ और ही तरह का व्यवहार किया जाता है । गुलाम हुसन हिदायतुल्ला ने जीवन भर कुछ नही किया, आज देशभक्त माना जाता है और मुझे देशद्रोही समझा जाता है ।"

यह अथ लेना तो शायद अजीब लगे कि पाकिस्तान का जन्म जिन्ना के प्रति काग्रेस के नेताओ के बदले हुए व्यवहार के कारण हुआ । परतु यह परिवतन दुर्भाग्यपूण भी था और इसने जरूर कुछ न कुछ योगदान किया । चाहे कुछ भी हो, एकता के प्रति लाजपत राय के गम्भीर प्रयत्नो का अनुमान लगाने के लिए इस बात की चर्चा करना उचित ही है ।

इस मुलाकात के कुछ समय बाद जिन्ना की यह शिकायत मेरे मन मे कुछ अधिक बैठ गई । मने राजाजी को एक पत्र लिखा, जिसमे इस बातचीत का सक्षिप्त सार और जिन्ना के व्यवहार के बारे मे अपने प्रभाव की चर्चा की । मैंने राजाजी का चुनाव जान-बूझकर किया था क्योकि मैं समझता था कि यह राजनीतिक व्यवहार मे प्रतिसवेदी हैं, फिर भी मुझे इस बात से निराशा ही हुई कि इस मामले मे उन्होंने बिल्कुल

अलग व्यवहार किया । उन्होंने कहा कि जिन्ना के साथ उस समय तक कोई बात नहीं की जाएगी, जब तक उनके अपराध का प्रायश्चित नहीं हो जाता । उनका दोष यह था कि उन्होंने आज़ाद को (तत्कालीन कांग्रेस अध्यक्ष) कांग्रेस का आडम्बर कहा था ।

VII

वास्तव में मेरे जैसे अनुभवहीन पत्रकार के लिए मेरे प्रमुख उस मां के समान थे, जो बच्चे को पालने के लिए अपना दूध पिलाती है। मेरे व्यावसायिक विकास और प्रगति के लिए आवश्यकतानुसार उन्हीं से मुझे सब कुछ मिलता । यदि मैं और अधिक स्पष्ट शब्दों में कहूं कि मुझे उनसे ठोस "शिक्षा" क्या मिली, तो मुझे मुश्किल से ही कोई बात याद आती है, सिवाय दो शब्दों के संक्षिप्त फार्मूले के—"लिखो, फाड़ो", और यही फार्मूला वह बार बार दोहराया करते थे और कई बार इसमें जोड़ दिया करते थे —"मैं यही किया करता था।" धैर्य और कड़ी आलोचना दो शब्दों के इस पाठ में सफलता की यह जोड़ी अन्य क्षेत्रों में भी लाभकारी थी — इस बहुमुखी हथियार का सफल प्रयोग हो सकता है । अन्य मामलों में "लिखो और फाड़ो" को परीक्षण प्रणाली कहा जा सकता है । वह सभी राजनीतिक कार्यक्रमों को इसी कसौटी पर परखा करते थे —"सिद्धांतवाद" के आकर्षण, तर्क शक्ति या किसी के व्यक्तित्व के आकर्षण से प्रभावित नहीं होते थे । इसी सर्वश्रेष्ठ नुस्खे से उन्होंने पत्रकारिता के क्षेत्र में असाधारण स्थान प्राप्त कर लिया । सी० एफ० एंड्र्यूज ऐसी बातों के बहुत ही योग्य पारखी थे और उन्होंने अपने मित्र लाजपत राय के काम को ध्यान से देखा था । उन्होंने लाजपत राय से गंभीरता से आग्रह किया कि वह अपनी अन्य सभी गतिविधियां छोड़ दें और केवल अपना ध्यान भारत को एक ऐसा दैनिक पत्र देने के लिए केंद्रित करें, जो भारतीय जनमत के लिए वैसा ही करे जैसा सी० पी० स्काट के 'मानचेस्टर गार्डियन' ने ब्रिटिश जनमत के लिए किया । उनके विचार में ऐसा करके वह अन्य गतिविधियों से हटने की क्षतिपूर्ति कर पाएंगे । एंड्र्यूज महसूस करते थे कि लाजपत राय इस तरह के दैनिक समाचार पत्र को ईमानदारी से अपने विचारों के अनुसार चला सकते हैं । उन्हें भारतीय पत्रकारिता के क्षेत्र

मे उनसे योग्य और कोई व्यक्ति दिखाई नही देता था । भारतीय पत्रकारो तथा उनके कार्य को जीवन भर देखने के अपने अनुभव के कारण मुझे एड्रयूज के इस अनुमान की पुष्टि करने मे कोई हिचकिचाहट नही है ।

निस्सदेह, गरीबी के कारण वह विश्वविद्यालय की शिक्षा प्राप्ति का लाभ नही ले पाए थे, फिर भी शायद वह सबसे अधिक ज्ञानी पत्रकार थे और इस व्यवसाय मे न होते हुए भी वह पत्रकारिता के लिए (जैसा एड्रयूज ने महसूस किया) उच्चकोटि के व्यक्ति थे। पत्रकारिता मे उन्होंने यह सफलता सवप्रयोजन युक्ति से प्राप्त की, जिसे उन्होंने अपनी गति-विधियो के प्रमुख क्षेत्र से प्राप्त किया था । मै तो यह कहूगा कि 'प्रगमा' लाजपत राय के कार्यो का एक शब्द मे साराश है, जिसके अनुसार वह राजनीतिक क्षेत्र मे सोच विचार करते थे । अनिवाय बातें, महत्वपूण मूल्य तथा उद्देश्य नही बदलते थे, परन्तु अनुभवो की रोशनी मे कायक्रमा तथा नीतियो का बराबर मूल्याकन होता रहता था । "इसे हम गति-शील व्यावहारिकता" का नाम दे सकते हैं । वह किसी विशेष विचार-धारा से सम्बद्ध नही थे, पर मोटे तौर पर निस्सदेह वह समाजवादी थे । वास्तव मे उन्होंने उस समय ही काफी व्यापक समाजवादी कायक्रम की घोषणा कर दी थी जब वह अभी अमरीका मे ही थे। यह अपील उस भाषण का प्रमुख भाग थी, जो उन्होंने वहा भारतीय छात्र वग के सम्मुख दिया और जिसका विषय था "युवा भारत का आह्वान" । वह घोषणा करते कि "हम समाजवादी झण्डा नही फहराते" और इसके पश्चात वह कोई एक दजन मागो की चर्चा बहुत ही यथायवादी ढग से करते जिनमे समाजवादी उददेश्या की चर्चा होती । प्रारभिक घोषणा का केवल एक ही उद्देश्य हो सकता है लोगो को समय से पूव ही परे न हटाया जाए, क्योकि बुद्धिमान लोगो मे भी बहुत से ऐसे थे जो रूस की क्रान्ति के थोडे समय बाद समाजवाद से डरे हुए थे और भारत मे तो राष्ट्रीय स्तर पर श्रमिक सगठन अभी बने ही नही थे ।

प्रमुख के साथ मेरा विशेष सम्पक होने और लोक सेवा सघ मे प्रथम तथा उसका सस्थापक (अथवा उत्तराधिकारी) होने के कारण जो स्थान साप्ताहिक पत्र मे मुझे प्राप्त था उसके लिए उचित यही था कि

दोनों संस्थानों का मैं पूर्ण विवरण दूं, परन्तु लोक सेवा संघ के हाल ही के इस निर्णय के कारण कि संघ का इतिहास लिखा जाए, मुझे इस विवरण को संक्षिप्त करना पड़ रहा है।

VIII

अपने प्रमुख के साथ मेरे सहयोग से मुझे प्रारम्भ में यह ज्ञात हुआ कि असहयोग आंदोलनकारियों के साथ असहयोग के तौर पर कालिज छोड़ना और विदेशी सरकार के विरुद्ध प्रचार में कूद पड़ना ही काफी नहीं। असल में स्वतंत्रता का अर्थ था कि कई मोर्चों पर संघर्ष किया जाए और इसके लिए बहुत सी बौद्धिक सामग्री और व्यापक अध्ययन की आवश्यकता थी। कठिन परिश्रम से उन्होंने कोई शैक्षणिक या व्यावसायिक महत्वाकांक्षा प्राप्त नहीं की, बल्कि लोगों की समस्याओं को समझने के लिए योग्यता प्राप्त की। बुद्धि को अच्छी तरह तीक्ष्ण रखा जाना चाहिए, अपनी मौज के अनुसार काम करने के लिए नहीं, बल्कि असल उद्देश्य के लिए, मन की उचित सेवा के लिए। यद्यपि अध्ययन और बौद्धिक योग्यता आवश्यक थे, परन्तु वह निःस्वार्थ लगन तथा अन्य अनिवार्य बातों का स्थान नहीं ले सकते थे, जो चरित्र के लिए मूलभूत थे और जिनका सम्बन्ध मन से है।

भारत की समस्याओं के बारे में मैं लाजपत राय के त्रिवेणी संगम के दृष्टिकोण से सहमत हूं— जिसमें गंगा की मुख्य धारा हो, जो स्वाधीनता प्रदान करती है, इसके साथ सामाजिक तथा आर्थिक न्याय की यमुना का संगम अवश्य होना चाहिए और इसे आधुनिक संदर्भ में ढाला जाना चाहिए। अदृश्य सरस्वती की उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए। चाहे सरस्वती सागर की ओर बहती हुई दिखाई नहीं देती, इसकी शक्ति भूमिगत है या यह सकते हैं कि यह भूमि का भाग है। भारत की पुरानी परम्परा, जो जीवन शक्ति के समान जारी है इस बात से इन्कार करती है कि उसकी समस्याओं का समाधान बनी बनाई आधुनिक पाठ्यपुस्तकों में या सैद्धान्तिकवादों में मिल सकता है। आधुनिक सामाजिक तथा आर्थिक दर्शन का ज्ञान आवश्यक था परन्तु भारत के पुरातन इतिहास का आधार और भारत के लोगों के तौर-तरीकों तथा

मनोविज्ञान के साथ सीधे सम्पर्क की जानकारी प्रथम आवश्यकता थी। लाजपत राय के प्रारम्भिक आर्यसमाजी दौर मे सरस्वती पवित्र नदी है, जब तक स्वाधीनता प्रदान करने वाली गगा का दिव्य जल मुख्य धारा के रूप मे नही आ जाता। लाजपत राय की कथा का उनके जीवन की त्रिवेणी के रूप मे उचित ढग से अध्ययन किया जा सकता है, उनके मिलने और उनका त्रिवेणी सगम होने मे। निस्सदेह, इस अध्ययन मे सरस्वती को कभी कभार गायब हो जाने तथा कभी-कभार दिखाई पडने को नजरअदाज नही किया जा सकता।

IX

'अन्तिम जिनके लिए प्रथम बना' का अर्थ यह नही है कि भारत के स्वाधीनता सग्राम को लाजपत राय के जीवन काल मे ही सफलता मिली। इसकी चर्चा तो उनके अपने व्यवसाय की सफलता के बारे मे है। उन्होने सासारिक लोगो की सामान्य इच्छाओ का परित्याग कर दिया था और इसी प्रकार सभी अन्य सासारिक इच्छाओ को भी त्याग दिया था। अपने आपको पूर्णतया उस कार्य के लिए समर्पित कर दिया था, जिसे उन्होंने अपना लिया था। युद्ध के अग्रिम मोर्चे पर घायल होना और भारत के हित मे बलिदान देने वाले के रूप मे लोगो द्वारा याद किया जाना ही उनकी प्रमुख आकाक्षा थी। उनका जो अन्त हुआ, उससे उनकी मनोकामना पूर्ण हो गई।

और उपसहार का वह युवा शहीद ?

मुझे उन्हें उस समय से देखने का अवसर मिला, जब वह कालिज छात्र थे और उनके कार्यकाल के अन्तिम दिनो मे भी निकट से देखने का काफी अवसर मिला। उनकी पार्टी के कार्यक्रम की गुप्त योजना मे तो मैं भागीदार नही हो सका, परन्तु यह जानने के लिए कि वह किस मिट्टी के बने हुए थे या उन पर कौन-कौन से प्रभाव पडे, इन बातो मे जाने की आवश्यकता नही और न ही उनकी राजनीतिक विचारधारा तथा दृष्टिकोण को समझने के लिए इसकी जरूरत है।

उपसंहार में चित्रित भगत सिंह का रूप केवल घटनाओं से ही नहीं बनाया गया, बल्कि इसमें कहीं अधिक यह उनकी ललक और उत्कंठा की उपज है, जो इस ढंग से व्यक्त हुई। उन घटनाओं के बाद उनसे साथ मेरा सम्पर्क समाप्त नहीं हुआ, क्योंकि 'षड्यंत्र केस" में सफाई (प्रतिवाद) के लिए बनाई गई समिति के सचिव के तौर पर अदालत में हुई सारी लम्बी कार्यवाही के दौरान मुझे भगत सिंह तथा उनके साथियों के साथ निकट सम्पर्क रखना पड़ा था। और जब अधिकारियों ने उनकी गिरफ्तारी के लिए इनाम रख दिया था और पहचान से बचने के लिए उन्होंने दाढ़ी और केश मुंडवाकर पगड़ी के स्थान पर फैल्ट हैट पहन लिया था, दिल्ली में एक समाचारपत्र के कार्यालय के बाहर अचानक मेरी उनसे मुलाकात हो गई थी। अतः के डेढ़ मास की अवधि में—जो लाठियां बरसाए जाने और उत्तर में रिवाल्वर की गोलियां चलाए जाने के बीच में थी—मैंने भगत सिंह को काफी देख लिया था और भारत के युवकों को सम्बोधित करते हुए दिया गया बसंती देवी का चुनौतीपूर्ण वक्तव्य का शक्तिशाली प्रभाव, जिसकी भरतवाक्य में चर्चा है कोई बाद्धिकतापूर्ण अनुमान नहीं बल्कि प्रत्यक्ष अवलोकन है।

फिरोज चन्द

विषय-सूची

10561
21·3·90

पृष्ठ

पृष्ठ

त्रिवेणी बहती रहो

निर्वासित दूत

पृष्ठ

अन्तिम जिनके लिए प्रथम बना था

10561
21.3.9

1. बीज तथा भूमि

क्रिसमस के समारोहों के प्रारम्भ से केवल दस दिन पहले अकस्मात ही ब्रिटिश सेनाध्यक्ष सर ह्यूगफ ने 11 दिसम्बर की शाम के विशाल नृत्य कार्यक्रम को रद्द कर दिया, हालांकि यह कार्यक्रम काफी समय पहले से निश्चित था और इसकी काफी प्रतीक्षा थी ।

1845 की शरद ऋतु में स्थिति काफी गम्भीर दिखाई देती थी । विशाल नृत्य का कार्यक्रम इसलिए रद्द करना पड़ा था, क्योंकि अम्बाला स्थित ब्रिटिश अधिकारियों को सूचना मिली थी कि सिख सेना ने पूर्व की ओर कूच कर दिया है और सतलुज का पार कर लिया है । सतलुज नदी के बारे में ब्रिटिश शासकों ने सदा ही जोर दिया कि वह रणजीत सिंह के राज्य और उनके राज्य के बीच सीमा रहे । अम्बाला और सतलुज के पश्चिम में अब भी रणजीत सिंह के उत्तराधिकारी शासन चला रहे थे, हालांकि लुधियाना और फिरोजपुर में ब्रिटिश सेना की अलग अलग बाहरी चौकियां थीं ।

दोनों पक्षों का बहुत कुछ दांव पर लगा हुआ था । गवर्नर जनरल सर हैनरी हार्डिंग स्वयं पहुंच गए थे, ताकि सेनाध्यक्ष के कार्य तथा चिन्ता को कुछ कम कर सकें । इसके पश्चात् जो अभियान आरम्भ हुआ, उसमें अक्सर उन्हें वृक्षों के नीचे प्रेषण पेटियों के निकट बैठे देखा गया, क्योंकि उनके लिए, कैम्प कर्मचारियों का लाव लश्कर पहुंचने से पूर्व, आवश्यक कागजों को निपटाना जरूरी था ।

18 दिसम्बर को मुदकी में लड़ाई शुरू हुई । हैनरी हार्डिंग ने, जो स्वयं अनुभवी सैनिक थे, ब्रिटिश सैनिकों के एक भाग का दूर दराज सुरक्षित मुख्यालय से नहीं, बल्कि घोड़े पर सवार होकर तोपों के गोलों की भारी गड़गड़ाहट के बीच संचालन किया ।

कुछ एक ने इस प्रकार लड़ाई के मैदान में उनके आने पर विरोध व्यक्त किया, परन्तु इसका कोई प्रभाव नहीं हुआ । उनके मुख मकदूनिया निवासी सिकंदर महान का आदर्श था, जिसने कभी पड़ोस की भूमि पर युद्ध लड़ा था । हार्डिंग एक अनुभवी सैनिक थे और उन्हें ज्ञात था कि कितना महत्वपूर्ण मुद्दा दांव पर था ।

सिखों के लिए जिस प्रकार एक इतिहासकार ने टिप्पणी की है, "साहसी दिल और बलिष्ठ भुजाओंवाले तो अनेक थे, परन्तु ऐसा बुद्धिमान कोई नहीं था, जो मार्गदर्शन कर सके तथा समूची सेना को प्रेरणा प्रदान कर सके।" अनपढ़ परन्तु बहुत ही चतुर शेर-ए पंजाब रणजीत सिंह का छः वर्ष पूर्व देहांत हो चुका था। वह अपने पीछे बड़ी शानदार सेना छोड़ गए थे, परन्तु उनका कोई योग्य उत्तराधिकारी नहीं था जो इस सेना का उचित उपयोग कर सके और राज्य की नाव को सही मार्ग पर ले जा सके।

राधाकिशन का जन्म दिसम्बर 1845 के उसी भाग्यपूर्ण दिन, इस युद्ध क्षेत्र से केवल 48 किलोमीटर दूर, जगराव में हुआ, जो उस बच्चे का पिता बना जिसने शेर ए पंजाब की पुरानी उपाधि को पुनर्जीवित किया।

मुदकी की लड़ाई में सिखों की पराजय हुई। ब्रिटिश शासकों के लिए युद्ध ठीक ढंग से आरम्भ हुआ था। आस पड़ोस के मैदानों में कुछ और लड़ाइयां हुईं और खेल खत्म हो गया। एक महीने के अन्दर जगराव में ही फिरोजपुर वाली सेना लुधियाना से आई सेना के साथ मिल गई। दो मास में ही युद्ध समाप्त हो गया। ब्रिटिश शासकों ने उस संधि को समाप्त कर दिया, जिसके लिए उन्होंने रणजीत सिंह पर बहुत जोर डाला था। अगले चार वर्षों में सतलुज पार का क्षेत्र भी उनका हो गया।

जिस समय पंजाब में ब्रिटिश राज आया, उस समय वह अग्रवाल परिवार, जिसकी हम इस समय चर्चा कर रहे हैं, कई पीढ़ियों से मालेरकोटला तथा उसके आसपास के क्षेत्र में रहता था। अन्य स्थानों के अग्रवाल परिवारों के समान, वे लोग व्यापार तथा साहूकारी तो करते ही थे, साथ में इस स्थान पर उन्होंने महत्वपूर्ण प्रशासकीय पद संभालकर अपनी प्रतिष्ठा में वृद्धि कर ली थी। विशेषकर उस परिवार के लोग पंजाब के दक्षिण-पूर्वी भाग में स्थित, मालेरकोटला रियासत के मुसलमान शासकों के कोषाध्यक्ष बने।

रेलगाड़ी से मालेरकोटला लुधियाना से लगभग 45 किलोमीटर पश्चिम की ओर है और इसकी आबादी 20 हजार के करीब है। पहले-पहल मालेर और कोटला दो अलग जिला नगर थे। सुन्दर मोती बाजार, जो इन दो कस्बों को मिलाता है 20वीं शताब्दी में बनाया गया है। जिस अग्रवाल परिवार की हम चर्चा कर रहे हैं, वह इन दोनों में से बड़े कस्बे, मालेर में अधिक थे। इतिहास से पता

चलता है कि सिख शासनकाल में स्थानीय गड़बड़ी के कारण यह कबीला उस स्थान से नए स्थान की खोज में निकल पड़ा, परन्तु यह गड़बड़ी अधिक समय के लिए नहीं थी। दरअसल, उनमें से कुछ-एक ने तो पड़ोस में कोटला में ही शरण ले ली, जो मुश्किल से तीन फरलांग दूर था (कोटला का शब्दार्थ है किलेदार कस्बा)। इस कबीले के अन्य लोग लुधियाना और फिरोजपुर जिलों में बिखर गए, परन्तु उन्हें आमतौर पर "ढलेरी" ही कहा जाता था।

नई बस्ती की इस खोज में लाजपत राय के पूर्वज लुधियाना जिले के एक कस्बे जगरांव में पहुंच गए, जो फिरोजपुर से अधिक दूर नहीं। पुश्तैनी मकान अब भी वहां है। वहां लाजपत राय के पिता राधाकिशन के नाम पर, उनके बेटों द्वारा स्थापित किया हुआ स्कूल भी है, जिसे अब कालिज बना दिया गया है।

राधाकिशन के पिताजी पटवारी थे। वे जगरांव के निकट ही एक गांव में नियुक्त थे। उनका पद छोटा था और उनके पौत्र के कथनानुसार वह "बहुत परिश्रमी तथा साहसी, बुद्धिमान, विवेकी तथा मिलनसार थे।" उनमें दुकानदारों वाली सभी खूबियां तथा कमजोरियां थीं, जो शताब्दियों से उनके पूर्वजों ने ग्रहण की थीं। अपने वर्ग के नियमानुसार उन्हें हर ढंग से धन प्राप्त करने का शौक था। प्रारम्भ से ही पटवारी को अपर्याप्त वेतन मिलता है, परन्तु यह गांव का महत्वपूर्ण कार्यकर्ता है—उसे कमचारी भी कहा जा सकता है—उसे असुविधाजनक नैतिक संकोच भी नहीं करना पड़ता, विशेषकर इसलिए कि कानून इस बात की मौन सहमति देता है और प्रथा भी है कि यह कमचारी कुछ अधिक धन या सुविधाएं ले सके। उसके वेतन को तो केवल एक फीस ही माना जाता है या उसकी "ऊपरी" आय का अनुपूरक समझा जाता है। अब तक जब भी बड़े लोगों ने "भ्रष्टाचार विरोधी" अभियान शुरू किया है और इसका जोरदार प्रचार किया है, इस "ऊपरी आय" के बिना कोई पटवारी तो ऐसे ही मिलता है जैसे सफेद कौआ। सच बात तो यह है कि पटवारी जो फ़ीस लोगों से वसूल करता है, उसे प्रशंसा के तौर पर दी गई बख्शीश कहना ही उचित होगा, रिश्वत कहना ठीक नहीं। सभी पटवारी यह बख्शीश लेते हैं। धन तथा इस पुश्तैनी प्यार के साथ-साथ उसने अपनी औलाद को समय के अनुकूल चलने योग्य बनाने का काम भी किया। जब राजनीतिक उथल पुथल आम ही हो तो किसी व्यापारी समुदाय के लिए चिर-स्थायी होना संभव नहीं, जब तक वह अपने को बदलती हुई परिस्थितियों के अनुकूल बना लेने योग्य न हो। मालेरकोटला के मुसलमान शासक, सिखों के साथ उनकी लड़ाइयां, जगरांव के लिए घबराहटपूर्ण यात्रा, रायकोट के मुसलमान राजा के छोटे-मोटे अत्याचार,

रणजीत सिंह के आश्रित कपूरथला का अहलूवालिया शासन, सिखों की युद्ध में पराजय के बाद अंग्रेजों की आमद और हक्का-बक्का करने वाले इतिहास के इन थपेड़ों में अपने आपको संभालता यह खानदान फलता-फूलता गया।

छोटे कद के मलेरी बनिया पटवारी ने स्कूल में शिक्षा तो नाममात्र भी प्राप्त नहीं की थी। वह बनियों द्वारा बही-खाते लिखने में इस्तेमाल की जाने वाली प्राचीन लिपि से परिचित थे, जिसे "महाजनी" कहते हैं, परन्तु उन्हें उर्दू या फारसी का कोई ज्ञान नहीं था जिनमें भूमि का सारा विवरण रखा जाता था। परन्तु उनकी एक खासियत यह थी कि वह उस परिवार से थे जो अपने आपको हर परिस्थिति के अनुकूल बनाने में दक्ष था और हर स्थिति को स्वीकार कर लेता था। संभवतः वे लोग जिन्हें उर्दू तथा फारसी भाषा की जानकारी का लाभ भी था, वे तेजी से आने वाले क्रांतिकारी ऐतिहासिक परिवर्तनों के कारण अभी संभल नहीं पाए थे परन्तु इस परिवार के व्यावहारिक लोगों ने आखें फाड़कर देखने अथवा आत्म विश्लेषण में समय नष्ट नहीं किया। जैसी भी राजनीतिक हवा चले, वह अपनी आर्थिक परिस्थितियों को उसके अनुसार ढालने में प्रवीण थे। इस प्रकार उनमें से एक पटवारी का कार्य संभाल सकता था, जो अपनी त्रुटियों के बावजूद अपना काम अच्छी तरह करने के योग्य था। वह इसलिए एक ही पटवारी दे पाए थे, क्योंकि इतिहास की इस उथल-पुथल में वे उन लोगों से पहले स्थिर हो गए थे, जिनके पास उचित प्रशिक्षण तथा योग्यता थी। उनका पटवारी अपनी जाति का सच्चा नमूना था और जाट भाइयों के समान सनातनी विचारों वाला था, रीति-अनुपालक था। वह नियमित रूप से दिन में दो बार पूजा अर्चना करता था, आतिथ्य सत्कार में वह सन्यासी गुरुओं की संगति करता था जो श्वेताम्बर जैन साधु होते थे।

उनकी पत्नी उनसे कुछ भिन्न थी। अनपढ़ होने या बीस से अधिक तक न गिन सकने के कारण नहीं—जो उस पीढ़ी की महिलाओं की सबसे बड़ी कठिनाई थी—बल्कि इस कारण कि वह धन की लोभी नहीं थी। लाजपत राय ने अपनी दादी के बारे में कहा है—'मैंने ऐसी सत्य-प्रिय, नेक और मेहमान नवाज कोई महिला नहीं देखी जो इतनी दयालु तथा सादी भी हो। वह इस योग्य नहीं थी कि धन संभाल कर रख सकें और उनके पति उन्हें अधिक धन देते भी नहीं थे। जीवन भर उन्होंने कभी ताला न लगाया और न कोई चाबी अपने पास रखी। उन्हें आभूषणों का या बनाव शृंगार करने का शौक नहीं था। वह इतनी दयालु थीं कि उनके पति उन्हें जो कुछ भी देते वह अपने पड़ोसियों को दे देती।'

ज्ञान की अदृश्य अंगुलियों ने, जो गुण सूत्रों का मिलाकर आनुवांशिकता या जो संयोग करती हैं, धार्मिक प्रेम में करने वाली इस महिला का और धन की दृष्टि से चतुर तथा व्यावहारिक पति के साथ संयोग कैसे किया होगा।

हमें बताया गया है कि यह "भिन्न" महिला असाधारण मनोवैज्ञानिक अध्ययन का एक विषय भी थी—यदि आप चाहें तो परा-मनोविज्ञान का या मनोवैज्ञानिक अनुसंधान का विषय कहें। ऐसा दिखाई पड़ता था कि कभी-कभार उनके पति की मृत बहिन की आत्मा उनमें प्रवेश कर जाती थी। जब भी वह इस समाधि की स्थिति में होती, तो सारा परिवार उनके निकट जमा हो जाता था और देववाणी के तौर पर उनसे सलाह लिया करते थे। वह भविष्यवाणी किया करती थी या ऐसी बातों की जानकारी दिया करती थी, जिनका किसी को ज्ञान नहीं होता था। बाद में घटी-घटनाओं ने उन भविष्यवाणियों को सही सिद्ध किया। परिवार का उनमें बहुत विश्वास था। उनके पोते ने छोटी आयु में कई बार अपनी दादी को इस हाल में देखा था और जैसी हमने चर्चा की है, उनके बारे में लिखा। इस स्थिति का उन्होंने कोई स्पष्ट कारण नहीं दिया, केवल इतनी बात और कही है कि "मेरी दादी कोई चालबाजी, छल या धोखेबाजी नहीं जानती थीं। उनका स्वास्थ्य बहुत अच्छा था और वह बहुत कम बीमार होती थीं।"

ऐसे संकेत हैं कि उनके पति में भ्रमण लालसा थी। बेशक हमें ऐसी कोई जानकारी नहीं कि उन्होंने रलवे पूर्व के उन दिनों में सचमुच ही कोई लम्बी यात्रा की हो। उनकी अन्तिम बीमारी केवल एक दिन की थी और वास्तव में उनकी मृत्यु अव्यवस्था की स्थिति में हुई।

इन माता पिता के पुत्र, राधाकिशन ने धर्म में असाधारण रुचि दिखाई। राधाकिशन के स्कूल में प्रवेश से पहले ही मैकाले भारत में शिक्षा नीति के सम्बन्ध में अपना प्रसिद्ध लेख प्रकाशित कर चुके थे। मैकाले के देशवासियों ने (अंग्रेजों ने) राधाकिशन के गांव में जो स्कूल (मदरसा) खोला था, उसे एक मौलवी चलाते थे जो फारसी पढ़ाते थे। राधाकिशन बड़े योग्य छात्र थे, अपनी कक्षा में सदा प्रथम रहते और नामल स्कूल की अन्तिम परीक्षा में वह पंजाब भर में प्रथम रहे और उन्होंने "सही ज्ञान" अर्थात गणित तथा शारीरिक विज्ञान में पूरे के-पूरे अंक प्राप्त किए। वह केवल योग्य होने से भी कुछ अधिक थे। उनमें एक प्रकार की बौद्धिक दृढ़ता थी जिससे मन की बातों को धन के पीछे भागने की तुलना

मे निश्चित रूप से प्राथमिकता मिलती थी। उनमे धन के प्रति अपनी मा जैसी उपेक्षा नहीं थी और न ही अपने पिता की यह रुचि थी कि "हर सभव ढग से धन अर्जित किया जाए।" उन्होंने धर्म मे गहरी रुचि दिखाई, परन्तु उनके लिए यह वैसी सामान्य रीति नही थी जिस प्रकार उनके पूर्वजो ने शताब्दियो से अपनाई थी। वह अध्ययन करना, विचार करना तथा जाच करना चाहते थे और उसके बाद ही स्वीकार करने को तैयार थे। स्कूल मे वह केवल एक ही धर्म का अध्ययन कर पाए, वह था उनके अध्यापक का धर्म, जो एक धर्मपरायण सुन्नी मुसलमान थे, "अपने धर्म मे पूरी तरह दृढ़, ईमानदार तथा सत्यप्रिय।" हमे पता चला है कि उनके शानदार चरित्र ने इस्लाम के फैलाव का काम किया, क्योकि उनके कई गैर-मुस्लिम शिष्य बड़े होकर धर्म परिवर्तन करके मुसलमान बन गए। जो शिष्य स्वधर्म त्यागने से झिझकते थे, उन्होंने मन-ही-मन मे अपना धर्म त्याग दिया और धर्मपरायण अध्यापक का धर्म अपना लिया। राधाकिशन ने भी ऐसा ही किया। वह नमाज अदा करते, रमजान मे रोजा रखते और उन्होंने उलमा (मुसलमान धर्म के विद्वानो) के साथ मित्रता बनाई। कई वर्ष वह धर्म परिवर्तन की खातिर दुविधा में फसे रहे और इसके परिणामो से उत्पन्न होने वाली कठिनाइयो के कारण ऐसा करने से हिचकिचाते रहे। उन्होंने सच्ची लगन के साथ इस्लाम का अध्ययन किया। वह नये उत्साह के लिए सदा तत्पर रहते थे और उनकी इस विशेषता मे आलोचनात्मक स्वीकृति का गुण था। जब सर सैयद अहमद खा ने इस्लाम की उदार व्याख्या आरम्भ की, जिसे आम तौर पर "सहज धर्म विज्ञान" का नाम दिया जाता था, राधाकिशन ने बड़ी उत्सुकता से नए सिद्धातो का मनन किया। जो कुछ भी सर सैयद ने लिखा, उन्होंने उत्साह से पढा और कई वर्ष उनके साथ पत्र व्यवहार करते रहे। एक बार एक पत्र मे उन्होंने सर सैयद से पूछा कि क्या यह आवश्यक है कि मुसलमान बनने के बाद वह राधाकिशन नही रहें और किसी मुस्लिम नाम से जाना जाए। सर सैयद का उत्तर राधाकिशन के लिए प्रशसनीय सीमा तक उचित था, क्योकि उसमे कहा गया था कि नाम बदलना कोई महत्व नही रखता। जरूरी बात तो यह है कि केवल अल्लाह मे और उसके पैगम्बर "मुहम्मद" मे दृढ विश्वास हो। राधाकिशन के अन्तःकरण को शात करने के लिए इस पत्र ने अवश्य ही बहुत प्रभाव डाला होगा।

राधाकिशन के अन्तरग मित्र, दुनीचद, जो वकील थे, इस विशेष धर्म और धर्म परिवर्तन की विशेष कठिनाइयो के बारे मे अपने मित्र के साथ भागीदार थे। परन्तु ऐसा जान पड़ता है कि एक दिन दोनो मित्रो ने नि सकोच इस्लाम कबूल कर

लेने का निर्णय कर लिया था। इस इरादे को लेकर वह मस्जिद की ओर रवाना हो गए। राधाकिशन की पत्नी को किसी तरह उनकी इस योजना की जानकारी मिल गई और उन्होंने सफलतापूर्वक उन्हें रोक दिया। उन्होंने अपने पति के अपधर्म को बहुत कटुता से महसूस किया, जिस प्रकार कोई भी सामान्य हिंदू नारी करती, परन्तु उन्होंने बड़ी युक्ति और अनुकूलनशीलता से, जो हिंदू पत्नियों की विशेषता है, इसे सहन किया। राधाकिशन के ससुराल की सिख गुरुओं मे निष्ठा थी। बचपन मे राधाकिशन की पत्नी को सिख गुरुओं की वाणी पढ़ाई गई थी और राधाकिशन के घर मे भी वह प्रात काल जपजी का नियमित रूप से पाठ किया करती थी। राधाकिशन अपने मुसलमान मित्रो को भोजन के लिए अपने घर आमन्त्रित करते रहते थे। परम्परा निष्ठा के उन दिनो मे (जो राजनीतिक अर्थों मे "साम्प्रदायिक" नही थी) किसी हिंदू घर मे ऐसा होना घृणित बात समझी जाती थी। परन्तु राधाकिशन की पत्नी कोई झगड़ा खड़ा नही करती थी। वह अपने पति के मित्रो के अपने बरतनो को (जो सामान्य हिन्दू घरो के समान धातु के होते थे) आग से साफ करके परम्परा निष्ठा को संतुष्ट करती। उन दिनो मासाहारी अग्रवाल को दैत्य से कम नही समझा जाता था। परन्तु राधाकिशन, जो विचारो की दृष्टि मे जैन थे, हिन्दू अग्रवाल नही रहे थे। कई बार किसी मुसलमान मित्र के घर पकाया गया मास खाने के लिए अपने घर ले आते थे। इन सभी अत्याचार-पूर्ण कारवाइयो को उनकी पत्नी सहन करती रही। परन्तु राधाकिशन को पता था कि कही न-कही इसकी सीमा अवश्य आएगी और इस सीमा का उन्हे ज्ञान था। उन्हें पक्का सदेह था कि जिस दिन वह प्रकट रूप से मुसलमान बन गये, वह उनका घर छोड देगी और बाल-बच्चा को लेकर या तो मायके चली जाएगी या अपना अलग घर बना लेगी। "मेरे पिता मुसलमान नही बने, यह किसी करामात से कम नही और यह करामात करने का श्रेय मेरी माता को जाता है।" यह बात राधाकिशन के पुत्र ने लिखी है। परन्तु एक पारिवारिक मित्र का कहना है कि इस मानसिकता का शुद्धि श्रेय बालक लाजपत को जाता है, जो उस समय गुलाब देवी की गोद मे थे। जिस समय उन्होने अपने पति को मस्जिद की सीढियो पर चढते रोका था और उन्हें अपने पुत्र का वास्ता दिया था, पिता राधाकिशन सुन रहे थे और हिचकिचाहट मे थे, बच्चा इस स्थिति को, जो उसने पहले कभी नही देखी थी, देखकर रोने लगा। बच्चे के इस रुदन ने उस तनावपूर्ण स्थिति मे मा के अनुनय की सफलतापूर्वक हिमायत की और अपने घर की भावनाओं से प्रेरित

होकर, राधाकिशन, जो मये मुसलमान बनने के लिए सीमा पार करने ही वाले थे, बिना धर्म परिवर्तन के घर लौट आये।

राधाकिशन की पत्नी अपने ढंग की असाधारण महिला रही होगी। ऐसे मौजी पति को सभालने के लिए उन्हे असाधारण युक्ति से काम लेना पडता होगा। और एक गृह स्वामिनी के तौर पर अपनी कम आय म गृहस्थी चलाना तो और भी चतुराई की बात थी। अध्यापक के तौर पर राधाकिशन को केवल पच्चीस रुपये मासिक वेतन मिलता था। वह धर्म-ज्ञान के अध्ययन मे व्यस्त रहते थे। इस ज्ञान चेष्टा मे उन्हें अपने विभागीय अधिकारियो के आगे पीछे घूमने की फुरसत कहा होती और इस प्रकार उनके साथ प्राथमिकता देने वाली बात कहा हो सकती थी, चाहे उनके शिष्य अध्यापक के रूप मे उनके प्रति बहुत श्रद्धा रखते थे। शिक्षा मे कई वर्षों की गहरी रुचि के बाद लाजपत राय ने अध्यापक के तौर पर मुशीजी के बारे मे लिखा "भारत मे मुझे उनसे बढिया अध्यापक दिखाई नही पडा।" कहते हैं उनके सारे सेवाकाल मे उन्हें केवल दो बार ही वेतन-वृद्धि मिली—हर बार पाच रुपये की वृद्धि, और इस प्रकार जब उन्होने अवकाश प्राप्त किया, तो उन्हें पैंतीस रुपये मासिक वेतन मिलता था। उनकी पत्नी इतनी कम आय मे बडे परिवार का पालने का काम सभालती थी। उन्होने कुल दस बच्चो को जन्म दिया। उनके देहान्त के अवसर पर उनमे से छ, चार बेटे और दो बेटिया, जीवित थे। वह इतनी कम आय मे, इतने बडे परिवार के लिए रोटी-कपडे की व्यवस्था करने के साथ-साथ सभी पर्व, त्योहार तथा सस्कार पूरे करती थी —क्योंकि हमे बताया गया है कि वह कोई त्योहार मनाए बिना नही रहती थी—यह करामात से कम दिखाई नही देता। फिर भी उनकी सबसे बडी करामात तो उनका मजबूत मनोबल, था जिसे उनके पति धर्म विरोधी अत्याचारो के कारण सदा ही तोडने की सीमा तक पहुच जाया करते थे। उन्होने बहुत अधिक कष्ट झेले, परन्तु सभी चुप-चाप। वह साक्षात मनोबल की प्रतिमा थी। अपने दुख को वह केवल अपने तक ही रखती थी। दो वर्षीय लाजपत अक्सर अपनी माता को अपने पति के ठीक न होने वाले तौर-तरीकों पर घटा दुख से आसू बहाते और बडे ध्यान से देखते रहते। उनके पुत्र ने बाद मे लिखा है कि "वह लगातार कई कई दिन भोजन नहीं करती थी और अपने बच्चो को गोद मे लिए दुख भरी ठडी आहें भरती रहती थी। परन्तु उन्होंने अपने पति से अलग होने के बारे मे कभी न सोचा। दरअसल, वह अपने पति से कभी भी अधिक समय के लिए अलग न रही और सदा ही उनके पास रही"

हमारे विचार में कष्ट झेलने, सेवा करने और इस प्रकार यदि संभव हो सके तो धमत्याग की संभावित विपदा टालने के लिए।

वह बिल्कुल निरक्षर थी, फिर भी गुणवती और विलक्षण थी। उनके पति ने उन्हें बार-बार पढ़ाने का यत्न किया और बाद में बेटे ने भी कोशिश की। परन्तु उनके कमजोर स्वास्थ्य और पति के प्रति निरंतर चिन्ता तथा गृहस्वामिनी के तौर पर असामान्य भारी घरेलू काम काज के कारण, जो कम आय और बड़े परिवार के कारण था, वह अपनी निरक्षर स्थिति पर ही संतुष्ट रहीं। उन दिनों अच्छे भाग्य वाले हिंदू परिवारों की अधिकतर महिलाएं भी निरक्षर ही थीं।

चालीस वर्ष की उम्र तक राधाकिशन "अनौपचारिक" रूप से मुसलमान रहे। वह केवल जोश तथा ईमानदारी के साथ इस्लाम की प्रशंसा ही नहीं करते थे, बल्कि उन्होंने नए धमत्यागी के समान अपने पूर्वजों के धम तथा रीतियों की निन्दा करने का स्वभाव बना लिया था। वह अपनी यह निन्दा समाचार पत्रों के लिए लेखों के रूप में भेजते, जिन्हें उन दिनों के ब्रह्म समाजी समाचार पत्र तुरंत प्रकाशित कर देते। हिंदू धम, दशन तथा संस्कृति के प्रति उनका यह व्यवहार तभी परिवर्तित हुआ जब उनका पुत्र नए हिंदू धम के सिद्धांतों का, जिन्हें आयसमाज ने स्थापित किया था, कट्टर अनुयायी बन गया और उसने अपने पिता को यह दिखा दिया कि हिंदू धम का मूल जो बाहर से बदसूरत हो चुका है, और जो उसका अपना ही है, उसका मूल अन्दर-से-सुन्दर सुरभित है। राधाकिशन जान-बूझकर बेसमझ नहीं बने थे, असल में उन्हें संस्कृत का ज्ञान नहीं था। वह तो सत्य के उत्सुक जिज्ञासु थे, और उनके स्कूल का वातावरण ऐसा नहीं था, जिसमें वह हिंदू धम को सही संदभ में देख सकते। जब उन्हें अपनी त्रुटि का पता चला, तो उन्होंने तुरंत अपने आपको ठीक करने का प्रयत्न किया। उन्होंने हिंदू धम के बारे में उपलब्ध साहित्य का पूरा अध्ययन किया। परन्तु वह उस धर्मास्था में शामिल न हुए जिसके लिए उनका पुत्र इतनी निष्ठा से काय कर रहा था। उसका अध्ययन उसे आयसमाज की ओर नहीं, बल्कि वेदांत की ओर ले गया। वेदांत दशन की सूक्ष्मताओं ने उन्हें इस वृद्धावस्था में बहुत आकर्षित किया और उन्हें उपनिषदों की शिक्षा में बहुत शांति मिली।

राधाकिशन ने जीवन भर धर्म का रुचिपूवक अध्ययन किया। वह हिंदू धम की मूल पुस्तकों का उस गहराई से अध्ययन न कर सके, जिस प्रकार उन्होंने इस्लाम का किया था। परन्तु उन्हें जो कुछ भी (उदू में हिंदी अथवा गुरुमुखी में भी) मिला, उसका उत्सुकता, परिश्रम, और निष्ठापूर्वक अध्ययन किया।

समाचार-पत्रों में लेख लिखने के अलावा उन्होंने कुछ पुस्तकें भी लिखीं। उनके धार्मिक अध्ययन का परिणाम एक उर्दू पुस्तक के रूप में सामने आया, जिसका नाम था 'तहकीके मजहब'। यह विभिन्न प्रमुख धर्मों के मूल सिद्धांतों का संक्षेप में तुलनात्मक अध्ययन था, जिसके बारे में घोषित किया गया था कि यह लेखक द्वारा विभिन्न धर्मों के 22 वर्षों के अध्ययन का परिणाम है। हमें इस बात की कोई जानकारी नहीं कि मुंशीजी ने कभी कविता भी लिखी हो, परन्तु उन्होंने अपने लिए "आजाद" उपनाम रखा हुआ था जो उनकी आत्मा तथा दृष्टिकोण का सही प्रतीक था। उनकी प्रकाशित पुस्तिकाओं में से एक पुनर्जन्म के बारे में थी, जिसका नाम था 'रिसाला-ए-तनासुख', जिसमें उन्होंने खासतौर पर अपने भूतपूर्व गुरु सर सैयद अहमद और हिंदू दार्शनिकों की शिक्षाओं की तुलना की थी और आमतौर पर "प्रथम" को अधिक महत्व दिया था। पर वह स्वयं किसी विशेष विचारधारा के समर्थक नहीं बने। अपने इस सिद्धांत के बारे में उन्होंने स्वामी दयानन्द से भी वाद विवाद किया कि जो आत्माएं मुक्ति प्राप्त कर लेती हैं उन्हें भी "परमानन्द" स्थायी तौर पर प्राप्त नहीं होता, बल्कि सीमित अवधि के लिए ही प्राप्त होता है, चाहे वह अवधि काफी लम्बी ही हो। उन्होंने देखा कि यह सिद्धांत पुरातन भारतीय दार्शनिकों की शिक्षा तथा उनकी अपनी दलीलों—दोनों के विपरीत था। राधाकिशन ने सदा ही तर्क-संगत तथा संक्षिप्त होने का प्रयत्न किया और अपना ध्यान केवल विवादास्पद मामलों तक ही केंद्रित रखा। वह अपने दावे के संदर्भ में दलीलों के साथ तैयार रहते थे और जिन दार्शनिकों के साथ वाक्युद्ध करते थे, उन्हें अपनी बात कहने का अवसर दिया करते थे। उनकी लिखित सामग्री बहुत ही निरुपम है, उसमें अलंकरण का प्रयोग कुल नहीं है। दरअसल, वह बिल्कुल अलंकार रहित है और इसमें निश्चय ही प्रस्तुतिकरण की शालीनता की कमी है।

इतिहास का अध्ययन करने के परिणामस्वरूप उन्होंने लगभग 150 पृष्ठ की पुस्तक 'वीर चरित्र' की रचना की जो मुख्यतौर पर टाड की पुस्तक 'एनल्स एण्ड एंटिक्विटीज आफ राजस्थान' से ली गई चयनिका है। इसकी भूमिका में मुंशी राधाकिशन ने ऐतिहासिक अध्ययन के मूल्यों की बात की है और इसके प्रति अपनी विशेष रुचि की चर्चा भी की है। कुछ समय के लिए यह पुस्तक लोकप्रिय रही और इसका दूसरा संस्करण भी प्रकाशित हुआ।

पढ़ने में उनकी यह रुचि अंत तक बनी रही। जब मैं लोक सेवा संघ में शामिल हुआ, तो मुझे उनके पड़ोस में रहने का विशेष अवसर मिला, जब मैं 2, कोर्ट

स्ट्रीट, लाहौर में उनके साथ वाले कमरे में रहा था। लाला लाजपत राय ने यह मकान सब को दे दिया था और अपने लिए उसी मकान के आगन मे एक छोटा दो मंजिला मकान बना लिया था। उनके पिता नए मकान मे नही गए, परन्तु पुराने मकान मे बरामदे के दक्षिणी कोने में नीची छत वाले एक छोटे कमरे म रहते रहे। फर्नीचर के नाम पर उनके कमरे मे एक खाट और एक कुर्सी थी। इसके अलावा कमरे मे तीन और उचित ऊंचाई पर दीवार के साथ लकडी का मोटा खुरदरा तख्ता लगा हुआ था। यह तख्ता पुस्तकें, अखबार तथा अन्य वस्तुएं रखने के काम आता था तथा मुशी राधाकिशन के खाने तथा रहने के कमरे के तपोमय तथा सादा पहलू को प्रकट करता था। शायद सारे घर में यही एक कमरा था जिसमें किसी दरवाजे, खिडकी या रोशनदान म शीशे को स्थान नही मिला था। निस्सदेह गर्मियो म वह बरामदे म या खुले म सोते थे। प्रात उठकर वह कोई मनचाही पुस्तक या पिछले दिन का सायकाल का समाचार पत्र पढा करते थे, क्योंकि लाहौर मे उन दिना प्रात कोई समाचार पत्र नही आता था। उनका यह अध्ययन नाश्ते तक जारी रहता था। नाश्ता करने के पश्चात् वह अपने दूसरे पुत्र रणपत राय की दुकान पर चले जाते (वह गणपत रोड, अनारकली मे कागज के व्यापारी थे) और अपना सारा दिन वही बिताते, जिसम से अधिक समय पठन-कार्य मे व्यतीत होता। शाम का भोजन वह रणपत राय के पास ही करते और उसके पश्चात् वह उस दिन का वन्दे मातरम् बगल मे दबाए कोर्ट रोड पर अपने कमरे म आ जाते। वह सोने से पहले इसे जरूर पढते।

जो पुस्तकें पढने का उन्हें विशेष शौक था, उनमे डेपर की पुस्तक 'कानफ्लिक्ट बिट्वीन रिलिजन एड साइंस' का उर्दू अनुवाद भी थी। अक्सर वह प्रात एक बार इसका पाठ करते या फिर साय को सोने से पहले इसे अवश्य पढते। उनकी अन्य मनपसद पुस्तका मे से अधिकतर धर्म या साहित्य की पुस्तकें थी।

जब उनका देहात हुआ वह बयासी वर्ष के थे। उनकी मृत्यु को लाजपत राय ने बहुत महसूस किया, खासकर इसलिए कि उन दिना जेल मे होने के कारण पिता के अन्तिम क्षणा मे उनके पास न रह सके और अपने कर्त्तव्य का पालन न कर सके। उन्होंने विशेष निर्देश दिया कि अन्तिम सस्कार का सारा खर्च उनको लेखक के तौर पर मिलने वाली रायल्टी से किया जाए, जिसे वह अपनी सम्पत्ति मे से विशेष तौर पर पवित्र मानते थे।

2. विकास : किशोरावस्था के संघर्ष

मुंशी राधाकिशन ने लगभग आठ वर्ष अम्बाला जिले में रोपड़ के गवर्नमेंट मिडिल स्कूल में अध्यापन कार्य किया। 1865 के आरंभ में 28 जनवरी को जब वह रोपड़ में थे, पिता बन गए। उनका पहला बच्चा, जो पुत्र था और जिसका नाम लाजपत राय रखा गया, उनकी ससुराल ढुडीके गांव में एक छोटे कच्चे झोपड़े में पैदा हुआ। जिस तरह अब भी आम रिवाज है गर्भवती महिलाएं पहली प्रसूति के लिए अपने मायके चली जाती हैं। ढुडीके, फिरोजपुर जिले के मोगा तहसील का एक छोटा-सा गांव है। यह राधाकिशन के अपने कस्बे जगराव से, जो लुधियाना जिले में है, आठ किलोमीटर दूर है।

पिता उस समय किसी लघु व्यावसायिक पाठ्यक्रम के लिए दिल्ली गए हुए थे। उन्हें वहां यह समाचार मिला कि जन्म लेने वाला शिशु बहुत छोटा है। पिता स्वयं लम्बे तगड़े और व्यायाम करने वाले थे, उन्हें ऐसा बालक होने की बिल्कुल आशा न थी।

शिशुकाल में रोपड़ का क्षेत्र, जहां मलेरिया का रोग फैला रहता था, लाजपत राय को स्वस्थ तथा शक्तिशाली का नमूना बनाने में सहायक न हो सका। बड़े होकर जब वह स्कूल जाने लगे, तो उन्हें खेलने के मुकाबले पुस्तकों का अधिक शौक था। वह लगातार मलेरिया ग्रस्त होते रहे, जिसके परिणामस्वरूप बचपन में ही उनकी तिल्ली बढ़ गई।

लड़के की शिक्षा का काम शुरू में अधिकतर राधाकिशन ने घर में ही किया तथा कक्षा में पढ़ाए जाने वाले पाठ्यक्रम में काफी कुछ और भी शामिल किया गया। लड़का बुद्धिमान तथा परिश्रमी था और इसी प्रकार पुरस्कार जीता करता था, जिस प्रकार पिता अपने दिनों में। पिता ने उसे केवल लिखने, पढ़ने तथा गणित की ही शिक्षा न दी, बल्कि सबसे महत्वपूर्ण—धर्म शिक्षा भी दी। लड़का अपने पिता के साथ कुरान भी पढ़ता, उनकी तरह नमाज अदा करता और कभी-कभार रमजान में रोजा भी रखता।

युवा लाजपत अपने घर में धर्म कर्म को देखकर उलझन में अवश्य पड़े होंगे। उनके दादा रूढ़िवादी जैन थे, उनके पिता औपचारिक रूप से न सही, वैसे पक्के मुसलमान थे, उनकी माता पति के मुसलमान मत के कारण सदा दुखी

रहती थी, परन्तु धर्म कार्यों में वह नियमित रूप से लगी रहती थी। जब कभी भी लाजपत राय मां के साथ उनके मायके गये होंगे उन्होंने वहां सिख धर्म काफी देखा होगा। बचपन में भी जब उन्होंने इस स्थिति के बारे में विचार किया होगा, तो उलझन में पड़े बिना कैसे रहे होंगे? कुछ भी हो मुंशी राधाकिशन ने अपने बेटे के मन में भी धार्मिक जिज्ञासा और उत्सुकता की लगन लगा दी, जो आगे चलकर भी बनी रही, हालांकि लड़के ने इस्लाम के संस्कार छोड़ दिए थे।

अपने पिता से उन्हें इतिहास के अध्ययन का शौक भी विरासत में मिला, जिसका व्यापक अर्थ था 'महाकाव्य' तथा 'वीरगाथा' पढ़ने की रुचि। राधाकिशन ने लड़के को छोटी आयु से ही फिरदौसी के 'शाहनामा' का अध्ययन आरंभ करवा दिया, जिसे फारसी साहित्य में होमर के महाकाव्य या व्यास के 'महाभारत' के समान माना जाता है। उन्होंने अपने पिता के साथ मिलकर बार-बार फिरदौसी की रचना के अंशों का पाठ किया और बड़े हो जाने पर वह स्वयं यह सब पढ़ने रहे। इस अध्ययन ने उनकी ललक को संतुष्ट कर दिया और पढ़ने की अभिलाषा उत्पन्न कर दी। बचपन में 'शाहनामा' के अध्ययन को, बाद में लाजपत राय द्वारा इतिहास की पुस्तकें पढ़ने के शौक का कारण कहा जा सकता है। यह संभव है कि फिरदौसी के नायकों के नाटकीय वार्तालाप के कारण बच्चे के मन में भाषण करने का शौक उत्पन्न हुआ हो। यह भी संभव है कि बचपन की इस शिक्षा ने ही उनके मन में जीवन भर की गतिशीलता और हर कार्य में वीरोचित तथा महाकाव्य का दृष्टिकोण पैदा कर दिया हो। व्यास और होमर की तरह फिरदौसी युद्ध क्षेत्र में घटने वाली घटनाओं के वर्णन तक ही सीमित नहीं रहता। इसका अर्थ है कि वह सरकारी इतिहास की तरह नहीं है। वह सर्वसमाविष्ट है उनकी कविता उनके जीवन तथा संस्कृति का पूर्ण तस्वीर पेश करती है। जिस बालक को ऐसी बौद्धिक खुराक मिली हो, स्वाभाविक है कि वह जीवन भर इतिहास की पुस्तकों में ऐसे ही व्यापक, विस्तृत सर्वज्ञान को ढूंढेगा।

कुरान' तथा शाहनामा' के अध्ययन में व्यस्तता और बीच में बार-बार मलेरिया से बीमार होने के बावजूद उन्होंने अपनी पाठ्य पुस्तकों की उपेक्षा नहीं की। अपनी कक्षा में वह लगभग सदा ही प्रथम स्थान प्राप्त करते रहे। स्कूल में सबसे छोटी आयु के छात्र होने के कारण उन्हें अदभुत समझा जाता था। उन्होंने रोपड़ स्कूल में, जो छठी कक्षा तक था, पढ़ाई पूरी कर ली। उस स्कूल के बंद होने के

थोड़े समय बाद मुंशी राधाकिशन का स्थानान्तरण शिमला हो गया। वह अपनी पत्नी और बच्चों को वहां न ले जा सके, क्योंकि कम वेतन के कारण उनके लिए नई जगह पर उनका खर्च सहन करना कठिन था। आगे की शिक्षा के लिए लाजपत राय को लाहौर भेज दिया गया। शिक्षा विभाग ने उन्हें सात रुपये मासिक छात्रवृत्ति दे दी, फिर लाहौर से वह दिल्ली चले गये। वहां वह तीन महीने रहे। परन्तु बीमार से रहने वाले उस लड़के को दिल्ली की जलवायु रास न आयी। उस समय तक लड़के के पिता शिमला चले गए थे, इसलिए लाजपत राय अपनी मां के साथ अपने घर जगरांव चले गये।

अभी बालक लाजपत राय तेरह वर्ष के भी नहीं थे और मिडिल स्कूल में ही पढ़ते थे कि उनकी शादी कर दी गई। निस्सन्देह यह शादी रूढ़िवादी ढंग से, दो अग्रवाल परिवारों का मिलन करने के ढंग से, की गई थी। दुल्हन राधा देवी हिसार के एक परिवार से थी, जिसने कम आय वाले अध्यापक के घर के मुकाबले में अधिक सम्पन्नता देखी थी। हम दुल्हन और दम्पति-जीवन के बारे में बाद में चर्चा करेंगे। दिल्ली छोड़ने के बाद, जगरांव में घर में कुछ महीने बिताने के पश्चात वह मिशन हाइ स्कूल, लुधियाना में दाखिल हो गये। वहां भी उन्हें होनहार छात्र के रूप में वजीफा दे दिया गया और वहां भी वह बीमार पड़ गये। कुछ महीनों बाद उन्होंने स्कूल छोड़ दिया। मुंशी राधाकिशन को फिर तबादले का आदेश मिल गया। इस बार उनका तबादला अम्बाला हो गया। वहां उनकी पत्नी और बच्चे भी उनके पास आ गए। रोपड़ में उनके घर दो और बच्चों ने जन्म लिया था—मेलाराम, जिसकी छोटी आयु में ही मृत्यु हो गई और एक लड़की। अम्बाला के दिनों में तीन और पुत्रों ने उनके घर जन्म लिया—रणपत राय, धनपत राय और नन्द लाल। बाद में नन्दलाल का अपने भाइयों के नाम से मिलता-जुलता नाम दलपत राय रख दिया गया। संयोग से उन दिनों लाहौर में दलपत राय नाम के एक प्रसिद्ध वकील हुआ करते थे।

बीमार रहने वाले लाजपत राय को अम्बाला आए अभी दो महीने भी नहीं हुए थे कि वह बहुत गंभीर रूप से बीमार हो गये और कोई चार महीने बिस्तर पर पड़े रहे। इस बार की बीमारी फोड़े के कारण थी, जिसका दो तीन बार आपरेशन करना पड़ा। उन दिनों के बारे में सोचते हुए उन्होंने बाद में लिखा :

"जीवन भर में अपने माता-पिता के लिए कष्ट और चिंता का कारण बना रहा हूँ, परन्तु उस वर्ष मैंने उन्हें इतना कष्ट दिया कि मेरे लिए उसे कभी भुला पाना संभव नहीं।"

इस सबके बावजूद उन्होंने उस वर्ष मैट्रिक पास कर ली। दरअसल उन्होंने दोहरी मैट्रिक की। पंजाब विश्वविद्यालय अभी प्रारंभिक स्थिति में ही था और डाक्टर लिटनर कई प्रयोग कर रहे थे, ताकि इस विश्वविद्यालय को अन्य विश्वविद्यालयों से भिन्न पद्धति का बनाया जा सके। इस नये विश्वविद्यालय की अभी अपने प्रांत में भी अधिक साख नहीं थी, जब कि कलकत्ता विश्वविद्यालय के डिग्री डिप्लोमा की अधिक साख थी। लाजपत राय ने इस समस्या का समाधान दोनों विश्वविद्यालयों—पंजाब तथा कलकत्ता की परीक्षाएं देकर किया। वह दोनों में सफल हो गये और काफी समय बीमार रहने के बावजूद कलकत्ता की परीक्षा में वह पहले दर्जे में पास हुए। कलकत्ता की मैट्रिक के लिए उन्होंने फारसी का विषय दूसरी भाषा के रूप में लिया, परन्तु पंजाब की परीक्षा में उन्होंने कलकत्ता परीक्षा के विषयों के अतिरिक्त अरबी, उर्दू तथा शरीर विज्ञान के विषय लिए। उनके पिता इस बात के लिए बहुत उत्सुक थे कि उनका बेटा अरबी सीखे, क्योंकि बचपन में उन्होंने अरबी शब्दानुशासन तथा वाक्य विन्यास सिखाने के लिए काफी समय दिया था, परन्तु असल में लाजपत राय की इस अध्ययन में ज्यादा रुचि नहीं थी, उनकी यह सफलता तो उनकी योग्यता का प्रमाण थी। डाक्टर लिटनर के विश्वविद्यालय से उस वर्ष केवल 106 छात्रों ने ही मैट्रिक पास की।

3. कालिज : प्रभाव तथा मित्रताएं

लाजपत राय की आगे की शिक्षा एक समस्या बन गई। इस बात में संदेह नहीं था कि लड़का होनहार है और पढ़ाई के लिए उत्सुक है। उनके पिता के लिए यह बहुत ही दुख की बात होती कि पढ़ाई के लिए उत्सुक इतने होनहार लड़के को इतनी जल्दी पुस्तकों से अलग किया जाए, परन्तु कालिज की शिक्षा के लिए धन कहां से आता? यह कठिनाई बहुत ही बड़ी थी, परन्तु आखिरकार राधाकिशन ने निर्णय कर ही लिया कि वह अपने बेटे को कालिज में शिक्षा दिलाने की व्यवस्था करेंगे चाहे इसके लिए शेष परिवार को घर में कितनी ही कठिनाइयां क्यों न झेलनी पड़ें। मुंशीजी जैसे स्वतंत्र चरित्र का व्यक्ति अपने मित्रों से सहायता मांगने नहीं जा सकता था। कहते हैं कि उन्होंने एक ही मित्र से कभी सहायता मांगी थी, वह था जगराव का एक सम्मानित मुसलमान, सजावल बिलोच, जो स्कूल में उनका सहपाठी था और जिसके साथ राधाकिशन के संबंध बहुत सद्भावनापूर्ण और घनिष्ठ थे। सजावल ने बच्चे को लाहौर में हाई स्कूल में पढ़ाने का खर्च बड़े शौक से दिया होता। परन्तु ऐसा लगता है कि शायद उसे अपना कर्तव्य निभाने के लिए कहा ही नहीं गया, क्योंकि लाजपत राय स्कूल की शिक्षा के लिए लाहौर में बहुत ही कम समय ठहरे। कालिज-शिक्षा के लिए वह उन वजीफों पर जो उन्हें प्राप्त हुए थे, और घर से प्राप्त होने वाली आठ दस रुपये मासिक की छोटी सी राशि पर निर्भर रहे। निस्संदेह घर से आने वाली यह छोटी-सी राशि उनके पिता की आय का काफी बड़ा हिस्सा होती थी।

फरवरी 1881 में, सोलह वर्ष की आयु होने के कुछ समय बाद, लाजपत राय लाहौर के एकमात्र कालिज में दाखिल हो गये। विश्वविद्यालय या गवर्नमेंट कालिज उन दिनों लाहौर का या कहिए कि पंजाब का एकमात्र कालिज था।

कालिज में गरीबी के साथ संघर्ष निश्चय ही बहुत कठिन रहा होगा। घर में उन्होंने खुशहाली कभी देखी नहीं थी, परन्तु अपनी कम आय में सादगी का एक स्तर बनाए रखा गया था और जब कभी भी वह बीमार पड़े, उनके माता पिता उनकी देख रेख कर सकते थे। लाहौर में, घर के बजट में से जो कुछ निकाला जा सकता था उसमें और प्राप्त होने वाले वजीफों की राशि इसमें मिलाकर गुजारा चलाते समय, उन्हें अपनी गरीबी का अहसास बराबर बना रहता था।

उन्होंने स्वय हमें बताया है, "पहले दो-तीन महीने तो मुझे बहुत भारी उलझन का सामना करना पडा, मेरी आखो ने मुझे बहुत कष्ट दिया। इसके अतिरिक्त कई बार मुझे भोजन के बिना रहना पडा। बहुत सघर्ष करने पर मैं विश्वविद्यालय से तीन रुपये मासिक छात्रवृत्ति प्राप्त करने मे सफल हुआ। मैं लाहौर तो केवल इस विचार से गया था कि आर्ट्स की डिग्री प्राप्त करने के लिए पढाई करूगा, परन्तु छात्रावास मे कुछ सहपाठियो की सलाह पर मैंने कानून की पढाई के लिए भी दाखिला ले लिया। अपनी मासिक छात्रवृत्ति मे से मैं दो रुपये मासिक गवर्नमेंट कालिज की फीस देता था, तीन रुपये कानून के स्कूल की फीस और शायद एक रुपया मासिक होस्टल फीस। मेरे पिता बडी कठिनाई के साथ मुझे केवल आठ दस रुपये महीना ही दे पाते थे और मुझे इसी राशि के साथ गुजारा करना पडता था। कानून की पुस्तकें काफी महगी थी, परन्तु उनमे से जो अधिक आवश्यक थी, उन्हे मैं कुछ सस्ते भाव ही खरीद लेता था या फिर अपने मित्रो से उधार लेकर काम चला लेता था। आर्ट्स की पुस्तको के बारे मे भी मैंने यही नीति अपनाई। मेरे माता-पिता को मेरे लिए भारी कष्ट झेलने पड रहे थे और वे इसके लिए ऋण लेने को भी तैयार थे। परन्तु मैं उन्हें इस कष्ट मे नही डालना चाहता था। इसलिए मैंने कमखर्ची का जीवन ही बिताया।"

इस कठोर सघर्ष ने शीघ्र ही उन्हे इस बात के लिए तैयार कर लिया कि उन्हें पहले कानून की शिक्षा पूरी करके डिप्लोमा ले लेना चाहिए, ताकि वह अपनी आजीविका अर्जित कर सकें। जल्दी ही उनकी योजना मे उदार शिक्षा ने गौण स्थान ले लिया। कानून की परीक्षा के लिए उन्होने बहुत कठिन परिश्रम किया और साल के अन्त मे मुख्तार बनने की योग्यता प्राप्त कर ली, पर साथ मे पोलिया से भी ग्रस्त हो गये। वह कालिज मे दो वर्ष और रहे, परन्तु उन्होने विश्वविद्यालय की कोई और परीक्षा पास न की। बार बार की बीमारी, कानून की पढाई को प्राथमिकता, सार्वजनिक जीवन के कई सक्रिय मामलो मे व्यस्तता और विश्वविद्यालय पाठ्यक्रम से बिल्कुल भिन्न प्रकार की शिक्षा मे लगन—इन सब बातो का परिणाम यह निकला कि 1883 मे इटरमीडिएट की परीक्षा के सफल उम्मीदवारो की सूची मे उनका नाम नही था। परन्तु गवर्नमेंट कालिज मे बीते उनके ये वर्ष अन्य मामलो मे उनके जीवन के लिए बहुत महत्वपूर्ण थे। वहाँ उनके सहपाठियो मे, जो बाद मे बहुत प्रसिद्ध हुए, महात्मा हसराज, पडित गुरुदत्त विद्यार्थी, राजा नरेन्द्र नाथ और प्रोफेसर रुचिराम साहनी के नाम शामिल थे। उन

दिनों कालिज की कक्षाओं में बहुत कम छात्र होते थे। यद्यपि आजकल चंडीगढ़ तथा लाहौर में—हर वर्ष पचास हजार से अधिक छात्र परीक्षा देते हैं। इस बात में सन्देह है कि पंजाब के शिक्षा के इतिहास में किसी एक वर्ष में इतने योग्य छात्र हुए हों जितने वर्ष 1882-83 में थे। 1883 में इंटरमीडिएट की परीक्षा देने वाले इन पांच व्यक्तियों (लाजपत राय, हंसराज, नरेन्द्र नाथ, गुरुदत्त और रुचिराम) ने पंजाब को आधुनिक रूप देने में जितना योगदान दिया है शायद ही किसी और कक्षा के ऐसे छात्र मिल पाए। उनमें कुछ साथी तो लाजपत राय के लिए सहपाठियों से बढ़कर थे। दरअसल, गुरुदत्त, हंसराज, लाजपत राय, चेतन आनन्द और राय शिवनाथ की जो मित्र मंडली कालिज में थी उन्होंने कालिज के दिनों के बाद भी एक दूसरे के जीवन को बहुत अधिक प्रभावित किया। इन सबके जीवन की समानता उनका अति नैतिकवादी ढंग था। राय शिवनाथ, जो बाद में उत्तर प्रदेश में इंजीनियर रहे, शायद इन सब में से अधिक तपस्वी थे। वह नंगे पांव रहते थे और उनमें प्राचीन भारतीय पांडुलेख, कलाकृतियां तथा पुस्तकें एकत्र करने के लिए बहुत उत्साह था। देहरादून में उनका घर तो असल में एक निजी संग्रहालय था, जिसकी एक विशेष बात यह थी कि उसमें आर्य यज्ञशालाओं की रेखागणित की कृतियां अद्भुत ढंग से दिखाई गई थीं। ये रेखाकृतियां प्राचीन ग्रंथों का अध्ययन करके बड़ी श्रद्धा और लगन के साथ बनाई गई थीं।

4. उर्दू बनाम हिन्दी : एक उद्देश्य का आकर्षण

लाजपत राय के कालिज जीवन का बाद म लेखा-जोखा करने पर हम देखते है कि उनके अध्यापको मे से कोई भी उतना महत्वपूण नही, जितनी महत्वपूर्ण उनके सहपाठियो की यह विशिष्ट मडली थी, जिनकी हम पहले चर्चा कर चुके हैं। अध्यापको मे से, जिनके नाम चर्चा के योग्य हैं, वे हैं—डॉक्टर लिटनर और मुहम्मद हुसैन आजाद। डॉक्टर लिटनर की आकाक्षा थी कि वह शिक्षा को दिशा निर्देश देने वाले बन सकें, परन्तु पजाब विश्वविद्यालय के तत्वावधान मे प्राच्य शिक्षा का एक गुरुकुल स्थापित करने की उनकी योजना फलीभूत न हो पाई। परन्तु वह दावा कर सकते हैं कि उन्होंने ईमानदारी और परिश्रम के साथ पजाब मे स्वदेशी शिक्षा के बारे मे एक रिपोर्ट तैयार की जिसमे यह तथ्य प्रकट किए कि पूव-ब्रिटिश काल मे इस क्षेत्र मे साक्षरता काफी अधिक थी, शायद एक शताब्दी के ब्रिटिश शासन के बाद जितनी साक्षरता इस क्षेत्र म आई, यह उससे भी अधिक थी। पूव–ब्रिटिश काल मे इस क्षेत्र मे साक्षरता का क्षेत्र विविधतापूर्ण था, जिसमे आटस, प्राचुय और कानून की शिक्षा शामिल थी। उहोने कई भाषाओ, विशेषकर पूर्वी-भाषाओ का अध्ययन भी किया। परन्तु प्रशासन एक अलग मामला है और विश्वविद्यालय का सरकारी इतिहास शायद यह प्रकट करता है कि प्रतिभाशाली डाक्टर लिटनर को शायद इसलिए पद-त्याग करना पडा, क्योकि उनके अधीन विश्वविद्यालय के धन तथा हिसाब किताब मे बहुत अधिक ढील पाई गई थी।

मुहम्मद हुसैन आजाद, गवनमेंट कालिज मे इतिहास को एक अलग ढग से रख दे रहे थे। अरबी और फारसी के प्रकाड विद्वान होते हुए भी, वह इस बात से पूरी तरह सावधान थे कि साहित्य तथा शिक्षा को समय के साथ बदलना चाहिए, और उन्होंने उर्दू भाषा को समृद्ध बनाने का काय अपने ऊपर ले लिया था, ताकि नई साहित्यिक आवश्यकताओ के लिए उसे इस्तेमाल किया जा सके—उन नई साहित्यिक आवश्यकताओ के लिए, जो मुख्य तौर पर पश्चिम के प्रभाव से पैदा हुई। उनकी कविता तो खास महत्व की नही, परन्तु निश्चित रूप से उनका नाम उर्दू गद्य के पितामहों में से है। उन्होने उर्दू-साहित्य का पहला व्यापक और नियमित तिहास तैयार किया। उनकी लेखन शैली इतनी सशक्त और सजीव थी कि

4—136 M of I&B/ND/85

बाद में शोध काय के दौरान तथ्य बिल्कुल निराधार भी पाए गए हैं, फिर भी उनकी प्रासंगिक उक्ति आम लोगो के मन से नही हटती, क्योंकि वह बहुत कुशल साहित्यिक चित्रकार हैं और उनकी चौंका बातें तथा जीवन की झाकिया पाठको के विचारो में घुस जाती हैं और पक्की तरह बैठ जाती है। इतिहासकार मेकाले की इस बात को चाहे अस्वीकार करें कि जब एक अपराधी को कहा गया कि वह 'गिकार्डियानी' की हिस्ट्री पढने या पोत पर काम करने में किसी एक का चयन कर सकता है, तो उसने पोत पर काम करने को कम कष्टकारी माना। मुहम्मद हुसैन आजाद म भी यह खतरनाक प्रतिभा थी। जब वह किसी उर्दू शायर को विशेष चरित्र मे रूपायित करना चाहते, तो उसके समथन म उनके पास कहानियां की भरमार हो जाती। करुणात्मक प्रतिभा के मालिक 'मीर' के चिड़चिड़ेपन के बारे मे उन्होंने जो चुटकुले बयान किए, वह बाद म शोध काय करने वाले विद्वानो के लिए केवल कहानियां ही सिद्ध हुईं, परन्तु ऐसा दिखाई पड़ता है कि कई पीढ़ियां तक लोग "मीर" को उसी रूप में देखेंगे जैसा उसका चित्रण आजाद ने किया था।

लाजपत राय ने आजाद की अरबी कक्षाओ मे चन्द दिनो के लिए ही भाग लिया, परन्तु वे चन्द दिन उनके मन पर अमिट छाप छोड़ गए। आजाद कक्षा म भी गवारू मजाक कर सकते थे। लाजपत राय को इसका अनुभव पहले ही दिन हुआ। परन्तु अरबी की कक्षा को छोड़ने का कारण यह नही था। उन्होंने अधिक विचारणीय कारणो से यह कक्षा छोड़ी। भाषा का विवाद उन दिनो अभी आरम्भ ही हो रहा था। संयुक्त प्रात मे (जिसे आजकल उत्तर प्रदेश का नाम दिया गया है) एक आन्दोलन चल रहा था, जिसके परिणामस्वरूप कुछ वष बाद हिन्दी को अदालतो की भाषा के रूप मे मान्यता दे दी गई। पजाब म आय समाज हिन्दुओ के लिए हिन्दी तथा संस्कृत के महत्व पर अधिक बल दे रहा था। कालिज म लाजपत राय के समाजी मित्रो ने, जिन्होंने निश्चय ही हिन्दी और संस्कृत का पक्ष लिया, उनसे अरबी छोड़कर संस्कृत भाषा लेने का आग्रह किया, चाहे उन्हें इस भाषा का अक्षर भी नहीं आता था—परन्तु यह किसी अच्छे उद्देश्य के लिए एक तरह का बलिदान था।

प्रोफेसर आजाद के अपने रवैये ने भी लाजपत राय को यह आग्रह मानने म सहायता की। आजाद यह बात बढ़ा चढ़ाकर कहा करते थे कि "शिया" होने और फारसी का विद्वान होने के नाते वह भारत की बजाय ईरान को अपना घर

मानते हैं। इससे युवा लाजपत राय के मन में तेजी से पैदा हो रही देशभक्ति की भावना को ठेस लगी और उन्हें यह संदेह होने लगा कि अरबी और फारसी की पढ़ाई गैर-राष्ट्रीयता का प्रभाव बढ़ाने के लिए है। शत्रु घात लगाए हुए हैं और उन्हें अवश्य सावधान होना चाहिए। उन्होंने अरबी की कक्षा छोड़ने और संस्कृत सीखने के लिए यत्न करने का निश्चय कर लिया। परन्तु जहां वह अरबी में कमजोर थे, वहां उनके भाग्य में संस्कृत में भी उससे अच्छा होना नहीं लिखा था। उन दिनों में भी, जब वह कट्टर आर्य समाजी थे, वे संस्कृत साहित्य का ज्ञान केवल अनुवाद की गई रचनाओं से ही प्राप्त करते थे।

किसी व्यक्ति को यह नहीं समझ लेना चाहिए कि आजाद किसी प्रकार से कट्टर हिन्दी विरोधी थे। दरअसल, वह न हिन्दी विरोधी थे और न ही उन्हें भारत से घृणा थी। वह भारत को अपने ही ढंग से प्यार करते थे। शायद किसी और परिस्थिति में कोई भी उन्हें हिन्दी विरोधी होने का दोष न देता, चाहे उनका अपना योगदान केवल उर्दू के लिए था। आजाद ने देखा कि उर्दू साहित्य में निश्चित रूप से निष्क्रियता आई हुई है। गद्य ने कोई प्रतिभा आकर्षित नहीं की और पद्य का अधिकतर भाग घिसी पिटी प्रणाली में ही होता है। यदि वे उसी लीक पर चलते रहे जिस पर वे उस समय पड़ गये थे, तो उन्हें इस स्थिति से निकालने और उन नई कार्यों में प्रयोग होने की कोई आशा नहीं, जिनके लिए आधुनिक बुद्धि इसे इस्तेमाल करना चाहे। उर्दू साहित्य को आधुनिक बनाने का प्रारम्भ पंजाब में ही हुआ। इसका सूत्रपात मुहम्मद हुसैन ने किया। उर्दू साहित्य को आधुनिक बनाने की यह महान तथा अविश्वसनीय करामात यह है कि यह परिवर्तन, जिसके बारे में आम विचार यह है कि यह पश्चिम के प्रभाव से (विशेषकर अंग्रेजी के माध्यम से) आया, असल में उन लोगों द्वारा आया, जिन्हें अंग्रेजी का ज्ञान बहुत कम था या बिल्कुल ही नहीं था, अर्थात् आजाद और हाली द्वारा और उनके बाद सर सैयद अहमद तथा शिब्ली द्वारा। इस नए आन्दोलन में इन चारों में से प्रथम स्थान निश्चय ही मुहम्मद हुसैन आजाद का है। उन्होंने पंजाब में इस आन्दोलन को गतिशील किया और उनके प्रभाव से ही यह गति तेज हुई। उनके अनुरोध पर ही हाली लाहौर तशरीफ लाए और उनके संयुक्त प्रयत्नों के परिणाम स्वरूप ही साहित्य के क्षेत्र में कुछ क्रांति आई। उस समय जब उर्दू साहित्य में यह वलवर्द्धक कायापलट हो रही थी, पंजाब में हिन्दी आन्दोलन प्रकट हुआ और हिन्दी–उर्दू का प्रश्न उन दिनों का प्रमुख विवाद बन गया।

लाजपत राय ने हिन्दी हितैषिया का साथ दिया। परन्तु उनके लिए मुहम्मद हुसैन आज़ाद के प्रभाव से मुक्त होना इतना आसान नहीं था। उन्होंने आजाद की कक्षा इसलिए छोड दी, क्योंकि उनका विचार था कि यदि उन्होंने ऐसा न किया, तो वे आजाद के ईरान की ओर झुकाव से प्रभावित हो जाएगे। किन्तु नियति यह थी कि लाजपत राय के राष्ट्रीय गौरव का इसी मुहम्मद हुसैन की रचनाओं से ही बल प्राप्त करना था। अपनी आत्मकथा में उन्होंने अपने जीवन पर इस प्रभाव को शानदार श्रद्धाजलि अर्पित की है। उनके पिता उनके पहले अध्यापक थे, जिन्होंने अपने लडके को मुख्य तौर से फिरदौसी का 'शाहनामा' पढाकर इसके लिए तैयार किया था। मुहम्मद हुसैन आजाद उनके दूसरे अध्यापक थे, क्योंकि उनके द्वारा बडे अच्छे ढग से लिखी उर्दू की छोटी सी पुस्तक 'किस्स ए हिन्द' से ही लाजपत राय को पहली बार भारत के महान अतीत का पता चला। भारतीय इतिहास के ये अध्याय, कथा कहानियों के रूप मे, ऐसी भाषा मे पेश किए गए कि लेखक द्वारा भारत के अतीत पर गर्व की ये कहानियां बहुत तेजी से फैल गईं। सयोगवश लाजपत राय को यह भी स्पष्ट हो गया था कि उनके पिता की यह बात पूरी तरह ठीक नहीं थी कि मुस्लिम काल से पूर्व के भारत मे कोई बात ऐसी न थी, जिस पर गर्व किया जा सके। 'शाहनामा' और 'किस्स' दोनो को वह स्कूल और कालिज के दिनो के बाद भी अक्सर पढते थे। बाद मे उन्हें कर्नल टाड की पुस्तक 'एनल्स एण्ड एंटिक्विटिज आफ राजस्थान' का भी ज्ञान हुआ। राजस्थान की इन ऐतिहासिक गाथाओ और प्राचीन भारत के शानदार गौरव के बारे मे आर्य समाज द्वारा दी गई जानकारी ने उनके मन मे मातृभूमि का नक्शा ही बदल दिया, परन्तु इसका आरम्भ निश्चय ही आजाद द्वारा 'किस्स-ए हिन्द' मे किए गए वर्णन ने ही किया।

मुहम्मद हुसैन आज़ाद की शानदार गद्य रचना के लिए उनके मन मे प्रशसा भी शायद इन्ही दिनो से शुरू हुई थी। कुछ भी हो, यह उनके अन्तिम दिनो तक बनी रही। आज़ाद, सर सैयद और शिब्ली—ये हमेशा ही उनके मनचाहे रहे।

10559
2।जून 91

5. ब्रह्म समाजियों तथा आर्यों के बीच

हिंदी आंदोलन के लिए वह शीघ्र ही एक सक्रिय प्रचारक बन गए। दरअसल, यह लाजपत राय के सार्वजनिक जीवन का प्रारम्भ था—क्योंकि वह तो अभी स्कूल से निकले ही थे। गुरुदत्त, हंसराज के साथ उन्होंने अपना सार्वजनिक जीवन इस आंदोलन से ही आरम्भ किया, जब वे तीनों कालिज में "नये" ही थे। गुरुदत्त और लाजपत राय ने हिंदी समर्थक स्मारक स्थापित करने के लिए हजारों हस्ताक्षर इकट्ठे करने के लिए बहुत भाग-दौड़ की।

युवा लाजपत राय ने पहला सार्वजनिक भाषण, 1882 में अम्बाला में, हिंदी के समर्थन में दिया, तब वह केवल अठारह वर्ष के थे। वह इस प्रचार के लिए विशेष तौर पर वहां गये थे। एक अधीनस्थ मजिस्ट्रेट ने, जो श्रोताओं में थे, गवर्नमेंट कालिज के प्रिंसिपल को रिपोर्ट भेज दी और उन्होंने इस जोशीले युवक को चेतावनी दे दी कि छात्रों से यह आशा की जाती है कि वे ऐसे आंदोलनों से दूर ही रहेंगे।

लाजपत राय द्वारा हिंदी प्रचार में सक्रिय रूप से शामिल होने का यह अर्थ नहीं लिया जाना चाहिए कि उन्होंने आर्य समाज को स्वीकार कर लिया था। दरअसल, वह कुछ समय के लिए आर्य समाज और ब्रह्म समाज के बीच डांवाडोल रहे। पंजाब, ब्रह्म समाजी नवीन चन्द्र राय के अधिक प्रभाव में था और नवीन बाबू उन दिनों के कुछ अन्य बंगाली नेताओं के विपरीत हिंदी आंदोलन को बहुत ज्यादा महत्व देते थे। वह हिंदी को एक आधार मानते थे, जिस पर एक दिन समूचे भारतीय राष्ट्रवाद की इमारत खड़ी होनी थी। अग्निहोत्री, जिन्होंने ईश्वर से अनास्था रखने वाले देव समाज की नींव रखी, उन दिनों पंजाब ब्रह्म समाज के स्तंभ थे। लाहौर आते समय लाजपत राय अपने पिता से उनके लिए एक परिचय पत्र लाए थे। अग्निहोत्री अभी गवर्नमेंट स्कूल में ड्राइंग मास्टर थे और इसके साथ ही उर्दू का एक पत्र, जिसे 'बिरादर ए हिंद' कहते थे, सम्पादित किया करते थे। मुंशी राधाकिशन आर्य समाज तथा रूढ़िवादी हिंदू धर्म पर इस पत्र के माध्यम से हमले किया करते थे। लाहौर में लाजपत राय अग्निहोत्री के गहरे प्रभाव में थे। शायद वह कभी कभार अग्निहोत्री के साथ भाषण यात्राओं पर भी जाया करते थे। ब्रह्म समाज की एक बैठक में उन्होंने राम मोहन राय के

जीवन पर एक लेख भी पढ़ा। 1882 म उन्हें पिता के मित्र द्वारा विधिवत ब्रह्म समाज की दीक्षा दी गई। अग्निहोत्री एक बहुत प्रभावशाली सार्वजनिक वक्ता थे और सभव है लाजपत राय को इस बात का अहसास उनके सम्पर्क म आने से हुआ हो कि प्रभावशाली भाषण म कितनी शक्ति होती है।

परन्तु लाजपत राय अधिक समय के लिए ब्रह्म समाजी नही रहे। कालिज के दिनो मे, जैसा कि हमने पहले देखा है उनके मुख्य मित्र गुरुदत्त और हसराज थे और वह अक्सर उनके साथ आर्य समाज के बारे म बातचीत करते रहते थे। गुरुदत्त एक अदभुत व्यक्ति थे, उनकी उच्च बुद्धि, विभिन्न क्षेत्रो मे विशाल ज्ञान भडार और चकित कर देने वाली उनकी सर्वतामुखी प्रतिभा ने लाजपत राय के मन पर गहरा प्रभाव डाला। परन्तु वे यह गुरुदत्त नहीं थे, जिन्होंने लाजपत राय को आर्य समाज मे शामिल किया, बल्कि एक अन्य व्यक्ति थे, चाहे उनके पास बौद्धिक दावे कम ही थे किन्तु उनका व्यक्तित्व चुम्बकीय था और व्यक्तियो के बारे मे उनका अनुमान बिल्कुल ठीक होता था। वे थे साईं दास, लाहौर आर्य समाज के प्रधान। वह अपने मत के लिए नये मुरीद ढढने अक्सर होस्टल जाया करते थे और उन्हें इस बात की पूरी जानकारी थी कि जब उन्हें कोई होनहार नवयुवक दिखाई पड जाए, तो उसे कैसे आकर्षित करना है।

साईं दास ब्रह्म समाज की उस सभा म उपस्थित थे, जिसमे अग्निहोत्री न लाजपत राय को दीक्षा दी थी। जब वह सभा से बाहर आए, तो साईं दास उनसे मिले और तरस भरी आवाज मे कहने लगे कि एक अच्छा भला आदमी बेकार मे ही गुमराह करके फास लिया गया है।

पजाब ब्रह्म समाज की स्थिति सकट की ओर बढ रही थी और तीनो गुट एक दूसरे पर प्रभुत्व प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहे थे। इस कलह ने रोपड और जगराव के इस युवक को हक्का-बक्का कर दिया।

इस वर्ष के अत मे लाहौर आर्य समाज अपनी वर्षगाठ मना रहा था। लाजपत राय ने इस दूसरे समाज के बारे मे अपने मित्रो, गुरुदत्त और हसराज, से बहुत कुछ सुना हुआ था। वार्षिक समारोह के अवसर पर, उनकी उत्सुकता उन्हे आर्य समाज की ओर ले गई। उन्होने पहले कभी आर्य समाज नही देखा था। वार्षिक समारोह

के पहले दिन की बैठक देखने के बाद वह दूसरे दिन भी वहां चले गए। दूसरे दिन के प्रमुख वक्ता वह व्यक्ति थे, जो उन्हें भलि भांति जानते थे और जिनके मन में उनके लिए बहुत स्नेह था। वह उन्हें इमारत की छत पर एक ओर ले गये, ताकि वे उन्हें अपने भाषण का पाडुलेख दिखा सकें। युवा छात्र ने इस बात पर बड़ा गर्व महसूस किया कि उन्हें इतना महत्व दिया गया है।

साईं दास ने उन्हें आर्य समाज में शामिल होने को कहा। लाजपत राय सहमत हो गये। साईं दास का मुख अकथनीय प्रसन्नता से चमक उठा।

6. आर्य : प्राचीन अंगूरी

एक बार आर्य समाज में शामिल होने की देर थी कि वह शीघ्र ही आतरिक सलाहकारो मे शामिल हो गये और अभी ज्यादा देर नहीं हुई थी कि वह प्रमुख पक्ति के नेताओ म दिखाई देने लगे। लाहौर में आय समाज के अध्यक्ष, साई दास ने लाजपत राय को राजपूताना तथा सयुक्त प्रात जाने वाले शिष्टमडल के लिए चुन लिया। उन्होंने मेरठ, अजमेर, फरुखाबाद तथा अन्य स्थानो की यात्रा की, कई सावजनिक सभाओ मे भाषण किए, धन एकत्र किया और सभी स्थानो पर आय भाई बधुओ से मुलाकात की तथा उनके साथ विचारो का आदान प्रदान किया। इस काय के साथ निकट सम्पक बढने से पता चला कि समाज एक असाधारण सगठन है, जो धर्मोत्साही और गतिशील है। इसके सदस्य सुसगठित और दढ निश्चय वाले हैं, जो उस विशाल समुदाय के लिए जो बिखरे आटे की तरह पडा है, सभवत खमीर का काम देगा। इससे लाजपत राय को वह माहौल मिल गया, जिसकी उन्हें काफी समय से तलाश थी। आखिरकार, वह वहा पहुच गये जहा वह अपने आपको सहज स्थिति मे महसूस करते थे।

वह आय समाज की धार्मिक या सैद्धान्तिक शिक्षा की श्रेष्ठता के कारण आय समाज की ओर आकर्षित नहीं हुए थे, यह तो इसके सदस्यों का देशभक्ति पूर्ण उत्साह और आयवत का इसकी प्राचीन शान फिर से दिलाने की आकाक्षा ही थी जिनसे उन्हें प्रेरणा मिलती थी, ऐसा उत्साह समाज की गतिविधियों मे व्याप्त था, और इसके सदस्य इस आगे बढाते थे।

इसमे कोई सदेह नही कि कालिज में उनके निकट साथियो—गुरुदत्त और हसराज की सगति ने उन्हें प्रभावित किया था। गुरुदत्त विलक्षण प्रतिभा के स्वामी थे, जिनकी उन दिनो आम चर्चा थी। बहुत छोटी आयु होने पर उन्होंने विज्ञान तथा दशनशास्त्र म गहरी रुचि दिखाई, जो उनकी आयु के लिहाज से बहुत असाधारण थी। वह तत्व मीमासा का एक गभीर छात्र बन गये थे। उन्हें भाषाए सीखने की बहुत सुविधा थी। जब वह अभी स्कूली छात्र ही थे, तो उन्होंने किसी प्रौढ विद्वान के समान सस्कृत का अध्ययन किया था। पश्चिमी दशनशास्त्र के अध्ययन से उनकी रुचि अज्ञेयवाद में बढ गई, जो पिछली शताब्दी के अंतिम दो दशको के यूरोपियन विचारको मे आमतौर पर प्रचलित था। परन्तु उनके अज्ञेयवाद मे विश्वास की

झलक भी शामिल थी। अध्यात्मवाद और इसके रहस्यवादी अनुभवा की आशाए उ हे उतना ही वशीभूत करती थी, जितना अज्ञेयवाद और विश्वास का दी गई इसकी बौद्धिकतापूण चुनौतिया। उनकी योग मे रुचि पैदा हो गई, सस्कृत व्याकरण की सूक्ष्मताओ और दशन ने उ हें बेथम, मिल तथा हबट स्पेंसर से भी अधिक प्रभावित किया। फिर भी वह किताबी कीडा नही थे। वह ता अपनी पुस्तका की ओर केवल इस सीमा तक ही ध्यान देते थे कि उ हे पढकर सतुष्ट हो सके तथा उन पर उचित दृष्टि से विचार कर सकें। वह चाहते थे कि जीवन तथा विचारा मे एक रूपता रहे। उ होने एक रोजनामचा रखा हुआ था, जिससे उस निरतर सघप की जानकारी मिलती है, जो इस सामजस्य को प्राप्त करने के लिए किया गया। शरीर निबल था, और अक्सर असफलता का कारण बनता था। इस ईमानदार व्यक्ति के लिए ऐसी प्रत्येक असफलता आत्म भत्सना का कारण बनती थी और रोजनामचे मे इसका उल्लेख करना होता था—और इसके बाद होता था नया प्रयत्न। युवावस्था के आरम्भ मे वह एक योगी से मिले थे, जब वह धार्मिक विश्वास तथा अज्ञेयवाद के बीच डावाडोल थे। योगी ने उन पर इतना गहरा प्रभाव डाला कि वह एक शिष्य के रूप म उनके साथ जाना चाहते थे, परतु मित्रा ने हस्तक्षेप किया और घर तथा मित्रा के बधन-याग के प्रति प्रेम स अधिक शक्तिशाली सिद्ध हुए। बताया गया है कि अज्ञेयवाद के साथ उनका अन्तिम सम्पक उस समय टूट गया, जब उ होंने दयान द को मृत्यु-शय्या पर देखा। समाज के सस्थापक ने मरते हुए एक ऐसे व्यक्ति का समाज म शामिल करन म सफलता प्राप्त की, जो उनके अनुयायियो मे बहुत बुद्धिमान सिद्ध हुआ। गुरुदत्त सनकी स्वभाव के थे। कई बार सर्दी के मौसम म वह गर्मिया के कपडे और गर्मी के मौसम म सर्दिया के कपडे पहन लिया करते थे। इस प्रकार की तपस्या से उनका उद्देश्य अपने मन तथा शरीर को सम्पूण तया आज्ञाकारी उपकरण बनाना था। अपने तौर-तरीको मे मामूली सी अदला बदली करके उनके लिए गाधी बनना सभव था। उस समय से बहुत पहले जब गाधीजी ने स्वय अपने आपको खाजा था और इस निखरे हुए गुरुदत्त से आप केवल गाधी ही नहीं, बल्कि और बुद्धिमान व्यक्ति बना सकते थे। पजाब विश्वविद्यालय से निकल हुए छात्रों मे से अ य किसी ने इतना ध्यान आकर्षित नही किया, जितना गुरुदत्त ने। सभवत हरदयाल इस मामले मे एक अपवाद थे, वह एक बुद्धिमान व्यक्ति थे जिनके साथ लाजपत राय का लाहौर, यूराप और अमरीका म काफी सहयोग रहा (अमरीका मे हरदयाल के अनुयायियो तथा सहायको के सहयोग से)।

दरअसल, वे दोनों एक दूसरे से बहुत मिलते-जुलते थे। व्यक्तिगत आदतों में दोनों मनमौजी थे और यही हालत उनके विचारों की थी। दोनों में गम्भीरता बहुत अधिक थी। दोनों में बुद्धि और स्मरणशक्ति की विलक्षण प्रतिभा थी। उत्सुकता, ग्रहणशीलता, दृढ़ इरादा, भाषाओं तथा भाषण का शौक और तदनुरूप विचारों ने दोनों की विचार-शक्ति को चरम सीमा तक पहुंचा दिया। वह एक चरमबिंदु से दूसरे तक बहुत जल्दी पहुंच जाते थे—ठेठ पूर्व से पश्चिम तक अंतर्राष्ट्रीयवाद को भी बहुत पीछे छोड़ देने वाले महानगरीयवाद से बहुत ही संकीर्ण तथा सीमित राष्ट्रवाद तक, अज्ञेयवाद से सम्पूर्ण धार्मिक विश्वास तथा अध्यात्मवाद तक।

दोनों में अपने आस पास ऐसे मित्र तथा प्रशंसक एकत्र करने की क्षमता थी, जो इनकी प्रशंसा करते नहीं थकते थे। दोनों में तपस्या की लगन थी। हरदयाल की यह तपस्या अमरीका के पदार्थवाद और पेरिस के आमोद-प्रमोद में भी प्रभावरहित रही। यदि गुरुदत्त के समान हरदयाल ने भी कोई डायरी रखी हो और यह डायरी एक दिन मिल जाए, तो यह बात देखना बहुत रुचिपूर्ण होगा कि क्या वह भी आत्म भर्त्सना से भरपूर है और क्या शरीर को कष्ट देने की प्रतिज्ञा उसमें बार बार की गई है।

योगदर्शन तथा क्रियाओं में जिन लोगों की रुचि है उनका उद्देश्य आमतौर पर व्यक्तिगत मुक्ति है। परन्तु गुरुदत्त ने अपनी व्यक्तिगत सम्पूर्णता के इस प्रयत्न में सामाजिक तथा सामूहिक मूल्यों की उपेक्षा नहीं की। यद्यपि उनकी गणना 'राजनीतिक विचारों' वाले लोगों में नहीं की गई, फिर भी उनमें देशभक्ति की कोई कमी नहीं थी। छात्र जीवन में वह अपने मित्र लाजपत राय के समान परीक्षाओं के प्रति उदासीन ही रहते थे, परन्तु अपनी अधिक अकाल प्रौढ़ता के कारण किसी भी परीक्षा में बैठने वाले प्रतियोगियों को पछाड़ देते थे। वह संस्कृत वेदों और पश्चिमी विचारों तथा आधुनिक विज्ञान का समान रुचि से अध्ययन करते थे। 1886 में उन्होंने भौतिक विज्ञान में एम॰ ए॰ की परीक्षा पास की और विश्वविद्यालय जीवनकाल में शानदार कार्य के वजह से उन्हें गवर्नमेंट कालिज, लाहौर में भौतिक विज्ञान के सहायक प्रोफेसर की नौकरी मिल गई। जैसा कि उनके रोजनामचे से पता चलता है कि वह इस नौकरी पर बने रहने तथा इसे छोड़कर योग ध्यान में क्षेत्र में सम्पूर्णता प्राप्त करने के विचार से डावांडोल रहे।

भाषण देकर, लिखकर, सगठन का काय करके, अगुवाई करके तथा अपन मित्रो एव प्रशसको के विशाल क्षेत्र मे अपने चुम्बकीय व्यक्तित्व का लाभ उठाकर सारे समय यह आय समाज के लिये परिश्रम करते रहे। उनकी बौद्धिक प्रतिभा तथा सपन्नताओ और इनसे भी अधिक उनकी गभीरता तथा वफादारी न अपने निजी हितो या बलिदान देने के लिए तैयार रहने के उनके गुणो ने सबसे अधिक युवा लाजपत राय को प्रभावित किया। अपने जीवन मे हर कदम पर लाजपत राय स्वय उनकी सलाह लेते थे। सेवा नियमो से अलग गुरुदत्त का झुकाव राजनीति के क्षेत्र से भी हटकर था। प्रत्यक्ष राजनीतिक गतिविधियां तो अभी आरम्भ नही हुई थी—कम से कम पजाब मे और यदि कोई ऐसी गतिविधि होती भी, तो सभव था कि "अपने विचारो म खोये हुए" गुरुदत्त इस "दहाडती चिंघाडती भीड-भाड को बिना देखे पास से गुजर जाने देते"। परतु व्यापक दृष्टि से वह देशभक्त थे और उनके काय क्षेत्र मे आने वालो पर जिस ससग का प्रभाव पडता था, उसमे देशभक्ति का जोश अवश्य होता था। लाजपत राय को गुरुदत्त की उच्चकोटि की बौद्धिक सपन्नताओ या व्यक्तिगत सम्पूर्णता के लिए किए गए यौगिक प्रयत्नो ने उतना आकृष्ट नही किया, जितना इस आदशवाद ने कि हर उद्देश्य की प्राप्ति के लिए बलिदान की आवश्यकता होती है। सभव है उन्होने यौगिक प्रयत्नो की भी प्रशसा की हो—चाहे कुछ दूरी से ही सही और इसके अनुसरण के लिए कुछ झुकाव भी रहा हो। समाज के लिए पैम्फलेट प्रकाशित करने के अलावा उस समय गुरुदत्त अंग्रेजी की एक पत्रिका का सम्पादन कर रहे थे, इसका नाम बहुत ही उपयुक्त ढग से 'रिजेनरेटर आफ आर्यावर्त' (आर्यावर्त का पुनर्जीवन) रखा गया था, जो बहुत हद तक देशभक्ति के उद्देश्य की ओर सकेत करता था। लाजपत राय के आय समाज म शामिल होने मे, गुरुदत्त के देशभक्ति पक्ष का कोई कम दखल नही था। अपना व्यवसाय चुनने म वह गुरुदत्त से मशविरा लेते थे। एक मौका ऐसा आया, जब उन्हे यह निणय करना था कि क्या वह कानून का पेशा छोडकर अपने आपको उस शिक्षा आदोलन के लिए अर्पित कर दें, जो समाज द्वारा शुरू किया जा रहा था। प्रस्ताव यह था कि हसराज मुख्याध्यापक के तौर पर काय करें, (क्योकि उन्होने अभी हाई स्कूल शुरू किया था, कालिज तो बाद म खुलना था) और लाजपत राय उनसे दूसरे स्थान पर काय करने वाले सहयोगी हो। वह स्वय भी सकोच म पडे हुए थे। हसराज न बी० ए० की डिग्री प्राप्त की हुई थी — यह प्रमाणपत्र उन दिनो बहुत ही कम होता था—लाजपत राय के पास शिक्षा की कोई उपाधि

रही थी। उन तीनों ने इस मामले पर विचार किया और अन्त में यह निर्णय किया गया कि लाजपत राय अपना कानूनी व्यवसाय जारी रखकर कालिज के लिए अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं।

गुरुदत्त के सामने भी व्यवसाय के चुनाव का प्रश्न था—सांसारिक व्यवसायों को त्यागने का चरम विकल्प इनसे अलग था। वह "एक्स्ट्रा असिस्टेंट कमिश्नर" बन सकते थे, अर्थात् प्रांतीय प्रशासनिक सेवा के एक अधिकारी। उन्हें यह पेशकश भी की गई। वह प्रशासनिक सीढ़ी पर एक एक कदम चढ़ते और अपनी अद्वितीय प्रतिभा के साथ उस उच्च स्तर तक पहुंच जाते, जिस स्तर तक उन दिनों किसी भारतीय का पहुंचने की अनुमति थी। कुछ गंभीर सोच विचार के बाद उन्होंने फैसला किया कि कालिज में पढ़ाना उनके लिए बहुत उपयुक्त है। अतः उन्होंने अपना काम जारी रखा, यद्यपि वह डी० ए० वी० कालिज समिति के एक प्रमुख सदस्य भी थे।

गुरुदत्त ने अपनी इच्छा से गरीबी का जीवन व्यतीत किया। उनकी व्यक्तिगत आवश्यकताएं बहुत ही कम थीं जो बड़ी आसानी से पूरी हो जाती थीं। उनके वेतन का बड़ा भाग दूसरे लोगों की सहायता पर या फिर पुस्तकें खरीदने पर खर्च होता था, जिनके लिए उनके मन में सदा उत्साह रहता था। धन जमा करने को वह पाप समझते थे और उनकी मृत्यु के समय पता चला कि उन्होंने अपनी पत्नी तथा बच्चों के लिए भी कुछ नहीं बचाया।

गुरुदत्त की मृत्यु से पूर्व ही आर्य समाज में दो विचारधाराएं पैदा हो गई थीं। एक विचारधारा के वे लोग थे, जिनका दृष्टिकोण आधुनिक कहा जा सकता है, जो इस ढंग से विचार करें कि क्या यथार्थ तथा व्यावहारिक है, यह नहीं कि धर्मग्रंथ किस बात की आज्ञा देते हैं, सिद्धान्त क्या है और मतवाद क्या है? दूसरी विचारधारा इस व्यावहारिकता की निंदा करती थी और बिल्कुल सिद्धान्तों के अनुसार तथा धर्म ग्रंथों के अनुसार चलने के पक्ष में थी। सामान्य तौर पर यह विश्वास किया जाता था कि पहली विचारधारा दृष्टिकोण के पक्ष से अधिक राजनीतिक तथा देशभक्तिपूर्ण थी, जबकि दूसरी विचारधारा पर धर्मसिद्धान्त तथा धर्मविज्ञान छाया हुआ था। पर गुरुदत्त का दोनों पक्षों के लोग बहुत आदर करते थे। उनके अन्तिम दिनों में दोनों पक्षों के बीच की दूरी प्रत्यक्ष रूप में और भी बढ़ गई थी। उनकी मृत्यु के पश्चात उनके प्रति सबसे बड़ी श्रद्धांजलि यह थी कि दोनों पक्षों ने अपने समर्थन में उनका हवाला दिया। अपने प्रिय

मित्र के प्रति लाजपत राय की व्यक्तिगत श्रद्धाजलि जीवन कथा के रेखाचित्र के रूप म थी, जो नब्बे के दशक मे आरम्भ मे अंग्रेजी तथा उर्दू, दोना भापाओ म प्रकाशित हुई। यदि हम आय समाज के लिए प्रकाशित की गई कुछ-एक पुस्तका का छोड दें, तो यह श्रद्धाजलि-लेख लाजपत राय की प्रथम रचना कहा जा सकता है। हिसार के दिना म लिखी गई छोटी पुस्तिकाए तथा जो, पैम्फलेट फौजदारी अदालतो तथा मुकदमेबाजी के बार म थे, इनसे अलग हैं।

यह किसी भी दृष्टि से उनकी महत्वपूण पुस्तक नही थी। अभी उनमे एक लेखक का कौशल नही आया था और इस पुस्तक मे आदि से अत तक एक गैर-पेशेवर व्यक्ति तथा जल्दबाजी के निशान बिल्कुल स्पष्ट थे। परन्तु यह बात प्रत्यक्ष रूप मे देखी जा सकती है कि इस पुस्तक के गवाहपत्रो से भी भावनाओ की कोमलता की झलक मिलती है। यह महत्व की बात है कि लाजपत राय ने एक लेखक के तौर पर अपना जीवन 'जीवनकथा' नामक एक निबध लिखकर आरम्भ किया। जीवन के अन्त तक जीवन-कथाओ के प्रति उनकी गहरी रुचि बनी रही। एक लेखक के बहुत लोकप्रिय रूप मे, बाद मे उन्होने कई जीवन कथाओ पर अपनी कलम चलाई। उनम से कई तो बहुत लोकप्रिय भी रही और जैसा कि हम आगे चलकर देखेंगे, राष्ट्रीय चेतना जगाने मे उनकी पुस्तका म सबसे अधिक योगदान उर्दू मे लिखी गई 'मैजिनी की जीवन-कथा' का था।

लाजपत राय के कालिज के दिनोमें दूसरे गहरे मित्र हसराज स्वभाव मे गुरुदत्त से बिल्कुल उलट थे। उनम गुरुदत्त जैसी अचभित करने वाली प्रतिभा तो नही थी, परन्तु उनमे कुछ ऐसे गुण थे, जिनके कारण उनके स्वभाव मे अधिक स्थिरता थी। वह भी कालिज म दाखिल होने से पूव आय समाज मे शामिल हुए, परन्तु उन्हें किसी सस्कृत पडित ने अपनी ओर आकर्षित नही किया और न ही उन्हें योग की सस्कृति मे अधिक रुचि हो सकती थी। वह दूसरो की सेवा करने की सच्ची भावना से प्रेरित हुए थे। वह यह काय होशियार और व्यावहारिक व्यक्ति के समान करना चाहते थे, ऐसे आदशवादी व्यक्ति की तरह नही, जो इन विचारो को तक सगत सीमा तक पहुचाएँ या तुरत पूणत्व ढूढता हो। वह अपने आस पास जोशीले युवको की मण्डली तो जमा नही कर पाए, परन्तु उनमे मामला की व्यवस्था कर पाने की अद्भुत क्षमता थी। उन्होने सादा यहा तक कि गरीबी और सेवा का जीवन चुना। जब डी०ए०वी० कालिज की कल्पना की गई, तब उन्होने अपने आपको इस सस्था के साथ घनिष्ठ रूप से जोड लिया, लगभग उसी

प्रकार जैसे मसीह के अनुयायी करते हैं। उनके आलोचकों का कहना है कि यह संस्था तो एक साधन मात्र बनाई गई थी, न कि अपने आप में एक उद्देश्य, किन्तु हंसराज ने इस साधन को ही उद्देश्य मान लिया। दुख की बात है कि संस्थाओं के प्रति सब कुछ समर्पित करने वालों के साथ ऐसा ही होता है। हंसराज की विशेष क्षमता संगठन की थी। जो संस्था उन्हें सौंपी जाती, वह उसका पूरे ध्यान से, इंच इंच करके निर्माण करते और ऐसा करते समय ब्यौरों के बारे में निष्ठा के साथ अति सावधान रहते। उनकी यह निष्ठा पूजा के स्तर तक पहुंची हुई होती थी, जो ईर्ष्यापूर्ण ढंग से कई बार प्रतिभा की रक्षा करते हुए ऐसे महान गतिशील आन्दोलन में रुकावट डाल देती, जिसमें राष्ट्रीय आकांक्षाएं होती थीं।

हंसराज की तत्व मीमांसा अथवा धर्म विज्ञान में कोई रुचि नहीं थी और न ही वैदिक व्याकरण अथवा व्याख्या में। उनके लिए इतना ही काफी था कि नियति ने यह निश्चित कर दिया था कि आर्य समाज हिन्दू समाज का मान्यता दिलाने के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा। दूसरे शब्दों में वह आर्य समाज की ओर देशभक्ति के कारण आकर्षित हुए थे इसके दर्शन, धर्म, अथवा सैद्धान्तिकता के कारण नहीं।

लाजपत राय पूर्णत्व के आदर्शवाद और कार्यसाधकता के दो सिरों के मध्य खड़े थे, परन्तु आर्य समाज के सामने उपस्थित समस्याओं के प्रति उनका दृष्टिकोण गुरुदत्त की बजाय हंसराज के अधिक निकट था। हंसराज की तरह उनके लिए आर्य समाज की सबसे बड़ी योग्यता इसके सामाजिक, शैक्षिक तथा कल्याण कार्यों में तथा हिन्दू समाज में देशभक्ति की चेतना जगाने के कारण थी।

इन तीनों की मित्रता के लिए और संयोग से डी० ए० वी० कालिज के लिए यह अच्छा था कि उनकी गतिविधियों के क्षेत्र अलग अलग रहे। लाजपत राय ने अपना जीवन डी० ए० वी० कालिज की सेवा के लिए समर्पित करने का इरादा किया था, जैसे हंसराज ने किया। परन्तु विश्वविद्यालय की डिग्री न होने के कारण उन्हें हमेशा के लिए हंसराज का अधीनस्थ बनना था। इसी प्रकार यह सुझाव भी दिया गया था कि गुरुदत्त डी० ए० वी० कालिज के प्रिंसिपल बन जाएं। यदि ऐसा हो जाता तो उसके परिणाम अनर्थकारी होते। तीनों मित्रों का स्वभाव इतना भिन्न था कि वह एक टीम के तौर पर काम नहीं कर सकते थे। किसी न किसी स्थिति में पहुंचकर उनमें मतभेद अवश्य होते और ऐसा होना उनकी मैत्री तथा संस्था के लिए, जो तीनों को बहुत प्रिय थी, विनाशकारी सिद्ध होता।

7. आर्य समाज में प्रारम्भिक प्रशिक्षण

युवा लाजपत राय आर्य समाज के सिद्धान्तों को अपने में उसी प्रकार समा रहे थे, जिस प्रकार कोई बहुत प्यासा पानी पीता है— ये वे सिद्धान्त थे, जो आर्य समाज का मूल आधार थे, मतांध सिद्धान्तों का संग्रह भर नहीं। उनके दृष्टिकोण को समझने के लिए यह आवश्यक है कि शताब्दी के अन्तिम दो दशकों में समाज की विचारधारा को समझ लिया जाए। उन वृद्ध व्यक्तियों के बारे में जान लेने की भी कुछ और आवश्यकता है, जो समाज के भाग्य की अगुवाई कर रहे थे।

सबसे प्रथम साईं दास थे, जो उस समय लाहौर आर्य समाज के अध्यक्ष थे और वे ही लाजपत राय को आर्य समाज में शामिल करने के लिए जिम्मेदार थे। समाज के उद्देश्य की उनके मन में क्या धारणा थी? क्या उनकी गहन रुचि धर्म, विज्ञान या तात्विक सूक्ष्मताओं में अधिक थी या योग अध्ययन में अथवा व्यक्तिगत सम्पूर्णता और आत्मा की मुक्ति के लिए तपस्या करने में? या इन सब बातों में सम्मिलित रूप से रुचि थी; बल्कि अधिक रुचि इस बात में थी कि यह समाज द्वारा अपने लोगों की, धर्म निरपेक्ष रूप से सामाजिक शैक्षिक तथा कल्याणकारी कार्य करके, उनमें देशभक्ति तथा आत्म निर्भरता की भावना पैदा करे। वह एक सरकारी कार्यालय में क्लर्क के पद पर कार्य करते थे। वह प्रत्यक्ष रूप में किसी राजनीतिक आन्दोलन में भाग नहीं ले सकते थे। हमने यह भी नहीं सुना कि उन्होंने अपनी आत्मा की मुक्ति के लिए कभी किसी योगी का पीछा किया। उनकी बुद्धि में संस्कृत व्याकरण तथा धर्म विज्ञान की विद्वता भरी हुई थी। परन्तु वह आर्य समाज के सबसे अधिक चतुर व्यक्तियों में से थे और उनमें व्यक्तियों तथा मामलों को समझने की अलौकिक प्रतिभा थी। उनसे अधिक व्यवहार कुशल तथा ज्यादा सूझ-बूझ वाला व्यक्ति मिलना कठिन था। वह बुद्धिमान होने का दावा नहीं करते थे, परन्तु विशेष बात यह है कि वह स्वयं लेखक भी थे। उन्होंने जो एकमात्र पुस्तक लिखी, वह वैदिक सिद्धान्तों या आर्य दर्शन के बारे में नहीं थी, बल्कि अजीब बात यह है कि वह पुस्तक फ्रांसिस बेकन के निबंधों का अनुवाद थी। शायद इससे यह संकेत मिल सके कि आर्य समाज के इस महान नेता का जीवन-दर्शन क्या था।

बाद के वर्षों मे इस बात को लेकर बहुत विवाद हुआ कि आर्य समाज राजनीतिक आन्दोलन है या धार्मिक। सच बात तो यह है कि आर्य समाज के संस्थापक एक राजनीतिक नही, बल्कि एक धार्मिक व्यक्ति थे और इसके बावजूद उनके सारे कार्यों मे देशभक्ति की स्पष्ट झलक मिलती थी। उन्होने अपने आस-पास ऐसे बहुत से व्यक्तियो को आकर्षित कर लिया था, जो उनकी देशभक्ति, ज्ञान तथा आध्यात्मिक सफलताओं के कारण आकर्षित हुए थे और जिनके लिए देशभक्ति एक प्रकार से धर्म था और देशभक्ति के बिना उनके लिए धर्म का कोई अर्थ नही था। इन व्यक्तियों मे कुछ एक ने अपने निहित झुकावो के कारण बाद मे आने वाले राजनीतिक आन्दोलनो मे महत्वपूर्ण भूमिका निभानी थी। परन्तु यह कहना बिल्कुल बेहूदी बात होगी कि आर्य समाज एक प्रकार की राजनीतिक विचारधारा के लिए एक धार्मिक मुखौटा पहनकर आया था, या समाज एक अर्धगुप्त राजनीतिक आन्दोलन था, जिसने अधिकारियो को धोखा देने के लिए धर्म का लबादा ओढा हुआ था। हम यह याद रखना है कि दयानन्द को आर्य समाज का संस्थापक कहना उचित ही है, परन्तु आन्दोलन और संगठन के रूप मे समाज दरअसल स्वामी तथा उनके कई अनुयायियो तथा मित्रो के संयुक्त विचार-विमर्श का परिणाम था। इन अनुयायियों तथा मित्रो मे से कई समाज-सुधार तथा देशभक्ति को सबसे अधिक महत्व देते थे। समाज के मूल सिद्धान्त—दस मूल नियम—तथा समाज का संविधान मुख्य तौर पर उनके पंजाबी सलाहकारो तथा प्रशंसको ने तैयार किये थे, इनमे से प्रमुख राय बहादुर मूलराज थे।

अपने मूल विषय से हटकर मूलराज के बारे मे जान लेना हमारे लिए लाभकारी रहेगा, क्योंकि समाज के अन्य नेताओ के मुकाबले उनके विचार अधिक स्पष्ट हैं और उन्होंने, चाहे वह मुख्य तौर पर सामने नही आए, विशेष महत्वपूर्ण बौद्धिक योगदान दिया। वह इस बात मे सावधान रहते थे कि अपनी बात उच्च स्वर मे न कहें, परन्तु जो कहें, वह स्पष्ट स्वर मे हो। उन्हें यह बात आती थी कि किस प्रकार वह आन्दोलन के मुख्य व्यक्तियो पर असर डालकर अपने आपको प्रभावशाली बनाए। राजनीतिक नेता बनने की आकांक्षा उनमे नहीं थी फिर भी उन्होंने पृष्ठभूमि मे रहकर कई आन्दोलनो को प्रभावित किया। वह अपने देश की राजनीतिक मुक्ति के लिए बहुत सोचते थे। बाद के वर्षों मे लाजपत राय कहा करते थे कि मूलराज ने गाधीवादी असहयोग आन्दोलन के सिद्धान्तो तथा कार्यक्रमो की उस समय कल्पना की जब गांधीजी अभी स्कूली-छात्र ही रहे होंगे। परन्तु यह

साहसी काय करने के लिए कभी नहीं जान गए । यह स्वय सरकारी सेवा मे थे, यद्यपि अपने सम्पक म आने वाले सभी युवको को यह शिक्षा दिया करते थे कि वे इस प्रकार के जीवन के पीछे न भागें। वह उस समय, जब बटवारे से पूव स्वदेशी आन्दोलन का जन्म भी नहीं हुआ था, स्वदेशी के प्रचारक थे । उन्होंने इस बात की भी कल्पना की कि स्वदेशी के हित मे सरकार के साथ राजनीतिक असहयोग के साथ-साथ औद्योगिक तथा वित्तीय पुनर्निर्माण भी किया जाना चाहिए । अपनी आत्मकथा मे लाजपत राय ने मूलराज के बारे मे लिखा है

"राय मूलराज—वह राय बहादुर थे—अपने पास यूरोप के गुप्त सगठनो का इतिहास रखते थे, जो दो भागो म था । यह पुस्तक उन्होने किसी पुस्तकालय से मागी हुई थी । उन्होंने यह सारी पुस्तक पढ़ी । मैंने भी इस पुस्तक के कुछ पन्ने उन्ही के पास पढ़े । मूलराज ने मुझे यह पुस्तक अपने साथ घर ले जान की अनुमति नहीं दी थी ।"

बाद में लाजपत राय ने यह पुस्तक इग्लैंड से प्राप्त कर ली और अपनी जिज्ञासा पूरी कर ली ।

स्वदेशी की भावना के इस आरम्भिक प्रवतक ने भारत को विदेशी शासन से शीघ्र मुक्त कराने की इच्छा तो की, परन्तु उनका हिंदू-मुस्लिम एकता मे विश्वास नही था । लाजपत राय के शुरू के दृष्टिकोण पर मूलराज के प्रभाव का पता आत्मकथा के एक अश से चलता है, चाहे उसका नाम नही दिया गया

"1889 के बाद काग्रेस के प्रति मेरी उपक्षा का कारण मेरे आय समाजी मित्र की राय के कारण था । 1889 के बाद मुझे एक आदरणीय मित्र के साथ रहने का विशेष अवसर मिला, जो काग्रेस के कट्टर विरोधी थे । उनके विरोध के कुछ कारण सक्षेप म इस प्रकार हैं

1 काग्रेस की स्थापना कुछ अग्रेजो ने की थी, क्योंकि अग्रेज अपने देश से प्रेम करते हैं, इसलिए यह सभव नही कि काग्रेस भारत को आजादी दिलाएगी । अग्रेजो को भारत मे अपने राज से बहुत लाभ होते हैं, इसलिए यह असभव है कि वे रजामदी से भारत को आजाद कर देंगे । इस बात के भय से कि कही बुद्धिजीवी वग गहरा राजनीतिक आन्दोलन शुरू न कर दे, जो इग्लड की प्रभुसत्ता को चुनौती दे, उन्होंने बुद्धिजीवी वग के लिए एक ऐसे व्यवसाय की व्यवस्था कर दी है, जिससे कोई हानि होने का भय नही और जिससे यह वग दास्तीन दिन

"भाषण झाडकर" खुश हो जाएगा और समाचार-पत्रों में अपना नाम देखकर प्रसन्न होगा । उन दिनों यह युवक प्रत्येक अंग्रेज को भारत का शत्रु समझता था । वह कांग्रेस को केवल बेकायदा ही नहीं, बल्कि भारत के हितों के लिए हानिकर भी समझता था । उसके विचार में उस समय भारतीयों के लिए इस बात की आवश्यकता थी कि वह शिक्षा प्राप्त करके तथा स्वदेशी का प्रचार करके अपने आपको शक्तिशाली बनाएं और चोरी छिपे देश में शस्त्र लाएं और उस समय तक प्रतीक्षा करें, जब तक वह इतने शक्तिशाली नहीं हो जाते कि अंग्रेजों को देश से बाहर निकाल सकें ।

2 इस भद्र पुरुष का हिंदू मुस्लिम एकता में कोई विश्वास नहीं था । उसका विश्वास था कि ऐसी एकता से हिंदुओं की हानि होगी । हिंदुओं में आंतरिक एकात्मकता, धार्मिक उत्साह और साम्प्रदायिक आत्म सम्मान की कमी थी, जब कि मुसलमानों में ये गुण बहुत अधिक थे । इसलिए एकता के ऐसे प्रयत्नों से उन्हें सदा लाभ होगा । इसके अतिरिक्त अफगानिस्तान, टर्की तथा अन्य देशों में मुसलमानों को सत्ता प्राप्त थी । इसलिए एकता के प्रयत्नों से मुसलमान राजनीतिक तौर पर बहुत शक्तिशाली हो जाएंगे । उसे तो ऐसा दिखाई देता था कि मूल आवश्यकता इस बात की है कि हिंदुओं को शक्तिशाली बनाया जाए और उन्हें एकात्मकता का मार्ग दिखाया जाए और उनमें राष्ट्रीय जोश की भावना भरी जाए । उसकी दलील यह थी कि कांग्रेस आंदोलन में हिंदू सुधार में लगने वाली शक्ति का रुख मोड़ दिया जाएगा और हिंदू व्यर्थ काम में व्यस्त हो जाएंगे ।

3 एक और दलील यह थी कि राजनीतिक आंदोलन से अंग्रेजों की दृष्टि में हिंदू संदेहजनक हो जाएंगे, इसलिए वह केवल हिंदुओं की प्रगति में बाधा ही नहीं डालेंगे, बल्कि हर संभव ढंग से उन्हें हानि पहुंचाएंगे ।"

आर्य समाज के नेता सामान्य तौर पर इन विचारों से सहमत थे, जो मूलराज, साईं दास तथा लालचन्द का सामान्य धर्ममत था (लालचन्द बाद में पंजाब के मुख्य न्यायालय के न्यायाधीश बने) । वह तीनों सरकारी कर्मचारी थे । हमें बताया गया कि साईं दास 1881 में भी केवल स्वदेशी पहनते थे और स्वदेशी का ही प्रचार किया करते थे । मूलराज भी स्वदेशी में विश्वास रखते थे यद्यपि वह इसका प्रयोग करने में साईं दास की तरह कट्टर नहीं थे । उनके युवा सहयोगियों में से हंसराज ने छोटी उम्र से ही स्वदेशी को अपना लिया था । आम

समाज के प्रमुख व्यक्ति, बगाल और महाराष्ट्र मे इस आदोलन का जन्म होने से भी बहुत पहले से, स्वदेशी का प्रचार करते थे। उन सभी को स्वदेशी के इस्तेमाल के लिए समाज ने प्रेरित नही किया था, सभवत, उनमे मे कई तो समाज म शामिल होने मे पूव स्वदेशी-प्रेमी तथा देशभक्त बन गए थे। इस बात मे बहुत कम सदेह हो सकता है कि इन लोगो को समाज की शिक्षा, गतिविधियां, और सम्पूर्ण वातावरण म तथा अपने स्वदेशी दृष्टिकोण मे बहुत समरूपता दिखाई देती थी। इनमे से कुछ ने तो ब्रिटिश सरकार के साथ असहयोग करने के बारे मे, काग्रेस द्वारा ऐसा विचार करने से कोई पचास वप पूव ही सोचा था।

हम लाजपत राय की आत्मकथा म पढते हैं

"लाला साई दास तथा लाला मूलराज को अक्सर इस बात का दुख होता था कि भारत की उच्चकोटि की प्रतिभाए विदेशी साम्राज्य को शक्तिशाली बनाने के लिए इस्तेमाल की जाती रही हैं। वे बहुत ही प्रतिभाशाली भारतीय छात्रो को सरकारी नौकरी मे आने से रोकते। साई दास ने इसे बहुत गभीरता से महसूस किया कि काशी के पडितो को लाड रिपन की गाडी खीचकर हिंदू धर्म का अपमान नही करना चाहिए था। उनके विचार मे हिन्दुओ की सावजनिक नतिकता का चरम बिंदु उनके धार्मिक तथा सामाजिक सुधारो और शैक्षिक मामला मे था, जिनका सरकार या अग्रेजा के साथ कोई सरोकार नही होना चाहिए था और उनसे धन, सलाह मशविरे या पथ प्रदशन के रूप मे कुछ नही लेना चाहिए या। हिंदुआ को, जो कुछ भी चाहिए, उन्हे अपने ही प्रयत्नो से प्राप्त करना चाहिए और उन्हें अपने आप मे आत्म निभरता की भावना अवश्य पैदा करनी चाहिए।"

इन यशस्वी व्यक्तिया का राष्ट्रवाद बुनियादी तौर पर "हिंदू राष्ट्रवाद" था। अभी उन दिना की याद बहुत ताजा थी, जब मुसलमान शासक हुआ करते थे और हिंदू उनकी प्रजा। आय समाज के इन नेताओ के दिला मे देशभक्ति की ज्योति हिंदू जाति की भ्रष्ट स्थिति को देखकर और भडकती थी।

अस्सी के दशक म साई दास ने आय समाज के लिए किसी अय व्यक्ति के मुकाबले अकेले बहुत अधिक काय किया। आप कह सकते हैं कि उनके धम मे तीन चौथाई राजनीति हिन्दू जाति के लिए थी और यदि यही धम था, तो उनकी राजनीति केवल धम था।

ये कुछ व्यक्ति थे, जिनके साथ युवा लाजपत का निकट सम्पर्क हुआ। उनकी त्रुटियां चाहे कुछ भी हों, वह एक गतिशील मण्डली थी, जिसने घटनाओं को रूप देने में सहयोग करने के लिए दृढ़ निश्चय किया हुआ था। यही तो संगति थी, जिसके लिए लाजपत राय की आत्मा लालायित थी। युवा लाजपत राय दृढ़, गंभीर तथा गतिशील कार्यकर्ता थे जिनकी समाज को जरूरत थी। इसी कारणवश उन्होंने आने वाले कई वर्षों में अपने को कार्य करने में जोड़ दिया और जब वह समाज से भी आगे बढ़ गए और उनका साथ छूट गया, तब उन्होंने न तो अपने दृष्टिकोण से समाज के प्रभाव को हटाया और न ही अपने कामकाज के ढंग से इसे दूर किया। अपने जीवन के बाद के वर्षों में उन्होंने सार्वजनिक गतिविधियों के लिए, जो भी क्षेत्र चुना, वह इस बात को भूल नहीं पाए कि उन्होंने प्रारम्भिक प्रशिक्षण आर्य समाज में प्राप्त किया है। आर्य समाज में उन्हें सबसे पहले सार्वजनिक वक्ता के रूप में, एक पत्रकार के रूप में, सामयिक विषयों पर छोटी छोटी पुस्तिकाओं के लेखक के रूप में, जीवन कथा के रचयिता के रूप में, उर्दू तथा अंग्रेजी लेखक के तौर पर प्रशिक्षण मिला। वहीं पर उन्होंने आन्दोलनों का नेतृत्व करने, बड़ी संस्थाओं का संगठन करने, उत्साही सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में अकाल पीड़ितों तथा भूकम्प पीड़ितों के लिए सहायता व्यवस्था की अगुवाई करने और यतीमों के लिए, जो "जीवन के तूफान के कारण परित्यक्त" थे, आश्रम स्थापित करके उन्हें योग्य नागरिक बनाने का कार्य करने की शिक्षा ली थी। आर्य समाज में ही उन्होंने लोगों के दिलों को जीतने वाली वह भाषण कला सीखी जिसे सुनकर उनके श्रोता महान उद्देश्यों तथा संस्थाओं के लिए अपनी जेबें खाली कर दें।

8. नगरेतर वकील के रूप मे हरियाणा के कस्बो मे

यह प्रशिक्षण बहुमूल्य तो था, परन्तु जीवन की समस्या हल करने मे इससे कोई विशेष सहायता नही मिली थी। उन्हें शिक्षा का लाभ देने के लिए उनके पिता ने बहुत बडा बलिदान किया था और सारे परिवार को काफी कष्ट झेलने पडे। 1881 मे उन्होंने मुखतार की योग्यता पूरी कर ली थी। अन्य बातो मे बहुत अधिक व्यस्त होने के कारण उन्होने आर्ट्स के विषयो मे विश्व विद्यालय की डिग्री परीक्षा पास नही की थी। इसी बीच वह विवाहित व्यक्ति बन गए। अब उनके लिए यह अनिवार्य था कि कुछ कमाई करे और अपने पिता को कुछ राहत दें, जिन्होंने बहुत मामूली आय पर एक बडे परिवार का पालन-पोषण किया था। पिता बेसब्री से उस दिन की प्रतीक्षा कर रहे थे, जब उन्हें राहत मिलेगी, जिसकी उन्हें बहुत आवश्यकता थी। बेटे के दिमाग पर लोगो की सेवा करने की धुन सवार थी, लाखो बेचारे और बेसहारा लोगो की सेवा करने की धुन, फिर भी वह अपने परिवार की कठिनाइयो की अनदेखी नही कर सकते थे और वह अपने पिता के कृतघ्न बनकर जीवन आरम्भ नही करना चाहते थे। वह उन दो विचारो के बीच की पराकाष्ठा मे जी रहे थे, जो उन्हें विपरीत दिशाओ मे खीच रहे थे।

उनका मन पुस्तको से उचट गया। "मेरी आत्मा बहुत ऊचा उडना चाहती थी, परन्तु मेरे माता-पिता की गरीबी तथा कठिनाइया मुझे निराश कर देती थी। बार-बार दड-विधान की कोई अन्य पुस्तक मेरे सामने खुली पडी होती और मै अपने विचारो मे अतीत की किसी सावजनिक सभा मे फिर किसी भाषण का कोई भाग पूरा कर रहा होता था।" उन्होंने अपना जीवन लोगो की सेवा के लिए समर्पित करने के बारे मे सोचा। उन्होने अपने आपको इसके लिए प्रशिक्षित करने का प्रयत्न किया और विश्वविद्यालय की परीक्षाओ के स्थान पर स्वय तैयार की गई परीक्षाओ मे पास होने की कोशिश की। परिस्थितिया उन्हें धरती पर गडे ठूठो के साथ बाधे रखती, जब कि उनकी आत्मा ऊचे, बहुत

ऊंचे उड़ना चाहती थी। इन परिस्थितियों में अन्तिम निर्णय उन्हीं के पक्ष में होता था। कमाई शुरू करने के लिए उन्हें मुख्तार के तौर पर कार्य आरम्भ करना ही पड़ा।

वह अपने छोटे कस्बे जगराव चले गये, ताकि वहां की अदालत में मुख्तार के तौर पर कार्य शुरू करें। परन्तु उन्हें वह कस्बा और व्यवसाय दोनों ही अच्छे नहीं लगे। यह स्थान उनके लिए बहुत छोटा था। वह बहुत तेजी से उससे आगे बढ़ गये। उस छोटे कस्बे में, बड़ी समस्याओं के बारे में सोचने वाला कोई न था, और न ही ऐसा कोई सम्पर्क था जिससे उनकी आत्मा को शांति मिले। इससे उन्हें घुटन सी महसूस होने लगी। उनकी आत्मा हतोत्साहित सा महसूस करने लगी। मुख्तार का काम तो और भी अधिक अरुचिकर लगा— जगराव से भी कहीं अधिक अरुचिकर, क्योंकि वह बहुत अपमानजनक था। उनकी आत्मा तो राजपूतों की वीर गाथाओं पर पली थी। क्या कोई राजपूत मामूली से अधिकारों वाले मामूली कर्मचारी की, जो गुस्ताख हो, जी हुजूरी कर सकता था? फिर भी, यदि उन्हें वहां सफलता प्राप्त करनी थी तो उन्हें राजपूतों वाली ये सारी बातें अपने दिमाग से निकाल देनी जरूरी थी।

वह जगराव से ऊब गये और स्थिति में थोड़ा बहुत सुधार करने के लिए वह रोहतक चले गये, जहां उन दिनों उनके पिता नियुक्त थे। रोहतक, जगराव के मुकाबले में बड़ी जगह थी और जी-हुजूरी से उनकी घृणा जिला मुख्यालय में शायद उतनी बड़ी बाधा न हो सकी, जितनी जगराव में थी।

उन्होंने मुख्तार के अपमानजनक काम को बहुत गंभीरता से महसूस किया और यह भी महसूस किया कि यदि वह वकालत के पेशे में ही कार्य करेंगे, तो अवश्य ही वकीलों की ऊंची श्रेणी में करेंगे। उन्होंने 1883 में यह परीक्षा पास करने का प्रयत्न किया था, परन्तु कई अन्य कार्यों में व्यस्तता के कारण सफल नहीं हो पाये। उनके पिता ने एक बार फिर कोशिश करने की प्रेरणा दी तथा उनकी अपनी संवेदनशील आत्मा ने भी, जो अपमानित महसूस कर रही थी, उन्हें पुनः उभारा। परन्तु, अब फिर वह अपना समय मुख्तार के कार्य, रोहतक आर्य समाज के लिए कार्य करने तथा परीक्षा के लिए तैयारी करने में बांटने लगे जिसका परिणाम यह हुआ कि इस बार फिर वह उन 55 छात्रों में शामिल थे, जो फेल हो गए थे, उन दस में नहीं जो पास हुए थे। यदि उन्हें

तीन अक और मिल जाते तो बात बन जाती। यह असफलता हतोत्साह करने वाली थी, परन्तु उनके पिता ने एक बार और कोशिश करने पर जोर दिया।

वह समाज के काम की उपेक्षा नही कर सकते थे। उस समय रोहतक की सामाजिक दशा बहुत ही खराब थी और वह उसमे कुछ जान डालना चाहते थे। इसके अलावा कई बार उन्हें सामाजिक काय, जैसे समिति की बैठको मे, भाग लेने तथा मुख्यालय से सलाह लेने के लिए लाहौर जाना पडता था। डी० ए० वी० कालिज की कल्पना 1883 मे की गई थी और वह उसके प्रारम्भिक कार्यों तथा नियोजन में सक्रिय रुचि ले रहे थे। रोहतक मे प्रस्तावित कालिज के लिए समथन प्राप्त करने मे, जो मुख्य तौर पर धन के रूप म होता था, वह व्यस्त रहते थे। उन्हें कानून के काम के मुकाबले कालिज के काम मे अधिक रुचि थी।

वह हसराज के उदाहरण का अनुकरण नही कर सके, इसलिए उन्हें अपने मित्र की बी० ए० की डिग्री से ईर्ष्या अवश्य हुई होगी और इस बात से भी कि उनके मित्र के एक बडे भाई थे, जिन्होने उनकी सहायता की थी। लाजपत राय को ऐसी किसी सहायता की आशा नही थी। उसके विपरीत उन्हें एक परिवार का पालन पोषण करना था। पहले ही वह मुखतार के रूप म प्रतिमाह दो सौ रुपये कमा रहे थे, यह कोई बहुत उदार आय नही थी, परन्तु उस आय के मुकाबले काफी अधिक थी, जो उन्होने अपने पिता के घर मे देखी थी। उनकी सवेदनशील आत्मा को मुखतार जैसे अपमानजनक काय के साथ समझौता करना ही पडा।

एक बार लाहौर की यात्रा के दौरान उन्होने निणय कर लिया कि वह मुखतार के काम पर वापस नही आएगे, चाहे इसके परिणाम कुछ भी हो। परन्तु यह निणय ले लेने के बाद भी उन्हें पता नही था कि उन्हे आगे क्या करना है। उनके मित्र, दाशनिक तथा पथ प्रदशक गुरुदत्त ने जब उनको इस आत्मिक यत्रणा की स्थिति म देखा, तो उन्होने इसका कारण पूछा। लाजपत राय ने अपने अतमन की बात उनके सामने रख दी। गुरुदत्त, उन्हें निश्चित रूप से कोई सलाह देने से पहले, यह जान लेना चाहते थे कि क्या इस तीसरी बार कानून की परीक्षा उन्हें अपना भाग्य अच्छा होने की आशा है? उन दोनो ने, जैसा कि उन दिनो ऐसी स्थिति मे परम्परा होती थी, एक क्लक को इनाम देकर परीक्षा परिणाम घोषित होने से पूव ही यह जान लेना चाहा कि उनका भाग्य इस बार कैसा है, और उन्हें यह जानकर बहुत प्रसन्नता हुई कि वकालत के योग्य होने के

लिए उनका तीसरा प्रयत्न बेकार नहीं गया। जब परिणाम प्रकाशित हुआ, तो लाजपत राय पास होने वाले छात्रों में दूसरे स्थान पर थे। गुरुदत्त ने उन्हें वकील के तौर पर काम करने के लिए रोहतक वापस भेज दिया और स्पष्ट शब्दों में उन्हें बता दिया कि हंसराज के अधीन सैकेंड मास्टर के रूप में काम करने के मुकाबले, वह वहां रहकर आंदोलन के लिए अधिक लाभदायक सिद्ध हो सकते हैं।

रोहतक में रहते हुए उन्होंने स्थानीय आर्य समाज के लिए कुछ काम किया और समाज तथा डी० ए० वी० कालिज की गतिविधियों में व्यापक रूप से भाग लिया। उन्होंने कभी-कभार समाचार-पत्रों के लिए भी लिखा। कभी-कभार उन्होंने अंग्रेजी में लिखा परन्तु अक्सर उर्दू में 'रफीक ए हिन्द' के लिए लिखा, जिसे उनके युवा मित्र मौलवी मुहर्रम अली चिश्ती चलाते थे।

उनमें देशभक्ति का आवेश था और अपने देशवासियों की सेवा करने की गंभीर इच्छा भी, परन्तु उस युवक में, जो अभी कच्चा ही था, देश की राजनीतिक समस्याओं के अध्ययन के रूप में विशेष कुछ नहीं था। वह किसी प्रकार की अशांति फैलाने वाला भी नहीं था। वह केवल विरोध के लिए ही सरकार का विरोध नहीं करता था। दरअसल, वह आर्य समाज की सभाओं में सरकार की प्रशंसा किया करते थे, जैसा कि उन दिनों आम रिवाज था। वह उस इस्लाम समर्थक झुकाव से भी पूर्णतया मुक्त हो गये थे, जो उनके पिता ने उन पर थोपा था और वह उस झुकाव से इस हद तक दूर चले गये थे कि मुस्लिम सत्ता के अत्याचार का अन्त करने के लिए किसी हद तक ब्रिटिश शासन को ही धन्यवाद देते थे। उनकी राजनीतिक विचारधारा तो अभी बन रही थी, परन्तु उन्होंने सार्वजनिक रूप से प्रकाशन के लिए लिखना आरम्भ कर दिया था। उन्होंने तथा उनके आर्य समाजी मित्रों ने महसूस किया कि आर्य समाज का अपना छापाखाना होना चाहिए। उन्होंने एक उर्दू पत्रिका निकालने के बारे में निर्णय किया जिसका नाम 'भारत देश सुधारक' था और एक अंग्रेजी पत्रिका, जिसका नाम (लाजपत राय के सुझाव पर) 'रिजेनरेटर आफ आर्यावर्त' रखा गया, गुरुदत्त और हंसराज को सौंपी गई। उर्दू पत्रिका की जिम्मेदारी लाजपत राय को दी जानी थी, परन्तु मुख्यालय से दूर रहने के कारण वह यह कार्य न कर सके। वह कभी-कभार 'रफीक ए हिन्द' या किसी अन्य पत्रिका के लिए लिखते रहे।

वकालत के पेशे मे प्रगति पर उनके असतुष्ट होने का कोई कारण दिखाई नही देता था, परन्तु ऐसा दिखाई पडता है कि वह रोहतक मे अपना स्थान नही बना सके थे। कुल मिलाकर रोहतक के दिन खास महत्वपूर्ण नही थे, क्योकि यह केवल विकास काल था। उन्होने स्वय लिखा है कि 1883 85 के काल मे उनकी आत्मा भूखी मरी थी। 1884 मे वह रोहतक पहुचे थे । 1885 मे उन्होने वकील की योग्यता प्राप्त कर ली थी। 1886 मे उन्होने पडास के जिले हिसार मे एक महत्वपूर्ण मुकदमा अपने हाथ मे लिया। वह जगह उनके मन को अच्छी लगी, इसलिए वह वहीं रुक गए। उन्होंने पहली बार महसूस किया कि उनके पाव जम रहे है। वह हिसार मे लगभग छ वष रहे। इन वर्षों ने उनकी मानसिक परिपक्वता मे काफी योगदान दिया और इस अवधि के दौरान ही समाज मे उनके काय को बल मिला। और लगभग इसी समय राजनीति मे उनका सूत्रपात हुआ।

रोहतक मे आय समाज की स्थापना उनके आने से पहले हो चुकी थी। परन्तु वह अधिक विकसित नही हो पाई थी। हिसार मे उन्हें मैदान तैयार करने और बीज डालने के लिए अपने मित्रा की सहायता लेनी पडी थी, परन्तु यहा भूमि अधिक अनुकूल थी, इसलिए नया पौधा बडी तजी से पनपने लगा और हिसार का आय समाज शीघ्र ही प्रात के उन केन्द्रा मे गिना जाने लगा, दरअसल जो बहुत सक्रिय थे।

अपनी आत्मकथा मे लाजपत राय ने इस सफलता का कारण बताते हुए लिखा है कि दरअसल हिसार आय समाज को चरित्र बलवाले नेताओ की एक मण्डली का सहयोग मिला था। इन नेताओ के रेखाचित्र उन्होंने बडी कोमल भावनाओ के साथ अकित किए हैं। इन नेताओ मे उन्हें कुछ ऐसे व्यक्ति मिल गए जो जीवन मे उनके परम प्रिय मित्र बने। उदाहरण के तौर पर लाला चदू लाल थे—हरियाणा के सरदार। उनका उग्रवादी राजनीति से सबध नही था। परन्तु मित्रा को उनसे अधिक वफादार साथी मिलना कठिन था। यहा तक कि जब लाजपत राय को उग्रवादी समझते हुए निर्वासित कर दिया गया था, तो चदू लाल उन चन्द मित्रो मे से थे, जिन्होने लाजपत राय का साथ दिया। उनके निकट मित्रो ने, जो उनके राजनीतिक विचारो तथा उद्देश्यो से सहमत थे, उनका साथ छोड दिया था। परन्तु चदू लाल ने खुले आम उनका साथ दिया, जसे कुछ हुआ ही न हो। अक्सर उन्हें अफसरो से सहयोग प्राप्त करने का अवसर मिला

परन्तु उन्होंने लाजपत राय का साथ छोड़कर उन्हें खुश करने का प्रयत्न कभी नहीं किया और न ही उनके साथ अपनी मित्रता को छुपाने की कोशिश की। वह खुले आम कहते थे कि वह लाजपत राय के मित्र हैं और उन्हें लाजपत राय में पूर्ण विश्वास है। वह लाजपत राय को माण्डले में चिट्ठियां लिखा करते थे और उन निर्वासित मित्र के कहने के अनुसार व्यक्तिगत तथा पारिवारिक काम किया करते थे। हिसार के अपने जिन मित्रों की लाजपत राय ने अपनी आत्मकथा में चर्चा की है, उनमें से इस वफादार मित्र का उल्लेख अति कोमल शब्दों में किया गया है।

हिसार के इन नेताओं ने आर्य समाज को जोरदार तर्कसंगत बातें करने वाले कुछ बुद्धिजीवियों के मंच के बदले आम जनता का आन्दोलन बना दिया। इसी स्थान पर ही वह सही अर्थों में अपनी माटी से सम्पर्क बनाए रख सके। अन्य स्थानों पर तो समाज में केवल बाबू लोग शामिल थे, परन्तु इस जगह इसमें किसान भी शामिल थे। हिसार में चन्दू लाल, लाजपत राय और लखपत राय ने आर्य समाज को बहुत शक्तिशाली बना दिया। इस अनुभव को आर्य समाज के इतिहास में अद्वितीय माना जाना चाहिए।

हिसार में वह शीघ्र ही केवल सफल वकील ही नहीं बल्कि कई प्रकार से एक प्रमुख व्यक्ति बन गये, विशेषकर अपने अतिथि प्रेम के लिए तथा विभिन्न प्रकार के विषयों के धड़ल्लेदार पाठक के रूप में भी। इस युवक का, जिसे डिग्री प्राप्त किए बिना ही गवर्नमेंट कालिज छोड़ना पड़ा था, अपने आप शिक्षा प्राप्त करने का कार्य पूरी गंभीरता से आरम्भ हो गया था। जल्दी ही उनके पास महत्वपूर्ण पुस्तकों का व्यक्तिगत संग्रह बन गया, जिसका ऐसे स्थान पर इतना महत्व था कि कई बार जिले के अंग्रेज मुख्याधिकारी भी उनके पास आते थे। वह इस नये स्थान के एक माननीय नागरिक बन गए। यहां के स्थानीय लोगों ने उन्हें नगरपालिका का सदस्य निर्वाचित कर दिया, यद्यपि इस निर्वाचन क्षेत्र में मुसलमान मतदाताओं की संख्या अधिक थी। इस नगरपालिका की उन्होंने कुछ समय के लिए अवैतनिक सचिव के रूप में भी सेवा की। हिसार के दिन उनके लिए केवल आर्य समाज के कार्य के लिए ही महत्वपूर्ण नहीं थे, बल्कि नागरिक तथा राजनीतिक प्रशिक्षण के विकास काल के रूप में भी इनका महत्व था।

9 छोटे जीनियस

हिसार-काल के दिन वही थे, जिन दिनो इडियन नेशनल काग्रेस का पहला अधिवेशन दिसबर 1885 मे डब्ल्यू० सी० बनर्जी की अध्यक्षता मे बम्बई म हुआ। तीक्ष्ण-दृष्टि वाले तथा चतुर आयसमाजी मूलराज ने इस आन्दोलन को सदेहजनक घोपित कर दिया था। परन्तु लाजपत राय पहले से ही इस भावापूण व्यवहार को नही अपना रहे थे। 1888 में काग्रेस की ओर से अली मुहम्मद भीमजी को पजाब की याता करने के लिए नियुक्त किया गया। हिसार के इस युवा वकील म उन्हें अपने नगर मे आने का निमत्रण दिया और उनके लिए एक सावजनिक सभा का आयोजन किया। काग्रेस के साथ उनका यह पहला सम्पक था। उस समय काग्रेस को बने केवल तीन वप हुए थे।

जब ह्यूम ने काग्रेस की स्थापना की, सर सयद अहमद खा ने मुसलमान सम्प्रदाय के नाम पर इसका विरोध किया। अलीगढ के नता ने अपने सह-धर्मिया को सलाह दी कि वे इस नये आदोलन से अलग रहें। वह चाहते थे कि मुसलमान देश के हाकिमा का समथन करके अपने हितो को बढावा दें।

लाजपत राय सैयद से प्रेरित शिक्षाआ से, जो उनके पिता ने उन्हें दी थी, पहले ही दूर हट चुके थे। जब उन्होंने सर सैयद को इस नए और गैर-देशभक्त रूप म देखा, तो अलीगढ़ के नेता के प्रति उनका सम्मान और कम हो गया। उन्होंने समाचारपत्नो मे सर सैयद के नाम कई "खुले पत्न" लिखे, जिनम बताया गया था कि किस प्रकार सर सैयद उन बातो से पीछे हट रहे है, जिनका उन्होंने पहले स्वय प्रचार किया था। इन पत्नो म उन्होंने सर सैयद द्वारा (उर्दू मे) पूवलिखित कथनो का अग्रेजी अनुवाद मे विस्तारपूवक हवाला दिया, जिनसे यह स्पष्ट होता था कि किस प्रकार पहले वह अपने नये उपदेश के विपरीत प्रचार करते रहे थे। "खुले पत्न" एक प्रशसक की ओर से हिसार से प्रकाशित हुए, और हिसार उन दिनो ऐसे व्यक्तियो के अधिक होने का दावा नही कर सकता था, जो ऐसे विवादपूण लेख लिखने के प्रयत्न की अभिलापा कर सकें। जो लोग लाजपत राय को जानते थे, उन्हें यह अनुमान लगाने मे कोई कठिनाई नही हुई

कि "खुले पत्र" लिखने वाला कौन था। अपना परिचय गुप्त रखने का उनके लिए कोई विशेष कारण नहीं था, परन्तु अभी वह नेता नहीं बने थे और शालीनता से विवश होकर उन्होंने अपना नाम गुप्त ही रखा।

उर्दू में ये पत्र, साप्ताहिक 'कोहिनूर' में मुंशी राधाकिशन के नाम से प्रकाशित हुए। इन पत्रों में से, जो अंग्रेजी में प्रकाशित हुए, पहला पत्र 27 अक्तूबर 1888 को हिसार के हवाले से छपा और उसके नीचे लिखा हुआ था— "आपके एक पुराने अनुयायी का पुत्र।" जब सर सैयद ने कांग्रेस के विरुद्ध अभियान आरंभ किया, तो उस समय उन्होंने यह नहीं सोचा था कि एक ऐसा व्यक्ति, जो पुस्तकों तथा पत्रिकाओं में प्रकाशित उनकी रचनाएं बड़े ध्यान से और पूरी तरह पढ़ता रहा है, उन्हीं की रचनाएं उनके मुंह पर दे मारेगा। लोगों की स्मृति अल्प होने के अतिरिक्त, सर सैयद को यह लाभ भी था कि उनकी रचनाएं अधिकतर उर्दू में थीं, इसलिए वैडबर्न, ह्यूम, ह्यूम और बंगाल, बम्बई तथा मद्रास के कांग्रेस नेताओं को, जो इस संगठन के प्रमुख सलाहकार थे, इन रचनाओं के अस्तित्व के बारे में जानकारी नहीं हो सकती थी। "खुले पत्रों" के लेखक ने आरंभ में ही सर सैयद को चेतावनी दे दी थी कि वह उनकी रचनाओं का "निरंतर पाठक तथा प्रशंसक" रहा है।

"बचपन से ही मुझे अलीगढ़ के श्वेत दाढ़ी वाले सैयद की राय का सम्मान करना सिखाया गया। मेरे स्नेहशील पिता ने, जो आपको उन्नीसवीं शताब्दी के पैगम्बर से कम नहीं मानते थे, आपका 'सोशल रिफार्मर' निरंतर मुझे पढ़ कर सुनाया। अलीगढ़ इंस्टिट्यूट गजट में आपके लेखों तथा परिषद और अन्य सार्वजनिक स्थानों पर आपके भाषणों का मैं निरंतर अध्ययन करता रहा हूं, और मेरे आदरणीय पिता ने उन्हें पवित्र अमानत के रूप में संभालकर रखा।"

लेखक ने सर सैयद को उन दिनों का स्मरण कराया, जब उन्होंने जान स्टुअर्ट मिल की रचना 'आन लिबर्टी' की प्रशंसा की थी और जब बैंथम की 'यूटिलिटी' का उनके कहने पर 'रिफार्मर' के लिए अनुवाद किया गया था। सबसे प्रभावकारी उद्धरण सर सैयद की लिखित 'काजिज आफ इंडियन रिवोल्ट' से था। यह पुस्तक 'विद्रोह' के बाद एक वर्ष के अंदर लिखी गयी थी और ब्रिटिश पार्लियामेंट के सदस्यों की जानकारी के लिए इसका अंग्रेजी रूप उन्हें परिपत्र के रूप में भेजा गया था। इस पुस्तक में सर सैयद ने प्रतिनिधि सरकार के सिद्धांतों की वकालत की थी।

सर सैयद ने कहा था, "मेरा विश्वास है कि अधिकतर व्यक्ति इस विचार से सहमत हैं कि यह सरकार के कल्याण तथा प्रगति के लिए बहुत ही सहायक है, दरअसल इसकी स्थिरता के लिए यह आवश्यक है कि सरकार के सलाहकारो म जनता के प्रतिनिधि हो। जनता के इन प्रतिनिधियो से सरकार को जानकारी हो सकती है कि क्या उनकी योजनाए लोगो को पसद हैं ? इससे पहले कि खतरे पैदा हो और हमारा विनाश कर दें। हम लोगो की यह आवाज ही त्रुटियो को पहले से दूर करने मे सहायता देगी। परन्तु यह आवाज कभी भी नही सुनी जा सकती, और न ही सुरक्षा कभी प्राप्त की जा सकती है, जब तक लोगो को सरकार के सलाह-मशविरे मे भागीदार नही बनाया जाता है।"

सर सैयद न अपनी पुस्तक मे इस बात की व्याख्या की थी कि प्रतिनिधित्व देने के सिद्धात को स्वीकार कर लेने से सत्तावन के "विद्रोह" जैसी महाविपत्ति का भला कैसे टाला जा सकता था।

"यदि हिंदुस्तानी विधान परिषदो मे होते और अपने देशवासियो को सारी बातें समझा देते, तो जो सकट आए, वे टल जाते।"

सर सैयद की इस पुस्तक का अग्रेजी मे अनुवाद सर आकलैंड काल्विन (जो "खुले पत्रो" के प्रकाशन के समय उत्तर-पश्चिम प्रात के गवनर थे) और लेफ्टीनेंट कर्नल ग्रहम ने किया था, जो सरकारी तौर पर सैयद के जीवनीकार थे। इन दोनो महानुभावो को सर सैयद द्वारा किसी रूप मे प्रतिनिधि सरकार पर जोर दिए जाने म, किसी प्रकार "राजद्रोह" वाली बात दिखाई नही दी थी, जिस दोष के लिए सर सैयद इडियन नेशनल काग्रेस पर दोषारोपण कर रहे थे कि वह राजद्रोह का प्रचार करने वालो का सगठन है। स्वराज व स्वशासन को काग्रेस ने अभी अपना लक्ष्य घोषित नही किया था, अभी तो वह विनम्र आवाज मे ही बात कर रही थी—सबसे बडी माग यह की थी कि प्रतिनिधित्व के सिद्धात को स्वीकार किया जाए और प्रातीय गवर्नरो की विधान परिषदो मे कुछ निर्वाचित लोग शामिल किए जाए।

सच है कि कुछ "मूल निवासियो" को सरक्षण के तौर पर पापद नामजद कर दिया गया था। परतु एक "खुले पत्र" मे पूछा गया था कि 'क्या 'राजा शिव प्रसाद और आप जैसे लोगो को जनता का उचित प्रतिनिधि कहा जा सकता है और जिस चुनाव पद्धति से आपको परिषद सदन मे भेजा गया है क्या उसका

कोई मूल्य है ? मेरे विचार मे कोई भी व्यक्ति नही कहगा कि यदि राजा शिव प्रसाद भारत के लोगो के निर्वाचित प्रतिनिधि होते, तो उनके लिए भारत राष्ट्र का उस प्रकार अपमान करना सभव होता, जिस प्रकार उन्होने इलबर्ट बिल पर अपने कुख्यात भाषण म किया था । क्या राजा प्यारे मोहन मुखर्जी तथा अन्य स्वदेशी सदस्य नमक कर बढाए जाने की सहमति देते, यदि उन्होने यह सोचा होता कि उनकी गद्दिया उन लोगो की आवाज पर निभर करती हैं, जिनके गले, यदि कहा जाए, इस अप्रिय तथा अमानवीय कारवाई से काटे गए थे ?"

युवा आलोचक सर सैयद की तीस वष पुरानी रचनाओ मे से उद्धरण देने से ही सतुष्ट नही थे, उन्होने हाल ही मे लिखे गए लेखो मे से उद्धरण देकर भी यह सिद्ध किया कि केवल सात वष पूव तक सर सैयद भी उसी शैली में लिखते रहे थे । 1881 मे जब लाहौर के गवनमेट कालिज का स्तर बढाकर उसे विश्व-विद्यालय बनाने का प्रश्न उठा, सर सैयद ने लिखा था

'चापलूसी के तौर पर चाहे कुछ भी कहा जाए, परन्तु हकीकत यह है कि असल मे हिदुस्तानियो तथा उनके हाकिमो के बीच स्वामी और दास के सबधो से अच्छे सबध नही हैं ।"

प्रतिनिधि सरकार के प्रश्न पर सबसे उपयुक्त उद्धरण सर सैयद अहमद के उस भाषण से लिया गया था जो उन्होने न्यू गाजीपुर कालिज का (बाद म जो विक्टोरिया कालिज बना) शिलान्यास करते हुए दिया था। उन्होने कहा था

"उच्चतम परिषद मे स्वदेशियो की नियुक्ति भारतीय इतिहास म स्मरणीय घटना थी । मुझे विश्वास है कि वह दिन अधिक दूर नही और जब वह दिन आएगा, आप मेरे शब्दो को याद करेंगे, जब यह परिषद प्रत्येक डिवीजन तथा जिले से लिए गए प्रतिनिधियो से बनाई जाएगी और इस प्रकार जो कानून यह परिषद पास करेगी, वे ऐसे कानून होगे जो सारे देश की भावना से बनाए जाएगे ।"

यह उद्धरण देते हुए "खुले पत्र" म कहा गया था, "सर सैयद, आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि जिस दिन की आपने 1864 से चर्चा की थी, वह दिन निकट आता जा रहा है और आपको इस बात से शर्मिन्दगी

महसूस करने की आवश्यक्ता नही कि आपके देशवासी नये युग के अनुकूल व्यवहार नहीं कर रहे। आपकी भविष्यवाणी अभी पूरी नही हुई, परन्तु हमे विश्वास है कि कभी न कभी यह अवश्य पूरी होगी और तब आपको यह महसूस करके सतोप होगा कि आपकी भविष्यवाणी व्यय नही गई। सर सैयद क्या आप अपनी यह भविष्यवाणी वापस लेना चाहेंगे ?"

सर सैयद ने इलाहाबाद के मा यवर पडित अयोध्या नाथ के लखनऊ के भापण की आलोचना की थी और काग्रेसियो से पूछा था कि क्या उस समय उनके किसी आ दोलन का अस्तित्व था, जब सरकार ने "वरदान दिए थे, जिनका हम आन द ले रहे हैं।" आगे से तुरत उत्तर मिला

"मैंने अधिकतर उद्धरण आपके लेखो मे से ही दिए है, यह बताने के लिए कि उस समय ऐसे आ दोलन का अस्तित्व था और सबसे प्रमुख आ दोलनकारी स्वय आप थे।" तब सर सैयद ने लिखा था

"मुझे डर है आपके मन मे भय का अहसास है—इस भय का कि यदि आपने कोई कारवाई आरम्भ की, तो सरकार या जिला अधिकारी आपको फूट डालने वाला तथा असतुष्ट मानेंगे—और इसके कारण ही आप देश की भलाई के लिए आगे बढने से हिचकिचाते ह। मुझ पर विश्वास कीजिए यह नतिक कायरता गलत है, यह आशका निर्मूल है कि भारत मे इतना उदार हृदयी कोई अग्रेज नही है, जो इस बात को प्रसन्नता तथा आशा की भावना के बिना किसी और रूप मे लेगा कि देशवासियो म सभ्यता का बढना एक स्वस्थ सकेत है। • भारत के लिए यह बहुत ही अच्छी बात होगी यदि भारतवासी खुले तौर पर तथा ईमानदारी से सरकार के कार्यों के न्यायपूण तथा इसके विपरीत होने के बारे मे अपनी बात कहें।"

ऐसा दिखाई पडता था कि अब काग्रेस के आलोचक के रूप म सर सैयद ने वे सभी बातें त्याग दी, जिनका वह पहले समर्थन करते थे।

बहुत समय पहले की बात नही कि अलीगढ के इस बुजुग को उदार-हृदयी तथा एकता का सुसमाचारी माना जाता था और अब वह शोर मचा रहे थे कि हिदुओ तथा मुसलमानो के हितो मे टकराव है और मुसलमानो को काग्रेस से दूर रहना चाहिए। यह सर सैयद ही थे, जिन्होंने राष्ट्रीय एकता का वह उत्कृष्ट चित्र पेश किया था, जिसम हिदुओ तथा मुसलमानो की भारत माता की

दो आखो से तुलना की गई थी। क्या दाहिनी आख बायी आख से झगडा कर सकती है? उनके युवा आलोचक को, जो पहले उनके प्रशसक रहे थे, उनके भाषणो से ऐसे अश ढूढने मे कोई कठिनाई नही हुई थी, जिनमे उन्होने हिदुओ और मुसलमानो के हित एक होने का प्रचार किया था और जिनसे सर सैयद का नया प्रचार बिल्कुल भिन्न था। और ये पुराने भाषण किसी भी तरह से इतिहास जितने प्राचीन नही हुए थे। अपनी पजाब की यात्रा के दौरान, जो अस्सी के दशक मे हुई थी और जो उन दिनो पजाब की एक प्रमुख घटना थी, सर सयद ने सबसे अधिक बल भारत की राष्ट्रीय एकता पर दिया था और कहा था कि हिंदू, मुसलमान तथा ईसाई समान हैं। गुरदासपुर मे उन्होने कहा था

"प्राचीन काल से 'कौम' शब्द एक ही देश के निवासियो के लिए इस्तेमाल होता आया है, यद्यपि उनमे कुछ भिन्न विशेषताए हैं। जो उनकी खासियत हैं। यह याद रखना होगा कि हिंदू तथा मुस्लिम शब्द पृथक्ता को व्यक्त करने के लिए है—वैसे सभी लोग, हिंदू, मुसलमान और ईसाई, जो इस देश मे रहते हैं, सभी प्रकार से एक ही कौम के अग है। उन सभी को राष्ट्र की भलाई के लिए एक हो जाना चाहिए, विशेषकर उस देश के लिए, जो सभी के लिए समान है।"

और जब ऐसे सार्वजनिक राष्ट्रीय मच की स्थापना का काय वास्तविक रूप मे होने लगा था, तो तुरत ही वह दूसरे सिरे पर पहुच गए थे और उन्होने हितो के टकराव का उपदेश देना शुरू कर दिया था। गुरदासपुर का यह भाषण जनवरी 1884 मे दिया गया था, केवल एक वष के अदर ही ऐसा दिखाई पडता था कि सर सैयद मे यह बुरा परिवर्तन हो गया था।

3 फरवरी 1884 को लाहौर मे दिया गया उनका भाषण उनके गुरदासपुर भाषण से भी अधिक जोरदार था। लाहौर की इडियन एसोसिएशन द्वारा पेश किए गए अभिनन्दन के उत्तर मे सर सैयद ने कहा था

"यदि यह बात स्वीकार कर ली जाए कि एसोसिएशन मे अधिकतर सदस्य हिंदू हैं तो भी मैं कहता हू कि यह प्रकाश भी उसी से विस्तृत हुआ है जिसे मैं 'बगाली' का उपनाम देता हू। मैं आपको विश्वास दिलाता हू कि हमारे देश मे बगाली ही ऐसे लोग हैं, जिन पर हम उचित तौर पर गव कर सकते हैं और

केवल इन्हीं लोगा के कारण ही हमारे देश म ज्ञान, स्वतत्रता और देशभक्ति प्रोत्साहित हुई है । इसलिए मैं कह सकता हू कि वे हिंदुस्तान के सभी समुदाया के सिर तथा ताज हैं मैं स्वय भी अपने देश तथा कौम की वफादारी से सेवा करना चाहता हू । "कौम" शब्द म मैंने हिंदुओ और मुसलमाना, दोना को शामिल किया है, क्याकि केवल यही एक अथ है जो मैं इसे द सकता हू (राष्ट्र या कौम) । हम एक ही दश मे रहते हैं, एक ही सरकार के नियमा से हम पर शासन होता है, सभी के लिए लाभ के स्रोत वही हैं और अकाल के कारण पीडा भी हम सबको समान रूप से होती है । इन्ही विभिन्न कारणो से मैं इन दोनो जातियो को एक शब्द देता हू, वह है "हिन्दू", जिसका अर्थ है कि वे हिंदुस्तान के निवासी है । विधान परिषद मे मैं सदा ही "इस राष्ट्र" की प्रगति के बारे मे चितातुर रहा हू ।"

उस समय काग्रेस न कोई ऐसी माग नही की थी और न ही किसी ऐसे सिद्धात या नीति का समथन किया था, जिसका सर सैयद न कभी न कभी समथन न किया हो । परन्तु जब राष्ट्रीय काग्रेस की स्थापना हो गई, तो ऐसा दिखाई पडता है कि उन्होने अपने सिद्धात तथा नीतिया, सभी तबदील कर लिए हो ।

सकीण विचारा वाले लोग काग्रेस को "राजद्रोही" कहकर उसकी निदा कर रहे थे, क्योकि उसने भारतीय स्वयसेवक बनाने का सुझाव देने का साहस किया था । जब माच 1883 म (काग्रेस के विधिवत सगठन से कुछ ही समय पूव) ह्यूम ने भारत मे "स्वदशी स्वय सेवक" बनाने के उद्देश्य का समथन किया था और लेफ्टीनेंट कनल ग्राहम (सर सैयद की जीवनी के लेखक) ने 'पायनियर' अखबार मे उनकी दलीला का खण्डन करने की कोशिश की थी। सर सैयद ने लेफ्टीनेंट कनल ग्राहम की ओर से नही, बल्कि ए० ओ० ह्यूम की ओर से दण्ड झेला । उन्होंने लेफ्टीनेंट कनल ग्राहम को लिखा

"मैंने श्री ह्यूम को लिखे आपके पत्र को ध्यान से पढा है, जिसमे भारत के देशीय स्वय सेवको की हिमायत की गई है । भारतीया को स्वयसेवक बनाने की इजाजत न देकर सरकार यह जताना चाहती है कि उसे भारत के लोगो मे विश्वास नही है । इसके परिणामो का अनुमान इस कथन से लगाया जाना चाहिए, "अगर हमसे विश्वास की अपेक्षा करते हो, तो तुम्हें

भी हम पर विश्वास होना चाहिए।" अभी यूरोपीय तथा भारतीयों के बीच बहुत बडा अंतर है और जब तक इसे दूर नही किया जाता, देश मे समृद्धि लाना असम्भव है।"

उपरोक्त विचारों के कारण वे सर सैयद के प्रशसक से आलोचक बने। उन्होने सर सैयद को यह भी याद दिलाया कि जिस पत्र के अंश वे उद्धृत कर रहे हैं, वह चार वर्ष पहले लेफ्टीनेंट कर्नल ग्राहम द्वारा लिखा गया था। "अब भारत के 11 बडे शहरो मे स्थानीय अधिकारी कुछ देशीय स्वयसेवको का चयन करेंगे, जो अच्छे और प्रमाणित राजभक्ति वाले परिवारो के होंगे। उन्हें यूरोपीय स्वयसेवकों के समान अधिकारी के अधीन रखा जाएगा। मैं उन्हें अपनी कम्पनी के अधिकारी चुनने की छूट दूगा। सिलसिला चल निकलने पर मैं रिक्त स्थानों के अनुरूप उन्हें खुद आदमी नियुक्त करने की अनुमति भी दे दूगा। हमें इतना ही अधिकार दें दें और हम आगे लम्बे समय तक और कुछ नही चाहेंगे।"

कांग्रेस की स्थापना से पहले के और कांग्रेस बन जाने के बाद के दिनो के सर सैयद मे आये इस अन्तर से आलोचक को 'टेल आफ टू सिटीज' उपन्यास के प्रारम्भिक अश की याद हो आई और अपना तीसरा पत्र उन्होने इस तरह शुरू किया

"क्या हम यह कहें कि यह सबसे अच्छा समय भी है और सबसे बुरा समय भी। सबसे अच्छा समय इसलिए कि देश मे एक राष्ट्र का उदय हो रहा है, और सबसे बुरा समय इसलिए कि समाज का एक विशेष वर्ग इसमे रोडे अटकाना चाहता है और उसका नेता या कम-से-कम जिसे नेता माना जाता है दुर्भाग्य से वह व्यक्ति है, जो भारत मे प्रतिनिधि सरकार का जोरदार हिमायती रहा है।'

पत्र मे इस विरोधाभास का बराबर उल्लेख होता रहा और उस 'बुद्धिमत्ता की उम्र', मूर्खता' 'विश्वास का महाकाव्य', 'अविश्वसनीयता', 'आशा का बसत और 'निराशा की सर्दी तथा 'हम भारत मे पुत्रों को ही जीवन भारत के हित को ठेस पहुचाते हुए देख रहे हैं आदि कथनो म व्यक्त किया गया।

आलोचक ने सर सैयद का झकझोरा कि उन्हें इस बात पर खुश होना चाहिए कि उनके देशवासिया मे जाग्रति आ रही है और उनके स्वप्न, भविष्यवाणिया सही सिद्ध हो रही है तथा लाग किसी भी विराध, चाहे वह खुद सर सैयद की तरफ से भी क्यो न हा, मे आगे न झुकन का निश्चय कर चुके है।

"खुले पत्र" केवल सर सैयद के लेखो तथा भाषणा से लिए गए उद्धरणा के सकलन मात्र नही थे। उनके साथ जो टिप्पणिया दी गई थी, वे बडी तीखी, व्यग्यात्मक, आलाचनापूण तथा कटाक्षा से युक्त थी। पत्रा की शली कुछ जगह बहुत ही कटु और अपरिमार्जित थी और युवा लेखक ने बहुत निष्ठुरता का परिचय दिया। कही-कही उनकी सफेद दाढी का भी लिहाज न करते हुए उनकी जो धज्जिया उडाई गई हैं, उससे पाठकों को कुछ रज हो सकता है और गुस्ताखी लग सकती है, क्योकि भारत मे सफेद दाढी का सम्मान किया जाता है।

अलीगढ के इस वयोवृद्ध नेता के रवैये मे यह विराधाभास क्या था, यह समझना एक समस्या थी। पहले पत्र के अत मे लेखक ने "कुछ लोगो" के इन अपमानजनक कथना का उल्लेख किया कि "जिन बाता को मैंने उधृत किया है, वे एक ईमानदार और सदचरित्र व्यक्ति ने उस समय लिखी थी, जब लेखक का केवल सिफारिश के बल पर विधान परिषद् का सदस्य बनने की कोई सभावना दिखाई नही दे रही थी।" उन्होने इन अपमानजनक टिप्पणिया को गलत बताया। दूसरे पत्र मे फिर "ऊपर दिए गए उद्धरणो के प्रकाश मे" सगति का दावा करने के सभावित प्रयास को "बचकाना" बताते हुए सर सैयद के पतन की तुलना आदम के पतन से की गई।

"जिस प्रकार हमारी नस्ल के आदि प्रश्न आदम का पतन शतान के कारण हुआ था, उसी प्रकार सासारिक सम्माना का प्राप्त करने की आपकी कामना आपके पतन के वास्तविक कारणो का जाहिर करती है।" हठी लेखक के तीखे बाण आगे भी चलते रहते हैं। "आपका इसस कोई फक नही पडने वाला, क्योकि इस दुनिया म आपके दिन अब गिनती के रह गए है। परन्तु हमारे लिए जिन्हें अभी लम्बे समय तक जीवित रहन की आशा और स्वतन्त्रता की रक्तहीन लडाई लडने की इच्छा है, यह बहुत शम की बात है।"

अतिम पत्र के फुटनोट मे एक अलग तरह की अपमानजनक टिप्पणी की गई। "ऐसा कैसे हो गया कि आपकी पुरुषोचित बलवती बुद्धि कन्या सरीखी

नजाकत में बदल गई, जो दिल कभी भारत के लिए धड़कता था, अब उसकी धड़कन रुक गई है और आप आधुनिक विवियन के मायावी जाल में फंसे निढाल से पड़े हैं।"

इन पत्रों में कहीं-कहीं प्रौढ़ता भी विद्यमान थी, किन्तु कुल मिलाकर वे उस मुफस्सिल वकील की विश्वसनीय अभिव्यक्ति के प्रमाण थे, जो अभी युवावस्था में थे।"

यह उनके राजनीतिक जीवन का पहला बड़ा करिश्मा था। उनकी शुरुआत काफी आशाजनक रही। जिस राजनीति की दलदल में सफलतापूर्वक चलना हो उसे विवादास्पद स्थिति में अपने प्रतिद्वंद्वी से निपटने की समझ होनी ही चाहिए। शत्रु की कमजोरियों का पता होने के साथ-साथ उसे धराशायी करने लिए तीखे दांत और तेज पंजे होना भी आवश्यक है।

पच्चीस वर्ष से कम आयु में ही लाजपत राय में राजनीतिक सूझबूझ मौजूद थी, क्योंकि बाद की घटनाओं ने पूरी तरह सिद्ध कर दिया कि "हिंदू और मुस्लिम-दो अलग राष्ट्र के रूप में सर सैयद के नये प्रचार के सम्बन्ध में उनकी आशंकाएं सही थीं। उस समय जो बीज बोए गए थे, वे जिन्ना में जिन्ना में अंकुरित हुए। परन्तु इस तीखे आक्रमण के बावजूद लाजपत राय ने सर सैयद के अच्छे गुणों की अनदेखी नहीं की। वे उन्हें उर्दू गद्य का विकास करने वालों में प्रमुख स्थान देते थे। और अंत तक सर सैयद की अपने धर्म के अनुयायियों को दी गई इस सलाह की कद्र करते रहे कि वे विश्व-स्तर के इस्लामवाद के बहकावे में न आएं और अपनी समस्याएं हल करने के लिए दूसरे इस्लामी देशों की ओर न देखें, परन्तु मुसलमानों को राष्ट्रीय जागरण से दूर रखना और ब्रिटिश शासकों की कृपा से अलग राष्ट्र का राग आलापना बहुत गलत और विनाशकारी था। सर सैयद के काम कितने ही गलत और अनुचित क्यों न हों, उनका अपना कोई स्वार्थ नहीं था। अतः लाजपत राय ने हमेशा स्वीकार किया कि सर सैयद ऊंचे विचार और अच्छे चरित्र वाले व्यक्ति थे, जो निःस्वार्थ भाव से अपने लोगों की सेवा करना चाहते थे।"

10. मैजिनी—उनके पहले गुरु

इन "खुले पत्रों" ने काफी हलचल मचा दी। ह्यूम को, जो घबराहट महसूस कर रहे थे, इन पत्रों से काफी सहायता मिली। उनके लेखक को सुझाव दिया गया कि वह इन पत्रों को इकट्ठा करके एक पुस्तिका के रूप में प्रकाशित करे। वह तुरंत सहमत हो गये। कहीं-कहीं वाक्यों में सुधार किया गया।

यह पुस्तिका, जिसमें उस महान मुस्लिम नेता का असली रूप दिखाया गया था और वह भी उसके अपने कथन प्रभावशाली ढंग से उसके सामने लाकर, कांग्रेस अधिवेशन की पूर्व सन्ध्या को जारी की गई और इसने रातों-रात ही लाजपत राय को अपने राजनीतिक विचारों के कारण देश भर में प्रसिद्ध कर दिया।

सर सैयद के नाम का अन्तिम पत्र इलाहाबाद में कांग्रेस अधिवेशन से कुछ ही दिन पूर्व प्रकाशित हुआ था। अभी इन पत्रों की स्याही खुश्क भी नहीं हुई थी कि जूनियस अनामत्व से प्रकट हो गये (असली जूनियस के समान नहीं, जिसका परिचय अब तक लेखकों को उलझन में डाले हुए है) और फौरन इलाहाबाद पहुंचे जहां रेलवे स्टेशन पर मालवीय और अयोध्या नाथ ने उनका उत्साहपूर्वक स्वागत किया और उन्होंने देखा कि वह भारत की राष्ट्रीय राजनीति में प्रसिद्ध हो गये हैं। वह एक विवादात्मक व्यक्ति के रूप में प्रसिद्ध थे, जिसने बड़े असरदार ढंग से किसी अन्य की नहीं, बल्कि अलीगढ़ के महान सर सैयद अहमद खां की पोल खोलकर रख दी थी। उन्होंने अधिवेशन में दो भाषण दिए, जिनमें से एक तो एक प्रकार से "खुले पत्रों" से ही जुड़ा था। यह भाषण उन्होंने उस दिन के मुख्य प्रस्ताव का अनुमोदन करते हुए दिया। यह प्रस्ताव निर्वाचित सदस्य शामिल करके विधान परिषदों का विस्तार करने के बारे में था। इस भाषण में उन्होंने यह सिद्ध किया था कि सर सैयद, जो अब कांग्रेस के और विशेषकर विधान मंडलों में निर्वाचित सदस्य शामिल करने की मांग के प्रमुख विरोधी थे, इससे पहले अलग बोली बोलते थे, उन्होंने तीस वर्ष पहले लिखी पुस्तक 'ग़दर' में भी यही मांग की थी।

कांग्रेस के अधिकारिक इतिहासकार डाक्टर पट्टाभि सीतारामैया ने 1888 के अधिवेशन पर टिप्पणी करते हुए लिखा है

"लाजपत राय निस्सदेह सही दृष्टि वाले व्यक्ति थे। वह 1888 के कांग्रेस अधिवेशन मे उर्दू मे बोले और उन्होंने प्रस्ताव किया कि आधा दिन शैक्षिक तथा औद्योगिक मामला के लिए रखा जाए। यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया और तब से लगाई जाने वाली औद्योगिक प्रदर्शनिया उस प्रस्ताव के आधार पर नियुक्त की गई समिति की सिफारिशो का सीधा परिणाम हैं।"

इनमे से एक भाषण को सामयिक विवाद के कारण सभवत अधिक प्रशसा मिली, परन्तु दूसरे भाषण में अधिक ठोस काय का प्रस्ताव किया गया था। उस समय भी जब कांग्रेस की सारी कायवाही अंग्रेजी मे होती थी, लाजपत राय न हिंदुस्तानी मे भाषण दिया। उन्होंने स्पष्ट सकेत दे दिया कि उन्हें कांग्रेस के मामला मे महत्वपूण भूमिका निभानी है, और वह भरसक प्रयत्न करेंगे कि यह सगठन सही अर्थों मे जनता की आवाज हो। औद्योगिक प्रदर्शनियो पर उन्होंने जो बल दिया, उससे यह स्पष्ट हो गया था कि वह केवल राजनीतिज्ञ ही नहीं हैं, रचनात्मक काय को भी महत्व देते हैं।

1888 के कांग्रेस अधिवेशन ने लाजपत राय को निश्चित रूप से ऐसे आन्दोलन मे शामिल कर दिया, जो प्रत्यक्ष तौर पर राजनीतिक था। उदासीनता के चद एक दौर छोडकर उन्होंने शेष सारा जीवन, अर्थात् अगले चार दशक, कांग्रेस के लिए काय करते हुए बिताए। उन्होंने कांग्रेस के पहले तीन अधिवेशना म भाग नहीं लिया था, परन्तु वह उदासीन नहीं थे, यद्यपि (मुख्य तौर पर मूलराज के प्रभाव के कारण) उनके मन मे कांग्रेस के प्रति कुछ सही सदेह थे। उन्होंने ए० ओ० ह्यूम की रचनाए पढी थी और उन पर उनका गहरा प्रभाव पडा था, परन्तु मूलराज ने तो नये सगठन को एक ऐसा जाल घोषित किया था, जो चालाक अंग्रेजा ने फैलाया था। अंग्रेज मित्रों के खतरनाक वेश मे सामने आए थे। कांग्रेस के तीसरे अधिवेशन तक (जो मद्रास मे बदरुद्दीन तैयबजी की अध्यक्षता मे हुआ था) लाजपत राय कांग्रेस कायकर्ता बन चुके थे। उन्होंने अपनी आत्मकथा मे लिखा है कि इस अधिवेशन ने मुझे "बहुत ही प्रभावित" किया।

उन्होंने कहा है, "उस समय तक श्री ह्यूम की दो पुस्तिकाए प्रकाशित हो चुकी थी—'द स्टार आफ द ईस्ट' तथा 'एन ओल्ड मैंस होप'। मैंने कांग्रेस साहित्य मे अच्छी पुस्तिकाओं का इतना अच्छा और कोई जोडा नहीं देखा। उनके पन्नो मे से स्वतत्रता की एक लहर बहती चली आ रही थी और उन्होंने मुझे बहुत प्रभावित किया।"

अपने "खुले पत्रों" और बाद में कांग्रेस के इलाहाबाद अधिवेशन में भाग लेकर उन्होंने अपना भाग्य निश्चित रूप से कांग्रेस के साथ सम्बद्ध कर लिया था, यद्यपि जैसा हमने कहा है, उनके जीवन में ऐसे अल्प दौर भी आए, जब वह अपने संगठन तथा उसकी नीतियों के प्रति आपेक्षिक रूप से उदासीन थे। इलाहाबाद में पंजाब के प्रतिनिधियों ने उन्हें यह काम सौंपा कि कांग्रेस का अगला अधिवेशन लाहौर में करने के लिए निमंत्रण दें, परन्तु चुना गया बम्बई। यद्यपि उन्होंने बम्बई अधिवेशन में भाग लिया, परन्तु उनका जोश ठंडा पड़ने लगा। उन्होंने महसूस किया कि कांग्रेस के नेता देश के हितों के मुकाबले नाम और दिखावे की ओर अधिक ध्यान देते हैं।

1893 तक लाजपत राय कांग्रेस अधिवेशनों में शामिल नहीं हुए, कांग्रेस के प्रति उदासीनता का यह उनका पहला दौर था।

कांग्रेस से भी अधिक मैज़िनी ने उन्हें स्वाधीनता आन्दोलन की ओर धकेला। यदि उन्होंने मैजिनी को गुरु न माना होता, तो संभव था कांग्रेस में उनकी अधिक रुचि न होती। इटली के इस महान व्यक्ति की रचनाओं से उनका परिचय सुरेन्द्रनाथ बनर्जी रचित 'स्पीचिज आफ जोजेफ मैजिनी' से हुआ, जो बंगाल के इस महान वक्ता के भाषण संग्रह में शामिल की गई थी और लाजपत राय को आठवें दशक में यह पुस्तक देखने का अवसर मिला था।

आत्मकथा में उन्होंने लिखा है, "एक भाषण ने मुझे इस कदर प्रभावित किया कि जब भी मन उसे पढ़ा, मेरी आंखों में कई बार आंसू आ गए। मेरे कोमल मन पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा और मैंने निश्चय कर लिया कि जीवन भर मैं मजिनी के उपदेशों पर चलूंगा और अपने राष्ट्र की सेवा करूंगा। मैंने मजिनी को अपना गुरु मान लिया और आज भी वह मेरे गुरु हैं।"

यह उनके आर्य समाज में शामिल होने से पहले की बात है। उनके अपने कथन के अनुसार उनके पहले गुरु मजिनी थे, दयानन्द नहीं। आर्य समाज में शामिल होने से पहले वह देशभक्ति में पूरी तरह रंगे जा चुके थे। आर्य समाज की ओर वह इसलिए आकर्षित हो गये, क्योंकि इसमें उन्हें देशभक्ति का उद्देश्य दिखाई दिया था। अभी ऐसा कोई प्रत्यक्ष राजनीतिक आन्दोलन शुरू नहीं हुआ था, जिसके लिए काम करते हुए वह देश की बलिवेदी पर अपने को उत्सर्ग कर देते। इसके लिए उन्हें प्रतीक्षा करनी पड़ी और अपनी आत्मा को धैर्य में रखना पड़ा।

उन्होंने पुस्तक विक्रेताओं के पास मैजिनी की 'जीवन तथा शिक्षा' पुस्तक की खोज की और आखिरकार उन्हें इंग्लैंड से अपने एक पंजाबी मित्र के सहयोग से यह पुस्तक उपलब्ध हो गई। उन्होंने इस पुस्तक को आदि से अंत तक पूरी उत्कंठा से पढ़ा और "मैं इस पुस्तक से उससे भी कहीं अधिक जोरदार ढंग से प्रभावित हुआ जितना कुछ वर्ष पूर्व सुरेन्द्रनाथ बनर्जी द्वारा मैंजिनी के बारे में दिए गए भाषण से हुआ था। इटली के उस महान व्यक्ति के गूढ़ राष्ट्रवाद, विपत्तियों तथा कष्टों, उसकी नैतिक श्रेष्ठता और उसकी विशाल मानव-सहानुभूतियों ने मुझे वशीभूत कर लिया।" उन्होंने 'ड्यूटीज आफ मैन' का उर्दू में अनुवाद किया और जब यह पांडुलिपि तैयार हो गयी, तो उसे लाहौर में अपने पत्रकार मित्र के पास भेज दिया, जिसने इसमें कुछ परिवर्तन करने के बाद अपने नाम से प्रकाशित कर दिया।

बाद में उन्होंने मैंजिनी और गेरिबाल्डी की जीवनियां उर्दू में लिखीं। ये पुस्तकें विशेषकर मैंजिनी की जीवन कथा, उन दिनों पंजाब को प्रमुख तौर से प्रभावित करने वाले विचारों में से थीं। इस संबंध में हमें विचार करने का बाद में अवसर मिलेगा। इस बीच, हमारे लिए यह याद रखना जरूरी है कि मंजिनी पहले गुरु थे जिन्होंने इस बेचैन मन की उत्कंठाओं को संतुष्ट किया। आर्य समाज और कांग्रेस में शामिल होने से पूर्व ही उन्होंने अपना मन बना लिया था। समाज और कांग्रेस, दोनों ही वे माध्यम थे जिनके जरिये उन्हें अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए कार्य करना था। इस लक्ष्य का निर्धारण उनके महान गुरु की रचनाओं में बिल्कुल स्पष्ट ढंग से किया हुआ था।

1883 में स्वामी दयानन्द का देहांत हो गया, दीपावली के दिन आर्य समाज गहरे शोक में डूब गया। समाज के कार्यकर्त्ता अपने महान स्वामी से वंचित होने का शोक मनाने के लिए एकत्र हुए। गुरुदत्त ने अजमेर में अन्तिम बीमारी के समय स्वामीजी की सेवा की थी और मृत्यु शय्या तथा वहां की शान्ति ने उन्हें बहुत प्रभावित किया था। वह लाहौर की सभा को संबोधित करने के लिए उठे, परन्तु उनकी वाणी ने उनका साथ न दिया। जो भी वक्ता वहां बोलने के लिए उठे न बोल सके और अंत में बैठक को संबोधित किया नव-परिवर्तित लाजपत राय ने। उनका भाषण कोमल भावनाओं से भरपूर था, जिसने उन्होंने श्रोताओं को दो घंटे तक वशीभूत किये रखा। इस भाषण से एक सार्वजनिक वक्ता के रूप में उनका नाम हो गया। वह समाज में "सबसे अधिक प्रभावशाली वक्ता" माने जाने लगे। यह बात विशेष तौर पर दयन

वाली है कि सार्वजनिक वक्ता के रूप में उनका नाम एक घुमक्कड़ वक्ता के रूप में भाषण देते रहने के बाद पैदा नहीं हुआ, जैसा कि आम राजनीतिज्ञों के साथ होता है, और जो बाद में प्रतिष्ठित राजनेता बन जाते हैं, बल्कि एक क्लासिक ढंग से ग्रीक वक्ताओं के तरीके से अन्त्येष्टि के भाषण से पैदा हुआ।

स्वामी दयानन्द की मृत्यु के बाद उनके अनुयायियों तथा प्रशंसकों ने उनका समुचित स्मारक बनाने के प्रश्न पर विचार किया। इस विचार-विमर्श का अंतिम परिणाम दयानन्द एंग्लो-वैदिक कालिज की स्थापना की योजना थी और जब इस विचार को कार्यान्वित करने का अवसर आया, तो लाजपत राय ने अपने हिस्से से अधिक योगदान किया।

आठवें दशक के अंत में, वह अभी हिसार में ही थे और आर्य समाज के और अधिक व्यापक क्षेत्र में कार्यरत थे, उन्हें समाज के सर्वोत्तम सार्वजनिक वक्ता के रूप में ख्याति प्राप्त थी और "खुले पत्र" की घटना के बाद वह काफी महत्वपूर्ण राजनीतिक नेता भी बन चुके थे। वह अब सार्वजनिक कार्यों को अपना काफी समय दे रहे थे और साथ ही एक वकील के रूप में भी काफी सफलता प्राप्त कर रहे थे। कभी-कभार ही उन्होंने एक हजार रुपये महीने से कम कमाए होंगे—कई बार तो उनकी आय इससे दुगुने से भी अधिक होती थी। इस व्यवसाय में यह कोई अद्वितीय सफलता नहीं थी, परन्तु एक ऐसे युवक के लिए यह शानदार बात थी, जिसकी आकांक्षाएं अन्य क्षेत्रों के लिए निश्चित हो चुकी थीं। उनकी फीस इतनी होती थी, जिसे किसी नगरेतर वकील के लिए बहुत अच्छी कहा जा सकता है। यदि वह वकालत के व्यवसाय की ओर अधिक ध्यान देते, तो शायद इससे भी अधिक कमा सकते थे, क्योंकि अपने मुकदमों का पूरे ध्यान से अध्ययन करके तथा पूरे कौशल से वकालत करके उन्होंने अपने मुवक्किलों का उसी तरह विश्वास जीत लिया था, जिस प्रकार उनकी निष्कपटता और जोरदार अभिव्यक्ति ने आम लोगों का विश्वास जीता था। अब उन्होंने अपने पिता को कम आय वाली नौकरी छोड़ देने के लिए सहमत कर लिया। उन्होंने अपने पिता की अवकाश प्राप्ति के लिए काफी धन अलग रख दिया, ताकि वह छोटे बच्चों की पढ़ाई तथा पालन पोषण करके उनकी शादियां कर सकें। यह केवल एहतियात के तौर पर संकट की स्थिति के लिए था, क्योंकि लाजपत राय स्वयं घर का और पिता का पूरा खर्च उठा रहे थे और मुंशीजी को अपने बच्चों की शिक्षा या शादी विवाह के लिए इस सुरक्षित निधि से कुछ खर्च

करने की [illegible]
[illegible] [illegible]
थी, पर ब्याज [illegible]

हिसार [illegible] दिनों में [illegible]
होना निश्चित था [illegible]
थे। [illegible]
[illegible] राम की [illegible]
[illegible] लिए। [illegible]
[illegible] लाहौर में [illegible]
[illegible] नहीं [illegible]
[illegible]

11. पुरातन नगर में नया उफान

लाहौर, जहा बसने के लिए लाजपत राय नौवे दशक के आरभ में आए, उनके छात्र जीवन के समय से काफी भिन्न था। जब पहली बार मैट्रिक की परीक्षा देने के सिलसिले में वह लाहौर रेलवे स्टेशन पर उतरे थे, उस समय सबसे प्रमुख देखने वाली वस्तु पुलिस के सिपाही थे, जो लोगो को जेबकतरा तथा उचक्को से सावधान रहने की चेतावनी दे रहे थे और तरुण लाजपत, सामान को उठाकर पीछे आने वाले कुली के आगे-आगे, आश्चर्य से यह सोचते जा रहे थे कि उन्हें अभी किसी चाल में फास लिया जाएगा और उनके पास जो मामूली सामान है, उसे छीनकर असहाय छोड दिया जाएगा। अब लाहौर नव आगन्तुको के लिए इतना असुरक्षित नही था। कोई भी सिपाही किसी तरह से पुकारता दिखाई नही देता था और वह स्वय भी तो अब स्कूल के छोकरे या लाहौर के लिए अजनबी नही थे। वह सुविधा-जनक सवारी किराये पर ले सकते थे और एक घोडा गाडी शीघ्र ही उनके व्यवसाय तथा सार्वजनिक गतिविधियो के लिए आवश्यक हो जाने वाली थी।

ब्रिटिश राज आधी शताब्दी से अधिक पुराना हो चुका था। प्रशासन सुदृढ हो चुका था और यह अपने ही सवेग से फैलता दिखाई पड रहा था। इसके कार्यालयो की सख्या बढ रही थी। अर्थात लाहौर में "बाबू" लोगो की आमद में लगातार वृद्धि हो रही थी और स्वभावत बाबू बनाने वाली प्रवृत्ति और अधिक तेजी से काम कर रही थी।

यद्यपि लाहौर तेजी से विकसित हो रहा था, फिर भी कोई कारखाना अभी लगता दिखाई नही देता था। बैंक तथा बीमे के काम में भारतीय लोगो की अभी कोई रुचि नही थी, परन्तु यूरोपीय लोगो के व्यापारिक सस्थान बढ रहे थे और इस साम्राज्य की अष्टभुज भुजाए दूरदराज कलकत्ता या बम्बई के मुख्यालयो से या लदन में मिली हुई थी। इन सस्थानो में भी कुछ बाबू काम करते थे, परतु अधिकतर बाबू राज्य तथा रेलवे के कार्यालयो में कर्मचारी थे। शिक्षा सस्थाओ के विस्तार के साथ, छात्रो की सख्या में भी वृद्धि हो रही थी—बाबू तथा सभावित बाबू और वकीलो की

करने की आवश्यकता नहीं थी। लाजपत राय ने अपने तीनों भाइयों के जीवन को व्यवस्थित करने का प्रबंध किया। पिता के लिए जो निधि अलग से रखी गई थी, वह ब्याज जोड़ती रही।

हिसार के दिनों में उन्हें ऐसी जायदाद की पेशकश हुई, जिसकी कीमत में वृद्धि होना निश्चित था और जो बाद के दिनों में उन्हें बहुत-सी अनर्जित राशि दे सकती थी। जिन लोगों ने ऐसे प्रस्ताव स्वीकार किए उन्होंने काफी धन कमाया, परंतु लाजपत राय की आकांक्षा तो अन्य क्षेत्रों में थी। इसलिए उन्होंने ऐसे प्रस्ताव स्वीकार न किए। संभवत वह हमेशा हिसार छोड़ने के बारे में सोचते रहते थे, ताकि महानगर लाहौर में बस सकें। वह अचल सम्पत्ति के कारण प्रांतीय नगर के बंधन में नहीं पड़ना चाहते थे। इसलिए उन्होंने इस प्रकार से कोई पूंजी न लगाई।

11. पुरातन नगर में नया उफान

लाहौर, जहां यमन के लिए लाजपत राय नौवें दशक में आरंभ में आए, उनके छात्र जीवन के समय से काफी भिन्न था। जब पहली बार मैट्रिक की परीक्षा देने के सिलसिले में वह लाहौर रेलवे स्टेशन पर उतरे थे, उस समय सबसे प्रमुख देखने वाली वस्तु पुलिस के सिपाही थे, जो लोगों को जेबकतरों तथा उचक्कों से सावधान रहने की चेतावनी दे रहे थे और तरुण लाजपत, सामान को उठाकर पीछे आने वाले कुली के आगे-आगे, आश्चय से यह सोचते जा रहे थे कि उन्हें अभी किसी चाल में फांस लिया जाएगा और उनके पास जो मामूली सामान है, उसे छीनकर असहाय छोड दिया जाएगा। अब लाहौर नव आगन्तुकों के लिए इतना असुरक्षित नहीं था। कोई भी सिपाही किसी तरह से पुकारता दिखाई नहीं देता था और वह स्वयं भी तो अब स्कूल के छोकरे या लाहौर के लिए अजनबी नहीं थे। यह सुविधाजनक सवारी किराये पर ले सकते थे और एक घोडा गाडी शीघ्र ही उनके व्यवसाय तथा सार्वजनिक गतिविधियों के लिए आवश्यक हो जाने वाली थी।

ब्रिटिश राज आधी शताब्दी से अधिक पुराना हो चुका था। प्रशासन सुदृढ हो चुका था और यह अपने ही सवेग से फैलता दिखाई पड रहा था। इसके कार्यालयों की सख्या बढ रही थी। अर्थात् लाहौर में "बाबू" लोगों की आमद में लगातार वृद्धि हो रही थी और स्वभावत बाबू बनाने वाली प्रवृत्ति और अधिक तेजी से काम कर रही थी।

यद्यपि लाहौर तेजी से विकसित हो रहा था, फिर भी कोई कारखाना अभी लगता दिखाई नहीं देता था। बैंक तथा बीमे के काम में भारतीय लोगों की अभी कोई रुचि नहीं थी, परन्तु यूरोपीय लोगों के व्यापारिक सस्थान बढ रहे थे और इस साम्राज्य की अष्टभुज भुजाएं दूरदराज कलकत्ता या बम्बई के मुख्यालयों से या लदन से मिली हुई थीं। इन सस्थानों में भी कुछ बाबू काम करते थे, परंतु अधिकतर बाबू राज्य तथा रेलवे के कार्यालयों में कर्मचारी थे। शिक्षा सस्थाओं के विस्तार के साथ, छात्रों की सख्या में भी वृद्धि हो रही थी—बाबू तथा समावित बाबू और वकीलों की

सख्या म भी वृद्धि हो रही थी, यह वृद्धि अधिक तेज तो नही थी, परन्तु हो बराबर रही थी। इन नवागन्तुको की मेहरबानी से अनारकली एक उन्नत बाजार के रूप मे विकसित हो रहा था। साहब तथा मेम साहब माल रोड की बडी दुकानो से सामान खरीदते थे, जो बडे बडे बगलो म थे—ये बगले उस नमूने पर बनाए गए थे, जिसे सावजनिक निर्माण विभाग के किसी गुमनाम प्रतिभाशाली व्यक्ति ने तैयार किया था। वह वास्तुकला की भावना से परिचित नही था और साहसी इतना था कि उसने ऐसा नमूना तैयार किया, जो पूव के लिए बिल्कुल विदेशी था और पश्चिम मे किसी ने देखा नही था।

बाबुओ, वकीलो तथा छात्रो की इस भीड को भी कही बसाना था। और लाहौर उस फीताकृमि के समान बढ रहा था, जिसमे ईंट और चूने के सैल बढते चले जा रहे हो। उजाड स्थानो पर मकान बनाकर उनसे काफी किराया प्राप्त किया जा सकता था। जोडा गया धन "अर्नाजत सवृद्धि" के रूप मे प्राप्त होता है या सयम से ? इस मसले पर ज्ञानवान अथशास्त्रियो को मगजपच्ची करने दीजिए।

लाहौर के आकार म वृद्धि के साथ-साथ उसमे मानसिक परिवतन भी आ रहा था। इसका कारण चाहे कुछ भी हो, कोई भी यह महसूस किए बिना नही रह सकता था कि कोई उफान क्रियाशील है। अस्पष्ट तौर पर आप कह सकते है कि यह शिक्षा तथा धम के कारण था या कह लीजिए इसकी कुछ वजह राजनीति थी, जो इस उफान मे काम कर रही थी। इसका सबसे अधिक प्रभाव बाबू लोगो तथा वकीलो पर पडा।

लाजपत राय के छात्रकाल मे कोई गैर-सरकारी और विशुद्ध भारतीय शिक्षा योजना नही बनी थी, परन्तु लाजपत राय के वकील बनने से पूव ही ईसाई प्रचारक डॉक्टर फारमैन इस क्षेत्र म सक्रिय थे, और 1889 मे फारमैन क्रिश्चियन कालिज स्थापित कर दिया गया था। निस्सदेह प्रचारको के इस प्रयत्न के पीछे विशाल साधन थे और उनका हाकिमो के साथ असीम सम्पर्क था। उनकी सस्थाओं के लिए एकडो खुली भूमि सरकार की ओर से उदारता के रूप मे दी गई थी। उन सस्थाओ के लिए, जिनकी योजनाएं बन चुकी थी या अभी बनाई जानी थी, लाहौर मे उठ रहे उफान म इन प्रचारको का भारी दखल था।

उन्होंने अप्रत्यक्ष रूप से स्वदेशी प्रयत्न को बढ़ावा दिया कि वे ऐसी संस्थाएं स्थापित करें, जो नई शिक्षा दें। इसलिए बाबुओं के लिए बेतरतीब मकानों, बंगलों तथा सरकारी इमारतों के साथ-साथ दयानन्द स्कूल जैसी इमारतें भी बन रही थीं। वह स्थान जहां डी० ए० वी० स्कूल बना, लाजपत राय के छात्रकाल में असुरक्षित स्थान था—भयानक तौर पर असुरक्षित, बिल्कुल उजाड़। यह उफान ईंटों और चूने के रूप में तथा उजाड़ का रूप बदलने में प्रकट हो रहा था।

अपने छात्रकाल में उन्होंने पंजाब विश्वविद्यालय के जन्म की थोड़ी बहुत क्रिया देखी थी। डाक्टर लिटनर की, जिन्होंने इसकी स्थापना में प्रारम्भिक योगदान दिया था, इस शिशु के बारे में अपनी ही धारणा थी और अब तक वह धारणा बिल्कुल मिट ही चुकी थी और यह प्रयोग लगभग समाप्त कर दिया गया था। इस विश्वविद्यालय ने भी कलकत्ता और मद्रास विश्वविद्यालयों की पद्धति पर काम करना शुरू कर दिया था। पहले जिसे विश्वविद्यालय कालिज कहा जाता था, अब विश्वविद्यालय बन गया था और कालिज का नाम गवर्नमेंट कालिज हो गया था।

इस विश्वविद्यालय के साथ कानून, डाक्टरी तथा प्राच्यविद्या अध्ययन के महाविद्यालय सम्बद्ध थे। (प्राच्यविद्या अध्ययन महाविद्यालय एक प्रकार से डाक्टर लिटनर की उपज था) विश्वविद्यालय के तत्वावधान से प्रचारकों ने भी अपना कालिज स्थापित कर लिया था और भारतीय नेताओं को भी उसी तरह करना था—उन नेताओं का, जो इस नए उभार के नेता थे।

आठवें दशक में लाहौर में उठ रहे उफान की दो विरोधी धाराएं थीं ब्रह्म समाज तथा आर्य समाज। परन्तु उसके बाद हालात कुछ बदल गए थे।

पंडित शिवनारायण अग्निहोत्री ने, जो लाजपत राय के पिता के मित्र तथा तरुण लाजपत के एक प्रकार से संरक्षक थे, अब स्कूल अध्यापक की नौकरी छोड़ दी थी। उन्होंने ब्रह्म समाज भी छोड़ दिया था और अपने नए मत की स्थापना कर ली थी, जिसे देव समाज कहते थे। पंडित अग्निहोत्री के नाम के स्थान पर अब उनके अनुयायी उन्हें "देवगुरु भगवान" कहते थे। उन्होंने सक्रिय व्यक्तियों को ब्रह्म समाज से अलग कर दिया और उसे पंजाब में कमजोर कर दिया। इस प्रकार उसके विरोधी संगठन आर्य

समाज के लिए उसे मैदान से लगभग बिल्कुल हटा देना आसान हो गया। नई शैक्षिक व्यवस्था द्वारा तैयार किए गए प्रगतिशील तत्वों का, अधिक गतिशील तथा आक्रामक आर्य समाज, अपनी ओर अधिक आकर्षित कर सकता था। चूंकि उन दिनों शिक्षा एक मुख्य गतिविधि थी, आर्य समाज ने भी अपने संस्थापक के नाम पर एक स्कूल की स्थापना कर दी। इसने व्यावहारिक रूप से ब्रह्म समाज के विरुद्ध तथा आर्य समाज के पक्ष में निर्णय दे दिया। इस स्कूल में कालिज का विभाग पहले ही जोड़ा जा चुका था। इसका अध्यक्ष एक ऐसा युवक था जिसने डिग्री प्राप्त कर लेने के पश्चात अन्य स्नातकों के समान नौकरी की तलाश नहीं की थी, बल्कि अपने आपको इस संस्था की सेवा के लिए समर्पित कर दिया था। वह अवैतनिक प्रिंसिपल था। इस उपाधि का लाजपत राय के छात्रकाल में समझ पाना कठिन था।

बुद्धिमान लोगों में आर्य समाज निश्चित रूप से जड़ पकड़ चुका था। इसकी गतिविधियां प्रति वर्ष लाहौर तथा पंजाब भर में फैल रही थीं। इसकी घोषणा थी कि वह वैदिक धर्म को पुनर्जीवित करेगा। सभी पुनर्जागरण आंदोलनों के समान यह भी अतीत को पुकारता था। इसने प्राचीन भारत की गौरवपूर्ण स्थिति की वर्तमान गिरी हुई अवस्था से तुलना की। इस प्रकार इसने देशभक्ति की भावना बढ़ाई। यह उसके कई पहलुओं में से एक था। इसका एक अन्य पहलू हिंदू समाज को इस योग्य बनाना था, जिससे कि वह आधुनिक समस्याओं को कुशलता के साथ हल कर सके। संभव है कि हिंदू समाज की सभी बुराइयां अवैदिक थीं, परन्तु विडंबना यही रही कि आर्य समाज के बहुत से समर्थक, जो वेदों को पूजते थे, आधुनिक लेखकों विचारकों, इतिहासकारों और यूरोप के राजनीतिज्ञों के बारे में अधिक जानकारी रखते थे और वैदिक ऋषियों के प्रति उनका ज्ञान इनके मुकाबले में कम था। वे हिन्दू समाज को आधुनिक विश्व में संघर्ष के योग्य बनाना चाहते थे। वे बाल विवाह तथा पैतृक पुजारी प्रथा समाप्त करने, रीतियों को सरल बनाने, विधवा विवाह से प्रतिबंध हटाने, सागर पार करने की आज्ञा देने और मुस्लिम लोगों के समान कड़ाई के साथ एकेश्वरवाद लागू करना चाहते थे। इनमें से उनकी कई बातें तो ब्रह्म समाजियों से मिलती-जुलती थीं, परन्तु वे अधिक आक्रामक थे। उनके लिए वह उदारवाद अधिक काम का नहीं था, जिसमें सभी धर्मों की अच्छी बातों

पर जोर दिया गया हो। वे चाहते थे कि जब अन्य धर्मों के प्रचारक हिन्दू धर्म पर आक्रमण करें, तो हिन्दू धर्म वालों को ईंट का जवाब पत्थर से देना चाहिए। उनका मन था कि वे भी आक्रामक और अपने विरोधियों के समान धर्म प्रचारक बनें। उन्होंने छुआछूत समाप्त करने पर बहुत अधिक बल दिया तथा शुद्धि आन्दोलन शुरू किया। उन्होंने देवनागरी तथा हिन्दी के महत्व पर बल दिया और शायद इस मामले में भी ब्रह्म समाज को भी पीछे छोड़ गए। उनके नेतृत्व में शिष्टता तथा संस्कृति की कुछ त्रुटि संभव थी, परन्तु उनमें आन्दोलन को आगे बढ़ाने का उत्साह अधिक था। नौवें दशक में ऐसा होता दिखाई पड़ता था कि आर्य समाज में एक प्रकार की सर्वव्यापकता है, जो पंजाब के सार्वजनिक जीवन के सभी क्षेत्रों पर छा जाएगी। हिन्दुओं में से अधिक गतिशील तथा प्रगतिशील लोग अधिक से अधिक संख्या में इसके झंडे के नीचे जमा होने लगे। जितनी *अधिक संख्या में पढ़े-लिखे लोग लाहौर में एकत्र हुए, उतना ही आर्य समाज* के संगठन में बल बढ़ा। दरअसल, लाहौर की मानसिक स्थिति बड़ी तेजी से बदल रही थी। पुनर्जागरणवाद तथा आधुनिकवाद धार्मिक अंधविश्वासों की विशाल परन्तु सुस्त शक्तियों पर लगातार आक्रमण कर रहे थे।

राजनीति की चर्चा भी बढ़ रही थी। कांग्रेस की शाखा अभी स्थापित की जानी थी, परन्तु इंडियन एसोसिएशन की शाखा मौजूद थी। राजनीति वकील लोगों का शौक बनती जा रही थी। कानून के पेशे में कमाई बहुत थी। इसमें सम्मान भी था और धन भी। इस व्यवसाय में बुद्धिमान व्यक्ति बिना पूंजी लगाए उन्नति कर सकता था और एक बार ऊंची श्रेणी में आ जाने पर मोटी फीस मांग सकता था। यह सच है कि पंजाब में बहुत बड़े जमींदार या राजा नहीं थे, जिनसे लाखों रुपये फीस के रूप में बटोरे जा सकते, परन्तु सफल वकील सम्पन्न मध्यवर्गीय परिवारों से अच्छी खासी फीस प्राप्त कर सकते थे। वकालत के पेशे में शाहाना आय तो संभव नहीं थी, परन्तु इतनी आय अवश्य संभव थी, जिसमें बिना कड़े परिश्रम के सुख तथा सम्मान मिल सकता था। वकील लोग अधिकारपूर्ण ढंग से राजनीति पर छाए हुए थे। वे बुद्धिमान लोगों में से (जिन्होंने शिक्षा प्राप्त की थी तथा जिनमें जागृति आ चुकी थी) आधे लोग थे, जो 'स्वतंत्र' थे, शेष आधे लोग सरकारी सेवा में होने के कारण 'आचार संहिता' से बंधे हुए थे। लाहौर में 'बाबू लोगों' की जितनी अधिक संख्या थी, उतने अधिक आर्य

समाजी सभव थे, और जितनी अधिक सख्या मे वकील थे, उतने अधिक राजनीतिज्ञ होने की सभावना थी।

हिदुओ मे जहा ब्रह्म समाज तथा आय समाज की गतिविधिया ने यह हलचल पैदा की थी, वही मुसलमान भी नई-नई आवाजें सुन रहे थे—सर सैयद अहमद खा की, जिहाने 1883–84 मे पजाब का दौरा किया तथा एक नए मत की, जिसे अहमदिया कहते थे। अपनी आधुनिक उदारवादी प्रवृत्तिया के कारण सैयद विचारधारा हिन्दुओ की ब्रह्म समाजी लहर से मिलती-जुलती थी (यू कहिए कि काग्रेस के विरुद्ध सकीण विचारो से अभियान शुरू किए जाने से पूव यह समानता बहुत ही अधिक थी), जब कि उग्रपथी अहमदिया जोश और लडाकूपन की दृष्टि से आय समाजियो से मिलते-जुलते थे। यह वह समय था, जब सिखा मे भी यह चेतना पैदा हो गई थी कि वे हिदुआ से भिन्न हैं। अब तक अधिकतर लोगा का यह अनुमान था कि वे भी हिदू मत के स्वछन्द सघ मे शामिल अद्ध-स्वायत्त इकाइया म से एक है। यह लाजपत राय के कालिज के दिनो की बात है (जैसा कि कई बार उन दिनो की याद करते हुए उन्होने इस बारे में चर्चा की थी) कि छात्रा को परीक्षा के दाखिला फार्मों मे यह लिखना पडता था कि वे हिदू, सिख, ईसाई या मुसलमान है। इससे पूव हिदुओ तथा सिखा को इस प्रकार अलग नही दिखाया गया था। मैकालिफ को 1893 मे अपनी न्यायिक नौकरी से अवकाश लेने के लिए सहमत कर लिया गया था, ताकि वह सिख धम ग्रथा का अग्रेजी मे अनुवाद कर सकें—सिख धम-ग्रथा का जो अनुवाद उन्हाने उस समय किया, वह छ जिल्दा म था। डाक्टर ट्रम्प या, जिन्होने सेक्रेट्री आफ स्टेट के लिए आदि ग्रथ का अनुवाद किया था, आठ वष पहले देहात हो चुका था। अग्रेज कौम न सिखा मे रुचि लेनी शुरू कर दी थी। "1857 के गदर" मे वे इतने लाभकारी सिद्ध हुए थे कि साम्राज्य-वाद ने बुद्धिमत्तापूण निणय किया कि उनके साथ विशेष व्यवहार किया जाए।

यह उफान सभी समुदाया मे समान रूप से व्याप्त दिखाई पडता था और लाहौर से विकिरणशील होकर पजाब के दूरवर्ती कोना तक फैल गया। इसके चलने से लाहौर पजाब का एक महानगर तथा राजनीतिक का शक्ति-केंद्र बनता जा रहा था।

उफान, सावजनिक जीवन, राजनीति—दूसरे शब्दो मे पजाब का शक्ति-केंद्र, लाहौर, समाचार पत्रो को अधिक महत्व दे रहा था। "बुद्धिजीवी" वग का आधिपत्य था। "करोडा बेजुबान" अभी भी बहुत ही बेजुबान थे। स्वाभाविक ही था कि प्रतिष्ठा तथा शक्ति अंग्रेजी समाचार पत्रो के हाथो मे थी। पजाब के अंग्रेजो के अधीन होने के शीघ्र बाद ही 'द सिविल एड मिलिट्री गजट' शुरू हो गया था। भारतीय भी एक समाचार-पत्र चाहते थे। दयाल सिंह मजीठिया की वदायता के कारण 1881 मे 'साप्ताहिक ट्रिब्यून' शुरू हो गया था।

आठवें दशक के मध्य मे 'ट्रिब्यून' सप्ताह मे दो बार छपने लगा था। यही एक प्रमुख भारतीय समाचार पत्र था, जो उन दिनो लाहौर से प्रकाशित होता था। नौवें दशक मे यह सप्ताह मे तीन बार निकलना शुरू हो गया उस समय इसके सम्पादक नगेंद्रनाथ गुप्त थे, जो बगाल के रहने वाले थे।

इस प्रकार, जब नौवे दशक मे लाजपत राय लाहौर मे बसने वहा वकालत करने और पजाब की सावजनिक गतिविधियो के प्रमुख केंद्र मे रहने के लिए आए थे, उस समय लाहौर—भौतिक तथा मानसिक रूप मे—बहुत तेजी से बदल रहा था। जो उफान इस परिवतन के लिए काय कर रहा था, उसने लाजपत राय को वह अवसर प्रदान कर दिया, जिसे उनकी प्रतिभा ढढ रही थी, उन्हें जोखिम उठाने की वे परिस्थितिया मिल गईं, जिनकी तलाश म उनकी आत्मा भटक रही थी—ऐसा जोखिम, जो केवल रोजी कमाने के जीवन से कही अधिक बडा था।

12. आर्य समाज में विच्छेद

आर्य समाज अब उनकी गतिविधियों का प्रमुख क्षेत्र था। निस्सन्देह समाज विस्तृत हो रहा था, परन्तु इसके साथ ही उसे एक गंभीर संकट का सामना भी करना पड़ रहा था। ऐसा दिखाई पड़ता था कि बड़े गुट के समर्थक एक ओर और छोटे गुट के समर्थक दूसरी ओर विभाजित होते जा रहे हैं। उनमें इस विभाजन का बहुत ही छोटा सा विषय था शाकाहारवाद—एक गुट इसका कट्टर समर्थक था जो बड़े तथा छोटे गुटों दोनों सिरे को ही निषिद्ध मानता था। साईं दास और गुरुदत्त का, जो आर्य समाज में इन अलग अलग गुटों या धाराओं के समर्थक एवं प्रतिनिधित्व करते थे देहावसान हो चुका था। परन्तु दोनों विचार दूसरे को सहन करने को तैयार न थे। अभी गुरुदत्त जीवित थे, जब डी० ए० वी० की प्रबंध समिति ने एक प्रस्ताव पारित करके कालिज विभाग खोलने की अनुमति दे दी थी। अब उनकी मृत्यु के काफी समय बाद झगड़ा आरम्भ हो गया। लाजपत राय ने आत्मकथा में उसके कारणों की चर्चा की है। उन्होंने आर्य समाज के विभाजन के बारे में बहुत ब्यौरेवार न सही परन्तु आलोचनात्मक टिप्पणी लिखी है

"पहली बात तो लाला हंसराज की व्यक्तिगत अलोकप्रियता थी। लोगों ने यह आभास पा लिया था कि वह दम्भी, घमण्डी और अधिकार जमानेवाले हैं। वह चुपचाप अलग-अलग रहने और प्रबंध में सख्ती के कारण लोगों में अप्रिय हुआ।

दूसरे शाकाहारवाद का प्रश्न था। इसका आधार स्वामी दयानन्द सरस्वती की प्रमुखता का प्रश्न था पंडित गुरुदत्त अपने अन्तिम दिनों में स्वामीजी के इतने श्रद्धालु हो गए थे कि वह स्वामीजी द्वारा निर्धारित किए गए सिद्धान्तों से मामूली सा हटने को भी तैयार नहीं थे। वह यह मानते थे कि स्वामी दयानन्द द्वारा रचित *'सत्यार्थ प्रकाश'* का हर शब्द सत्य है। पंडितजी के शिष्यों तथा अनुयायियों में भी यह भावना थी। जब उन्होंने शाकाहारवाद के बारे में विवाद उठाया, तो दूसरे गुट ने दलील दी कि

किसी भी आय समाजी के लिए यह अनिवाय नही कि स्वामी दयानन्द की शिक्षा को पूरी तरह मान ले, क्योंकि स्वामीजी प्रश्नातीत नही थे ।

कालिज के प्रबध म तो मतभेद और भी अधिक हो गए (1890 मे गुरुदत्त के देहात के तुरत बाद) । यह मतभेद कालिज के पाठ्यक्रम मे विशेषकर संस्कृत के पाठ्यक्रम को लेकर थे । दयानन्द रचित 'सत्यार्थ प्रकाश' मे एक अध्याय शिक्षा के बारे मे था, जिसम प्राथमिक से लेकर उच्च शिक्षा तक दी जाने वाली शिक्षा का पूरा ब्यौरा दिया गया था । इस अतिनैतिक व्यवस्था मे कालिदास तथा भवभूति को कोई स्थान ही नही दिया गया था। असल मे तो संस्कृत के नाटको की कोई गुजाइश नही थी, कविता मे भी केवल वाल्मीकि और व्यास के महाकाव्यो को सहन किया गया था और वह भी कविता के रूप में नही, बल्कि इतिहास की दृष्टि से । संस्कृत के अध्ययन का मूल-आधार पाणिनि थे (पातजलि के भाष्य के साथ), क्योंकि स्वामीजी ने उसके बाद के वैयाकरणो की जोरदार निंदा की थी । ऋषि दयानन्द का यह मूलभूत सिद्धात था कि ऋषियो द्वारा रचित पुस्तको तथा सामान्य लेखको द्वारा लिखी गई पुस्तको के बीच ऐसा अन्तर है, जिसे दूर नही किया जा सकता, और जिन विद्वानो को वेदो के मूल सत्य को खोजना और प्राप्त करना है, उन्हें केवल वही शिक्षा दी जानी चाहिए जिसका भाग ऋषियो ने प्रस्तुत किया है । विद्वान 'सत्यार्थ प्रकाश' को अचूक मानते थे और उनके लिए यह गुरु की शिक्षाओ का वैसा ही अनिवाय भाग था जैसे अय सिद्धात तथा उनकी अन्य रचनाओ मे प्रस्तुत बातें । कम से कम वे इस प्रकार की घोषणा अवश्य करते थे, क्यांकि व्यावहारिक रूप मे जब वे कोई योजना तैयार करते, तो उसमे कही कोई नरमी या समझौता कर ही लेते थे । अधिक व्यावहारिक विचारो वाले व्यक्तियो की राय थी कि 'सत्याथ प्रकाश' का पाठ्यक्रम वतमान परिस्थितियो के लिए उपयुक्त नही और इसका आधार तो वह धारणा है, जिसमे संस्कृत-भाषी आर्यावत की कल्पना की गई है। अनुयायियो द्वारा दयानन्द की स्मृति मे बनाया गया एंग्लो वैदिक कालिज शुरू से इस विचार के साथ स्थापित किया गया था कि वह स्वामीजी की आदर्श योजना से भिन्न हो । इसके नाम से ही समझौते की भावना झलकती थी

यह नाम रखने वाला तथा घोषणा पत्र तयार करने वाला मे थे और इसका आशय तथा उद्देश्य निश्चित रूप से समझौते की भावना म प्रेरित थे। घोषणा पत्र जारी किए जाने के दो वर्ष के अन्दर कोई ठोस काय होता दिखाई न दिया सिवाय उस राशि के (जो एक लाख से थोडी सी कम थी)। परन्तु जसे ही उनके मित्र हसराज ने प्रस्तावित सस्था के लिए अपनी अवैतनिक सेवाए पश की, उन्होने स्कूल की कक्षाए तुरत शुरू करने पर जोर दिया। फिर, जब कोई तीन वर्ष बाद प्रबध समिति ने (एक के बहुमत से) कालिज की कक्षाए आरम्भ करने का निणय किया, वह (लाजपत राय की तरह) उन छ व्यक्तियो मे शामिल थे, जिन्होने इस कारवाई का समथन किया। इस निणय को लागू करने के लिए पाच सदस्यो की जो उप-समिति बनाई गई थी वह उसमे शामिल थे। इस उप-समिति के सचिव के तौर पर उन्होने स्वय वह रिपोर्ट तैयार की थी जिसमे अध्ययन की इस योजना का खाका तैयार किया गया था। यह समझौते की एक और बात थी। गुरुदत्त ने लो और दो की भावना से काय किया। परन्तु इस बात से इकार नही किया जा सकता कि उनके अपने विचारो का रख साई दास के विचारो से भिन्न था। इन दोनो विचार-धाराओ ने इन दोनो की मृत्यु के पश्चात साई दास के मित्रो तथा गुरुदत्त के अनुयायियो म प्रचड टकराव पैदा कर दिया। सिद्धातवादी गुट अधिक-से-अधिक कट्टर होता गया और जिस ढग से कालिज चलाया जा रहा था उसकी खुलेआम और जोरदार निदा करने लगा। अत म यह गुट कालिज से अलग हो गया और स्वामीजी के विचारो को कार्यान्वित करने के लिए उसने गुरुकुल विश्वविद्यालय की स्थापना की। दूसरे गुट ने कालिज को सफल बनाने के लिए काय किया और इसके लिए धन एकत्र किया तथा ईंट, चूने जैसी ठोस वस्तुए प्राप्त की, और बहुत से विद्वान एकत्र किए। उनका समाजी अन्त करण इस बात से सतुष्ट होता था, जब वे महसूस करते थे कि शिक्षा के प्रसार मे सामान्य रूप से सहायता देने के साथ साथ उन्होने पजाब म हिन्दी के प्रचार के लिए एक महत्वपूण सस्था खडी कर दी थी जो शिक्षा के लिए आने वाले कुछ छात्रो म सस्कृत के लिए भी प्यार पैदा कर रही थी, चाहे वे सस्कृत के अनिवाय अध्ययन का उस कडाई स पालन नही

करते थे, जिसके बारे में दयानंद ने पाठ्यक्रम में व्यवस्था थी। यद्यपि उसके छात्र तथा विद्वान स्वामीजी के आदेश के अनुसार ब्रह्मचर्य का पालन नहीं करते थे, फिर भी उनके स्कूल तथा कालिज समाज के लिए उचित संख्या में नए उत्साही युवक जुटा रहे थे, और उनकी संस्थाएं उस व्यापक देशभक्तिपूर्ण उद्देश्य में सहायता दे रही थीं जो उन्हें बहुत प्रिय था। यदि उनका कालिज यह उद्देश्य प्राप्त कर सकता है, तो वे अपने सभी छात्रों के लिए पाणिनि के व्याकरण की जटिलताएं सीखना अनिवार्य नहीं बनाना चाहते थे, भले ही पाणिनि तथा पतंजलि का दयानन्द ने बहुत गुणगान किया था। वे अध्ययन के लिए अव्यावहारिक पाठ्यक्रम पूरी तरह अपनाने की प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए अपने छात्रों को डराकर भगा देने के लिए तैयार न थे।

जब लाजपत राय ने प्रवेश किया ये मतभेद और अधिक स्पष्ट होते जा रहे थे। थोड़े समय के लिए उन्होंने निष्पक्ष रहने का प्रयत्न किया, परन्तु उनके मानसिक झुकाव ने शीघ्र ही उनकी भावना को व्यक्त कर दिया। उन्हें इस बात में औचित्य नहीं दिखाई दिया कि इस कालिज को ऐसी संस्था में बदल दिया जाए जो पूर्णतया संस्कृत के उस पाठ्यक्रम अथवा मूर्तिपूजा को अपनाए, जो दयानन्द ने निर्धारित की थी। वह तर्कवादी थे और बौद्धिक स्वतंत्रता को मूल्यवान समझते थे। *इसलिए स्वामीजी या किसी अन्य व्यक्ति के अचूक होने की बात नहीं* मानते थे। उन्हें अपने मांस वाले भोजन में कोई पाप वाली बात दिखाई नहीं देती थी। उन्होंने मैजिनी को गुरु बना लिया था और समझ लिया था कि लोगों की देशभक्तिपूर्ण सेवा के बारे में उनकी आकांक्षा में सुसंस्कृत वर्ग वाले लोग 'शाकाहारी' सनकियों के मुकाबले अधिक साझेदार थे। उन्हें उपरोक्त गुट अधिक असिद्धांतवादी, अधिक अव्यावहारिक और दूसरे लोक के बारे में अधिक चिंतित लगा। उन्होंने यह भी महसूस किया कि उनके मित्र हंसराज को गलत समझा जा रहा था और गलत रूप में पेश किया जा रहा था। उन्होंने अपने को उस गुट के साथ जोड़ दिया जिसका नेतृत्व हंसराज कर रहे थे। जब उन्होंने एक बार अपने पक्ष की घोषणा कर दी, तो उन्हें उस पक्ष के लिए अधिक प्रचार करने को कहा गया। जब संस्कृत पाठ्यक्रम के बारे में विवाद जोरों पर था, उन्होंने उर्दू में एक पुस्तिका लिखी यह

दिखाने के लिए कि डी० ए० वी० कालिज ने संस्कृत की उपेक्षा नहीं की थी, जैसा उसके शाकाहारी आलोचक 'महात्मा' आरोप लगा रहे थे। अपने पक्ष के समर्थन में या अपने विरोधियों पर आक्रमण करने के लिए वह समय-समय पर समाचार-पत्रों में लिखते रहते थे। वह सलाह मशविरे तथा समिति की बैठकों में भी भाग लेते थे। अन्य लोगों की तरह उन्होंने भी समय-समय पर मर्यादा संहिता का उल्लंघन किया। उन्हें यह सब कुछ करना पसंद नहीं था, जो उन्हें पक्षपातपूर्ण ढंग से करना पड़ा और उन्होंने किया।

अपने सहधर्मियों के इन अनुचित झगड़ों का उन पर कितना गहरा प्रभाव पड़ा था, इस बात का अनुमान 1891 के समाज के चुनाव के बारे में व्यक्त पुनर्विचार से मिलता है, यद्यपि ये विचार उनके हिसार काल के समय के थे —

'ये दृश्य मैंने अपनी आंखों से देखे। इन्होंने मुझे बहुत प्रभावित किया और मैं रात को जागता रहता और इस बात पर आश्चर्य करता हुआ सोचता रहता कि हमारी फूट की इस राष्ट्रीय बीमारी का निदान शायद भगवान ही कर सके। यह मतभेद समाप्त करने और लोगों में एकता लाने के लिए हमने अपने आपको भगवान की शरण में छोड़ दिया था, परन्तु वहां भी हम अपने पापों से मुक्त न हो सके और हमारी काली करतूतों का परिणाम यह हुआ कि हम में एकता होने की बजाय हमने एक दूसरे के साथ लड़ना शुरू कर दिया और वह भी इस ढंग से कि निर्लज्जता की कोई सीमा न रही। 91 की जयन्ती के बाद जब मैं हिसार लौटा, तो मैं बहुत व्यथित था और समाज की स्थिति और मेरी बेचैनी ने मुझे इस बात के लिए मजबूर कर दिया कि मैं सदा के लिए हिसार छोड़कर लाहौर जा रहूं।"

इस लड़ाई में 'सबसे अधिक निराशाजनक घटना' की चर्चा करते हुए वह इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि इसके लिए दोनों पक्ष बराबर जिम्मेदार हैं। उनका कहना है 'मेरे विचार में लाला हंसराज की जिम्मेदारी उतनी ही बड़ी थी, जितनी लाला मुंशी राम की।"

असल विच्छेद 1892 के अंत में हुआ, जब लाहौर आर्य समाज का वार्षिक चुनाव था। चुनाव की पूर्व संध्या पर उस गुट ने, जिसके

साथ लाजपत राय न अपना भाग्य जोडा था, अपने एक प्रमुख नेता लाला (जो बाद मे जस्टिम बने) लालचद के घर पर बैठक की । उनका उद्देश्य उस रास्ते का निश्चय करना था, जो उन्हे अगले दिन अपनाना था क्योकि दूसरे पक्ष न यह निश्चित करने के लिए कि सदन मे बहुमत उनके समथका का ही हो, बहुत-सी अनियमितताए और हेराफेरी की थी ।

लाजपत राय न लिखा है, "कुछ सदस्य समाज के मदिर पर पुलिस की महायता स कब्जा करना चाहत थे । दूसरे सदस्य चाहते थे कि इस झगडे का निपटारा अदालत करे और इसके लिए दोनो गुटा की बैठके अलग-अलग समय पर बुलाई जाए । कुछेक ऐसे भी थे, जो पुलिस की सहायता लिए बिना, रात को लाठियो के जोर से जबरदस्ती कब्जा करने के पक्ष मे थे, चौथा गुट जिसमे मैं भी शामिल था, उसकी राय थी कि महात्माओ के साथ सहयोग असभव हान के कारण यही अच्छा है कि अलग रास्ता अपना लें और साप्ताहिक बठका के लिए मकान किराए पर ले लें ।"

इस बठक म अपन विशिष्ट भाषण म, जो आय समाज के इतिहास मे स्मरणीय है लाजपत राय न कहा

"समाज इट पत्थर का नही, सिद्धाता का बना हुआ है । हम समाज मे इसलिए शामिल हुए थ कि अपना जीवन सुधार सके और लोगा की सेवा कर सकें, इसलिए नही कि मकानो पर कब्जा कर और उनकी खातिर लडाई करें । मैं लडने झगडने और अपनी सहायता के लिए पुलिस बुलाने या अदालत का सहारा लेने के विरुद्ध हू ।"

यह सतुलित तथा उदार अपील सफल हुई । इस गुट न पृथक हाने के बारे मे एक औपचारिक प्रस्ताव पास किया और अगले दिन ही अलग समाज की स्थापना कर ली, जा बाद मे 'अनारकली आय समाज' के नाम से जाना गया । वच्छोवाली मे आय समाज के मदिर को छोडने के विचार से लाला हसराज के मन का बहुत दुख हुआ, फिर भी वह सहमत हो गए ।

लाजपत राय का इस समाज का प्रथम अध्यक्ष चुना गया ।

बाद मे जब उन्होंने अपने व्यवहार का बडी कडाई से पुनरावलोकन किया, तो उन्होंने महसूस किया कि पक्षपात के अपने जोश म उन्होंने महात्मा मुशी राम (स्वामी श्रद्धानन्द) के बारे म, जो दूसरे गुट के नेता थे, बडी द्वेषपूण राय बना ली थी ।

लाजपत राय ने आत्मकथा मे लिखा है, "मै यह अवश्य कहूगा कि मैंने अपनी उस राय म बहुत अधिक सशोधन कर लिया है, जो मैने उनके बारे म 1892-93 मे तथा उसमे कई 'वप' बाद बनाई थी कि वह शरारती हैं, प्रसिद्धि के पीछे लालायित ह और नेतागिरी के आकाक्षी ह । अब मेरा विश्वास है कि लाला मुशी राम ने पार्टी के उद्देश्य से, पार्टी की भावना के अधीन जो किया था उसके आधार पर उनके बारे म निणय लेना अनुचित था। अय महान व्यक्तियो के समान लाला मुशी राम मे भी कमजोरिया थीं और उनके इद गिद मडराने वाले उनसे अनुचित लाभ उठाते थे । वे लोग, जो उन्हें हरदम घेरे रहते थे, अधिकतर उनकी राय तथा कार्यों को प्रभावित करते थे ।

परन्तु मेरा निश्चित रूप से यह कहना नही है कि वह शरारत करने वाले और प्रतिशोध रखने वाले व्यक्ति थे। जोश के क्षणों मे मने जो राय बनाई थी, उसमे मैंने बाद मे सशोधन कर लिया ह और मुझे बाद मे इस बात पर खेद हुआ ह कि मैंने उनके साथ ऐसा अयाय किया। लाला मुशी राम स्वभाव से आवेगशील थे, उन पर तुच्छ तथा मामूली आवेग नहीं, बल्कि उदार तथा महान आवग प्रबल रहते थे । वह दयालु तथा अतिथि सत्कार करने वाले व्यक्ति थे और वह लोक सेवा की भावना से प्रेरित थे । वह इस बात से परिचित थेकि किस प्रकार दुख सहन किए जाते हैं और बलिदान कसे दिया जाता है । एक मित्र के रूप मे वह बहुत वफादार थे । इसान के रूप मे वह बहुत स्पष्टवादी, खुले मन के तथा नेक थे ।"

यह बात 1915 में लिखी गई । इस बात मे कोई सदेह नहीं कि लाजपत राय की नजरो मे श्रद्धानन्द और ऊचे, यहा तक कि बहुत ऊचे उठते गए, विशेषकर 1919 के बाद से जो पजाब म मार्शल ला के दिन थे और 1926 तक, जब स्वामीजी का बलिदान हुआ । श्रद्धानन्द के जीवन के इस गौरवपर्ण अत मे उनके मन मे कितनी ईर्ष्या हुई होगी !

कमठ और परिश्रमी तो वह थे ही, उन दिनो जितना काम उन्होने किया वह स्वयं लाजपत राय के लिए भी कठिन रहा होगा। उन्हे वकालत के पेशे के लिए सख्त परिश्रम करना पडता था और इससे भी अधिक परिश्रम करना पडता था अपने अधिक प्रिय सार्वजनिक जीवन के लिए। अदालत की लगभग सभी छुट्टिया वह कालिज के लिए धन एकत्र करने के वास्ते दौरे करने मे लगा देते थे, क्योकि वह इसके प्रमुख प्रवक्ता ही नही, इसके प्रमुख याचक भी थे। समाज मे विच्छेद और दोनो गुटो के बीच शत्रुता ने यह कार्य विशेष तौर से कठिन बना दिया था। लाजपत राय ने इस संबंध मे छोटा सा उदाहरण दिया है, "एक बार मुझे शिमला से सीधे पेशावर पहुचना पडा, क्योकि यदि मै कुछ घटे भी देर से पेशावर पहुचता, तो मुझे कुछ भी नही मिलना था। दो दिनो मे मैने वहा से तीन हजार रुपये नकद एकत्र किए। फिर 'महात्मा' का प्रतिनिधि मंडल वहा पहुच गया और कालिज के लिए उगाही बन्द हो गई।"

यद्यपि समाज के दोनो गुट 1892 मे अलग हो गए थे, फिर भी यह विच्छेद सम्पूर्ण नही था। समाज के मंदिर अलग थे, परन्तु जो महात्मा कालिज की प्रबंध समिति मे थे, उन्होने वहा रहकर तोड-फोड की कारवाइया आरम्भ कर दी और इस प्रकार 1897 से यह घोर संघर्ष का समय था।

"एक दिन तो इस झगडे ने लाठियो के साथ लडाई का रूप ले लिया। स्वर्गीय लाला साई दास के सबसे बडे पुत्र सुदर दास के सिर मे भारी चोटे आई और उन्होने अपनी पार्टी के लिए अपना जीवन दे दिया, दूसरे गुट की ओर से किसी और ने ऐसा ही भारी मूल्य चुकाया।"

उन दिनो उन्हे बहुत कडा परिश्रम करना पडा और कष्टप्रद संघर्ष भी। इसमे हैरानी की कोई बात नही कि ऐसे हालात ने उनके स्वास्थ्य पर बहुत बुरा प्रभाव डाला और एक बार तो वह निमोनिया के कारण मृत्यु के द्वार तक जा पहुचे। उनके दोनो फेफडो पर बहुत गंभीर प्रभाव पडा और वह दो महीने बिस्तर मे पडे रहे। "डाक्टर बेलीराम ने बडे स्नेह के साथ मेरा इलाज किया और मुझे बचाने के लिए बहुत कष्ट उठाए। जब तक भी मै जीवित हू, उनका आभारी रहूगा।" यह बात कृतज्ञता से उन्होने बाद मे लिखी।

13. लाहौर में कांग्रेस अधिवेशन

हमने देखा है कि 1889 के बम्बई कांग्रेस अधिवेशन में भाग लेने के बाद कांग्रेस के प्रति लाजपत राय का उत्साह काफी धीमा पड गया था। उन्होंने इन क्रिसमस के मेलों में भाग लेने का कष्ट न किया, जब तक 1893 में "पहाड स्वयं मुहम्मद के पास न आया"। पंजाब ने बख्शी जैशीराम (जस्टिस श्री बख्शी टेक चन्द के पिता) के सुझाव पर, जो डी० ए० वी० कालिज के नेताओं में से एक थे, कांग्रेस को निमंत्रण दिया। लाजपत राय भी स्वागत समिति में शामिल हो गए, परन्तु वह इसमें सक्रिय रूप से भाग लेने वालों में नहीं थे। यद्यपि कांग्रेस को निमंत्रण आर्य समाज के प्रमुख नेताओं के सुझाव पर दिया गया था, फिर भी आर्य समाजियों का रवैया उत्साहपूर्ण नहीं था। कई और लोग थे, जो अधिक तत्पर थे, विशेषकर लोकोपकारक दयाल सिंह मजीठिया और युवा हरकिशन लाल/यद्यपि युवा हरकिशन लाल की बख्शी जैशीराम तथा उनके आर्य समाजियों के प्रति राय मैत्रीपूर्ण नहीं थी। इसलिए लाहौर अधिवेशन आर्यों के मुकाबले ब्रह्म लोगों की देख रेख में अधिक था, और लाहौर के एक प्रमुख ब्रह्म समाजी नोबिन चन्द्र राय स्वागत समिति के अध्यक्ष थे।

लाजपत राय ने अधिवेशन में दो तीन भाषण दिए। उन्होंने लिखा है कि एक उल्लेखनीय बात यह है कि राय मूलराज ने इसमें बहुत अधिक भाग लिया। यह भद्र पुरुष, जैसा कि हमने देखा है एक सरकारी कर्मचारी थे और इससे भी बडी बात यह थी कि वह न्यायपालिका के अंग थे। इस प्रकार उनमें यह आशा थी कि राजनीति से दोगुना दूर रहें। परन्तु हकीकत यह थी कि सभाओं और अनौपचारिक बैठकों में वह पर्दे के पीछे से ही तार हिलाते थे। उन्होंने स्वामी दयानन्द के लिए आर्य समाज के संविधान का प्रारूप तैयार किया था और वह चाहते थे कि कांग्रेस भी लगभग इसी प्रकार का संविधान अपना ले। ह्यूम के बारे में उनके मन में संदेह अभी भी बना हुआ था और संविधान के लिए यह मांग शायद उन्होंने इस संदेह की जांच के लिए ही की थी, यह आशा करते हुए कि ह्यूम के लिए इस सुझाव का

स्वीकार करना आसान नहीं होगा । घटनाओं ने इस संदेह को गलत सिद्ध नहीं किया । ह्यूम ने कहा कि किसी संविधान की कोई आवश्यकता नहीं और इस प्रकार यह प्रस्ताव पूरा न हो सका ।

आज यह बात शायद अविश्वसनीय लगे कि इतने वर्षों तक कांग्रेस बिना संविधान के रही । 1899 के लखनऊ-अधिवेशन तक इसका कोई संविधान नहीं था और इस अधिवेशन में जो संविधान अपनाया गया उसमें मूलराज द्वारा पेश किए गए प्रस्ताव की आवश्यक बातें पूरी नहीं थीं जैसे कि प्रतिनिधियों के लिए प्रतिनिधित्व का स्वरूप और उनके चुनाव के लिए किसी भी प्रकार की व्यवस्था, एक स्थायी संगठन जिसकी क्षेत्रीय शाखाएं हों और जो सारा वर्ष कार्यरत रहे । कांग्रेस नेताओं ने 1908 में ऐसे काम के लिए प्रांतीय समितियों की बात नहीं सोची थी । पंजाब के प्रतिनिधियों ने कई बैठकों में इस बात पर बल दिया कि देश के लिए कोई संविधान बनाने से पूर्व कांग्रेस को अपने लिए एक संविधान अवश्य बनाना चाहिए । निस्संदेह, यह मूल विचार मूलराज का था, उस अवाधमय व्यक्ति का जिसे ओट में रहकर अपने विचार पेश करने में आनन्द आता था ।

1904 में भी कांग्रेस के प्रतिनिधियों ने, जिनका नेतृत्व लाजपत राय तथा उनके मित्र द्वारका दास ने किया, बेकार प्रयत्न किया कि कांग्रेस अपना संविधान निर्धारित करे । अब कांग्रेस के महाधिकारी महान और शाहाना सर फिरोजशाह मेहता थे । जैसा कि दुनीचन्द (अम्बाला) ने जो बम्बई के कांग्रेस अधिवेशन में उपस्थित थे, कहा है

"लाला लाजपत राय और लाला द्वारका दास ने इस बात का असफल प्रयास किया कि कांग्रेस अपना कोई संविधान बना ले, पारसी नाइट ने उन्हें बिना किसी कठिनाई के धमकाकर चुप करा दिया । लाला लाजपत राय का अभी वैसा व्यक्तित्व नहीं था जो दो वर्ष बाद में उभरा ।"

"दो वर्ष बाद" का प्रसंग बनारस के स्मरणीय अधिवेशन से है, जिसकी घटनाओं का ब्यौरा बाद में सम्पूर्ण अध्याय में दिया जाएगा । यहां तो बस इतनी चर्चा कर देना ही काफी होगा कि लाजपत राय और उनके मित्रों ने कांग्रेस के लिए एक संविधान की आवश्यकता को

14. सामूहिक चेतना के लिए जीवन-चरित

उनके मन में मैजिनी को पढ़ने से जो तीक्ष्ण आवेग उत्पन्न हुआ, उसे उन लोगों के साथ, जिन्हें अंग्रेजी की पुस्तकें उपलब्ध नहीं थी, बाटने के लिए 1896 में वह उर्दू पुस्तकों की एक शृंखला लिखने पर मजबूर हो गये। इनका नाम उन्होंने 'द ग्रेट मैन आफ द वर्ल्ड' रखा। इस उद्देश्य के लिए उन्होंने पहले महान व्यक्ति, अपने गुरु गिसिप मैजिनी, को चुना, जिनके जीवन तथा शिक्षा ने उन्हें आरम्भिक युवा काल में बहुत अधिक प्रभावित किया था। एक बार उन्होंने 'ड्यूटीज़ आफ मैन' का उर्दू रूप देने का प्रयत्न किया था। अब उन्होंने मैजिनी के लोकप्रिय जीवन के बारे में एक छोटी पुस्तक लिखी और उसके पश्चात गैरिबाल्डी की जीवनी। यह रेखाचित्र आधुनिक जीवनी लेखकों को उस प्रकार संतुष्ट नहीं करते, जिस प्रकार चित्र बनाने वाले कलाकार करते हैं। दरअसल ये रेखाचित्र किसी मनोवेग से प्रेरित होकर नहीं लिखे गए थे। मैजिनी और गैरिबाल्डी से उनके पाठक पूर्व परिचित नहीं थे, इसलिए यदि ये रेखाचित्र स्पष्ट हो, तो इनका स्वागत किया जाएगा। लाजपत राय निश्चित तौर पर व्यावहारिक या कहिए कि राजनीतिक स्तर पर कार्य कर रहे थे। एकीकरण और स्वतंत्रता के इटली के आंदोलन ने उन्हें बहुत आकर्षित किया था और उन्हें भारत की समस्या में कई बातें उन बातों के समान लगीं, जिनसे इटली के नेताओं को निपटना पड़ा था। इसके अतिरिक्त मैजिनी की अपील सर्वव्यापक थी, उनके उपदेश केवल उनके अपने देशवासियों को ही संबोधित नहीं थे। विभिन्न देशों के जो लोग उनकी शिक्षा से प्रभावित हुए, उनमें लाजपत राय भी शामिल थे। इसे सम्पूर्ण करने के लिए गैरिबाल्डी की जीवनी तथा रेखाचित्र भी ज़रूरी था। इसके बिना इटली के एकीकरण की तस्वीर पाठकों के सामने सम्पूर्ण तौर पर नहीं आ सकती थी। विचार मैजिनी के थे और क्रियान्वयन गैरिबाल्डी का। मैजिनी की तरह वह भी स्वतंत्रता को प्यार करते थे केवल इटली में ही नहीं दक्षिण अमरीका में भी उन्होंने

जो वीरतापूर्ण संघर्ष किए थे, यह बात उससे स्पष्ट होती थी। उन्होंने संघर्ष किए, विजय प्राप्त की और प्रफुल्ल हृदय से राज्य अन्य लोगों को दे दिए और स्वयं फिर गरीबी की स्थिति में या शान्तिपूर्ण सादगी के जीवन में रहने के लिए अपने द्वीप में लौट आये। मैज़िनी और गैरिबाल्डी की जीवन कथाएं चुनने से उनका उद्देश्य अपने देश के युवकों में देशभक्ति की भावना पैदा करना था।

स्वाभाविक ही था कि उन्होंने ये जीवन चरित प्रसिद्ध अंग्रेजी पुस्तकों से तैयार किए थे। अधिकतर सामग्री छः भागों वाले संस्करण 'मैज़िनीज़ लाइफ एंड राइटिंग्ज़' में और 'काउंटेस मिज़रेस्को' रचना से ली। बोल्टन किंग रचित 'लाइफ आफ मैज़िनी' तथा अंग्रेजी की और बहुत सी लोकप्रिय पुस्तकें अभी प्रकाशित नहीं हुई थी। उनका काम कोई नए तथ्य पेश करना नहीं था और न ही मूलभूत व्याख्या प्रस्तुत करना था। वह तो केवल अपने देशवासियों को इटली के उन महान व्यक्तियों के जीवन तथा शिक्षा से परिचित कराना चाहते थे, जिन्होंने उनके अपने मन को बहुत गहराई से प्रभावित किया था। और यह एक हकीकत है कि इसके पश्चात कई दशकों तक देश के युवकों को, विशेषकर पंजाब के, देशभक्ति की शिक्षा लाजपत राय की इन उर्दू पुस्तिकाओं से दी जाती रही। मैज़िनी के रेखाचित्र ने पंजाब में नई भावना तथा नई चेतना पैदा करने के लिए किसी अन्य व्यक्ति की किसी भी अन्य पुस्तक के मुकाबले अधिक काम किया। इस चेतना ने शीघ्र ही राजनीतिक आन्दोलन को 1906 1907 की बड़ी घटनाओं के लिए तैयार कर दिया।

मैज़िनी ने इटली की स्वाधीनता, उसकी एकता और उसके एक प्रजातंत्र बनने का सपना देखा था। वह एक राष्ट्रवादी थे जिनकी दृष्टि संकीर्ण बंधनों से मुक्त थी और सारी मानवता उनका क्षेत्र थी। वह क्रांतिकारी थे जिन्हें "लोगों द्वारा, लोगों के लिए" क्रान्ति में विश्वास था और उन्होंने आतंकवाद की निंदा की, क्योंकि यह उनकी कसौटी के अनुकूल नहीं था। गतिशीलता के लिए आह्वान करते समय भी मैज़िनी एक शिक्षक थे, जो नैतिक मूल्यों पर अधिक बल देते थे। लाजपत राय के लिए ये सब बातें सम्पूर्ण उपदेश थी, जो विदेशी साम्राज्य

के अधीन उनके देशवासियों के लिए उपयुक्त थी । वह उस एकता को बहुत मूल्यवान समझते थे, जो ब्रिटिश शासन ने भारत को दी थी और उनकी इच्छा थी कि उनका देश इस एकता को किसी प्रकार की हानि पहुंचाये बिना स्वतंत्र हो जाए । यह एक उद्देश्य था जिसके लिए किसी भी बलिदान को वह बड़ा नहीं समझते थे ।

मैरेडिथ ने इटली की एकता के निर्माताओं का, जो संक्षिप्त विवरण दिया उसका यहां स्मरण करना उचित ही है

"कैवुर, मैजिनी, गैरिबाल्डी तीनों ।
ये उसका दिमाग, उसकी आत्मा, उसकी तलवार "

लाजपत राय ने आत्मा को अन्य सभी के मुकाबले अधिक महत्व दिया परन्तु उनकी दृष्टि में और शिक्षा में मैरेडिथ के तीन में से अन्य दो नजर-अंदाज नहीं हुए । निस्संदेह, (मैजिनी और गैरिबाल्डी की तरह) कैवुर ने औचित्य के नाम से जो कुछ भी किया, उसे वह अधिक प्रशंसनीय या उचित नहीं समझते थे ।

कुछ अधिकारियों को मैजिनी से संबंधित इस पुस्तिका से खतरे का आभास हुआ और लाजपत राय को अक्सर ये सूचनाएं मिलती रहती थीं कि उन पर मुकदमा चलाया जाएगा, परन्तु सरकारी वकीलों को शायद उन पर इस सम्बन्ध में मुकदमा चलाने में कठिनाई हुई । उन्हें यह जानकारी मिली थी कि "अधिकारियों ने उस पुस्तिका का दो या तीन बार अंग्रेजी में अनुवाद करवाया था ताकि कानूनी सलाह ले सकें, परन्तु सरकार के कानूनी विशेषज्ञों में इस बात पर मतभेद था ।" शिक्षा विभाग ने इस नए खतरे का अपने तौर पर विशेष नोटिस लिया । सभी मुख्याध्यापकों को परिपत्र जारी किए गए और शिक्षा विभाग के निदेशक ने अनेक बार डी० ए० वी० कालिज के प्रिंसिपल से यह पूछा कि क्या लाजपत राय की पुस्तकें कालिज या स्कूलों में पढ़ाई जाती हैं ? स्कूलों के एक निरीक्षक को किसी छात्र के पास से एक ऐसी पुस्तक मिल गई तो मुख्याध्यापक से इस संबंध में स्पष्टीकरण मांगा गया था ।

उनके अगले तीन महान व्यक्ति उनके अपने ही देश के थे, शिवाजी, दयानन्द और कृष्ण । शिवाजी के बारे में उनकी पुस्तक मैजिनी और

गैरिवाल्डी के प्रकाशन के शीघ्र बाद ही प्रकाशित हो गई। दरअसल, ये तीनो पुस्तके 1896 मे प्रकाशित हुई थी। यह लगभग वही समय था, जब मुस्लिम इतिहासकारो द्वारा शिवाजी को गलत ढग से पश किए जाने पर प्रतिक्रिया शुरू हो रही थी। इन इतिहासकारो ने अधिकतर उन लोगो को महान दिखाने के लिए प्रयत्न किया था, जिनके विरुद्ध शिवाजी जीवन भर सघर्ष करते रहे थे। मराठा इतिहास के बारे म यूराप के इतिहासकारो की रचनाए भी अधिकतर फारसी स्रोतो पर आधारित थी। शिवाजी का राष्ट्रीय नायक के रूप मे अभी उचित ढग से पेश नहीं किया गया था। लगभग इसी समय तिलक ने गणपति समारोह के सिलसिले म अपना काय आरम्भ किया था और वह इस महान उत्सव को महाराष्ट्र मे राष्ट्रीय चेतना पैदा करने के लिए इस्तेमाल कर रहे थे। सभव है कि लाजपत राय ने तिलक के गणपति उत्सव से प्रेरणा ली हो। मराठा इतिहास के बारे मे रानडे की पुस्तक मराठी स्रोत इस्तेमाल करके लिखी गई पहली ऐसी पुस्तक कही जा सकती है। क्योंकि इससे पूर्व केवल मुसलमान लेखको की पुस्तको को ही आधार बनाया जाता था। अब धारा बदल गयी थी और शिवाजी जोखिम उठाने वाले साधारण व्यक्ति, लुटेरा, "पहाडी चूहा" और यह सब कुछ नही रहे थे। जिस समय लाजपत राय ने शिवाजी के बारे मे अपनी पुस्तक निकाली, उस समय तक रानडे की पुस्तक प्रकाशित नही हुई थी। परन्तु उन्हें इसकी पाडुलिपि देखने का अवसर मिल गया था और उन्होने इससे काफी सहारा लिया था। उनकी पुस्तक उन पुस्तको मे से प्रथम थी जिनसे विचारधारा मे परिवर्तन आया और शिवाजी उपहास और निन्दा के स्थान पर प्रशसा और नायक पूजा के विषय बन गए। यह अभी अपर्याप्त ही था। मराठा प्रलेख तथा इतिहास अभी आरम्भ ही हुआ था। इसके साथ ही लेखक स्पष्ट तौर पर पक्षपाती थे और हर उस घटना मे, जिसम शिवाजी को बदनाम करने का प्रयत्न किया गया था, उन्होंने शिवाजी का समर्थन किया। मराठी अभिलेखो का अध्ययन अभी आरम्भ ही किया गया था और जो अध्ययन किया गया था, वह अपूर्ण तथा अस्थायी था।

भारतीय इतिहास के बारे मे अपनी पहुच को उन्होंने 'शिवाजी' की प्रस्तावना के रूप मे चालीस से अधिक पन्नो म बहुत अच्छी तरह स्पष्ट

किया था । इसमें उन्होंने हिन्दुओं से कहा कि वे केवल अपने शानदार अतीत के इतिहास की ओर ही अधिक ध्यान न दें, बल्कि अपने पतन का इतिहास भी पढ़ें तथा यह बात भी जानें कि किस प्रकार इस बात की ओर ध्यान न देने से उन्होंने कुछ स्वार्थी लोगों को इस काल को गलत ढंग से पेश करने का अवसर दिया है, जिस के कारण हिन्दू-मन तथा चरित्र के बारे में वर्तमान गलत धारणाएं बन गई हैं । अपने चरित्र को इस प्रकार गलत ढंग से पेश किए जाने में हिन्दुओं ने मौन स्वीकृति दी है । इससे समकालीन हिंदू-मन सदूषित हुआ है और इसके परिणामस्वरूप मनोवैज्ञानिक प्रभावों ने इसके प्राकृतिक विकास में रुकावट डाली है । अपनी प्रस्तावना में उन्होंने इच्छा व्यक्त की कि मराठा नायक के पश्चात् वह 'पंजाब के उस महान नायक" के बारे में लिखेंगे, जिन्हें संकट के समय पंजाब के पुनर्जीवन का श्रेय प्राप्त है । निस्संदेह इससे उनका तात्पर्य, सिखों के दसवें गुरु गोविन्द सिंह से था, जिनकी वह सदा ही भूरि-भूरि प्रशंसा किया करते थे । "महान व्यक्तियों" के जीवन चरित लिखने का जो उन्होंने वायदा किया था, उनमें चौथा नंबर निश्चय ही श्री कृष्ण का था ।

पंजाब के नायक के बारे में उनकी इच्छा अधूरी ही रही । महाभारत के नायक के बारे उन्होंने अपना वचन पूरा किया, यद्यपि इस शृंखला में कृष्ण चौथे नंबर पर नहीं पांचवें नंबर पर रहे । उनकी चौथी पुस्तक दयानंद के बारे में थी । दलपत राय विद्यार्थी ने उर्दू में स्वामी दयानंद की आत्मकथा का संक्षिप्त रूप प्रकाशित किया । दलपत राय की मृत्यु के पश्चात लाजपत राय ने दो मास का समय उस मत के संस्थापक का जीवन चरित लिखने के लिए सामग्री एकत्र करने में लगा दिया, जिस मत को उन्होंने स्वयं अपना लिया था । यह पुस्तक सितंबर 1898 में प्रकाशित हुई । किसी मत के सदस्य से यह आशा नहीं की जा सकती कि वह उस मत के संस्थापक के प्रति आलोचनात्मक रवैया अपनाएगा; परन्तु लाजपत राय ने इस बात का ध्यान रखा कि उनकी पुस्तक सत-चरित न बन जाए । उसका लाभकारी पहलू इस बात में था कि उसमें केवल स्वामीजी के जीवन के तथ्य तथा आर्य समाज की स्थापना के बाद की घटनाओं की ही चर्चा न हो बल्कि उसमें स्वामीजी के आरम्भिक जीवन के बारे में जो भी तथ्य मिलें, वे भी शामिल कर

लिए जाए। यह सभी कुछ इस ढंग मे पेश किया गया, जो पढने योग्य था। यही कारण है कि यह पुस्तक कुछ दशको के लिए स्वामी दयानद का प्रामाणिक जीवन चरित रही, यद्यपि आर्य समाज ने आधिकारिक जीवन-चरित प्रकाशित करने के लिए एक समिति स्थापित की थी। लाजपत राय की पुस्तक पढने मे काफी अच्छी थी, इसमें अधिक प्रशसनीय भाषा इस्तेमाल नही की गई थी और न ही नीरसता ही थी। इसके पृष्ठो को निजी आदतो, स्वभाव और जीवन की छोटी-छोटी झाकियो का उल्लेख करके रोचक बनाया गया था। परन्तु यह पुस्तक अस्थायी रेखाचित्र ही रही, क्योंकि बाद मे दयानद की मातृभूमि काठियावाड में बडे परिश्रम से अनुसधान करके पुस्तके लिखी गई थी।

जीवन-चरित लिखने की इस शृखला की अन्तिम पुस्तक 'श्री कृष्ण' थी और कई पहलुओ से यह सर्वोत्तम थी। कुछ स्थानो पर कुछ अलकृत पैराग्राफ यदि काट दिए जाए — ये पैराग्राफ कुल मिलाकर कोई दस बारह पन्नो के थे — तो यह "उच्च कोटि" की रचना थी, जो बहुत सुदर ढग से लिखी गई थी। इसमे किस्सागोई का तरीका अपनाया गया था। सभवत उन युवा लोगो के लिए (सभी युगो के) यह सर्वोत्तम पुस्तक है जो केवल कृष्ण की कहानी जानना चाहते हैं, शर्त यह है कि वृतात के अनावश्यक दस बारह पन्ने निकाल दिए जाए तथा भूमिका मे की गई बहस भी हटा दी जाए। लाजपत राय की कहानी में कृष्ण मुख्यरूप से महाभारत की कहानी के कृष्ण हैं। बाद मे भागवत तथा अन्य पुराणो की मिलावट तथा ब्रज भाषा की पतनोन्मुख कविता को उन्होंने दूर से ही हटा दिया था। भागवत की समृद्ध कविता या अन्य कवियो की व्यापक कल्पना के प्रति शायद वह उतने सवेदनशील नही थे। आम लोगो के मन पर उनके विध्वसक प्रभाव के बारे मे, जो इन्हें अक्षरश लेते थे (नैतिक व्यवहार के लिए मानदड बताते समय भी), वह निश्चय ही बहुत अधिक जागरूक थे। अपनी कहानी का ईमानदारी से वर्णन करते समय उन्हें पूर्ण अधिकार था कि वह महाभारत की कहानी पर कायम रहें और कतई आवश्यक नही था कि इसी कारण वह किसी के विरुद्ध बात करें। परन्तु उन्होने महसूस किया कि महाभारत के कृष्ण का पुनरुत्थान करने के लिए यह अनिवार्य है कि पतन काल के बनावटी कृष्ण को हटा दिया जाए। एक बार

आप कृष्ण की ऐतिहासिकता को स्वीकार कर लें, तो कोई कठिनाई नहीं रहती। तब निश्चय ही महाभारत का प्रभाव बाद के युगों की कथा और कविता से अधिक वजनदार होता है। इसके अतिरिक्त यदि आप एक बार इतिहासकार के रूप में वैज्ञानिक जांच पड़ताल आरम्भ कर दें, तो बहुत सी पौरानिक काव्य-कथाएं एक दूसरे को स्वयं रद्द कर देंगी, और बहुत सी अन्तर्निहित प्रतिवादों के कारण रद्द हो जाएगी। काव्यात्मक अलंकारों ने विरोधी आलोचकों को आसानी से यह आरोप लगाने में सहायता दी है कि कृष्ण तो एक बिगड़े हुए युवक थे, जिन्हें गोकुल की गोपियों के साथ शरारतों के अलावा और कोई काम नहीं था। फिर भी, सभी कथाओं में (पुराणों की, कविता की तथा अन्य) कृष्ण ने अपने वे कर्तव्य पूरे करने के लिए, जो उन जैसे राजकुमारों के स्तर के लिए उचित थे, अतंत गोकुल और ग्वाले का काम छोड़ दिया था। ये कार्य उन्होंने बहुत छोटी आयु में, आप कह सकते हैं कि बाल्यावस्था में ही, आरंभ कर दिए थे। इस अकेले ब्यौरे ने उन सभी दंत पुराण कथाओं को हटा फेंकने में लाजपत राय की सहायता की, जो ईश-निन्दा के आरोपों में सहायक सिद्ध होती थी और अनाप शनाप थी। इतिहासकार के लिए उनका कोई मूल्य नहीं था।

15. मोम-से कोमल इस्पात-से कठोर

'आधे मोम, आधे इस्पात" — यह विश्लेषण था लाजपत राय के मन का, जो एक उर्दू शायर ने एक बार किया था । सभी विषमताओं का डटकर विरोध करना, अथक शक्ति, कठिन से कठिन कष्ट भी सम्मान से झेलना — यह इस्पात वाले भाग के कारण था, जब कि मोम वाले भाग ने उन्हें कष्टों, विशेषकर गरीबों और दलित लोगों के कष्टों के प्रति संवेदनशील बना दिया था ।

वह सारी उम्र संघर्ष करते रहे, इसलिए स्वाभाविक था कि उनकी जीवन-कथा पर 'इस्पाती' भाग हावी रहे, परन्तु संवेदनशील मोम बड़ी आसानी से उनकी महानता के आधे भाग पर दावा जता सकती है ।

आर्य समाज ने उनकी बुद्धि तथा उनके दिल के इन दोनों भागों का इस्तेमाल किया । समाज की पत्रिकाओं का सम्पादन करने तथा उनके लिए लिखने, पुस्तिकाएं प्रकाशित करने, दौरे करने, भाषण देने और धन एकत्र करने के अलावा उन्हें डी० ए० बी० कालिज तथा उसकी शाखाओं में (जैसे जालंधर एंग्लो संस्कृत स्कूल जो बाद में कालिज बन गया) विभिन्न हैसियतों से कार्यभार सौंपा गया । दरअसल, कालिज के लिए उनका कार्य प्रिंसिपल हंसराज के बाद दूसरे स्थान पर था । फिर भी, आर्य समाज के अधीन उनका सबसे अधिक महत्वपूर्ण कार्य शिक्षा संस्थाओं से बहुत दूर के क्षेत्रों में था, और इन्हीं क्षेत्रों में उनके मोम जैसे भाग ने उनकी आत्मा की पहली पुकार सुनी ।

शताब्दी के अन्तिम वर्षों में बहुत-सी भयानक प्राकृतिक विपत्तियां आईं, जैसे सूखा, अकाल और महामारी । 1897 में तिलक को 18 मास के लिए कारावास भेज दिया गया था, क्योंकि उन्होंने बम्बई प्रशासन द्वारा प्लेग के विरुद्ध किए गए प्रबंध की आलोचना करने का साहस किया था । उस वर्ष सूखे और अकाल ने भी जैसे अधिकतम हानि पहुंचाने का निर्णय लिया हुआ था । अन्य स्थानों समेत राजपूताना में भयानक समाचार मिल रहे थे । ऐसे समाचारों से मोम वाले भाग का प्रभावित

होना स्वाभाविक ही था। यह विपत्तिया उस भूमि मे आइ, जिसकी वीर गाथाओ ने लाल लाजपत राय के मन मे गौरव की भावना जगाई थी और जो उन्हें युवा काल तथा परिपक्वता की आयु मे प्रेरणा देती रही थी। उनके लिए यह सहन करना बहुत कठिन था। बहादुर और गौरवशाली राजपूतो के उत्तराधिकारी मक्खियो के समान मर रहे थे और घोर अभाव के विरुद्ध सघर्ष करते हुए वे मक्खियो से भी बुरी तरह जी तथा मर रहे थे।

राजपूताना से प्राप्त होने वाली सूचनाओ से केवल असीम दुर्दशा की ही जानकारी नही मिली, बल्कि यह पता भी चला था कि इस दुर्दशा का लाभ उठाया जा रहा है। बहुत से ईसाई प्रचारको ने, धर्म प्रचार के जोश मे इस विपत्ति को अपने लिए दैवी उपहार समझा, क्योकि वे अधिक सख्या मे लोगो का धर्म परिवर्तन के लिए काबू मे कर सकते थे। प्रत्यक्ष तौर पर वे जरूरतमद लोगो को खाना तथा आश्रम देकर मानवता हितैषी काय कर रहे थे, परन्तु वास्तविकता इससे बिल्कुल भिन्न थी। वह न केवल बच्चो का ही बचाव कर रहे थे, बल्कि उन लोगो का भी बचाव कर रहे थे, जो जानते थे कि हिन्दू धर्म, ईसाई धर्म से अलग है और इस प्रकार पथ भ्रष्ट करने के लिए हर उपलब्ध साधन का इस्तेमाल किया जा रहा था। मिशन के कायकर्ता धोती और यज्ञोपवीत पहनते थे और माथे पर तिलक भी लगाते थे, ताकि वे ब्राह्मण दिखाई पडे। पूना मे पडिता रमाबाई के ईसाई यतीमखाना द्वारा भेजे गए एजेट लडके-लडकियो को 'पडितजी" के पास ले जाते थे। और कई बार तो ये कट्टरपथी लोग इससे भी बडी बुराई से नही चूकते थे—उदाहरण के तौर पर वे भूखे मर रहे किसी व्यक्ति की भूखो मर रही पत्नी को बहका ले जाते थे और उस व्यक्ति के जीवित बचने की सूरत मे भी उसकी पत्नी नही लौटाते थे। इन समाचारो ने सवेदनशील मन को अपमान की वेदना से भर दिया।

लाजपत राय का अन्त करण इससे बहुत द्रवित हुआ। इन घटनाओ ने उनकी जिह्वा को वाणी दी थी तथा उनकी कलम को अक्षर, जिससे उनके श्रोताओ तथा पाठको को उनके मन के मोम वाले भाग की जानकारी मिली।

1897 और फिर 1900 के अकाल ने उनकी सभी शक्तियो, भाषण प्रतिभा, सहमत करने की क्षमता, सगठन करने और प्रबध करने की शक्ति पर बोझ डाला।

लाजपत राय हिन्दू नेताओं में अग्रगामी थे। यद्यपि उन्होंने आर्य समाज के अधीन कार्य शुरू किया, परन्तु शीघ्र ही उन्होंने सारे हिन्दू समाज को सबोधित करना आरम्भ कर दिया और सभी हिन्दुओं का सहयोग प्राप्त किया — इनमें रुढ़िवादी, यहा तक कि आर्य ब्रह्म समाजी भी शामिल थे। उन्होंने सहायता समितियों का गठन किया और उनके लिए धन जमा किया। डी० ए० वी० कालिज में छात्रों के साथ उनका व्यक्तिगत सम्पर्क होने के कारण स्वयं सेवकों का एक मजबूत दल उनकी सेवा पर था। उन्होंने इस बात पर बल दिया कि केवल अस्थायी सहायता ही काफी नहीं, बचाए गए लड़के-लड़कियों के लिए स्थायी अनाथालय स्थापित किए जाए, जो भविष्य में ऐसे सकट के समय म सहायता कर सकें। इसके अलावा इन बचाये गए लड़के-लड़कियों को आत्मनिर्भर और लाभदायक नागरिक बनाने के लिए उन्हें विभिन्न दस्तकारियों का प्रशिक्षण दिया जाए। उन्होंने सहायता कार्य करने वाले अपने कार्यकर्ताओं को निर्देश दिया कि सहायता देते समय वे छोटे बच्चे, विधवाओं तथा स्त्रियों को प्राथमिकता दें — जिन्हें सरकार द्वारा शुरू किए गए सहायता कार्यों से सबसे कम लाभ होता है और जो ईसाई प्रचारकों में बेईमान किस्म के लोगों का बहुत आसानी से शिकार हो सकते हैं। इस बात का आग्रह भी किया गया कि सहायता केवल दान के रूप में ही न दी जाए, बल्कि जहा तक सभव हो सके लोगों को काम करने योग्य तथा अपना रोजगार अर्जित करने योग्य बनाया जाए। उन्होंने विशेषकर चर्खा कातने पर बल दिया, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि अन्य कार्यों में सहायता नहीं दी। यह उनकी दूर दृष्टि तथा आग्रह का ही परिणाम था कि फिरोजपुर म प्रमुख आर्य अनाथालय स्थापित हुआ जिसके वह कई वर्षों तक महासचिव रहे। इसके अलावा लाहौर में हिंदू अनाथालय और मेरठ में भी एक अनाथालय बनाया गया। कुछ अन्य स्थानों पर अस्थायी अनाथालय बनाए गए और बाद में कुछ स्थानों पर स्थायी अनाथालय भी बने। इनमें से कुछ लाजपत राय के परिश्रम का सीधा और कुछ अप्रत्यक्ष परिणाम थे। पजाब और मेरठ में उन्होंने जो उदाहरण स्थापित किया, उसका अनुसरण सारे भारत में किया गया।

जब भूखे मर रहे अनाथों का पहला दल लाहौर पहुंचा, तो वह देख सकते थे कि उन्होंने एक नया जीवन ढालने में सफलता प्राप्त कर ली है, इसका अनुमान इस बात से लगाया जा सकता था कि इस अवसर पर रेलवे स्टेशन पर एक भारी जनसमूह एकत्र हो गया था। इस दल को तथा उसके बाद आने वाले अन्य दलों को पहला आश्रय लाजपत राय के मेहमान-नवाज घर में मिला। कुछ समय अनारकली से आगे गनपत रोड पर किराए के मकान में रहने के बाद उन्होंने कोर्ट स्ट्रीट पर अपना मकान खरीद लिया था।

उनके कार्यकर्ताओं को यदि अपना कार्य करना था, तो उन्हें प्रचारकों से टक्कर लेनी थी। पक्के निष्ठावान कार्यकर्ताओं का जो दल उन्होंने बनाया था, वह इस कार्य पर पूरा उतरने योग्य था। उन्होंने इस बात का अनुरोध किया कि जहां कहीं भी सरकारी अमला स्वयंसेवकों तथा गैर-सरकारी संस्थाओं द्वारा काम करे, उसके कार्यकर्ताओं को सरकारी सहायता एजेंसी से समुचित भाग मिले और सरकारी अमला भेदभाव तथा पक्षपात न करे। कई मामले अदालतों में ले जाए गए और प्रचारकों के कार्य को इस प्रकार नंगा किया गया, जो उनके लिए सुखद नहीं था। आखिरकार, यह तय हो गया कि प्रचारक उस समय तक किसी अनाथ हिंदू को नहीं ले सकेंगे, जब तक कि हिंदू एजेंसियां पहले उसे स्वीकार करने से इंकार न कर दें।

इसके परिणाम ठोस थे। लाजपत राय इन्हें आंकड़ों में नहीं, बल्कि नैतिक प्राप्ति मानते थे। परन्तु यदि उसे संख्या की दृष्टि में ही देखना है, तो यह संख्या कुछ कम नहीं थी। 1897 में जिस समय सारा संगठन बिल्कुल शुरू से बनाया गया था, लाजपत राय के स्वयंसेवक लगभग तीन सौ अनाथों को बचा पाए थे, जिन्हें अनाथालयों में शरण दी गई थी और बहुत से अन्य लोगों को भी सहायता दी गई थी। दूसरे अकाल में इन स्वयंसेवकों ने लगभग दो हजार अनाथों को बचाया। नैतिक सफलता इस संख्या की दृष्टि से कहीं अधिक थी। सैकड़ों कार्यकर्ताओं ने, विशेषकर छात्र कार्यकर्ताओं ने, नागरिकता और देशभक्ति के कार्यों में पक्का प्रशिक्षण प्राप्त किया। सारा आंदोलन उस समुदाय की ओर से स्वावलम्बन का एक विशाल प्रयत्न था,

जो सरकारी या विदेशी प्रचारक एजेंसिया से सहायता लेता था, क्योंकि उसके विचार मे ऐसी विपत्तियो मे केवल यही एजेंसिया ही कोई सहायता पहुचा सकती थी । क्या इस प्रकार का स्वावलम्बन डी० ए० वी० कालिज के प्रयोग का सारतत्व नही था ?

लाजपत राय के अपने व्यक्तित्व के विकास मे भी इन दो अभियानो का सर्वोच्च महत्व था । उन्होंने उसे विकास का अवसर दिया और सकीर्णता की सारी आशकाए दूर कर दी, जो उस स्थिति मे सभव थी, क्योंकि आम तौर पर समाज के काय पजाब मे ही सीमित थे । अब उनका नाम सारे देश मे फैल गया था और लाखो करोडो लोग, जो राजनीतिक दृष्टि से अभी भी उदासीन थे, वे भी उनके बारे मे जान गए थे । काग्रेस मे दिए गए भाषणो से अभी तक उनके बारे मे बुद्धिजीवियो को ही जानकारी थी, उनके सहायता कार्यों ने उपेक्षित जनता को भी प्रभावित किया ।

इसका एक हानिकारक पक्ष भी था । ईसाई प्रचारको ने इस अनुचित हस्तक्षेप पर नाराजगी व्यक्त की क्योंकि वे इसे अपनी गतिविधियो के लिए आरक्षित क्षेत्र मानते थे । उन्होंने अदालतो, अकाल आयोग तथा समाचार-पत्रो मे अपना भडाफोड किया जाना पसद नही किया । यह तिरस्कार दोनो ओर था । इन छद्म ईसाइयो को इन अभियानो म निकट से देखने के बाद लाजपत राय के मन मे उनकी नैतिकता और मानव स्तर के प्रति ऊची भावना उत्पन्न नही हुई और बाद मे जब वह अमरीका मे रहे, तो उन्होंने उन लोगो के तौर-तरीको का अध्ययन किया, जो अपने अमीर देशवासियो से धन एकत्र करने के लिए भारत को बदनाम करते थे । उन्हें इस बात का कोई कारण दिखाई नही दिया कि वह इन लोगो के प्रति अपनी पहले से कायम की गई राय मे परिवर्तन करे । कुछ भी हो, उन्होंने प्रचार सगठनो को अपना शत्रु बना लिया था, जो निश्चय ही शक्तिशाली तथा प्रतिशोधी भी थे । वे अपने मौके की प्रतीक्षा कर सकते थे ।

जब अकाल आयोग नियुक्त हुआ और गवाह बुलाए गए तो लाजपत राय ने इस अवसर से लाभ उठाया । रचनात्मक आर्थिक उपाय सुझाने के अलावा उन्होंने धर्म परिवर्तन करने वालो के विरुद्ध जिन्हें

व्यापक साधन प्राप्त थे और परित्यक्त बच्चे जिनकी लूट का माल थे, असरदार प्रबंध करने का जोरदार आग्रह किया। धर्म के नाम पर मनुष्य की दुर्दशा और शोषण के विरुद्ध संघर्ष कितना जोरदार था और यह कितना सफल हुआ, इसका अनुमान अकाल आयोग (1901) की रिपोर्ट के खंड 23 से लगाया जा सकता है, जो 'अनाथों' के बारे में था। इसमें जोरदार शब्दों में कहा गया था कि 'अनाथों से सम्बद्ध सरकारी नीति प्रान्तीय संहिताओं पर आधारित होनी चाहिए, ताकि इसके कारण अधिकारियों या जनता के मन में किसी प्रकार का संदेह न हो।' आयोग ने यह व्यवस्था दी कि अकाल के समय "राज्य उन बच्चों का अस्थायी संरक्षक होगा, जो उसे परित्यक्त मिलें, और उन्हें अपने संरक्षण से दूर नहीं करेगा जब तक अकाल समाप्त हुए पर्याप्त समय न बीत जाए और इस दौरान उनके प्राकृतिक संरक्षक ढूंढने के प्रयास किए जाएं और यदि यह संभव न हो, तो उसी धर्म के ऐसे व्यक्ति ढूंढ लिए जाएं जो उन्हें गोद लेने को तैयार हों।" इन सिद्धान्तों पर बनाए गए नियमों को उचित ढंग से लागू करने के लिए आयोग ने आग्रह किया कि "सभी सार्वजनिक अकाल अनाथालयों का गैर सरकारी समिति समय समय पर निरीक्षण करे जिसमें विभिन्न धर्मों के प्रतिनिधि हों।"

1897 और 1898 के वर्ष स्वयं लाजपत राय के लिए भी विपदा के वर्ष थे। अकाल सहायता अभियान में अगस्त 1898 तक बहुत अधिक व्यस्त रहने के बाद कुछ राहत लेने तथा मैदानी क्षेत्रों की जोरदार गर्मी से बचने के लिए वह ऐबटाबाद चले गये। वहां एक दिन वह वर्षा में भीग गये, जिसके कारण उन्हें बुखार आने लगा। उस से वह जल्दी छुटकारा न पा सके। यहां तक कि उनके जिगर में सूजन आ गई। सितंबर से अप्रैल तक वह बिस्तर पर पड़े रहे। इस के पश्चात् उनका जिगर कष्ट का कारण बनता रहा। शायद इस कष्ट का आरम्भ रापड़ के दिनों में उनके बचपन से ही हो गया था। इस बार तो उनका रोग इतना असाध्य हो गया था कि उनके बहुत से मित्रों ने उनके स्वस्थ होने की आशा ही छोड़ दी थी।

अपनी बीमारी के दिनों में ही उन्हें पता चला कि उनके भाई दलपत राय को तपेदिक हो गया है। जब तक बड़ा भाई स्वस्थ होकर

बिस्तर स उठे, छोटे भाई का तपेदिक काफी अधिक बढ गया था। जून 1899 म लाजपत राय का परिवार मे पहला बडा शाक देखना पडा। लाजपत राय को दलपत राय से बहुत गहरा प्रेम था और साव जनिक काय के लिए वह सभी भाइया मे से सबसे अधिक होनहार थे। दलपत राय पक्के आयसमाजी थे और सस्कृत के प्रति उनके मन म बहुत उत्साह था। शायद इसी कारण से ही वह अपने आपको दलपत राय विद्यार्थी कहते थे। लाजपत राय ने आत्मकथा मे लिखा है, "मुझे आशा थी कि सावजनिक काय के क्षेत्र मे उसकी ख्याति मुझसे अधिक होगी।'

तीस वष की आयु के करीब अपन छोटे भाइया मे से सर्वाधिक होनहार भाई की मत्यु को लाजपत राय न बहुत अधिक महसूस किया।

16. उन्नतिशील वकालत का त्याग

किसी व्यस्त वकील को इतनी अधिक असम्बद्ध गतिविधियो के लिए समय कैसे मिलता था? वकील लोगो का आम तौर पर कहना का शौक है कि कानून का काम बहुत ही ईर्ष्यालु प्रेमिका जैसा है। लाजपत राय की साहित्यिक क्षमता किसी पूर्णकालिक लेखक तथा सम्पादक के बराबर थी। उनके द्वारे भाषण, धन एकत्र करना, कई संस्थाओ का जिनके साथ उनका सम्बंध था कार्यालय का सामान्य कामकाज, समाज का संगठनात्मक काम तथा समितियो की बैठकें, कालिज, अकाल सहायता अभियान और अनाथालय—ये सभी काम इतने अधिक थे कि इनके लिए पूरा समय काम करने वाले दो-तीन योग्य व्यक्तियो की आवश्यकता थी। यदि कहा जाए तो वह अपन आप म एक मेजबान थे। ऐसा होते हुए भी उनके व्यवसाय मे कोई व्यक्ति ऐसा नही हो सकता था, जो अपने पास आने वाले मुवक्किलो की संख्या पर कुप्रभाव डाले बिना इतनी अधिक सार्वजनिक गतिविधियो मे भाग ले या उसे कुछ मुकदमे लेने से इन्कार न करना पडे। वह चीफ कोर्ट मे वकील के तौर पर बहुत सफल सिद्ध हो रहे थे और प्रत्यक्ष तौर पर चोटी के वकील बनते दिखाई दे रहे थे। इस बात के बावजूद कि लाजपत राय का अपना मन कही और था, उनका ध्यान मुकदमो की ओर पूरी तरह नही था। उन्होंने लिखा है "मेरी वकालत मेरी सार्वजनिक गतिविधियो मे बाधा थी और मेरी सार्वजनिक गतिविधिया मेरी वकालत मे अडचन डाल रही थी।" उन्हें दो ईर्ष्यालु प्रेमिकाओ के साथ एक ही समय निबाहने की कठिन समस्या का सामना करना पड रहा था।

कई बार तो वह दोनो के बीच चुनाव के लिए मजबूरी महसूस करते। वह अपनी मनभाती प्रेमिका को दूसरी के पक्ष मे त्याग देने के बारे मे सोच भी नही सकते थे। यह तो आरम्भ म रोजगार प्राप्त करने के लिए सुविधा का मामला था या बिल्कुल आवश्यकता की बात थी। अब वह उतनी जोरदार आवश्यकता महसूस नही करते थे, इसी लिए कभी-कभी सोचा करते थे कि कही ऐसा समय तो नही आ गया कि वह कष्टदायक दोहरी व्यवस्था को समाप्त कर दें। परन्तु इस बात का उनके सारे परिवार पर प्रभाव पडना था इसलिए वह इस संबंध मे कोई

निर्णय केवल अपने तौर पर नहीं ले सकते थे। अब वह तीन बच्चों के पिता थे —दो पुत्र तथा एक पुत्री, जिनका जन्म नौवें दशक में हुआ था (उनके सबसे छोटे बच्चे का जन्म अगले दशक के आरम्भ में हुआ)। बच्चे अभी बहुत छोटे थे और उनके लिए परिवार के मामलों में राय देना संभव नहीं था, परन्तु एक पिता के दायित्व से छुटकारा नहीं पाया जा सकता था। उनके भाइयों ने अब तक शिक्षा समाप्त कर ली थी और वे अपने कारोबार में जम गए थे। उनकी पत्नी की शायद अधिक नहीं चलती थी। यह बात बिना महत्व की नहीं कि अपनी आत्मकथा में लाजपत राय ने कई ऐसे परिच्छेद लिखे हैं, जिनसे अपने माता पिता के प्रति उनका अगाध प्रेम झलकता है, अपने कुछ भाइयों तथा बच्चों के प्रति भी कई स्थानों पर कोमल भावनाएं व्यक्त की गई हैं, परन्तु अपनी पत्नी के बारे में उन्होंने कोई विशेष उल्लेख नहीं किया। जिस प्रकार से गांधीजी ने अपनी पुस्तक 'एक्सपरिमेंट विद ट्रुथ' में कस्तूरबा के बारे में चर्चा की है, या यूं कहिए विश्लेषण किया है वह लाजपत राय को पसंद नहीं था। उनकी आत्मकथा में पत्नी के बारे में बहुत संक्षेप में चर्चा की गई है, परन्तु जो कुछ भी कहा गया है वह बिल्कुल स्पष्टवादी ढंग से कहा गया है।

उनके पिता ने उनकी शादी उस समय ही कर दी थी, जब वह अभी स्कूली छात्र थे, परन्तु उनका घरेलू जीवन कुछ वर्ष पश्चात् शुरू हुआ। इसमें निश्चय ही कोई लड़ाई झगड़ा नहीं था परन्तु यह बात स्पष्ट है कि इसमें ऊंचे दर्जे की सुख शान्ति भी न ही थी।

संभवतः यह बात मनोविश्लेषकों के लिए एक समस्या है कि यदि उन्हें अपनी पत्नी या घर से अधिक प्रेम होता, तो समाज सुधार तथा रचनात्मक कार्यों के लिए उनके मन में उत्साह तथा भ्रमण-लालसा इतनी अधिक न दिखाई देती। उन्हें यह शिकवा था कि उनकी पत्नी उस प्रकार के जीवन में अधिक रुचि नहीं लेती थी जिस प्रकार का जीवन उन्हें पसंद था। ऐसा दिखाई पड़ता है कि उनकी पत्नी ने इस बात का पूरी तरह अहसास कर लिया था और वह इसी से ही पूरी तरह संतुष्ट थी कि अपने पति की सुख सुविधा का ध्यान रखे और यह काम उन्होंने पूरी श्रद्धा से किया भी। शायद वह यह उचित ही महसूस करती थी कि उनके पति अपने बच्चों तथा घर के प्रति सदा न्याय नहीं करते थे जैसा कि उन्हें करना चाहिए था वह कर सकते थे। परन्तु यह बात उन्होंने अवश्य ही शुरू में समझ ली थी कि पति के इन तौर तरीकों को तब्दील नहीं किया जा सकता, इसलिए

उन्होंने अपनी यह भावना मन में ही रखी। उन्हें अपने आपको ऐसे जीवन के अनुकूल ढाल लेने का श्रेय दिया जाना चाहिए, जिसका चुनाव करने में उनकी इच्छा नहीं थी। यदि उन्होंने जीवन को पति की इच्छा के अनुसार समृद्ध बनाने के लिए सक्रिय योगदान नहीं दिया तो पति के रास्ते में कोई बाधा भी नहीं डाली और पूरी ईमानदारी से कोई ऐसी बात नहीं की, जिससे अप्रसन्नता बढ़े या घरेलू तनाव पैदा हो। उन्होंने कभी कोई झगड़ा खड़ा नहीं किया। इस विचित्र संदर्भ को ध्यान में रखते हुए यह कोई कम महत्त्व की बात नहीं थी, चाहे इससे रचनात्मक योगदान नहीं मिलता था। और इस प्रकार आपकी सहमति से (या उनकी मौन स्वीकृति से) लाजपत राय की पत्नी का उनके जीवन के बड़े फैसलों में कोई असर न था, इसलिए वकालत के पेशे से इतनी जल्दी अवकाश लेने के प्रश्न पर, जब राय लेने का मामला आया तो यह राय माता-पिता से ली गई।

मुंशी राधाकिशन उस समृद्धि से प्रसन्न थे, जो उनके वकील पुत्र की कीमा से घर में आई थी। अपने पुत्र के सुझाव पर काफी समय पहले उन्होंने अपने काम से निश्चित अवधि से पूर्व ही अवकाश प्राप्त कर लिया था। उन्होंने लाजपत राय के इस विचार का जोरदार विरोध किया कि वह भरपूर युवावस्था में ही वकालत छोड़ देंगे। पुत्र और पिता में असहमति थी। पुत्र ने बाद में लिखा है "वकालत का पेशा मेरी पसंद का नहीं था। मैं इसे छोड़कर अपना सारा समय देश सेवा में लगाना चाहता था। परन्तु मेरे पिता इस विचार से सहमत न थे और इस संबंध में मेरे रास्ते में रुकावट थे। वह चाहते थे कि मैं धन जमा करूं और अपने भाइयों तथा बच्चों के लिए उचित व्यवस्था करूं। मैं यह उत्तर देता था कि मैंने अपने भाइयों को शिक्षा दिलाने की उचित व्यवस्था करने का अपना कर्तव्य पूरा कर दिया है, और अपने बच्चों के पालन पोषण के लिए मेरे पास काफी राशि है। मेरे इस नेक प्रस्ताव का मेरी मां ने कोई विरोध न किया। उनकी सहानुभूति मेरे साथ थी।"

यह रस्साकशी कुछ समय के लिए चलती रही और तभी समाप्त हुई जब 1898 में लाहौर आर्य समाज की शताब्दी के अवसर पर उन्होंने वकालत के काम को सीमित करने और अपना अधिक से अधिक समय "कालिज, समाज तथा अपने देश की सेवा के लिए' देने के निर्णय की घोषणा कर दी। अब उन्होंने अपना

कार्यालय स्कूल की इमारत के एक कमरे मे बना लिया और जिन दिना वह यात्रा पर न होते, तो कालिज तथा समाज के काम के लिए प्रतिदिन वहा जाते। अब नगरेतर समाजा मे उनके दौरे बढ गए, क्योकि उनकी घोषणा के बाद प्रात के सभी आय समाज (जो कालिज वाले गुट के समयक थे) यह समझते थे कि अपने वार्षिक अधिवेशन के लिए उन्हें निमत्रण देना उनका अधिकार था। उन्होने कालिज मे भारतीय इतिहास पर भाषण देना शुरू कर दिया, यद्यपि वह इस सिलसिले को कुछ एक महीना से अधिक जारी न रख सके। उन्होंने प्राचीन आय सभ्यता के बारे मे उर्दू मे एक पुस्तक लिखी, जिसमे इस सस्कृति का पूण ब्यौरा दिया गया था। यह पुस्तक मुख्य तौर पर स्कूली छात्रा के लिए थी (परतु प्रौढ व्यक्ति इसका अधिक पसद करते तथा प्रशसा करते थे)। यह पुस्तक एक प्रकार से उनकी उस समय की कल्पना की अग्रदूत थी, जिस कल्पना को उन्होन अपने असहयोग कारावास के दौरान पुस्तक का रूप दिया। उन्होने स्कूली छात्रा के लिए अग्रेजी की एक पाठ्य पुस्तक भी तैयार की। कुछ समय के लिए तो ऐसा दिखाई दता था, जैसे वह पूणकालिक अध्यापक तथा शिक्षा शास्त्री बनने जा रहे है।

वह अपने मुवक्किला के काम मे व्यवस्थित ढग से कमी करते जा रहे थे। अपने नए निणय को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए उन्होने कोई दो वष बाद अगला कदम उठाया। उन्होने यह निणय किया कि जो कुछ भी वह वकालत से कमाएगे, स्वय नही लेंगे। यह घोषणा उन्होंने अपने मित्र प्रिंसिपल हसराज को लिखे पत्र म की, और कई वष तक वह वकालत की अपनी कमाई, जिसे समर्पित करने की वह पहले घोषणा कर चुके थे, डी० ए० वी० कालिज को और समाज को देते रहे। आमतौर पर यह समझा जाता था कि वह अपनी सारी कमाई केवल समाज तथा कालिज को दिए जा रहे है। जब कि वास्तव म उनका यह निश्चय वकील के तौर पर व्यावसायिक फीस के बारे मे था। ऐसा करने का उनका मुख्य उद्देश्य इस लालसा को समाप्त करना था कि वह अपना समय और शक्ति अपनी आय मे वृद्धि करने के लिए नष्ट न करें। धन भडार म वृद्धि उनके और उनकी निष्ठा के बीच में नही आनी चाहिए। यद्यपि कई वर्षों तक वह यह आय मुख्य तौर पर कालिज तथा समाज को देते रहे, परन्तु उन्हें अपनी इच्छा से यह कमाई अन्य नेक कार्यों में भी लगाने की पूरी स्वतत्रता थी। इस प्रकार का बलिदान अनोखा था और शायद अद्वितीय भी और इसका गहरा प्रभाव पड़ा। इस

बलिदान तथा निज के लिए धन के इस प्रकार से त्याग और इसके साथ ही वाक्पटुता और जोरदार भाषण न उन्हें खतरनाक याचक बना दिया। चन्दे के लिए उनकी अपील आर्य समाज के वार्षिक अधिवेशनों का निश्चित भाग बन गई और लोगों के इन समारोहों में शामिल होने से कतराने के स्थान पर वहां और अधिक लोग आकर्षित होने लगे। उनके जोरदार भाषण कंजूस से कंजूस लोगों को भी अपनी अंटी ढीली करने के लिए विवश कर देते थे और इस प्रकार मौके पर ही भारी राशि एकत्र हो जाती थी, जिसका स्वागत किया जाता था। यह धन आर्य समाज तथा कालिज की अपर्याप्त तिजौरी को भरने में चला जाता था।

17. हरकिशन लाल

नौवें दशक में लाहौर में एक बहुत ही कर्मठ व्यक्ति थे—युवा वकील हरकिशन लाल। अनिवार्य था कि चीफ कोर्ट में लाजपत राय की उनसे भेंट हो। यह आर्य समाजियों के निंदक थे और उन्हें 'गपोड़ा' कहकर आनन्द लिया करते थे। इसके बावजूद दोनों ने शीघ्र ही महसूस किया कि उनमें कई बातें समान हैं और यह सम्पर्क सहयोग में बदल गया, जिसने बाद में मित्रता का रूप ले लिया।

यद्यपि वह इंग्लैंड से शिक्षा समाप्त करके हाल ही में भारत लौटे थे, परन्तु हरकिशन लाल को शायद अपने महत्व के बारे में पहले ही अहसास हो गया था। गणित के विद्यार्थी के रूप में कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में उनका विशिष्ट स्थान था। इंग्लैंड में अन्य भारतीय छात्रों के समान उन्होंने भी वकालत पास कर ली। परन्तु उनके विपरीत किसी विशेष उद्देश्य से उन्होंने लोम्बार्ड स्ट्रीट (बैंक तथा महाजनी क्षेत्र) का और शेयर बाजार के तौर-तरीकों का अध्ययन किया। वह नौवें दशक के आरम्भ में लाहौर आये। उनमें असाधारण शक्ति और तीक्ष्ण बुद्धि थी, जिसमें अथाह विचारों की भरमार थी और वित्तीय मामलों की उच्च स्तरीय पूरी सूझ बूझ थी। उन्हें सट्टा बाजार के व्यापार की हेरा फेरी का ज्ञान भी था। उन्हें परम्परा की रत्ती भर भी परवाह नहीं थी और वह सनकी भी थे जिस प्रकार कोई युवा स्वभाव से सामान्यतः नहीं होता। वह इस बात के बारे में निश्चित दिखाई देते थे कि कोई बड़ा कार्य कहीं उनकी प्रतीक्षा कर रहा है, परन्तु उन्हें यह जानकारी नहीं थी कि यह वकालत में है या राजनीति में, उद्योग में है या वित्त क्षेत्र में। वकालत के पेशे में उन दिनों होनहार व्यक्ति के लिए सफलता की सम्भावनाएं बहुत अच्छी थीं। राजनीति में वह यह पहले ही देख चुके थे और वहां प्रतिभाशाली तथा साहसी नेतृत्व के लिए बहुत गुंजाइश भी थी। उद्योग तथा वित्त के मामलों में पंजाबियों ने अभी कोई महत्वपूर्ण कार्य नहीं किया था। हरकिशन लाल ने वकील के तौर पर कार्य प्रारम्भ कर दिया था, परन्तु अभी वह इस बात के अनिश्चय में थे कि क्या इस व्यवसाय में बहुत अधिक जमने की गुंजाइश थी। ऐसा दिखाई पड़ रहा था कि वह अभी आस-पास के वातावरण का जायजा ले रहे हों, इस बात की टोह ले रहे हों कि व्यापार के कठिन उतार-चढ़ाव क्या हैं और विशाल राजनीति क्षेत्र कैसा है। वह इतने अधिक

निंदक और सनकी थे कि उनके लिए आर्य समाज में शामिल होना संभव नहीं था । अत्यधिक उत्साही आर्य समाजियों पर वह जोर से हंसते और उनका मजाक उड़ाते थे । उनके लिए वे सब अल्पबुद्धि वाले तथा रंग में भंग डालने वाले थे । वह उनके साथ ऐसा बर्ताव करते, जिसमें घृणा छिपी हुई होती थी और अपनी तेज जबान के लिए उन्हें अच्छा मसाला मिल जाता था ।

हरकिशन लाल की प्रतिभा और व्यापारी जगत् में रास्ता तथा चोर रास्ता की गहरी जानकारी के लिए उनके प्रति प्रशंसा और सम्मान के बावजूद, श्रोताओं के मन में यही प्रश्न उभर कर आता था कि क्या उच्चस्तरीय वित्तीय मामलों के इन जादूगरों को हरकिशन लाल ने अपने लिए आदर्श के रूप में चुना था ?

हरकिशन लाल की असफलता पर शत्रु क्षेत्र में प्रसन्नता की लहर तब दौड़ी जब उनका बैंक असफल होने पर अंग्रेजों ने घी के दिए जलाए । उनके प्रति छिद्रान्वेषी होने का भी मन नहीं चाहता था । और 1919 के मार्शल ला के दिनों में उन्होंने जिस शानदार ढंग से अपने व्यवहार का परिचय दिया, उससे हर सच्चे पंजाबी को उन पर गर्व महसूस होता था । जब लाजपत राय निर्वासन से बाद लौटे, तो दोनों बहुत अधिक प्यार से मिले । दोनों इस बात के लिए चिंतित थे कि माइकल ओ' डायर ने पंजाब को, जो बहुत बड़ा आघात पहुंचाया है, उसे मिटाया जाए । ओ' डायर, लाजपत राय और हरकिशन लाल, दोनों से घृणा करता था और इस प्रकार दोनों में मित्रता का नया संबंध स्थापित हो गया । जैसे ही अमरीका में रहने के बाद लाजपत राय ने पंजाब में कार्य आरम्भ किया, उन्होंने अपना उर्दू दैनिक 'वन्दे मातरम्' जारी कर दिया और 'राजनीति की तिलक विचारधारा' (तिलक स्कूल आफ पालिटिक्स) की स्थापना की । हरकिशन लाल ने बड़ी उदारता से सहायता दी । वह समाचार-पत्र के महत्वपूर्ण हिस्सेदार तथा निदेशक बन गये और राजनीतिक विचार-धारा (स्कूल आफ पालिटिक्स) के लिए दस हजार रुपये दान देने का इकरार किया । परन्तु यह सहयोग अल्प-अवधि का रहा । असहयोग आंदोलन के कारण वे दोनों फिर अलग-अलग पक्षों में चले गए । एक सरकार के सदस्य बन गये और दूसरे जेलों में कैदी । 'वन्दे मातरम्' में हरकिशन लाल का भाग लाजपत राय को खरीदना पड़ा और दस हजार रुपये दान देने का वचन

अपूर्ण ही रहा। जब लाजपत राय ने हरकिशन लाल को, जो यूरोप के लिए रवाना होने वाले थे, अनुस्मारक भेजा, तो उन्होंने बम्बई से उत्तर दिया कि उन्हें तिलक में विश्वास नहीं और न ही किसी राजनीतिक विचारधारा में, और धन मांगने का कोई औचित्य नहीं, जब तक उनके मित्र उनमें परिवर्तन न ला सकें। इस प्रकार अंत तक यह मैत्री अनियमित चलती रही।

हम नौवें दशक की अपनी चर्चा की ओर लौटते हैं।

मूलराज कुछ समय से इस बात पर जोर दे रहे थे कि भारतीय संयुक्त शेयर बैंक स्थापित किया जाए, जो भारतीय पुनर्निर्माण की ओर पहला कदम होगा। उनके सुझाव पर लाजपत राय ने कुछ चुने हुए मित्रों को एक परिपत्र भेजा, जिसका उत्तर संतोषजनक मिला। परन्तु लाजपत राय ने निर्णय कर लिया था कि यह बैंक किसी अन्य व्यक्ति की निगरानी में होगा, क्योंकि उनके अपने जिम्मे बहुत काम था और वह नहीं चाहते थे कि कालिज और समाज के लिए उनके कार्य में कोई बाधा पड़े। इस बीच हरकिशन लाल की प्रतिभा तेजी से चमक रही थी और ध्यान खींच रही थी। यद्यपि वह आर्य समाजियों की जोरदार खिल्ली उड़ाते थे, इसके बावजूद उन्होंने यह महसूस किया कि पंजाब में किसी भी योजना की सफलता के लिए उनका सहयोग अत्यावश्यक है। उन्होंने मूलराज के साथ कई बार विचारों का आदान-प्रदान भी किया था। उन्हें दयाल सिंह मजीठिया का विश्वास प्राप्त था और उन्होंने सरदार के 'ट्रिब्यून' के सम्पादक, नगेंद्र नाथ गुप्त को भी अपने साथ कर लिया था। पंजाब नेशनल बैंक आरम्भ कर दिया गया। लाजपत राय निदेशक बोर्ड में नहीं थे, परन्तु मूलराज और हरकिशन लाल ने उनके भाई दलपत राय को प्रबंधक तथा सचिव के पद के लिए चुन लिया। इस प्रयोग से लाजपत राय और हरकिशन लाल की मित्रता को पहला आघात पहुंचा।

उन्होंने आत्मकथा में लिखा है, 'सचिव के तौर पर मेरे भाई ने हरकिशन लाल के आदेश पर कुछ ऐसा कार्य किया, जिसका संबंध एक अन्य निदेशक से था। इस सौदे से बैंक को घाटा रहा और बोर्ड ने प्रबंधक से लाला हरकिशन लाल का स्पष्टीकरण देने के लिए कहा। मेरे भाई ने हरकिशन लाल को उनके अपने

हस्ताक्षरों वाला वह निर्देश दिखाया, जिसके अनुसार उसने कार्य किया था। लाला हरकिशन लाल चाहते थे कि दलपत राय उस दस्तावेज को नष्ट कर दें। ऐसा करने से इकार करके उसने लाला हरकिशन लाल को नाराज कर लिया और त्यागपत्र दे दिया।"

ऐसा लगता है हरकिशन लाल ने इस बदमजगी को और भी कटु बना दिया, क्योंकि उन्होंने दस हजार रुपये की वह राशि लौटाना स्थगित कर दिया, जो दलपत राय को जमानत के तौर पर जमा करवानी पड़ी थी।

लाजपत राय ने लिखा है, 'यह राशि बोर्ड ने मेरे भाई की मृत्यु के बाद तक न लौटाई, यद्यपि इसकी मृत्यु उसकी बैंक की नौकरी से त्यागपत्र देने के एक वर्ष बाद हुई थी। मेरे भाई ने यह रकम मुझसे उधार ली थी और उसने अपने अन्तिम क्षणों में भी इस बारे में अप्रसन्नता प्रकट की थी।"

उनकी मैत्री को दूसरा आघात काफी समय बाद लगा। हरकिशन लाल ने देखा कि पंजाब नेशनल बैंक का बोर्ड उनके अनुकूल नहीं है। उन्होंने 'पीपुल बैंक' आरम्भ कर दिया, परन्तु जब पंजाब नेशनल बैंक के निदेशक के तौर पर उनका कार्यकाल समाप्त हुआ, तो उन्होंने दोबारा निर्वाचित होना चाहा। आर्य समाज ग्रुप ने लाजपत राय को उनके मुकाबले में खड़ा कर दिया। दोनों के बीच यह पहला द्वंद्व था, जिसमें लाजपत राय विजयी रहे।

लाजपत राय ने आत्मकथा में लिखा है, "मैं उनके स्थान पर निर्वाचित हो गया, इसके पश्चात् स्थायी विद्वेष हो गया और कांग्रेस के फंड के झगड़े को लेकर उस विद्वेष में और वृद्धि हो गई। इण्डिया इंश्योरेंस कम्पनी में भी मूलराज और हरकिशन लाल के बीच अप्रिय मतभेद उत्पन्न हो गए। दर-असल, मूलराज तो इतने कटु हो गये, जैसे हरकिशन लाल को बरबाद करना ही उनके जीवन का लक्ष्य बन गया था।"

हरकिशन लाल और आर्य समाजियों की अच्छी तरह न बन पाई, बल्कि इस अनबन के कारण आर्य समाजी लोगों में कांग्रेस आन्दोलन से दूर हटने की रुचि में वृद्धि ही हुई। दयाल सिंह मजीठिया ने, जिन्होंने कई लोक हितैषी ट्रस्ट स्थापित किए और 'ट्रिब्यून' आरम्भ किया, पंजाब कांग्रेस के मामलों में गहरी रुचि ली।

1893 का कांग्रेस अधिवेशन पंजाब में करने के लिए बख्शी जैशीराम ने निमंत्रण दिया था। वह लाहौर के वकीलों में प्रमुख तथा आर्य समाज और डी० ए० वी० कालिज ग्रुप के प्रमुख नेता थे। परन्तु आर्य समाजियों का कांग्रेस के मामलों में कम ही रुचि थी। 'महात्मा' ग्रुप ने सिद्धान्त रूप में राजनीति में ऊपरी रुचि लेने का विरोध किया, विशेषकर इसलिए कि यह 'गैर वफादारी' के तत्वावधान में था। मूलराज यद्यपि इस बात के लिए उत्सुक थे कि पर्दे के पीछे रहकर नेता की भूमिका निभाएं, परन्तु उन्होंने समिति का विरोध किया। दयाल सिंह और एक प्रमुख ब्रह्म समाजी जोगेंद्र चन्द्र बोस, पंजाब कांग्रेस में विशेष हस्ती बने रहे। हरकिशन लाल, दयाल सिंह के बहुत मुंह लगे बन गए और उन्होंने उनकी राजनीति का पूरी तरह समर्थन किया। 1893 के अधिवेशन में तथा उसके बाद के वर्षों में पंजाब में कांग्रेस के मामले मुख्य तौर पर दयाल सिंह तथा हरकिशन लाल के हाथों में रहे।

1900 में लाहौर को कांग्रेस का दूसरा अधिवेशन देखने का विशेष अवसर प्राप्त हुआ। 1898 में दयाल सिंह का देहांत हो चुका था। बख्शी जैशीराम ने राजनीति में अपनी रुचि निरंतर बनाए रखी और 1900 तक उन्होंने अपने क्षेत्र में काफी अच्छा प्रभाव बना लिया था। इसलिए, इस अधिवेशन में आर्य समाजियों ने पहले अधिवेशन के मुकाबले अधिक उत्साह दिखाया। वे बहुत सुव्यवस्थित और प्रशिक्षित व्यक्ति थे और उनकी ओर से सुझाव आया कि अस्थाई पंडाल बनाने पर धन व्यय करने के स्थान पर एक विशाल हाल का निर्माण किया जाए, जिसमें कांग्रेस का अधिवेशन हो और यह इमारत स्थायी रूप में बनी रहे। इस प्रकार ब्रैडले हाल का निर्माण हुआ, यद्यपि कुछ आर्य समाजी इसका नाम किसी विदेशी के नाम पर रखे जाने के विरुद्ध थे।

अन्य बातों के अलावा कांग्रेस अधिवेशन के हिसाब किताब के कारण आर्य समाजियों और हरकिशन लाल के बीच फिर मतभेद उत्पन्न हो गए। अधिवेशन से कुछ मास पूर्व बख्शी जैशीराम का देहांत हो गया जिस पर उनके अनेक मित्रों तथा डी० ए० वी० कालिज ने गहरा शोक व्यक्त किया। स्वागत समिति के अध्यक्ष बाबू काली प्रसन्न राय ने उनकी चर्चा करते हुए उन्हें 'प्रांत में कांग्रेस आन्दोलन की जान तथा ज्योति" बताया। जैशीराम की मृत्यु से पंजाब के राजनीतिक जीवन को बहुत जबरदस्त धक्का पहुंचा।

क्या हरकिशन लाल को भी कांग्रेस के प्रति यही संदेह थे, जो आर्य समाजियों को थे ? बाद में जब 1907 के कष्टपूर्ण दिनों में आर्य समाज के कुछ नेताओं ने "हिन्दू हितों" के नाम पर विरोध व्यक्त किया और अपने आपको "गैर वफादार" गतिविधियों से अलग कर लिया, तो हरकिशन लाल उनके साथ थे, दूसरे गुट के साथ नहीं जिसके बारे में संदेह था। लाजपत राय ने संभवतः 1907 के वफादार प्रतिनिधि मंडलों के बारे में सोचा होगा, जब उन्होंने यह कहा कि "हरकिशन लाल का राजनीतिक दृष्टिकोण आर्य समाजियों वाला ही था, परन्तु अप्रकट रूप में वह कांग्रेसी थे।"

जब 1900 में लाहौर में कांग्रेस अधिवेशन हुआ, उस समय इस प्रांत का राजनीतिक जीवन दो गुटों में बंट चुका था—हरकिशन लाल का गुट और आर्य समाज गुट। ट्रिब्यून ट्रस्ट के संस्थापक दयाल सिंह ने अपनी वसीयत में हरकिशन लाल को एक ट्रस्टी नामजद किया था। दयाल सिंह के जीवन में आर्य समाजियों को समाचार-पत्र के विरुद्ध कोई शिकायत न थी, परन्तु जब से हरकिशन लाल ने इसका नियंत्रण संभाला था, यह स्थिति बदल गई थी। लाहौर कांग्रेस (1900) के अवसर पर 'ट्रिब्यून' हरकिशन लाल का समाचार पत्र बन चुका था।

आर्य समाजी नेताओं ने यह सोचना आरम्भ कर दिया था कि क्या यह उचित नहीं रहेगा कि वे अपना समाचार-पत्र निकालना शुरू कर दें। ब्रैडले हाल में 1900 के कांग्रेस अधिवेशन के बाद पंजाब में राजनीतिक जीवन का दीपक बिलकुल गुल हो गया था। पंजाब कांग्रेस ने पहले भी कोई अधिक काम नहीं किया था। परन्तु अब तो जो रहा-सहा काम हो रहा था, वह भी निर्बाध नहीं था।

हम आत्मकथा में पढ़ते हैं—"1900 के कांग्रेस अधिवेशन के हिसाब किताब का झगड़ा कभी भी उचित ढंग से निपटाया नहीं गया। इसलिए जब भी समिति की बैठक होती, विवाद उभर कर सामने आ जाते। अन्त में लाला हरकिशन लाल ने कोई बैठक बुलाना ही छोड़ दिया। इसके अतिरिक्त हरकिशन लाल का स्वयं कांग्रेस नेताओं के साथ झगड़ा हो गया। इंडियन एसोसिएशन तो पहले ही सो चुकी थी। पंजाब अब 'राजनीति के बिना' हो गया और लार्ड कर्जन के वायसराय काल के आरम्भ में अन्य प्रांतों में जो आन्दोलन हुए, पंजाब ने उनमें कोई विशेष भाग न लिया।"

प्रशासन लोकमत के प्रति बिल्कुल उदासीन हो गया और शीघ्र ही पजाब के नेताओ ने महसूस किया कि उन्हें अपने आपको हरक्त मे लाकर पजाब म राजनीतिक जीवन को पुनर्जीवन देना होगा, नही तो प्रशासन उन्हें निरादर से लताड देगा । आय समाज के नेताओ ने 1903 और 1904 मे बा -बार स्थिति का जायजा लिया । राजनीतिक आन्दोलन का पुनरुत्थान अवश्य होना चाहिए, केवल प्रश्न था कि कैसे ? काग्रेस समिति मरणासन्न थी और हरकिशन लाल के हाथो मे थी, इडियन एसोसिएशन लगभग मर चुकी थी, 'ट्रिब्यून पूरी तरह हरकिशन लाल के आदेशो के अनुसार चलता था और शत्रुतापूण था, उसकी राज नीति निदनीय होती जा रही थी । उनके वार्तालापो की मुख्य बात यह थी कि उनका अपना समाचार पत्र हो । हरकिशन लाल जैसी समस्या के समाधान के लिए पजाब मे एक ईमानदार और उग्र समाचार पत्र होना बुरी बात नहीं थी।

18. 'द पंजाबी'

जब लाजपत राय नई शताब्दी में दाखिल हुए, तो उनकी सीमाएं बहुत विस्तृत हो चुकी थीं व प्रतिदिन और फैलती जा रही थीं। आर्य समाज तथा पंजाब उन्हें अपनी नई शक्ति के पूर्ण इस्तेमाल के लिए बहुत छोटे लग रहे थे। यह नई शक्ति उनके अन्दर उमड़ रही थी और वह इसके लिए उचित रास्ते ढूंढ रहे थे। पंजाब में तो वह मैजिनी तथा गैरिबाल्डी पर लिखी उन पुस्तिकाओं के कारण लोकप्रिय थे, जिनसे नई राष्ट्रीय चेतना पैदा हो रही थी और स्वतन्त्रता के लिए इच्छा प्रबल हो रही थी। सामाजिक धार्मिक आन्दोलन के नेता के रूप में वे उतने नहीं उभरे थे। छोटी चीजों का अपने स्थान पर अपना महत्व था परन्तु उनकी आत्मा किसी बड़े कार्य के लिए छटपटा रही थी।

कांग्रेस बहुत दब्बू दिखाई देती थी और इससे कोई उद्देश्य पूरा होता दिखाई नहीं देता था, परन्तु इसमें संभावनाएं अवश्य थीं। ऐसा जान पड़ता था कि उसकी रगों में जोशीला खून ही नहीं है। परन्तु यदि उसे प्रेरित करने वाली शक्ति मिल जाए तो निश्चय ही वह काम कर सकेगी।

जैसा कि हम देख चुके हैं 1900 के लाहौर अधिवेशन के बाद पंजाब उदासीनता के दौर से गुजर रहा था। हरकिशन लाल भी, जिनके बारे में विचार था कि वह कांग्रेस को चला रहे हैं, उससे ऊब गये दिखाई पड़ते थे। लाजपत राय को यह सब बातें पसंद नहीं थीं। उन्होंने अपना समय तथा ध्यान अधिक-से अधिक राजनीतिक कार्यों में लगाना शुरू कर दिया और शीघ्र ही यह महसूस कर लिया कि ऐसे कार्य को प्रभावशाली बनाने के लिए समाचार-पत्र प्रथम तथा सर्वोपरि आवश्यकता है। वह और उन्हीं के ढंग से सोचने वाले अन्य व्यक्तियों का यह पक्का विश्वास था कि वर्तमान समाचार पत्र सार्वजनिक शिक्षा प्रदान करने के लिए वह ठोस आधार नहीं बन सकते जिनके बिना कोई भी महत्वपूर्ण राजनीतिक ढांचा खड़ा करना संभव न हो।

एक दिन तो ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई जिसे सहन करना ही असंभव था। लाहौर के एक प्रमुख भारतीय समाचार पत्र के सम्पादक ने कुछ छात्रों के गुप्त नाम से प्रकाशित किए गए लेख की मूल पाण्डुलिपि गवर्नमेंट कालिज के प्रिंसिपल

को सौप दी और इस प्रकार अपने आपको विश्वास के अयोग्य तथा पत्रकारिता के सिद्धातो से बिलकुल कोरा सिद्ध कर दिया । छात्रो को बदले की भावना से दड दिया गया । इसके पश्चात लाजपत राय तथा उनके मित्र उनके इस निर्णय को और अधिक न रोक सके कि वे अपना समाचार पत्र तुरत आरम्भ करें । उनमें से दस एकत्र हुए और उन्होंने निर्णय कर लिया कि वे एक-एक हजार रुपये देंगे, यदि इस सौदे मे उनका यह धन चला भी गया, तो कोई चिन्ता नही । दरअसल, उन्होंने कुछ नही खोया, क्योकि उन्होने प्रबधक के तौर पर ऐसा व्यक्ति चुना जिसे ठोस व्यापार का सहज बोध था । वह थे डी० ए० वी० के एक लेखक राय—जसवत राय । समाचार-पत्र जिसका नाम 'द पजाबी' था—अक्तूबर 1904 में आरम्भ किया गया । अपने प्रथम सस्करण से इसने लोगो की आकाक्षाओ की पुष्टि कर दी थी कि वह डटकर मुकाबला करेगा । यह सर्वज्ञात था कि समाचारपत्र की नीति का पथ प्रदर्शन तथा नियत्रण लाजपत राय करेंगे । तिलक के सुझाव पर उन्होंने के० के० अठावले को सम्पादक नियुक्त किया, वह स्वय अक्सर अपने हस्ताक्षरो से लेख लिखते थे । इसके अतिरिक्त वह निश्चित रूप से आम तौर पर बिना हस्ताक्षर के सम्पादकीय लिखते थे । 'द पजाबी' का उद्देश्य केवल एक अतिरिक्त समाचार पत्र होना ही नही था । इसे तो सप्ताह दर सप्ताह अनेक तरीको से अपने उद्देश्यो की पूर्ति के लिए कार्य करना था, ताकि पजाब मे नई राजनीतिक चेतना पैदा की जा सके । अन्य लोगो को इसमे चाहे कुछ भी दिखाई दिया हो लाजपत राय के लिए तो यह निस्सदेह उसी कार्य का साप्ताहिक सिलसिला था जो कई वर्ष पूर्व मजिनी की पुस्तिका के प्रकाशन से आरम्भ हुआ था । दोनो मामलो मे उद्देश्य एक ही था पत्रकारिता तो उसी शिक्षा के प्रचार के लिए केवल एक और माध्यम थी । यह प्रभावशाली भी था, क्योकि दिन प्रति दिन उस उपदेश को लागू करने के लिए यह ठोस ढग से कारवाई करने मे योगदान देता था । 'द पजाबी' का आरम्भ उन्होने इसलिए किया था जिससे आलसी जनमत को, जो पिछले तीन वर्षों मे और अधिक निष्क्रिय हो गया था, उत्तेजित किया जा सके । उन्होने भी महसूस किया कि वह समय निकट ही है जब यह सिद्ध हो जाएगा कि यह डाट-डपट कितनी हितकारी है और उचित समय पर की गई है ।

आजकल के मापदड से 'द पजाबी' कोई बडा समाचार पत्र नही था और यदि भविष्य के स्तर से आका जाए तो वह और भी घटिया लगेगा । वह आठ पृष्ठो का साप्ताहिक था जिसे एक छोटा सा प्रेस प्रकाशित करता था । समाचार सूचनाएं

प्राप्त करने के लिए इसके पास कोई साधन नहीं थे। उन दिनों भारतीय समाचार-पत्रों के कार्यालयों में 'खबर' या पत्रकारिता वाला महत्व नहीं होता था—न ही इसके लिए कोई लम्बा चौड़ा अमला ही होता था। 'रूपक' नाम की किसी वस्तु का उन दिनों कोई ज्ञान नहीं था। हाफ-टोन ब्लाक अलभ्य वस्तु थी, क्योंकि ऐसा ब्लाक बनवाने के लिए बम्बई, पूना या कलकत्ता जाना पड़ता था। बहुत से समाचार सम्पादकों ने अभी मुद्रणकला तथा छपाई की कला नहीं सीखी थी और न ही पाठक इन मामलों में अधिक तुनक मिजाज थे। 'द पंजाबी' अपने तौर-तरीकों में शायद अपरिपक्व लगे, परन्तु वह सावधान तथा प्रभावशाली था। इसे पता था कि कैसे और क्या कहना है? इसका असल उद्देश्य सामने था—पंजाब को बड़े संघर्ष के लिए तैयार करना, जो निश्चित रूप से निकट आ रहा था, जिसका सहज ही पूर्वानुमान हो रहा था। यदि इसका आभास वृद्ध कांग्रेसियों को नहीं था, तो युवा कांग्रेसियों को अवश्य था और लाजपत राय को तो जरूर ही था, जिन्हें आनेवाली घटनाओं का बड़े रहस्यमयी ढंग से पूर्वानुमान हो जाया करता था। इस उद्देश्य के लिए 'द पंजाबी' ने बहुत प्रभावशाली ढंग से कार्य किया। हर सप्ताह इसके कालमों में स्थानीय शिकायतों, पुलिस की ज्यादतियों और जातीय घमंड तथा अक्खड़पन की चर्चा होती थी। इसके अतिरिक्त देश-व्यापी मामले होते थे, जैसे लार्ड कर्जन का विश्वविद्यालयों से सम्बद्ध बिल तथा विदेशी और अन्तर्राष्ट्रीय घटनाएं, जिन्हें उसी एकमात्र उद्देश्य के लिए इस्तेमाल किया जा सके। आरम्भ से ही 'द पंजाबी' ने रूस की ज़ार सरकार के विरुद्ध जापान की सफलता की ओर विशेष ध्यान दिया। ये सफलताएं समूचे पूर्व की चेतना को प्रभावित करने जा रही थीं और 'द पंजाबी' ने इस बात पर विशेष ध्यान रखा कि उस के पाठक इस शक्तिशाली प्रभाव से वंचित न रह जाएं।

बड़ा संघर्ष, जिसके लिए लाजपत राय और 'द पंजाबी' तैयारी कर रहे थे, शीघ्र ही आ गया—उससे भी शीघ्र जितनी उन्हें आशा थी। बंगाल में यह गवर्नर कर्ज़न द्वारा प्रेसीडेंसी को दो भागों में विभाजित करने से और पंजाब में उप-राज्यपाल इब्बटसन के भूमि तथा नहर कालोनी कानूनों के कारण पैदा हुआ। 'द पंजाबी' ने इन मामलों के बारे में जनमत तैयार करने और जब यह आंदोलन शक्तिशाली और बढ़ते ज्वार का रूप धारण कर गया, तो उसे सही तथा बेधड़क ढंग से व्यक्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

19. बम्बई कांग्रेस अधिवेशन

'द पजाबी' वाल गुट न काग्रेस के साथ अपना सम्पक फिर स स्थापित करन का निणय किया और इसी लिए उन्हान 1904 के बम्बई अधिवेशन म अपना एक प्रतिनिधि मडल भेजा । लाजपत राय और उनके मित्र द्वारका दास (जिनक नाम पर लाजपत राय न लोक सेवा सघ को पुस्तकालय भेंट किया) काग्रेस अधिवेशन म भाग लेने वाले इस प्रतिनिधि मडल के प्रमुख नेताओ मे थे । काग्रस म अभी सघप शक्ति अधिक नही थी और इसका "रचनात्मक" काय भी कम ही था । एक प्रकार से इसका एक वार्षिक मेला आयोजित होता था, जहा इसके प्रवक्ता अपने जोरदार भाषण झाडते थे । ऐसा जान पडता है कि उस समय तक इसका मुख्य उद्देश्य साल भर की शिकायतो को व्यक्त करना था, जो स्थायी अथवा मोटी मागो के अतिरिक्त होती थी । यह सगठन कुछ अव्यवस्थित ही रहा । आय समाजियो को, जो सुव्यवस्थित सगठना तथा सुनियोजित सावजनिक काय क अभ्यस्त थे काग्रेस के काय विशेष प्रशसाजनक न लगे । उन्हान अपने प्रवक्ताओ, लाजपत राय तथा द्वारका दास के माध्यम से ऐसे सविधान और ऐसी व्यवस्था की आवश्यकता पर बल दिया, जो सारा साल निरतर काय करे । परन्तु उनका दूसरा प्रयत्न सर फिरोजशाह मेहता न आसानी से विफल कर दिया । मेहता उन दिनो काग्रेस क सर्वाधिपति थे । परन्तु लाजपत राय के लिए यह अधिवेशन एक और दृष्टि से कुछ महत्वपूण रहा जिसकी हम अभी चर्चा करेंगे ।

अधिवेशन के तुरत बाद वह एक पोत द्वारा श्रीलका के लिए रवाना हो गए और उन्होन मालाबार तट भूमि तथा सागर क्षेत्र की सुदरता को देखा तथा उसकी प्रशसा की और वापस आते समय रामेश्वरम की यात्रा की तथा मदुरै का प्रसिद्ध मन्दिर देखा । यह उनकी पहली दक्षिण-यात्रा थी । तीन दिन वह मद्रास मे ठहरे और जी० सुब्रह्मण्यम अय्यर के अतिथि बने और फिर कलकत्ता के लिए रवाना हो गये ।

1904 क काग्रेस अधिवशन के बाद इस भ्रमण के दौरान ही गोखले के साथ उनकी महत्वपूण मुलाकात हुई । गोखले उन दिनो सर्वोच्च परिषद की बैठक के सबध मे कलकत्ता म ही थे । गोखले उन्हें एक दशक के तौर पर परिषद मे ले गए जो उस दिन कर्जन के विश्वविद्यालय कानून की अनियमितताओ की

वैधता के बारे में एक बिल पर विचार कर रही थी। उन्होंने गोखले का गैर-सरकारी पक्ष की ओर से बोलते हुए सुना। उन्होंने और भाषण भी सुने और लिखा कि "उस सारे नाटक ने मेरे मन पर बहुत प्रभाव डाला।"

कर्जन द्वारा आरम्भ की गई नीतियों पर दुख व्यक्त करते हुए कांग्रेस नेताओं ने वायसराय के पास एक प्रतिनिधि मंडल भेजने का निर्णय किया। कर्जन ने कांग्रेस अध्यक्ष से मिलने से इन्कार कर दिया और इस प्रकार उसने 'कांग्रेस के मुंह पर करारी चपत लगाई।" नेताओं ने इस पर "बहुत अपमान महसूस किया और बहुत पछताव खाए ... और ब्रिटिश जनता से अपील करने का फैसला किया।" भारत की शिकायतें ब्रिटिश जनता के समक्ष रखने के लिए, बम्बई अधिवेशन में इंग्लैंड के आगामी चुनावों के अवसर पर अपना एक प्रतिनिधि मण्डल वहां भेजने का निर्णय किया। गोखले ने सुझाव दिया कि लाजपत राय को इस प्रतिनिधि मण्डल में शामिल कर लिया जाए और लाजपत राय ने इस सुझाव को तुरंत स्वीकार भी कर लिया। उन्होंने महसूस किया था कि वह प्रतिनिधि मण्डल के लिए सहायक होंगे तथा विदेश में जो अनुभव प्राप्त होगा, वह अमूल्य होगा। वह गोखले के साथ सम्पर्क को बहुत महत्व देते थे और शीघ्र ही दोनों के बीच आपसी सम्मान पर आधारित मित्रता स्थापित हो गई जिसकी खातिर लाजपत राय ने बिना किसी प्रकार के पछतावे के बलिदान किए। दोनों का राजनीतिक दृष्टिकोण समान नहीं था और बाद के दिनों में मतभेद और बढ़ गए, परन्तु उन्होंने कभी टकराव का रूप न लिया।

गोखले के माध्यम से उन्होंने कलकत्ता में और कई महत्वपूर्ण सम्पर्क स्थापित किए और वह सिस्टर निवेदिता के साथ अपने सम्पर्क को बहुत सम्मानपूर्ण और अद्वितीय मानते थे, संभवतः वह सिस्टर निवेदिता द्वारा लिखित "उग्रवादी हिन्दूधर्म" तथा सजातीय विषयों पर रचनाएं पढ़ चुके थे। आर्य समाज यदि "उग्रवादी हिन्दू धर्म" नहीं तो और क्या था और अब तक आर्य समाज काफी हद तक उदारवादी भी बन गया था। हिन्दू धर्म की व्याख्या करते हुए उनके दृष्टिकोण का अधिक बल हिन्दू धर्म की निहित प्रतिभा पर होता था, एक या दूसरे संकीर्ण सिद्धांत पर नहीं। *व्यावहारिकता में उसका बल सम्पूर्ण स्वतंत्रता* दिलाने पर था, विशेषकर राजनीतिक स्वतंत्रता। उन्होंने वेदांतवाद को अपने पिता के समान स्वीकार नहीं किया था, परन्तु वह इतने सभ्य और समझदार हो गये थे कि उस दर्शन के गुणों के महत्व को समझ सकते थे। निवेदिता सांस्कृतिक

तथा आध्यात्मिक क्षेत्रा म काम कर रही थी और वह अधिक से अधिक राजनीतिक तथा अन्य सक्रिय क्षेत्रा म कायरत थे। परन्तु व एक दूसरे का भली भाति समय सकत थे। यह सम्पक दो समान आत्माओ का सम्पक बन गया। वे राजनीति के बारे मे बातचीत करत और बिना किसी प्रतिबध के बातचीत करत। एस० के० रैंडक्लिफ जो उस समय 'द स्टेटसमैन' का सम्पादन करत थे, के कार्यालय की ओर जात समय उन्होने अपने विचारा का स्पष्टता से आदान प्रदान किया।

बाद मे उन्होन लिखा, "मैंने रास्ते मे उनके मुह से जो बातें सुनी, उन्हे कभी भूल नहीं सकता। वह ब्रिटिश शासन से जोरदार घृणा करती थी और भारतीयो से बहुत प्रेम। राजनीति मे वह उन्ही न्यायमुक्त सिद्धाता का समथन करती थी, जिन्हें मैं जिनो न प्रतिपादित किया था। सक्षेप मे, इस भेंट न मेरी इस धारणा का और भी दृढ कर दिया और इससे मुझे बहुत प्रसन्नता हुई।"

इसके बाद मीठी यादे शेष रह गइ। बाद म जब भी उन्होन उनका स्मरण किया, तो बहुत खुशदिली से किया और व बात इतनी ताजा और महकदार लगी, जैस किसी वस्तु को सभालकर रख दिया गया हो।

20. गोखले के साथ इंग्लैंड में

ब्रिटेन में आम चुनाव स्थगित हो गए थे। इसलिए ब्रिटिश मतदाता, जिन्हें ब्रिटिश संसद का निर्णायक विधाता माना जाता है, भारत से आए प्रतिनिधि मंडल का सुगमता से स्वागत नहीं कर पाए थे। गोखले ने अपनी योजना में परिवर्तन कर लिया। जिस दिन (10 मई 1905) लाजपत राय को लाहौर से रवाना होना था, उन्हें एक तार मिला जिसमें कहा गया था कि इंडियन नेशनल कांग्रेस की ब्रिटिश समिति के अध्यक्ष सर विलियम वेडरबर्न ने गोखले को सलाह दी है कि वह अपनी यात्रा जुलाई तक स्थगित कर दें और उन्होंने यही किया। लाजपत राय को यह बात बहुत बेढंगी लगी। उन्होंने यूरोप की अपनी प्रथम यात्रा के लिए सभी तैयारियां पूरी कर ली थी और लाहौर के मित्रों ने उन्हें शानदार ढंग से विदाई भी दे दी थी। अब यह सब कुछ शायद बेकार का आडम्बर लगे। इसीलिए उन्होंने फैसला किया कि आम चुनाव हो या न हो, अपनी योजना में परिवर्तन नहीं करेंगे।

लाजपत राय को बाद में पता चला कि वेडरबर्न ने केवल चुनाव कार्यक्रम के बारे में सूचित किया था, जिसे गलती से बम्बई में यह समझ लिया गया कि भारतीय प्रतिनिधि मंडल को अपने कार्यक्रम में परिवर्तन करने की सलाह दी जा रही है।

वह अपने कार्यक्रम पर कायम रहे। बम्बई जाते हुए वह कुछ समय के लिए रास्ते में पूना में ठहरे। इस संक्षिप्त विराम के दौरान वह आंशिक रूप से गोखले के और आंशिक रूप से तिलक के अतिथि रहे और अगले दिन उनका जहाज रवाना हो गया।

वह 'द पंजाबी' के लिए बिना हस्ताक्षर के सम्पादकीय लिखना जारी न रख सके, परन्तु यथाशीघ्र उन्होंने विदेश में अपनी यात्रा अथवा गतिविधियों के बारे में पत्र लिखने का अवसर प्राप्त कर लिया। उन्होंने यात्रा विवरण में पोर्ट सईद, नेपल्स, रोम तथा मिलान के बारे में (ये स्थान उन्होंने रास्ते में देखे) अपने विस्तृत अनुभव लिखे। 10 जून 1905 को वह लंदन पहुंच गए।

इंडियन नेशनल कांग्रेस की ओर से, जो अब बीस वर्ष पुराना संगठन हो चुका था, लंदन में कुछ प्रचार सर विलियम वेडरबर्न की अध्यक्षता में बनाई गई

इंडिया कमेटी कर रही थी। यह समिति भारतीय मामलों के बारे में एक लघु मासिक पत्रिका, जिसका नाम 'इंडिया' था, प्रकाशित करती थी। कांग्रेस हर वर्ष इस पत्रिका के लिए भारी राशि खर्च करती थी। दादाभाई नौरोजी भी काफी समय तक इंग्लैंड में रहे। वह दक्षिण केंसिंग्टन में रहते थे और अपना अधिक समय भारतीय पक्ष के लिए समर्थन प्राप्त करने में लगाते थे। वह 1886 में और फिर 1893 में दो बार कांग्रेस अधिवेशन की अध्यक्षता कर चुके थे। दादाभाई को अंग्रेजों के 'न्याय तथा ईमानदारी के प्रति स्वाभाविक प्रेम" में विश्वास था और उनका अधिक समय भारत की ओर से इस "स्वाभाविक प्रेम" के प्रति पुनरावेदन करने में ही व्यतीत होता था। दादाभाई तथा वेडरबर्न इंग्लैंड में इंडियन नेशनल कांग्रेस के प्रमुख प्रवक्ता थे।

अधिक युवा तथा अधिक जोशीले व्यक्ति, कांग्रेस नेताओं की निस्तेज तथा सौम्य राजनीति तथा लंदन में उनकी इंडिया कमेटी से बहुत असंतुष्ट थे। श्यामजी कृष्ण वर्मा युवा गुट के नेता तथा प्रवर्तक शक्ति थे। श्यामजी ने स्वामी दयानंद के अनुयायी के रूप में जीवन आरम्भ किया था, जिनकी सिफारिश पर संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान प्रोफेसर मानियर विलियम्स अपने अनुसंधान में सहायता के लिए, श्यामजी को इंग्लैंड ले गए थे। वहां वकालत पास करने के पश्चात् श्यामजी भारत लौट आए थे और कुछ वर्षों के दौरान उन्होंने कई कार्यों पर हाथ आजमाया था। स्वतंत्रता प्रेमी व्यक्ति के लिए यहां की परिस्थितियां अनुकूल न देखकर आखिरकार वह भारत छोड़ गए थे। जान पड़ता था कि वह लंदन में बस गए थे। वह हरबर्ट स्पेंसर की लेखनी से बहुत प्रभावित हुए और जब उन्होंने इंग्लैंड में एक पत्रिका आरम्भ की तो उसका नाम 'इंडियन सोशियलाजिस्ट' रखा। समाज विज्ञान के प्रचलन का मुख्य श्रेय हरबर्ट स्पेंसर का था और पत्रिका के इस नाम का उद्देश्य इसके सम्पादक के सामाजिक विचारों के झुकाव को व्यक्त करना था। इस पत्रिका ने कांग्रेस नेताओं पर, गोखले और दादाभाई तथा कांग्रेस के ब्रिटिश मित्रों पर जोरदार आक्रमण किए। इस प्रकार से यह 'इंडिया' की घोर निन्दा थी। श्यामजी एक टेढ़े व्यक्ति थे और उनके साथ निबाह करना कठिन था यद्यपि आरम्भ में उन्हें विदेशों में भारतीय क्रांतिकारी आंदोलन का दिमाग तथा मुख्य प्रेरणा स्रोत समझा गया था, पर उन्होंने कोई स्थायी मित्र न बनाया और न ही किसी वफादार अनुयायी को आकर्षित किया। एक बड़ी बात तो यह थी कि उनकी तेज जबान उनकी बहुत बड़ी त्रुटि थी। वह सदा धन कमा सकते थे, परन्तु उसे छोड़ने के लिए कभी तैयार

नहीं होते थे। इसके साथ ही उन्होंने कांग्रेस नेताओं की गंभीर तथा सौम्य राजनीति के विरुद्ध असंतोष पैदा करने के लिए बहुत सशक्त प्रभाव डाला।

लाजपत राय ने लिखा है कि "यह कहना कि हरदयाल और सावरकर उनके अनुयायी थे, इन दो महान व्यक्तियों का महत्व घटाना होगा, परन्तु इस बात में कोई संदेह नहीं कि श्यामजी के विचारों ने उन्हें प्रभावित किया था।" इसका स्पष्ट तात्पर्य यह है कि हरदयाल और सावरकर समूचे क्रांतिकारी आंदोलन को प्रभावित करने वाले माने जाते हैं। श्यामजी की भूमिका को केवल इस लिए कम महत्व का समझकर छोड़ देना उचित नहीं कि उनका कोई निष्ठावान अनुयायी नहीं था। 1905 में श्यामजी अपने 'इंडियन सोशियोलाजिस्ट' तथा इंडिया हाउस के माध्यम से बहुत सक्रिय थे। यह छात्रावास भारतीय छात्रों को आकृष्ट करने के लिए स्थापित किया गया था। वह लाजपत राय से उनके होटल में मिले और उनके साथ विचारों का आदान प्रदान किया और उन्हें इंडिया हाउस में रहने के लिए निमंत्रण दिया। यह निमंत्रण कुछ समय बाद स्वीकार किया गया था।

हाईगेट में इंडिया हाउस का उस समय तक विधिवत उद्घाटन कर दिया गया था और इस अवसर पर लाजपत राय उपस्थित थे।

लगभग एक महीने के लिए लाजपत राय इंग्लिश काउंटीज तथा स्काटलैंड का भ्रमण करते रहे, जहां उन्होंने बैठकों में भाषण देकर अपने पक्ष को स्पष्ट किया और जब श्यामजी के निमंत्रण पर वह अगस्त में लंदन लौटे, तो इंडिया हाउस में ठहरे।

परन्तु लंदन में कांग्रेस की इंडिया समिति के कुछ सदस्यों को उनका इंडिया हाउस में ठहरना उचित नहीं लगा। जब एक दिन लाजपत राय और श्यामजी ने 'होम रूल' के समर्थन में हौलबर्न हाल में अथवा सोशलिस्ट बैठक में भाषण दिया, तो इंडिया कमेटी में हलचल स्पष्ट दिखाई दी थी। लाजपत राय अभी रहने के लिए श्यामजी के इंडिया हाउस में नहीं गये थे। वह बैठक किसी श्रमिक संगठन ने बुलाई थी और लाजपत राय को उसके उपाध्यक्ष दादाभाई नौरोजी ने आमंत्रित किया था।

लाजपत राय न लिखा है

"जब सर हैनरी काटन को पता चला कि श्यामजी तथा मने 'स्वराज' के समर्थन म एक ही मच से भाषण किए थे, उन्होंने बहुत नाराजगी व्यक्त की और ब्रिटिश समिति के समक्ष एक प्रस्ताव रखा कि मैं इग्लैंड म प्रतिनिधिमडल के सदस्य के रूप म आया हू और मेरा यह व्यवहार बहुत आपत्तिजनक है।"

परन्तु सर वेडरबन ने सर हैनरी के प्रस्ताव का समर्थन नहीं किया और स्वय लाजपत राय ने यह बात स्पष्ट कर दी कि "काग्रेस का प्रतिनिधि बनकर मैंने अपनी स्वतत्रता का सौदा नही किया, यद्यपि मेरे भाषण मे ऐसी कोई बात नहा थी जिस पर कोई काग्रेसजन आपत्ति कर सके। और यदि यह कहा जाए कि प्रतिनिधि बनकर मुझे इस देश मे अपने विचार व्यक्त करने की स्वतत्रता नहीं है, तो मैं प्रतिनिधिमडल से त्यागपत्र देने के लिए तैयार हू, परन्तु किसी भी शत पर अपनी स्वतत्रता का बलिदान देने को तैयार नही।"

सर हैनरी काटन ने आखिर इस बात का सारा दोष उनके भाषण को गलत तौर पर पेश किए जाने को दिया और यह मामला समाप्त कर दिया गया।

लाजपत राय अपनी स्वतत्रता छीने जाने को आसानी से सहन नहीं कर सकते थे और उन्होने इस स्वतत्रता को पूरी तरह इस्तेमाल किया। लाजपत राय ने मानचैस्टर, ऐडनबरो, लिवरपूल तथा अन्य स्थानो पर भाषण दिए। गोखले भी पहुच गये थे। अक्सर वे एक ही मच से भाषण देते। कई बार वे यात्रा करते और अलग-अलग भाषण करते। उन्होने अपना सदेश ब्रिटिश मतदाताओ तक पहुचा दिया और इसका निर्णय उनकी बुद्धि पर छोड दिया।

भारत तथा ब्रिटिश दलगत राजनीति के बारे म 'द पजाबी' मे प्रकाशित एक लेख म लाजपत राय ने लिखा कि लिबरल तथा टोरियों म से चयन करने वाली कोई बात ही नही। यदि कुछ लोग हैं जिनसे किसी प्रकार की मत्री की आशा की जा सकती है, तो वे है लेबर पार्टी वाले। उस समय तक लेबर पार्टी लिबरल पार्टी का ही एक भाग थी। श्यामजी के माध्यम से लाजपत राय ने अतिवादी क्षेत्रो मे कुछ मित्रता बना ली थी। उन्होने ब्रिटिश समाजवादी लेखक एच० एम० हिण्डमैन तथा कुछ आयरिश नेताओ की विशेष तौर पर चर्चा की है।

बड़ौदा के गायकवाड ने, जो उन दिनों लंदन में थे, सीमिल में जहां वह ठहरे हुए थे एक स्वागत समारोह आयोजित किया। अतिथियों में श्यामजी और लाजपत राय भी थे, उनका महारानी से परिचय कराया गया। गायकवाड ने धीरे से उनके कान में कहा कि वे स्वागत समारोह समाप्त होने के तुरंत बाद ही चले न जाएं। वे अंग्रेज अतिथियों के चले जाने के बाद वहां ठहरे रहे और उन्होंने महाराजा से बातचीत की "जिसमें महाराजा ने अपना मन हमारे सामने खोलकर रख दिया और अपने जले दिल के फफोले हमें दिखाए।" ये शब्द लाजपत राय के ही हैं।

भारत लौटने से पूर्व लाजपत राय ने अमरीका की संक्षिप्त यात्रा की। वह दीवान बद्रीनाथ के साथ गए थे, जो पंजाब के सरदारों के एक प्रमुख परिवार के वंशज थे और उस समय प्रगतिशील विचारों वाले युवक थे।

अक्तूबर में वह लंदन लौट आये। सर विलियम वेडरबर्न ने उनके लिए भाषण-यात्रा का कार्यक्रम तैयार कर रखा था। गोखले तथा उन्होंने मिलकर बहुत-सी सभाओं में भाषण किए। इनमें से अनेक (विशेषकर लाजपत राय के भाषणों के लिए) बैठकों का आयोजन लेबर संगठन के तत्वावधान में किया गया था।

गोखले द्वारा इंग्लैंड जाने वाले प्रतिनिधिमंडल के लिए लाजपत राय के चुनाव का इंडियन एसोसिएशन की पंजाब शाखा ने तुरंत स्वीकार कर लिया था और उसने प्रतिनिधि के खर्च के लिए धन देने के वास्ते अपील जारी कर दी थी। लाहौर लौटने पर लाजपत राय ने घोषणा की कि इस प्रकार जमा किए गए धन में तीन हजार या लगभग इतनी राशि बच गई है, जो अन्य सार्वजनिक कार्यों के लिए इस्तेमाल की जाएगी। उनकी इस वर्ष की वकालत की आय डी० ए० वी० कालिज के बजाय, विदेश यात्रा पर खर्च हो गई थी।

21. नया उत्साह

नवंबर 1905 के आरम्भ में लाजपत राय इंग्लैंड से रवाना हो गए। मार्साई से वह एस० एस० पैनिनसुलर नामक उसी पोत पर सवार हो गए, जिस पर लार्ड मिण्टो वायसराय का पद संभालने के लिए भारत आ रहे थे। वह 17 नवंबर को बम्बई पहुंचे।

लाहौर में उनका अभूतपूर्व स्वागत हुआ। लाहौर रेलवे स्टेशन के प्लेटफार्म पर तथा स्टेशन के बाहर भारी जनसमूह एकत्र था और जैसे ही उन्होंने डिब्बे से बाहर पांव रखा, एक बहुत ही प्रमुख नागरिक ब्रह्मसमाजी नेता बाबू जोगेन्द्र चन्द्र बोस ने उन्हें उठाकर अपने कंधों पर बैठा लिया। इस प्रकार उत्सुक जनसमूह उन्हें देख सकता था और इसके साथ ही वह भीड़ की धक्कमपेल से भी बच गए। जब वह अपनी बग्गी में सवार हुए, तो छात्र-गण गाड़ी खींचकर तीन किलोमीटर से अधिक दूर उनके कोर्ट रोड वाले मकान तक ले गए। छात्रों की लाजपत राय पर अटूट श्रद्धा थी और जब दावतों तथा स्वागत समारोहों का सिलसिला शुरू हुआ, तो छात्र भी इसमें पीछे न रहे—गवर्नमेंट कालिज के छात्रों ने भी उनके अभिनन्दन के लिए समारोह आयोजित किए।

अपने आसपास नजर घुमाकर देखने पर तुरंत ही उन्होंने आने वाली घटनाओं का आभास कर लिया। आर्य समाज के वार्षिक समारोह के लिए उनके नाम की घोषणा कर दी गई थी और आशा के विपरीत वहां इतने लोग एकत्र हो गए कि उचित व्यवस्था करने के लिए अस्थायी तौर पर इस सभा को स्थगित करना पड़ा। बाद में उन्होंने डी० ए० वी० कालिज के होस्टल में जन समूह को सम्बोधित किया। इस बैठक में उन्होंने कहा था कि उनमें जो भी अच्छाई है, वह समाज की ही देन है। परन्तु कई और बातों के कारण यह भाषण स्मरणीय हो गया, क्योंकि इसी भाषण में कही गई कई बातों को लेकर सरकार समर्थकों ने उनके निर्वासन के औचित्य के पक्ष में दलीलें दीं। अपने भाषण के अंत में उन्होंने भविष्यवाणी की कि "भारतीय आकाश से खून की वर्षा होगी। उस समय आकाश बिल्कुल निर्मल था, परन्तु रक्त के छोटे-छोटे धब्बे दिखाई दे रहे थे।"

सी० आई० डी० के कागजों में लाजपत राय का खतरा प्रत्यक्ष रूप में बढ़ता ही जा रहा था। "खून की वर्षा" वाले भाषण के बाद शीघ्र ही एक अन्य भाषण में 'अप्रिय परिणामों" की धमकी दी गई थी और इसके अलावा "सशर्त वफादारी" के खतरनाक अपसिद्धांत की बात कही गई थी। जिस लाहौर के बारे में अधिकारियों ने कुछ समय पूर्व सोचा था कि वहां सब कुछ बिलकुल शांत है, एकाएक उत्तेजित और खतरनाक हो उठा था। बहुत दूर बारीसाल में हुए लाठी चार्ज के विरुद्ध हुई पहली विरोध सभा जो लाहौर में हुई, अवश्य ही स्थानीय अधिकारियों को अविश्वसनीय लगी होगी। स्तब्ध तथा घबराए हुए अधिकारी वर्ग के लिए राज्य की यह स्थिति असहनीय थी और लाजपत राय के लाहौर की, लाजपत राय के पंजाब की यह नई स्थिति, उनके समक्ष थी।

और यह रोष बाहरी घटनाओं पर ही नहीं था। नई भूमि व्यवस्था के बारे में पंजाब की अपनी भी शिकायतें थीं।

भूमि के हस्तांतरण को रोकने के लिए नया कानून बनाया गया था। इसका बहुत विरोध हुआ, परन्तु उन वर्गों ने इसका समर्थन किया जिन्हें इस कानून की व्यापक सूचियों में "कृषक" दिखाया गया था। लाजपत राय तथा 'द पंजाबी' ने इस बिल का विरोध किया। कांग्रेस के अगले अधिवेशन में इस कानून के विरुद्ध एक प्रस्ताव पास किया गया। बाद में जब कांग्रेस ने देखा कि बहुत से मुसलमान भूमिपति इस कानून का समर्थन करते हैं क्योंकि इससे उनके अधिकारों को उचित संरक्षण मिलता था, तो उसने यह विरोध छोड़ दिया।

इब्बटसन के भूमि आबादकारी बिल का तो इससे भी अधिक विरोध हुआ। इस मामले में हिंदू, सिख, मुसलमान, शहरी तथा देहाती, कृषक तथा गैर कृषक सभी में पूरी एकता थी और शीघ्र ही पंजाब भूमि आंदोलन के बवंडर की लपेट में आ गया। हम इस आंदोलन के बारे में बाद के अध्याय में चर्चा करनी पड़ेगी।

बारीसाल सम्मेलन के कुछ दिन पश्चात कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन बनारस में हुआ। पहली बार "वाम-पंथी" तथा 'दक्षिण-पंथी" और फिर "गरम दलीय" तथा "नरम दलीय" में खुली टक्कर हुई।

बंगाल में अरविन्द के 'वंदे मातरम्' के कालमों में नया उत्साह दिखाई पड़ रहा था। महाराष्ट्र में तिलक की पार्टी ने गोखले तथा उनके अनुयायियों के नरम तौर-तरीकों की आलोचना की। पंजाब में तो लाजपत राय पहले ही लोगों के

विशेषकर युवा पीढी के, श्रद्धा पात्र बन चुके थे और उन्होंने किसी के मन में लेशमात्र भी संदेह नही छोड़ा था कि वह गोखले, दादाभाई नौरोजी और फिरोज शाह मेहता के साथ नहीं, बल्कि तिलक, अरविंद और विपिन चन्द्र पाल के साथ हैं।

बनारस में नया उत्साह हावी रहा। सभी ओर पिछले कांग्रेस अधिवेशनों के मुकाबले अधिक सरगर्मी दिखाई देती थी। अध्यक्षीय जुलूस, जिसमें जोश से भरपूर झांकियां थी, नरम दलीय नेता गोखले के लिए संतोषजनक श्रद्धांजलि थी, परंतु यह जोश नरमपंथी नीतियों के कारण नही, यह तो नई चेतना के कारण था। अध्यक्षीय सवारी में गोखले के साथ इंग्लैंड के उनके सहयोगी लाजपत राय भी थे और बाद में उन्होंने लिखा

"बनारस के नागरिकों ने गोखले का शानदार स्वागत किया। मैं उनके साथ उसी गाडी में सवार था। पायदान पर एक स्वयंसेवक खड़ा था, जिसके नारे कानों को बहरा किए दे रहे थे। इस जलूस को देखकर कोई भी व्यक्ति सोच सकता है कि राष्ट्र के बुरे दिन खत्म होने को है। गोखले प्रसन्न थे, "यदि हम ने काम किया होता तो लोगों में बहुत प्रशंसा तथा उत्साह होता," यह उन्होंने कहा था और उनकी आंखों में आंसू थे। यह वास्तव में बहुत ही अद्भुत दृश्य था।'

22. लाल, बाल, पाल

वर्ष 1906 ने बदली हुई मनःस्थिति पर बल दिया, जो बनारस में दिखाई पड़ी थी। अधिक शक्तिशाली तत्वों ने उस पवित्र शहर में हुए कांग्रेस अधिवेशन में निश्चय ही अपनी उपस्थिति का अहसास करा दिया था। बड़ी सफाई से तैयार किए गए प्रस्तावों की वार्षिक पुनरुक्ति, शानदार भाषणों से उनका समर्थन, जिनकी खूब प्रशंसा होती थी, लेकिन जिसके बाद लोग निरुत्साहित तथा विदेशी हाकिम निश्चिन्त हो रहे थे, अब काम नहीं दे सकती थी। अब भाषणों की नहीं, गतिशील कार्य की, सामूहिक आंदोलन की, जिसमें कुछ महत्वपूर्ण प्राप्ति में बिना चैन न हो, आवश्यकता थी। गति विज्ञान का मूलभूत सिद्धांत—क्रिया के विपरीत बराबर की प्रतिक्रिया—बिलकुल स्पष्ट दिखाई पड़ता था। कर्जन के अधीन अफसरशाही अक्खड़ मनःस्थिति में थी, जो लोगों की नाराजगी को विश्वविद्यालय कानून, बंगाल के विभाजन तथा अन्य कई अप्रिय कारणों से बढ़ा रही थी और इनका सामूहिक प्रभाव बहुत ही अधिक था। कर्जन 1905 में चला गया, परन्तु निरंकुश स्वभाव, जो बपौती के तौर पर वह छोड़ गया था, पीछे बना ही रहा। नई पार्टी—जो सचेत विचारधारा के रूप में व्यक्त हुई थी और जिसके प्रतिनिधि बंगाल में अरविन्द, पाल और 'वंदे मातरम्', महाराष्ट्र में तिलक और उनका 'केसरी' तथा पंजाब में लाजपत राय और 'द पंजाबी' स्वीकार किए गए थे, स्वदेशी तथा बहिष्कार का अभियान तेज करते जा रहे थे। ये व्रत तथा प्रतिज्ञाएं, जो बंगाल में मूल रूप से 'विभाजन समाप्त करवाने तक' के लिए ली गई थीं, उन्हें अब असीम करार दे दिया गया था। ब्रिटिश माल का बहिष्कार, विशेषकर ब्रिटिश कपड़ों का, कड़े से कड़ा होता जा रहा था। मानचैस्टर से माल मंगवाने के मांग पत्र, जो राजनीतिक उत्साहियों द्वारा नहीं, बल्कि व्यापार बुद्धि वाले मारवाड़ियों की ओर से नव वर्ष के आरम्भ में भेजे जाते थे, 1906 की सर्दी के मौसम में कम होते-होते बिलकुल न के बराबर हो गए। बहिष्कार, जिसे इसके आलोचकों ने हास्यास्पद होने की भविष्यवाणी की थी, इस अनुमान से बहुत दूर था, बल्कि इसके विपरीत इसका प्रचार हजारों घरों की छतों से हो रहा था और हजारों स्वयंसेवक चौकियां इसे लागू करवा रही थीं। राष्ट्रीय शिक्षा का आंदोलन छात्रों के मन को प्रभावित कर रहा था। उन्होंने कलकत्ता में 'व्हाइटवे लेडलो' के आगे धरना दिया और फैशनप्रिय महि

लाला ने सौजन्यतापूर्वक उनकी प्रार्थना विनती स्वीकार कर ली, नहीं तो उन्हें धरना देने वालों के शरीर पर पाँव रखकर ही आगे बढ़ना होता।

कर्जन के आदेश ने पूर्वी बंगाल में एक और प्रांत बना दिया था। परन्तु जब इस प्रांत के उप राज्यपाल ने बारीसाल में मानचेस्टर की मलमल का एक टुकड़ा खरीदना चाहा, तो दुकान पर उसके कर्मचारियों को बताया गया कि उन्हें पूर्वी बंगाल के नए पार्टी नेता अश्विनी कुमार दत्ता से पूर्व अनुमति लेनी होगी।

नई पार्टी के प्रमुख प्रवक्ता के रूप में बिपिन चन्द्र पाल बहिष्कार के क्षेत्र में वृद्धि कर रहे थे, ताकि विदेशी हाकिमों तथा उनकी सरकारी मशीनरी के साथ ऐसा सहयोग कतई न किया जाए जो बिल्कुल अनिवार्य न हो। दरअसल, इसका उद्देश्य वही कुछ दिखाना था जिसे एक दशक बाद बेरंग नकारात्मक "असहयोग" का नाम दिया गया, जिसमें पाल जैसे जोरदार ढंग से असहयोग कार्यक्रमों पर आक्रमण किया गया था।

हालात गंभीर रूप धारण कर रहे थे और अफसरशाही निश्चय ही घबराई हुई थी। घबराहट में उसने कई ऐसी कार्रवाइयाँ की, जिनसे मनोविक्षिप्ति के लक्षण व्यक्त होते थे। छात्रों और स्वदेशी आन्दोलन के बारे में कलकत्ता में एक बदनाम परिपत्र जारी किया गया था, जिसके बारे में प्रमुख एंग्लो इंडियन समाचार पत्र 'द स्टेट्समैन' ने लिखा

"हम उस अल्पबुद्धि कर्मचारी का नाम अवश्य मालूम होना चाहिए, जिसके कहने पर उप-राज्यपाल ने इस आदेश को स्वीकृति दी। सरकार ने बिल्कुल बचकाना और व्यर्थ नीति अपनाने की गलती की है, जिसके परिणामस्वरूप शहीदों की एक सेना खड़ी हो सकती है।"

पूर्वी बंगाल में जारी किए गए कई बदनाम परिपत्रों में शायद सबसे अप्रिय वह परिपत्र था, जिसमें सार्वजनिक तौर पर "वन्दे मातरम" का नारा लगाने की मनाही की गई थी। इस परिपत्र का एक प्रत्यक्ष परिणाम यह हुआ कि बंगालियों ने अप्रैल में बारीसाल में प्रांतीय सम्मेलन में अपने सभी प्रमुख नेता जमा कर लिए। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी को गिरफ्तार कर लिया गया और सरकारी लाठियों के जोर से बैठक भंग कर दी गई।

बारीसाल की पाशविकता के विरुद्ध जोरदार नाराजगी फैली। लाहौर में लाजपत राय की एक सार्वजनिक सभा में तुरंत जोरदार विरोध व्यक्त

किया गया और लाहौर की अगुवाई पर भारत के विभिन्न भागों के प्रमुख नगरों में भी ऐसा ही हुआ। बंगाल, महाराष्ट्र और पंजाब को "उग्रवादियों" के गढ़ समझा जाता था। निस्संदेह, पंजाब जोरदार संघर्ष में थे।

बारीसाल में चलाई गई लाठियों से आन्दोलन को नई शक्ति मिली। वर्ष का अन्त कलकत्ता में कांग्रेस अधिवेशन के साथ हुआ। कांग्रेस के नरम दलीय नेताओं के घबराने का उचित कारण था। स्थिति को पूरी तरह "उग्रवादियों" के हाथों में जाने से बचाने के लिए उन्होंने दादाभाई नौरोजी को इंग्लैंड से बुलवा लिया और कार्यवाही का संचालन करने के लिए उन्हें अध्यक्ष पद दे दिया, यद्यपि ऐसा करने के लिए उन्हें 82 वर्ष की आयु में इतनी लम्बी यात्रा का जोखिम उठाना पड़ा। दादाभाई का उग्रवादी तथा नरमपंथी-दोनों गुट-बराबर सम्मान करते थे। उनकी उपस्थिति के कारण दोनों गुटों के बीच खाई प्रत्यक्ष नहीं होने पाई। यद्यपि ध्यान से देखने वालों को दोनों गुटों के बीच दृष्टिकोण का मतभेद स्पष्ट दिखाई पड़ता था।

कुल मिलाकर कलकत्ता अधिवेशन अधिक उत्साही सदस्यों के लिए और भी सफलता का अवसर बना। इसके प्रस्तावों ने स्वदेशी तथा बहिष्कार का समर्थन किया (यद्यपि यह पूर्णतया 'पाल' प्रणाली के अनुसार नहीं था) और राष्ट्रीय शिक्षा का अनुमोदन किया जो बंगाली विचारधारा का विपक्षीय कार्यक्रम था। इससे अधिक क्या हो सकता था कि स्वयं दादाभाई नौरोजी ने अपने अध्यक्षीय भाषण में एक शक्तिशाली शब्द ढूंढ लिया, जिसे 'स्वदेशी' से भी अधिक शक्तिशाली रूप से केंद्रित करने के नारे का काम करना था। कांग्रेस मंच से उन्होंने पहली बार 'स्वराज' शब्द का प्रयोग किया। "स्वराज, स्वदेशी तथा बहिष्कार" ये तीन शब्द राष्ट्रवाद के पवित्र मंत्र बन गए।

लाजपत राय ने लिखा है "इस अधिवेशन ने राष्ट्रवादियों को बहुत संतुष्ट किया, जब कि कुछ नरम दलीय लोगों को यह गिला था कि जिस नेता को उन्होंने इंग्लैंड से इस आशा से बुलाया था कि वह नरम भाषण देगा उसी ने ही बड़ी निर्भीकता से अनुचित विचार पेश कर दिए। परन्तु उस अवसर पर बंगाल में केवल ऐसा ही करना संभव था। यदि कोई और रास्ता अपनाया जाता तो कांग्रेस के अस्तित्व के लिए ही संकट पैदा हो जाता।"

यहा मुण्डन की एक घटना चर्चा का विषय है। उन दिनो के आय समाजी नेताओ के समान लाजपत राय ने भी कई वष से लम्बी दाढ़ी बढ़ाई हुई थी। बगाली जनसमूह ने बहुत उत्साहपूवक दादाभाई नौरोजी का स्वागत किया, जो नव-निर्वाचित अध्यक्ष थे। परन्तु भारतीय राजनीति मे लाल-बाल-पाल का दौर शुरू हो चुका था और बगाल भारी बहुमत से इस विचारधारा का समथक था। इसका जोरदार प्रमाण इस बात से मिल सकता है कि किस प्रकार भारी जनसमूह ने महाराष्ट्र और पजाब से आए इन दो पूज्य व्यक्तियो का स्वागत किया। जब लाजपत राय हावडा रेलवे स्टेशन पर गाडी से उतरे तो जनसमूह ने दूर से ही उन्हें पहचान लिया इसमें उनकी लम्बी दाढी ने बहुत सहायता दी।

फिर भी, जब अधिवेशन के लिए दादाभाई के नाम के प्रस्ताव का अनुमोदन करने के लिए कहा गया, तो वह बिना दाढी के मच पर आए। श्रोता उलझन मे थे-परन्तु जैसे ही अनुमोदन करने के लिए आए व्यक्ति ने अपने होठ खोले, तो उनकी आवाज ने सारे सदेह दूर कर दिए। जो श्रोताओ को मत्र मुग्ध रख सकती थी, वह लाजपत राय की आवाज थी, उनकी दाढी नही।

वह अपने मेजबान राय बहादुर रलियाराम (पजाब के एक आय समाजी जो बगाल ईस्टन रेलवे मे सुपरिंटेंडिंग इजनियर थे) के घर लम्बी दाढी के साथ आए और वहा से काग्रेस अधिवेशन मे सफाचट ठोडी के साथ पहुचे। शाम को उनके मेजबान के घर एकत्र हुए उनके बहुत से प्रशसक यह पूछ रहे थे कि लालाजी कहा है, यह सिलसिला तब तक जारी रहा, जब तक उन्हें लालाजी की आवाज एक ऐसे मुह से नही सुनाई दी, जिसके चेहरे पर दाढी नही थी। उन्होने फिर कभी दाढी नही बढाई, यद्यपि मूछे अन्त तक रखी।

1906 के अन्तिम महीने तथा 1907 के आरम्भिक महीने बहुत ही तूफानी थे। बगाल मे जो बहिष्कार आरम्भ हुआ था, पजाब मे उसकी जोरदार प्रतिध्वनि सुनाई देने लगी थी। इससे अधिक महत्वपूर्ण, और शिक्षित वग मे कर्जन के व्यवहार के विरुद्ध फैली नाराजगी से भी अधिक महत्वपूण वे अनेक शिकायतें थी, जो उप-राज्यपाल सर डेंजिल इब्बटसन ने नहरी बस्तियो से सम्बद्ध कानूनो तथा मालिए और आबियाने

10561
21.3.90

की दरा म वृद्धि के कारण पैदा हुई थी। बगाल मे तो यह आन्दोलन अधिकतर 'भद्रलोक' से ही था, पजाब में कृपक समस्या बडी तेजी से बढ रही थी।

बगाल म अरविंद द्वारा सम्पादित व दे मातरम्' महाराष्ट्र मे तिलक का केसरी' और पजाब म 'द पजाबी', जिसके सम्पादक थे अठावले, परन्तु उसका नियत्रण तथा पथ प्रदशन लाजपत राय करते थे, जिसका सभी का पता था। प्रात के उनके मामाय कायक्रम म छापाखान मे जाना और अन्तिम प्रूफ पढना हाता था। 'द पजाबी' एक साप्ताहिक के रूप म आरम्भ हुआ था, परन्तु अब सप्ताह म उसके तीन सस्करण निकलत थे। इसकी सख्या तथा प्रभाव म वृद्धि हो रही थी। स्वभावतया उसके साथ सरकार की नाराजगी भी बढती जा रही थी। बार-बार अफवाहें उडती थी कि 'द पजाबी' मुसीबत मे फस रहा है, परतु यद्यपि उसने बडा साहसी रवैया अपनाया था फिर भी लाजपत राय एक वकील की दृष्टि से उसके प्रफो की जाच करते थे।

फिर भी सरकार न उसके सम्पादक क० क० अठावल तथा प्रकाशक जसवत राय के विरुद्ध मुकदमा आरम्भ कर दिया। उसन एक लेख पर आपत्ति की थी, जिसम एक पुलिस कास्टेबल की रहस्यमयी परिस्थिति म हुई मत्यु की ओर ध्यान दिलाया गया था। वह एक ऐसे सस्करण म प्रकाशित हुआ था, जिसके प्रूफ लाजपत राय ने नही देखे थे नही ता शायद उस लख को उस रूप मे प्रकाशित न होने दिया जाता, यद्यपि उस स्थिति म भी किसी न किसी कारण से 'द पजाबी' मुकदम स न बच पाता। इस मुकदमे के कारण, आशा के अनुसार 'द पजाबी' और भी लोकप्रिय हो गया और उसका प्रभाव बढ गया। विश्वास किया जाता था कि मुकदम से सबद्ध तथ्य बिल्कुल सच्चे थे। समाचारपत्र न मुसलमाना की सहानुभूति भी जीत ली क्योकि जिस कास्टेबल की मृत्यु म उसन रुचि ली थी, वह मुसलमान था। जसवत राय और अठावले का गिरफ्तार कर लिया गया, उनकी जमानत हो गई। मुकदमा चला और मुशक्कत की सजा सुनाई गई।

'द पजाबी के इस मुकदम ने पजाब म जोश और तनाव काफी बढा दिया। जिस दिन उसके सम्पादक और प्रकाशक को सजा सुनाई गई, उस दिन लाहौर मे सबसे अधिक जोश फैला हुआ था।

यहा मुण्डन की एक घटना चर्चा का विषय है। उा समाजी नेताओ के समान लाजपत राय ने भी कई वप से लम्‍ हुई थी। बगाली जनसमूह ने बहुत उत्साहपूर्वक दादाभा स्वागत किया, जो नव-निर्वाचित अध्यक्ष थे। परन्तु भा मे लाल-बाल-पाल का दौर शुरू हो चुका था और बगाा से इस विचारधारा का समथक था। इसका जोरदार प्रमा मिल सकता है कि किस प्रकार भारी जनसमूह ने महारा‌‍ से आए इन दो पूज्य व्यक्तियो का स्वागत किया। जब हावडा रलवे स्टेशन पर गाडी से उतरे ता जनसमूह ने इ पहचान लिया, इसमें उनकी लम्बी दाढी ने बहुत सहायता

फिर भी, जब अधिवेशन के लिए दादाभाई के नाम के प्रस मोदन करने के लिए कहा गया, तो वह बिना दाढी के मच श्रोता उलझन मे थे-परन्तु जैसे ही अनुमोदन करने के लिए ने अपने होठ खोले, तो उनकी आवाज ने सारे सदेह दूर क श्रोताओ को मत्र मुग्ध रख सकती थी, वह लाजपत राय म उनकी दाढी नही।

वह अपने मेजबान राय बहादुर रलियाराम (पजाब के ए जो बगाल ईस्टन रेलवे मे सुपरिटेंडिंग इजनियर थे) के ' के साथ आए और वहा से काग्रेस अधिवेशन मे सफा पहुचे। शाम को उनके मेजबान के घर एकत्र हुए उनके यह पूछ रहे थे कि लालाजी कहा है, यह सिलसिला त जब तक उन्हें लालाजी की आवाज एक ऐसे मुह से जिसके चेहरे पर दाढी नही थी। उन्होने फिर कभी यद्यपि मूछें अन्त तक रखी।

1906 के अन्तिम महीने तथा 1907 क आरम्भिक ही तूफानी थे। बगाल मे जो बहिष्कार आरम्भ हुआ मे उसकी जोरदार प्रतिध्वनि सुनाई देने लगी थी। इनसे अधि और शिक्षित वग मे अग्रेजो के व्यवहार के विरुद्ध पैनी नारा अधिक महत्वपूर्ण थे अनेक शिकायतें थी जो उप-राज्यपाल इब्बटसन ने नहरी बस्तियो के सम्बन्ध मे कानून तथा मानिए और

पुत्री, पार्वती, के साथ रहा। लालाजी ने अपने ही कार्यों में उसकी रुचि जगाई। वह सार्वजनिक सभाओं में बहुत सफल रही और असहयोग आन्दोलन में उन्होंने जेल-यात्रा भी की। लालाजी की मृत्यु के आठ वर्ष बाद, जब कांग्रेस ने परिष्कृत प्रान्तीय विधान सभाओं के लिए चुनाव लड़े, तो वह लाहौर के महिला निर्वाचन क्षेत्र से विधान सभा की सदस्या चुनी गई परन्तु शीघ्र ही गंभीर रूप से बीमार हो गईं और जनवरी 1938 में उनकी भी मृत्यु हो गई।

बाद में, सेशन अदालत ने जसवंत राय की सजा घटाकर छः महीने कर दी। इसके बाद चीफ कोर्ट में अपील की गई।

इन दिनों गोखले उत्तर भारत की यात्रा कर रहे थे। आमतौर पर यह विचार था कि लाजपत राय और गोखले दो अलग राजनीतिक विचार धाराओं के समर्थक थे, परन्तु दोनों के आपसी व्यक्तिगत सम्बन्धों पर जरा भी प्रभाव नहीं पड़ा था। लाजपत राय ने गोखले को इंडियन एसोसिएशन की ओर से आमंत्रित किया। वह उस समय उसके अध्यक्ष थे। गोखले ने तुरंत यह निमंत्रण स्वीकार कर लिया। वह लाहौर उस दिन पहुंचे जिस दिन उपर्युक्त घटनाओं के कारण जोश फैला हुआ था, जिस दिन जसवंत राय को दो वर्ष कैद की सजा सुनाई गई थी और उनकी जमानत हुई थी। जिस जनसमूह ने प्रातः 'द पंजाबी' की प्रशंसा में नारे लगाए थे और एंग्लो इंडियन समाचार-पत्रों का उपहास उड़ाया था, सायं रेलवे स्टेशन पर गोखले का स्वागत करने पहुंचा। 'द पंजाबी' को मिली सजा और भीड़ तथा पुलिस के बीच लगातार टकराव के कारण माहौल में बहुत अधिक तनाव पैदा हो गया था। परन्तु एस उत्साहजनक स्वागत और गगनभेदी नारों की प्रसन्नता गोखले के लिए कुछ कम हो गई जब जुलूस अनारकली पहुंचा और उस दिन के नायक जसवंत राय और अठावले (जो जमानत पर रिहा हो चुके थे) जुलूस में सम्मिलित हुए। जनसमूह ने गोखले की सहमति अथवा सुविधा का ध्यान किए बिना उन्हें उठाकर उसी गाड़ी में बिठा दिया जिसमें गोखले तथा उनके अनुरोध पर स्वयं लाजपत राय भी बैठे थे।

'द पंजाबी' के मुकदमे के दौरान एक बहुत ही दुखद घटना हुई। देहरादून के डाक्टर जयचन्द का जिनका विवाह लाजपत राय की इकलौती पुत्री पार्वती देवी से हुआ था देहांत हो गया। वह अपने पीछे युवा विधवा तथा एकमात्र पुत्र छोड़ गए, जो केवल कुछ दिन का था। उन्हें यह समाचार अदालत में उस समय मिला जब वह 'द पंजाबी' के मुकदमे में दलीलें दे रहे थे। लाजपत राय को भारी सदमा लगा परन्तु स्वाभाविक धैर्य के साथ उन्होंने अपने कार्य को रोकने से इन्कार कर दिया। उन्होंने अपने पुत्र को उचित निर्देश दिये और उसे देहरादून भेज दिया। स्वयं अपना दैनिक कार्य जारी रखा। इसके बाद घर में उनका अधिकतर समय विधवा

पुत्री, पार्वती, के साथ रहा। लालाजी ने अपने ही कार्यों में उसकी रुचि जगाई। वह सार्वजनिक सभाओं में बहुत सफल रही और असहयोग आंदोलन में उन्होंने जेल-यात्रा भी की। लालाजी की मृत्यु के आठ वर्ष बाद, जब कांग्रेस ने परिष्कृत प्रान्तीय विधान सभाओं के लिए चुनाव लड़े, तो वह लाहौर के महिला निर्वाचन क्षेत्र से विधान सभा की सदस्या चुनी गई परन्तु शीघ्र ही गंभीर रूप से बीमार हो गई और जनवरी 1938 में उनकी भी मृत्यु हो गई।

23. पंजाब में विद्रोह

वर्ष 1907 ने आंदोलन की एक ऐसी लहर फैलाई, जो असल में देशव्यापी बन गई। पंजाब में इसने जो रूप धारण किया, वह कृषक विद्रोह बन गया और इसे सामान्य तौर पर जमींदार आंदोलन कहते थे। पंजाब में जमींदार का अर्थ आमतौर पर "भूमि-पति" माना जाता है। यानि वह कृषक, जो भूमिपति हो। नये भूमि कानूनों के कारण दिन-प्रति दिन गंभीर असंतोष बढ़ रहा था और अधिक-से अधिक उग्र होता जा रहा था। नहरी बस्ती कानून ने नहर में सिंचित क्षेत्रों में हलचल मचा दी, इस जोश का स्वाभाविक केंद्र प्रमुख नहरी बस्तियों का नगर लायलपुर था। पश्चिम पंजाब में रावलपिण्डी भी लायलपुर जितना ही बुरा था, क्योंकि वहां सरकार ने अपने बंदोबस्त अधिकारी के अनुमानों के अनुसार अनुचित तौर से भू-राजस्व में वृद्धि कर दी थी। लाजपत राय ने उनकी शिकायतें तो उठाईं, परंतु वह कृषक आंदोलन में सक्रिय रूप से शामिल नहीं हुए। न ही वह इस आंदोलन से अलग रहे क्योंकि जमींदार उन्हें ऐसा नहीं करने देते थे।

'भारत माता' के प्रचारक अजीत सिंह अपने भाई किशन सिंह के साथ (भगत सिंह के पिता) जालंधर के एंग्लो संस्कृत स्कूल के छात्र थे, जहां आर्य समाज के नेता साईं दास के बड़े पुत्र सुंदर दास मुख्याध्यापक थे। अजीत सिंह, सुंदर दास के चहेता शिष्य थे और लाजपत राय की राय में "इस बात में कोई संदेह नहीं हो सकता कि यह लाला सुंदर दास ही थे जिन्होंने सबसे पहले इन दो भाइयों के मन में देशभक्ति की ज्योत जगाई।" लाजपत राय किशन सिंह से उस समय से परिचित थे जब केंद्रीय प्रांतों में 1897 के अकाल के समय उन्होंने सहायता कार्यकर्ता के रूप में काम किया था। जब वह अनाथों के एक दल को लेकर लौटे तो उन्हें लाहौर में नव स्थापित अनाथालय का संचालक बना दिया गया। लाजपत राय कई वर्ष तक अनाथालय के सचिव रहे और उन्हें संचालक के साथ मिलने का अक्सर अवसर मिलता रहता था, परन्तु ऐसा जान पड़ता है वह उनके भाई से विशेष रूप में प्रभावित नहीं हुए थे।

उन्होंने लिखा है, "अजीत सिंह उन दिनों डी०ए०वी० कालिज के विद्यार्थी थे और उन्हें कुछ फिजूलखर्ची की आदत थी मुझे किशन सिंह अपने भाई से कुछ अधिक अच्छे लगते थे। 1906 के कांग्रेस अधिवेशन में अजीत सिंह उग्रवादी गुट की बैठकों में देखे गये थे। उन्होंने सार्वजनिक सभाओं में वाद विवाद तथा विचार विमर्श में भाग लेना आरम्भ कर दिया था, वह समाचार पत्रों के लिये भी लिखते थे। 1907 में सूफी अम्बा प्रसाद के साथ मिलकर उन्होंने एक संगठन बनाया जिसे 'भारत माता' कहते थे और उसके तत्वावधान में युवक खुले आम उग्रवादी सिद्धांतों का प्रचार किया करते थे और ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध धड़ल्लेदार भाषण किया करते थे।"

लाजपत राय का 'भारत माता' के साथ कोई संबंध नहीं था और इस संगठन का संचालन करने वाले युवा लोग कई ऐसी बातें भी करते थे, जिन्हें संभवत लाजपत राय स्वीकृति न देते। इतना होते हुए भी, ये युवक लाजपत राय से सहायता प्राप्त करने की आशा रखते थे। और उन्हें इस बात का विश्वास था कि लाजपत राय को यह मालूम है कि वे देशभक्त हैं, उन्हें पता था कि इस दावे के बारे में लाजपत राय इंकार नहीं कर पाएंगे।

लाजपत राय ने लिखा है "इस दौरान अजीत सिंह मेरे पास बार-बार वित्तीय सहायता के लिए आये, यद्यपि उन्हें इस बात की परवाह नहीं थी कि वह मेरी शर्तें पूरी नहीं करते थे।"

अजीत सिंह तथा उनकी 'भारत माता' ने जमींदार आन्दोलन में प्रमुख तौर पर भाग लिया। वह जन्म से जाट थे और उन्हें किसानों के पक्ष में आवाज उठाने का पूरा अधिकार था, परन्तु वह और उनका भाई, आन्दोलन में भाग लेने वाले बहुत से अन्य जाटों की तरह केवल बस्ती कानून रद्द किए जाने तक ही रुचि नहीं रखते थे—वे इस आन्दोलन को फिरंगी राज के विरुद्ध असंतोष फैलाने के लिये इस्तेमाल कर रहे थे।

अजीत सिंह प्रभावशाली आन्दोलनकारी बनते जा रहे थे। उन्होंने सारे प्रांत का भ्रमण किया और सभाओं में भाषण दिए, हर स्थान पर उनका भाषण सुनने के लिये भारी संख्या में लोग उपस्थित हुए। लायलपुर के नहर कालोनी में, जिस पर बस्ती कानून का सीधा प्रभाव पड़ता था,

अन्य स्थानो के मुकाबले आन्दोलनकारी बडी आसानी से लोगो को उत्तेजित कर पाते थे। चौधरी शहाबुद्दीन, जिन्हें बाद मे नाइट की उपाधि दी गई तथा जो बाद मे पजाब विधान सभा के अध्यक्ष बने, इस क्षेत्र की ओर अधिक ध्यान दे रहे थे। उस समय वह वकील थे और जमीदारी आन्दोलन मे गहरी रुचि लेते थे।

मार्च 1907 के अन्त मे (या अप्रैल के आरम्भ मे) लायलपुर की जमीदार एसोसिएशन ने लाजपत राय को निमत्रण भेजा—और बाद मे स्मरण पत्र भी भेजे कि वह लायलपुर मे पशु मेले के अवसर पर वहा आयें। शहाबुद्दीन स्वय लाजपत राय से मिले, ताकि निमत्रण पर जोर दे सकें। 21 अप्रैल को लाजपत राय, बहादुर सुख दयाल (जो बाद मे जम्मू कश्मीर उच्च न्यायालय के न्यायाधीश बने), बख्शी टेक चन्द, रामभज दत्त चौधरी तथा जसवत राय के साथ वहा पहुचे।

लायलपुर तथा रावलपिण्डी तूफान के केन्द्र बन गये। अजीत सिंह ने लायलपुर की बैठक से कुछ दिन पहले रावलपिण्डी मे एक सभा मे भाषण दिया। रावलपिण्डी में उपस्थित नेताओ मे प्रमुख तौर पर हसराज साहनी तथा उनके भाई गुरदास राम साहनी, सम्मिलित हुए। दोनो प्रमुख वकील और आर्य समाज के सक्रिय नेता थे। देशभक्ति के आवेश से प्रेरित साहनी बधु राजनीति में बहुत रुचि लेते थे और इडियन नेशनल कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशनो में भाग लिया करते थे। विशेष प्रासगिक बात यह थी कि वे दोनो 'द पजाबी' के दस जामिनो मे से थे, इस समाचार पत्र द्वारा 'पिण्डी' के मामले मे गहरी दिलचस्पी लेने का एक कारण यह भी था। कुछ महीनो से 'द पजाबी' के कालमो मे रावलपिण्डी के डिप्टी कमिश्नर एम्न्यू की समाचारो तथा सम्पादकीयो मे कडी आलोचना हो रही थी। रावलपिण्डी मे अजीत सिंह की एक बैठक की अध्यक्षता गुरदास राम साहनी ने की थी। उनके भाई हसराज तथा दो अन्य वकीलो जानकी नाथ कौल और खजान सिंह ने भी बैठक मे भाषण दिये जो रावलपिण्डी के एक अन्य प्रमुख वकील अमोलक राम ने बुलाई थी।

इन पाचो वकीलो को जिलाधीश ने कारण बताओ नोटिस दिया था कि क्यो न उन पर बैठक मे भाग लेने के कारण वकालत करने के लिए प्रतिबध लगा दिया जायें।

इस नाटिस से पजाब भर म जोरदार हलचल मच गई, क्योंकि लाला अमोलक राम तथा लाला हसराज प्रात के बहुत सम्मानित नेता थे। लाजपत राय नाटिस की सुनवाई से एक दिन पूव रावलपिण्डी पहुच गये और उन्हें पता चला कि अदालत म नोटिस की सुनवाई के अवसर पर नगर म हडताल करन का निणय किया गया है।

रावलपिण्डी म स्थिति बहुत ही तनावपूण दिखाई द रही थी। पाच वकीला का दिये गये उस नाटिस ने लोगा की रुचि इतनी उत्तेजित कर दी थी कि सुनवाई के दिन बहुत भारी जनसमूह, अनुमान है बीस हजार लाग, अदालत के अहाते मे एकत्र हो गये थे। एक प्रकार स स्थिति की पराकाष्ठा तब आई, जब जिलाधीश न—जा अदालत के सामान्य समय से कोई दो घटे देर से पहुचे थे—घोषणा की कि पजाब सरकार के आदेश पर "इस मामले म आगे की कायवाही रोकी जा रही है।' लाजपत राय न लिखा है कि "जनसमूह न इस घोषणा का नारा से स्वागत किया और यह समाचार आग की तरह फैल गया।'

लाजपत राय पर जार दिया गया कि वह जनसमूह का सबोधित कर—या कम-से कम गलिया मे जुलूस के साथ चलें। उन्होंने इन्कार कर दिया पर शाम का नियमित सावजनिक सभा का सबोधित करना स्वीकार कर लिया।

अभी वह वकीलों के कमरे मे ही थे कि उन्होंने सुना कि भीड डिप्टी कमिश्नर तथा जिलाधीश क बगले मे जबरदस्ती दाखिल हा गई है।" यद्यपि संदेश-वाहक तुरत दौडाये गये, ताकि ऐसी कारवाइयो का रोका जा सके, परन्तु विश्वास किया जाता है कि लागा को हिंसा के लिये उत्तेजित करने वाले शरारती लाग अपना काम कर रहे थे।

दोनो आर से बहुत तजी से कारवाई हुई—अफवाहें इससे भी तेजी से फैली।

'हम अभी अदालत म ही थे कि हम पता चला कि गडबडी को दबाने तथा गडबडी करने वाला को गिरफ्तार करने के लिये सेना भेजी गई है। हमे यह भी बताया गया कि एक पठान रेजिमेंट न तयार होने म

कुछ आनाकानी की थी। एक पठान मेरे पास आया और कहने लगा कि फला रेजिमेंट मेरे आदेश की प्रतीक्षा कर रही है। मैं हस दिया और उसे टाल दिया। मुझे सदेह था कि वह व्यक्ति जासूस था।"

सेना ने गडबडी को दबा दिया और भारी सख्या म लोगो को हवालात म बद कर दिया, जिनम कुछ प्रमुख नागरिक तथा कुछ पढे लिखे युवक भी थे। हम सभी समाचार मिल रहे थे, परन्तु हम कर भी क्या सकते थे ?"

शाम को होने वाली सावजनिक सभा की अनुमति न दी गई और उसका विचार छोड दिया गया। अगले दिन की गिरफ्तारियो म लाजपत राय के मेजबान—अमोलक राम तथा नौटिस वाले मामले के अय वकील शामिल थे। जिनकी जमानत से इकार कर दिया गया और लाजपत राय चीफ कोट म यह याचिका दाखिल करने के लिए तुरत लाहौर पहुचे। वहा भी असाधारण घटनाए हुइ। लाजपत राय के शब्दा म

"न्यायाधीश न निणय दिया कि याचिका की सुनवाई डिवीजन बच करेगी और इस बीच सरकारी वकील रावलपिण्डी के जिलाधीश से इस बात की जानकारी प्राप्त करेंगे कि क्या व जमानत स्वीकार कर ली जाये।"

याचिका सुनवाई के लिये पेश होने से पूर्व सम्बद्ध जिलाधीश अदालत में रावलपिण्डी के कमाडिंग आफिसर का एक पत्र लेकर उपस्थित हुए, जो चीफ कोट के न्यायाधीशा के नाम था। अनुमान है, उस पत्र में कहा गया था कि यदि गिरफ्तार नताओ को जमानत पर रिहा किया गया, तो सभव है भारतीय सैनिको म विद्रोह फैल जाये। अभियुक्तो के वकील को यह पत्र देखने की अनुमति नही दी गई, यद्यपि उन्होंने इस पत्र की एक प्रतिलिपि मागी थी। औपचारिक तौर पर दलीले सुनने के बाद, जजा ने जमानत स्वीकार न करने का निणय किया।"

24. उड़ा लिया गया

"जो आदमी इस सारी शरारत के लिये जिम्मेदार है, वह अभी स्वछन्द घूम रहा है, परन्तु वह अधिक समय के लिए ऐसे नही घूम सकेगा।" यह बात एक प्रमुख ब्रिटिश अधिकारी, चीफ कोर्ट के रजिस्ट्रार ने चीफ कोर्ट के एक वकील बोधराज का, जो बाद म जम्मू-कश्मीर मे न्यायाधीश बने थे, बताई थी। जिसकी ओर उन्होंने सकेत किया था, वह लाजपत राय थे।

ऐसी ही खबर लाजपत राय के पास भी विभिन्न साधनो से पहुची थी। एक मित्र ने, जिन्हे कुछ वरिष्ठ यूरोपियन अधिकारियो से मिलने का अवसर प्राप्त हुआ था, उन्हें गोपनीय बात बतायी थी कि "वे इस घटना पर दात पीस रहे हैं और उनका विश्वास है कि म ही इस सारी शरारत की जड हू और मेरे साथ तुरत कार्रवाई करके कड़ाई से निपटना चाहते है।" एक अन्य साधन से उन्हें पता चला कि 'लायलपुर वाले मेरे भाषण की बडे परिश्रम स जाच की जा रही है, ताकि उसम राजद्रोह का अश ढूढा जा सके।"

कुछ मित्रो ने उन्हें सुझाव दिया कि वह लाहौर छोड दें और तब तक वहा न लौटें, जब तक यह तूफान समाप्त न हो जाये। इन सभी सुझावो के लिये उनका एक ही उत्तर था, "मने कोई ऐसी बात नही की जिसके लिये कानून की शक्ति मेरे विरुद्ध इस्तेमाल की जा सके, मुझे किसी ऐसी बात का ज्ञान नही, जा मने की हो और जिसके कारण कार्यपालिका की शक्ति मेरे विरुद्ध इस्तेमाल की जा सके, इसलिए मुझे न एक का भय है, न दूसरी का।"

एक बहुत आश्चर्यजनक परन्तु एक प्रकार से पक्की खबर, एक अन्य मित्र लाये थे, जो उच्च अधिकारियो के विश्वासपात्र समझे जाने वाले एक व्यक्ति के आधार पर कह रहे थे कि इस बात की आशका है कि उनके साथ भी नामधारी सिख सम्प्रदाय के सस्थापक "भाई राम सिंह" के समान, जिन्हें आमतौर पर "कूका" कहा जाता है, बरताव किया जाएगा। नामधारियो को कूका कहा जाता था। 1872 मे जब उनके पचास अनुयायियो को तोप से उडा दिया गया था, गुरु राम सिंह को बिना कोई मुकदमा चलाये 1818 के

रेगुलेशन तीन के अधीन बर्मा में निर्वासित कर दिया गया और उसके बाद से उनकी कोई खबर नहीं मिली।

इस पर लाजपत राय ने 1818 के रेगुलेशन तीन का अध्ययन किया। "द स्टोरी आफ माई डिपार्टेशन" में उन्होंने लिखा है

"परन्तु रगुलेशन का अध्ययन आश्वस्त करने वाला था, मैं इस बारे में पूरी तरह जागरूक था कि मैंने ऐसी कोई बात नहीं की कि रेगुलेशन के अधीन मुझे सरसरी तौर पर ही निर्वासित कर दिया जाएगा, मैं अपने आपको यह विश्वास कर लेने के लिए तैयार नहीं कर पा रहा था कि पजाब सरकार, जिसका अध्यक्ष ऐसा व्यक्ति है, जिसे पजाब की एग्लो-इडियन शक्ति के सर्वोच्च ज्ञान और अपने साधन व्यापक होने के बारे में पूर्ण विश्वास है, सारे ससार को यह विज्ञापित करना चाहेगी कि वह इतनी दुर्बल है कि मेरे जैसे कमजोर व्यक्ति के विरुद्ध यह कदम उठा रही है। अपने आपको बुरी से बुरी परिस्थिति के लिये तैयार करने के बाद, क्योंकि भाग जाने का विचार तो एक पल के लिए भी मेरे दिमाग में नहीं आया था, मैंने अपना वह कर्तव्य पूरा करने की ओर कार्रवाई शुरू कर दी, जो ऐसी स्थिति में मेरे मित्रों तथा देश के प्रति मेरे कधों पर था। मैंने अन्य प्रातों में कुछ भारतीय नेताओं को पत्र लिखे और इडियन नेशनल काग्रेस की ब्रिटिश कमेटी के अध्यक्ष विलियम वेडरबर्न को भी, जिसमें चिनाब कैनाल कालोनी के प्रबध के बारे में कई कागजात भी थे। अग्रेजी डाक से दो दिन पूर्व इग्लैंड में मैंने एक मित्र को पत्र लिखा जिसमें मैंने लिखा था कि मैं डाक से दो दिन पूर्व इसलिये लिख रहा हूँ कि इस बात का कोई ज्ञान नहीं कि मैं डाक के दिन तक स्वतत्र भी रहूँगा या नहीं।"

उसी दिन उन्होंने अपने पिता को भी अपनी सभावित गिरफ्तारी के बारे में पत्र लिखा, क्योंकि लाहौर में प्लेग फैलने के कारण सारा परिवार लुधियाना चला गया था और केवल उनके सबसे बड़े पुत्र प्यारे लाल ही पास में थे। इस पत्र में पुत्र ने अपने पिता से सादर विनती" की थी

"मुझ पर कुछ भी बीते, आप धैर्य मत छोड़ना। जो कोई भी आग से खेलता है, कभी न कभी उसका चेहरा झुलसता ही है। सत्ताधारी हाकिमों की आलोचना करना आग से खेलना है। मुझे जो बात व्याकुल करती है,

वह केवल यही कि आपको कष्ट होगा, इसलिये म आपसे आश्वासन चाहूगा कि मेरी गिरफ्तारी से आप व्याकुल नही होगे। जो भी मुसीबत आये, उसे बहादुरी से बरदाश्त करना चाहिए।"

इसलिए ऐसी बात बिल्कुल नही कि उन्हें पूर्वाभास नही था। दरअसल, वह तो उस बात के लिये पूरी तरह तैयार थे, जो भविष्य मे उनके साथ बीत सकती थी। अपने पत्र मे उन्हाने अपने पिता को कुछ ब्योरेवार निर्देश दिए थे, जो एक वसीयत की भावना से जगराव की जायदाद को उनके पुत्रा के नाम हस्तातरण करने के लिये थे।

9 मई डाक का दिन था, वह अंग्रेजी डाक के लिये कुछ पत्र लिखने के लिये प्रात बैठे—एक पत्र एक समाचार पत्र के लिये पजाब की ताजा स्थिति के बारे मे भी लिखना था। वह पत्र लिखने मे व्यस्त थे कि दस बजे के करीब लाला हसराज आये और उनका कुछ मित्रा के साथ पिकनिक पर चलन के लिये कहा। लाजपत राय ने इसका कुछ रुखाई से उत्तर दिया, उनके पास न समय था और न उनका मन पिकनिक के लिये चाह रहा था। उनके मित्र चले गये। उन्हान लिखना समाप्त कर दिया। उसके पश्चात् नाश्ता किया और फिर एक या दो पत्र लिखने के लिये बैठ गये। सुबह का काय समाप्त कर चुकने के परचात, वह चीफ कोर्ट जाने के लिये तैयार हुए, मुख्यत अपन एक मुवक्किल के लिये एक वकील करने के लिये, जो दो दिन पहले इस काय के लिये उनके पास साढे तीन सौ रुपये छोड गया था। अभी उन्होंने वे नोट अपनी जेब मे रखे ही थे और घोडागाडी लाने के लिये आवाज दी ही थी कि उनके मुशी न सूचना दी कि दो व्यक्ति मिलने आये हैं।

वह बाहर आये और अनारकली पुलिस के इन्सपेक्टर गगा राम तथा सिटी पुलिस के मुशी रहमत उल्लाह से मिले, वे दोना ही वर्दी मे नही थे। वे सदश लाये थे कि कमिश्नर तथा डिप्टी कमिश्नर उनसे तुरत मिलना चाहते हैं।

लाहौर के कमिश्नर महत्वपूण व्यक्तिया को बुलाया करते थे, ताकि "फला हुआ असतोष समाप्त करने के लिये उनसे हस्तक्षेप करवा सकें।" क्या लाजपत राय को भी इसी शान्तिपूण उद्देश्य के लिये बुलाया जा

रहा था ? उन्होंने इन्सपेक्टर रहमत उल्लाह को बताया कि उन्हें कचहरी में कुछ काम है और वह थोड़ी ही देर में आ जाएंगे। इन्सपेक्टर ने उत्तर दिया कि कमिश्नर जिला कार्यालय म प्रतीक्षा कर रहे हैं और वह केवल कुछ मिनट के लिये बात करना चाहते हैं, वह चाहें तो कमिश्नर से मिल ल और बाद म कचहरी चले जाय।

इस अनुचित जल्दबाजी न कुछ सदेह उत्पन्न किया। मुस्कराते हुए लाजपत राय न कहा, 'बहुत अच्छा, आइए, मेरी गाडी तैयार है, हम इकट्ठे ही चलते है।" गाडी अभी मुख्य द्वार से बाहर निकली ही थी कि दो यूरोपियन अधिकारी घात लगाकर बैठे डाकुओ के समान कूदकर गाडी के पायदान पर चढ गये। पुलिस कप्तान रण्डल से लाजपत राय परि चित थे, उन्हें गाडी म चढा लिया गया। जिला पुलिस कार्यालय म—जो लाजपत राय के घर से केवल दो मिनट का सफर था—कमिश्नर यग हस्बैंड न, लाजपत राय को सूचित किया कि गवनर जनरल इन कौसिल न एक अधिपत्र जारी करके उनके नागरिक स्थान मे परिवतन कर दिया है।

इसका अथ है कि उन्होंने उनके साथ "भाई राम सिंह जसा' व्यवहार करने का निणय कर लिया था। इसके लिये उसी अधिनियम का सहारा लिया गया था। यह देखना था कि नामधारी गुरु की तरह वे उन्हें बर्मा म किसी स्थान पर रखते है या निर्वासन और कैद के लिये कोई और स्थान चुनते है। इस पल तो कृपापूवक उन्हें यही आश्वासन दिया गया था कि उनके साथ सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार किया जाएगा

25 'गदर' वाली मनोविक्षिप्ति

गदर के कारण भारत मे यूरापियन समुदाय पर गहरे आतक की छाया थी। गदर-बेसहारा औरता तथा बच्चा को मार देन के लिये उठे हुए अनेक पाशविक हाथ—इसके कारण यूरोपियन समुदाय मे समय समय पर हिस्टीरिया की लहरे दौड जाती थी और इसके कारण करुणा तथा सहानुभूति के लिये यह रोगविज्ञान का एक विषय बन गया था। और इस बात मे कोई सदेह नही हो सकता कि जिस नाटकीय ढग से और बढा चढ़ाकर गदर के चित्र को पेश किया गया था, उसके कारण ही अग्रेजा ने कई ऐसी बातें की, यदि उनकी मनोस्थिति ठीक होती, तो ये बातें इस ढग से करना उनके लिये असभव था।*

इस बात का समझने के लिये कि शाही आदेश के अधीन लाजपत राय के निर्वासन का निर्णय कैसे लिया गया हम 1907 मे एग्लो-इडियन समुदाय की मनोस्थिति की गडबड का पहले अध्ययन करना होगा, जब सारा समुदाय ही सार्वभौम सदूषण का शिकार हो जाये, तो उप राज्यपाल तथा गवर्नर उस सदूषण से कैसे बच सकते थे।

एग्लो इडियन शासक निर्बाध और आसान तौर-तरीको के आदी हो गये थे और बड़ी प्रतिष्ठा पर प्रबध चला रहे थे, इसलिए जब उन्हे दिन पर दिन विरोध बढता हुआ नजर आया तथा विरोधी शक्तिया सशक्त होती दिखाई दी, तो वे शीघ्र ही घबरा गये। कुछ परिस्थितियो मे एग्लो इडियन समुदाय मनोवैज्ञानिक स्थिति का शिकार हो गया—1857 की मनोग्रथि जिन दिनो गदर हुआ था। इसलिये 1907 मे 1857 की यादें एग्लो इडियन मन को तग करने लगी। 1857 से 1907 तक ठीक अर्द्धशताब्दी समाप्त हुई। कितनी अनिष्ट-सूचक बात थी। निश्चय ही वही शक्तिया फिर खुलकर खेलेंगी। भारतीय सैनिक फिर विद्रोह कर देगे और सैनिको तथा असैनिको के साथ फिर वही बराबर का अमैत्रीपूर्ण व्यवहार किया जाएगा। महिलाओ तथा बच्चो को भी नही छोडा जाएगा। बिना किसी प्रकार की उत्तेजना के एग्लो इडियन समाचार पत्रो ने भी "गदर मनोग्रथि" के बहुत तीव्र रोगलक्षण व्यक्त किये। क्लबो तथा भोजनकक्षो में यह विषय गपशप और बातचीत का विषय था। साहब, चाहे बडे थे या छोटे, सभी को हर जगह

*थाम्पसन एडवर्ड द अदर साइड आफ द मेडल (तृतीय सस्करण) पृष्ठ 86 87

1857 के भूत दिखाई देते थे। वे किसी भी कहानी पर विश्वास कर सकते थे, शर्त केवल यह थी कि वह गदर के अभिप्राय से जुडती हो, बेईमान मुखबिरो के लिये ऐसी स्थिति लाभकारी थी।

एंग्लो-इंडियन समाचार-पत्र तो 1907 से पूर्व ही हिस्टीरिया की ओर बढ़ते दिखाई पडते थे। इस स्थिति को 1857 के साथ जोडने से हालात बहुत ही खराब हो गये। लाहौर का एंग्लो-इंडियन दैनिक पागलो जैसे गुस्से मे था और उसके कालमो मे उत्तेजनापूर्ण पत्र प्रकाशित होते थे, जिनमे माग की जाती थी कि जो पढे लिखे लोग राजनीतिक आन्दोलन मे हिस्सा लेते है, उन्हे कोडे लगाये जायें। सी० एफ० एड्रयूज, जो अभी एंग्लो इडियनो के तौर-तरीको के लिये नये थे और उन्हें सेंट स्टीफेंस कालिज, दिल्ली मे प्रोफेसर के तौर पर काम करते हुए अभी अधिक दिन नही हुए थे, इस स्थिति से बहुत स्तब्ध हुए और उन्होंने विरोध व्यक्त करने के लिये एक पत्र लिखा। कुछ समय बाद लाहौर के बिशप, डाक्टर लेफ्रोय ने भी एंग्लो-इंडियन समाचार पत्रो के इस स्वर का विरोध किया। लार्ड मिंटो ने भी स्वय यह स्वीकार किया (लदन मे सरकारी कार्यालय को लिखे गुप्त पत्रो मे, जिन्हें हम अभी देखेंगे) कि इन लेखो का स्तर अपमानजनक तथा घटिया था, परन्तु पंजाब सरकार ने दोषियो के विरुद्ध मुकदमे चलाने की अनुमति न दी।

प्रतिदिन इन उग्र समाचारो को पढकर, साहब लोग यह विश्वास करने को तैयार हो गये थे कि 1857 का इतिहास दोहराये जाने के लिये पूरी तैयारी हो रही है। लाखो सैनिक केवल लाजपत राय के आदेश की प्रतीक्षा कर रहे है। 1857 की तबाही 10 मई को आरम्भ हुई थी। अर्द्धशताब्दी के बाद फिर वैसी स्थिति का आतंक फैल गया था और 10 मई का दिन अशुभ समझा जा रहा था। स्पष्ट तौर पर इससे "मार्च की सतान" जैसी गंध आ रही थी। जैसे जैसे 10 मई का दिन निकट आता गया, दु स्वप्न जैसी चीखें हिस्टीरिया जैसा जोर पकडती गई कि तुरत ही कोई कठोर उपाय किया जाये। उस महत्वपूर्ण दिन के लिये साहब लोगो ने अपने परिवारो के लिए किले में पनाह लेने की व्यवस्था करा ली थी। रेलवे अधिकारियो से भी कहा गया था कि सकट के समय सहायता के लिये वे भी पूरी तरह व्यवस्था कर लें।

कीर हार्डी ने, जिन्होंने 1907 में भारत का दौरा किया, मानसिक तौर पर रोग वाली स्थिति के काफी प्रमाण देखे। दिल्ली में नगर निगम का कर दुगुना कर दिया गया था। कीर हार्डी ने इस का स्मरण करते हुए लिखा है

"आन्दोलन हुआ और कर वापस ले लिया गया। 10 मई को स्थानीय लोगों में लड़ाई हुई, जो पांच मिनट में समाप्त हो गई। यूरोपियन क्लब में समाचार पहुंचा कि सम्पट यूरोपियन तथा स्थानीय लोगों ने विद्रोह कर दिया है और वे यूरोपियन लोगों का वध कर रहे हैं। स्वदेशी नगर में व्यापार तथा विनोद सामान्य रूप में जारी रहा।"

कीर हार्डी को जिस बात ने सबसे अधिक अचम्भे में डाला, वह थी इटावा की घटना, जिसमें लाजपत राय का नाम जोड़ा गया था। बाद में इस घटना को "इटावा की गप्प" का नाम दिया गया और इससे हमें यह झलक मिलती है कि 1907 एंग्लो इंडियन मन स्थिति क्या थी।

ऐसा दिखाई पड़ता है कि संयुक्त प्रांत के इटावा नगर में हिन्दू तथा मुसलमान कर्मचारी एक दूसरे के विपरीत उद्देश्यों के लिए काम कर रहे थे। हिन्दू मुसलमान कोतवाल का तबादला करवाकर, उसके स्थान पर पुलिस के ब्राह्मण डिप्टी सुपरिंटेंडेंट को लाने में सफल हो गये। इसलिए जिन विभागों में मुसलमान कर्मचारियों की अधिक संख्या थी, उनकी पुलिस के साथ अनबन थी (कीर हार्डी ने लिखा है) परन्तु वहां कोई ऐसी बात हुई नहीं दिखाई पड़ती, जब तक पंजाब में लाला लाजपत राय का मामला नहीं उठा। थोड़े समय बाद मजिस्ट्रेट (रोज) को तहसीलदार ने (जो मुसलमान था) गुप्त रूप से सूचित किया कि उनके पास यह विश्वास करने के कारण हैं कि समागीय हिन्दू कर्मचारियों की ओर से लाला लाजपत राय के पक्ष में चन्दे के लिए एक सूची जारी की गई है। श्याम बिहारी मिश्र, डिप्टी सुपरिंटेंडेंट पुलिस, श्री प्रसाद, डिप्टी कलेक्टर, कई वकील, जिनमें इटावा से वकालत करने वाले एक पंजाबी वकील जसवन्त सिंह प्रमुख थे इस कारवाई के अगुवा थे और इसके अतिरिक्त ये लोग आर्य समाज के विभिन्न वर्गों के साथ राजद्रोह के लिये पत्र व्यवहार भी कर रहे थे। यह कहा गया था कि इन चिट्ठियों को रास्ते में ही पकड़ना संभव था और इस उद्देश्य से तुरंत कारवाई की गई थी। कीर हार्डी हमें बताते हैं

'इस कारवाई के दौरान 19 पत्र रास्ते में पकड़ लिए गए या खलील ने (जिसे विशेष तौर पर मुखबिर नियुक्त किया था) यह दिखाया कि ये पत्र पकड़े गए हैं।

इनमे से अधिकतर बहुत ही भडकाने वाले और दोषी सिद्ध करने वाले थे, तथा कुछ निजी किस्म के थे। इनकी विशेष बात इन पर उन एक या दो अफसरो के हस्ताक्षर होना थी जिनके नाम खलील ने बताये थे। डिवीजन के कमिश्नर कौवल ने और अधिक जाच पडताल की और सबको आश्वस्त किया कि ये दस्तावेज असली है। अपराध खोज विभाग के प्रातीय निदेशक, शाप को बुलाया गया। वह इस बात से सहमत थे कि मामला गभीर किस्म का है और उन्होने सलाह दी कि एक समय पर तीन अन्य स्थानो—उन्नाव, खेडी तथा अमृतसर म तलाशी ली जाये तथा जाच पडताल की जाये।

परन्तु इस बीच एक बहुत ही असाधारण घटना घट गई। रोज इस सबध में स्थानीय वालटियरो के कमाण्डर कैप्टन एडमसन से बात चला रहे थे। इस बारे मे सभी स्थानीय अधिकारी मामले को बहुत गभीर समझ रहे थे और इस भ्रम मे फस चुके थे कि नगर में विद्रोह होने वाला है और पुलिस पर विश्वास नही किया जा सकता।

अपनी घर-गृहस्थी की रक्षा करने वाले स्वयसेवको के कमाडर के साथ सभी घटनाओ पर विचार विमश करने के बाद उनका निष्कर्ष यही था कि कप्तान ने टूण्डला और कानपुर मे स्वयसेवको को सावधान कर दिया कि वे तयार रहे और तार मिलते ही उनकी सहायता के लिये तुरत पहुच जायें। परन्तु इस बीच शाप और कौवल बीच म आ गए और उनसे थोडी देर बाद स्वय पुलिस महानिरीक्षक भी आ पहुचे। महानिरीक्षक ने बिना कोई कारण बताये इस सारे मामले के बारे में बिल्कुल ही अलग विचार व्यक्त किया। यह निश्चित है कि उन्होने सरकारी जाच के बाद अपनी राय घोषित कर दी कि सभी पत्र जाली ह, और जाच करने वाले इन्सपेक्टर से यह कहलवा लेने मे सफल हो गये कि खलील निश्चय ही बदमाश आदमी था और धोखेबाज के तौर पर माना जाता था, परन्तु उसे किसी अपराध म सजा नही हुई थी। मामले की जाच करने वाले अधिकारियो के विचारो मे तीव्र मतभेद हो गये। बताया गया है कि रोज ने विरोध करते हुए कहा था कि यह सारा मामला अदालत मे निणय के लिये देने को तैयार हू। परन्तु सरकार ने महा निरीक्षक की राय स्वीकार कर ली और खलील की गिरफ्तारी के लिए वारट जारी कर दिया, और वह फरार हो गया। सरकार ने श्रोली को डाट-डपट की और रोज के विरुद्ध इससे भी बडी कारवाई की गई, शायद इसका कारण स्वय सेवको के मामले की असफलता थी। एग्लो इडियन अधिकारी वग किसी भी

असगत बह नी का तुरत स्वीकार कर मन का तैयार हा जाता था, शत क्वल यही थी कि किमी न किसी ढग से उसम लाजपत राय का नाम घसीट लिया जाना चाहिए। इस वग ने यह साच लिया था कि सारा इटाया शहर विद्रोह करन के लिए तैयार है, पुलिस की वफादारी में फक आ गया है।" बताया गया कि सरकार से 1818 के अधिनियम का प्रयाग करने के लिए कहा गया था और वह इसके लिये लगभग सहमत भी हो गई थी। कीर हार्डी का कहना है कि निर्वासन क आदेश जारी कर दिये गये थे।

पजाब सरकार की भी मन स्थिति ऐसी ही थी, जब लाला लाजपत राय को निर्वासित किया गया।

लाजपत राय की गिरफ्तारी के लिये पहल पजाब के उप राज्यपाल, सर डेंजिल इब्बटसन की आर से हुई, यद्यपि यह स्पष्ट नहीं है कि 1818 के अधिनियम 3 के इस नये इस्तेमाल का विचार सबसे पहले किसके दिमाग की उपज था। 1907 की तूफानी घटनाआ के बारे में इब्बटसन के अपने विचार उस पत्र से पता चलत हैं जो उसने उस समय तैयार किया था। मिटा न इसका साराश मार्ले का भेज दिया जसा हम बाद म देखेंगे। भारतीय राजद्राह समिति न (1917) जिसके अध्यक्ष सर एस०टी० रौलेट थे, इस दस्तावज की जाच की और इसके सक्षिप्त भाग अपनी रिपोट में शामिल किये। कारवाई का क्षेत्रवार सक्षिप्त विवरण देन के बाद रौलेट रिपोट म कहा गया है

"उप राज्यपाल की राय थी कि कुछ नता ब्रिटिश शासका का भारत स निकालन के बार म साच रह हैं था उनसे सत्ता छीन लेन का प्रयत्न कर रहे ह, चाह यह बल पूवक हो था सभी लागा के निष्क्रिय विराध अथवा सत्याग्रह से हा, आर जिस ढग स उन्होन सरकार का काम ठप्प कर दन की योजना बनाई है, वह लागो के मन म जाति भेद की भावनाए भडकाता है। उनके विचार म सारी स्थिति 'बहुत ही" खतरनाक थी और इसका समाधान करन के लिये तुरत कारवाई अनिवाय थी।'

जो समाधान अपनाया गया, वह था आदोलन के नताआ, लाजपत राय तथा अजीत सिंह का 1818 के अधिनियम 3 के अधीन निर्वासित करना। प्रस्तावित नहरी बस्ती बिल को भी भारत सरकार ने रदद कर दिया, परतु गृह मत्री लाड

जान मार्ले ने यह सुझाव स्वीकार नहीं किया कि इस समस्या का मूल आधार कृषक समस्या है। 6 जून 1907 को हाउस आफ कामंस में भाषण करते हुए उन्होंने कहा

"पता चला है कि पंजाब के प्रमुख आन्दोलनकारियों ने पहली मार्च से पहली मई तक 28 बैठकें कीं। इनमें से केवल पांच प्रकट रूप से कृषकों की शिकायतों से सम्बद्ध थीं बाकी 23 बैठकें बिल्कुल राजनीतिक थीं।"

इस बात पर दृढ़ता से कायम रहते हुए कि पंजाब का आन्दोलन अवश्य ही कृषक आन्दोलन था और इसके मूल कारण आर्थिक थे लाजपत राय ने मार्ले द्वारा दिये गए तथ्यों के बारे में कहा

"पहली मार्च से मई 1907 तक की गई बैठकों की यदि कम-से-कम संख्या भी ली जाये तो ये 28 से कम-से-कम दुगुनी या शायद तिगुनी अवश्य थीं और उनमें से अधिकतर प्रकट रूप से कृषक शिकायतों के बारे में थीं। शुद्ध रूप से राजनीतिक बैठकों की संख्या दस बारह से अधिक नहीं थी।"*

वायसराय लार्ड मिण्टो ने लाजपत राय के निर्वासन की स्वीकृति तुरन्त दे दी। लिबरल गृह सचिव "ईमानदार जान" (लार्ड मोर्ले) को उस समय जानकारी दी गई, जब वारन्ट जारी हो चुके थे। इसके अतिरिक्त उन्होंने हाउस आफ कामंस में इस कार्रवाई का समर्थन किया। वायसराय और गृह मंत्री के बीच क्या मंत्रणा हुई, इसकी आंशिक जानकारी लार्ड मार्ले की पुस्तक 'रिकलेक्शन्स' से और आंशिक जानकारी लेडी मिण्टो की पुस्तक 'इंडिया मिण्टो और मोर्ले' '1905—1910 से मिलती है। 2 मई 1908 को मिण्टो ने मोर्ले को लिखा

"अधिक समय नहीं हुआ जब सर हैनरी काटन ने हाउस आफ़ कामन्स में आपसे सिविल एंड मिलिट्री गजट में प्रकाशित कुछ पत्रों के बारे में पूछा था। वे अपमानजनक सीमा तक घटिया थे और उनका उद्देश्य जातीय घृणा फैलाना था। पंजाब सरकार ने ऐसा करने वालों के विरुद्ध मुकदमे नहीं चलाये और न ही व्यक्तिगत रूप से मुकदमे चलाने की अनुमति दी। सम्भवतः वे ठीक हो सकते हैं परन्तु यह जानकर खून खौलने लगता है कि ऐसे पत्र एक प्रमुख अंग्रेजी दैनिक समाचार पत्र ने

*पोलिटिकल फ्यूचर आफ इंडिया, पृष्ठ 164

प्रकाशित किये। हमने उप-राज्यपाल को लिखा है जिसम सुझाव दिया गया है कि यद्यपि कोई निश्चित कारवाई नहीं की जाएगी, वह सम्पादक से मिले और उन्हें बता दें कि ऐसा करने से क्या हानि हो रही है।"*

छ दिन बाद, मिण्टो न मार्ले को तार दिया

"तार (परिभाषित) मिण्टो से मौर्ले को। 8 मई। तीन दिन पूर्व हम इब्बट सन की ओर से पंजाब की वतमान राजनीतिक स्थिति के बारे में एक ठोस और आवश्यक विवरण मिला। उ होन ऐसी स्थिति की चर्चा की ह, जिससे गंभीर सदेह पैदा होते है। हर जगह उग्रवादी खुलेआम और लगातार राजद्रोह का प्रचार करते हैं, समाचार पत्रो तथा उनके द्वारा आयोजित विशाल जनसभाओ मे यह प्रचार होता ह और समृद्ध वग हमारी ओर से कोई कारवाई न किये जान पर हतप्रभ से देख रहे ह, और इब्बटसन के विचार म वह दिन दूर नही जब वे ऐसी सरकार का तिरस्कार करेंगे, जो राजद्रोह को पनपने दे रही है और उसे रोकती नहीं और खुलेआम तथा सगठित अपमान को सहन करती है।

'राजद्रोह का अभियान दो प्रमुख रूप लेता है। लाहौर, अमृतसर, पिण्डी, फिरोजपुर, मुल्तान तथा अन्य स्थानो पर लोगोंने खुलेआम बडे अधिकारियो की हत्या करने का समथन किया है, और उ होन तथा अन्य नेताओ ने लोगो से विद्रोह करन, अंग्रेजो पर आक्रमण करन तथा स्वतंत्र होने को कहा है। ग्रामीण क्षेत्रो मे जमीदारो,जिनके द्वारा सेना के लिए जवान भर्ती किये जाते ह,भ्रष्ट करन के लिए बाकायदा प्रयत्न किये जा रहे ह। सिखो तथा सेना के पेंशन प्राप्त कमचारियो की ओर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। राजद्रोह वाले पर्चे सिखो के गावो मे बाटे जा रह ह और फिरोजपुर म एक सावजनिक सभा म, जहा असतोष का खुलेआम प्रचार किया गया, फिरोजपुर मे नियुक्त सिख रेजिमेंट के कमचारियो को आमंत्रित किया गया था और इनमें से कई सौ वहा उपस्थित थे। सिखो से कहा जाता रहा है कि उन्होंने भारत को हमारे लिए गदर से बचाया, और अब हम उनके साथ दुर्व्यवहार कर रह है, और देश के स्वाधीनता सग्राम मे देशद्रोह करन के लिये अब उनके साथ यह न्याय किया जा रहा है। यह आरोप लगाया जा रहा है कि कपास और गन्ने के विकसित हो रहे स्वदेशी उद्यमो को हम बरबाद करना चाहते ह यह भी कहा जाता

*मेरी काउटस आफ मिण्टो इंडिया मिण्टो एण्ड मौर्ले 1905 1910 पृष्ठ 123

है कि हमने लोगों का धन ले लिया है और उसके बदले में उन्हें कागज दे दिए हैं और गांव के लोगों से कहा जा रहा है कि हम जब चले जाएंगे, तो हमारे करेंसी नोटों के लिये नकदी कौन देगा। लोगों से आग्रह किया जा रहा है कि वे एक हो जायें और सरकार को मालिया, आबियाना तथा अन्य अदायगी-राशि न दें, दौरे पर आने वाले सरकारी अधिकारियों को रसद पानी, गाड़ियां तथा अन्य सहायता न दें, और स्वदेशी सैनिकों तथा पुलिस कर्मचारियों को "गद्दार" कहा जाता है और उनसे अनुरोध किया जाता है कि वह सरकार की नौकरी छोड़ दें।

यह प्रचार सुसंगठित है और इसका संचालन आर्य समाज की एक गुप्त समिति करती है। आर्य समाज एक संगठन है जो मूलभूत धार्मिक संगठन है और पंजाब में इसकी सशक्त राजनीतिक प्रवृत्ति है।

'इस सारे आन्दोलन के प्रमुख केंद्र एक खत्री वकील हैं, लाला लाजपत राय जिन्होंने पंजाब के कांग्रेसी प्रतिनिधि के रूप में इंग्लैंड की यात्रा की थी। वह एक क्रांतिकारी और राजनीतिक उत्साही हैं, जो ब्रिटिश सरकार के प्रति बहुत ही जोरदार घृणा से प्रेरित हैं।"*

'लाजपत राय के राजनीतिक संबंधों की चर्चा करते हुए वायसराय सत्य से कोसों दूर थे, उसी तरह जैसे वह एक अग्रवाल को "खत्री" वकील बताते हुए सत्य के निकट नहीं थे।"

तार में आगे लिखा गया था

वह (लाला) स्वयं पृष्ठभूमि में रहते हैं, परन्तु उप राज्यपाल के लगभग सभी स्वदेशी भद्र पुरुषों ने, जिन्होंने इस विषय पर उनसे बातचीत की है आश्वासन दिलाया है कि वह मुख्य-संचालक हैं। राजद्रोह के प्रचार में उनके प्रमुख प्रतिनिधि अजीत सिंह हैं, जो पहले एक अध्यापक थे और पिछले वर्ष रूस के जासूस लारीफ ने उन्हें अपनी सेवा में ले लिया था। राजनीतिक बैठकों में वही सबसे तेज वक्ता हैं, उन्होंने कई बार सरकार का सक्रिय विरोध करने का समर्थन किया है और उनकी बातें अधिकतर कृषक-वर्ग तथा सैनिकों में असंतोष फैलाने की ओर केंद्रित होती हैं। इन व्यक्तियों के विरुद्ध सामान्य कानून के अधीन मुकदमे चलाने पर आपत्तियों का उत्तर देने और वर्तमान हालात में इस बात का संतोषजनक प्रमाण देना संभव न होने के कारण कि उन्होंने बैठकों में क्या कहा है उप-राज्यपाल ने

*पृष्ठ 124 25

औपचारिक रूप से याचिका दी है कि उनके विरुद्ध 1818 के अधिनियम 3 के अधीन वारण्ट जारी किये जायें, और उन्होंने तुरंत कारवाई किये जाने की आवश्यकता पर बल दिया है, क्योंकि स्थिति में सुधार होने की जगह यह और भी अधिक गंभीर होती जा रही है।

इस मामले पर कल परिषद में विचार किया गया था और आज वारण्ट जारी कर दिये गये हैं कि लाजपत राय और अजीत सिंह को माण्डले में निर्वासित कर दिया जाये। रास्ते में सार्वजनिक प्रदर्शन की संभावना को देखते हुए विशेष प्रबंध किये गये हैं।

मेरे विचार में, जो मेरी परिषद के विचार भी हैं, यह कारवाई बहुत ही आवश्यक थी, और वर्तमान आपातस्थिति इतनी गंभीर है कि संभवत मुझे 1861 के कानून की धारा 23 के अधीन अध्यादेश जारी करना पड़े, ताकि सार्वजनिक सभाओं को नियंत्रित किया जा सके, मुख्य तौर पर इस उद्देश्य से कि इन बैठकों में भाषण देने वालों द्वारा कही गई बातों का पूरा और सही विवरण प्राप्त हो सके, और अधिक गंभीर मामलों में बैठकें करने की बिल्कुल मनाही कर दी जाये। भारतीय भाषाओं में किये भाषणों की आशुलिपि में पूरी जानकारी अंकित न होने के कारण उनका सही ब्यौरा प्राप्त करना कठिन है। हमें मुखबिरों द्वारा गुप्त रूप से लाई गई जबानी रिपोर्टों पर निर्भर करना होगा, और हमारा विचार है कि इन मुखबिरों की रिपोर्टों का खण्डन करने के लिये पेश किये गये बहुत से गवाहों के कारण, इन लोगों को राजद्रोह के आरोप में सजा दे पाना कठिन होगा।

'आज प्राप्त हुई सूचना के अनुसार पिण्डी डिवीजन में सैनिकों में हस्तक्षेप करने की सुनियोजित कोशिशें की जा रही हैं, परन्तु सैनिक स्थिति बिल्कुल संतोषजनक है।"*

गुप्त भाषा में दिये गये इस लम्बे तार के बाद, जिसमें से कुछ अंश हमने ऊपर दिए हैं, लार्ड मिण्टो ने 8 मई को गृह मंत्री को चिट्ठी लिखी

' मैंने लार्ड के० (किचनर) के साथ काफी लम्बा विचार विनिमय किया है और जो कुछ उन्होंने सुना है उसके अनुसार सैनिकों पर किसी प्रकार का कोई शरारती प्रभाव नहीं पड़ा है, परंतु पंजाब के देहाती जिलों की भावनाओं का

---

* वही पृष्ठ—125

देखते हुए यही उचित लगा है कि उन्होंने जो सर्वेक्षण दल भेजे थे, उन्हें वापस लिया जाये, क्योंकि गावों के लोगों का व्यवहार मैत्री का नहीं था।

'यद्यपि हम समय-समय पर अफवाहें सुनते रहते थे कि पंजाब में भावनाएं अच्छी नहीं हैं, इब्बेटसन की सूचना से हमें बहुत ही आश्चर्य हुआ है। हमारा अनुमान है, पंजाब के बारे में उनसे अधिक किसी को जानकारी नहीं है, और न ही मेरे लिये यह सोचने का कोई औचित्य है कि उन्होंने इसमें अतिशयोक्ति की होगी। इसके साथ ही वर्तमान स्थिति में जब सेना वफादार है, शस्त्रहीन लोगों द्वारा विद्रोह करने जैसी कोई बात सम्भव हो सकती है, तो सम्भावना यह है कि और अधिक गड़बड़ी हो सकती हैं। यह गड़बड़ अधिक गंभीर किस्म की भी हो सकती है, और अब जब कि हमें चेतावनी मिल गई है, हमें इस सम्बन्ध में काफी सावधानी बरतनी चाहिए।' †

सीमांत पेशावर में भी बुरा समाचार मिला था, इसकी जानकारी हमें अगले अनुच्छेद से मिलती है

पेशावर जिले में चिन्ता का कुछ कारण है जिसकी सम्भावना, कट्टर मुसलमान सीमांत कबीलों के प्रांत की मुसलमान आबादी के साथ सहानुभूति के कारण है, जहां तक खतरे की सम्भावना है, मेरे विचार में, यह पंजाब और उत्तर तक सीमित है और लार्ड कि० ने इस संबंध में सैनिक सावधानी बरत ली है।**

उस समय के एंग्लो इंडियन मन की स्नायु रोगी स्थिति का पता लार्ड मिण्टो के पत्र से चलता है

'मैं स्वयं महसूस करता हूं कि असंतोष का अधिक कारण गदर की वर्षगांठ है। हमें बताया गया है कि गड़बड़ की आशंका 8 और 11 तारीख के बीच हो सकती है। मेरा विचार है कि मेरठ में गदर 10 तारीख को तथा दिल्ली में 11 तारीख का आरम्भ हुआ था और मैं इस बात पर बहुत हद तक यकीन करता हूं कि यदि राजनीतिक कारणों को छोड़ भी दिया जाये, तो 1857 की यादें इस वर्ष को विशेषता प्रदान करती हैं।" ***

1857–1907 ! उस विशाल तबाही की पचासवीं वर्षगांठ ! 10 मई– "मार्च के पूर्वार्ध" जैसी अपशकुनी तिथि।

---

†वही पृष्ठ 125 126

**वही, पृष्ठ 126

***वही पृष्ठ 126

इससे दो अनुच्छेदों के बाद एंग्लो इंडियन मन की स्नायु-रोगी स्थिति की ओर स्पष्ट जानकारी मिलती है

"कलकत्ता से प्राप्त जानकारी से वहां के एंग्लो इंडियन वर्ग में फैली हिस्टीरिया जैसी घबराहट का पता चलता है, जिसे मैं अधिक रुचिकर नहीं कह सकता, यह उसी भावना जैसा अहसास है जो लार्ड कैनिंग के समय गदर की स्थिति में थी। हम उन दिनों के मुकाबले अब बहुत ही अधिक सशक्त हैं। इसके विपरीत विचारों का आदान प्रदान और स्वदेशी लोगों के विचार 1857 के मुकाबले अब अधिक आसानी से सर्वविदित हैं। और जो गलतियां हमारे अधिकारी करते हैं, उनके बारे में सामान्य तौर पर अधिक जानकारी होती है, और उन लोगों को इनकी ओर भी अधिक जानकारी होती है, जो अपने अधिकारों के प्रति अधिक जागरूक हैं, और ऐसी गलतियों को सामान्य तौर पर स्वीकार करने के लिए कम ही तैयार होते हैं। इस समय हम संकट से निपटना है जिसके बारे में मुझे पूरी आशा है कि वह अधिक देर नहीं रहेगा और इस संकट के दौरान हम पूरी तरह दृढ़ तथा बहुत न्याय-संगत रहना होगा। जिन कारणों पर हम नियंत्रण पाना है और जिनसे हमने निपटना है वे इस कदर भड़काने वाले हैं कि हम एक भी अवसर खोना सहन नहीं कर सकते। कोई भी सामान्य आभास कि हम अनिश्चित हैं या हम दुर्बल हैं, घातक होगा। परन्तु जितना अधिक मैं देखता हूं, मुझे उतना अधिक विश्वास होता है कि हम शान्ति की आशा के साथ भारत में उस समय तक सत्ता में नहीं रह सकते, जब तक हम यहां के पढ़े लिखे वर्ग को इस देश की सरकार में अधिक हिस्सा देने का अवसर नहीं देते।"*

मौर्ले ने तुरंत उत्तर दिया—केवल सामान्य विचार, जिसमें कारवाई स्थानीय अधिकारियों पर छोड़ दी गई थी।

मौर्ले ने मिण्टो को लिखा

"9 मई—पंजाब के बारे में आपके समाचारों से पता चलता है कि हम गहरे संकट के निकट पहुंच रहे हैं। और हमें स्थिति से यथासंभव उचित ढंग से निपटना चाहिए। यदि झगड़े जारी रहते हैं तो मैं यह कहने का साहस करता हूं कि हम कड़े उपाय करने होंगे। मैं आपको पक्के समर्थन का आश्वासन देता हूं, चाहे दुर्भाग्यवश आपको कोई भी कड़ा उपाय करना पड़े। शायद ऐसी बात हो कि

*वही पृष्ठ 127

आपको राजद्रोह फैलाने वालो के विरुद्ध कारवाई के लिए ही नही, बल्कि कानून व्यवस्था बनाए रखने वाले अपने लोगा के विरुद्ध कारवाई के लिये भी समथन की और आवश्यकता हो, क्योकि इतिहास मे वे लोग त्रातिकारिया के मुकाबले अधिक मूखताए करने के लिये जिम्मेदार है। मैं केवल यही आशा करता हू कि कोई भी कडी कारवाई करने मे पूव, इससे होने वाले सभी हानि लाभ पर पूणत विचार कर लिया जाये। यदि रत्ती भर भी ऐसा सही प्रमाण मिले कि राजद्रोह फैलाने वाले तत्व स्वदेशी सेना मे असतोष फैला रहे है, तो इन्हें दबाने से कोई इन्कार नहा करेगा। आपको केवल यह नही भूलना चाहिए कि जोश इन घडियो मे, जैसा कि ऐसी स्थिति मे हो ही जाता है लोग सदेह तथा सभावना को निश्चय तथा यथार्थ के साथ भ्रमित कर देते ह।"*

समाचार पत्रो मे हिस्टीरिया के कारण जो समस्या खडी हो रही थी, उसके बारे मे

'आपको व्यापक तौर पर पढे जाने वाले हमारे कुछ समाचार पत्रा मे छपी सनसनी फैलाने वाली सुखियो के बारे मे ध्यान नही है। कोई भी व्यक्ति यह ख्याल कर सकता है कि पिण्डी मे सभी ओर मारकाट और आगजनी का मैदान गरम था और हत्या तथा बलात्कार की घटनाए आम थी, जैसे तीस वर्षीय युद्ध के दौरान मग्देबग घेरे के समय था। यह बकवास है या नही ?" **

मौर्ले ने हर प्रकार की प्रतिक्रियावादी तथा दमनकारी कारवाईया के लिये अपनी अनुमति दे दी थी, परतु उनके भूतपूव "उदार" व्यक्तित्व का भूत अभी पूणतया दफन नही हुआ था और उनकी आर भर्त्सना का सकेत करता रहता था, और उनके कानो मे धीरे-धीरे कई जारो तथा दमनकारियो के नाम लेता रहता था। इस प्रकार की कुछ कानाफूसी उन दस्तावेजो से हमे सुनाई पडती है, जो मौर्ले द्वारा मिंटो को भेजे गये पत्रा के रूप म हैं। इस प्रकार भारत म प्रतिक्रियावादी नीति के बारे मे उन्होने लिखा है

"प्रश्न है भविष्य का और यह जार और डूमा की तरह है। क्या हमें यह कहना है आपको सुधार उस समय करने चाहिए, जब आप शात हो। इस बीच हम आपके कहे एक भी शब्द नहीं सुनेंगे। हमने अपनी सुधार योजनाए उठा रखी हैं।

*जान मौर्ले रिकलेक्शस भाग दो पृ० 211 12

**वही पृष्ठ 213

पीट्सबर्ग में जो लोग डूमा को सताने के कारण ग्राड ड्यूक के विरुद्ध शोर मचाते थे, इतने ही जोर से आपके और मेरे विरुद्ध शोर मचाएंगे, यदि हम अपने क्षेत्र मे ग्राड ड्यूक की नीति नही अपनाते ।"*

1907 मे पजाब म सरकार की कारवाइयो को समझने के लिए हम मौर्ले और मिण्टो और किसी हद तक इब्वटसन के व्यवहार को ध्यानपूर्वक देखना होगा। मौर्ले एक उदारवादी के रूप म प्रसिद्ध थे, परन्तु उन्होने अपनी उस ख्याति को तिलाजलि दे दी। केवल इतनी शेष रख ली कि नई दमनकारी नीति के बारे म विपक्ष का मुह बद किया जा सके। मिण्टो रूढिवादी तथा प्रतिक्रियावादी थे, परन्तु सामान्य तौर पर उनम पागलपन नही था। परन्तु वह बिना प्रभावित हुए बिल्कुल न रह सके । भारत के यूरोपियन समुदाय म हिस्टीरिया देशव्यापी रूप मे फैल गया। कुछ भी हो इस अतिशयोक्तिपूर्ण विवरण से उन्हे अपने मनमाने ढग से कारवाई करने मे सहायता की, परन्तु मौर्ले की पूर्ण अनुमति के कारण इब्वटसन बिल्कुल ही प्रतिक्रियावादी थे ।

कुछ लोगो को तो यह सदेह था कि वह जान-बूझकर अशाति फैला रहे थे, ताकि उन्हें सभी प्रकार के आदोलनो से निपटने के लिए खुली छूट मिल सके। अधिक दयालुतापूर्ण दृष्टिकोण मौर्ले ने उस समय अपनाया, जब निर्वासन से काफी समय बाद इब्वटसन छुट्टी पर इगलैंड गए, तो उनका स्वास्थ्य बहुत खराब हो गया था और सर्जन ने आपरेशन किया था। मौर्ले ने पजाब के उप राज्यपाल के बारे म अपने विचार इस प्रकार लिखे —

" इब्वटसन मुझसे मिलने आये—बहुत आश्चर्यजनक स्वास्थ्य लाभ कर चुके थे, ऐसा मुझे लगा। वह विचारवत है और अपने विचारो तथा अनुभव के अनुसार बहुत दृढ और अपने अनुभवो को ठीक तरह से समझते हैं, मुझे इस सबध मे पूर्ण विश्वास नही। किसी व्यक्ति के लिए एक पूरी पीढी के साथ बडी ईमानदारी से परिश्रम करने के बाद, नई पीढी के साथ जागना आसान नही होता। आपके भाग्य म यह कठिनाई निश्चित होती है कि आपको उन लोगो के सहयोग से काय करना होता है जिनकी प्रकृति प्रतिक्रियावादी होती है। खैर, हम इससे यथासभव निपटना है। मैने उनके साथ एस०एम० की कठिनाइयो के बारे मे बात-चीत की जो इस समय विशेष नही थी, परतु बहुत यथार्थ थी और आशा है

*वही पृष्ठ 215

कि मैंने उनके मन को कुछ खोला, यद्यपि मुझे सदेह है कि यह बड़ा कड़ा मन था। सत्य तो यह है कि यदि यह विश्वास करने के ठोस और स्पष्ट कारण हैं कि भारत खतरनाक स्थिति की ओर बढ रहा है, और यदि इन तथ्यों को अच्छी तरह सिद्ध किया जा सकता है, तो—जहा तक समद में तथा देश में राय का प्रश्न है—हम जो चाहें कर सकते हैं।"*

मौर्ले के अपने सदेह थे कि ऐसे "ठोस और स्पष्ट प्रमाण" थे, जब कि उनके पास केवल सुनी-सुनाई बातें थी या इससे अधिक थी जबानी रिपोर्टें और वे उन मुखबिरों की थी, जिन्हें चोरी छिपे सार्वजनिक बैठकों में भेजा जाता था।

मिण्टो ने मौर्ले से निपटने के लिए बडी चतुर तरकीब अपनाई, जो कुछ समय के लिये काफी सफल रही। उन्होंने सक्षिप्त सुनवाई के बाद राजद्रोह के लिये गोली मार देने के बारे में कहा और फिर रियासत के रूप में वह समाचार पत्रों के बारे में उपाय करने से ही सतुष्ट हो गये। मिण्टो इस तरकीब की सफलता के बारे में पूरी तरह जानते थे। उन्होंने अपनी पत्नी को लिखा

"6 जून (शिमला) मुझे पिछले सप्ताह प्रकाशित 'द टाइम्स' पर हसी आती है। वे सोचते हैं कि सभी कुछ मौर्ले ने किया है। उन्होंने शानदार ढंग से मेरा समर्थन किया है, परन्तु उन्होंने यहा किसी कारवाई के लिये अगुवाई नहीं की। जहा तक लाला लाजपत राय के निर्वासन का प्रश्न है, उन्हें (मौर्ले को) तो अपनी राय देने का भी अवसर नहीं था। कुछ जिलों को अशात घोषित करने का काम मेरा ही था वैसे ऐसी घोषणा करने का अधिकार केवल वायसराय को ही है।"**

मिण्टो ने जब अपने कार्यकाल के अंत के निकट अपनी पत्नी को यह लिखा, तो वह अधिक गलत नहीं थे

"दरअसल, मुझे विश्वास है कि जब से मैं यहा आया हू, हर मामले में मैंने अपनी बात मनवाई है, परतु यह सब उस समय सामान्य तौर पर मैंने गुस्से में आकर नहीं, जब कि मेरा नाराज होना उचित था, बल्कि अपनी बात बहुत ही विनम्र ढंग से कहकर किया है और उस व्यक्ति को प्रसन्न करके जिससे मेरा वास्ता था।"

प्रतिभाशाली मौर्ले को छलकपट से मिण्टो-नीति पर धूर्त वायसराय स्वय लाया था। शायद स्वय उसे यह सदेह होने लगा था कि जिस नीति का वह लागू कर

*वही पृष्ठ ??3
**मेरी काउटेस आफ मिण्टो इंडिया मिण्टो एड मौर्ले 1905-1910 पृ० 138

रहा है। वह असल में किसी अन्य की भद्दी उपज है। अनुमानित पिता ने अपने स्वभाव को कुछ सीमा तक 'रिक्लैक्शस' में व्यक्त किया है, जिससे गृह मंत्री तथा वायसराय के बीच बढ़ रही दूरी का संकेत मिलता है। अगस्त 1907 में ही ऐसा जान पड़ता है जैसे मोर्ले, मिण्टो के आदमियों से ऊब गये हों।

23 अगस्त की टिप्पणी में कहा गया है, "उन्होंने आपके कल के समाचार का तार मेरे पास अभी भेजा है। मुझे इस बात से हैरानी हो रही है कि आप जैसे मंझे हुए व्यक्ति यह बात किस प्रकार भूल जाते हैं कि वे एक स्वतंत्र देश की संसद के सेवक तथा प्रतिनिधि हैं, और वे यह स्वप्न लेते हैं कि एस० एस० संसद का अधिवेशन आरम्भ होने से केवल एक घंटा बाद तक ही जीवित रह सकते हैं, जिन्होंने इन नई व्यवस्थाओं को स्वीकृति दी हो। मैं समझता हूं और कहता हूं कि किसी आंदोलनकारी का मुंह बन्द करने का यह कड़ा अधिकार "निर्वासन की मजबूरी" की आवश्यकता नहीं रहने देगा। लाजिमी तौर पर वह यह भूल गये होंगे जो मैंने उन्हें स्पष्ट शब्दों में बताया था कि मैं उस व्यक्ति के अतिरिक्त, जिसके बारे में विश्वास किये जाने का ठोस कारण है कि हिंसक गड़बड़ी उनकी कारवाई का स्पष्ट और प्रत्यक्ष परिणाम है किसी और के निर्वासन की अनुमति नहीं दूंगा। वे कौन हैं—और ——? वही व्यक्ति जिन्होंने आपके अरुंडेल सुधारों का विरोध किया था—बहुत ही प्रशंसनीय तथा बुद्धिमत्तापूर्ण बात, जो हमारे समय में हुई। वही व्यक्ति या उन जैसे व्यक्ति, जो हम पर जोर दे रहे थे कि हम लाहौर तथा पिण्डी की गड़बड़ का सहारा लेकर अरुण्डेल सुधार योजना छोड़ सकते हैं। और तब, मेरे समय में जब मंत्रिमंडल का विसर्जन हो चुका है, वकील बिखर गए हैं, और मेरी परिषद के लगभग आधे सदस्य रह गए हैं, वह मुझे एक सप्ताह से भी कम समय दे रहे हैं, जिसमें वह मुझसे कानून और राजनीतिक क्षेत्र के बहुत ही नाजुक तथा पेचीदा मामलों का निपटारा चाहते हैं। मैं यह कहने का साहस कर सकता हूं कि ये कार्यकारी भद्र पुरुष (जो एक दूसरे की दूरदर्शिता, अनुभव तथा अन्य गुणों की प्रशंसा करने को तत्पर रहते हैं) इन मामलों को एक सप्ताह या एक घंटे में निपटा सकते हैं। फिर उन्हें यह सुविधा भी तो प्राप्त है कि उन्हें अपने प्रस्तावों का समर्थन करने के लिए दलीलें देने की आवश्यकता नहीं होती। मेरी स्थिति इतनी सुखद नहीं। मैंने आपको कई बार अपने उस नटखट विचार के बारे में बताया है कि सत्रहवीं शताब्दी में आयरलैंड का और बीसवीं शताब्दी में भारत का राज्यपाल बनने

के लिए स्ट्रेफाड आदश किस्म का व्यक्ति था। उन्होंने तो गरीब स्ट्रेफाड का सिर ही उतार दिया, और उस समय से ही सरकार के बारे मे उसके विचार को स्वीकृति की दृष्टि से नही देखा जाता। इससे पूव मेरे निणय की आपको तार द्वारा सूचना पहुच जाती, परन्तु मुझे बहुत ही हैरानी होगी, यदि इस निर्णय को रद्द किए जान के स्थान पर और कुछ हुआ। यदि किसी व्यक्ति के उग्र भाषण से दगा फसाद होता है, तो उसे दगे फसाद के लिए बन्द क्यो नही कर दिया जाता? यदि उनके पास काफी सख्या म पुलिस नही है, तो "आवश्यक सेना" का क्या हुआ? यह कहना बिलकुल ठीक नही है कि "देश में शान्ति" रखन के लिए ऐसा करना भारत के गवनर जनरल के विचार म बहुत आवश्यक है। परतु यह कहन का क्या लाभ, जब ससद इसे स्वीकार नही करगी? और निजी तौर पर म यह सोचूगा कि म उस विश्वास का दुरुपयाग कर रहा हू, जो ससद ने मुझमे व्यक्त किया है।

"समाचार-पत्रो के बारे म, सामान्य कानून बनाने का भूतपूव प्रस्ताव, जो केवल सैनिक अधिकारियो के आग्रह पर लागू किया जाना था, मर अनुमान में पिछले सौ वप में किसी ब्रिटिश मत्री का इतनी कडी खुराक प्रस्तावित नहीं की गई। परन्तु एक निजी बैठक को सावजनिक बैठक कर देने का विचार इसको भी मात करता है। और एक उप राज्यपाल या किसी अन्य अधिकारी को यह अधिकार दे देना कि वह किसी वक्ता को जिसके विचार उसे पसद नही, किसी विशेष क्षेत्र में मुह खालने की मनाही कर दे उसे किसी गिलोटीन म लटक जान दो और खत्म हो जाने दो। और गाडन के कथनानुसार उसे अपने आपको किसी बदकिस्मत एस० एस० के स्थान म डालन दो जिसे स्लाइडर को तल तथा दिखाई देती हो।"*

बाद म उसने प्रशासकीय घोडागाडी की बात की, जो कि पिकविक वाली हास्यास्पद और असुखद स्थिति के समान था

"हम भारत को उसी ढग से समझने का प्रयत्न कर रह हैं और अपने सामान्य कारोबार को उसी भावना से देखत है। फिर भी मामने की आवश्यकताओ के कारण यह इस प्रकार है और इसे इसी प्रकार होना चाहिए कि जाडे म एक घोडा कभी दाई ओर खीचता है और उसी समय दूसरा घोडा बाए को खीचता है, या यह

*जॉन मोर्ले, रिकलक्शन्स भाग दो पृष्ठ 231 32

फिर पिकविक की स्थिति के समान है—जब अगुआ मुडकर अपने से पीछे की ओर के घोडे को देखे।"*

जब लाजपत राय के माडले स निर्वासन से लौटने के दो वष बाद, मिंटा न फिर निर्वासन के लिए (बगाल में) अनुमति चाही, तो मोर्ले ने उनका यह सुझाव तुरत स्वीकार नही किया (9 नवबर 1909)।

"म निर्वासन के लिये आपका अनुसरण नही करूगा। आपने अपना पक्ष बडे जोरदार ढग से पेश किया है, इस बात को मैं स्वीकार करता हू। परतु आपके साथ असहमति होने के कारण अपनी बेचैनी मे मैं अपने आपको सात्वना देता हू, यह सोचकर कि शायद नीदरलैंड मे स्पेन के वायसराय, वेनिस मे आस्ट्रिया के वायसराय, दोना सिसिलिया म बोरबन और पुरानी अमरीकी बस्तियो के एक या दो राज्यपालो ने, जो दलीलें दी थी, वे भिन्न नही थी और न ही कम जोरदार थी। निरादरपूर्ण इस समानता के लिये क्षमा चाहता हू। यह उस व्यक्ति का सही उत्तर है जो अक्सर अपनी तुलना स्ट्रैफोर्ड किंग जॉन, किंग चार्ल्स, नीरो तथा टिबेरियस से करता है।"**

एक-दो मास बाद, निर्वासन-नीति की चर्चा करत हुए फिर

"27 जनवरी 1910—यह नीति रूस म शानदार ढग से सफल नही रही, न ही यह ट्रैपोफ की जान बचा पाई और न ही यह रूस को डूमा से बचा सकी, जिस बात की ट्रेपोफ तथा उनके विचारा से सहमत अन्य व्यक्ति निंदा करते थे और उनमे घृणा करने मे।"***

यद्यपि वह हाउस आफ कामस मे बडे जोर-शोर से तथा अधिकारपूर्वक कहते थे कि जिन कारणा के आधार पर लाजपत राय को कैद किया गया है, उन्हें बताया जाना जनहित मे नही होगा, दरअसल मोर्ले को स्वय यह बात कभी नही बताई गई थी, सिवाय सकेत रूप मे, कि वे मुख्य कारण क्या थे।

बार बार मोर्ले को लाजपत राय से सबद्ध "अन्य तथ्य" बताने से बचाव के लिये "सार्वजनिक हितों" का आश्रय लेना पडता था। कोई भी व्यक्ति वे सूत्र नही ढूढ पाया कि न बताए जाने वाले रहस्यमय तथ्य क्या थे। इनकी

* वही, पृष्ठ 234
** वही, पृष्ठ 322
***ही, पृष्ठ 328

जानकारी न 'रिग्न्क्शस' से मिलत है, न मर मिटो के संग्रह स और न ही सरकार के पक्ष लेने वालो के किसी प्रकाशन में। यद्यपि समय बीत जाने के बाद इन भयानक घटनाओ की जानकारी दे देना काफी समय पूर्व ही सुरक्षित हो चुका है। मौर्ले तो केवल इतना ही बता पाये कि एंग्लो-इंडियनो की बकवास कहानियां क्या थी—उत्तेजना की घड़िया मे एक और नाना साहब का भ्रम, जिनके हुक्म की एक साथ सैनिक प्रतीक्षा कर रहे थे।

एक यूरोपियन अधिकारी को, जो इनायतो की दयालुता के कारण जेल म लाजपत राय स मिला था उसने बताया कि यह विश्वास किया जाता है कि लाजपत राय ने सैनिको को सम्राट की वफादारी से दूर किया और उन्हें दूसरा नाना साहब समझा गया।

1857-1907 ! नाना साहब लाजपत राय ! फिर भी लाजपत राय ने जब भारत सरकार को प्रतिवेदन भेजा, तो उसम सत्य ही लिखा कि उन्हें सैनिको स मिलने का कभी अवसर ही नहीं मिला। और सरकार के पास इसके विपरीत कोई प्रमाण नहीं था। दरअसल, इस विचार का सुझाव उनके निर्वासन स पहले नहीं दिया गया था, बल्कि बाद में दिया गया था, जब सरकार अपने शिकार व्यक्तियो के विरुद्ध कोई प्रमाण ढूढ रही थी। इस बात की पहली झलक मिंटो मौर्ले चिठ्ठी पत्री म मिलती है—क्योकि उस समय के भारतीय इतिहास के बारे मे यह स्रोत पुस्तक है—

मिंटो ने 29 अगस्त को मौर्ले को पत्र मे लिखा

_ " मुझे डर है कि जहा तक सेना का प्रश्न है, हमने स्थिति पूरी तरह स्पष्ट नहीं की। लाजपत राय की गिरफ्तारी से काफी बाद म जाकर हम इस बात का ख्याल आया है कि सेना के स्वदेशी अधिकारियो तथा सैनिको को भ्रष्ट करने के प्रयत्न किये गये। मैंने आपको बताया है कि इससे हमें बहुत आश्चर्य हुआ था। अब जितनी अधिक जानकारी हमे मिलती जाती है स्थिति उतनी अधिक खराब दिखाई देती है।"*

मिंटो का यह विशेष पत्र बहुत ही भयप्रद है—क्योंकि मिंटो यह कोशिश कर रहा था कि मौर्ले एक निन्दनीय समाचारपत्र कानून के लिये सहमत हो

*मेरी, काउंटेस आफ मिण्टो इंडिया मिण्टो एण्ड मौर्ले 1905-1910 पृष्ठ 151

जाये— इस पत्र की तथा इसके पीछे काम कर रही भावना अगले उद्धरण से स्पष्ट हो जाएगी

"यहां हमारे पास दैनिक जीवन का प्रमाण है, लगातार जानकारियां जो हम स्वदेशी साधनों से प्राप्त होती हैं चेतावनियां जो स्वदेशी अधिकारी देते हैं हमारे अपने स्वदेशी मुखबिरों के बयान हैं। यदि इसे समझ लिया जाये और इसका विश्लेषण किया जाये, तो हमें बताया जाएगा कि यह केवल सुनी-सुनाई बातें हैं, जो केवल व्यक्तिगत पूर्वाग्रहों पर आधारित हैं। परंतु हम उन सभी बातों की, जो सामान्यतः पर सुनने में आती हैं उपेक्षा नहीं कर सकते। गदर से पहले भी चपातियों की रहस्यमय कहानी एक चेतावनी हो सकती थी, परंतु प्रमाण नहीं। हमारे सामने जो ठोस हकीकत है, वह स्वदेशी, रेजिमेंटों, पत्रिकाओं तथा राजद्रोही समाचार-पत्रों का प्रचलन है।

"यह तो हमें बाद में ही पता चला है कि आंदोलनकारी कितना जोरदार प्रयत्न कर रहे हैं, और इस उद्देश्य के लिए कम वेतन दरों, प्लेग की विनाश-लीला तथा अन्य वह कोई भी बात, जो स्वदेशी सैनिकों में वफादारी के विरुद्ध भ्रष्टता फैलाने में सहायक हो इस्तेमाल कर रहे हैं। हम जानते हैं कि ऐसा करने में वे कोई कोर-कसर बाकी नहीं रहने देते। निस्संदेह युद्ध-कानून बहुत बड़ी शक्ति देता है, परंतु इस समय मुझे इस बात पर खेद होगा कि किसी व्यक्ति को, उसके विरुद्ध राजद्रोह का आरोप पूर्णतया सिद्ध हो जाने पर भी, गोली से उड़ा दिया जाये। मेरा विश्वास है कि अब तक केवल दो व्यक्तियों के विरुद्ध सैनिक अदालत में मुकदमा चलाया गया है। जिस प्रकार से स्थिति बेकाबू हो रही है, यदि कोई कड़ी कार्रवाई की गई, तो इससे उत्तेजना हो फैलेगी। हम तो केवल यही कर सकते हैं कि दृढ़ता, ठंडे दिल से और सावधानी से काम लें। हमें पूरी तरह चेतावनी दी जा चुकी है और हमारा विचार है कि भ्रष्टाचार को आगे बढ़ने से रोकने के लिए कुछ सावधानियां बहुत ही आवश्यक हैं। सेना में राजद्रोह का अगला कदम, यदि यह अगला कदम माना जाए गदर होगा, और फिर हम युद्ध कानून का पूरी शक्ति से इस्तेमाल कर सकेंगे*"।

*वही, पृष्ठ-151

1857-1907 ! चपातिया-पत्रिकाए ! माना साहब-लाजपत राय ! बर्मा निर्वासन। अंतिम मुगल बादशाह और अब पजाब केसरी लाला लाजपत राय यदि हम श्रद्धा वाले इस उपनाम की प्रत्याशा कर !

परतु इस पत्र मे इस बात की कोई प्रत्यक्ष चर्चा नही की कि लाजपत राय न वफादार सैनिको को वरगलान का प्रयत्न किया हो, इसके विपरीत पत्र यह व्यक्त करता है कि ये प्रयत्न उनकी गिरफ्तारी तथा निवासन के बाद किये गये। इन प्रयत्नो का मूल्याकन करत हुए मिटो निस्सदेह अतिशयोक्ति से काम ले रहे थे, क्योकि 57 के गदर की अर्ध-शताब्दी के कारण एग्लो इडियन लोगा म फली घबराहट से वह भी प्रभावित था। परतु यह स्वीकार किया जा सकता है कि लाजपत राय के निर्वासन के विरुद्ध भारतीयो मे सवव्यापी नाराजगी फैल गई थी और यह नाराजगी कुछ हद तक छावनिया मे भी जा पहुची थी, जिनके बारे मे विश्वास था कि ये राजद्रोह और गर-वफादारी से बिल्कुल सुरक्षित बना दी गई थी।

मिटो द्वारा मौर्ले को लिखे जिस पत्र से हम उद्धरण द रहे थे, फिर उसी की ओर आत ह। इस पत्र मे हबीबुल्लाह और लाजपत राय के सबध मे एक बहुत ही रोचक कहानी है

"हमे लाजपत राय तथा अन्य आदोलनकारिया द्वारा अमीर के साथ किए गये पत्र व्यवहार के बारे मे कुछ असाधारण जानकारी भी मिली है। जहा तक अमीर का प्रश्न है, म इस जानकारी को कोई महत्व नही देता शायद ऐसे पत्रो का वह रद्दी की टोकरी म फेंक देता है, यदि उसके पास ऐसी कोई हो, परतु इससे पता चलता है कि उसकी मित्रता हमारे लिए कितनी महत्वपूर्ण है।"*

हा, कितनी महत्वपूर्ण ! और इसी लिए ता उस बडे खच का उचित करार दिया जा सकता है, जो अमीर की यात्रा के समय हुआ और जिस पर स्वय कर्जन हैरान था।

*वही, पृष्ठ 151

26. बन्द गाड़ी-अज्ञात गन्तव्य

इस बात की जानकारी दिये जाने के बाद कि उन्हें निवासन के आ
अनुसार गुप्त रूप से ले जाया जा रहा है, जब लाजपत राय से पूछा
कि अज्ञात गंतव्य के लिए रवाना होने से पूर्व क्या वह किसी से मिलना च
तो इस पेशकश को तुरंत ठुकरा दिया गया। दरअसल, वह इस बात से प्र
कि सारी घटनाएं इतनी सफाई से हो रही हैं कि सारे घरेलू "दृश्य" और क
के किनारे पर" रोने सिसकने का अवसर आने का प्रश्न ही नहीं, यद्यपि
प्रकार इस अजीब जोखिम के लिए रवाना होने से पहले वह घर से बिस्त
बदलने के लिए अपने कपड़ों के जोड़े भी नहीं ले सके थे।

जब उनसे यह पूछा गया कि क्या वह किसी को कोई पत्र देना चाहते
उन्होंने इस प्रस्ताव का प्रसन्नतापूर्वक लाभ उठाया। जो दो पत्र उन्होंने
लिखे उनमें से एक अपने मित्र, द्वारकादास को लिखा, जिसमें कहा गया थ
कुछ मुकदमों की ओर, जो वह छोड़कर जा रहे हैं, तुरंत ध्यान
जाये। उन्होंने दृढ़तापूर्वक निर्देश दिया था कि हर मुकदमे के संबंध में,
उनका मुवक्किल वकल्पिक व्यवस्था से संतुष्ट न हो, तो उसे उसकी फीस
दी जाये। करेंसी नोटों की जो गड्डी उनकी जेब में थी, वह उन्होंने पत्र के
नत्थी कर दी, परंतु जब उन्हें पता चला कि यह राशि वह अपने पास रख
हैं, तो उन्होंने यह करंसी नोट रख लिए और पत्र की समाप्ति पर इस
में लिख दिया। पत्र की समाप्ति उन्होंने अपने मित्र को यह कहते हुए की
वह उनके बारे में बिल्कुल चिंता न करें, क्योंकि वह भगवान के हाथों में
और जो कुछ वह कर रहे हैं बहुत अच्छा है।

दूसरा पत्र उन्होंने प्यारेलाल को लिखा। उनके बच्चा में से उस समय
वहीं लाहौर में थे। इस पत्र में 'केवल उसी से मैंने अपनी गिरफ्तारी के बा
चर्चा की थी और यह इच्छा व्यक्त की थी कि मेरी अनुपस्थिति में वह मेर
के आदेश का पालन करे, उन्हें सांत्वना दे और उनकी सुख-सुविधा का
रखे।" उन्होंने यह इच्छा भी व्यक्त की कि पुलिस के द्वारा उनका बिस्तरा
कुछ कपड़े भेज दिए जाएं।

य आरभिक काम पूर हुए। लाजपत राय का बताया गया कि वह डिप्टी कमिश्नर के साथ उसकी मोटरकार मे जाये, जा बाहर निकाल ली गई थी। डिप्टी कमिश्नर साट न चालक का स्थान सभाल लिया आर पुलिस कप्तान रडल, जा रिवाल्वर से लस था, उसकी बगल म बैठ गया। पिछली सीट पर बंदी आर पुलिस का एक यूरोपियन सब-इस्पक्टर बैठे। यह बिल्कुल अग्रेज व्यवस्था" थी, किसी भारतीय पुलिस अधिकारी, यहा तक कि भारतीय ड्राइवर का भी यह गुप्त काय नही सापा गया। कार शालबाग मे से गुजरी, अपर माल पर पहुची तथा नहर का पुल पार करके छावनी पहुची। बहुत ही असाधारण स्थिति के लिए व्यापक सैनिक प्रबध किए गए थे। यहा तक कि तापखाना भी बाहर निकाला गया था आर उसका प्रदशन किया जा रहा था।

मोटरकार एक यूरोपियन चाकी के सामने रुकी आर बंदी स उतरन क के लिए कहा गया। उनके लिए एक काठरी का ताला खोला गया जिसम उन्हे 9 मई की साय 6 बजे तक रखा गया। काठरी के आगे ब्रिटिश सनिक बारी-बारी स पहरा दत रह। बंदी से खाने पीने की आवश्यकता क बार म पूछन पर जब उन्हान नही, धन्यवाद' का उत्तर दिया, ता डिप्टी कमिशनर तथा पुलिस कप्तान वहा से चले गये।

अपनी गिरफ्तारी के एक घटे के अदर ही वह अपन भविष्य के बार म सोचन के लिए अकेले रह गए। 'लकडी के तख्ता की बनी जेल की 'टामा ऐटकिन' चारपाई पर अपन आपको आराम स टिका लेन के बाद मैने आत्म निरीक्षण की क्रिया आरभ की।' पहली बात जिसके लिए उन्हान आभार महसूस किया, वह उनकी खुशकिस्मती थ कि गिरफ्तारी के समय वह उस "दृश्य का दशन से बच गए क्योकि न मित्र, न बीवी आर न कोई बच्चा उस समय उपस्थित था। दूसरी बात जिसके लिये उन्हान परमात्मा का धन्यवाद किया वह यह कि उनकी मा का देहान्त हो चुका था।

अपन पिता के बार म यह कहता हू मुझे उनक चरित्र म ससार हान आर दुर्भाग्य के समय न घबरान के स्वभाव म इतना पक्का विश्वास था कि उनकी कठिनाई का विचार मेर मन पर कभी अधिक भार न बना। जहा तक मेरी पत्नी और बच्चो का प्रश्न है इस विषय म कि व मेर पिता के सरक्षण म ह मेर मन म अधिक चिन्ता न थी।

इस प्रकार परिवार के प्रति सभी विचारों से अपने मन को चिंता मुक्त करने के बाद, उनका आत्म विश्लेषण जारी रहा, उन्होंने लिखा

"बचपन से ही विधाता की बुद्धिमत्ता में विश्वास रखने के कारण, मैंने देखा कि मुझमें आपात स्थिति में स्थिर रहने के लिये काफी शक्ति शेष थी जो सभी परिस्थितियों में मेरी सहायता करेगी। इस प्रकार गंभीर रूप से आत्म-समीक्षा करने के बाद, मैं इस परीक्षा में से अधिक मजबूत तथा दृढ होकर निकला, जितना मैं अपने जीवन में पहले कभी नहीं था। मैंने आत्म विश्लेषण का समापन परमात्मा के आगे इस प्रार्थना से किया कि वह मुझे बल दे ताकि मैं अपने पौरुष, सम्मान तथा दृढ व्यवहार को इन कष्टों के दौरान बनाए रख सकूँ और भगवान मुझे चेतन तथा अवचेतन दशा में रत्ती भर भी कमजोरी दिखाने से बचाये रखे, जिससे मेरे देश के पवित्र हित को किसी प्रकार की हानि हो और देश का अपमान हो या जिससे उस समाज का अपमान हो जिसका मैं सदस्य हूँ।"

और वह अपनी खास कोठरी में बैठे सरकार की करतूतों पर हँसे बिना न रह सके

"अपने लोगों को बहुत अच्छी तरह जानने के कारण, मुझे इस बात पर हँसी आई कि सरकार के मुखबिरों ने उसे कितनी गलत सूचना दी थी। परंतु इन सब कुछ में बावजूद मुझे इसमें विधाता का हाथ दिखाई दे रहा था। जो फैले हुए काले घोर बादलों के अंधियारे में एक रुपहली किरण दिखा रहा था देश के भविष्य के बारे में, जो उन शक्तियों के गतिहीन होने से और उज्ज्वल हो गया था जिन शक्तियों ने भारत को काफी लंबी अवधि से दासता के बंधन में बांधा हुआ था।"

शाम के छः बजे के करीब कदी ने ताले में चाबी घूमने की आवाज सुनी, जब दरवाजा खुला तो उन्हें रुडल दिखाई दिया, उसके साथ एक अन्य यूरोपियन अधिकारी तथा एक मुसलमान इंस्पेक्टर या सब इन्स्पेक्टर था। रुडल कैदी को अपनी हिफाजत में लेकर एक मोटरगाडी में गया और मियां मीर (उन दिनों लाहौर छावनी–पश्चिम स्टेशन का यही नाम था) रेलवे स्टेशन के सैनिक भाग तक पहुंचाया, वहां रेलवे लाइन पर एक विशेष गाडी उस दल की प्रतीक्षा कर रही

थी। गाडी रवाना होने से पूर्व रुडल ने बताया कि उनके पत्र पहुंचा दिए गये है। उसके बाद उसने विदा कही, गाडी ने सीटी दी और रवाना हो गई। लाजपत राय अपने लाहौर को अलविदा कह रहे थे, परंतु जिस प्रकार उन्होंने लिखा है, उन्हें यह विश्वास बिल्कुल नही था कि 'यह लाहौर को मेरी अंतिम विदा है।" किसी न किसी प्रकार वह यह महसूस कर रहे थे कि उनका भाग्य नाम-धारी गुरु से भिन्न होगा।

कई मामूली कष्ट, जिनके बारे मे राजनीतिक बंदी बहुत सवेदनशील होते हैं, गाडी के रवाना होते ही आरंभ हो गये। मुख्य पुलिस अधिकारी, जो सुरक्षा का इचार्ज था, गाडी मे आया और उसकी उपस्थिति मे यूरोपियन पुलिस इस्पेक्टर ने दोबारा तलाशी ली। जेब की नकदी, सोने की घडी तथा जजीर ले ली गई, ताकि यात्रा के अत तक उन्हे सुरक्षित रखा जा सके। पुलिस अधिकारी ने खेद व्यक्त करते हुए स्पष्ट किया उसे 'मेरे विरुद्ध यह कारवाई मजबूर होकर आत्मरक्षा के लिए करनी पडी है।'

पुलिस अधिकारी ने लाजपत राय को आश्वासन दिया कि सरकार का प्रस्ताव उनके साथ ठीक ढंग से बर्ताव करने का है। उसने अपनी बातो मे ऐसा सकेत भी दिया, जिससे लाजपत राय के इस अहसास की पुष्टि होती थी कि वह लाहौर को सदा के लिए अलविदा नही कह रहे थे, यद्यपि महत्वपूर्ण नीति के बारे मे निर्णय के लिए किसी पुलिस अधिकारी का विश्वास मे लिए जाने की सभावना नही होती।

पुलिस अधिकारी ने यह भी बताया कि वह अपने खाने के व्यजनो की सूची स्वय दे सकते हैं, सुरक्षा कर्मचारियो मे दो हिंदू पुलिस कास्टेबल भी थे जो उनके लिए सहायक हो सकते थे और इस्पेक्टरो को यह आदेश दिया गया था कि वह उनकी सुविधा का ध्यान रखें। समूचे तौर पर यात्रा मे उनका अच्छी तरह ध्यान रखा गया।

मुगल सराय मे बदी का लिबास तबदील करने के लिए नया जोडा खरीदा गया, क्योकि उनका अपना बिस्तर तथा कपडे उनके साथ नही, बल्कि बाद मे आने वाले थे। इस बात को आरंभ से ही स्पष्ट कर दिया गया था। एक इस्पेक्टर वहा के बाजार से ही एक कुर्ता तथा एक पाजामा खरीद लाया। फिर भी गाडी के ठहराव को प्रोत्साहन नही दिया जाता था और रास्ते मे

चारियों को यह बताया जाता था कि यह रेलवे बोर्ड की विशेष गाड़ी है। कर्म-
जिन स्टेशनों पर गाड़ी रुकती तो पुलिस गार्ड के सभी कर्मचारियों [illegible]
जिनमें मुसलमान सब-इंस्पेक्टर और छः मुस्लिम कांस्टेबल, एक हिंदू सार्जेंट तथा
एक हिंदू कांस्टेबल थे—इस तरह कड़ी निगरानी रखी जाती थी, जैसे कि
कैदी हो, जिसके भाग जाने का संदेह हो।

"पंजाब में सारे मार्ग पर गाड़ी की खिड़कियाँ बंद रखी गईं, परन्तु [illegible]
रुहेलखंड रेलवे स्टेशनों के बीच मुझे खिड़कियों के शीशे नीचे गिराने की आज्ञा
दे दी गई।' कैदी का यह सफर अधिक कष्टदायक नहीं था, यद्यपि
तापमान ज्यादा था। उनके लिए एक पंखे तथा एयर-कूलर का इंतजाम कर दिया
गया। और अब तक तो वह किसी हद तक [illegible]।

"मुझे कई वर्ष पुराना अनिद्रा रोग था। परन्तु उस रात मैं खूब सोया। [illegible]
अवस्था का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि मैं इतनी गहरी नींद में सोया
और मेरे पहरेदारों को फिल्लौर स्टेशन पर मुझे कुछ समय तक [illegible] जगाना
पड़ा।'

थी। गाडी रवाना हान स पूव रडल न वताया वि उनके पत्र पहुचा दिए गये ह। उसके वाद उमने विदा वही, गाडी न मीटी दी और रवाना हो गई। लाजपत राय अपने लाहोर वा अलविदा वह रह थे, परतु जिम प्रकार उहाने लिखा है, उहें यह विश्वास विल्कुल नही था वि "यह लाहोर को मेरी अतिम विदा है।" किसी न किसी प्रकार वह यह महमूस कर रहे थे कि उनका भाग्य नाम धारी गुरु से भिन्न होगा।

कई मामूली वष्ट जिनके वारे म राजनीतिव कैदी वहुत सवेदनशील होते हैं, गाडी वे रवाना होते ही आरभ हो गये। मुख्य पुलिस अधिकारी, जो सुरक्षा का इचाज था, गाडी मे आया और उसवी उपस्थिति मे यूरोपियन पुलिस इस्पेक्टर ने दोवारा तलाशी ली। जेव की नवदी, सोने वी घडी तथा जजीर ले ली गई, ताकि यात्रा के अ त तक उहें सुरक्षित रखा जा सके। पुलिस अधिकारी ने खेद व्यक्त करते हुए स्पष्ट किया उसे "मेरे विरुद्ध यह कारवाइ मजबूर होकर आत्मरक्षा के लिए वरनी पडी है।'

पुलिम अधिकारी ने लाजपत राय वा आश्वासन दिया वि मरकार का प्रस्ताव उनवे माथ ठीक ढग स वर्ताव वरने का ह। उसने अपनी वाता मे ऐसा सकेत भी दिया, जिससे लाजपत राय के इस अहसास की पुष्टि हाती थी वि वह लाहार को सदा वे लिए अलविदा नही कह रहे थे, यद्यपि महत्वपूण नीति के वारे म निणय वे लिए विसी पुलिस अधिकारी वो विश्वास मे लिए जान की सभावना नही होती।

पुलिस अधिकारी ने यह भी वताया वि वह अपन खाने वे व्यजना की मूची स्वय दे सकने ह सुरक्षा कमचारियो मे दो हिंदू पुलिस कास्टेबल भी थे जो उनवे लिए महायक हो सकत थे और इस्पेक्टरा को यह आदेश दिया गया था कि वह उनकी सुविधा का ध्यान रखें। समूचे तौर पर यात्रा मे उनवा अच्छी तरह ध्यान रखा गया।

मुगल सराय म वदी वा लिवास तवदील करन वे लिए नया जाडा खरीदा गया, क्यावि उनका अपना विस्तर तथा वपडे उनवे साथ नही, वल्वि वाद मे आने वाले थे। इम वात वो आरभ से ही स्पष्ट वर दिया गया था। एक इस्पेक्टर वहा वे वाजार से ही एक कुर्ता तथा एक पाजामा खरीद लाया। फिर भी गाडी वे ठहराव वो प्रात्माहन नही दिया जाता था आर रेलवे वम

चारियों को यह बताया जाता था कि यह रेलवे बोर्ड की विशेष गाडी है और जिन स्टेशनों पर गाडी रुकती, तो पुलिस गार्ड के सभी कर्मचारियों पर—जिनमें मुसलमान सब इंसपेक्टर और छः मुस्लिम कांस्टेबल, एक हिंदू सार्जेंट तथा एक हिंदू कांस्टेबल थे—इस तरह कड़ी निगरानी रखी जाती थी, जैसे वे ऐसे बंदी हों, जिनके भाग जाने का संदेह हो।

"पंजाब में सारे भाग पर गाडी की खिडकियां बंद रखी गईं, परंतु अवध-रूहेलखंड रेलवे स्टेशनों के बीच मुझे खिडकियों के शीशे नीचे गिराने की आज्ञा दे दी गई।" बंदी को यह सफर अधिक कष्टदायक नहीं लगा, यद्यपि तापमान ज्यादा था। उनके लिए एक पंखे तथा पंखा कुली की व्यवस्था कर दी गई। और अब तक तो वह किसी हद तक लापरवाही का रवैया अपना चुके थे।

"मुझे कई वर्ष पुराना अनिद्रा रोग था। परंतु उस रात को मेरी मानसिक अवस्था का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि मैं बहुत गहरी नींद सोया और मेरे पहरेदारों को फिल्लौर स्टेशन पर मुझे कुछ गरम दूध देने के लिए जगाना पड़ा।"

प्रातःकाल गाडी की यात्रा डायमंड हार्बर पहुंचने पर समाप्त हो गई। मुख्य पुलिस अधिकारी, जो इंचार्ज था, उनके पास आया और पूछने लगा कि क्या वह बता सकते हैं कि वह कहां है? क्या वह अनुमान लगा सकते हैं कि उन्हें कहां ले जाया जा रहा है? उन्होंने बताया कि वह स्टेशन को जानते हैं, क्योंकि वह एक बार पहले यहां आ चुके हैं और संभवतः उन्हें रंगून या मांडले ले जाया जा रहा है। यह बात सुनकर वह अधिकारी अवश्य ही आश्चर्यचकित हुआ होगा, क्योंकि अब तक उनके गंतव्य स्थान को उनसे बडी सावधानी के साथ गुप्त रखा गया था।

डायमंड हार्बर पर एक नौघाट स्टीमर से बंदी को तथा उनके पहरेदारों को सवार कराया गया। और उन्हें सरकारी स्टीम शिप 'गाइड' पर सवार कराया गया। परंतु रेलगाडी से उतरने से पहले उनकी सजा के वारंट पर पहचान के तौर पर उनका अंगूठा लगवा लिया गया।

उन्होंने पूछा कि क्या वह अपने लोगों को तार भेज सकते हैं, परंतु आज्ञा न दी गई। परंतु उन्हें पत्र लिखने की अनुमति दे दी गई और उन्होंने अपने पिता को एक पत्र लिखा (जो किसी कारणवश नहीं मिला) और एक पत्र अपने पुत्र प्यारे लाल को लिखा, जिसमें कहा गया था

"मैं तो जो बन आएगी उसके लिए तैयार हो गया हूं। अपने दादा और मां का ख्याल रखना। उनका कहा मानना, उन्हें सात्वना देना और विशेष तौर पर अपनी विधवा बहन और उसके नन्हें पुत्र का ध्यान रखना। अपने चाचाओं के साथ अच्छी तरह रहना और अपने कष्ट को साहस से सहन करना।"

पंजाब पुलिस के उप मुख्य अधिकारी ने अब अपने कैदी को बंगाल के वरिष्ठ पुलिस अधिकारी को सौंप दिया, वह जहाज पर सवार करा दिये गये तथा उसने अलविदा कहा। उसकी अन्तिम टिप्पणी प्रश्नजनक थी "आप भारत छोड रहे हो, देखें आप कब लौटते हैं।"

यूरोपियन पुलिस इंसपेक्टर तथा पंजाब की पुलिस का पहरा जारी रहा। परन्तु पहरेदारों का नया प्रमुख उनके प्रति पहले प्रमुख से कम विनम्र था, क्योंकि यह व्यक्ति अपनी सारी विनम्रता और ध्यान यूरोपियन इंसपेक्टरों के लिए ही आरक्षित रखता था।

स्टीमर पर रिहाइश की व्यवस्था को लेकर एक छोटी सी समस्या खडी हो गई। कैप्टन ने बताया कि केवल जहाज के तलघर में स्थान खाली है। परन्तु पुलिस का यूरोपियन इंसपेक्टर उसे एक ओर ले गया और उसे दो कैबिन देने के लिए सहमत कर ही लिया। एक अपने लिए और दूसरा यूरोपियन सब इन्सपेक्टर के लिए। कैदी, मुस्लिम सब इन्सपेक्टर तथा कास्टेबलों से कहा गया कि वे उस बदबूदार तलघर में चले जायें। उनसे कहा गया कि वे उस स्थान पर अपनी सुख का व्यवस्था-इन्तजाम कर लें, परन्तु लाजपत राय ने इस अन्याय को स्वीकार नहीं किया। उन्होंने विरोध व्यक्त करते हुए कहा कि कानून के अनुसार सरकार अपने कैदी के लिए उसकी प्रतिष्ठा और जीवन स्तर के अनुसार उचित स्थान देने के लिए बाध्य है। इससे इन्सपेक्टर की आखें खुल गईं।

"परन्तु उसने मुझसे कहा कि मैं कुछ समय के लिए तलघर में चला जाऊं और तब तक वह कप्तान से मिलकर मेरे लिए उचित स्थान की व्यवस्था करता है।

कप्तान के पास सचमुच ही और कोई जगह नहीं थी और कोई एक घंटे के बाद इंसपेक्टर वापस आया और उसने बताया कि जो केबिन यूरोपियन सब इंसपेक्टर के लिए था, वह लाजपत राय को दे दिया गया है। "परन्तु वह केबिन मेरे लिए किसी काम का न था, क्योंकि मैं जितनी देर स्टीमर पर रहा, उसके डेक पर ही बना रहा।'

स्टीम शिप 'गाइड' डायमण्ड हार्बर से 12 तारीख की दोपहर से पहले रवाना हुआ और 15 तारीख को दोपहर बाद अपने गन्तव्य स्थान रंगून पहुँच गया। रास्ते में मौसम काफी खराब रहा था और जब जहाज ने सफर खत्म किया, उस समय वर्षा हो रही थी और कप्तान भी मौसम के समान ही अस्पष्ट था। यह जानते हुए कि कैदी कौन था, उसने एक दो बार कैदी के साथ राजनीति के बारे में बातचीत शुरू करनी चाही।

परन्तु जब उसने 'वन्दे मातरम्' के समर्थकों तथा सुरेन्द्रनाथ बनर्जी को मोटी मोटी गालियां देनी आरम्भ कर दीं, तो मैंने बातचीत बीच में ही बन्द कर दी, ताकि वह समझ सके कि मैं और बातचीत नहीं करना चाहता।'

कप्तान का रसोइए की मुद्रा में सिगरेट पीते हुए देखा था। निश्चय ही ऐसा देखकर लाजपत राय का मन उदास और बेचैन हो उठा।

पुलिस इन्स्पेक्टर ने स्टीमर पर भी कड़ी नज़र रखा। इससे लाजपत राय को मजाक सूझा और उन्होंने हँसते हुए उनसे पुलिस से कहा कि उनका अपना आपको सागर में डुबोने का कोई विचार नहीं, क्योंकि वह अपने जीवन को। अपने लिए तथा अपने लोगों के लिए इससे कहीं अधिक मूल्यवान समझते हैं, जितना कि वह सरकार तथा अधिकारियों के लिए है।

"वर्मा मे मेरे मन मे निराशा की कोई ऐसी भावना नही थी, जो किसी पराए देश मे जाने के समय सभव हो सकती है। मैं सभी भारतीयो के चेहरो पर स्नेह की भावना से देखता था, चाहे वे हिदू थे या मुसलमान, पजाबी थे या वगाली या मद्रासी। मेरे लिए तो ये सभी मेरे अपने लोग थे, वे मेरे साथ एक वधन से वधे हुए थे, जो उम ममय किसी भी अन्य वधन के मुकावले अधिक प्रिय तथा मजबूत दिखाई पडता था। आगे और पीछे पूरी तरह पहरे मे पुल के नीचे से गुजरते हुए मैं एक अच्छे लिवास वाले पजाबी भद्र पुरुप के पास से गुजरा, जिन्होने मुझे तुरत पहचान लिया। अनजाने मे ही मुझे उनके चेहरे पर निराशा और दुख के वादल दिखाई दिये। मैंने उनकी सलाम का उत्तर आख झपका कर दे दिया।"

अपने और पहरेदार के लिए आरक्षित पहले दर्जे के डिब्बे से उन्होने देखा कि उसमे पिछले डिब्बो मे "अनेक पजाबी सिख पुलिम की वर्दी पहने हुए सवार थे, जो मेरी ओर उत्सुकतापूवक देख रहे थे और कुछ जोश से बाते कर रहे थे।" परतु शीघ्र ही उनके डिब्बे की खिडकिया वद कर दी गइ और यह दृश्य उनकी नजरो से छुप गया। यह एहतियात प्रत्येक स्टेशन पर वरती जाती थी। उस यात्रा मे कोई घटना नही हुई। "सिवाय आदर सकेतो तथा दुख के जो उनके पहरे पर नियुक्त कमचारियो मे शामिल मुसलमान कास्टेबल ने व्यक्त किया था।" लाहौर से माडले तक की यात्रा के बारे मे वह लिखते हैं कि पहरे पर नियुक्त हिदू तथा मुसलमान कास्टेबलो ने कृपापूण वरताव किया। स्टीमर पर वे उनके साथ "खुलकर" बातचीत करते थे और उनके सस्मरणो मे "भावनाओ की उम गहराई की चर्चा है, जो उस युवा मुसलमान कास्टेबल ने व्यक्त की, जिसका चेहरा बहुत सुदर तथा प्रभावशाली था।" "अपने दुर्भाग्य पर गहरा दुख व्यक्त करते हुए" इस पर लगभग रोते हुए उसने अपनी तथा अपने देशवासियो के वेसहारा होने की भावनाओ की बडे गहरे और सही अर्थों मे करुणा के शब्दो मे चर्चा की। रेल-यात्रा के दौरान उनके एक पहरेदार ने उन्हें पेश करने के लिए अपने पैसो से कुछ वर्मी केले खरीदे और बहुत भावावेश मे आकर कहा कि 'शायद वह अतिम बार उन्हें देख रहे हैं।" उत्तर में वदी ने उससे कहा "तकदीर पर निराश नही होना चाहिए। मेरे मन मे कोई कह रहा है कि मैं कुछ समय बाद फिर देश लौट जाऊगा। मेरे इन शब्दो ने अपना प्रभाव दिखाया और अपनी प्रसन्नता दिखाने के लिए उस व्यक्ति ने मेरे पाव पकड लिए।" उन्होंने लिखा है, 'मेरे जीवन मे पहली बार भारतीय मन की महान निर्मलता, जिस

पश्चिमी सभ्यता का कोई दिखावा नहीं था, मेरी आत्मा के सामने अपनी पूरी शान में व्यक्त हुई थी। वह एक भारतीय था, जिसका धर्म मेरे धर्म से भिन्न था, जो गरीब किसान वर्ग से था, जिसे परिस्थितियों ने मजबूर करके सात-आठ रुपये महीने की पुलिस की सक्रिय सेवा में धकेल दिया था और जो मेरे साथ सहानुभूति व्यक्त करने के लिए अपनी नौकरी तथा भविष्य को खतरे में डाल रहा था।" यह शिक्षा बेअसर नहीं रही "यदि वरिष्ठ पुलिस अधिकारियों ने मेरे ऊपर पहरा रखने के लिए मुसलमान पुलिस कर्मचारी इसी आधार पर चुने हैं कि उनका धर्म मेरे धर्म से भिन्न है, जिसके परिणामस्वरूप वह मेरे साथ सहानुभूति नहीं करेंगे, तो उनका यह अनुमान बिल्कुल गलत निकला है। इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं कि माडले में उनसे अलग होते समय मेरे मन ने बहुत दर्द महसूस किया।"

माडले में एक सुखद आश्चर्य हुआ। रेलवे प्लेटफार्म से लोगों को हटा दिया गया था, परन्तु अब तक यह बात गुप्त नहीं रही थी कि पंजाब के एक प्रमुख नेता को बर्मा लाया गया था। जब वह प्लेटफार्म पर उतरे, तो "वह देख सकते थे कि अनेक पंजाबी मित्र दरवाजों तथा खिड़कियों की ओट से उन्हें देख रहे थे।" वह मुश्किल से रेलवे स्टेशन से बाहर आये ही थे कि वह यह देखकर हैरान रह गये कि लोक सेवा संघ, पूना के जी० के० देवधर उनके पांव छू रहे हैं। बेसमझ पुलिस अधिकारियों ने इस स्नेह और सम्मान को कैदी को छुड़ाने का प्रयत्न समझा, "इसलिए इन्सपेक्टर ने मुझे बाजू से पकड़ लिया तथा यूरोपियन सार्जेंट ने उसे पकड़ते हुए उसे मेरे पास से उठाकर अलग कर दिया।"

27. माण्डले

पूर्व तथा पश्चिम दोनो मे बर्मा का नाम प्रसन्नतादायक ह तथा चमकदार रगो और रोमास का चित्र उत्पन्न करता है। माण्डले वह बदकिस्मत राजधानी है, जिसका अस्तित्व बिलकुल क्षणप्रभा रहा है और उसने नाटकीय षड्यत्रो और जार दार भावनाओ के वे रग देखे है, जो वतमान स्मृति मे अद्वितीय है। गपशप म अब भी रानी सुप्लायात और राजा थीबा की कहानिया सुनाई जाती है, जिन्हे राजगद्दी से उतारकर निर्वासित कर दिया गया था। यह कोई एक चौथाई शताब्दी पूव की ही तो बात है। यह राजमहल अब भी दुग के अन्दर एक बडे चौक मे बना हुआ है। इसका मुलम्मेदार फर्नीचर तथा सुन्दर पर्दे आदि तो लूटे जा चुके है, परन्तु इसके राजकीय दिनो की सुगधि का कुछ अश अब भी हवा से फैला हुआ है और सायकाल की भुतही चुप्पी, इसके खाली और धुधले कमरो मे बडे भावपूर्ण ढग से ब्रिटिश साम्राज्य के निर्माण के इतिहास के छोटे से अध्याय बता सकती है।

इस दुग मे, जिसके राजकीय शासक को दो दशक पूव निर्वासित कर दिया गया था, अब दूर-दराज पजाब से निर्वासित व्यक्ति आ गया। पुरानी गाडी, जिसमे लाज पत राय को रेलवे स्टेशन से सवार कराया गया और जिनकी सुरक्षा के लिए रगून पुलिस का सहायक आयुक्त नियुक्त था (इसके अतिरिक्त लाहौर से आया यूरोपियन इसपेक्टर तो था ही), टेढे-मेढे रास्तो से होती हुई, माण्डले के भीड भाड वाले रास्तो से बचती-बचाती अन्त मे दक्षिणी द्वार से दाखिल हो गई। शाही महल तथा शाही मकबरो को पीछे छोडती हुई, यह गाडी, ईंट से बने, टाइला की छत वाले सावजनिक निर्माण विभाग के बगले के सामने आकर रुक गई।

एक यूरोपियन अधिकारी को, जो माण्डले मे जेल का अधीक्षक था, पूव सूचना दे दी गई थी और उसने अपने नये कैदी को उचित ढग से प्राप्त किया। उसने लाहौर से आये पुलिस इन्सपेक्टर को अतिम तौर पर जिम्मेदारी से मुक्त किया और उसे कैदी तथा उसके सामान की, जिसम 350 रुपये के करसी नोट, सोने की घडी तथा जजीर शामिल थे, सरकारी रसीद दे दी।

धूप से सिकी बडी-बडी ईंटो वाली ऊची दीवार का रग पुराने गुलाब जसा था। इसके चारो ओर खाई बनी हुई थी, जिसके शात पानी मे, जो रुका हुआ नही था, घने वृक्षो का प्रतिबिम्ब दिखाई पडता था। दीवार म थोडे थोडे फासले पर कगूरे

तथा बुज बने हुए थे, परन्तु यह कगूरे किसी विलास उद्यान के बुर्जों के समान दिखाई दते थे और बुर्जों मे मागवान के बने मण्डप थे,जो ऐसे दिखाई पडते थे, जैसे वे किसी युद्धप्रिय मन की कल्पना नही, बल्कि कल्पना लोक की उपज हो। यह दुग अपने ही ढग से महान तथा सुन्दर था, परन्तु यह दुग, दुग की धारणा पर पूरा नही उतरता था—थोडा सा सिंह के समान, लेकिन ऐसा नहीं जो उदयपुर म देखा जा सकता है या शिवाजी के पुरधरपुर मे दुग म। निर्वासित व्यक्ति की पहली नजर इस दुग का देखने पर निराश सी हुई— "यह कोई प्रमुख मजबूत दुग नही था, जिसकी ऊची ऊची दीवारे हो, बल्कि ऐसी सादा सी इमारत, जो शहर के अन्य भागो से समतल थी तथा जिसके चारो ओर ऊची दीवार तथा गहरी खाई थी।"

इस सबके अतिरिक्त खुले मैदान थे, घास थी और बबूल के ऊचे वृक्ष और इमली के अनेक शानदार वृक्ष थे।

अधीक्षक नये कदी को पहली मजिल पर ले गया और उसे दो बढिया हवादार तथा रोशनी वाले, काफी खुले कमरे दिखाये, जो फिलहाल उनके इस्तेमाल के लिये रखे गये थे, जब तक उनकी स्थायी रिहाइश की व्यवस्था नही हो जाती। कमरो मे एक मेज, दो–तीन कुर्सिया, निवाड की बनी एक चारपाई, दो जोडे जेल के कम्बल और लगभग इतनी ही सख्या मे सफेद चादरें, दो बर्मी 'कालीन' कमरो की सजावट मे वृद्धि कर रहे थे, ये रग बिरगी पट्टियां-सी थी, असल मे वे कालीन नही, कतरने थी, यदयपि वे फश की लम्बाई से अधिक लम्बी थी, पर उनकी चौडाई 6 इच से भी कम थी।

रसोई की एक समस्या थी। दुर्ग के अधिकारियो ने उनके लिये "भारतीय" भोजन की व्यवस्था की थी, जो असल मे ऐंग्लो तमिल भोजन था, जिसे एक दक्षिण भारतीय तैयार करता था। पजाबी कदी को यह अधिक अनुकूल नही था, इसलिये एक सिख रसोइए की व्यवस्था की गई। परन्तु यह प्रयोग बिल्कुल असफल रहा। सिख किसान की स्पष्टवादिता तथा निष्कपटता के साथ उस कथित रसोइए ने स्वीकार कर लिया कि उसने यह नौकरी तो इस लालच म आकर स्वीकार कर ली थी कि वह इतने महान व्यक्ति के दशन कर पाएगा और उसे कोई लालच नही था। दूसरे रसोइए की कुशलता होने का तो कोई प्रश्न ही नही था। पजाबी भोजन का प्रयोग बहुत ही निराशाजनक असफलता थी और दो दिन के बाद उन्होने फिर ऐंग्लो-तमिल भोजन खाना आरम्भ कर दिया, जो कथित पजाबी रसोइए दवारा बनाए गए कथित पजाबी पक्वानो के मुकाबले बहुत ही स्वादिष्ट लगता था।

अधीक्षक के बगले के दो कमरे केवल दो दिन के लिये लाजपत राय का निवास बने । उसके पश्चात वह महल की नहर के पार, सार्वजनिक निर्माण विभाग के बगले मे चले गये, जो शाही उद्यान के उत्तर की ओर था । इस बगले तथा शाही उद्यान के बीच पक्की सड़क थी, जो सार्वजनिक तौर पर खुली थी । सड़क का अपना इस्तेमाल था, क्योंकि सुपरिटेंडेंट ने उन्हें पहले ही समझा दिया था कि वह बगीचे मे कास्टेबल की नजरों के सामने घूम सकते हैं । सभी भारतीय राहगीर, विशेषकर पजाबी सड़क से गुजरते समय, सादर अभिवादन करते थे, जब वह अपने पहले दो दिनो की रिहाइश मे ही थे ।

नया बगला एक आधुनिक इमारत थी, जो लकड़ी तथा ईंटो की बनी हुई थी—यह दो मजिला इमारत थी, जिसकी दोनो मजिलो को बीच मे दीवार बनाकर विभाजित किया गया था, ताकि उसमे दो परिवार रह सकें । ऊपरी मजिल का पश्चिमी भाग लाजपत राय को दिया गया था । इसमे दो कमरे थे, जो एक बरामदे मे खुलते थे और एक गुसलखाना था, जो सेहन मे लकड़ी की सीढ़ी से मिला हुआ था। पहली सीढ़ी के पास पहरे पर नियुक्त यूरोपियन सार्जेंट के लिए एक खाट तथा मेज थी, ताकि उसकी जानकारी के बिना कोई भी व्यक्ति सीढ़ी का इस्तेमाल न कर सके । कमरे मे भोजन के लिए एक मेज, मास के लिए अलमारी, पढाई की मेज, बैत की आराम कुर्सी, दफ्तरी कुर्सिया, तिपाइया, कपडे रखने के लिए एक अलमारी और मच्छरदानी लगा पलग था । लकड़ी का बना फर्श नगा था, सिवाय बर्मी कालीन की 6 इच चौड़ी तीन पट्टियो के । रात के समय कमरे मे दो मोमबत्तिया से प्रकाश व्यवस्था होती थी और बाद मे पढाई के लिए मिट्टी के तेल के एक लम्प की व्यवस्था कर दी गई ।

उनके साथ वहा और कोई कैदी नही था, उनके साथी तो केवल वही व्यक्ति थे, जो उनकी सेवा आदि के लिए अधिकारियो ने नियुक्त किए थे । दक्षिण भारतीय रसोइया, उनकी आवश्यकताओ का ध्यान रखने के लिए 25 रुपये मासिक वेतन पर रखा गया । एक अन्य नौकर कपड़े धोने के लिए, भिश्ती, तथा सफाई सेवक, जो दिन मे दो बार आते थे । कुछ सेवाओ तथा वस्तुओ के लिये कैदी को स्वय खर्च करना पडता था और कुछ को अधीक्षक न ऐयाशी की वस्तुए कहकर अस्वीकार कर दिया था । इकार करने की इस छेड़छाड़ के कारण कुछ सीमा तक क्षोभ भी हुआ ।

ऐसे ही छोटे छोटे अन्य कष्ट भी थे । यद्यपि बदी ने अधीक्षक को पहले प्रभाव मे सहयोग करने वाला और प्रीतिकर व्यक्ति समझा था । अधीक्षक ने उन्हें

विश्वास दिलाया था कि उचित ध्यान तथा महत्व दिया जाएगा। उसने अपनी पुस्तक पढ़ने के लिए उधार दी—जस्टिन मैकार्थी की 'रैमिनिसैंसिज' और एक ऐंग्लो बर्मी पुस्तिका और यह सुझाव भी दिया कि वे बर्मी भाषा सीखने मे अपना समय लगाए। वह एक डाक्टर था, इसलिए उसने उनका निरीक्षण किया। उन्हे दवाई तजवीज की, उनके साथ नम्रता का बरताव किया तथा उचित ध्यान दिया। परन्तु अधिक समय के लिए स्थिति सुखद न रही। अधीक्षक पंजाब म लाजपत राय के स्तर के लोगा के तौर-तरीको के बारे मे निराशाजनक हद तक अनजान था। कैदी की देखभाल मे पुलिस अधीक्षक भी भागीदार था, जो अपने आपको इस काय के लिए बराबर का जिम्मेदार समझता था, उसका एक रसोइया था, जो सदा ही अवसर की तलाश म रहता था कि अपना महत्व जता सके, विशेष तौर पर कैदी के लिए खच किए जाने वाले धन के मामले मे। एक बडे गभीर मामले को लेकर समस्या खडी हो गई, जो सवैधानिक तथा हजामत से सम्बद्ध थी। हम पढते हैं

"एक हज्जाम से कहा गया कि वह हर तीसर दिन मेरी हजामत बनाया करे। पहला महीना बीत जाने पर यह हज्जाम मेरे पास आया और उसने मुझसे अपना वेतन मागा। मैंने उससे कहा कि जेल के अधीक्षक ने उसे नियुक्त किया है। इसलिए वही वेतन देगा। हज्जाम न कहा कि अधीक्षक का कहना है कि उसकी सेवाओ के लिए मैं वेतन द। मैंन उसे तब तक प्रतीक्षा करने के लिए कहा, जब तक इस मामले स मैं साहब के विचार न जान लू।" जब अधिकारी ने पूछा कि हज्जाम को उसका वेतन क्या नही दिया गया, तो उसे उत्तर मिला कि यह अदायगी सरकार को करनी है क्योकि "1818 के अधिनियम के अधीन मेरे जीवन स्तर के अनुसार मेरे जीवन निर्वाह का खच सरकार को देना होगा।' अपने कानूनी अधिकारो पर उनकी जिद "भद्र पुरुष के लिए बहुत ज्यादा बात थी और उसने रुष्ठता से उत्तर दिया कि वह ऐसे किसी कानून को नही जानता और जहा तक मेरा प्रश्न है, उसका शब्द ही कानून है। उसने यह भी कहा कि हजामत बनवाना ऐयाशी है, जिसके लिए सरकार खच नही देगी, क्योकि यह आवश्यक नहीं कि मैं हजामत बनवाऊ। देश के रिवाजो के बारे म अपने ज्ञान से प्रभावित करने के लिए उसने कहा कि वह इस बात को तो समझता है कि कोई मुसलमान समय-समय पर अपना सिर मुडवाने पर जोर दे, परन्तु मेरे लिए—जो एक हिंदू है—दाढी मुडवाना क्या आवश्यक है? उसने कहा कि तुम दाढी क्यो नही बढा लेते? क्या तुमने अपने देश में दाढी नही रखी हुई थी? यह प्रश्न थे जो उसने लगातार और मेरे उत्तर की प्रतीक्षा किये

बिना ही मुझ पर डाल दिये।" मुझे इस बात पर उतना दुख नहीं जब अधीक्षक ने कहा कि मेरा आदेश ही कानून है, परन्तु अधिक ठेस इस बात से पहुची, जब उसने "मेरी इस बात पर संदेह किया कि घर पर मैंने हर तीसरे दिन हजामत बनवाने के लिए एक हज्जाम रखा हुआ था और मैंने अपनी कैद के दौरान सरकारी खर्च पर हजामत बनवाने की ऐयाशी विशेषाधिकार के तौर पर नहीं शुरू की।"

उन्होंने आर्य समाज के अपने कई मित्रों की तरह कुछ समय के लिए दाढी रखी थी परन्तु निर्वासन से बहुत पहले दाढी साफ कर दी थी।

बंदी ने हज्जाम को स्वय उजरत दी, यद्यपि दो-तीन महीने बाद अधिकारियों ने अपना मन बदल दिया और इस "ऐयाशी" का खर्च देने लगे।

लाजपत राय सदा ही अच्छे भोजन के शौकीन रहे थे—अच्छे भोजन का अर्थ था वह भोजन, जो खाने मे स्वादिष्ट हो। अधीक्षक का रसोइया, जिसका लाजपत राय की रसोई व्यवस्था पर बहुत नियत्रण था और जो खाद्य-सामग्री खरीदते समय अधिक से अधिक धन बनाना चाहता था, कभी-कभार होने वाली गलतफहमी में अपना योगदान देता था, लाजपत राय को वे सब्जिया न मिलती, जो उन्हें पसद थी, क्योंकि रसोइया सब्जिया वाले सारे पैसे सीधे अपनी जेब मे डाल लेना चाहता था, उसने अधीक्षक को बताया—और उसे जो बताया गया उसने उसी पर विश्वास कर लिया—कि जो सब्जिया लाजपत राय मागते थे वे मिल [नहीं रही थी और यदि मिलती भी थी, तो बहुत ही महगे दामो पर, चाहे लाजपत राय ने अपनी निगरानी करने वाले सार्जेंट को वही सब्जिया खाते देखा था, यद्यपि वह रसोई पर अधिक खर्च करने की स्थिति मे नहीं था।

सबसे अधिक समस्या टहलने के प्रश्न पर उत्पन्न हुई। अधीक्षक ने स्वय ही, आरम्भ से लाजपत राय को सार्जेंट की नजर मे रहते हुए टहलने की अनुमति दे दी थी। इसके थोड़ा समय बाद उसने दुर्ग के अन्दर पहरेदारो के प्रमुख, यूरोपियन अधिकारी के पहरे मे टहलने की भी आज्ञा दे दी। लाजपत राय के स्वास्थ्य के हित मे वह इस बात के लिए उत्सुक था कि वह प्रतिदिन दो-तीन घंटे के लिए नियमित रूप से टहलने के लिए जाया करें। डिप्टी कमिश्नर ने, जो उन्हें देखने कभी कभार आ जाया करता था इस सुझाव की पुष्टि कर दी। परन्तु सार्जेंट आम तौर पर दिन मे उनका दो बार जाना पसद नहीं करता था और सैर करने के तो वह बिल्कुल ही विरुद्ध था। उसके पास इस सबध मे काफी अच्छे आधार थे, क्योंकि उन्हें वर्दी मे तलवारें और भरे हुए रिवाल्वर और 24 गोलिया साथ लेकर

जाना पडता था। उस गर्मी के दिना मे धूप म चलना होता था और पहरे पर आने के लिए बगले से कोई तीन किलोमीटर दूर पुलिस डिपो न० 6 से पूरी तरह साज सामान से लैस होकर आना पडता था।

एक अन्य "संवैधानिक" कठिनाई के कारण मामला और उलझ गया।

"कैदी के तौर पर मैं जेल अधीक्षक की निगरानी मे था, परन्तु मुझ पर पहरा और निगरानी रखने के लिए पहरेदार ज़िला पुलिस अधीक्षक देता था और उसका विचार था कि बगले मे तथा सैर के दौरान मेरी सुरक्षा की जिम्मेदारी उसकी है। इसलिए उसने उन सडको पर, जिनके बारे मे उसने स्वीकृति न दी हो, सैर करने पर आपत्ति की।"

जब अजीत सिंह भी निर्वासित होकर माण्डले दुग लाये गये, तो केवल दो सडकें ऐसी रह गईं जिन पर जाने की लाजपत राय को मनाही नही थी और इन सडको के काफी अधिक भाग पर इमली का कोई वृक्ष नही था, जिसकी छाव धूप से सुरक्षा दे सके। लाजपत राय ने इस बात की ओर डिप्टी कमिश्नर का ध्यान दिलाया। उस भद्र पुरुष ने काले शीशा वाला चश्मा देने की स्वीकृति दे दी, परन्तु जेल अधीक्षक ने इसे ऐयाशी की वस्तु कहकर चश्मा देने के निणय को रद्द कर दिया।

महल की नहर म मछलिया बहुत थी और जेल अधीक्षक न सुझाव दिया कि वह शुगल के तौर पर मछली पकडा करें। उन्होंने आईज़क वाल्टन के ग्रुप मे शामिल होने की कभी भी तमन्ना नही की थी, परन्तु अधिक से अधिक समय खुले स्थान पर बिताने की इच्छा के कारण उन्हें यह भी स्वीकार करना पडा। इसलिए उन्होने मछली पकडने की डोरी, काटा खरीद लिया, जो पहरे पर नियुक्त सार्जेंट या कान्स्टेबल मछली पकडने के लिए इस्तेमाल करेंगे, और वह बैठकर केवल उन्हें देखा करें। ऊबे हुए कैदी के लिए अल्प अवधि का यह प्रयोग "न प्रसन्नता दे पाया न राहत।"

माडले मे लाजपत राय ने डायरी रखने का प्रयत्न किया, जो पहली बार 20 जून को लिखी गई थी। यह डायरी सुरक्षित नही रखी गई, परन्तु इसमे से कुछ भाग उन्होने 'स्टोरी आफ माई डिपोर्टेशन' म दज किए ह। डायरी से पता चलता है कि लाजपत राय का स्वास्थ्य ठीक नही रहता था। इसमे कई बार पेट की गडबडी और नींद न आने की चर्चा है और अधीक्षक द्वारा तजवीज किये गये जुलाब के

पाउडरो तथा सलफोनल जैसी दवाइयो की चर्चा है । उन्होंने अपने कष्टो के बारे मे स्वनिरीक्षण के परिणामो के बारे मे भी बताया है ।

"कारावास की स्थिति, तन्हाई, कसरत का अभाव, अपमान और अनुचित परतत्रता के कारण पैदा हुआ रोष, मन-पसंद सगति का अभाव और ऐसी ही कई असुविधाओ ने अपना प्रभाव तो अवश्य दिखलाना था और जो पुराने रोग थे उन्हें और भी गभीर बनाना था । इसके परिणामस्वरूप कारावास मे पहले तीन महीनो मे मुझे इन शिकायतो से काफी कष्ट पहुचा, परन्तु उसके बाद अपने भाग्य तथा अपने आस-पड़ोस से समझौता कर लिया और मेरी स्थिति काफी सुधर गई ।" कई और राता को नीद न आने का एक और कारण मामूली से "प्रेम का मामला था" । यह कहानी उनके अपने शब्दो मे अधिक अच्छी तरह वर्णन की गई है, क्योकि 'डिपोर्टेशन' पुस्तक के पाच छ बढिया पन्ने इसी की चर्चा से भरे हुए हैं ।

"मेरे निर्वासन मे मेरी सबसे बड़ी कठिनाई मेरा अकेलापन था । मेरे पहरे के लिए नियुक्त कुछ यूरोपियन सार्जेंट मेरे प्रति बहुत दयालु थे, पर उनकी सगति मुझे कहा तक प्रसन्नता दे पाती ? पहली बात तो यह थी कि मेरी शिक्षा तथा सामाजिक स्थिति तथा उनके स्तर मे अन्तर इतना अधिक था कि मेरे लिए उन्हें अपनी भावनाओ तथा मनोभावो मे साझीदार बनाना कठिन था । इसके अलावा हमारी रुचियो मे भी तो बहुत अन्तर था । वे ब्रिटिश चरित्र का पाशविक पक्ष पेश करते थे जबकि मेरी रुचिया हिंदू स्वभाव का आध्यात्मिक पहलू पेश करती थी ।"

अन्त मे उन्होंने ब्रिटिश बब्बर शेर का प्रतिनिधित्व करने वाले मानवो के स्थान पर शेर की नसल के दो कनिष्ठ प्राणियो को प्राथमिकता दी और इन दो पालतू जीवो के बारे मे ही 'स्टोरी आफ डिपोर्टेशन' का मानवीय पक्ष भरा पड़ा है ।

"मुझे अपने बगले मे दो बिल्लिया देखकर बहुत सात्वना मिली । वे बहुत सुदर थी । एक अदरक जैसे रग की शेरनी जैसी थी और दूसरी पर काले धब्बे थे । मैंने उन्हें खिलाना आरम्भ कर दिया और वे मुझसे हिल गई । इस प्रकार उनकी सगति एक अच्छा परिवर्तन थी । परन्तु शीघ्र ही यह भी पता चल गया कि यह विशुद्ध कृपादान नही था क्योकि रात को वे उसी बिस्तर पर सोने के लिए जिद करती, जिस पर मैं सोता । इससे मुझे बहुत परेशानी हुई और कई राता के लिए सघर्ष चलता रहा—एक तरफ उनके प्रति मेरा स्नेह था और दूसरी ओर उनके कारण

मुझे होने वाली बेचैनी थी। वे दिन-रात मेरे साथ रहना चाहती थी, जब कि मैं चाहता था कि वे केवल दिन के समय मेरे साथ रहें। आखिरकार, उन्हें रात के भोजन के बाद बाहर के एक मकान में बन्द करना शुरू कर दिया।" अपनी बिल्लियों को देखकर वह कैसे आनन्दित होते थे, इसके बारे में उन्होंने लिखा है

"कई बार मैं एक घंटे या अधिक भाग उन्हें आपस में खेलने, एक दूसरे को चाटते तथा एक दूसरे को बाजुओं में लेते हुए देखता रहा, जैसे वे जुड़वा बहनें हों। उनका आपसी मोह कमाल का था। कम-से-कम मेरे लिए तो यह नया अनुभव था।'

बिल्लियों को इतना मनोरंजक पाने पर उन्होंने अपनी घर गृहस्थी में और विस्तार करने के बारे में सोचा। उन्होंने एक पिल्ला लिया, परन्तु सफाई-सेवक ने बढ़िया नस्ल का पिल्ला लाने का वायदा किया, तो उन्होंने वह पिल्ला उसके मालिक को लौटा दिया। प्रसन्नता का एक और कारण (मनुष्य नहीं) भी आया, परन्तु शीघ्र ही यह निराशा का कारण बन गया।

"सीढ़ियों की छत के शहतीरों, कड़ियों के बीच मैनाओं का एक परिवार रहता था जो मुझे अपने संगीत से आनन्दित करता था, परन्तु एक सार्जेंट की उनमें अधिक रुचि हो गई। मैना की मां तो बहुत चालाक थी, इसलिए वह उसे तो न पकड़ पाया, परन्तु दो बच्चों को पकड़कर वह अपने घर ले गया। उसने यह कारवाई मां की अनुपस्थिति में की और वापस आने पर जब उसे अपने बच्चे न मिले, तो वह बहुत ही निराश हो गई और उसने चीख-चीखकर तथा करुण विलाप करके सारे घर को सिर पर उठा लिया। कई दिन वह अपने घोंसले के आस पास मंडराती रही और फिर निराश होकर चली गई, फिर कभी न आने के लिए। इस प्रकार मैं उन पक्षियों की संगति से वंचित हो गया, अपने एक पहरेदार की निर्दयता से, जिसने अंग्रेजों तथा भारतीयों का बुरा स्वभाव ग्रहण किया था और जिसमें इन दोनों की कोई भी अच्छी बात नहीं थी।"

उनका कारावास उनके लिए एक प्रकार से उनका "दूसरा घर" बन गया था और माडले के कैदी का, जब मुक्त किया जा रहा था, तो उन्हें भी लगभग वैसा ही अनुभव हुआ, जिस प्रकार चिल्लों के दुर्ग से रिहाई के समय बौनिवार्ड ने अनुभव किया था। माडले में उनके अध्ययन की पुस्तकों में बायरन की पुस्तकें भी शामिल थीं और 'स्टोरी' में अपनी भावनाएं व्यक्त करते समय उन्होंने 'प्रिजनर आफ चिल्लों' की पंक्तियों का हवाला दिया, जब वह अपने 'दूसरे घर को' विदा कह रहे थे,

"और अन्त में जब वह आए,
मेरे सभी बंधन उन्होंने हटाए ।
ये मोटी और ऊंची दीवारें,
लग रही थीं आश्रम सी, अपनी सी ।
मेरे मन में ऐसे ख्याल आ रहे थे
वह इस "द्वितीय घर" से मुझे नाव ले जा रहे थे ।"

बायरन का बौनिवार्ड मकड़िया के साथ "उनके सूखे व्यापार" में अपनी मैत्री की चर्चा करता है और चांदनी रात में "खेलते हुए चूहों" की भी, दरअसल "मेरी तथा मेरी जंजीरों की मैत्री हो गई है ।" बायरन का पैरा उचित ढंग से ही समाप्त होता है । "मैंने अपनी मुक्ति भी ठंडी सांस भर कर प्राप्त की ।" मांडले का कैदी अपनी मुक्ति ठंडी सांस लेकर प्राप्त करने का एक और कारण भी बताता है ।

"11 (नवंबर) को मेरी दोनों बिल्लियां मटरगश्ती के लिए गई हुई थीं, जब मुझे साज-सामान समेत रेलवे स्टेशन पर पहुंचा दिया गया । उनकी प्रतीक्षा करने का अवसर नहीं था, क्योंकि कमिश्नर ने मुझे बताया था कि विशेष रेलगाड़ी तैयार है । अधीक्षक तथा उप अधीक्षक चाहते थे कि मैं जल्दी करूं । इसलिए उस मकान को छोड़ते समय मेरे मन में केवल यही दर्द था कि मुझे उन दो बिल्लियों से जबरन अलग किया जा रहा था ।"

ये पालतू जानवर तो केवल राहत देने का एक कारण थे । उन्होंने मांडले में आराम का समय पढ़ने तथा लिखने में लगाया । वह प्रतिदिन औसतन सात आठ घंटे गंभीर अध्ययन लेखन का कार्य करते थे, पत्रिकाएं तथा उपन्यास पढ़ने का कार्य इसके अतिरिक्त था, जो वह "समय काटने" के लिए ही किया करते थे । उन्होंने बर्मा, वहां के लोगों तथा इतिहास के बारे में अनेक पुस्तकें पढ़ीं और बाद में उर्दू में एक पुस्तक प्रकाशित की, जिसका नाम था 'अफसाना-ए-बर्मा' । इसके कुछ भाग में बर्मा के सामाजिक तथा धार्मिक व्यवहार का विवरण था और कुछ भाग में आधुनिक बर्मा की, आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक, तथा राजनीतिक समस्याओं की चर्चा की गई थी और आरम्भ के कुछ अध्यायों में आवश्यक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि दी गई थी । मांडले दुर्ग में उन्होंने, जो सामान्य अध्ययन किया (इन पुस्तकों की सूची 'स्टोरी आफ मार्ट डिपार्टमेंट' में दी गई है) उसमें इतिहास की उच्च कोटि की पुस्तकें शामिल थीं—हैलम लिखित 'हिस्ट्री आफ मिडिल एजिज,' मांटले लिखित 'राइज आफ डच रिपब्लिक,' ग्रीन तथा मारगन लिखित

'हिन्ट्री आफ इडियन म्यूटनी' इतिहास की पुस्तका के बाद सूची में दर्शन शास्त्र की पुस्तकें थी — लैक्की, हरबर्ट स्पेंसर, फील्डिंग हाल रचित। उपन्यासो की सूची में थैकरे तथा डिकन्ज प्रमुख थे, परन्तु उनमे टालस्टाय और वाल्टेयर भी शामिल थे। समय बिताने के लिए एथनी हाप, मेरी कोरेल और चर्चिल अच्छे थे, परन्तु हाफिज की फारसी कविता ने उनके दिल के तारो को कुछ इस प्रकार से छुआ जैसा पहले कभी नही हुआ था। माडले मे उन्होने, जो उर्दू साहित्य पढा उसमे जोक की कविताए तथा उनके भूतपूर्व अध्यापक मुहम्मद हुसैन आज़ाद की गद्य रचना तो थी ही।

माडले की उनकी रचनाओ मे वर्मा के बारे मे उर्दू पुस्तक, जिसकी पहले चर्चा की जा चुकी है, आत्मकथात्मक उर्दू उपन्यास का एक भाग, जिसके कोई 150 पृष्ठ उन्होने लिखे थे, परन्तु उसे कभी मुकम्मल नही किया। यह पाण्डुलिपि उनके पिता तथा मित्रो ने नष्ट कर दी (यह बात उन्होने अपनी आत्मकथा के 1915 के भाग की भूमिका मे बताई)। माडले दुर्ग मे उन्होने कुछ समय भगवत गीता के अध्ययन मे लगाया, उसके परिणामस्वरूप अंग्रेजी निबंध 'द मसेज आफ भगवत् गीता' लिखा। पहले यह कलकत्ता से प्रकाशित होने वाले 'माडर्न रिव्यू' मे मार्च 1908 मे प्रकाशित हुआ और बाद मे यह पुस्तिका के रूप मे प्रकाशित हुआ।

कारावास के दिनो मे गीता तथा हाफिज ने उनकी सहायता की, क्योंकि जो व्यक्ति मन की शान्ति की आदत डालना चाहे, ये पुस्तकें उसकी अच्छी मित्र है। लाजपत राय इन पुस्तको की प्रेरणा को स्वीकार करते है

"कृष्ण, मेरे साथ व्यावहारिक बुद्धिमत्तापूर्ण शब्दो मे बातचीत करते थे, जिनका स्वर अमर होता था, और शीराज़ के प्रसिद्ध कवि ने मेरे साथ प्रेम के बारे मे बातचीत की तथा उन कष्टो के बारे मे बताया, जो ऐसे प्रेम के साथ आते है। मैने अपने कारावास के दिनो मे हाफिज़ से इतना आनन्द प्राप्त किया, जितना अपने जीवन मे पहले कभी नही किया था, जब उन्हे मैने अपने पिता की सगति मे पढा था।"

गीता के अलावा वह उपनिषदो मे से कुछ पाठ करते थे और इन धर्म ग्रथो के पाठ को वह अपना धार्मिक कर्त्तव्य समझते थे। प्रात की प्रार्थना करने मे वह बहुत नियमित थे और सध्या करने मे नियमित न होने के लिए वह क्षमा याचना करते

है, यद्यपि इसका अर्थ यह नहीं कि वह संध्या की प्रार्थना करने में बिल्कुल उपेक्षा बरतते थे, बात केवल इतनी थी कि यह संध्या के लिए निर्धारित कुछ वेद-मंत्रों का औपचारिक रूप से पाठ नहीं किया करते थे।

'द स्टोरी आफ माइ डिपोर्टेशन' के एक अध्याय का शीर्षक, 'कारावास में मेरे मन की स्थिति,' रखा गया, इसके अन्त में उन्होंने लिखा :

"यद्यपि मैं अपने निर्वासन के दौरान कभी कभार उदासी या एकाकीपन महसूस करता था, परन्तु सामान्य तौर पर मैं परिस्थितियों के प्रति बिल्कुल संतुष्ट था और समय का सदुपयोग करने का प्रयत्न करता था।"

इस आत्म-विश्लेषण के बाद एक टिप्पणी दर्ज है, जिसमें मन की शान्ति बहाल होने और परिस्थितियों से संतुष्ट होने की भावना की चर्चा है।

निस्संदेह, उनकी संवेदनशीलता को चोट पहुंचने के कारण, जो उनके साथ होने वाले बर्ताव के कारण होती थी, उनके मन को कष्ट तथा नाराजगी होती थी। जेल का अधीक्षक, जिसके बारे में आरम्भ में उन्होंने बड़ी अच्छी राय बनाई थी, सदा उदार तथा लिहाज करने वाला नहीं था, हमने हज्जाम वाली घटना की चर्चा पहले ही कर दी है।

'द स्टोरी आफ माई डिपोर्टेशन' से हमें उनकी संवेदनशील आत्मा और चिड़चिड़ेपन का पता चलता है, जब लोग अपने व्यवहार में शिष्टाचार का ध्यान नहीं रखते थे। यह कोई शहीद मन की वार्ता नहीं और जो कोई पाठक किसी ऐसी कथा के लिए उसका अध्ययन करता है, उसे केवल निराशा ही नहीं होगी, बल्कि इसमें दी गई छोटी-छोटी बातों के विवरण से चिढ़ भी महसूस होगी। फिर भी, सभी जानते हैं कि यह परिणाम निकालना मूर्खतापूर्ण गलती होगी कि इस पुस्तक का लेखक कष्ट झेलने या बलिदान देने के लिए तैयार नहीं था। उन्होंने जो बलिदान दिए, उनके बारे में कभी खेद व्यक्त नहीं किया और पल भर के लिए भी नहीं सोचा कि जो रास्ता उन्होंने अपने लिए चुना था, उससे हट जायें। जब उन्होंने उन मामूली चीजों के बारे में लिखा, जो उन्हें चोट पहुंचाती थी, तो वह कोई करुणात्मक व्यक्ति नहीं थे, जो लोगों से दया मांगते थे। जब उनके साथ असभ्य या गुस्ताखीपूर्ण ढंग से बरताव होता था, तो उनकी आत्मा को बहुत कष्ट महसूस होता था—इस स्थिति को—जिसे अन्दाज पाठक बड़ी आसानी से समझेंगे या हिचकिचाहट

हू कसकता था –उन्होंने स्वाभाविक निष्कपटता से बयान किया है। कम संवेदनशील व्यक्ति के लिए ये बातें बहुत ही मामूली हो सकती थीं। कम निष्कपट व्यक्ति के लिए इनका वर्णन गैर जरूरी होता। उन्होंने बहुत ज्यादा और अक्सर सोचा था और 'स्टोरी' में पाठक को यह व्यक्तिगत तथा निजी घटनाएं देखने की अनुमति है। इसका परिणाम 'मनोवैज्ञानिक' के चित्रों का एक लघु चल चित्र है। इस प्रकार 'वह (अधीक्षक)' एक दिन मेरे साथ विशेष तौर पर गुस्ताखी से पेश आया, क्योंकि मैंने एक मित्र को लिखा था कि मैं अस्वस्थ हूं, उसका कहना था कि ऐसा करके मैं चाहता हूं कि मेरे लोग मेरी रिहाई के लिए आन्दोलन करें, क्योंकि मैं बीमार हूं, उसने स्पष्ट तौर पर मुझ पर आरोप लगाया था कि बीमार होने का बहाना कर रहा हूं। एक अन्य अवसर पर वह मेरे साथ और भी गुस्ताखी से पेश आया, जब उसने हज्जाम की उजरत देने से इन्कार कर दिया। एक प्रकार से वह मेरी बात पर विश्वास नहीं कर रहा था कि मैं घर पर हर तीसरे दिन हजामत बनवाता था। मेरे प्रति उसका व्यवहार जान-बूझकर असभ्य होता जा रहा था। मेरा नाम लेकर पुकारते समय, मेरे लिए दवाई लिखते समय या मुझे पत्र भेजते समय, वह आम तौर पर विनम्रता के शब्द इस्तेमाल नहीं करता था।"

एक दिन अधीक्षक ने उनसे पूछा कि उनका कोई भाई है, जिसका नाम धनपत राय है और क्या भाई ने मुलाकात करनी चाही है? लाजपत राय ने उत्तर दिया कि वह उनका सबसे छोटा भाई है।

"जब वह चला गया, तो मैंने उसे लिखा कि उसके प्रश्न ने मुझे सोच में डाल दिया है। शायद उसने मेरा कोई पत्र रोक लिया है, जिसमें मेरे भाई की अर्जी के बारे में कोई जानकारी है, मैं कृतज्ञ हूंगा यदि पूर्व व्यवहार के अनुसार मुझे पत्र लिखने वाले के नाम की ही सूचना दे दी जाये। अगली सवेरे, जब वह उधर आया मैं बरामदे में सीढ़ियों के ऊपर खड़ा था और इस बात की प्रतीक्षा कर रहा था कि उसकी इच्छा क्या है और यूरोपियन सार्जेंट तथा अन्य पुलिस कर्मचारी उसे सैल्यूट दे रहे थे, तब उसने गुस्से भरी आवाज में चिल्लाकर कहा कि यह मेरा काम नहीं है कि जब वह कोई प्रश्न करे तो मैं उसे उलटकर प्रश्न करूं।"

उन्होंने बड़े दुखी मन से अधीक्षक द्वारा कहे गए शब्द फुटनोट में दिए हैं

उसके द्वारा कहे गये शब्द इस प्रकार है

"उस समय मुझसे कोई प्रश्न मत करो, जब मैं तुम से कोई प्रश्न करूं। मुझसे ऐसे गुस्ताखाना प्रश्न मत पूछो। मैं जिरह नहीं चाहता।" उसने फिर कहा, "मैं इस मामले पर आपसे दलीलबाजी नहीं चाहता," परन्तु आप ऐसी बात फिर बिल्कुल नहीं करना। उनके जाने के तुरन्त बाद मैंने ये शब्द लिख लिए।"

प्रत्यक्ष है कि ये शब्द उस समय भी उनकी आत्मा को चुभ रहे थे, जब उन्होंने इन्हें फुटनोट में लिखने के लिए स्मरण किया। कुछ पाठकों को शायद यह लगे (जिस प्रकार विलफ्रेड ब्लंट को लगा) कि यहां संवेदनशीलता सम्मान से भी बढ़ गई, परन्तु शायद ही ऐसा फुटनोट होगा, जिसने केवल पांच पंक्तियों में ही किसी आत्मा को इतने स्पष्ट ढंग से व्यक्त किया हो—यह एक अन्य सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक चित्र था, जो "असल शब्दों" के बिना संभव नहीं हो पाएगा।

अधिकारी का बर्ताव संक्षिप्त रूप में 'स्टोरी' में स्पष्ट किया गया है

"सरकारी कैदियों से सम्बद्ध हर बात को इतना गुप्त रखने के कारण कुछ हद तक परेशानी तो होती ही है। वह अपने अधीन कर्मचारियों से कोई सहायता भी तो नहीं ले सकता। परंतु मेरे विचार में सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात जिसने उसके स्वभाव को प्रभावित किया, वह यह भी थी कि वह जेल का अधीक्षक था। इस स्थिति में उसे हजारों अपराधियों से निपटना पड़ता था, जिन पर वह व्यापक अधिकार इस्तेमाल कर सकता था और जिनके प्रति उसे शिष्टाचार दिखलाने की कोई आवश्यकता नहीं होती थी। एक कैदी की आवश्यकताओं के बारे में उसकी धारणा सामान्य जेल जीवन के अनुभव पर आधारित थी।"

'द स्टोरी आफ माई डिपार्टेशन' की गौण बातें कई बार बहुत मामूली दिखाई पड़ती हैं, परन्तु इनसे हमें उसके लेखक की संवेदनशीलता की जानकारी मिलती है। जब आरम्भ में जेल अधीक्षक उनके साथ अच्छी तरह पेश आया, तो इस संवेदनशील आत्मा ने इन बातों को उत्सुकतापूर्वक व्यक्तिगत ढंग से लिया

'पहले कुछ दिनों के लिए वह बहुत ही दयालु तथा लिहाजदार था, प्रत्यक्ष था कि वह इस बात के लिए चिंतित था कि उस ज्यादती के लिए क्षतिपूर्ति कर सके, जो उसकी सरकार ने पाशविक ढंग से मुझे मेरे देश से भगवा करके, मुझ पर कोई मुकदमा चलाए बिना और मेरे विरुद्ध आरोप लगाए बिना की थी।"

प्रत्यक्ष तौर पर यह अवास्तविक बात थी, क्योंकि यह विश्वास करना कठिन है कि अधीक्षक की लिहाजदारी तथा शिष्टता का उस भावना से कोई संबंध था जो लेखक न उस आतंकग्रस्त पद से रही थी।

जिस बात को यह "सलाम का भय" कहते हैं, वही बात उनको सब बातों से अधिक गहरा आघात पहुचाती थी। उन्हें प्रतिदिन सैर की बहुत आवश्यकता थी, ताकि उनका खराब जिगर जरा ठीक ढंग से काम कर सके और अधिक शांत नींद आ सके। फिर भी, उन्हें यह सैर छोड़न पर बाध्य होना पड़ा, क्योंकि इससे कुछ उलझनें पैदा होती थी, जिनके कारण उनकी भावुकता को कष्ट पहुचता था। शुरू में सैर के समय उनके साथ एक सशस्त्र यूरोपियन सार्जेंट होता था और बाद में उनके पहरेदारों में दो और वर्दीधारी कान्स्टेबल शामिल कर दिए गए। सादा कपड़ों में कई व्यक्ति मकान के आस-पास तथा निकट की सड़कों पर घूमते रहते थे। अधिकारियों ने ऐसी असाधारण एहतियात की आवश्यकता इसलिए समझी थी क्योंकि माण्डले में भारतीयों की संख्या बहुत ज्यादा थी। सड़क पर किसी को भी उनसे बात करने की आज्ञा नहीं थी। मकान के सामने की सड़क से गुजरने वाले भारतीय राहगीरों को कई बार बहुत कष्ट का सामना करना पड़ता था —कई बार तो उन्हें सड़क से गुजरने की बिल्कुल मनाही कर दी जाती थी। फिर भी, राहगीरों द्वारा माथा छूकर दूर से ही अभिवादन करना साँड (अंग्रेजों) को लाल कपड़ा नजर आने के समान होता था और कई बार इसी कारण ही काफी समस्या खड़ी हो जाती थी।

लाजपत राय को प्रतिदिन अपने देशवासियों से जो सस्नेह श्रद्धा-सुमन प्राप्त होते थे, उस प्रकार के आदर से किसी भी कैदी का गर्व से सिर ऊचा हो सकता था। पंजाबी औरतें कभी-कभी उनके दर्शन करने आती थी, परन्तु दूर से ही और कैदी बड़ी आसानी से उन्हें देख सकता था। कभी-कभार भारतीय ग्रामीण युवकों की टोली उस रास्ते से गुजरती और वह उन्हें बड़े विषादपूर्ण स्वर में, उनके निर्वासन के बारे में बातें करते सुन सकते थे।

अन्य अवसरों पर वर्षा ऋतु जैसे मौसम में वह और ही प्रकार की टोली देखते, जिनकी निगाहें मेरे घर के बरामदे की ओर उठी हुई होती थी। जिनके शौक लिबास से मालूम पड़ जाता कि वे बम्बई के समृद्ध बोहरा हैं।" जो कोई भी भारतीय माण्डले जाता था, वहां के दुर्ग की यात्रा तथा उसमें बन्दी महान कैदी

के दर्शन की झलक उसके लिए अनिवार्य बात होती थी, चाहे ऐसा करने के बाद या ऐसा करके उसे कितनी भी परेशानी क्यों न उठानी पड़े।

दुर्ग में 'गोपनीयता' उस समय हास्यास्पद बात बनकर रह गई, जब अधिनियम के अधीन उनके समान बन्दी बनाये गये अजीत सिंह माडले पहुंचे। कई सप्ताह, बल्कि कई मास तक यह दिखावा किया गया कि उनमें से किसी को भी एक दूसरे के दुर्ग में कैद होने की जानकारी नहीं थी। परन्तु गोपनीयता के कारण वश जो सावधानी बरती गई थी, उसी से ही इस भेद का पता चल जाता था।

यद्यपि लाजपत राय "सरकारी" कैदी थे, फिर भी उन्हें डफरिन कोट में काफी कड़ी पाबन्दी के अधीन रखा गया था। उन्हें कोई समाचार पत्र न दिया गया, इस मामले में उनकी ओर से भारत सरकार को पत्र लिखने के बावजूद, दरअसल "यूरोपियन पहरेदारों को भी, जब वे ड्यूटी पर हों, समाचार पत्र अपने पास रखने की अनुमति नहीं थी।" पुस्तकें उनके पास पहुंचाने से पूर्व उनकी अच्छी तरह जांच पड़ताल की जाती थी भी और जैसा कि हमने पहले देखा है, उन्हें "राजनीतिक कारणों से" बर्मी भाषा सीखने कीभी आज्ञा नहीं दी गई थी। माण्डले में छः मास ठहरने के दौरान उनके साथ किसी मित्र या संबंधी की भेंट नहीं हुई। उनके भाई धनपत राय ने उनके साथ मुलाकात करने के लिए आज्ञा मांगी, परन्तु डेंज़िल इब्बटसन की सरकार ने उसके लिए अनुमति न दी। "इस कारण भविष्य में इस प्रकार की अर्जियों का सिलसिला ही बन्द हो गया।"

उन्होंने डफरिन कोट के बाहर गाड़ी में सवार होकर घूमने की आज्ञा मांगी, परन्तु इसकी भी आज्ञा न दी गई। दरअसल, दुर्ग के अन्दर भी उनकी रात दिन कड़ी निगरानी की जाती थी।

उनकी सारी डाक सैंसर की जाती थी, "केवल मेरी कुछ चिट्ठियां ही मुझ तक पहुंचाई जाती थीं।' जिन पत्रों में उनकी गिरफ्तारी का कोई उल्लेख, निर्वासन की कोई चर्चा या लाहौर, पिण्डी या किसी अन्य स्थान पर उग्र घटनाओं का उल्लेख होता, तो उन्हें अक्सर ही रोक लिया जाता था, यद्यपि एक पत्र में 'खज़ान सिंह एंड कंपनी' के बारे में पूछा गया प्रश्न सैंसर की नजर में नहीं आया—खज़ान सिंह पिण्डी के उन वकीलों में से थे, जिन्हें राजद्रोह के आरोप में गिरफ्तार किया गया था।

यहा तक कि सालिसिटरो की एक फम का खालिस व्यापारिक पत्र भी रोक लिया गया। इसमे केवल इस सबध मे निदश देने को कहा गया था कि 'डेली एक्सप्रेस' के शिमला सवाददाता ने अपने पत्र म जो निराधार बात कही थी, उसके विरुद्ध मान हानिपूर्ण लेख के लिए मुकदमा दायर किया जाए या नही? सालिसिटरो ने लाजपत राय से केवल एक वकालतनामे पर हस्ताक्षर करने के लिए कहा था। इस प्रकार का शत प्रतिशत व्यापारिक पत्र भी आपत्तिजनक समझा गया था, क्योंकि 'सामान्य राजनीतिक आधार पर' यह बात अनुचित थी, जो जेल अधीक्षक के सरल सिद्धान्त के अनुसार, किसी राजनीतिक बन्दी को उसके विरुद्ध ब्रिटिश समाचार-पत्रो मे प्रकाशित उल्लेखो के विरुद्ध इस प्रकार मान-हानि का मुकदमा करके अपना पक्ष स्पष्ट करने की अनुमति नही हो सकती थी। फिर भी, 'ईमानदार जान' ने 9 जुलाई 1907 को हाउस आफ कामस मे विलियम रेडमण्ड का उत्तर देते हुए कहा था

"लाला लाजपत राय और अजीत सिंह को अपने मित्रो के साथ पत्र-व्यवहार करने की अनुमति है, परन्तु उनके पत्रो की जाच कर ली जाती है, ताकि ऐसे सदेश रोके जा सकें, जिनसे गडबडी का प्रोत्साहन मिलने की आशका है। अब तक केवल एक पत्र रोका गया है। मुझे भारत से जो सूचना मिली है, उसके अनुसार अब तक किसी ने बंदी के साथ मुलाकात के लिए इच्छा व्यक्त नही की है, मेरा अनुमान है कि यदि मुलाकात के लिए इस प्रकार का कोई प्रतिवेदन किया जाएगा, तो ऐसी मुलाकात करने पर कोई आपत्ति नही होगी, जो उचित निगरानी मे हो, ताकि इस बात को यकीनी बनाया जा सके कि कोई शरारतपूर्ण या अनुचित ढग से सदेश न पहुचाया जाये।" मेकार्नेस के पूरक प्रश्न के उत्तर मे कि "क्या बदी अपने कानूनी सलाहकार के साथ पत्र व्यवहार कर सकता है?" मार्ले ने उत्तर दिया, 'मेरा अनुमान है कि ऐसा हो सकता है।"

कारावास के दिनो मे उन्हें अक्सर अपने घर का ख्याल आता था। शायद उनके पास अपनी घरेलू समस्याओ के बारे मे विचार करने के लिए अधिक फुर्सत थी, उसके मुकाबले जब वह अपने घर पर थे। कोट से जो पत्र उन्होने अपने पिता अथवा पुत्रो को लिखे, उनसे उनकी घरेलू योजनाओ की झलक मिलती है। इन पत्रो मे उन सभी बातो की चर्चा नही करनी होती थी, जो राजनीतिक हो। सामान्य तौर पर उनमे इस बात का विवरण होता था कि जेल मे उनका समय कैसे व्यतीत होता था, मौसम कैसा है, उनका स्वास्थ्य और उनका लिखना पढना कैसा

है। कभी कभार इन पत्रों में घर से यह वस्तु भेजने की चर्चा होती है, जो स्थानीय तौर पर उपलब्ध नहीं थी और कई बार इनमें उनके मामलों के प्रबंध के लिए निर्देश दिए होते थे या घरेलू मामलों की व्यवस्था के बारे में लिखा होता था।

पिता ने अपने पुत्र की कैद को बिल्कुल धैर्य से सहन किया

"वह मेरे बच्चों के प्रति अपने कर्तव्य को बड़े साहस के साथ निभा रहे थे तथा अपने दुर्भाग्य को बड़े धैर्य से सहन कर रहे थे। परन्तु मेरे पास यह जानने के लिए कोई साधन नहीं था कि परिवार का ध्यान रखने के अलावा उन्होंने अपना अनुभवी कलम मेरे समर्थन में उठा लिया है और उसे प्रभावशाली ढंग से इस्तेमाल कर रहे हैं, जिसके कारण मेरे हमवतनों में जो बुरा करने वाले हैं, उन्हें घबराहट हो रही थी। मुझे यह जानकर बहुत ही लज्जा आयी कि एक भारतीय डिप्टी कमिश्नर ने ब्रिटिश मजिस्ट्रेट के रूप में अपने कर्तव्य निभाने के सिलसिले में, उस वृद्ध व्यक्ति की गतिविधियों पर नियमित रूप से पूरी तरह निगरानी की व्यवस्था कर दी थी, जैसे मेरी राजनीतिक विचारधारा के लिये और मेरी कारवाइयों के लिये वह किसी तरह जिम्मेदार है। परन्तु, उस वृद्ध व्यक्ति ने पल भर के लिये भी, अस्थिरता नहीं दिखाई और मेरी बेगुनाही में अडिग विश्वास रखा। अपने पुत्र की अनुपस्थिति के कारण, अपने गहरे दुख के कारण, उनके मन में कभी निराशा पैदा नहीं हुई, उस पुत्र की अनुपस्थिति के कारण जिसने अपने पिता प्रेम और आदर को अपने स्नेह और सम्मान के मुकाबले गौण स्थान नहीं दिया।"

28. जॉन मौर्ले की अग्नि परीक्षा

अभी लाजपत राय को माण्डले के कैदी के रूप मे बिना मुकदमा चलाये तथा बिना सजा दिये नजरबन्द हुए कुछ सप्ताह भी नही हुए थे, जब उन्हें पता चला कि "ससद मे गृह मत्री (सैक्रेटरी आफ स्टेट फार इडिया) से प्रश्न पूछा गया था कि क्या मैने अपने निर्वासन के विरुद्ध विरोध व्यक्त किया है और यदि किया है, तो इस विरोध का साराश क्या है।" इस जानकारी से उनके मन मे विचार पैदा हुआ कि "ब्रिटिश ससद मे मेरे मित्र शायद यह जानना चाहते है कि बिना मुकदमा चलाये निर्वासित करने की सरकार की इस ज्यादती भरी कारवाई के विरुद्ध मुझे क्या कहना है।" उस समय तक उन्होने अपनी रिहाई के लिए याचिका पेश करने का कोई निणय नही किया था। हाउस आफ कामन्स म पूछे गए इस प्रश्न ने उन्हें निणय पर पहुचा दिया। उन्होंने पहले ही उस आदेश की एक प्रति की माग की थी, जिसके अधीन उन्हें गिरफ्तार किया गया था तथा यह भी कि इस आदेश का आधार क्या था। उचित समय में ही उन्हे 7 मई 1907 को सजा देने का वह वारण्ट पढने की प्रसन्नता प्राप्त हो गई, जो इस प्रकार था

गृह विभाग, भारत,

सेवा मे, जेल अधीक्षक, माण्डले।

चूकि महा राज्यपाले, सपरिषद् को उचित और पर्याप्त कारणो से यह निणय करना उचित महसूस हुआ है कि लाजपत राय, पुत्र राधाकिशन, को माण्डले मे व्यक्तिगत रुप से बन्दी रखा जाये, इसलिए आपसे यह कहा जाता है और आदेश दिया जाता है कि इस निणय के अनुसार आप उपयुक्त व्यक्ति को अपनी जेल मे रखें और उसके साथ महा राज्यपाल, सपरिषद के आदेश और 1818 के अध्यादेश III के अनुसार व्यवहार करें।

महा राज्यपाल, सपरिषद् के आदेशानुसार

(हस्ताक्षर)
एच० एच० रिज़ाली
सचिव, भारत सरकार
गृह विभाग।

तिथि 7 मई 1907

इसलिए इस दस्तावेज में कोई आधार नही बताया गया—इसका अनुमान तो केवल अध्यादेश के शब्दो से ही लगाया जा सकता था कि उन्हें "महामहिम के शासन मे गडबडी फैलाने से रोका जा सके।" अधिनियम III की प्रति उन्हें पहले ही प्राप्त हो चुकी थी, जो उन्होंने घर से मगवाई थी और अधीक्षक ऐसी सन्दिग्ध सामग्री उस समय तक उन्हें देने के विरुद्ध अडा रहा था, जब तक उसने स्थानीय सरकार से सलाह नही कर ली। आदेश की प्रति प्राप्त हो जाने पर लाजपत राय ने एक याचिका अथवा ज्ञापन तैयार किया, जो श्रीमान वाइसराय और भारत के महा-राज्यपाल, शिमला को सबोधित था और उन्होंने 29 जून 1907 को यह जेल अधीक्षक के हवाले कर दिया। कोई तीन सप्ताह के बाद जेल अधीक्षक ने एक और प्रति देने को कहा, जो बर्मा सरकार के लिए चाहिए थी। लाजपत राय ने अपने पास कोई प्रति नही रखी थी, परन्तु उन्होने अपनी स्मरणशक्ति से ही प्रति तैयार की, जो उनके विश्वास के अनुसार "मूल प्रतिवेदन की सही प्रति थी," इसकी एक प्रति रख लेने के कारण ही वह उसे 'द स्टोरी आफ माई डिपोर्टेशन' मे अकित कर पाये थे।

इस ज्ञापन मे लाजपत राय ने रोष व्यक्त करते हुए अपनी निर्दोषिता पर बल दिया था और "सम्मानपूर्वक, परन्तु जोर देकर" इस बात से इन्कार किया था कि "अपनी गिरफ्तारी के समय से तुरत पूर्व या तुरत बाद महामहिम, भारत सम्राट के शासन क्षेत्र मे किसी प्रकार की 'गडबडी' की कोई उचित आशका थी" और इतने ही जोरदार शब्दो मे और सम्मानपूर्वक ढग से उन्होने इस बात से भी इन्कार किया था कि उन्होने कभी कोई ऐसी बात की हो या करने का प्रयत्न किया हो, जिससे महामहिम के शासन मे किसी प्रकार की कोई गडबडी हो सके या जिसके कारण उनके विरुद्ध 1818 का अधिनियम III लागू करने का कोई औचित्य हो सके। उन्होने निवेदन किया था कि वह सदा ही शान्तमय कार्य करते रहे है और अपना अधिकतर समय अपने देशवासियो मे शिक्षा का प्रसार करने, अनाथो, विधवाओ तथा अकाल पीडितो के लिए सहायता एकत्र करने तथा बाटने तथा 1905 के भूकम्प के बाद कागडा घाटी तथा अन्य क्षेत्रो के लोगो की सहायता करने मे व्यस्त रहे हैं और वह तीन वर्ष से नगरपालिका के सदस्य रहे हैं और 25 वर्ष से वकालत कर रहे हैं और अपने सार्वजनिक जीवन मे, जिसकी अवधि लगभग 25 वर्ष है उन पर ऐसी कोई कारवाई करने का सदेह नही किया गया, जिससे महामहिम के शासन मे गडबडी फैलाने का सदेह हो। उन्होने इस बात की ओर भी ध्यान दिलाया

कि वह "बढ़े हुए जिगर तथा पेट की बीमारियों मे लगातार ग्रस्त रहे है।" अन्त मे उन्होंने निवेदन किया था कि यदि उन्हें तुरंत रिहा करना सभव नही, तो वे आधार बताये जायें, जिनके कारण उनके विरुद्ध यह कारवाई की गई है और ऐसी याचिका महामहिम, भारत के महाराजाधिराज को भेज दी जाये। याचिका का निर्णय होने तक उन्होंने कुछ सुविधाओं की माग की–(क) "मुझे भारतीय तथा अग्रजी समाचार-पत्र पढने की अनुमति दी जाये, क्योंकि इन्हें पढने से वचित किये जाने पर मैं बहुत ही एकाकीपन महसूस करता हू" और (ख) "मेरी सेवा-परिचर्या के लिए मेरे अपने घर से नौकर भेजा जाए।" अन्तिम परिच्छेद मे उन्होंने इच्छा व्यक्त की थी कि "उनके कारावास की सभावित अवधि बताई जाये।"

6 अगस्त को जेल अधीक्षक ने उनकी याचिका के बारे मे भारत सरकार का आदेश पढ़कर सुनाया और बाद मे उन्हें कागज का एक टुकडा दिया, जिस पर सरकार के निर्णय का यह ज्ञापन लिखा हुआ था

"भारत सरकार ने निर्णय किया है कि आप फोर्ट डफरिन से आगे गाडी मे घूमने नही जा सकते। न ही पुलिस की चौकसी कम की जा सकती है (निवेदन की शर्तें अस्पष्ट)। जहा तक आपके विरुद्ध आरोपो के ब्यौरे का प्रश्न है, भारत सरकार का आदेश है कि जो कारण आपको पहले बताये जा चुके है, उनके अतिरिक्त और ब्यौरा नही दिया जा सकता। आप अपने ज्ञापन स्थानीय सरकार द्वारा सम्राट को भेज दें। आपको अपना नौकर नही दिया जा सकता और न ही समाचार पत्र (इनसे पहले इन्कार किया जा चुका था)।

"कारावास की अवधि भी नही बताई जा सकती। आपके अपने सबधियो से मिलने पर कोई कडी आपत्ति नही, परन्तु मुलाकातें तथा व्यक्ति पजाब सरकार की सहमति से सीमित होगे।"

यह "ज्ञापन" का समाहित उत्तर था और अधीक्षक द्वारा ऊपर भेजे गये कुछ निवेदनो का भी।

अधिनियम की जो प्रति लाजपत राय के लिए मिली थी, उससे अधीक्षक को पता चला था कि कानून के अनुसार उसे अपने कैदी के बारे मे पहली जुलाई को रिपोर्ट भेजनी थी। उसने लाजपत राय से पूछा कि क्या वह उनके लिए कुछ विशेष रियायतो की सिफारिश करे। उत्तर मे लाजपत राय ने कहा कि वह चाहेंगे कि उन्हें आज्ञा दी जाये "कि वह दुर्ग के बाहर गाडी मे घूम सकें, पुलिस की चौकसी कुछ कम कर दी जाये और मित्रो से मिलने दिया जाये।"

उन्होंने इस संकेत का लाभ नही उठाया कि वह स्थानीय सरकार द्वारा महा महिम सम्राट को याचिका भेज सकते हैं। उन्हें इस बात पर हसी आई कि सरकार टैकनीकल कारणो को अपने व्यवहार का आधार बना रही है और याचिका महामहिम को भेजने से इसलिये इन्कार कर रही है कि यह उचित प्रणाली द्वारा नही भेजी गई। "मुझे यह बात बहुत ही हास्यास्पद लगी कि एक बन्दी से, जिसे कानूनी तथा किसी अन्य सलाह का अवसर नही दिया गया, यह कहा जाए कि जो याचिका उसने जेल अधीक्षक को दी है, जो एकमात्र व्यक्ति उसकी पहुच मे है, उचित प्रणाली द्वारा क्यो नही भेजी गई।" फिर भी, उन्हे "इतना विवेक तो है कि महामहिम एक सावैधानिक प्रमुख है और वह भारत सरकार की कार-वाइयो मे, जिन्हें जान मौर्ले जैसे राजनीतिक सिद्धाता वाले नीतिज्ञ की स्वीकृति प्राप्त है हस्तक्षेप नही करेंगे।" इस सबके बावजूद वह महामहिम को इस बात से अवगत कराना चाहते थे कि "उनकी भारत सरकार कितनी निदयी है कि मेरे जैसे स्तर और शिक्षा वाले राजनैतिक बन्दी को समाचार पत्र देने से इन्कार कर दिया है।" उन्होंने यह सदेह भी व्यक्त किया कि भारत सरकार महामहिम को उनके मामले के तथ्यो से अवगत नही कराना चाहती और इस बीच वह अभी भी "मेरे विरुद्ध प्रमाण जुटाने मे व्यस्त हैं। लाहौर और रावलपिण्डी मे हुई गडबडी के अभियुक्तो को यातनाए दी जा रही हैं और उन पर दबाव डाला जा रहा है कि वह इन दगो मे मेरा नाम शामिल कर दें और भारत सरकार को आशा है कि उसे मेरे विरुद्ध काफी ठोस प्रमाण मिल जाएगे।"

जेल अधीक्षक ने उन्हें बार-बार स्मरण करवाया कि क्या वह महामहिम सम्राट को उनके सुझाव के अनुसार ज्ञापन भेजने के बारे मे विचार करेंगे, परन्तु लाजपत राय ने उसकी परवाह न की और सदा ही यह उत्तर दिया कि वह जब चाहेंगे ऐसा करेंगे।

"इतिहास का जितना थोडा बहुत ज्ञान मुझे था, उसके अनुसार मुझे निरकुश शासको से न्यायोचित व्यवहार की आशा न थी और मैंने यह निश्चय कर लिया था कि दासता के जिस जीवन मे मुझे निरकुश सरकार के निणय के अनुसार डाला गया है मै उसी मे टिक जाऊ। मैंने सोचा कि इतना ही काफी है कि मैंने लिखित विरोध व्यक्त कर दिया है और मेरे विरुद्ध जो सामान्य आरोप था, उससे इन्कार कर दिया है।"

परन्तु अपनी स्मरणशक्ति पर जोर डालने का कष्टकारी कार्य उन्हें कुछ महीने बाद फिर करना पड़ा ।

"सितंबर में एक अंग्रेजी पत्रिका में, जो जेल अधीक्षक ने पढ़ने के लिये मुझ तक पहुंचाई थी, मैंने पढ़ा कि मेरे विरुद्ध एक यह आरोप भी है कि मैंने स्वदेशी सेना की वफादारी बिगाड़ने का प्रयत्न किया था ।" उन्होंने इस बिल्कुल निराधार आरोप को "अत्यधिक अपमानजनक" महसूस किया और इसके बारे में अपना पक्ष स्पष्ट करना चाहा । जैसा हम आगे चलकर देखेंगे, उन्होंने अपनी रिहाई के बाद कुछ समाचार-पत्रों के विरुद्ध मान हानि के मुकदमे भी दायर किये । 22 सितंबर को माडले से उन्होंने अपना दूसरा ज्ञापन प्रस्तुत किया । शायद उस समय ही वह इस मुकदमेबाजी के बारे में विचार कर रहे थे । यह दूसरा ज्ञापन उन्होंने सेक्रेटरी आफ स्टेट फार इंडिया, लंदन को संबोधित किया था । इसमें फिर रोष व्यक्त करते हुए कहा था कि वह निर्दोष है और उन्होंने कोई ऐसी कारवाई नहीं की, जिससे गड़बड़ी हो, जिसके कारण, उन पर 1818 का अधिनियम III लागू हो । उन्होंने यह रोष भी फिर व्यक्त किया कि उन्हें अपने विरुद्ध लगाये गये आरोपों के बारे में बिल्कुल नहीं बताया गया । उनकी संक्षेप में पुनरोक्ति के अलावा, जो उन्होंने पहले ज्ञापन में कहा था, उन्होंने कहा कि मुझे समाचार पत्र बिल्कुल नहीं दिए जाते, "आपका प्रार्थी तो इस स्थिति में भी नहीं है कि वह अपने विरुद्ध लगाये गये आरोपों का खंडन कर सके, जो भारत सरकार ने अपने निर्णय के लिए आधार बनाए है ।" इसके बाद के अनुच्छेदों में उन्होंने एक प्रकार से इन "तथाकथित आधारों" की चर्चा की है । "आपका प्रार्थी आगे निवेदन करना चाहता है कि उसने लाहौर और रावलपिण्डी की गड़बड़ी में कोई भाग नहीं लिया, न ही उसने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से किसी व्यक्ति को ऐसा करने के लिए प्रोत्साहन दिया है, उसने राजद्रोह के समर्थन में कोई भाषण नहीं किया और गिरफ्तारी से पूर्व तथा तुरंत बाद जिन बातों पर लोगों में रोष फैला हुआ था, सरकार की उन कारवाइयों की आलोचना करते समय वह कानून और संविधान की सीमाओं के बाहर नहीं गया, न ही उसने उन लोगों का समर्थन किया था, जो उसके विचार में ऐसी कारवाइयों का समर्थन करते थे और उसके विरुद्ध यदि यह संदेह किया जाता है कि उसने महामहिम की स्वदेशी सेना में गलत प्रचार करने की कोशिश की तो यह भी निराधार है, क्योंकि आपके प्रार्थी को इन सैनिकों के साथ मिलने तथा उनमें प्रचार करने का अवसर ही नहीं मिला ।'

ज्ञापन मे कानूनी तथा सांविधानिक दृष्टि से भी एक महत्वपूर्ण मामला उठाने का प्रयत्न किया गया। "प्रार्थी के लिये यह सोचने का कारण है कि उसके विरुद्ध जो अधिनियम लागू किया गया है वह, भूतपूर्व ईस्ट इंडिया कम्पनी का एक असवैधानिक कानून है, जो चार्टर द्वारा उसे दिये गये अधिकार के बाहर है। वह ब्रिटिश सविधान और ब्रिटिश कानूनो की भावना के अनुसार नहीं, इसलिए वह अवैध है। इसे ब्रिटिश ससद ने कभी स्वीकृति नही दी कि उक्त अधिनियम द्वारा कार्यकारी सरकार को सदा के लिये यह अधिकार देना, ब्रिटिश प्रजा को अदालत मे मुकदमा चलाए बिना व्यक्तिगत स्वतन्त्रता से वचित करना है, जो प्राकृतिक न्याय तथा कानून द्वारा स्थापित सरकार की भावना के विपरीत है।"

अधिनियम के अवैध होने का विचार उन्हें (स्टोरी के अनुसार) ईस्ट इंडिया कम्पनी के इतिहास की एक पुस्तक 'लैजर ऐंड स्वोड' से मिला, जिसका अध्ययन हाल मे आरम्भ किया था। कुछ योग्य वकीलो ने इस प्रश्न पर बाद मे विचार किया और इस विचार से सहमति व्यक्त की कि अधिनियम अवैध था।

समाचार-पत्र न दिये जाने का उन्हे सबसे अधिक कष्ट था। उसके बिना वह रह ही नही सकते थे। बाद के वर्षों मे जब वह "सरकारी" कैदी होने का दावा नही कर सकते थे और न ही उन्हें विशेष रियायतें प्राप्त थी और जेल के बेहूदा नियमो के अधीन उनको समाचार पत्र देना बन्द कर दिया गया था, तो इसके लिए कुछ अनधिकृत ढग इस्तेमाल किये जाते थे। फिर भी कभी-कभार यह व्यवस्था असफल हो जाती थी और जेल की बहुत कम घटनाए ऐसी होती थी, जिनके कारण वह इतना बेचैन होते थे, खीझते थे जितना दैनिक समाचार-पत्र न मिलने से। समाचार-पत्र न देने के बारे मे दूसरे ज्ञापन मे भी वैसे ही चर्चा की है, जिस प्रकार पहले ज्ञापन मे की थी

"प्रार्थी सम्मानपूर्वक निवेदन करता है कि "व्यक्तिगत प्रतिबंध", जिनकी अधिनियम मे चर्चा की गई है, इसकी प्रस्तावना म दिये गये उद्देश्य की पूर्ण आवश्यकता से अधिक नही हो सकते, अधिनियम का प्रकट उद्देश्य निवारण है, किसी व्यक्ति पर बिना मुकदमा चलाये सजा देना नहीं।"

और, यदि इस रोशनी में देखा जाये, तो भारत सरकार द्वारा समाचार पत्रो की मनाही करना, प्रार्थी को अपना निजी सेवक न देना या अपना सहधर्मी रसोइया न देना न्यायोचित तथा आवश्यक नही, न ही इस बात का कोई औचित्य

हो सकता है कि उन्हें अपने किसी मित्र से न मिलने दिया जाये और यह निश्चित कर दिया जाये कि वह केवल उन संबंधियों से मिल सकते हैं, जिनकी अनुमति पंजाब सरकार से पहले ली गई हो और वह भी इस स्थिति में कि उनकी बातचीत एक अधिकारी सुन पाए।

"कि ये प्रतिबंध उस व्यवहार के प्रतिकूल है, जो ब्रिटेन में राजनीतिक बंदियों के साथ या संसद के विशेष कानूनों के अधीन, बिना मुकदमा चलाए नजरबन्द किये जाने वाले व्यक्तियों के साथ होता है।"

अन्त में "प्रार्थी पूरी उत्सुकता से आशा करता है कि उसके साथ न्यायोचित तथा न्यायपूर्वक व्यवहार किया जाएगा, जिसके लिए ब्रिटिश कौम तथा सरकार प्रसिद्ध हैं।" उन दिनों भारत के राजनीतिक नेताओं में यह फार्मूला आम तौर पर माना जाता था।

यदि इस सारी याचिका को मिलाकर पढ़ा जाये, तो यह दया के लिए निवेदन नहीं है। इसमें स्पष्ट तौर से जोर देकर अपने कानूनी अधिकारों का पक्ष लिया गया है। यह एक विरोध, एक चुनौती है, कानून लागू किए जाने के विरुद्ध ही नहीं, बल्कि इसकी वैधता के विरुद्ध भी।

इस दूसरे ज्ञापन का उत्तर दिए जाने की कृपा होने की आशा नहीं थी—सिवाय इसके कि आप उनकी रिहाई में यह उत्तर ढूंढें जो, जैसा आप अगले अध्याय में पढ़ेंगे, उस समय मोर्ले और मिण्टो के पत्र-व्यवहार का विषय थी और संभवतया मिण्टो और पंजाब सरकार के पत्र व्यवहार का भी। कुछ भी हो, अधीक्षक ने इस बार न तो उन्हें कोई "निर्णय" पढ़कर सुनाया, और न ही किसी निर्णय पर आधारित लिखा हुआ कोई "ज्ञापन" ही दिया।

किस प्रकार मुलम्मा चढाया गया है। "लगातार आशा और भय के घात प्रति घात के कारण उनका मत अस्थिर था।"

अनिश्चय की यह स्थिति 11 नवम्बर को सवेर सवा दस वजे समाप्त हो गई, जब माण्डले डिवीजन के कमिश्नर और पुलिस अधीक्षक तथा उप-अधीक्षक उनसे मिलने आए और बताया कि उन्हें रिहा किया जा रहा है। कमिश्नर ने वाइसराय की ओर से चेतावनी भी दी कि यदि उन्हें फिर राजद्रोह की कोई कार-वाई करते पकडा गया, तो गिरफ्तार करके तुरत निर्वासित कर दिया जाएगा।

लालाजी को तुरत सामान बाधने का कहा गया, क्योंकि विशेष रेलगाडी उनकी प्रतीक्षा कर रही थी। कार्यक्रम के अनुसार गाडी को पौने ग्यारह बजे छूटना था। उन्हें आधे घटे मे ही उस स्थान को छोडना था जो उनके लिए "दूसरा घर" बन चुका था।

पुलिस अधीक्षक रेलवे स्टेशन तक उनके साथ गया, जहा एक प्लेटफाम के साथ वह "विशेष रेलगाडी" तयार खडी थी। जेल अधीक्षक ने उनके साथ हाथ मिलाया और कहा, "मुझे आपसे छुटकारा पाकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई है और मैं आपके लिए शुभकामना करता हू।" उसने अपने भूतपूर्व कैदी को सलाह दी कि वह फिर "बेवकूफी" नही करेंगे। पुलिस अधीक्षक ने उन्हें प्रथम श्रेणी के डिब्बे मे, जो उनके लिए आरक्षित था, पहुचाकर मैत्रीपूर्ण ढग से उनके साथ हाथ मिलाया।

याड मे उन्हे एक सार्जेंट दिखाई दिया, जिसके बारे म उन्हे जानकारी थी कि वह उस दिन सरदार अजीत सिंह के साथ नियुक्त था। इससे उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि सरदार अजीत सिंह भी उसी गाडी मे हैं। सायकाल से पूव ही उन्हे पता चल गया कि सरदार अजीत सिंह द्वितीय श्रेणी के डिब्बे मे उसी गाडी मे सवार थे और एक यूरोपियन पुलिस इन्सपैक्टर तथा एक यूरोपियन सार्जेंट उनकी हिफाजत के लिए साथ थे।

इन निर्वासित व्यक्तियो की रिहाई के सबध मे सरकारी मशीनरी किस प्रकार कार्य कर रही थी, उसकी झलक मिण्टो मार्ले पत्र-व्यवहार से मिलती है जो प्रमुख तौर पर मार्ले की पुस्तक 'रिकलेक्शस' म और मेरी मिण्टो द्वारा सग्रहीत अपने पति के पत्रो से मिलती है।

25 अक्तूबर को मौर्ले ने मिण्टो को लिखा

'——मेरी इच्छा है कि आप इस बात पर गंभीरता से विचार करेंगे कि लाजपत राय के साथ कैसे निपटा जाये। मेरे मन में आता है कि जब बैठकों के बारे में आपके नये कानून को लागू करने का समय आया, तो उस अवसर पर यह कहना चाहिए, हमने अब नये अधिकार प्राप्त कर लिये हैं, हम शायद इससे भी आगे जाएंगे', इस नये बल के साथ और यह सोचते हुए कि निर्वासन ने अपना पूरा काम किया है। 'लाजपत चाहे चले जायें'—मुझे पूरा यकीन है कि आप उस कठिनाई को महसूस करते हैं—जो लाजपत राय को बिना किसी आरोप के अनिश्चित काल के लिए नजरबन्द करने में हमें हाउस आफ कामन्स में पेश आती है। उनकी रिहाई 'मीटिंग्ज एक्ट' को स्वीकार करवाने में एक प्रकार से सहायक होगी, इसके अलावा अन्य दमनकारी उपाय स्वीकार कराने में भी, जो आप करना चाहोगे।"*

यह पहला पत्र था, जिसमें निश्चित रूप से रिहाई का संकेत दिया गया था, इस प्रकार रिहाई के लिए पहली कारवाई लंदन से शुरू हुई, सम्राट की ओर से नहीं, जैसा कि उस समय कुछ लोगों ने सोचा था, यद्यपि इसके बाद यह सोचना आवश्यक नहीं कि यह वाइसराय की इच्छा के विरुद्ध कलकत्ता पर थोपी गई थी। स्पष्ट तौर से मौर्ले के लिए "बिना आरोप के अनिश्चित काल के लिए नजरबन्दी" की कारवाई का स्पष्टीकरण प्रतिदिन सदन में देना आसान नहीं था और वह इससे ऊब गये थे।

जब मिण्टो ने राजद्रोही बैठकों पर प्रतिबंध लगाने के कानून और संभव है अन्य दमनकारी कानूनों की स्वीकृति मांगी होगी, तो मौर्ले ने प्रतिभार के रूप में सुझाव दिया होगा कि दूसरी गलती करने से पूर्व पहली गलती को सुधार लिया जाये। इससे मौर्ले के लिए अपने उदारवाद को बनाए रखने के निर्भीक प्रयत्न में सहायता मिलेगी, उस उदारवाद को, जो अब तक फटकर चीथड़े बन चुका था। अपने मुहरबन्द आदेशों के शिकार व्यक्तियों की रिहाई का आदेश दे देने के बाद वह अपना सिर एक बार फिर ऊंचा कर सकते थे और यह दावा कर सकते थे कि उन्होंने प्रतिक्रियावादियों को पूर्ण स्वतंत्रता नहीं दी हुई है। इसके साथ ही यह एंग्लो इंडियन अफसरशाही के साथ मिण्टो की सहायता भी कर सकती

*वही पृष्ठ—161

थी, जिन्हें दमनकारी उपाय यह विश्वास दिला देंगे कि निर्वासितो की रिहाई का यह अर्थ नही है कि सुदृढ़ शासन के सिद्धान्त छोड दिये गये ।

अपने मीटिंग्स एक्ट के लिए बहुत उत्सुक होने के कारण, मिण्टो तुरन्त ही मोर्ले के सुझाव से सहमत हो गये । परन्तु इब्बटसन सहमत हुए, यह नही जान पडता । मोर्ले के पत्र के उत्तर म मिण्टो न 5 नवबर को लिखा

'जहा तक लाजपत राय और अजीत सिंह का प्रश्न है, मुझे लशमात्र भी सदेह नही कि सामान्य न्याय के अनुसार उन्हें अवश्य रिहा किया जाना चाहिए, और जितना शीघ्र यह हो जाए, उतना ही बेहतर है । अब जब हम यह घोषणा कर चुके हैं कि पजाब शात है, हम उन्हें और बंदी बनाये रखना किसी भी ढग से तकसगत और उचित नहीं कह सकते । नि सदेह रिहाई की पजाब सरकार की ओर से कडी आलोचना की जाएगी और अन्य क्षेत्रो की ओर से भी, जो बिना सोचे-समझे दमन-चक्र को ही एकमात्र शस्त्र समझते है । मुझे अपने तौर पर कोई सदेह नही है कि सही क्या है । मन मारे प्रबध कर लिए है और आपको तार द्वारा सूचना भेज रहा हू ।"*

इब्बटसन ने आपत्ति की । परन्तु मिण्टो अब अधिक समझदार थे

"मेरी जानकारी म अब ऐसी कोई बात नही, जिसके कारण मैं उनके इस कथन म सहमत हो सकू कि लाजपत राय का एक प्रमुख उद्देश्य भारतीय सेना की वफादारी को भ्रष्ट करना है । मुझे इस बात के समर्थन मे कोई प्रमाण नही मिला है । मुझे लगता है कि इब्बटसन सारी स्थिति को ठीक ढग से नही समझ रहे हैं । ऐसा दिखाई पडता है कि वह यह समझते हैं कि हम अशान्ति को दबा सकते है । हम ऐसा कदापि नही कर सकते । यह तो रहेगी ही, नये विचारो, नयी आकाक्षाओ के रूप म, जिसने भी इस विषय के बारे मे गभीरता से सोचा है और जिसको उसे जानकारी है, वह इस राजद्रोह को समझने की गलती कर रहा है जिसे हम निश्चय ही दृढता से दबाना है ।"**

---

*वही पृष्ठ 163

**सयद रजीवास्ती दुवारा उद्धृत—लार्ड मिण्टो एड द इडियन नेशनलिस्ट मूवमेंट 1905 1910, पृष्ठ 105.

बुद्धिमत्ता की इस मनोदशा में मिण्टो ने लिखा

"लाजपत राय निस्सदेह बहुत उच्च-चरित्र वाले हैं और उनके देशवासी उनका बहुत आदर करते हैं और जब मुझे उन्हें गिरफ्तार करने के लिए कहा गया था। यदि उस समय यह जानकारी होती जितनी अब है, तो मैं गिरफ्तारी के लिए सहमत होने से पहले और ज्यादा प्रमाण चाहता।"†

परन्तु वह नहीं चाहते थे कि उनकी यह प्रशसात्मक टिप्पणी लाजपत राय के निर्वासित साथी पर लागू की जाए

"अजीत सिंह का स्थान उनके मुकाबले में हर प्रकार से बहुत छोटा है और मुझे उनकी रिहाई में उसे साथी बनाने पर खेद होगा।"††

मौर्ले द्वारा फिर मिण्टो को

'8 नवबर—आपने लाजपत राय के बारे में जो रवैया अपनाया है उससे मुझे बहुत राहत हुई है। मत्रिमडल ने, जिसे मैंने सारा मामला आपकी भाषा में बताया, इस निर्णय से पूर्ण सहमति व्यक्त की कि आपको इस महत्वपूर्ण कैदी को इस आधार पर रिहा करने का जो अवसर मिल रहा है, जब कि आपने दमनकारी अधिकार प्राप्त कर लिए हैं, फिर यह अवसर आपको कभी नहीं मिल पाएगा। इब्बटसन की दलील के अनुसार यह शान्ति क्षणभगुर है और लाजपत राय को तब तक बन्दी रखना है जब तक यह क्षणभगुरता स्थायी नहीं बन जाती, फिर तो वह सदा के लिए ही माण्डले में रहेंगे। इससे अधिक बचकानापन और क्या हो सकता है।"*

यदि राजद्रोही बैठकों से सम्बद्ध कानून की सरकारी अधिकारों में वृद्धि से उनकी रिहाई का औचित्य है तो लाजपत राय का कभी भी निर्वासन नहीं होना चाहिए था। उन्होंने कभी भी असख्य सार्वजनिक सभाओं में भाषण नहीं किये थे, और मौर्ले को उनके भाषणों की दो से अधिक रिपोर्टें प्राप्त नहीं हो पाई, जिनमें उन्हें राजद्रोह की झलक दिखाई पड़ी हो, निश्चय ही यह मामला अदालत में निपटाया जा सकता था।

---

† सयद रजीवास्ती द्वारा उद्धृत—पृष्ठ 105

†† वही पृष्ठ 105

*मेरी काउटेस आफ मिण्टो इंडिया मिण्टो एड मौर्ले 1905–1910, पृ० 163

शायद मिण्टो को स्वय भी सदेह था, जब उन्होंने निर्वासन की स्वीकृति दी थी, तब कि स्थिति सचमुच ही इतनी गभीर हो गई थी, जितनी कि सोची गई थी। 15 मई 1907 को उन्होंने अपनी पत्नी को लिखा (जो उस समय इगलैंड में थी)

" यद्यपि निजी तौर पर मैंने कभी नही सोचा कि स्थिति सचमुच ही इतनी खतरनाक है, हालाकि पहले भी और अब भी नाजुक है।"†

नाजुक, हा—यह उनका अपना अन्दाजा था, परन्तु घबराहट वाले उपाय तो अन्दाजे (या अन्दाजा न होने) के कारण थे, जो "यूरोपियनो तथा यूरेशियनों" का था और उनके बारे मे उन्होंने उसी पत्र मे लिखा

"यूरोपियन तथा यूरेशियन हर स्थान से शस्त्र खरीद रहे हैं और मैने सुना है कि मैदानी क्षेत्रो मे सैनिक अपनी राइफलें अपने साथ बिस्तर मे लेकर सोते हैं और तोपची अपनी तोपो की ओटें अपनी बगल में रख कर। मैं आपको यह गप्प के तौर पर बता रहा हू, एक सच्ची गप्प के तौर पर, मेरा विश्वास है आपको वातावरण का अहसास करवाने के लिए ही यह कह रहा हू। गदर की स्मृति ने यूरोपियनो तथा स्वदेशियो दोनो को बहुत प्रभावित किया है, परन्तु के० और मैं, तथा अन्य लोग जिन्हें अच्छी तरह जानकारी है, उनका यह विचार नही कि जहा तक वर्तमान खतरे का प्रश्न है आन्दोलन इतना गहरा है।"††

ऐसा दिखाई पड़ता है कि निर्वासन के शीघ्र बाद ही मिण्टो को यह मालूम हो गया था कि लाजपत राय के विरुद्ध कोई ठोस प्रमाण नही है। लेडी मिण्टो को लिखे उसी पत्र मे, जिससे पहले उद्धरण दिया गया है, उन्होने लिखा है

"लाहौर मे पुलिस ने गिरफ्तारी मे गडबड कर दी, उन्होंने लाजपत राय के घर से एक भी कागज उठाने का प्रयत्न नही किया, उन्हे दूसरे व्यक्ति को भागने का अवसर नही देना चाहिए था, जैसा कि उन्होंने किया।"†††

हा, लाजपत राय के घर की तलाशी नही ली गई थी, परन्तु यह बात निश्चित रूप से स्वीकार कर लेनी चाहिए कि यदि तलाशी ली जाती, तो मिण्टो को सख्त निराशा का मुह देखना पडता। लाजपत राय ने "विद्रोह" करवाने का प्रयत्न नही किया था और उनके पास सही अर्थों मे खतरनाक दस्तावेज नही हो सकते थे—अफगानिस्तान के अमीर के पत्र या ऐसी ही चीजें।

---

†वही पृष्ठ 136
††वही पृष्ठ 136
†††वही पृष्ठ 137

क्या सचमुच ही उनके पास ऐसे काल्पनिक कागज थे ? यह स्पष्ट है कि उन्हें पूर्व चेतावनी दे दी गई थी और आसानी से ही वह इसके विरुद्ध तैयार हो सकते थे, ऐसा मिण्टो को विश्वास था। "लाजपत राय की गिरफ्तारी का वारण्ट जारी होने की, गिरफ्तारी होने से बहुत पहले सारे बाजार को जानकारी थी।"† परन्तु मिण्टो की, निराशा से यह सकेत मिलता है कि पुलिस ऐसे प्रमाण प्रस्तुत नहीं कर सकी, जिनमे लाजपत राय पर आरोप सिद्ध होता।

मिण्टो ने इब्बटसन पर, जो स्थानीय तौर पर उपस्थित व्यक्ति थे, निर्विवाद निर्भरता से आरम्भ किया। अजीत सिंह की गिरफ्तारी के वारण्ट को कार्यान्वित करने में विलम्ब—जब कि दोनो गिरफ्तारियो मे 25 दिन का अन्तर था—स्पष्ट तौर से इस बात को व्यक्त करता है कि पजाब के अधिकारियो को उनके पते ठिकाने का ज्ञान नही था और उनके गैरचौकस तथा अयोग्य तौर तरीका ने इस विश्वास को जोरदार झटका दिया। उन्हे यह समझने म अधिक देर नही लगी कि इब्बटसन कोई प्रमाण प्रस्तुत नही कर सकते और उन्होने अफवाहो तथा पुलिस की रिपोर्टों पर निर्भर किया, जिन पर अधिक विश्वास नही किया जा सकता था।

आम तौर पर यह विश्वास किया जाता है कि लाजपत राय की ओर से गोखले द्वारा किये गये प्रयत्नो ने कुछ हद तक सरकारी मनोवृत्ति को प्रभावित किया। आन्तरिक तौर पर इसमे कोई असभव बात नही। मिण्टो के बारे म कहा जाता था कि वह मिताचारी नेताओ से मैत्री की नीति पर चलते थे। गोखले ने लाजपत राय की रिहाई के लिए केवल समाचार-पत्रो द्वारा ही माग नही की, बल्कि उन्होने इस उद्देश्य के लिए अधिकारियो के साथ अपने निजी प्रभाव का भी इस्तमाल किया। विशेषतौर पर गोखले ने मिण्टो तथा डनलप स्मिथ (मिण्टो के निजी सचिव) के साथ बातचीत मे इस बात पर जोरदार विरोध व्यक्त किया कि लाजपत राय को अजीत सिंह के बराबर रखा जाये। उन्होने 10 जून 1907 को डनलप स्मिथ को लिखा

"लाजपत राय को अजीत सिंह के बराबर रखना, लाजपत राय के साथ घोर अन्याय है। पिछली फरवरी मे जब मैं लाहौर गया था, तो अजीत सिंह ने पहले ही लाजपत राय को कायर तथा सरकार का पिट्ठू कहकर उनकी आलोचना

†मोर्ले द्वारा मिण्टो को 21 मई 1907, मोर्ले-कागजात, सयद रजीवास्ती द्वारा उद्धृत लार्ड मिण्टो एण्ड दि इडियन नशनलिस्ट मूवमेंट 1905 1910, पृष्ठ 143

करनी आरम्भ कर दी थी, क्योंकि लाजपत राय अजीत सिंह के प्रचार के साथ कोई सम्बंध नहीं रखते थे।"*

"गोखले ने डनलप स्मिथ के साथ बात भी की। इस बातचीत का सार यह था कि गोखले ने लाजपत राय को शीघ्र रिहा करने का निवेदन किया—जहां तक अजीत सिंह की बात थी, वह चाहे जहन्नुम में सड़े। गोखले ने इस बात पर फिर जोर दिया कि लाजपत राय को उस शरारती अजीत सिंह के बराबर नहीं रखा जाना चाहिए था, जिसे भले ही अंडमान भेज दिया जाना चाहिए था।"**

संभव है कि लाजपत राय के निर्वासन के दौरान कीर हार्डी की भारत यात्रा ने भी कुछ सहायता की हो। उसने स्वयं भारतीय स्थिति का अध्ययन किया था और कुछ निष्कर्ष निकाले थे जो एक केबल में दिए गए थे, जो उसने 21 अक्तूबर को बड़ौदा से 'डेली एक्सप्रेस' लंदन को भेजा था

"मैं संयुक्त प्रांत व पंजाब का भ्रमण करके लौटा हूं। आपके पाठकों को पिछली बसंत ऋतु में पंजाब से मिली वह रिपोर्ट याद होगी, जिसमें कहा गया था कि वहां राजद्रोह, हत्या, आगजनी और अव्यवस्था फैली हुई है। अब जानकारी मिल गई है कि वह हद से अधिक जोश और ईर्ष्यापूर्ण पत्रकारिता की कल्पना थी।

"लाहौर और रावलपिण्डी के आसपास के जिलों में किराये में 25 प्रतिशत की वृद्धि, आबियाने में भारी वृद्धि तथा भूमि जब्त करने से सम्बद्ध कानून के कारण रोष था। आंदोलन उसके बाद हुआ। नहरी आबियाना वापस ले लिया गया और कालोनी बिल रद्द कर दिया गया। आंदोलन समाप्त हो गया। केवल यही राजद्रोही आंदोलन था। 55 प्रमुख व्यक्तियों को चार मास के लिए बिना जमानत जेल में रखा गया। मुकदमा चला और वे बरी हो गये, जज ने अभियोग पक्ष के गवाहों को कूटसाक्षी घोषित किया और प्रमाणों को गढ़े गये बताया। इतना कुछ तो था राजद्रोही आंदोलन के बारे में, जिसका मुझे कोई निशान भी नहीं मिला। स्वदेशी पुलिस का वेतन बहुत ही अल्प है, पुलिस कर्मचारी अज्ञानी और घूसखोर हैं। इसमें वृद्धि करते हैं बेशऊर दण्डनायक अधिकारी, सनसनीखेज खबरें फैलाने वाले, जो अधिकतर गड़बड़ के लिए जिम्मेदार हैं।

---

*सयद रज़ी वास्ती द्वारा उद्धृत-लार्ड मिण्टो एंड द इंडियन नेशनल मूवमेंट 1905 से 1910 पृष्ठ 10'

** सयद रज़ी वास्ती—वही, पृष्ठ 103

"सरकारी अधिकारियों को गलत जानकारी दी गई है। उनको लोगों से साथ सिर्फ सम्पर्क नहीं और वे पूरी तरह पुलिस की रिपोर्टों पर निर्भर करते हैं, जिन पर ऊपर की अदालतें व्यापक तौर पर विश्वास करती है" ।

इसी दौरान हुई एच० डब्ल्यू० नेविसन की भारत-यात्रा की चर्चा भी यहां कर दी जानी चाहिए। उसने 'डेली क्रानिकल', 'द मान्चेस्टर गार्डियन' तथा 'ग्लासगो हैरल्ड' को समाचार भेजे, उनमे भी सरकार की बडी आलोचना की गई'।

निर्वासन के बाद पंजाब में एक प्रकार की शान्ति अवश्य थी। इस शान्ति के कारणों में इम्पीरियल के कालोनाईजेशन बिल का रद्द किया जाना, जिसे मिण्टो ने गुण दोष के आधार पर रद्द करना उचित समझा, तथा रावलपिण्डी के नेताओं की बाइज्जत रिहाई, तथा यह तथ्य कि पंजाब में मनाही की घोषणा कर दी गई थी। सार्वजनिक सभाएं करने की आज्ञा नहीं थी। लाजपत राय के निर्वासन के विरुद्ध रोष व्यक्त करने के लिए दिल्ली में एक बैठक की गई थी और उसके बाद वहां भी "प्रतिबंध" लगा दिया गया था। पूर्वी बंगाल में भी मनाही कर दी गई थी। वहां कलेक्टर की अनुमति से एक सम्मेलन फरीदपुर में आयोजित करने का कार्यक्रम था, परन्तु यह सम्मेलन करने का विचार छोड़ दिया गया, क्योंकि कलेक्टर ने लाजपत राय के बारे में एक प्रस्ताव रखने पर आपत्ति की थी।

"शान्ति' का केवल यही अर्थ था कि सार्वजनिक सभाओं पर रोक लगा दी गई थी। नहीं तो, हम पहले ही देख चुके हैं कि निर्वासन के चार मास पश्चात् भी, अगस्त के अन्त में मिण्टो स्थिति के और अधिक गंभीर होने के बारे में रिपोर्ट भेज रहे थे। और पुलिस की सूचनाओं के अनुसार सार्वजनिक सभाएं न होने की कमी, पंजाब और उत्तर पश्चिमी प्रांत में हुई निजी बैठकों से पूरी हो गई थी—ये अनौपचारिक सभाएं होती थी, ये केवल पुरुषों की ही नहीं अक्सर महिलाओं की भी होती थी, ये निर्वासन के विरुद्ध रोष से उत्पन्न हुई थी, इनमें आंदोलन तथा संगठन के लिए धन इकट्ठा किया जाता था और कभी कभार इनका उद्देश्य बंगाल और महाराष्ट्र में काम करना भी होता था। ये सभी, जिनके बारे में पूरी जानकारी उपलब्ध नहीं थी, संदेह बढाती थी और अधिकारियों का सिर दर्द भी।

रिहाई के निर्णय से गोखले और कीर हार्डी का कोई संबंध संभव हो सकता है, परन्तु इस बात पर जोर देना अनुदेयता होगी कि मिण्टो तथा मोर्ले नजर

बन्दी के कारण हुए घोर अन्याय के प्रति बिल्कुल अनभिज्ञ थे। जैसा मिण्टो ने कहा है, उन्हें लाजपत राय को "सामान्य न्याय" की खातिर रिहा करना पड़ा। छ मास की अवधि में वह लेशमात्र भी प्रमाण नहीं जुटा पाये, जिनसे यह सिद्ध हो जाए कि किसी गुप्त काय मे उनका दखल था, इसके विपरीत ये प्रमाण मिले थे कि मुखबिर अधिकारियो को गुमराह करते रहे हैं और ये मुखबिर अधिकारियो की घबराहट तथा भोलेपन का लाभ ले रहे हैं। अधिनियम के अधीन इस मामले पर छ मास के बाद फिर से विचार करना था और जब मोर्ले ने कलकत्ता को अपने पत्र मे रिहाई पर जोर दिया, तो उस समय छठा मास चल रहा था।

सरकारी तौर पर गोपनीय रखने के प्रयत्न के बावजूद समाचार 12 नवम्बर को ही फैल गया था। 'द स्टेट्समैन' के रगून वाले पत्रकार ने तार द्वारा ब्यौरा भेज दिया था और उसे सही मान लिया गया था।

घर की ओर यह यात्रा छ मास पहले की माडले की यात्रा के बिलकुल विपरीत सिलसिला था। इसमे अन्तर यह था कि सभी ओर अधिकारी अब अधिक शिष्टाचार दिखा रहे थे और रसद की उपलब्धि तो बहुत थी, यहा तक कि खाद्य-पदार्थ फिजूल जाते थे। गोपनीयता के वही सरकारी प्रयत्न जारी रहे, परन्तु फिर भी लोगो को किसी न किसी तरह से जानकारी मिल ही जाती थी और जहा कही भी यह 'बन्द' गाडी ठहरती जन समूह एकत्र हो जाता। गाडी ठहरने वाले सभी स्टेशनो पर खिडकिया तथा द्वार बन्द रखने का सिलसिला पहले जैसा ही था। लाजपत राय और अजीत सिंह एक दूसरे को न देख सकें, विशेषकर स्टीमर पर यात्रा के दौरान। इसके कारण कई बार हास्यास्पद स्थिति उत्पन्न हो गई। कैदियो को रगून की उपनगरीय बस्ती के उसी स्टेशन 'पूजौनडौंग' पर उतारा गया, जहा से उन्हें माडले के लिए रेलगाडी पर सवार किया गया था। उन्हें उसी घाट से जहाज पर सवार कराया गया, जहा छ मास पूर्व उन्हें माडले जाते समय उतारा गया था। फिर वह एस० एस० 'गाइड' मे सवार हुए। रगून से यह 12 तारीख को सबेरे 7 10 पर चला और 15 तारीख सायकाल इसने हुगली के दहाने मे प्रवेश किया और सागर-प्रकाश स्तभ के दूसरी ओर लगर डाल दिया। अगले दिन प्रात 5 30 पर उसने लगर उठाया और 8 30 के करीब स्टीमर डायमण्ड हार्बर से गुजरा, वापसी पर भी सागर मे तूफान था, यद्यपि अन्तिम दिन खुशगवार था। मामले को गोपनीय रखने के कारण अनुचित परिभ्रमण करना पडा। प्रात 10 बजे स्टीमर ने कलकत्ता से 40–50 किलोमीटर दूर रायपुर म लगर डाल दिया।

वहां ये लोग दोपहर बाद 4 30 तक रहे । सूर्यास्त के करीब वह बजबज के निकट उतरे—"एक बार फिर मैं भारत भूमि पर था ।" विशेष रेलगाडी तैयार थी और उसे एक अलग लाइन पर खडा किया गया था, ताकि लोगो को दिखाई न पडे । अब बगाल पुलिस के एक इस्पैक्टर ने पहरेदारी का दायित्व सभाल लिया था । दोनो बंदियो को अलग रखा गया था । एक को प्रथम दर्जे म और दूसरे को द्वितीय दर्जे मे । रेलगाडी चक्करदार मार्ग से रवाना हुई, जो तदथ मार्ग था । बिलासपुर से यह ब्राच-लाइन द्वारा कटनी गई, वहा से उसने दक्षिण-पजाब रेलवे का मार्ग लिया और भटिंडा के रास्ते लाहौर गई । 'गाडी झूठे नाम से चलाई जा रही थी और इस बात का ध्यान रखा गया था कि प्लेट फार्म पर भारतीय न रहें ।"

पुलिस के पहरे के अतिरिक्त बगाल—नागपुर रेलवे के ट्रैफिक मैनेजर क्लार्क तथा सहायक ट्रैफिक मैनेजर भी कलकत्ता से उनके साथ गये । "क्लार्क ने अपने सैलून मे मुझे रात का भोज दिया और वह बहुत ही विनम्र तथा दयालु थे ।" अधिकतर उन्हें डिब्बाबन्द पदार्थों पर निर्भर करना पडा, परन्तु क्लार्क ने इस बात को आश्वस्त किया कि सभी कुछ पर्याप्त हो और सुविधाजनक रहे ।

वापसी-यात्रा पर साज-सामान उपलब्ध कराने म काफी उदारता दिखाई गई, परन्तु बहुत सी कीमती वस्तुओ को लालाजी ने छुआ तक नही, क्योकि वह इसे केवल सार्वजनिक धन का अपव्यय समझते थे ।

आखिर यात्रा समाप्त हुई । वह लाहौर के मुख्य रलवे स्टेशन पर नही, बल्कि मियामीर वैस्ट (अब लाहौर छावनी) रेलवे स्टेशन पर 18 नवबर 1907 का प्रात 5 30 पर उतरे । तुरत ही लालाजी और सरदार अजीत सिंह का एक सैलून मे ले जाया गया, जहा सैट्रल जेल लाहौर के अधीक्षक मेजर सी० एच० बासले ने पहले उन्हें माडले जेल मे लाहौर जेल मे तब्दील करने तथा उसके पश्चात् रिहा करने का आदेश पढकर सुनाया । यह कारवाई समाप्त होने पर एक मोटर गाडी उन्हे दे दी गई और एक टमटम सामान के लिए दी गई । लाहौर जिले का पुलिस अधीक्षक रण्डेल उनकी गाडी के आगे एक अन्य गाडी म चलता गया । जब लाजपत राय अपने बगले के आगन म प्रवेश कर गये, तो वह चला गया ।

इस प्रकार छ माम नौ दिन की अनुपस्थिति के बाद वह घर लौटे थे ।

त्रिवेणी बहती रही

30. निर्वासन का परिणाम

माडले से लाजपत राय उन दिनो की भारतीय राजनीति के नायक बनकर लौटे। निर्वासन शीघ्र ही उनके जीवन की विशेष घटना बन गया। उनको ख्याति की ओर बढाने मे हम देखते है पहली महत्वपूर्ण घटना उनका वह भाषण था जो उन्होने स्वामी दयानद सरस्वती के निधन पर दिया था। तब उनकी उम्र बीस वर्ष से कुछ ही ऊपर थी। इसने सिद्ध कर दिया कि सार्वजनिक वक्ता के तौर पर वह जादू कर सकते है और इस प्रकार वह सीधे ही आर्य समाज के आतरिक क्षेत्र मे प्रवेश कर गये। दूसरी महत्वपूर्ण घटना के लिए हम सर सैयद अहमद खा को लिखे गए "खुले पत्रो" की ओर ध्यान देना होगा। इनके कारण उनका नाम और चर्चा समाज और पजाब से बाहर जा पहुची, इसलिये जब वह इन पत्रो के बाद काग्रेस अधिवेशन मे पहुचे, तो उन्होने देखा कि वह पहले ही ख्याति प्राप्त कर चुके है। उनके बनारस भाषण का सदेश, जिसमे उन्होने आत्मनिर्भर और आग्रही राष्ट्रवाद के लिए आहवान किया था, काग्रेस के तथा उनके अपने जीवन मे एक और महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना है। नई शक्तियो ने एकदम लोगो का ध्यान आकर्षित कर लिया और प्रचलित राजनीतिक मिलाचार घटिया वकालत, भिखमगापन, यथार्थवादी लगा, जो उनके भाषण की उपज नही था, परन्तु ऐसा ही दिखाता था। उनका आगमन, काग्रेस की नीरस कारवाइयो मे, जो शात शैली मे और निश्चित होती थी, एक परिवर्तन था। स्वय लाजपत राय के लिए यह इग्लैंड मे हुए अनुभव तथा मानवीय मामलो मे उस समय कार्यरत शक्तियो का, विशेषतौर पर पूर्व मे, परिणाम था जो जोरदार आवाज के रूप मे व्यक्त हुआ। उनका निर्वासन चौथी महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना थी, यह पिछली ऐसी घटना का शिखर बिन्दु थी। मिताचारी नेताओ ने परिष्कृत भाषण युवा दिलो को छूते तो थे परन्तु स्वराज, स्वदेशी और बहिष्कार की नई शिक्षा को अपनाने के लिए वे अभी सहमत न थे। काग्रेस पर चाहे किसी का भी नियत्रण था, परन्तु इस बात मे कोई सदेह नही था कि नई पार्टी ने लोगो का ध्यान आकर्षित किया था। नये सदेश से जनसमूह के दिल की धडकने तेज हो गइ—उस जनसमूह की, जिस पर मिताचारी विचारधारा वाले नेताओ के नपेतुले शब्दो वाले भाषणो ने कोई काट नही की थी। नायक पूजा ने शीघ्र ही नई त्रिवेणी —लाल, बाल, पाल—के साथ स्वर सामजस्य कर लिया—ये ये

लाला लाजपत राय, बाल गगाधर तिलक और विपिन चन्द्र पाल। ये नेता पजाब, महाराष्ट्र और बगाल से थे, जो नये आन्दोलन के तीन महत्वपूर्ण गढ थे। इन तीनो नेताओ की लोकप्रिय तस्वीरे असख्य घरो को सजा रही थी और इस प्रकार अपने राजनीतिक समर्थन का परिचय दे रही थी। उस समय जो पीढी बडी हो रही थी और जिसने आगे चलकर भारत की स्वतन्त्रता के लिए बलिदान दिये, उन्हें लाल, बाल तथा पाल अब भी याद होगे। तीन चेहरो वाला प्रकाश-स्तभ जिसने उन्हें माग तथा ध्येय की पहली स्पष्ट झलक दिखलाई। "वन्दे मातरम्" तथा लाल-बाल-पाल के लोकप्रिय चित्रो ने उनकी युवा आखें एक नये ससार मे खोल दी जिसमे "सत्याग्रह" तथा "सविनय अवज्ञा" के बाद तर्कसगत और स्वाभाविक कदम 1907 का स्वराज, स्वदेशी तथा बहिष्कार का उपदेश था।

"बाल" तथा "पाल" दलगत वफादारी के लिये पूर्णतया निश्चित थे, परन्तु "लाल" को तो उपदेश मे विश्वास था, मठ मे नही, इसके अतिरिक्त वह गोखले से अपनी व्यक्तिगत वफादारी छोडने को तैयार न थे, जो विरोधी मत के प्रमुख थे, परन्तु वह कट्टर पक्षधर थे या नही, उनकी पिछली शानदार सेवा तथा बलिदानो, उनके महान चरित्र और बेदाग वफादारी तथा इसके साथ इस सार्वजनिक विश्वास ने कि वह पूर्णतया स्वच्छ और बेदाग है और उनका उन गुप्त तथा बुरी योजनाओ के साथ कोई वास्ता नही, जो उनके शत्रु उनके नाम के साथ जोडते है, उनके निर्वासन को शहीदो का दर्जा दे दिया। इसके कारण नये आन्दोलन मे रुचि रखने वाले सभी लोगो तथा आन्दोलन के समर्थको के दिलो मे उनका सम्मान एकदम बहुत बढ गया, और कुछ ही लोग ऐसे थे जिन्हे राजनीतिक सूझबूझ थी और जिनकी आन्दोलन के साथ सहानुभूति न थी। इसके अतिरिक्त विदेशी सत्ता के विरुद्ध उग्रवादियो की नाराजगी सदा के लिए और गहरी तथा गभीर बना दी गई, इसने उग्रवादियो को और अधिक उग्र बना दिया और जो लोग जोशीले तथा सिरफिरे थे, उनकी भावनाए और उत्तेजित कर दी। जब ऐसा हुआ तो यह स्वाभाविक था कि नियत्रण और प्रभाव रखने वाली शक्तिया दुर्बल होती गईं। इसका विश्लेषण करते हुए मोटे तौर पर तथा बिलकुल निष्पक्ष तौर पर निर्वासन के बाद की घटनाओ के बारे मे लाजपत राय ने 'यग इडिया'* मे लिखा *

*पृष्ठ 155-56

"मई 1907 मे लाजपत राय के निर्वासन ने विचार और व्यवहार की सारी धारा ही बदल दी। राष्ट्रवादियों ने निश्चय किया कि सत्याग्रह के आदोलन के लिये गुप्त प्रचार तथा बल का उत्तर बल से देने की आवश्यकता है। आदरणीय श्री जी० के० गोखले के शब्दो मे, जो उन्होंने लाजपत राय के निर्वासन के बाद गवर्नर जनरल की परिषद मे भाषण देते हुए कहे कि लाजपत राय ऐसे व्यक्ति है जिन्हें उग्र राष्ट्रवादी अपना व्यक्ति समझते हैं और मिताचारी राष्ट्रवादी भी सम्मान देते थे और जिन्हें आम लोग उनकी दानवीरता तथा शक्ति गति विधियो के लिये चाहते ह। इनकी अचानक गिरफ्तारी न, वह भी बिना मुकदमा चलाए, बिना आरोप और बिना सूचना के युवा राष्ट्रवादियो का जनून की सीमा पर पहुचा दिया। यहा तक कि राष्ट्रवादियो मे, जो गभीर तथा विचारवान भी थे, वे भी हताश थे।

परन्तु देश भर मे एग्लो इडियन समाचार पत्र खुशिया मना रहे थे। प्रमुख अर्द्ध-सरकारी समाचार-पत्र ने जो लाजपत राय के मुख्यालय, लाहौर से प्रकाशित होता था, उन्हें गहरे क्रांतिकारी आदोलन का नेता बताया, जिसकी प्रत्येक जानकारी उनके हाथो से गुजरती थी। बताया गया था कि "एक लाख आततायी" उनके साथ हैं। कलकत्ता से प्रकाशित होने वाले 'द इग्लिश मैन' ने उन पर आरोप लगाया कि उन्होने भारतीय सेना की वफादारी मे गडबडी की और अफगानिस्तान के सम्राट को भारत पर आक्रमण करने के लिए आमन्त्रित किया। निर्वासन के जुल्म के साथ अपमान करने से, जैसा कि वह करते ही थे, सारे देश मे नाराजगी की लहर दौड गई। विचारधारा के सारे मतभेद भुला दिए गये और सारा देश प्रतिवाद मे शामिल हो गया। परन्तु राष्ट्रवादियो के उग्र गुट ने अगला कदम उठाने का निर्णय किया। उन्होने बल प्रयोग का निर्णय किया और वे स्थापित तानाशाही के विरुद्ध बम, रिवाल्वर तथा छापामार लडाई के बारे मे सोचने लगे। बडी उम्र के लोग, यद्यपि उन्हें सहानुभूति थी, शारीरिक शक्ति इस्तेमाल करने वाले आदोलन मे भाग लेने के लिए तयार नही थे, न ही वे यह मार्ग अपनाए जाने को अपनी स्वीकृति देते थे।"

विश्लेषण के साथ युक्ति-युक्त घटना चक्र का तिथिवार ब्यौरा भी दिया गया

"यह सभव है कि 1906 मे बगाल मे किसी प्रकार का गुप्त सगठन था, परन्तु उनके कार्यक्रम मे मई 1907 से पूर्व बल प्रयोग का दखल नही था, अर्थात लाजपत राय के निर्वासन के बाद तक। इसका निर्णय निर्वासन ने किया। फिर

31. सूरत का विच्छेद

'जिस प्रकार गेटे ने वाल्मी की लड़ाई में कहा था, मैं भी वह समझता था। आज का दिन नये युग का प्रारंभ है और तुम कह सकते हो कि तुम इस अवसर पर उपस्थित थे।"*

"लालाजी केंद्रीय व्यक्ति थे, जिनके चारों ओर 1907 की घटनाएं घूमती थीं।"**

"इतिहास में वे बातें कभी-कभार ही अंकित होती हैं जो निर्णायक तो होती हैं, परन्तु पर्दे के पीछे होती हैं, इसमें तो केवल वही बातें अंकित होती हैं, जो पर्दे के सामने होती हैं। बहुत कम लोग जानते हैं कि यह मैं ही था, जिसने तिलक से सलाह किये बिना आदेश दिया था, जो कांग्रेस के विभाजन का कारण बना और जिसके कारण नये मिताचारी सम्मेलन में शामिल होने से इन्कार कर दिया, यही दो निर्णायक घटनाएं थीं, जो सूरत में घटीं।"—श्री अरविंद, अपने बारे में।

अभी उनके लिए एक और परीक्षा शेष थी—अधिक बड़ी परीक्षा शायद उससे भी बड़ी जिसमें से निकलकर वह राष्ट्रीय नायक बने थे। अपनी गिरफ्तारी से पहले ही वह देख रहे थे कि दोनों गुटों के बीच खाई बढ़ रही थी—मिताचारी विचारधारा वाले नेताओं तथा उन लोगों के बीच जिनकी राजनीति में अधिक शक्ति थी और जो अपने आपको राष्ट्रवादी कहते थे, अक्सर उन्हें उग्रवादी, तिलक पंथी या नई पार्टी के कहा जाता था। वैसे उन्हें वामपंथी कहना अधिक उचित होगा, परन्तु 1907 में भारतीय राजनीति की विचारधारा में अभी 'दक्षिण-पंथी" और 'वाम पंथी" की धारणा नहीं चली थी, परन्तु यदि इस शक्तिशाली गुट के लिये बढ़ने फूलने के लिए शकुन अच्छे थे। इस बात में काफी संदेह था कि इनके अभाव में लाजपत राय राजनीति की ओर या इंडियन नेशनल कांग्रेस की ओर अधिक आकृष्ट हुए होते। कांग्रेस का प्रारंभिक दौर उन "जोश भरने" में बिल्कुल असफल रहा था, और उस स्थिति में मैजिनी

---

*हेनरी डब्ल्यू० नेविनसन (न्यू स्पिरिट इन इंडिया—पृष्ठ 258)

**पट्टाभि सीता रामय्या—हिस्ट्री आफ इंडियन नेशनल कांग्रेस भाग I, पृष्ठ 10?।

भी पहली गाली दिसम्बर 1907 तक नही चलाई गई और पहला बम अप्रैल,-मई 1908 से पूर्व नही फेंका गया। दिसम्बर 1907 मे सूरत म हुए विच्छेद न राष्ट्रवादियो को अटल रूप से दो दलो मे बाट दिया और युवा गुट का बल प्रयोग के कार्यक्रम मे दृढ कर दिया।"

"बल प्रयोग" के बारे मे आगे की टिप्पणी मे हम यहा स्मरण करवाते है कि जब तिलक को लाजपत राय के निर्वासन का समाचार मिला, बताया जाता है कि उनकी सहज भाव प्रतिक्रिया थी—"क्या मिण्टो जीवित है ?" स्वय तिलक न केवल सार्वजनिक आन्दोलन का शस्त्र ही इस्तेमाल किया। परन्तु "युवा पार्टी" न स्वाभाविक तौर पर प्रतिक्रिया दिखाते हुए अन्य साधनो के बारे मे सोचा। सैनापति बापट ने, जो तिलक के बहुत निकट था और जिसे यह श्रेय जाता है कि वह यूरोप से बम तैयार करने की विधि लाया था, इस बात की पुष्टि की है कि लाजपत राय का निर्वासन एक निर्णायक घटना थी।

निर्वासित लाजपत राय न एग्लो-इडियन मन को भी काफी अधिक प्रभावित किया, जिस प्रकार भारतीय उग्रवादियो को प्रभावित किया था—अलबत्ता, यह प्रभाव विभिन्न दिशाओ मे था। यह तथ्य कि वह बहुत उच्च चरित्र के स्वामी थे, जिसे उच्च-स्तरीय व्यक्तियो ने भी स्वीकार किया है और इस बात का लेशमात्र भी प्रमाण नही था जिससे उस दुष्टतापूर्ण सदेह की पुष्टि हो सके जिसके कारण उन्हें सरकारी मुहर वाले आदेश के अधीन गुप्त रूप से उडा लिया गया था, इन सबसे उन लोगो के मन पर बहुत दबाव पडा था जिनके "गौरव" न उन्हें यह दिखाते रहने पर मजबूर किया था कि वह अचूक हैं या गलत नही हो सकते। यदि इस वार्ता के अन्त मे आप इस स्वच्छतम और अति निष्कपट व्यक्ति के बारे मे, जो शत्रु तथा मित्र के लिए समान था, ब्रिटिश अधिकारियो द्वारा बार बार यह सदेह व्यक्त करते हुए पाए कि वह किसी न किसी प्रकार से किसी गहरे षडयन्त्र और महत्वपूर्ण गुप्त कार्यक्रम से सम्बद्ध है तो यह केवल एग्लो इडियन मन की सनक है, जो 1907 की घटना के लिए जिम्मेदार है। यदि उन्हें तुच्छ सा प्रमाण भी मिल जाता जिससे वह अपने अन्याय को उचित ठहरा पाते तो यह घटना न होती। या फिर वे इतना साहस जुटा पाते कि यह स्वीकार कर सके कि उन्हें गुमराह किया गया है, तो उनके मन से वह तत्व निकल जाता जो बार बार उनके अचेतन मन मे दुराग्रह से उभरते रहते थे, तब सभवत इसका परिणाम बहुत ही भिन्न होता।

31. सूरत का विच्छेद

"जिस प्रकार गेटे ने वाल्मी की लड़ाई में कहा था, मैं भी कह सकता था। आज का दिन नये युग का प्रारंभ है और तुम कह सकते हो कि तुम इस अवसर पर उपस्थित थे।"*

"लालाजी केंद्रीय व्यक्ति थे, जिनके चारों ओर 1907 की घटनाएं घूमती थी।"**

"इतिहास में वे बातें कभी-कभार ही अंकित होती हैं जो निर्णायक तो होती हैं, परन्तु पर्दे के पीछे होती हैं, इसमें तो केवल वही बातें अंकित होती हैं जो पर्दे के सामने होती हैं। बहुत कम लोग जानते हैं कि यह मैं ही था जिसने तिलक से सलाह किये बिना आदेश दिया था, जो कांग्रेस के विभाजन का कारण बना और जिसके कारण नये मिताचारी सम्मेलन में शामिल होने से इन्कार कर दिया, यही दो निर्णायक घटनाएं थी, जो सूरत में घटी।"—श्री अरविंद अपने बारे में।

अभी उनके लिए एक और परीक्षा शेष थी—अधिक बड़ी परीक्षा शायद उससे भी बड़ी जिसमें से निकलकर वह राष्ट्रीय नायक बने थे। अपनी गिरफ्तारी से पहले ही वह देख रहे थे कि दोनों गुटों के बीच खाई बढ़ रही थी—मिताचारी विचारधारा वाले नेताओं तथा उन लोगों के बीच जिनकी राजनीति में अधिक शक्ति थी और जो अपने आपको राष्ट्रवादी कहते थे, अक्सर उन्हें उग्रवादी, तिलक पंथी या नई पार्टी के कहा जाता था। वैसे उन्हें वामपंथी कहना अधिक उचित होगा, परन्तु 1907 में भारतीय राजनीति की विचारधारा में अभी "दक्षिण पंथी" और "वाम पंथी" की धारणा नहीं चली थी, परन्तु यदि इस शक्तिशाली गुट के लिये बढ़ने फूलने के लिए शकुन अच्छे थे। इस बात में काफी संदेह था कि इनके अभाव में लाजपत राय राजनीति की ओर या इंडियन नेशनल कांग्रेस की ओर अधिक आकृष्ट हुए होते। कांग्रेस का प्रारंभिक दौर उन जोश "भरने" में बिल्कुल असफल रहा था, और उस स्थिति में मैजिनी

---

*हेनरी डब्ल्यू० नविनसन (द न्यू स्पिरिट इन इंडिया—पृष्ठ 258)

**पट्टाभि सीतारामय्या—हिस्ट्री आफ इंडियन नेशनल कांग्रेस, भाग I, पृष्ठ 102।

तथा गैरिबाल्डी पर उर्दू मे लिखी गई उनकी पुस्तका ने राष्ट्रीय जागरण मे काग्रेस के मच के मुकाबले अधिक योगदान किया था। परन्तु 1904 05 से उन्होंने वातावरण मे परिवतन आता भाप लिया था और उ होने इस परिवतन के प्रति बडी तेजी से प्रतिक्रिया दिखाई। बनारस काग्रेस मे उन्होंने जो भाषण दिया उसने वामपथी गुट की अभिव्यक्ति मे निश्चय ही योगदान किया। परन्तु जैसा कि हमने देखा है बनारस मे भी उ होंने इस बात का पूरा ध्यान रखा कि व्यक्तिगत रूप से गोखले को नाराज न करे। उनका वह बहुत आदर करते थे। गोखले के प्रति इस सम्मान भावना के कारण ही समझौते का फार्मूला सभव हो सका, जिसके कारण काग्रेस पण्डाल मे जो "तमाशे" अटल महसूस हो रहे थे, वे टल गये, यद्यपि उन्होंने तिलक का पक्ष लिया था। पर समझौते से उ होंने निश्चय ही गोखले को आभारी बनाया। जब उ होंने मध्यस्थ का काय भी सफलतापूवक किया तब भी उनका अपना मत सामान्य तौर पर तिलक के मत के समान ही माना जाता था।

लाजपत राय को नवबर मे रिहा किया गया था और अगले ही मास यह स्पष्ट हो गया था कि काग्रेस के अगले अधिवेशन मे वाम तथा दक्षिण पथी गुटो मे सघप होगा। यद्यपि लाजपत राय साहसी नीति के पक्ष मे थे, फिर भी वह अन्य लोगो के मुकाबले इस बात के लिए अधिक चिन्तातुर थे कि विच्छेद टाला जा सके। सभवत सतुलन बनाये रखने के बारे मे सोचते हुए उन्होंने अधिक तेजी के साथ होने वाली हानिया के बारे मे सोचा। यह भी सभव है कि गोखले के प्रति व्यक्तिगत आदर के कारण (शायद कुछ सीमा तक मालवीयजी के लिए भी हो) वह कुछ रुके, कुछ हिचकिचाये। कारण चाहे कुछ भी हो, यह एक तथ्य है कि वह पूणतया पार्टी के व्यक्ति बनने को तैयार नही थे।

सामान्य लोग, जिन्हें राजनीति की कुछ सूझ थी, उन्हें तिलक के गुट का आदमी समझते थे, विशेषकर उनके निर्वासन के बाद और आशा करते थे कि वह उसी धारणा के अनुसार कारवाई करेंगे। उन्होंने लाल, बाल, पाल की नई त्रिमूर्ति को अटूट तौर पर अपन राजनीतिक मंदिर मे स्थापित कर लिया था।

इसी प्रकार काग्रेस के अन्दर राष्ट्रवादिया (या वाम पथिया) का विचार था, जो उन्हें काग्रेस के अध्यक्ष पद के लिए अपना उम्मीदवार खडा करना चाहते थे।

नकारात्मक ढग से मिताचारियो ने भी उन्हें पार्टी का लेबल दे दिया, उस हद तक कि उन्होंने यह बात स्पष्ट कर दी कि वे उन्हें अध्यक्ष नही बनाएगे।

यह सत्य है कि गोखले के मन मे उनके प्रति सही अर्थों मे सम्मान था। बहुत से लोगो के लिये यह एक पहेली ही थी कि लाजपत राय एक ही समय मे तिलक और गोखले के मित्र तथा प्रशसक कैसे हो सकते हैं। सामान्य लोगो का मन चाह तिलक के बन्दी बनाए जाने के लिए आशिक तौर पर उन्हें जिम्मेदार ठहराता था, परन्तु लाजपत राय की रिहाई के प्रयत्नो का श्रेय गोखले का देता था, चाहे यह उनके उचित भाग से भी अधिक था। तब भी यह मामला उस समय बिल्कुल स्पष्ट था, जब प्रश्न मिताचारी और उग्रवादियो में आपसी विरोध का था। लाजपत राय गोखले के लिये उसी राजनीति मत के समर्थक नही थे, जिसके गोखले स्वय थे। इसलिये उनके साथ, उसके अनुसार ही व्यवहार किया जाना था।

इस प्रकार जनमत, तिलक समर्थको तथा मध्यमार्गियो—सभी के लिए लाजपत राय कट्टर वाम पथी थे और फिर भी लाजपत राय स्वय यह भूमिका अपनाने के लिए सहमत नही थे, यदि इसका अर्थ विच्छेद था। उन्होने यही पर सीमा निर्धारित कर दी। वह राष्ट्र की ओर से उपहार के रूप मे सर्वोच्च सम्मान लेने को भी तयार नही थे, यदि यह सम्मान लेने अथवा स्वीकार किये जाने से गोखले अप्रसन्न होते और काग्रेस लडने वाले दो गुटो मे बटती। वह बडी आसानी से प्रतीक्षा कर सकते थे।

वह निश्चय ही प्रतीक्षा कर सकते थे। परन्तु उनका इन्कार वाम पथी गुट की सभावनाओ पर क्या प्रभाव डालेगा? शायद इस पक्ष का वह कोई अधिक महत्व नही देते थे। शायद कट्टरपथी होते हुए भी वह एकता को बहुत मूल्यवान समझते थे। उन्होंने यह खतरा मोल लिया, चाहे इससे उनके मित्र महसूस कर कि वह उन्हें छोड गये हैं। निस्सन्देह यह पलायन ब्राउनिंग के "लौस्ट लीडर' से भिन्न था—'एक सम्मान या पद के लिए वह हमे छोड गये हैं'। क्योंकि एकमात्र 'रिबन' जिसकी लाजपत राय आशा कर सकते थे उन लोगो की ओर से उपहार था, जिन्हें वह "छोडते हुए" समझे जाते थे। उन्होने रिबन से इन्कार कर दिया और उन्हें छोड गये। ब्यौरे तथा विश्लेषणात्मक टिप्पणी न देते हुए सूरत-अधिवेशन की पूर्वसध्या पर जो तथ्य थे, वे लाजपत राय ने कई वर्ष बाद लिखे

"हमे नवम्बर मे रिहा किया गया और मेरे भारत लौटने के तुरन्त बाद श्री तिलक ने आगामी कांग्रेस अधिवेशन के लिए मेरे नाम का प्रस्ताव कर दिया। मेरी मिताचारिया ने विरोध किया और मैंने खड़े होने से इन्कार कर दिया। इसलिए यह इस कारवाई से गोखले खुश हुए, परन्तु तिलक नाराज हो गये। बताया गया कि खुले अधिवेशन मे कांग्रेस के अध्यक्ष पद के लिए तिलक के नाम का विधिवत प्रस्ताव किया जाएगा, जो रासबिहारी घोष के मुकाबले मे होगा, जिसे स्वागत समिति ने चुना था।"

परन्तु सूरत मे वास्तविक घटनाओ ने बिल्कुल भिन्न रूप लिया और जब आप इसके ब्यौरे मे जायें, तो पता चलेगा कि तथ्यो के बारे मे भी विभेद था, विशेषकर प्रारम्भिक बातो के बारे म, जिसका दोनो गुटो के अलग-अलग दावो मे पता चलता है।

सूरत अधिवेशन के बाद "उग्रवादियो" के विवरण के अनुसार (जो अधिकृत विवरण के उत्तर मे जारी किया गया था) जो तिलक, खापर्डे, अरविन्द घोष, एच० मुखर्जी और बी० सी० चटर्जी के हस्ताक्षरो से जारी किया गया, गोखले पर आरोप लगाया गया कि उन्होने लाजपत राय का नामाकन पत्र रद्द किया था। गोखले पर आरोप लगाया गया कि उन्होने लाजपत राय का नामाकन-पत्र इस आधार पर अस्वीकार किया था कि "हम इस स्थिति मे सरकार की अवज्ञा नही कर सकते, अधिकारी हमारे आन्दोलन को चुटकियो मे मसल कर रख देंगे।" स्वाभाविक तौर पर इसे जनता के अहसास का अपमान समझा गया तथा डाक्टर घोष को देश के विभिन्न भागो से कम से कम सौ तारें मिली होंगी, जिनमे आग्रह किया गया था कि वह उदारता मे लाजपत राय के पक्ष म चुनाव से हट जायें। वक्तव्य मे आगे कहा गया था कि "यद्यपि लाजपत राय ने सार्वजनिक तौर पर इस सम्मान से इन्कार कर दिया है, इससे वे लोग सतुष्ट नही होते जो उपयुक्त आधार पर कांग्रेस अध्यक्ष के चुनाव के सिद्धात पर विचार करना चाहते थे, क्योकि उनका विश्वास था कि सरकार की दमनकारी नीतियो के विरुद्ध रोष व्यक्त करने का सबसे असरदार ढग यही होगा कि अध्यक्ष-पद के लिए लाजपत राय को चुन लिया जाये।'

गोखले ने विरोध व्यक्त करते हुए कहा कि यह विवरण "गैर ईमानदारी से निजी बातचीत के कुछ वाक्यो को उसके सदभ से अलग करके और तोड मरोड कर पेश किये गये हैं।' उन्होने कहा कि यह वार्तालाप सूरत के उग्रवादी भद्र

पुरुष के साथ, स्वागत समिति की 24 नवम्बर की बैठक से पहले हुई बातचीत में हुआ था और उन्होंने उस भद्र पुरुष को बता दिया था कि अध्यक्ष पद के लिए लाला लाजपत राय का नाम लाना बुद्धिमत्ता नहीं होगी, क्योंकि इतनी देर की स्थिति में "सूरत में कार्यकर्ताओं में किसी भी प्रकार का विभाजन बहुत अनुचित बात होगी। निश्चित तौर पर इससे उनके काम में रुकावट पड़ेगी, और चूंकि स्वागत समिति की बैठक में लाला लाजपत राय के नाम का प्रस्ताव पास होने की कोई संभावना नहीं है, "लाला लाजपतराय का नाम रद्द होना उनके लिए दुखदायी तथा अत्यधिक अपमान की बात होगी।"

इसके अतिरिक्त गोखले ने कहा कि उन्होंने यह दलील भी दी थी कि "यद्यपि लाला लाजपत राय को व्यक्तिगत तौर पर स्वतंत्र कर दिया गया है, उनके निर्वासन से सम्बद्ध सिद्धांत के बड़े प्रश्न के निर्णय के लिये तो अभी लड़ा जाना है और यह संघर्ष अच्छी तरह तभी हो सकता है, जब सारा देश एकता की भावना को बनाए रखे। यह एकता की भावना अवश्य ही विभाजित होगी, यदि कांग्रेस का एक वर्ग उन्हें पार्टी के अध्यक्ष पद के लिए खड़ा करना चाहेगा।" सरकार की "अवज्ञा" करने के बारे में गोखले का विवरण था, "आगे मैंने कहा था कि अन्य ढंग भी हैं जिनसे हम श्री लाजपत राय का सम्मान कर सकते हैं और फिर मैंने कहा, यदि आपका उद्देश्य केवल सरकार की अवज्ञा करना ही है मैं आपके प्रस्तावों को समझ सकता हूं।" इसके उत्तर में एक सज्जन ने कहा, "हां, यदि हम और कुछ न भी करें, हम सरकार को यह दिखा देना चाहते हैं कि हम सरकार की अवज्ञा करने को तैयार हैं।" इस पर मैंने कहा, "मैं ऐसी अवज्ञा में विश्वास नहीं रखता। निस्संदेह कांग्रेस को अवश्य ही सरकार की कारवाइयों की निंदा करनी चाहिए, जब भी वह आवश्यक समझे, परन्तु इसके पास और आवश्यक काम भी करने के लिये हैं। हमारी वर्तमान स्थिति में हम सरकार को सहायता तथा सहयोग के बिना काम नहीं कर सकते।"

यह कांग्रेस के पूर्ण अधिवेशन से एक महीना पहले की बात है।

प्रारम्भिक बातचीत के बारे में अपना विवरण देते हुए गोखले ने एक और वक्तव्य में कहा

"लाला लाजपत राय ने, जो उस दिन (25 दिसंबर को) प्रातः सूरत पहुंचे, दोपहर बाद तिलक और खापर्डे से मिलने गये और उनसे सम्बंधित प्रश्न पर विचार विमर्श किया। वे जब सहमत हो गए, तो वह गोखले के पास गये

तावि यदि सभव हो सके तो समिति की बैठक की जाये और तिलक तथा खापर्डे राष्ट्रवादियो के सम्मेलन म लौट गये, जो उसी शाम (25 दिसबर) को हुआ। इस सम्मेलन म राष्ट्रवादियो की एक समिति, जिसमे प्रत्येक प्रात से एक राष्ट्रवादी प्रतिनिधि शामिल था नियुक्त की गई, जो दूसरे पक्ष के नेताओ के साथ बातचीत करेगी। और यह निर्णय किया गया कि यदि राष्ट्रवादी समिति काग्रेस के जिम्मेदार अधिकारियो से वतमान स्थिति बनाए रखने के बारे म कोई आश्वासन प्राप्त करने म असफल रहे, तो राष्ट्रवादी अध्यक्ष के चुनाव मे ही विरोध आरम्भ कर दें। लाजपत राय से उस रात या अगले दिन प्रात कोई सूचना नही मिली।

"उस दिन (25 का) दोपहर बाद लाला लाजपत राय, जो उग्रवादी शिविर देखने के लिए जाने वाले थे, मुझसे पूछने लगे कि क्या मैं व्यक्तिगत तौर पर उस ओर के नेताओ को आश्वासन दिला दू कि वह प्रस्ताव के बारे में गलतफहमी मे है और वह सभी उसे कायसूची मे पायेंगे जब वह प्रेस से आयेगी। मैं सहमत हो गया और लाजपत राय चले गये उन्होने शाम को यह आश्वासन दिया।

"उग्रवादियो के बयान मे कुछ सज्जनो द्वारा समझौता करवाने के प्रयत्न करने की चर्चा की गई है। बयान मे जिन तीन भद्रपुरुषो की ओर से मेरे साथ बातचीत करने की चर्चा है—वे हैं लाला लाजपत राय, बाबू सुरेंद्र नाथ बनर्जी और चुनीलाल डी० सरैया। उनमे से चुनीलाल ने इस सबध मे कभी भी मेरे साथ बातचीत नही की थी। यह 25 दिसबर की शाम को, जब हम रेलवे स्टेशन पर अध्यक्ष के स्वागत के लिए गए थे, हुई थी, जो तिलक द्वारा रखी गई इस तजवीज के बारे मे थी कि दोनो ओर से पाच पाच व्यक्ति इकट्ठे मिल बठें और प्रस्तावो की भाषा के बारे मे निणय कर लें। मैंने लाजपत राय को बताया कि प्रस्तावो की भाषा का निणय करना 'विषय समिति' का काम है और उस प्रकार की समिति, जिस प्रकार की समिति का तिलक ने सुझाव दिया है, पहले कभी नही बनाई गई। इसके अतिरिक्त तिलक के लिए, जिनके अनुयायी प्रतिदिन सम्मेलन कर रहे थे, पाच व्यक्ति मनोनीत करना आसान था जो उनके गुट का प्रतिनिधित्व करते। परन्तु जो जोश तथा भावना की कटुता उस समय थी, उसे देखते हुए मैंने कहा कौन से पाच व्यक्ति इस अधिकार का दावा कर सकते थे या यह जिम्मेदारी ले सकते थे कि वे अन्य प्रतिनिधियो की ओर से निणय ले सकते है। मैंने कहा, 'कल विषय समिति की बैठक हो लेने दीजिए। हम

अधिकतर समय विचार विमर्श में बीत जाता था। उनके संदेशों तथा आश्वासनों के साथ, तथा अपने तौर पर, मैं हर रोज कई बार राष्ट्रवादियों के शिविर में गया और तिलक से अध्यक्ष के चुनाव का विरोध करने का विचार उचित न होने तथा इसके बुद्धिमत्तापूर्ण कदम न होने पर बार-बार बल दिया। हमने इस मामले पर विचार किया, दलीलें दीं और हर बार मैं यह प्रभाव लेकर आया कि वह मुझसे सहमत थे। परन्तु बात यह नहीं थी।"

यद्यपि कांग्रेस में विच्छेद के लिये निर्णायक लड़ाई अध्यक्ष के चुनाव पर हुई, राजनीतिक मामलों पर मतभेद पहले ही आरम्भ हो चुके थे और लाजपत राय अध्यक्ष पद के चुनाव के लिये अपना नाम वापस लेकर इन राजनीतिक मामलों में समझौते का प्रयत्न कर रहे थे। कोई समझौता न हुआ और राष्ट्रवादियों ने असाधारण तौर-तरीके अपनाने के लिए अपने आपको मजबूर समझा। हमने देखा है कि राष्ट्रवादियों के लिये पिछले कलकत्ता अधिवेशन में अपनी सफलताओं पर संतुष्ट होना उचित था और वे अपनी प्राप्तियों का संचित करना चाहते थे। परन्तु इस प्रकार की खबरें गरम थीं कि कलकत्ता के प्रस्तावों को नरम किया जा रहा था और इन समाचारों का उचित समय पर और दृढ़तापूर्वक कोई खंडन न किया गया। सूरत-अधिवेशन की एक विशेषता यह थी कि, राष्ट्रवादियों ने अपना अलग शिविर लगाया था। केवल इसी बात से ही यह आभास होता था जैसे दोनों गुट एक दूसरे के लिए विरुद्ध डटे हुए हों। राष्ट्रवादियों ने अधिवेशन से पूर्व दो दिन के लिये अपनी भरपूर बैठकें कीं, जिनमें तिलक तथा अरविन्द ने भाषण किये। प्रत्येक शिविर में, हैनरी डब्ल्यू० नेविनसन के अनुसार, "संदेह का बोलबाला था और अफवाहों के आधार पर रोष बढ़ रहा था।"*

बातचीत का कोई परिणाम न निकला, निश्चित घड़ी आ पहुंची। नेविनसन के शब्दों में

"मंच के लोग पहुंचने आरम्भ हो गये, सबसे पहले आने वालों में डाक्टर रुदरफोर्ड थे। फिर एक शांत, श्वेत पगड़ी वाली आकृति ने जिसके चेहरे से उदास दृढ़ता झलकती थी एक ओर से प्रवेश किया। एक व्यक्ति के सामने दस हजार लोग उठकर खड़े हो गए। तालियों के बाद तालियां, ऐसा दिखाई पड़ता था कि ये

*द न्यू स्पिरिट इन इंडिया पृष्ठ 242

तालियां समाप्त ही नहीं होगी। उस व्यक्ति को कौन नही चाहता, जिसने उद्देश्य के लिये कष्ट झेले हो? यह लाजपत राय थे।"†

स्वागत समिति के अध्यक्ष का भाषण समाप्त होने के बाद जैसे ही डा० रास बिहारी घोष के नाम का प्रस्ताव किया गया, हो हल्ला आरम्भ हो गया। "हगामा शुरू हो गया तथा अन्य कोई भी शब्द सुनाई न पडा।"††

बैठक स्थगित करनी पडी। शाम को तथा रात भर दूत व्यस्त रहे—परन्तु कोई सफलता प्राप्त नही हुई।

अगले दिन जब जुलूस ने पडाल म प्रवेश किया, तो तिलक ने अध्यक्ष के चुनाव के प्रस्ताव मे सशोधन के लिये एक पर्ची भेजी। वह बोलने के लिये उठे तो उसे नियम के विरुद्ध करार दिया गया—उन्होने यह निर्णय स्वीकार नही किया, घोष अभी अध्यक्ष नहीं थे इसलिए निर्णय नही दे सकते थे—मालवी। (स्वागत समिति के अध्यक्ष) "सभापति नहीं थे।" हगामा आरम्भ हुआ और होता रहा—इसकी चरम सीमा उस समय आई जब लाल चमडे का एक महाराष्ट्रीय प्रक्षेपास्त्र हवा म लहराता हुआ आया और सुरेन्द्र नाथ बनर्जी को लगा, फिर फिरोजशाह महता को। उस पल से ही नये युग का आरम्भ हो गया।

कई वर्ष पश्चात् अपने मन की आखो के सामने सूरत के उस दृश्य का स्मरण करते हुए, लाजपत राय ने लिखा

"उसके (सूरत-अधिवेशन) साथ, हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन का एक युग समाप्त हो गया तथा दूसरा आरम्भ हो गया।" (इन युगो के बारे मे) उन्होने कहा, "ये युग स्वर्गीय श्री तिलक की देन थे।"

तिलक के व्यक्तित्व ने, जो उन्होने सूरत मे देखा, लालाजी के मन पर अमिट छाप छोड दी

"जो बात उस समय मेरे मन में जम गई थी और जिसे म अब भी अपने मन से नही हटा पाया, वह थी तिलक की अद्वितीय शक्ति। जिस समय वह सशोधन प्रस्ताव पेश करने के लिए उठे, उन पर सभी ओर से आवाजें कसी गई तथा सीटियां बजाई गई, वह मच पर एक बडी भीड मे खडे रहे, उस भीड मे, जो उनके

†वही पृष्ठ 245-46
††वही, पृष्ठ 247

विरुद्ध थी तथा उन्हें हराना चाहती थी। मच पर जो नेता बैठे थे, उनमें से शायद बहुत कम, यदि थे भी, तो तिलक समर्थक थे। उनके दृढ तथा न झुकने वाले निश्चय की झलक उनके चेहरे की हर रेखा से स्पष्ट दिखाई द रही थी। उनकी निडरता ने उन सभी लोगो के मन मे, जो उनके विरुद्ध नहीं थे, प्रशसा की भावना पैदा कर दी। अधिवेशन के दौरान उनके सारे व्यवहार ने स्पष्ट तौर पर व्यक्त कर दिया कि वह भाग्यवान व्यक्ति है, जो अपने इरादे को कार्यान्वित करने के लिये सारे ससार की शक्तियो का विरोध करेगा।"

सस्मरणशील मनोदशा म लालाजी शुरू की घटनाओ को अक्सर याद किया करते थे। उनके सस्मरण मे पूर्ण अधिवेशन के पडाल की वह तस्वीर छाई हुई थी (जो हम देख चुके हैं), जिसमे तिलक विरोधी भीड मे वह अविचलित खडे थे, जब कि चारो ओर हगामा मचा हुआ था। उग्रवादी शिविर मे समझौते के प्रयत्नो के लिए शान्ति मिशन के बारे मे उन्हें विशेषरूप से स्मरण किया गया था क्यो कि अध्यापक के नाते उनकी भूमिका तो दलगत विवादो से ऊपर उठकर थी। श्री अरविंद ने उत्तर दिया था "तुम प्याले को तब तक नही भर सकते, जब तक उसे खाली नही किया जाता।" और लालाजी कहते थे अरविंद के इन शब्दो के अनुरूप ही उनके हाथो की मुद्रा भी होती थी। और जब कभी लालाजी उस पल का स्मरण करते तो अपने हाथो से वैसे ही करते, जिस प्रकार अरविन्द ने प्याला भरने से पूर्व खाली किया था।

* * * *

1907 मे लाजपत राय के पास राजनीतिक क्षितिज का आकर्षण बिन्दु बनने के सिवा और कोई चारा नही था। वह असख्य आखो के केंद्र बिन्दु थे। इस बात की किसी को परवाह नही थी कि अध्यक्ष कौन है और पार्टी के कर्ता धर्ता कौन हैं, वह लोगो के नायक थे और उनकी बहुत ही जोरदार जय-जयकार की गई। ऐसा जान पडता था कि उन्होंने सभी गुलदस्ते तथा प्रशसा उनके लिये सुरक्षित रख दी थी। यदि कोई झगडा भी होना था, तो वह भी उन्ही के नाम पर, यद्यपि वह सारा समय स्वय शान्ति का प्रचार कर रहे थे और उनके लिये यह बात बहुत ही उलझनपूर्ण थी कि उनका नाम ही झगडे का कारण था। ऐसा था सूरत का विरोधाभास। जब बातचीत अन्तिम रूप मे असफल हो चुकी थी और कांग्रेस दो गुटो मे विभाजित हो चुकी थी, फिर भी उन्होने शान्ति के लिए अन्तिम अपील की। सूरत से उनका अन्तिम सदेश स्वदेशी सम्मेलन के अध्यक्षीय भाषण म था

"म अपन मिताचारी मित्रा से निवेदन करूगा कि वे हमारे शत्रुआ के हाथो म न खेलें। हा सकता है तथाकथित उग्रवादिया के कुछ तौर तरीके उन्हें पसद न हा, परन्तु इसी कारण से उन्हें शत्रु के हाथ म दे देना और अपमान करके उन्हें इस बात के लिए विवश कर देना कि वे सदा के लिए विरोधी बन जायें या उन्हें सरकार के अत्याचार तथा एग्लो इडियन लोगा के उपहास का कारण बनाना बुद्धिमत्ता नही है। म अपन उग्रवादी मित्रा से आदरपूवक अनुरोध करूगा कि वे बडी उम्र के लागो की सुस्त रफ्तारी और व्यावहारिक अनुभव की बाता पर अधीर न हा।"

ऐसा दिखाई पडता था कि यह विवाद मिताचारिया द्वारा लाजपत राय को अध्यक्ष बनाने से इन्कार करने पर हुआ। और जब बातचीत चल रही थी, तो तिलक की ओर से एक प्रमुख शत यह थी कि लाजपत राय का "सादर उल्लेख" किया जाये। बातचीत असफल रही और डॉक्टर रास बिहारी घोष को वह भाषण पढने का अवसर ही न मिला, जो उन्होंने इस अवसर के लिये लिखा था, परन्तु जैसा कि बाद मे पता चला, उस भाषण मे लाजपत राय का "सादर उल्लेख" था। यह "उल्लेख" निस्सदेह अध्यक्ष पद के लिए उनके दाव से सबद्ध नही था, बल्कि इसमे उनके कारावास की चर्चा थी। यह उल्लेख अध्यक्ष के मुकुट का नही, बल्कि "काटो के मुकुट" का था।

अध्यक्षीय भाषण में कहा गया था कि "जा वष शीघ्र ही समाप्त होने जा रहा है उसम हुई घटनाआ न देश को बहुत गहराई तक हिला दिया और यह सचमुच नाटकीय वष रहा। इसका पहला अक लाजपत राय और अजीत सिंह के निर्वासन से आरम्भ हुआ। इसके बाद सावजनिक सभाआ पर प्रतिबध लगाने का अध्यादेश आया और फिर रावलपिण्डी का मुकदमा और फिर पजाब और बगाल मे समाचार-पत्रो के मुकदमे।"

"1818 के अधिनियम तीन के पुनरुत्थान के समथन मे यह कहा गया है कि यह स्थायी कानून है। यह कोई स्थायी कानून नही, बल्कि हमारी आजादी के लिये स्थायी खतरा है, हमारे कानून की पुस्तक की स्थायी भत्सना है। नागरिक न्यायशास्त्र मे यह उतना ही अप्रचलित है, जितना शिकजा या पेच। एक व्यक्ति को निर्वासित करने की उनकी कारवाई, जिसका कारण बताने का उनमे साहस नही, गैर-कानूनी, असवधानिक, पाशविक, पक्षपातपूण, निलज्जतापूण, बेहूदा

और असगत है । ये सब विशेषण मेरे नही । मैंने ये सभी हसाड से लिए हैं और एक कट्टर उदारवादी ने एक स्मरणीय अवसर पर इस्तेमाल किये थे । और क्या श्री मौर्ले द्वारा हाउस आफ कामन्स मे दिया गया उत्तर साइमन डी मॉटफाड द्वारा ससद की स्थापना के बाद से अब तक का सबसे अधिक अमर्यादित और अराजक उत्तर नही था ।" उन्होने लाजपत राय को श्रद्धाजलि अर्पित करते हुए कहा था

"और इस मनमानी शक्ति के इस्तेमाल के लिये सबसे पहला शिकार कौन चुना गया था ? एक ईमानदार, धार्मिक तथा समाज सुधारक व्यक्ति, जिसका चरित्र हर किस्म की भत्सना से ऊपर था । वह व्यक्ति जो केवल अपने लिये नही, बल्कि दूसरो के लिए जिया—पजाब के श्रद्धा पात्र । और यदि लाजपत राय को उनके देशवासी सामान्य तौर पर शहीद समझते है, तो यह सरकार की, केवल सरकार की जिम्मेदारी है कि उसने उस व्यक्ति को इस दर्जे तक पहुचा दिया है और उनके सिर पर काटा का अमूल्य मुकुट रख दिया है । यदि माण्डले के दुर्ग को अब पवित्र स्थान माना जाता है, तो यह सरकार की, और केवल सरकार की कारवाई है कि उसने उस स्थान को धार्मिकता का दर्जा दे दिया है ।"

इसके बाद असतुष्टता के कारणो की एक सूची दी गई थी जिसका उद्धरण लाजपत राय द्वारा 'पजाबी' मे लिखे गये एक लेख से दिया गया था, जो उनकी गिरफ्तारी से कुछ घटे पूर्व लिखा गया था, और उसके बाद यह टिप्पणी

"यह राग-निदान बिल्कुल सही था, क्योकि ज्यो ही अत्यावश्यक शिकायतें दूर कर दीं गईं, पजाब पूरी तरह शात हो गया । यद्यपि अफसर शायद यह बात सोचकर अपने आपको प्रसन्न कर लें कि यह सुखद परिणाम पूर्णतया लाला लाजपत राय और अजीत सिह के निर्वासन के कारण था और इस प्रकार एक और गदर केवल उनकी दूरदर्शिता तथा उचित समय पर किये गये प्रतिबधो के कारण टल गया था ।"

* * *

लाजपत राय सूरत के एक बडे विरोधाभास थे । उन्ही ने शान्ति के लिए पूरा जोर लगाया और उन्ही के नाम पर लडाई हुई । जब शान्ति के लिए बातचीत टूटी और विच्छेद को टाला न जा सका तो वह उन लोगो के साथ बैठे जिन्होंने उच्च-सम्मान के लिये उनके निर्वाचन मे बाधा डाली थी, उन

तागा के साथ नही, जो उनके नाम पर लडे थे। और विरोधाभासा का विरोधाभास यह था —जब कांग्रेस-अधिवेशन हगामा मे दृश्य के साथ समाप्त हो गया और कांग्रेस दो परस्पर विरोधी गुटो मे बट गई। आप इसे गृह-युद्ध कह सकते हैं—तो वह सूरत मे ही ठहर गए, युद्ध-स्थल पर ही—शात, रचनात्मक काय करने के लिए, जसे कुछ हुआ ही न हो।

सूरत के विच्छेद के कारण कांग्रेस को जोरदार धक्का पहुचा और लाजपत राय इसके प्रभाव से न बच सके। अन्य कांग्रेस कार्यकर्ताओ के मुकाबले उन्हें जो उस समय कांग्रेस के एक प्रमुख नेता या बाद मे नेता बने, विच्छेद ने विशेष तथा विशाल कठिनाइया उत्पन्न की। वह कांग्रेस से पूरी तरह अलग नही होना चाहते थे और न ही वह मुकाबले का सगठन स्थापित करने मे राष्ट्रवादियो के साथ सहयोग करना चाहते थे फिर भी उन्हें जानकारी थी कि मिताचारियो की सगति म वह सदा परेशान रहेंगे। इसके अतिरिक्त उन्हें यह डर भी था कि राजनीति शीघ्र ही मरणासन्न हो जाएगी।

* * *

इसी बीच उन्हें एक अन्य स्थान से बहुत ही आवश्यक तथा दुखदायी बुलावा आया—यह बहुत ही आवश्यक था, इसमे किसी प्रकार की ढील नही हो सकती थी। 1906 मे प्लेग ने भयानक विनाश किया था। अब अकाल अपना बुरा सिर उभार रहा था और इस बात की आशका थी कि उसकी विनाशलीला पिछली बार की तबाही को मात कर देगी। ऐसे कष्ट की लाजपत राय उपेक्षा नही कर सकते थे—चाहे राजनीति हो या न हो। इसके अतिरिक्त लाजपत राय के लिए राजनीति का कोई अर्थ नही था, जब उसम जनसेवा का कार्यक्रम न हो। वह अपनी शक्ति किसी व्यर्थ झगडे मे नष्ट करने के लिए तैयार न थे। आगामी कुछ मास के लिए उन्हें सहायता अभियान सगठित करने मे व्यस्त रहना था। उन्होने सूरत मे ही यह निणय ले लिया। स्वदेशी कान्फ्रेंस मे अपना अध्यक्षीय भाषण समाप्त करत हुए उन्होने कहा

'देश इस समय भयानक अकाल की चपट मे है। जिस राष्ट्र की हम सेवा करने की आकाक्षा रखते है, वह अधिकतर झोपडिया म रहता है और बहुत कष्ट म है। सरकार अपना कतव्य पूरा कर रही है या कह लीजिए कि ऐसा करने का दिखावा कर रही है। क्या हम जो उस रक्त का ही एक भाग है उससे पीछे

रह सकते है ? मैं अपने मित्रो तथा सहयोगी कार्यकर्ताओ से निवेदन करता हू कि वे इस काम मे पूर्ण सहयोग दें और अकाल पीडित प्रात मे गैर सरकारी अकाल पीडित सहायता-अभियान आयोजित करे । मैं जानता हू कि कार्य बहुत बडा है और कठिनाइया इससे भी बडी है, परन्तु इससे निष्काम देशभक्त जीवन के लिये बहुत ही लाभकारी तथा बहुत ही प्रभावशाली प्रशिक्षण प्राप्त हो सकता है ।"

नेविसन ने लिखा है, "यह उनके चरित्र-बल की विशेषता और लोकप्रियता की अपेक्षा ही थी कि सूरत काग्रेस मे विच्छेद होने के पश्चात उन्होने मिताचारी दल को अपना व्यापक प्रभाव दिया और घोषणा की कि वह पुराने झण्डे के अधीन ही संघर्ष करेंगे । परन्तु इसके अतिरिक्त एक और विशेषता यह थी कि जब काग्रेस अधिवेशन समाप्त हो चुका था, वह सामाजिक तथा स्वदेशी सम्मेलनो के लिए सूरत मे ही रहे और उन्होने वहा अकाल सहायता कोष स्थापित किया, जैसे कुछ भी न हुआ हो ।"*

नेविसन, ने सूरत की घटनाए देखी थी, स्वाभाविक था कि उसने सूरत मे लाजपत राय को निकट से देखा था । उसने लिखा

" बडे सादे और उदार जीवन वाले व्यक्ति, जिन्होने बहुत बडी सासारिक सफलता गरीबो तथा निरक्षर लोगो की सेवा के लिए त्याग दी थी । लाजपत राय उन लोगो से से थे जिनकी आत्मा मे उनके अपने लोगो की गलतिया प्रवेश कर जाती ह । स्वाभाविक तौर पर वह राजनीति से विमुख थे, उन्होने अपना जीवन उन गहरे प्रश्नो मे लगा दिया, जो अच्छी या बुरी सरकार की पहुच से बाहर होते हैं और उनमे यह परिवर्तन चालीस वर्ष की आयु हो जाने के बाद ही आया । यह सत्य है कि वह 1888 मे काग्रेस-आदोलन मे शामिल हो गये थे, जब इस सगठन को स्थापित हुए दो-तीन वर्ष ही हुए थे, परन्तु किसी अन्य व्यक्ति ने काग्रेस और उसके तौर-तरीको की उनसे अधिक आलोचना नही की—इसके अनियत्रित आकार, छुट्टी जैसा दृष्टिकोण, भारत की गरीबी तथा अज्ञानता की ओर ध्यान देने मे उसकी असफलता, राजनीतिक गलतिया को ठीक करवाने के लिए अपने भाषणो तथा प्रस्तावो के बारे मे उसकी गलतफहमी ।"**

*वही पृष्ठ 296

**वही पृष्ठ 295 96

नेविंसन को वह, "एक उदास, थके हुए स्पोर्ट्समन से आदमी लगे, जो न लाभ न यश प्राप्त करना चाहते थे" * और संक्षिप्त विवरण देते हुए उसने कहा, "जो बातें संस्कार तथा भावना से गहरी थी उनके जीवन का लक्ष्य बन गई थी।" **

---

*वही, पृष्ठ 302
**वही, पृष्ठ 296

32. सूरत का परिणाम

सूरत की घटनाओं ने कांग्रेस में दोनों गुटों को फोड़कर अलग कर दिया। उन लोगों को जिनका उनके साथ सामान्यतौर पर मतभेद रहता था, बहुत आश्चर्य हुआ और जो लोग उन्हें अपने शिविर का नेता मानते थे उन्हें बहुत ही निराशा हुई, जब लाजपत राय ने खुले आम यह घोषणा कर दी कि वह पुराने झण्डे के नीचे ही संघर्ष जारी रखेंगे उस झण्डे के जो अब तक केवल मिताचारियों के कब्जे में था। उन्होंने पृथकतावादियों का साथ देने से इन्कार कर दिया, यद्यपि अपनी राजनीतिक विचारधारा में उनके साथ उनकी अधिक समानता थी, उन लोगों के मुकाबले जिनका कांग्रेस पर अविभाजित कब्जा था। बाहर से तो दिखाई देता था कि सूरत-अधिवेशन के बाद मिताचारी नेताओं द्वारा बुलाए गये सम्मेलन में भाग लेकर उन्होंने मिताचारी लेबल स्वीकार कर लिया, पर असल में वह मिताचारियों के साथ विचार विनिमय कर राष्ट्रवादियों के दृष्टिकोण पर बल दे रहे थे। इस अप्रत्याशित व्यवहार के कारण उनके सार्वजनिक सम्मान को मामूली हानि भी हुई। इसका परिणाम सूरत कांग्रेस अधिवेशन के पश्चात भारत भर में इसकी विजय यात्रा के दौरान मालूम हुआ। परन्तु राजनीतिक नेताओं के एक वर्ग के साथ उनका बिल्कुल विच्छेद हो चुका था। मिताचारियों को मालूम था कि वह अधिक समय के लिये उन्हें अपने साथ नहीं रख सकते, न ही उनकी इच्छा थी कि वह मिताचारियत में ही खो जाएं। राष्ट्रवादियों को भी गिला था, क्योंकि उनके विचार में वह उन्हें छोड़ गये थे।

शायद उन्होंने "परित्याग" का आरोप उतना महसूस नहीं किया जितना उन जैसे वफादार और संवेदनशील स्वभाव के व्यक्ति को सामान्यतौर पर महसूस करना चाहिए था। एक बात थी कि कांग्रेस से प्रभावित पंजाब ने उनका साथ दिया। दुनीचन्द, रामभज दत्त, हरकिशन लाल और पंजाब के अन्य कांग्रेसियों ने यह जरूरी समझे बिना सम्मेलन में भाग लिया कि वे मिताचारियों के साथ हैं। उनके अपने प्रांत में उनके आलोचक अधिकतर अलग किस्म के थे। उनमें सबसे प्रमुख हरदयाल थे, जो उन दिनों कई मतों के तेज तर्रार उपदेशक बने रहे थे। वह किसी समझौते को सहन नहीं करते थे, परन्तु यह एक तर्कसंगत बात थी कि

वह कांग्रेस की समूची नीति तथा इतिहास की निन्दा करते थे कि वह घटिया मितचारियत का उदाहरण थी।

पंजाब के प्रतिनिधि मंडल ने सूरत सम्मेलन में भाग लिया। अन्य प्रान्तों से भी बहुत से लोग इसमें शामिल हुए, जिनके बारे में यह नहीं कहा जा सकता था कि वे पूरी तरह मिताचारी थे। इनमें मोतीलाल घोष तथा अश्विनी कुमार दत्त भी शामिल थे। कई कट्टर राष्ट्रवादी इसमें शामिल होना चाहते थे। परन्तु सयोजकों ने उन्हें अनधिकृत व्यक्ति समझकर लौटा दिया। जब अप्रैल 1908 में इलाहाबाद में दुबारा सम्मेलन हुआ, उसमें फिर बहुत से ऐसे व्यक्ति शामिल हुए, जो "मिताचारी" विचारधारा के समर्थक नहीं थे और जो बाद के वर्षों में प्रमुख तौर से 'सविनय अवज्ञा' के सहयोगी थे—उत्तर प्रदेश से पुरुषोत्तम दास टंडन और बिहार से दीप नारायण सिंह आदि।

सूरत का सम्मेलन रास बिहारी घोष की अध्यक्षता में आरम्भ हुआ, परन्तु शीघ्र ही यह अखिल भारतीय सम्मेलन में बदल गया, जिसकी अध्यक्षता सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने की। एक संक्षिप्त बैठक में उसमें दस नियमों के प्रस्ताव पास किये गये जिनमें से चार प्रमुख विवादास्पद विषयों—स्वराज, स्वदेशी, विभाजन तथा बहिष्कार, राष्ट्रीय शिक्षा और एक निर्वासन के बारे में था, जो इस प्रकार था

(क) यह सम्मेलन सामान्य शान्ति तथा व्यवस्था के समय लाला लाजपत राय और सरदार अजीत सिंह की अचानक गिरफ्तारी तथा निर्वासन की जोरदार निन्दा करता है, उस कारवाई की, विशेषकर जब उन्हें अपनी निर्दोषिता सिद्ध करने के लिए कोई अवसर नहीं दिया गया तथा न उन पर मुकदमा चलाया गया, उस कारवाई की, जो अप्रचलित कानून के अधीन की गई जो किसी और समय पर किसी अन्य वर्ग के लोगों के साथ निपटने के लिए बनाया गया था और ब्रिटिश शासन की स्थापित परम्पराओं के प्रतिकूल है।

(ख) यह सम्मेलन जोरदार आग्रह करता है कि अब जब कि लाला लाजपत राय और सरदार अजीत सिंह को आजाद कर दिया गया है, सरकार ने पिछले मई मास में जिन कारणों के आधार पर उन्हें गिरफ्तार किया था वे तुरंत प्रकाशित कर दिये जायें।

(ग) इस तथ्य को देखते हुए कि 1818 का अधिनियम तथा ऐसे ही अन्य नियम गैर जिम्मेदार कार्यपालिका को खतरनाक सीमा तक व्यापक अधिकार देते हैं और इस प्रकार निर्दोष लोगों की स्वतंत्रता के लिए गंभीर खतरा पैदा करते हैं, इसलिए यह सम्मेलन आग्रह करता है कि ये अधिनियम तुरंत समाप्त किये जायें।

सम्मेलन ने प्रान्तीय सचिव नियुक्त किये और पंजाब के लिये लाजपत राय तथा हरकिशन लाल चुने गये। उसके पश्चात अप्रैल में इलाहाबाद में फिर सम्मेलन हुआ। इससे पहले विपिन चन्द्र पाल ने कलकत्ता में एक भाषण में समझौते के लिये राष्ट्रवादियों की शर्तों की घोषणा कर दी थी। वह चाहते थे कि स्थगित किया गया कांग्रेस अधिवेशन फिर बुलाया जाये, जिसके अध्यक्ष रासबिहारी घोष हों, और वह यह भी चाहते थे कि जिस "मत" को लेकर इतना विवाद हुआ है वह कांग्रेस पर न थोपा जाये। उन्होंने कहा कि इन शर्तों पर ही राष्ट्रवादी कांग्रेस में लौटने के लिए सहमत होंगे। सूरत में उन्होंने यह स्वीकार करने से इन्कार कर दिया था कि डाक्टर घोष विधिवत निर्वाचित हो गये थे। यद्यपि वह अभी भी संतुष्ट नहीं थे, फिर भी समझौते के लिए पाल डाक्टर घोष को मान्यता देने को तैयार थे, यदि मिताचारी अपनी ओर से "मत" वाली शर्त समाप्त कर दें। सम्मेलन में लाजपत राय उन लोगों में शामिल थे, जिन्होंने यह दोनों मांग स्वीकार कराने के लिए प्रयत्न किया। परन्तु मिताचारी इस बात के लिये अधिक चिंतातुर नहीं थे कि राष्ट्रवादी लौट आयें। हो सकता है कि गोखले विच्छेद नहीं चाहते थे, परन्तु वह चाहते थे कि उन्हें परेशान न किया जाये और शायद कांग्रेस में शान्ति संभव नहीं थी, यदि उन्हें राष्ट्रवादियों के साथ काम करना पड़ता। अधिकतर नहीं तो बहुत से मिताचारी नेता राष्ट्रवादियों के अलग होने पर खुश थे, यद्यपि इसके परिणाम स्वरूप राजनीतिक आन्दोलन कमजोर होता था। इलाहाबाद में समझौते के प्रयत्नों को कोई उत्साहजनक समर्थन न मिला और न ही मिताचारी नेताओं से कोई सहानुभूति ही मिली। जब "मत" के बारे में गोखले का संशोधन अस्वीकार कर दिया गया, सर फिरोजशाह मेहता बहुत गुस्से में आये और उन्होंने गुस्से भरी कई धमकियां दीं और उन्होंने इस बात में कोई संदेह न रहने दिया कि वह केवल ऐसे लोगों का स्वागत करेंगे, जो केवल हां में हां मिलाने वाले होंगे। जब कांग्रेस अधिवेशन दोबारा बुलाने का प्रश्न आया, तो मिताचारी नेताओं ने विपिन चन्द्र पाल द्वारा रखा गया समझौता प्रस्ताव स्वीकार करने से इन्कार कर दिया, यद्यपि यह प्रस्ताव उसी नीति के अनुसार था, जो सूरत में सत्तारूढ़

गुट ने अपनाई थी, पृथकतावादियों की नीति के अनुसार नहीं। सत्तारूढ़ गुट शायद यह इसलिए नहीं चाहता था कि वह राष्ट्रवादियों के लौटने के पक्ष में नहीं था। उनकी इच्छा यह भी थी कि वे अपने बच्चे (सम्मेलन) पर स्नेह जताए। डॉक्टर घोष को, जिन्हें उन्होंने सूरत-अधिवेशन में अध्यक्ष चुना था, बैठक दोबारा बुलाने का अधिकार देने के स्थान पर उन्होंने सम्मेलन के सचिवों, गोखले तथा वाचा को कांग्रेस का नया अधिवेशन बुलाने का अधिकार दे दिया। लाजपत राय ने राष्ट्रवादियों के प्रस्ताव के समान ए० चौधरी के प्रस्ताव का समर्थन किया कि अधिवेशन दोबारा बुलाया जाये, परन्तु मिताचारी नेताओं ने इस प्रस्ताव का विरोध किया और अपना ही प्रस्ताव अपनाया। अपने अन्तरतम विचारों में उन्होंने नया अधिवेशन फिर से बुलाये जाने के तकनीकी अन्तर की ओर ध्यान दिए जाने को बिल्कुल महत्व न दिया। यदि उनका बस चलता तो राष्ट्रवादी कांग्रेस के उस अधिवेशन में भी पहुंचते, जिसे गोखले और वाचा ने बुलाया था। वह राष्ट्रवादियों को इस बात के लिये रजामंद न कर पाये कि वे इस तकनीकी बात से ऊपर उठकर यह रास्ता अपनाएं। इतनी ही असफलता उन्हें मिताचारियों को सहमत करने में मिली कि वह राष्ट्रवादियों के सुझाव से सहमत हो जाएं और स्थगित किया गया अधिवेशन फिर से बुला लें।

एकता की संभावना बिल्कुल दिखाई नहीं देती थी। मध्यस्थ की भूमिका पर जोर देना बिल्कुल मूर्खतापूर्ण कार्य दिखाई देता था। फिर भी, वह किसी एक गुट में पूरी तरह सम्मिलित न हुए जो अब स्थिर हो गये थे और अधिक से अधिक सख्त होते जा रहे थे और लोगों को एक दूसरे से अधिक से अधिक दूर करते जा रहे थे। माण्डले से हाल ही में लौटने के कारण यह संभव था कि उनकी अधिक से अधिक जय जयकार होती थी, परन्तु राष्ट्रीय राजनीति में वह अपने आपको बिल्कुल अलग थलग पा रहे थे। इसी दौरान एक राजनीतिक सम्मेलन में बोलते हुए रवीन्द्रनाथ टैगोर ने कहा कि "जन साधारण के बीच विवाद तथा मतभेद इस कारण थे कि उनके उत्साह को इस्तेमाल करने के लिए काफी लाभकारी काम नहीं था, न ही उनकी भावना के सार्वजनिक उपयोग के लिए उचित अवसर थे। एक उदाहरण के तौर पर उन्होंने संकेत किया कि लड़ने वाले सभी गुटों ने किस प्रकार उस समय सहयोग किया था, जब ट्रांसवाल के प्रश्न जैसे लाभकारी कार्यों ने उनका ध्यान आकर्षित किया था।" रवीन्द्रनाथ ने आगे कहा, "हमें आशा करनी चाहिए कि बाबू बिपिन चन्द्र पाल स्थिति से निपटने के लिये अपना वेदांत

का उपयोग मे लायेंगे और मतो तथा सिद्धाता, नामा तथा शब्दा, तकनीकी बाता तथा व्यक्तिया के लिये लडने की व्यथता स्पष्ट करेंगे, क्योकि अच्छा परिणाम ता काम और केवल काम मे ही प्राप्त हो सकता है। लाजपत राय कभी पीछे न रहे, परन्तु उनका निदनीय रवैया उन्हें उस प्राकृतिक स्थिति से वचित कर गया, जा उनकी प्रतिभा तथा बलिदान न राष्ट्रीय आदालन नीति की रूपरेखा तैयार करन के लिए बता दी थी। पार्टी के झगडा से वह अप्रसन्न तो थे ही उन्हाने अपना ध्यान अधिक लाभकारी और कम विवादास्पद कार्यों की ओर केंद्रित कर दिया, विशेषकर अकाल पीडिता की सहायता के काम ने उन्हें आगामी कुछ महीना के लिये व्यस्त रखा।

बर्मा से उन्हें लगातार निमत्रण आ रहे थे, जिनमे जोरदार अनुरोध होता था। उनके मन में भी उस सुदर और रहस्यमयी भूमि को देखने की उत्कठा थी कि वह स्वतत्र घुमक्कड के रूप मे उस भूमि को देखें। उन्हाने बर्मा से निमत्रण स्वीकार कर लिया था और सम्मेलन समाप्त होने के तुरत बाद इलाहाबाद से ही वहा जाना चाहते थे। परन्तु स्वास्थ्य ठीक न होने के कारण उन्हे आराम के लिये घर लौटना पडा और जब वह स्वस्थ हुए तो वह इतने अधिक व्यस्त थे कि उस काम मे बिल्कुल देरी नही कर सकते थे। उत्तर प्रदेश के अकाल पीडिता को राहत पहुचाने का काम तुरत करना जरूरी था।

33. अकाल

सूरत के राजनीतिक परिणाम, परम्पराओ तथा विवादो से निपटने की हमारी चिन्ता ने कुछ घटनाओं का पूर्वानुमान कर लिया था। असल मे सूरत के बाद विवरण बम्बई से आरम्भ होना चाहिये, जो यात्रा का आरम्भ बिन्दु था, जो असल मे विजय-यात्रा बन गई, क्योकि प्रत्येक स्थान पर लोग इस बात के लिये उत्सुक थे कि निर्वासन से अभी-अभी लौटे नायक को देख तथा सुन सकें। उन्होंने लाहौर लौटने से पूर्व बम्बई, कलकत्ता, कानपुर और दिल्ली की यात्रा की।

बम्बई मे वह आर्य समाज शताब्दी के लिये समय पर पहुच गये। माण्डले दुर्ग के नायक के लिये बहुत ही उत्साहपूर्ण स्वागत प्रतीक्षा कर रहा था, जिसमे केवल आर्य समाज से सम्बद्ध व्यक्ति ही नही, बल्कि बम्बई के सारे नागरिक उत्सुक थे। बम्बई मे लाजपत राय की गतिविधिया सूरत-अधिवेशन के बाद के जीवन का प्रतीक समझी जा सकती थी—दो सार्वजनिक भाषण एक आर्य समाज के बारे मे, जिसमे श्रोताओ को डी० ए० वी० कालिज की और राष्ट्रीय शिक्षा के महत्व की जानकारी देना होती थी। दूसरा स्वदेशी के बारे मे और फिर अकाल-पीडित कोष के लिए धन एकत्र करने के लिए चक्कर। बम्बई से वह कलकत्ता चले गये, हावडा मे बहुत ही भव्य स्वागत हुआ, दो अभिनन्दन समारोह हुए—एक नागरिको की ओर से और दूसरा पूर्वी महानगर के छात्रो की ओर से, जो उन दिनो भारतीय युवको का नेतृत्व कर रहे थे। टाउन हाल म खचाखच सभा, जिसमे उन्होंने आर्य समाज के बारे म भाषण दिया (जिस प्रकार बम्बई मे उन्होने राष्ट्रीय शिक्षा के बारे मे दिया था) और अकाल पीडियो की सहायता के बारे मे तथा "जनसमूह के कार्य के लिये" अगले दिन सुरेन्द्रनाथ बनर्जी की अध्यक्षता मे सभा हुई, तो सारा कलकत्ता माण्डले के नायक को सुनने के लिए उमड पडा था, यद्यपि सारा समय बूदाबादी होती रही थी। कानपुर म उन्होंने लोगो को स्वदेशी का उपदेश दिया और भूख से मर रहे लोगो की सहायता के लिए आवश्यक रूप से धन देने का आग्रह किया। इस विजय यात्रा के अन्तिम पडाव, दिल्ली मे भी

वही कहानी दोहराई गई। भारी मात्रा मे पुष्प-वर्षा तथा पुष्पमालाए भेंट हुई, प्रशसा मे कविताए पढी गई, जुलूस निकाले गये और अभिनन्दन-पत्र पढे गये। उन्हें उनके मेजवान के घर से 'पत्नी मल की हवेली' एक गाडी मे ले जाया गया, जिसे उनके जोशीले प्रशसक खीचकर ले गये, हवेली मे उनके श्रोता उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। अपन उत्तर मे वहा भी उन्होने यही कहा कि पडौस के जिला म व्यापक सख्या मे भूख से मर रहे लोगो की सहायता की आवश्यकता है, उसके लिए धन चाहिए, इस काम मे कोई विलम्ब नही हो सकता। लाहौर लौटकर भी उन्होंने उसी काय के लिये धन की अपील की—पहले रविवार प्रात होने वाली आय समाज की साप्ताहिक सभाओ मे और फिर समाचारपत्रो के कालमो द्वारा।

वह अधिक समय के लिये लाहौर नही ठहरे। फरवरी 1908 के दूसरे अध म हम उन्हें सयुक्त प्रात मे अकाल सहायता के लिये दौरा करते देखते हैं। आगरा नगर तथा जिला बहुत बुरी तरह प्रभावित थे और उनकी ओर उन्होंने विशेष ध्यान दिया। आगरा मे उन्हें आय मित्र सभा की ओर से अभिनन्दन पत्र भेट किया गया तथा थैली भी और स्वदेशी बाजार मे उनके श्रोताओ ने उनकी अपील पर वही एक हजार रुपया जमा कर दिया—यह राशि उन दिनो एक काफी बडी रकम होती थी। सयुक्त प्रात की बारह दिन की यात्रा के बाद उन्होने समाचारपत्रो को अपने हस्ताक्षरो से विवरण भेजा जिसमे जो उन्होंने देखा था उसकी जानकारी दी। वह लोगो को बता रहे थे कि सरकारी एजेंसी चाहे जितनी भी अधिक कुशलता से काम करे, काफी काम नही कर पाती। यह काय बहुत बडा है और इसके अतिरिक्त उनके विचार म व्यापक आधार पर, सावजनिक तौर पर सगठित किया जाना चाहिए। राहत काय लोगो को आत्म निभरता तथा एकता के लिये अमूल्य प्रशिक्षण दे सकता है। असल मे अफसरशाही एजेंसी अधिक कुशलता का दावा भी नही कर सकती थी। उन्हें सरकारी ढाचे मे इस काम के लिये काफी त्रुटिया देखने का बहुत अवसर मिला। आगरा मे उन्होंने देखा कि एक निधन परिवार मे 47 व्यक्ति सरकारी सहायता पर जी रहे थे, जिनके भोजन आदि का मासिक खच 120 रुपये से अधिक नही था, परन्तु सरकारी कमचारी—एक निरीक्षक, एक अस्पताल सहायक, एक लेखाकार, दो सेवादार, एक चौकीदार, एक रसोइया तथा एक भिश्ती—

कई स्थानो पर उनके कायकर्ताओ को सरकारी तत्र से काफी सहायता तथा सहयोग मिला। उत्तर-पश्चिम रेलवे ने आरम्भ मे ही घोषणा कर दी थी कि अकाल पीडित क्षेत्रो के लिये जाने वाला सामान और जिसके बारे म लाजपत राय प्रमाण दे देंगे, उसके लिए आधा भाडा लिया जाएगा। इसी प्रकार की रियायत (लाजपत राय द्वारा प्रमाण पत्र देने की शत पर) बाद मे ईस्ट इडियन रेलवे न भी घोषित कर दी।

बाद से जाकर सहायता यू०पी० की सीमा से बाहर भी दी गई। शायद जब दान देने का सिलसिला समाप्त कर दिया गया था, तो कुछ फालतू सामान बच गया था। इसलिए उन्होने उन स्कूली बच्चो से प्रार्थनापत्र मागे, जो सहायता चाहते थे। एक अ य विज्ञप्ति म उन्होने अपने कुछ दानवीरो से धन का इस उद्देश्य के लिये इस्तेमाल करने की आज्ञा देने का आग्रह किया था।

सवत्र भुखमरी के इस सघप ने लाजपत राय को भारत की सबसे अधिक गभीर और विकट समस्या—लोगो की दरिद्रता की भयकर जानकारी दी, जो आकडो की पुस्तका तथा उनमे छपे हुए ब्यौरो से किसी भी राजनीतिज्ञ को प्राप्त नही हो सकती। कई बार यह जानकारी उन्हें बिल्कुल ही तोड देती और वह निराश हो जाते। अकाल के दृश्यो के बारे मे उनके एक लेख से उद्धरण इस प्रकार है

'ऐसा दिखाई पडता था कि उनमे से बहुत से लोग मौत के किनारे पहुच गये है। हम चुने हुए लोगो को सहायता देना चाहते थे और हमने कुछ लोगो को ही दान दिया। जब हमे ऐसा करते हुए देखा गया, तो बच्चो तथा अन्य लोगो की पूरी फौज हम पर चढ आई और सहायता के लिए चिल्लाने लगी। कुछ स्वयसेवको ने मुट्ठी-भर सिक्के उनकी ओर उछाल दिये और उसके बाद जो दृश्य देखने मे आया, वह इतना करुणात्मक और हृदय विदारक था कि मुझे उन्हें ऐसा करने से रोक देना पडा।

"इसी शिविर मे मेरे मन म यह विचार गभीरता से आया कि क्या यह अधिक मानवीय न होगा यदि इन्हें मरने दिया जाये, क्योकि उनमे अधिकतर तो आखिरकार मरेंगे ही।"

कई बार इस निराशा में प्रकाश फैल जाता है, सामान्य "आशा की किरण" के कारण या "हर बुराई में अच्छाई की झलक" की बात के अनुसार नहीं, बल्कि अंतर्मन मन स्थिति के कारण—जो सामान्य तौर पर दान देते समय उत्पन्न नहीं होती थी। दरअसल, उनमें से जो अधिक कठोर भी हों उन्हें भी विक्षुब्ध कर दे। लाजपत राय ने अकाल के बारे में लिखे एक लेख में इसकी चर्चा करते हुए इसे "दिव्य दर्शन" कहा है, यद्यपि इस प्रकार के दृश्य अंत में विषाद में वृद्धि ही करते थे।

"इस सारी दुर्दशा में मैंने एक ऐसा दृश्य देखा, जिसने मेरे मन पर और ही प्रकार का प्रभाव डाला। दस-बारह वर्ष की एक बालिका, बहुत ही छोटी सी, जो सिर से पांव तक नंगी थी सिवाय एक चीथड़े के जो उसने शील ढांपने के लिये कमर पर बांधा हुआ था, मिट्टी की एक टोकरी उठाए हुए थी और बराबर मुसकरा रही थी। ऐसा दिखाई पड़ता था कि अपनी आत्मा में वह अपने चारों ओर सारे संसार पर हंस रही हो—इस परम्परागत बेहूदे संसार पर जिसमें विषमताएं और मतभेद भरे पड़े हैं—उस संसार पर जिसमें मामूली तथा अस्थाई वस्तुओं की खातिर झगड़े तथा संघर्ष होते हैं और वह बालिका आसपास की दुर्दशा के प्रति उदासीन रहते हुए प्रसन्न है।

"ज्योंहि मेरी आंख निष्कपटता के देवदूत पर पड़ी, मेरे पांव उस जगह पर जकड़ गये। मैंने उसकी ओर देखा और मुसकरा दिया। बिना झिझक, प्रेम के आवेग से विवश, मैं उस बालिका की ओर बढ़ा और स्नेह से अपना हाथ उसके सिर पर रख दिया। मेरे मन में अगला आवेग था कि मैं उसे चूम लूं और उसे कुछ पैसे दे दूं। पहले आवेग से तो मैं इसलिए रुक गया कि आसपास खड़े लोग मेरी इस कारवाई को हास्यास्पद समझेंगे और दूसरे आवेग में मैं इसलिए रुक गया कि उसकी सौम्यता का इस प्रकार मूल्य आंकने से वह पवित्र आत्मा हतोत्साहित होगी। यह सब कुछ चंद एक मिनटों में ही हुआ। वह छोटी बालिका अपनी टोकरी लेकर चली गई और मैं भारी मन लेकर वहां से चल दिया।

"दोपहर के बारह बज चुके थे जब हम उस स्थान से रवाना हुए। उस दृश्य ने मेरे मन पर निराशाजनक प्रभाव डाला, जिसे मैं सारा दिन दूर न कर सका"।

"ऐसे दर्शन" उन्हें नेकी करने वालों के कार्य से अलग करता है, चाहे वे कैसे ही अच्छे उद्देश्य वाले क्यों न रहे हों।

34. फिर इंग्लैंड मे

23 अगस्त 1908 को उनके मित्रो ने, जिनमे से कई नगरेतर स्थानों से थे, उन्हें लाहौर रेलवे स्टेशन पर विदाई दी। 29 अगस्त को लाला लाजपत राय चुपचाप एस० एस० मार्मोरा द्वारा बम्बई से इग्लैंड के लिये रवाना हो गये।

उस समय तक तिलक को छ वर्ष की बडी कैद की सजा हो गई थी, अरविंद घोष को अपने समाचारपत्र क लेखो के लिये गिरफ्तार कर लिया गया था और उनकी बहन ने मुकदमा लडने के लिए धन एकत्र करने के लिए सार्वजनिक अपील की थी। पजाब तथा अन्य कई स्थानो पर राष्ट्रीय समाचारपत्रो के विरुद्ध राजद्रोह तथा अन्य कई आरोपो के सबध मे मुकदमे चल रहे थे। लाल-बाल-पाल की त्रिमूर्ति मे से बाल को बर्मा निर्वासित कर दिया गया था—छ वर्ष के लिए, अपनी प्रसिद्ध रचना 'गीता रहस्य' लिखने के लिए—जहा से पाल अभी पिछले वर्ष ही निर्वासन से लौटे थे। लाल फिलहाल दलगत राजनीति से अलग थे, यद्यपि आम लोगो के लिये त्रिमूर्ति अभी कायम थी। कई लोग समझते थे कि अरविंद वह व्यक्ति हैं जो तिलक के साथ मिलकर राष्ट्रवादी नीतियो के लिये काय करते तथा रूप-रेखा तैयार करने के लिये जिम्मेदार हो सकते हैं, वह भी अब स्वतत्र नही थे। पाल ने सूरत अधिवेशन के बाद दक्षिणी प्रेजीडेंसी की धडल्लेदार विजय यात्रा की थी, परन्तु उस यात्रा की समाप्ति के बाद उन्होंने भी यूरोप चले जाने का निणय कर लिया था, ताकि "ब्रिटिश लोगो तथा यूरोप और अमरीका के विश्वव्यापी महत्व के नेताओ को बता सकें कि "भारत मे क्राति अवश्य आएगी यह क्राति शान्तिमय ढग से आएगी या और ढग से, यह बात बहुत हद तक उनकी अपनी नीति पर निभर करती है।' तिलक के प्रथम सहायक, जी० एस० खापर्डे, भी लगभग उन्ही दिनो यूरोप चले गये।

लाजपत राय के लिये राजनीतिक स्थिति की अच्छी तस्वीर लेकर जाने की सभावना नही थी। विच्छेद ने आदोलन को कमजोर कर दिया था, जैसा

कि उन्हें आशंका थी कि सरकार ने दमन की नीति आरम्भ कर दी थी—और विच्छेद ने उनकी सहायता की। राष्ट्रीय उत्साह की लहर अभी समाप्त नहीं हुई थी, परन्तु इसके लिये दिशा की बहुत आवश्यकता थी। उत्साही युवक, जिन्हें खुले आंदोलन में अपने उत्साह को संतुष्ट करने के लिये कोई मार्ग न मिला, वे आतंकवादी गुप्त संगठन में आंदोलन के लिये नई भर्ती के लिये उपलब्ध होते थे। आतंकवादियों के एक महत्वपूर्ण मामले में बंगाल में मुकदमा चल रहा था। जहाज पर ही लाजपत राय को पता चला कि इस मुकदमे ने अचानक नाटकीय मोड़ ले लिया था और वायदा माफ गवाह नरेंद्र गोसाईं की कन्हाई लाल दत्त और सत्येंद्रनाथ बोस ने हत्या कर दी थी।

1905 में वह निश्चय ही कांग्रेस प्रतिनिधि के तौर पर यूरोप गये थे। इसके अतिरिक्त वह वहां कई चीजें देखना तथा उनका अध्ययन करना चाहते थे। इस बार न तो कोई निश्चित बुलावा था और न ही निश्चित उद्देश्य। उन्होंने दूसरी यात्रा का निर्णय क्यों और किस मन स्थिति में किया, इसके बारे में ब्यौरेवार जानकारी उन्होंने जहाज पर से जसवन्त राय के लिये एक पत्र में दी जो 'द पंजाबी' में प्रकाशित किया गया (जैसा कि प्रत्यक्ष तौर पर इसका उद्देश्य था)।

उन्होंने बताया कि किस प्रकार "कुछ प्रमुख मित्रों ने बीत चुकी अप्रैल में उन पर इंग्लैंड की यात्रा करने के लिये जोर दिया" और किस प्रकार उन्होंने इन्कार कर दिया, क्योंकि वह अकाल पीड़ितों की सहायता के काम में व्यस्त थे, तथा बाद में इसलिए कि "अफवाहें गरम थीं कि बम फेंकने के सिलसिले में तलाशियां अवश्य होती थीं और राजद्रोह के सिलसिले में गिरफ्तारियां की जा रही थीं, विशेषकर उन लोगों की जिनके बारे में मुझे कुछ रुचि थी।"

फिर उनके पत्र में—जसवंत राय तथा उनके समाचारपत्र के पाठकों को—यह जानकारी दी गई थी कि किन कारणों से वह विदेश जा रहे थे और उन्होंने यह जानकारी कुछ अधिक विस्तार से दी थी

'खर, हकीकत यह है कि मैं लाहौर के जीवन से ऊबता जा रहा था। मुझे उस उत्साह भंग का, जो जीवन में आ गया था, कोई ख्याल नहीं था।

जब से निर्वासन का आदेश हुआ था, तथ्य स्पष्ट होने लगे। एक एक करके उन प्रमुख व्यक्तियो के बारे में घटनाओ का पूरा सिल सिला स्पष्ट होता गया, जिन्होंने निर्वासन के लिये तथा उसके बाद के उत्साह भग के लिये महत्वपूण भूमिका निभाई थी। कोई भी व्यक्ति किसी गुट के ईमानदार वफादारो, स्पष्टवादी और सच्चे मिताचारियो, और नेकनीयत उग्रवादियो को तो सहन कर सकता है, परन्तु किसी भी गुट के ढोंगिया, दभियो और देश द्रोहियो को सहन नही किया जा सकता। क्या ईमानदार लोगो के लिये उन लोगो के साथ काम करना समव है, जो वफादार, मिताचारी और उग्रवादी होन का दिखावा करे और इससे अधिक मुखबिरी भी करे, जैसा उनके हितो तथा उनकी जेबो के लिये उचित हो ?

"अब, यदि हम उन बातो के जो लाहौर मे हा रही है, पचासवें भाग पर भी विश्वास करे कि कुछ लोगो ने पिछले सकट मे अपने आपको वफादार और मिताचारी नेता व्यक्त किया तो हम यही कह सकते हं, "भगवान हमारे देश को ऐसे देशभक्तो से बचाये।"

परन्तु मिताचारिया और मिताचारियो मे भी निस्सदेह अन्तर था, मालवीय और बाबू सुरेद्र नाथ जैसे अपवाद भी थे। उनके मन मे उनके विरुद्ध कुछ नही था। परन्तु —" आप उन लोगो के बारे मे क्या सोचेंगे जिनकी वफादारी, मिताचारियत और उग्रवाद, उस धन की मात्रा के साथ बदल जाता है जो वे एक से या दूसरे से पैदा कर सकते है, जिनमे इतना भी नतिक सकोच नही कि वे जासूसी और मुखबिरी का काय न करे, यदि ऐसा करने से उनके जीवन का कोई उद्देश्य पूरा होता है या उनके दर्जे मे वृद्धि होती हो तो वे दड-मुक्ति की भावना से अपनी सख्या मे वृद्धि कर लेंगे। ऐसा दिखाई पडता था कि लाहौर मे ऐसे लोगो की भरमार है। आप यह भी नही जान सकते थे कि किस व्यक्ति के साथ विश्वास के साथ बात करे तथा किस पर भरोसा करे। कुछ लोग ऐसे है जो सम्मानित पदा पर है, बहुत आदरणीय लिबास पहनते हैं, उनका एकमात्र या मुख्य धधा यही दिखाई पडता है कि वे अधिकारिया तक कहानिया पहुचाए, सच्ची अथवा झूठी या मामूली बाता को बढा चढाकर। पिछले दो तीन मास मे अक्सर यही हुआ है कि मुझे इस बात पर खेद हुआ है कि आय समाज मे अधिक सौम्य वातावरण

म जो मुखद काय मैं कर रहा था, मन अपने आपको उससे हटा लिया है। आय समाज, ब्रह्मो समाज या किसी अन्य सभा या समाज मे बिल्कुल सामाजिक तथा धार्मिक काय करने वाले लोग तो कम से-कम विश्वसनीय होन ही हैं। लाहौर से बाहर के लोग यह सोच भी नही सकते कि पिछले राजनीतिक सकट मे लाहौर के समाज ने अपना कितना नैतिक पतन कर लिया है। यू लगता है कि उम्र भर की मित्रता का बिना किसी खेद के धोखा द दिया गया है। जीवन भर की शत्रुता की भी उचित ढग से तुष्टीकरण की गुजाइश पैदा हुई है। इसमे आप वह चिन्ता भी शामिल कर लीजिए जो म अपने विरुद्ध लगातार जासूसी के कारण महसूस करता हू, फिर आप तथा अय मित्र यह जान जाएंगे कि मैंने अपने आपको अपने परिवार तथा अपन काय से कुछ समय के लिए अलग करने का निर्णय क्या किया, इस आशा के साथ कि शायद भारत मे मेरी अल्प अनुपस्थिति से मेरे मन का सतुलन कुछ ठीक हो जाये और मैं अपना काय अधिक आशावादी मन स्थिति मे फिर से आरम्भ कर सकू।"

यही दुर्गन्ध थी जिसने उन्हे बाहर जाने पर मजबूर किया, वह इसे और अधिक सहन न कर पाए "जासूसी" की छेड छाड सागर यात्रा के दौरान भी जारी रही — जिसकी अक्सर अपनी ही विनोदशीलता होती थी। समाचारपत्र के उस परे मे, जिसमे लाजपत राय की लाहौर से रवानगी की खबर दी गई थी, लिखा गया था "बताया गया है कि लाला लाजपत राय के लिये जो दिवतीय श्रेणी का डिब्बा आरक्षित था, उसके साथ का प्रथम श्रेणी का डिब्बा पुलिस के एक मुसलमान उप-अधीक्षक को दिया गया था।" ऐसा जान पडता है कि मुसलमान पुलिस अधिकारी लाजपतराय के साथ जहाज पर नही गया—परन्तु वहा एक यूरोपियन था और उसके लिए काफी कठिनाई भी हुई, जब मार्सेल्स मे भारतीय छात्रो की जोशीली भीड, जो भारतीय युवको के उस नेता के स्वागत के लिए एकत्र हुई थी, रेलगाडी पर चढ गई और उसे डिब्बे से बाहर निकलने पर मजबूर कर दिया। उसे अपना स्थान बदलना पडा और वह किसी-न किसी तरह लदन पहुच गया, ताकि लाजपत राय की गतिविधिया पर नजर रख सके। जसवत राय को लिखे पत्र मे आगे लिखा गया है और इस बारे मे विचार किया गया है कि पजाब म राजनीतिक काय किस प्रकार चलना चाहिये, किस प्रकार पजाब

को मिताचारी और उग्रवादी नामो के नीचे लडते हुए गुटो म नही बटना चाहिए और किस प्रकार का राजनीतिक नेता तथा कार्यकर्ता ढूढना और प्रोत्साहित किया जाना चाहिये।

पत्र के अन्तिम पैरे मे जहाज पर अपनी सगति के बारे मे उन्होने कुछ चर्चा की है और हमे पता चलता है कि जहाज पर कोई दस-बारह पजाबी छात्र थे, जो ब्रिटिश विश्वविद्यालयो मे जा रहे थे, कुल मिलाकर 30–40 भारतीय जहाज पर सवार थे, जिनमे टैगोर परिवार की एक बगाली महिला भी थी और श्री ए० चौधरी भी थे। "हमने आज चपातिया, सब्जी तथा कढी प्राप्त करने की व्यवस्था कर ली थी। लडके रोटी को तरस गये थे और उन्होने इस परिवर्तन की सराहना की।"

वह बिना किसी निश्चित उद्देश्य के गये थे, और जैसा कि उन्होने कहा है कि वे देश से बाहर जाने पर मजबूर हुए थे, क्योकि उनकी आत्मा निराशा से द्रवित हो गई थी। उस] निराशा से जो आसपास के समूचे सार्वजनिक जीवन मे आई गिरावट को देखकर पैदा हुई थी, परन्तु इसका यह अर्थ नही कि उन्होने देश के हित के लिए जब भी अवसर मिला कार्य नही किया। हम पहले ही देख चुके हैं कि वह बहुत ही साधन सम्पन्न प्रचारक थे, जिन्हें प्रचार के लिए अवसर पैदा करने की पूरी जानकारी थी। जो भी अवसर मिलता उसे प्रचार के लिए इस्तेमाल करने का उन्हें ज्ञान था। उन्होने समाचारपत्रो मे लिये लिखा तथा मच से भाषण भी दिये। यदि भारतीय आन्दोलन के शत्रुओ ने ब्रिटिश समाचारपत्रो मे गलत तथ्य दिये या गलत बयानी की, तो उन्होने इस अवसर से पूरा लाभ उठाया।

महत्वपूर्ण ब्रिटिश समाचार पत्रो जैसे 'मानचैस्टर गार्डियन' और 'डेली न्यूज', ने उनके साथ भटवार्ता प्रकाशित की। ब्रिटिश पत्रकारिता के क्षेत्र मे उच्चतम स्थान प्राप्त व्यक्तियो ने उनके साथ भेंट की—उनमे नेविन्सन तथा स्टीड शामिल थे। 'रिव्यू आफ रिव्यूज' के लिये उनके साथ भेंट मे स्टीड ने उन्हें शानदार अवसर दिया—उसने भारतीय नेता से पूछा कि यदि वह भारत मे ब्रिटिश वाइसराय हो, तो वह क्या करेगे। लाजपत राय ने शायद अपने आपको इस स्थिति के लिए तैयार नही किया था, परन्तु

उन्हें "यह बिल्कुल अस्थायी नियुक्ति अन्य प्रबंध होने तक स्वीकार करनी थी" और जब उन्होंने केंद्रीय तथा प्रांतीय विधान मंडल तथा सरकारों के बारे में अपने विचार विनम्र ढंग से व्यक्त कर दिए, तो भेंटवार्ता करने वाले ने जो निष्कर्ष निकाला, उसका सार इस प्रकार है "दूसरे शब्दों में आप वाइसराय के पद को भारत में ब्रिटिश सरकार की कब्र खोदने के लिये इस्तेमाल करेंगे।" हमें हैरान होने की आवश्यकता नहीं यह "अस्थायी नियुक्ति" तुरंत समाप्त कर दी गई। नेविन्सन ने स्वयं भारत की समस्या तथा भारतीय आंदोलन का मौके पर जाकर स्वयं अध्ययन किया था और उनके बारे में उसके अपने विचार थे, इसलिए वह लाजपत राय से छोटे मामलों—फारी समस्याओं — के बारे में पूछना चाहता था। इसलिए लाजपत राय ने उसे गुप्तचर्या के बारे में तथा राजनीतिक बंदियों के साथ साधारण महापराधियों के समान व्यवहार करने के बारे में बताया।

किसी व्यक्ति ने — किसी भारतीय ने — 'डेली न्यूज' को लिखा कि हैदराबाद में व्यक्ति के जीने के लिये एक पैनी मूल्य की खुराक काफी है इसका लाजपत राय ने उपयुक्त उत्तर दिया, जिसमें भारत की कीमतों के बारे में आंकड़े दिये गये। "पंजाब के एक प्रचारक" ने उसी समाचार-पत्र को लिखा, जिसमें बेगार अथवा जबरन मजदूरी लेने को उचित ठहराया, उसे भी करारा उत्तर तुरंत मिला। स्वान्सी में बोलते हुए श्री लायड जार्ज ने "लिबरल युवकों को जो लिबरल निर्वाचन क्षेत्रों में थे" दोबारा प्रेरित होने की आवश्यकता पर बल दिया और कहा कि "विशेषाधिकार प्राप्त जाति राष्ट्र में साहस तथा पौरुष को कमजोर करती है। लोगों में दासता की भावना को समाप्त करने का निरंतर विरोध ही एकमात्र उपाय है।" लाजपत राय को चक्की के लिये इससे और बढ़िया मसाला मिल गया, उन्होंने तुरंत ही 'डेली न्यूज' को एक पत्र लिखा और कहा कि उदारवाद के सिद्धान्त विल मंत्री ने प्रतिपादित किये हैं। उन्हें सर्वव्यापी सत्य क्या न मान लिया जाये और भारत के संदर्भ में भी लागू किया जाये। इससे लाजपत राय की प्रचार के लिए उपाय कुशलता स्पष्ट हो जाती है।

उन्होंने व्यापक तौर से भ्रमण किया। क्लेपहैम में एस० के० रेडक्लिफ ने उनकी बैठक की अध्यक्षता की, वस्टबान पाक चपल संसद सदस्य जी० पी० गूच ने तथा अन्य स्थानों पर रम्से मैक्डोनल्ड तथा ओलिवर ने बैठकों

की अध्यक्षता की। अपने भाषण के अन्त मे वह ऐसे प्रश्नो का स्वागत करते जो तुरत और सटीक होते, क्योकि उनके उत्तर उनके भाषणो से अधिक लाभकारी होते थे। एक बार उनसे कहा गया कि "वह अनुमान बताए कि जिन करोडो लोगो की ओर से वह बोल रहे है कि हमे प्रतिनिधि सरकार दी जाये और उन सस्थानो के बारे म कुछ आकडे भी दें जिन्होने याचिकाए भेजी है, या वह कोई ऐसी विश्वसनीय जानकारी भी दें कि वह कुल आबादी के पाच प्रतिशत से अधिक लोगो की ओर से बोल रहे है। उनका सक्षिप्त परन्तु निर्णायक उत्तर था कि स्वय ब्रिटिश सरकार ने आदोलन के यथार्थ को प्रमाणित किया है। निर्वासन तथा दमन की क्या आवश्यकता हो सकती है, यदि कुल आबादी के केवल पाच प्रतिशत से निपटने की आवश्यकता हो।" उन्होने बडी हाजिरजवाबी तथा आकडो म प्रवीणता का प्रदर्शन किया। एक श्री पर्सीवल लडन 'डेली टेलीग्राफ' को 'भारतीय असतोष के बारे म पत्र लिखा करता था, इससे लाजपत राय को इस आरोप का खडन करने का बढिया अवसर मिला कि राष्ट्रवादी आदोलन ब्राह्मण प्रमुख का आदोलन है, तथा इस बेहूदा बयान का भी कि आर्यसमाजियो ने सिखो की वफादारी भ्रष्ट कर दी है। स्वय लाजपत राय के विरुद्ध आरोप थे, परन्तु उन्होने इतना कहने तक ही सतोष किया

"यह आरोप इस समय कलकत्ता उच्च न्यायालय के विचाराधीन है ताकि मने अपने विरुद्ध समाचारपत्रो मे अपलेख लिखने वालो के विरुद्ध जो मुकदमा दायर किया है उसका निर्णय हो सके। (लाजपत राय बनाम 'द इगलिशमैन') न्याय तथा औचित्य के नियमो के अनुसार चाहिये तो यह था कि आपका सवाददाता मेरे विरुद्ध इन आरोपो की उस समय तक चर्चा न करता, जब तक इनका मुकदमा समाप्त न हो जाता। परन्तु उसके मन मे मेरे विरुद्ध ब्रिटिश जनता के मन मे भ्राति पैदा करने की जो लालसा पैदा हुई थी, उससे वह बच नही पाया।"

हिदुओ के गैर सैनिक चरित्र के बारे म तिरस्कारपूर्ण चर्चा करते हुए श्री लडन ने अफगानो मे खतरे की बात की। इसका लाजपत राय ने बहुत असरदार उत्तर दिया।

"श्री लडन को अपना इतिहास और अधिक ध्यान से पढ़ना चाहिए था, ताकि स्मरण हो सके कि पजाब के हिन्दुओ के मन से अफगानो का हौवा ब्रिटिश के वहा जाने से बहुत पहले समाप्त हो चुका था। अफगान सीमा के बारे में जाच करवाने से स्पष्ट हो जाएगा कि एक क्षत्रिय जनरल का नाम क्षत्रिय— जिन्हे अब केवल रुपया उधार देने वाला वर्ग ही समझा जाता है — लेकर अफगान औरतें अपने छोटे बच्चो को डराया करती थी। हकीकत तो यह है कि सैनिक स्वभाव समय तथा परिस्थियो की उपज है। यह किसी वर्ग विशेष या जाति का एकाधिकार नही होती।"

लदन मे रहने वाले भारतीयो ने 16 अक्तूबर 1908 को राष्ट्रीय दिवस समारोह आयोजित किये। उन्होंने केक्सटन हाल मे एक सभा आयोजित की। लाजपत राय और विपिन चन्द्र पाल वक्ताओ मे प्रमुख थे। पाल ने कवितमय गद्य मे एक "आह्वान" किया। लाजपत राय ने कहा कि भारत मे राष्ट्रवाद का जन्म 16 अक्तूबर 1905 मे हुआ और वह आज उसकी तीसरी वर्षगाठ मना रहे ह।

हम लाजपत राय के प्रथम पत्र जो लैटर्स फ्राम अब्राड" से 'द पजाबी' मे प्रकाशित है की पहले चर्चा कर चुके हैं, कुछ पत्र तो मुख्य तौर पर उन स्थानो तथा घटनाओ का विवरण मात्र थे, जो लाजपत राय ने विदेश यात्रा के दौरान देखी। उदाहरण के तौर पर, दूसरे नबर का पत्र मुख्य तौर पर ऐंग्लो फ्रैंच कला तथा उद्योग प्रदशनी का विवरण था। यह प्रदशनी उन दिनो लगी हुई थी। उससे अगले पत्र मे प्रमुख तौर पर समाचारपत्रो का विस्तृत विवरण था, जो श्रीमती पैंकहर्स्ट तथा उनकी सहयोगी मताधिकार आदोलनकारियो की सनसनीखेज कारवाइयो के बारे मे था जो उन्होंने इग्लड मे महिला मताधिकार आदोलन के जोश भरे दिनो मे की थी।

इग्लड मे ठहरने के दौरान वह एक बार फिर श्यामजी के इडिया हाउस मे ठहरे। इस यात्रा के दौरान उनके जो नये सम्पर्क अतिवादी तथा क्रातिकारी क्षेत्रो मे बने उनमे रूस का अराजकतावादी राजकुमार क्रोपोटकिन भी था, जिसे उन दिनो यूरोप का सर्वोच्च क्रातिकारी लेखक तथा दार्शनिक समझा जाता था।

गायने के साथ वह विल्फेड स्केविन ब्लट से मिलने गये। उसने इन दो भारतीय नेताओं के बारे में अपनी 'डायरीज' में चर्चा की है। जवाहरलाल नेहरू ने अपनी आत्मकथा (आटोबायोग्राफी)* में उसकी चर्चा की है, जो ब्लट ने लिखा है (1909 में) "उसका रवैया दोनों के प्रति बहुत कड़ा है, क्योंकि वह दोनों को हकीकत का सामना करने से डरने वाले और अत्यधिक सावधान महसूस करता है। फिर भी, लालाजी ने इन परिस्थितियों का अन्य भारतीय नेताओं की तुलना में अधिक मुकाबला किया," इससे जवाहरलाल नेहरू ने निष्कर्ष निकाला, "ब्लट का यह प्रभाव हमें अहसास करवाता है, कि हमारी राजनीति की गति कितनी धीमी थी तथा एक योग्य तथा अनुभवी विदेशी ने उनसे किस प्रकार प्रभाव ग्रहण किया।"

"एक दशक" (और एक विश्व युद्ध) में क्या अन्तर आया, निस्संदेह यह बात इसका सही मूल्यांकन करने के लिए काफी है कि हम महात्मा गांधी के युद्धपूर्व तथा युद्धोत्तर रवैये के अन्तर को देखें, जिसमें उन्होंने सविनय अवज्ञा की भावना जगाई, यह ब्लट की राय से अधिक महत्वपूर्ण है। यह बड़ी रोचक बात है कि यह "योग्य तथा अनुभवी विदेशी" खापर्डे से बहुत प्रभावित हुआ था, जिसके बारे में जवाहरलाल नेहरू ने लिखा था कि "बाद के वर्षों में वह फाख्ता के समान सौम्य और मिताचारियों के लिये भी बहुत ही मिताचारी हो गया था।" शिमला में रासबिहारी घोष द्वारा दिये गये रात्रिभोज के अवसर पर खापर्डे के साथ हुई भेंट में, जवाहरलाल ने बताया कि खापर्डे ने "गोखले की आलोचना शुरू कर दी (जिनका कुछ वर्ष पूर्व देहांत हो चुका था) उसने कहा था कि वह एक ब्रिटिश एजेंट थे जिन्होंने लन्दन में उसकी मुखबिरी की थी। हमें विश्वास करना चाहिये कि उन्होंने योग्य तथा अनुभवी विदेशी का मनोरंजन किया। ब्लट की 'डायरीज' में खापर्डे की चर्चा से हमें भारतीय राजनीति का "स्वभाव" शायद संतोषजनक लगे। गोखले तो भारतीय राजनीति में केवल एक विचारधारा का प्रतिनिधित्व करते थे — परन्तु वह इसका बढ़िया नमूना थे। ब्लट ने मिताचारी मत के प्रति अपनी घृणा को छुपाया नहीं। लाजपत राय के लिये गोखले की संगति में ऐसे व्यक्ति से मिलना कठिनाईपूर्ण ही रहा होगा जबकि (मुख्यतौर पर मौर्ले सुधारों के कारण) उनकी राजनीति के मार्ग अलग हो चुके थे। फिर भी लाजपत राय

*पृष्ठ 64

को यह विचार अधिक अच्छा नहीं लगा होगा कि एक विदेशी के साथ पहली ही मुलाकात में मार्ग अलग होने की चर्चा की जाये। यह दुर्भाग्य की बात है कि ब्लंट के साथ उनकी पहली मुलाकात गोखले की उपस्थिति में हुई, जब वह गोखले के प्रति व्यक्तिगत आदर के कारण लगभग चुप ही रहे और इस प्रकार उन्होंने राजनीतिक दृष्टिकोण में "अस्पष्ट" होने का प्रभाव दिया। ब्लंट की 'डायरीज' में लाजपत राय और खापर्डे के उल्लेख की यदि ध्यानपूर्वक जांच की जाये, तो इससे बहुत कुछ पता चलेगा। यह एकदम निश्चित जान पड़ता है कि ब्लंट ने अपनी 'डायरीज' में तिथि क्रम का बहुत ध्यान नहीं रखा और उसने लाजपत राय के बारे में जो लिखा है वह पांच मास बाद खापर्डे के साथ भेंट होने के पश्चात उसके मन में आया। निस्सन्देह, खापर्डे ने ब्लंट को बताया था कि लाजपत राय किसी खास महत्व का व्यक्ति नहीं। संभव है ब्लंट 'स्टोरी आफ माई डिपोर्टेशन' की गैर-लेखेवाराना शैली से प्रभावित न हुआ हो, परन्तु उसके कुछ पन्नों पर दी गई टिप्पणी में यह लिखा गया है कि लेखक ने यह स्वयं उसे भेंट की थी, पढ़ने में गर्वपूर्ण लगती है। वह पुस्तक पढ़ने के बाद टिप्पणी कर सकता था—ऐसा दिखाई पड़ता है कि उसने यह खापर्डे द्वारा बतायी गई बातों की रोशनी में लिखा। यह अधिक संभव दिखाई पड़ता है कि ब्लंट ने जब यह टिप्पणी की कि अच्छा यही होता कि भारत किसी तेज तर्रार प्रतिनिधि को भेजता, जिसके होंठों पर मेरे मित्र के समान गालियां होतीं, ताकि अतिवादियों को पता चल पाता कि भारत में ऐसे व्यक्ति भी हैं जिनसे डरना चाहिए, तो दरअसल वह खापर्डे की चर्चा कर रहा है जिसने आगामी अक्तूबर में उनसे भेंट की थी और हाइंडमैन ने उसका परिचय कराया था।

35. लाहौर अधिवेशन में भाग न लेना

मार्च 1909 म लाजपत राय भारत लौट आये, लाहौर के उन्ही पुरान गुटा तथा विवादा मे। लाहौर के नेता काग्रेस के आगामी अधिवेशन के लिये बडे जोश मे थे, यद्यपि अधिवेशन मे अभी कई महीने बाकी थे। एक गुट स्वागत समिति के प्रबधा का आगे बढा रहा था, जबकि दूसरा गुट काग्रेस अधिवेशन के पक्ष मे नही था—पजाब मे तो कदापि नही।

सारे आवश्यक पहलुओ मे राष्ट्रवादियो के राजनीतिक मत को अपना कर, वे एक की खातिर मिताचारियो के सम्मेलन मे शामिल हुए। परन्तु उन्हें यह समझने मे अधिक समय न लगा कि मिताचारियो के सुराख मे राष्ट्रवादी खूटी बिल्कुल ही अनुचित बात थी। एकता के लिये उनके प्रयत्न बिल्कुल असफल हुए। यदि कोई उम्मीद बची थी, तो वह तिलक को माडले भेज देन के साथ समाप्त हो गई। तिलक को तो वह सहमत कर सकते थे, परतु तिलक समथको को कदापि नही कर सके। उन्होने यह भी देख लिया था कि मिताचारी अपने गलत ढग से सोचे गए सक्रिय विरोध को किस प्रकार व्यक्त करते हैं—वह भी उनकी "आशा का प्याला खाली" कर रहे थे और अपने इस जोश मे इस बात से भी अनजान थे कि इस लगातार सघर्ष मे कही प्याला स्वय ही टूट न जाये, राष्ट्रवादियो के प्रति इस विरोध के कारण सरकार इस योग्य हो गई थी कि दमन की नीति अपना सके, ताकि वामपथी गुट को कुचला जा सके और इसके परिणामस्वरूप समूचा राजनीतिक आदोलन कमजोर पडा और राष्ट्रीय काग्रेस बेजान हो गई।

उन्होने सूरत के विच्छेद तथा उसके परिणाम के बारे मे बहुत ही स्पष्ट तौर पर 'द पजाबी' मे प्रकाशित एक पत्र मे लिखा (जुलाई 1909) जो इस विवाद से उत्पन्न विचार के कारण लिखा गया कि दिसबर 1909 म काग्रेस अधिवेशन लाहौर मे होना चाहिए या नही? इस शानदार पत्र के आरभ से ही उन्होने उस प्रतिबध की चर्चा की जो उन्होने स्वय अपने आप पर लगाया था

"सार्वजनिक जीवन का जो थोडा बहुत अनुभव मुझे था, उसने मुझ पर यह बात स्पष्ट कर दी थी कि मैं उस विवाद से अलग ही रहूं।

दिसंबर 1907 में सूरत म काग्रेस मे जो विच्छेद हुआ था और काग्रेस मे जो विवाद छिडा था, उसके प्रति यही मेरा रवया था, और है। अकाल सहायता के लिये अपनी यात्राओ के दौरान मने बार-बार उन प्रश्नो के उत्तर देने से इन्कार कर दिया, जो मेरे विचार जानने के लिये थे कि इस विच्छेद के लिये कौन सा गुट जिम्मेदार था और कहा तक ?"

परन्तु अब कुछ बदली हुई परिस्थितियो मे वह अपने ऊपर लगाया प्रतिबंध किसी हद तक नम करते जा रहे थे। अब उन्होने लिखा

"सर फिरोजशाह मेहता और श्री गोखले के लिये मेरे मन म उच्चतम आदर तथा प्रशंसा है। म समझता हू कि सर मेहता बहुत ही योग्य, बहुत ही सुसयत और अपनी परिस्थितियो के अनुसार बहुत ही साहसी भारतीय राजनीतिज्ञ हैं। श्री गोखले की देशभक्ति तथा उच्च विचारो पर सदेह नही किया जा सकता। उनकी निष्कपटता पर सदेह करना सारे देश म निष्कपटता के अस्तित्व पर सन्देह करना है। परन्तु यह विचार रखते हुए भी इस नीति की बुद्धिमत्ता पर ईमानदारी से सदेह किया जा सकता है, जो 1907 के दुर्भाग्यपूर्ण विच्छेद के बाद लगातार अपनाई जा रही है। सूरत की घटनाओ की मुझसे अधिक कोई निन्दा नही कर सकता। मेरे लिए यह साधन का कारण है कि कोई भी व्यक्ति उन घटनाओ की उस व्यक्ति से अधिक निन्दा नही कर सकता, जो देश म इनके लिये सीधा जिम्मेदार समझा गया था। श्री तिलक की मुख्य गलती (जिसके लिये वे निर्वासन की सजा भुगत रहे है) यह थी कि पार्टी का नेतृत्व करने की बजाय उन्होने पार्टी के कुछ अनियंत्रित व्यक्तियो को अपना नेतृत्व करने दिया। सूरत म दो बार मेरे अनुरोध पर वह रासबिहारी घोष के निर्वाचन का विरोध छोड देने के लिए तैयार हो गये और उन्होने कलकत्ता के चार प्रस्तावो का मामला विषय समिति पर छोड देना भी मान लिया था, परन्तु जसे ही म उनसे अलग हुआ, उन्होंने चारो ओर के बहुमत के सामने, जिससे वे घिरे हुए थे अपने आपको असहाय पाया। परन्तु जहा यह सत्य है कि तिलक की पार्टी सूरत की घटनाओ के लिये प्रत्यक्ष तौर पर जिम्मेदार थी, क्या कोई व्यक्ति इस बात से इकार कर सकता है कि दूसरे गुट के नेता भी विच्छेद के लिये चिन्तित थे और यदि उनकी मन स्थिति भिन्न होती, तो वह अपनी साधन

सम्पन्न उपयोगिता से इन घटनाओं को टाल सकते थे ? मेरी राय यह है कि यह बात देश के अधिक हित में है कि जिस पार्टी को 'मिताचारी' कहते हैं वह कांग्रेस के प्रबंध पर नियंत्रण रखें, परन्तु दूसरा गुट भी कांग्रेस में ही रहे और अपने प्रभाव को उसी ढंग से इस्तेमाल करे, जिस प्रकार सभी शक्तिशाली अल्पसंख्यक गुट करते हैं। इसी राय के प्रभाव के अधीन, सम्मेलन में शामिल होकर मैंने समझौते के लिये काम करने का इरादा बनाया था, परन्तु मुझे यह समझने में अधिक देर न लगी कि इस आशय के लिये मेरे प्रयत्नों को गलत समझा जाता था, इसलिए प्रारंभिक अवस्था में ही यह प्रयत्न छोड़ देने पड़े। उस समय से ही दोनों ओर से कई शुभचिन्तक मित्रों द्वारा समझौता कराने के प्रयत्नों को घृणाभरे ढंग से ठुकरा दिया गया और इस समय इन प्रयत्नों के फिर से शुरू किये जाने की कोई संभावना नहीं है। मेरे जैसे साधारण व्यक्ति को ऐसा दिखाई पड़ता है कि मिताचारी "राष्ट्रवादी" अपनी राजनीति में गलती कर रहे हैं, जिसके कारण विच्छेद एक "दृढ़ तथ्य" बन रहा है।

मेरी जोरदार राय है कि भारतीय राष्ट्रीय पार्टी के अति वामपंथी गुट को खत्म करना स्वयं कांग्रेस के लिए गंभीर खतरा है। मिताचारी नेताओं को शायद इसकी जानकारी तब हो, जब बहुत देरी हो चुकी हो। मेरी सोच का आशय यह है कि इंग्लैंड में सरकार बदल जाने के साथ, भारत में उपनिवेशी सरकार के समर्थकों के तौर पर उनकी स्थिति अयुक्तियुक्त हो जाएगी। हवा का रुख पहले ही उस ओर हो चुका है। "26 फरवरी को हाउस आफ लार्ड्स में इंडियन कौंसिलस बिल के दूसरे वाचन के लिये पेश करते हुए अपने द्वितीय भाषण में लार्ड मोर्ले ने इस ओर हल्का सा संकेत भी दिया था। वह चाहे कुछ भी हो, एक बात बिल्कुल स्पष्ट है कि इस समय दोनों गुटों के एक ही राजनीतिक मंच पर इकट्ठे होने की कोई संभावना नहीं है। दोनों के मन में आपसी अविश्वास प्रबल होने के कारण, अतीत को भुला देना और फिर एक हो जाना बहुत ही कठिन है।"

इलाहाबाद के सम्मेलन में लिये गये निर्णयों के संवैधानिक पहलुओं के बारे में लाजपत राय इस पत्र में लिखते हैं

"मिताचारी गुट द्वारा 'इंडियन नेशनल कांग्रेस' का नाम अपनाकर चलने के अधिकार तथा स्वामित्व के बारे में गंभीर संदेह हैं। उपर्युक्त

जिस प्रकार यह 1887 से 1907 तक अस्तित्व म थी, अब नही रही। सम्मेलन का इस बात का कोई अधिकार नही और न ही स्वामित्व है कि वह पुरानी भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस के लिये सविधान बनाए वह तो प्रस्ताव की केवल सिफारिश कर सकता था जिसे काग्रेस द्वारा बहुमत से पारित किये जाने के बाद उसे अपना पुराना जीवन जारी रखने का अधिकार होता। व्यक्तिगत तौर पर म इस राय को गुप्त नही रखता कि इलाहाबाद सम्मेलन द्वारा जिन सिद्धान्तो का निणय किया गया केवल उन पर ही काग्रेस चल सकती है, परन्तु मैं इस ज्यादती की मिसाल को स्वीकार नही कर सकता कि उन लोगो पर सविधान थोप दिया जाये जिनका इस बनाने म कानूनी तौर पर कोई हाथ नही और वह भी पुराने सगठन के नाम पर।"

उन्होने तो यह सुझाव भी दिया कि काग्रेस की वार्षिक बैठक कुछ समय के लिए स्थगित कर दी जाये।

"माच 1909 मे इगलड से लौटने पर मुझे काग्रेस के एक महासचिव का निजी पत्र मिला, जिसम पजाब की स्थिति के बारे में जानकारी दी गई थी। गोपनीय पत्र मे मैंने उन्हें अपने विचारो से अवगत करा दिया और उन्हे अधिकार दिया कि वह सर फिरोजशाह मेहता और श्री गोखले को इससे अवगत करा दें। यह बात स्मरण रखी जाये कि पजाब का वतमान विवाद मेरे लौटने से पूव आरभ हुआ था और मेरा उसम बिल्कुल हाथ नही था। मेरी यह पक्की राय है कि पजाब के प्रमुख हिन्दू नेताओ द्वारा जोरदार विरोध के बावजूद काग्रेस का आगामी अधिवेशन लाहौर म करने का निणय बुद्धिमत्ता नही और न ही ऐसा करना देश, प्रात तथा काग्रेस के हित म है।'

इसके बाद उन्होने विभिन्न नगरो के विभिन्न नेताओ के विचारो से उद्धरण दिये है तथा उन पर विचार किया है। इन नेताओ के साथ उन्होने वतमान स्थिति के रुख के बारे मे सलाह मशविरा किया था। पत्र के अन्त मे लिखा है

"तो क्या फिर काग्रेस को समाप्त कर दिया जाए? कदापि नही। कुछ समय के लिये वार्षिक प्रदशन बद कर दिये जायें और स्थायी भारतीय समिति बनी रहे या प्रदशन केवल उन्ही प्राता म किये जाये, जहा एकमत है, विशेषकर

पढे लिखे हिंदुओ मे। अपने घरके निकट हम देखते है कि इस प्रात के हिंदुओ मे अपनी पराजय पर उचित नाराजगी है। उन्हें सोचन और अध्ययन करने का अवसर दिया जाये। यदि वे चाहें ता उन्हें अपनी खोई स्थिति प्राप्त करने के लिये अन्य ढग अपनाने का अवसर दिया जाना चाहिए। उन्हें विरोध करने के लिये उत्तेजित न करो और विच्छेद न करो, स्थिति को जो पहले ही कटु हो चुकी है और कटु न बनाओ, सार्वजनिक जीवन जिन स्थानो पर कमजोर और नाजुक पौधे के समान है और असाधारण बल का सामना नहीं कर सकता, इसे नरक न बनाया जाये। राष्ट्रीय आपात स्थिति मे यही उचित है कि कारणो को भावनाओ से ज्यादा प्राथमिकता दी जाये। राष्ट्रवादी बनाम मिताचारी ही केवल एकमात्र रुकावट नही थे। पजाब मे हिंदू मुसलमानो के बीच जो विषमता पैदा हो चुकी थी, उसके कारण लाजपत राय के विचार मे वार्षिक अधिवेशन के लिये जिस स्थान का चुनाव किया गया था, वह बिल्कुल अनुचित बन गया था।

"पिछले दिसम्बर म जब पजाब के कुछ प्रतिनिधियो ने अधिवेशन लाहौर में करने का निमत्रण दिया था, स्थिति भिन्न थी। उसके बाद इसमे बहुत परिवतन हो गया है। स्थिति मे परिवतन का ध्यान मे रखत हुए अधिवेशन के लिये स्थान तबदील करने मे कोई अपमान की बात नहीं है। समय सबसे बडा रोगहर है। राष्ट्रीय जीवन मे यह कोई तिरस्कारणीय बात नही है। हमे इसके लाभकारी हस्तक्षेप पर ठडे दिल मे निभर करना चाहिये और इसके साथ ही राष्ट्र के निर्माण के लिये उन क्षेत्रो मे जोरदार प्रयत्न करने चाहिए, जहा सरकार कम अशुद्ध निष्कर्ष निकाल सके। गलत सिद्धान्त निश्चित करने के स्थान पर नम्र भावना से काय करना अच्छा है। जब एकता न हो और न ही हो सकती हो तो दोना गुटो मे जबरदस्ती एकता करने के प्रयत्न करके जोरदार विरोध पैदा करना उचित नही। वतमान स्थिति मे हिंदुओ तथा मुसलमानो के नाम पर सयुक्त रूप से सोचने का हिन्दुओ द्वारा केवल जोरदार विरोध ही नहीं किया जाएगा, बल्कि हिंदुओ के बहुमत के नाम पर बात करने का भी जोरदार खण्डन किया जाएगा।"

इन विचारो तथा मौलें के सुधारो न लाजपत राय तथा काग्रेस के मिताचारी नेताओ के बीच, जिनमे गोखले भी शामिल थे, अन्तर और व्यापक कर दिया। उन्होने मिताचारियो की तथाकथित रियायतो का, जो गोखले न

भी दी लेकिन उन्होंने मुसलमानों को लालच देने के लिये लागू किये गये साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व का सिद्धांत जिसे मिंटो ने लागू किया था, बिल्कुल अस्वीकार कर दिया। मिताचारियों का गठन—मुसलमानों का गठन। यही मिंटो-मौर्ले स्कीम का सार था।

निःसंदेह कांग्रेस के कर्णधारों ने लाजपत राय की सलाह नहीं मानी। वार्षिक बैठकें स्थगित नहीं की गयी और प्रतिनिधि दिसंबर के अन्तिम सप्ताह में लाहौर में एकत्र हुए। सारे तमाशा की व्यवस्था हरकिशन लाल के गुट ने की, पर आर्य समाज के अधिकतर नेता उसमें शामिल न हुए। लाजपत राय और हरकिशन लाल एक दूसरे से और दूर हो गये। अल्फ्रेड नन्दी के संपादन काल में 'द ट्रिब्यून' लाजपत राय के ज्यादा से ज्यादा विरुद्ध होता गया, जो कटु तथा अश्लील था और इस समाचार-पत्र पर हरकिशन लाल का नियंत्रण समझा जाता था। क्योंकि इसके ट्रस्टियों में से वही सबसे अधिक प्रभावशाली थे। अधिवेशन से कुछ समय पूर्व अफवाहें फैली थी कि मनोनीत अध्यक्ष सर फिरोजशाह मेहता अध्यक्षता करने से इन्कार कर देंगे। अधिवेशन से छः दिन पहले यह अफवाह सत्य हो गई और उनका स्थान पं० मदन मोहन मालवीय ने ग्रहण किया। पंडित मालवीय के प्रति बहुत अधिक व्यक्तिगत आदर रखने के बावजूद लाजपत राय ने कांग्रेस अधिवेशन में भाग न लिया। दरअसल, जिन दिनों कांग्रेस अधिवेशन था, वह लाहौर में ही न थे।

मुसलमानों को एकत्र करने और नये संविधानिक सुधारों के अन्तर्गत साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व की व्यवस्था करने की मौर्ले मिण्टो नीति के विरुद्ध जिसे यद्यपि गोखले का आशीर्वाद प्राप्त था, पंजाब के हिन्दुओं ने बहुत नाराजगी व्यक्त की। कुछ बड़े पदों पर नियुक्तियों के मामले को लेकर साम्प्रदायिक किस्म का विवाद समाचार पत्रों में पहले ही आ चुका था। शीघ्र ही कई लोगों के मन में एक और विचार आया कि हिंदुओं का अपना अलग संगठन बनाना चाहिए। डी०ए०वी० ग्रुप के एक प्रमुख नेता, लाला लाल चन्द ने (बाद में चीफ कोर्ट के जज, जो उस समय तक केवल हिन्दू वकील थे, जिनके स्थान पर शाह दीन को जज बनाने में प्राथमिकता दी गई थी) इस प्रस्ताव में बहुत रुचि ली। पंजाब हिंदू महासभा स्थापित हो गई। पहला हिंदू सम्मेलन 21 और 22 अक्तूबर 1909 को लाहौर में हुआ, अर्थात् लाहौर में कांग्रेस अधिवेशन से कुछ ही समय पूर्व। लाजपत राय ने इस सम्मेलन में प्रतिनिधि के रूप में भाग लिया

पढे-लिखे हिंदुओ मे। अपने घरके निकट हम देखते हैं कि इस प्रात के हिन्दुओ मे अपनी पराजय पर उचित नाराजगी है। उन्हें सोचने और अध्ययन करने का अवसर दिया जाये। यदि वे चाहें तो उन्हें अपनी खोई स्थिति प्राप्त करने के लिये अन्य ढग अपनाने का अवसर दिया जाना चाहिए। उन्हें विरोध करने के लिये उत्तेजित न करो और विच्छेद न करो, स्थिति को जो पहले ही कटु हो चुकी है और कटु न बनाओ, सावजनिक जीवन जिन स्थानो पर कमजोर और नाजुक पौधे के समान है और असाधारण बल का सामना नही कर सकता, इसे नरक न बनाया जाये। राष्ट्रीय आपात स्थिति मे यही उचित है कि कारणो को भावनाओ मे ज्यादा प्राथमिकता दी जाये। राष्ट्रवादी बनाम मिताचारी ही केवल एकमात्र रुकावट नही थे। पजाब मे हिंदू मुसलमानो के बीच जो विषमता पैदा हो चुकी थी, उसके कारण लाजपत राय के विचार मे वार्षिक अधिवेशन के लिये जिस स्थान का चुनाव किया गया था, वह बिल्कुल अनुचित बन गया था।

"पिछले दिसम्बर मे जब पजाब के कुछ प्रतिनिधियो ने अधिवेशन लाहौर में करने का निमत्रण दिया था, स्थिति भिन्न थी। उसके बाद इसमे बहुत परिवतन हो गया है। स्थिति मे परिवतन को ध्यान मे रखते हुए अधिवेशन के लिये स्थान तबदील करने मे कोई अपमान की बात नही है। समय सबसे बडा रोगहर है। राष्ट्रीय जीवन मे यह कोई तिरस्कारणीय बात नही है। हमे इसके लाभकारी हस्तक्षेप पर ठडे दिल से निभर करना चाहिये और इसके साथ ही राष्ट्र के निर्माण के लिये उन क्षेत्रो मे जोरदार प्रयत्न करने चाहिए, जहा सरकार कम अशुद्ध निष्कष निकाल सके। गलत सिद्धान्त निश्चित करने के स्थान पर नम्र भावना से काय करना अच्छा है। जब एकता न हो और न ही हो सकती हो तो दोनो गुटो म जबरदस्ती एकता करने के प्रयत्न करके जोरदार विरोध पदा करना उचित नही। वतमान स्थिति मे हिन्दुओ तथा मुसलमानो के नाम पर सयुक्त रूप से सोचने का हिंदुओ दवारा केवल जोरदार विरोध ही नही किया जाएगा, बल्कि हिंदुओ के बहुमत के नाम पर बात करने का भी जोरदार खण्डन किया जाएगा।'

इन विचारो तथा मोर्ले के सुधारो न लाजपत राय तथा काग्रेस के मिताचारी नेताओ के बीच जिनमे गोखले भी शामिल थे, अन्तर और व्यापक कर दिया। उन्होने मिताचारियो की तथाकथित रियासता का, जो गोखले न

भी दी लेकिन उन्होंने मुसलमानों का लालच देने के लिये लागू किये गये साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व का सिद्धांत जिसे मिन्टो ने लागू किया था, बिल्कुल अस्वीकार कर दिया। मिताचारियों का गठन—मुसलमानों का गठन। यही मिन्टो-मौर्ले स्कीम का सार था।

निःसंदेह कांग्रेस के कर्णधारों ने लाजपत राय की सलाह नहीं मानी। वार्षिक बैठकें स्थगित नहीं की गयी और प्रतिनिधि दिसंबर के अन्तिम सप्ताह में लाहौर में एकत्र हुए। सारे तमाशा की व्यवस्था हरकिशन लाल के गुट ने की, पर आर्य समाज के अधिकतर नेता उसमें शामिल न हुए। लाजपत राय और हरकिशन लाल एक दूसरे से और दूर हो गये। अर्लेंड नदी के संपादन काल में 'द ट्रिब्यून' लाजपत राय के ज्यादा से ज्यादा विरुद्ध होता गया, जो कटु तथा अश्लील था और इस समाचार पत्र पर हरकिशन लाल का नियंत्रण समझा जाता था। क्योंकि इसके ट्रस्टियों में से वही सबसे अधिक प्रभावशाली थे। अधिवेशन से कुछ समय पूर्व अफवाहें फैली थी कि मनोनीत अध्यक्ष सर फिरोजशाह मेहता अध्यक्षता करने से इन्कार कर देंगे। अधिवेशन में छः दिन पहले यह अफवाह सत्य हो गई और उनका स्थान प० मदन मोहन मालवीय ने ग्रहण किया। पंडित मालवीय के प्रति बहुत अधिक व्यक्तिगत आदर रखने के बावजूद लाजपत राय ने कांग्रेस अधिवेशन में भाग न लिया। दरअसल, जिन दिनों कांग्रेस अधिवेशन था, वह लाहौर में ही न थे।

मुसलमानों को एकत्र करने और नये संविधानिक सुधारों के अन्तर्गत साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व की व्यवस्था करने की मौर्ले मिन्टो नीति के विरुद्ध जिसे यद्यपि गोखले का आशीर्वाद प्राप्त था, पंजाब के हिन्दुओं ने बहुत नाराजगी व्यक्त की। कुछ बड़े पदों पर नियुक्तियों के मामले को लेकर साम्प्रदायिक किस्म का विवाद समाचार-पत्रों में पहले ही आ चुका था। शीघ्र ही कई लोगों के मन में एक और विचार आया कि हिन्दुओं को अपना अलग संगठन बनाना चाहिए। डी०ए०वी० ग्रुप के एक प्रमुख नेता, लाला लाल चन्द ने (बाद में चीफ कोर्ट के जज, जो उस समय तक केवल हिन्दू वकील थे, जिनके स्थान पर एक दीन को जज बनाने में प्राथमिकता दी गई थी) इस सम्बन्ध में बहुत रुचि ली। पंजाब हिन्दू महासभा स्थापित हो गई। पहला हिन्दू सम्मेलन 21 और 22 अक्तूबर 1909 को लाहौर में हुआ, अर्थात् लाहौर में कांग्रेस अधिवेशन से कुछ ही समय पूर्व। लाजपत राय ने इस सम्मेलन में प्रतिनिधि के रूप में भाग

और हिंदू राष्ट्रवाद पर एक भाषण दिया, जो सम्मेलन में पेश किए पहले प्रस्ताव का अनुमोदन करते समय दिया गया था (यह प्रस्ताव ब्राह्मण दीनदयाल शर्मा ने रखा था)। यह प्रस्ताव इस प्रकार था

"कि यह सम्मेलन हिन्दू समाज के सभी वर्गों तथा जातियों को भाईचारे की आपसी भावनाएं बढ़ाने और समान राष्ट्रीयता की भावना को मजबूत बनाने की अपील करता है, ताकि (क) विश्व के राष्ट्रों में यह उचित स्थान पा सके, (ख) मानवता की सामान्य प्रगति में योगदान दे सके, (ग) अपने साम्प्रदायिक हितों की रक्षा कर सके और (घ) पीढ़ी दर पीढ़ी तथा मानवता के कल्याण के लिये प्राचीन हिंदू सभ्यता तथा संस्कृति का जो दयालुता या बुद्धिमत्ता पूर्वजों से मिली है, का प्रचार कर सकें।"

लाजपत राय ने प्राचीन हिंदुस्तान के बारे में उद्धरणों से भरपूर भाषण दिया। उन्होंने धार्मिक, सामाजिक दृष्टिकोण तथा नये राजनीतिक संदर्भ 'साम्प्रदायिक" दृष्टिकोण से चर्चा की। हिंदू समाज को उन्होंने जो सलाह दी, वह इन शब्दों में कही जा सकती है

"मेरे मन में अन्य मतावलम्बियों के प्रति कोई बुरी भावना नहीं है। मैं उनकी प्रसन्नता तथा प्रगति की कामना करता हूं। अपने समुदाय के लोगों की दशा सुधारने और उनके लिये लाभकारी स्थान दिलाने के उनके प्रयत्नों पर मुझे कोई आपत्ति नहीं। भारत की वर्तमान राजनीतिक स्थिति में अपने समुदाय के हितों की रक्षा करने में वे बिल्कुल उचित हैं, जब तक वे गैर भारतीयों के साथ अपवित्र सहयोग करके हिंदुओं के हितों को हानि न पहुंचाएं। मेरा हिंदुओं से गैर हिंदुओं के विरुद्ध तथा भारतीयों से गैर भारतीयों के विरुद्ध अनुरोध युधिष्ठिर द्वारा उस समय कहे गये शब्दों में कहा जा सकता है— दुर्योधन के शत्रुओं ने पांडवों से अनुरोध किया था कि वे दुर्योधन के विरुद्ध संघर्ष करने में उनका साथ देने को तैयार हों। तब पांडवों ने कहा

"हम पांच हैं और वे सौ हैं। परन्तु जब हम दूसरों से युद्ध करते हैं, तो हम एक सौ पांच हैं।

/ ॰

शायद पजाब हिन्दू सभा के सभी समय एक सौ पाच की इस भावना स प्रेरित नही हुए—यदि पलभर के लिये आप भूल जाये कि हिन्दू पाच नही परन्तु सौ है और हिन्दू तथा हिदुस्तान का नारा असल म 'ब कुछ है और आप कई हो" हो सकता है। दो साल बाद शादी लाल (बाद म पजाब उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश तथा तत्कालीन प्रिवी कौसलर) न हिदू सभा की एक बैठक मे भाषण किया और अपने भाषण का समापन महाभारत की बात से किया—उन्होंने केवल हिन्दुओ के गैर-हिन्दुओ के विरुद्ध एकीकरण पर बल दिया और भारत के अन्य समुदायो को दुर्योधन जैसा सम्बधियो का स्थान भी न दिया।

यद्यपि लाजपत राय न पजाब हिन्दू सभा के मामलो म कुछ रुचि ली और हिन्दू राष्ट्रवाद के बारे मे जोश भी दिखाया, परन्तु वह नये प्रस्ताव के साथ पूरी तरह सहमत दिखाई नही देते जो समय बीतन के साथ केवल छोटी छोटी बातो के लिये सघर्ष बनकर रह गया—पदो की लालसा सीमित, जब कि उनकी रुचि बडे मामलो मे थी।

यह बडी विचित्र बात है कि पजाब हिन्दू सभा की स्थापना के थोडी देर बाद, हरकिशन लाल जिनके बारे मे विचार था कि वह काग्रेस का प्रतिनिधि होने चाहिए और जिनके विरोध के तौर पर पजाब हिन्दू सभा बनाई गई थी—उनकी काय समिति म शामिल थे, जब कि लाजपत राय अलग थे। राजनीति मे विरोधाभास ही स्थायी प्रवत्ति रही है। कुछ बातो मे लाजपत राय मैत्रीपूण समथन देते रहे, तो दूसर मामलो मे एक असहमत मित्र के समान चेतावनी भी। परन्तु कई मामलो मे वह सभा को सहयोग ही देत रहे। चौथे वार्षिक सम्मेलन म, जो अक्तूबर 1912 मे दिल्ली मे हुआ, उन्होने हिन्दुओ की शिक्षा सस्थाओ के लिए सहायता की अपील की और सुझाव दिया कि एक हिन्दू शिक्षा कोष स्थापित किया जाए। इस अपील के कारण दिल्ली के हिन्दू कालिज के लिए 5,500 रुपये प्राप्त हुए। परन्तु उन्होने देख लिया था कि निर्वासन के बाद उप-राज्यपाल से जो प्रतिनिधि मडल मिले थे, उन्होने कितना नैतिक पतन ला दिया था। वह इस पहलू की उपेक्षा कदापि नही कर सकते थे।

36. देश मे प्रतिक्रिया : विदेश मे प्रचार

उन पाच छ वर्षों मे से, जिनकी ऊपर चर्चा की गई है, कम से कम एक—1910—की विशेष चर्चा की आवश्यकता है। 1909 के अन्त के करीब पुलिस ने भाई परमानन्द के घर पर छापा मारा और उनके विरुद्ध अदालत मे मुकदमा शुरू किया गया, जिसके परिणामस्वरूप नेक चलन के लिये उन्हे बाध्य कर दिया गया। तलाशी मे पुलिस कई दस्तावेज ले गई और इनमे लाजपत राय के दो पत्र भी थे। बाद मे ये पत्र अदालत मे पेश किये गये और पत्र लिखने वाले से इन पत्रो के बारे मे पूछताछ की गई। राजद्रोह तथा क्रातिकारी षड्यत्र (1917 18) के बारे में रौलैट समिति ने इन "विशेष" पत्रा का प्रमुख तौर पर उल्लेख किया है। समिति की रिपोट मे लिखा है

"उसी वष (1910) से भाई परमानन्द नामक एक व्यक्ति के विरुद्ध, जो बाद मे लाहौर के षडयत्रकारियो मे से एक थे और जिन्हें आजीवन कारावास की सजा हुई, जाब्ता फौजदारी के अधीन मुकदमा चलाया गया और उन्हे नेक चलनी के लिये बाध्य किया गया। उनके कब्जे से अलीपुर के षडयत्रकारियो द्वारा इस्तेमाल की गई बम नियम-पुस्तक की प्रति तथा कुछ अन्य दस्तावेज पकडे गये। इनमे लाजपत राय के दो विशेष पत्र भी थे। ये पत्र 1907 की गडबडी के दौरान परमानन्द को लिखे गए थे, जो उन दिनो इग्लड मे थे। पहले पत्र की तिथि 28 फरवरी 1907 और दूसरे की उस वष की 11 अप्रैल थी। य दोनो पत्र लाहौर से भेजे गये थे। पहले पत्र मे लाजपत राय ने प्राप्तकर्ता को लिखा था कि वह कुख्यात कृष्ण वर्मा से कहें कि वह अपना कुछ धन और कुछ पुस्तकें यहा छात्र वग को भेजने पर खच करे, जिनमे राजनीति पर सही विचार दिये गये हा। उन्होंने परमानन्द से यह पता लगाने के लिए भी कहा था कि कृष्ण वर्मा अपने दस हजार रुपये के उपहार म से कुछ राशि राजनीतिक प्रचारको के लिये भी दे।'

दूसरे पत्र मे लाजपत राय ने लिखा था "लोग नाराज है। कृषक वर्ग भी आदोलन के रास्ते पर चल पड़ा है । मुझे केवल यह आशका है कि यह धमाका कही समय से पूर्व ही न हो जाये । जब अदालत मे परमानन्द के विरुद्ध मुकदमे की सुनवाई आरम्भ हुई, लाजपत राय ने बताया कि उपर्युक्त कथन से उनका अर्थ और कुछ नही था, बस केवल इतना था कि कृषक वर्ग राजनीतिक आदोलन से अपरिचित है और शायद यह सभव न हो कि शात ढग से अपना आदोलन चला सके ।" वह उस स्थिति मे कृषक वर्ग के बीच राजनीतिक आदोलन चलाने के पक्ष मे नही थे । उन्होंने यह भी कहा कि "जिन पुस्तकों के बारे मे उस पत्र मे माग की थी, उनका ब्यौरा एक अन्य पत्र मे दिया गया था, जो उस दिन पेश किया गया, जिनमे प्रमाणित पुस्तकों की सूची थी । उनमे क्रातिकारी, राजनीतिक और ऐतिहासिक उपन्यास थे।" उन्होने ये शब्द भी कहे, "निर्वासन से लौटने के बाद तक मुझे यह जानकारी नही थी कि श्यामजी कृष्ण वर्मा के राजनीतिक हिंसा तथा अपराध के बारे मे ऐसे विचार थे, जिस प्रकार के विचार उन्होने अब व्यक्त किये है । उसके पश्चात उनके साथ मेरा कोई वास्ता नही रहा ।"

ये "विशेष पत्र" कोई विशेष महत्व के नही थे, जब तक आप उनमे से असाधारण अर्थ न निकालें । परन्तु लाजपत राय के लिए इस घटना के कई महत्वपूर्ण परिणाम रहे । भाई परमानन्द के घर पर पुलिस के छापे और तलाशी मे "मिले" दस्तावेजो मे उन पत्रो के शामिल किये जाने पर लाजपत राय के कुछ मित्रो ने उनसे कहा कि वह अपने घर पर भी उसी प्रकार के छापे के लिए तैयार रहें । दरअसल, उन्होंने इस बात के लिये जोर दिया कि उन्हे खुली छूट दी जाये । और उन्होंने जो पत्र अथवा पुस्तकें असुरक्षित समझी, उन्हें वहा से हटा दिया और उनसे पूछे या बताये बिना उन्हें नष्ट भी कर दिया । उन पत्रो, पत्रिकाओ, कागजो तथा पाण्डुलिपियो के ढेर मे, जो अग्नि की भेंट हुए, वह आत्मकथा शैली का उर्दू उपन्यास भी था, जिसे लाजपत राय ने माण्डले मे लिखना आरम्भ किया था । उस समय उन्होंने विश्वास किया कि उसे केवल सुरक्षित रखने के लिए हटाया गया है, परन्तु

बाद मे उन्हे दुख तथा आश्चय हुआ, जब यह बताया गया कि अन्य कागजो के साथ वह पाण्डलिपि भी आग की भेंट हो गई है। वह दोबारा अपनी जीवन कथा उपन्यास के रूप मे लिखने के लिये अपना मन फिर न बना सके। उनके सग्रह से कुछ पुस्तकें भी गायब थी। कई वर्ष बाद तक वह प्रितुकर की पुस्तक 'रशियन हीरोज एण्ड हीरोइन्स' की कभी कभार चर्चा किया करते थे और कहा करते थे

"आप जानते है कि उन दिनो यह मेरी बहुत मनपसद पुस्तक हुआ करती थी और मैं युवको से इसे पढने की सिफारिश किया करता था। परन्तु जब मेरे मित्र मेरी सुरक्षा के लिये घबरा गये, उन्होंने कई चीजें नष्ट कर दी थी, वे मेरी पुस्तक 'हीरोज एण्ड हीरोइस' भी ले गए।"

भाई परमानन्द के विरुद्ध मुकदमे का एक और महत्वपूण परिणाम (तथा ऐसी ही अन्य घटनाओ का) यह निकला कि पजाब के नेताओ पर उत्साह भग करने वाला प्रभाव पडा। "जो हमारे साथ नही, वे हमारे विरुद्ध है", यह अजीब सिद्धात अपनाया गया और डी० ए० वी० कालिज के अधिकारियो ने, जो इसके हानिकर परिणामो के आगे झुक गये, भाई परमानन्द को नौकरी से निकाल दिया, जिन्होने अपना जीवन कालिज को अपण कर दिया था और समाज की बहुत ही योग्यता से सेवा की थी। उन्होंने इस सम्बन्ध मे मुकदमे के निणय की भी प्रतीक्षा न की। इससे पूव 1907 मे कई लोगो ने नेताओ का लेखा जोखा लिया और उनमे बहुत सी त्रुटिया पाई थी। लाजपत राय ने उदारता मे उनका जायजा लेने का फैसला किया, ताकि कही ऐसा न हो कि कडाई के साथ लेखा जोखा करने मे वह स्वय भी दोषी हो, जहा तक उनका व्यक्तिगत सबध था। जब वह लौटे, तो उन्होंने आलोचको के विरुद्ध उनका पक्ष लिया और उन्हें सभावित कठिन परिस्थितियो से बचाने के लिए उस समय, कुछ नेताओ के खीझने के बावजूद, वह आगामी चुनाव म आय समाज के अध्यक्ष चुने गए, परन्तु उन्होंने यह सम्मान स्वीकार करने से इन्कार कर दिया।

अब वह हालात का सामना करने के लिये विवश थे और बचाव का रास्ता ढूढने के लिये वह एक बार फिर इगलैंड जाने के लिए जहाज पर सवार हो गये, उनका मन निराशा के बोझ स बहुत दबा था।

इग्लैंड म ठहरने के दौरान लालाजी ने 1910 म पराधीन राष्ट्रा तथा जातिया के सम्मेलन म, जा जून के अन्त मे कैक्स्टन हाल मे हुआ, भारत का प्रतिनिधित्व किया । प्रोफेसर गिल्वट मुर ने अपन आरम्भिक भाषण मे लाजपत राय की चर्चा की

"मुझे विश्वास है कि भारत न उन आन्दोलना म अपना सबसे अच्छा योगदान दिया है, जिनमे लाजपत राय एक नेता है । मैं यह जिक्र करना चाहूगा कि एक उच्च अधिकारी न, जिसने लाजपत राय के निर्वासन की स्वीकृति दी थी, मुझे बताया है कि भारत मे बहुत कम लोग ऐसे है जिनका मैं इतना अधिक सम्मान करता हू ।"

इस सम्मेलन म (लाजपत राय के अतिरिक्त) भारत के प्रतिनिधिया मे विपिन चन्द्र पाल, दुबे तथा सर हनरी काटन थे। भारत मिस्र मारक्वा बैठक की अध्यक्षता फ्रेड्रिक मैकार्नेस ने की और भारत की ओर स प्रमुख योगदान लाजपत राय का भाषण था, जिसका विषय था "भारत म वतमान स्थिति'। वक्ता न मार्ले के नये सुधारो पर आधारित भारत के नये सविधान की आलोचना की थी परन्तु उनके भाषण का मुख्य भाग इन सुधारो के साथ जो "उदार" शासन ने लागू किये थे, पैदा हुई अपमानजनक नागरिक स्वतत्रताओ का उल्लेख करने मे लगा। "म्यारह भारतीया को नाम मात्र का भी मुकदमा चलाये बिना भारत म निर्वासित करना, विचार व्यक्त करने की आजादी छीनना और सावजनिक सभाए करने के अधिकार की मनाही, राजनीतिक कैदिया क साथ पाशविक व्यवहार तथा जासूसी के लिये सावजनिक तथा गुप्त नये ढग।" नागरिक आजादिया स वचित करने के लिये ब्रिटिश सरकार की आलोचना करन के अलावा, उन्होने विदेशी अफसरशाही और भूमि पति रजवाडा शाही म अपवित्र गठबधन का भी उल्लेख किया, जिनक साथ पूजीपति भी शामिल थे, जो पढे लिखे वग के विरुद्ध थे। नये सुधारा की योजना तथा नये प्रेस एक्ट की य विशेषताए थीं, और उन्होंने "मुक्त तौर पर तथा सुनियोजित ढग से देश के प्रशासन म जातीय तथा साम्प्रदायिक भेदभाव को प्रोत्साहन देने की भी आलोचना की, जा प्रशासन की ओर से साम्प्रदायिक पदोन्नति द्वारा दिया जा रहा था ।"

इस व्यवस्था का सारांश देते हुए उन्होंने कहा

'दरअसल, हर प्रकार की सार्वजनिक गतिविधि को, राजनीतिक, शैक्षिक, धार्मिक, सामाजिक अथवा लोकोपकारक खतरे का कारण बना दिया गया है और इस प्रकार देशभक्ति को ही एक अपराध बना दिया गया है।"

उन्होंने मौर्ले के सुधारों का खोखलापन उजागर कर दिया, जिनमें बंगाल, बम्बई तथा मद्रास की कार्यकारी परिषदों में एक एक भारतीय को मनोनीत करने तथा वाइसराय की परिषद में एक भारतीय के शामिल करने की व्यवस्था थी। साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व के बारे में मिण्टो के योगदान के संबंध में उन्होंने कहा "देश को दो गुटों—हिन्दू और गैर हिन्दू में, उच्चतर स्वीकृति से विभाजन करने की योजना ने इन सुधारों का सारा गौरव ही समाप्त नहीं कर दिया है, बल्कि इसे आज तक की सबसे अधिक शरारती योजना बना दिया है, जिसका उद्देश्य उस देश में, जो एक होना चाहता है, स्थायी तौर पर धार्मिक विरोध पैदा करना है, ताकि राजनीतिक उद्देश्य पूरा हो सके।"

उन्होंने मौर्ले कानून के झूठे "प्रजातंत्र" को श्रोताओं के समक्ष नंगा कर दिया, जब उन्होंने बताया कि सुरेन्द्रनाथ बनर्जी जैसा व्यक्ति अपने प्रांत की स्थानीय परिषद के सदस्य बनने के अयोग्य है। "बहुत ही हल्ला किये जाने पर उनके मामले में छूट दे दी गई, जिससे उन्होंने लाभ न उठाने का उचित निर्णय लिया।" लाजपत राय ने आगे कहा कि "जायदाद की शर्त श्री गोखले और श्री दादाभाई नौरोजी जैसे व्यक्तियों को प्रांतीय परिषदों के चुनाव के लिए अयोग्य ठहराती है।" अपने प्रांत पंजाब के बारे में उन्होंने कहा

"परिषद में 14 गैर सरकारी तथा 11 सरकारी सदस्य हैं इन 14 में से केवल पांच निर्वाचित हैं, फिर मजे की बात यह है कि परिषद की सारी कार्रवाई अंग्रेजी में की जाती है जब कि कई मनोनीत सदस्य इस भाषा के ज्ञान से बिल्कुल कोरे हैं।"

उनके भाषण का सबसे उग्र भाग वह था, जिसमें तथाकथित उदार शासन के अधीन व्यापक जासूसी का आतंक फैला हुआ था, "जो कम

वेतन, कम शिक्षा और निश्चय ही भ्रष्ट पुलिस कर्मचारियों द्वारा स्कूलों तथा कालिजों तक फैला हुआ है।"

उन्होंने कहा कि "मैं अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर एक पूरी पुस्तक लिख सकता हूं। इस नीति का कोई औचित्य नहीं हो सकता जिसके अधीन व्यक्ति की घटिया प्रवृत्ति को उभारकर पिता को पुत्र के विरुद्ध, भाई को भाई के, पत्नी को पति के और मित्र को मित्र के विरुद्ध खड़ा कर दिया जाये, यही बस नहीं, अध्यापक को शिष्य के तथा शिष्य को अध्यापक के विरुद्ध लड़ाया जाये। यह तो मानवता के स्रोत को ही गंदा करना है।"

श्रीमती एन० एफ० ड्राईहर्स्ट, जो आयरिश थी, ने क्रोपोटकिन की कुछ रचनाओं का अंग्रेजी में अनुवाद किया था और जो सम्मेलन का आयोजन करने वाली समिति की उत्साही महासचिव थी, गिलबर्ट मुरे, फ्रैड्रिक मेकार्नेस द्वारा लाजपत राय और मिस्र के फरीद बेग की प्रशंसा में कही गई बातों से उनमें बहुत उत्सुकता पैदा हुई। श्रीमती ड्राईहर्स्ट ने कहा, "स्वाभाविक ही मुझे मिस्री तथा हिन्दू नेताओं को देख तथा सुनकर बहुत उत्सुकता हुई और ये दोनों मेरे व्यक्तिगत मित्र बन गये हैं।" फरीद बेग ने फ्रांसीसी में भाषण दिया, वह पश्चिमी यूरोपियन निवासी दिखाई पड़ते थे, परन्तु लाला लाजपत राय ने सुदूर पूर्व को हमारे सामने साक्षात्कार कर दिया। छोटे कद के बहुत ही गौरवपूर्ण तेज नाक-नक्श थे, जिससे मलिन न हो सकने वाला गौरव झलकता था, जो सामान्य तौर पर दयालु तथा निष्कपट स्वभाव से ही आता है, सिर पर अपना मूल राज्य शिरोवस्त्र पहने, उन्होंने विशाल श्रोता-समूह को अपनी स्पष्ट और सुंदर अंग्रेजी से लगभग एक घंटे के लिए मंत्र मुग्ध किए रखा।

श्रीमती ड्राईहर्स्ट लाजपत राय की बहुत अच्छी मित्र बन गईं और कुछ वर्ष बाद जब वह अमरीका गईं, तो उन्होंने शिकागो में अपनी सहेलियों को लाजपत राय के बारे में लिखा, "जहां उन्होंने उन्हें बहुत महत्व दिया और बाद में उनके बारे में बड़ी प्रशंसा लिखी।" इस प्रकार वह महिला उनके लिए आगे सम्पर्क तथा मैत्री का साधन बनी। लाजपत राय

ने अन्तिम बार उन्हे कोई पद्रह वर्ष बाद देखा, जब उनके आग्रह पर उन्होने उनके साप्ताहिक पत्र 'द पीपुल' के लिये एक लेख लिखा, जिसमे जार्जिया के प्रति सोवियत नीति की आलोचना की गई थी। 1910 मे वह कई बार उनके घर गये और डाईहस्ट अनेक बार उनके 'आनन्दमय भारतीय भोजो" मे सम्मिलित हुई, जहा उन्होने लदन की अपनी सहेलिया को पूर्व की रसोई-विद्या के बारे मे आनदित किया। एक दिन दोपहर बाद वह श्रीमती ड्राईहस्ट के घर पर अतिथि थे। तब एक भारतीय सैनिक अधिकारी की पत्नी उनसे मिलने आई। लाजपत राय का नाम सुनते ही आगन्तुक महिला ने मेजबान महिला को अलग ले जाकर 'अपने चेहरे पर भय लाते हुए" कहा "क्या तुम्हें पता है कि तुम सारे भारत मे सबसे खतरनाक व्यक्ति का अतिथि सत्कार कर रही हो?"

इस अवधि मे लाजपत राय के साथ एक दुखद घरेलू घटना हुई। उनका दूसरा पुत्र, प्यारे कृष्ण, जिनके बारे मे उन्होने बहुत आशाए बाध रखी थी, इग्लड भेज दिये गये और उन्होने औषधि रसायन विज्ञान का अध्ययन आरम्भ कर दिया, ताकि वह भारतीय जडी-बूटियो तथा दवाइयो के सम्बन्ध मे मौलिक कार्य कर सकें, जिसकी उस समय बहुत आवश्यकता थी। अभी उन्हें छात्र बने अधिक समय नही हुआ कि वह बीमार पड गये और उन्हें डेविनशायर के एक सेनिटोरियम मे भर्ती करवा दिया गया। 1908 की इग्लैंड यात्रा के दौरान पिता शैफोड मे बीमार पुत्र को देखने गये। उन्हें बेटे के स्वस्थ्य होने की बहुत आशा थी, परन्तु प्यारे कृष्ण भारत लौट आये और उनका रोग घातक सिद्ध हुआ। पिता का एक प्यारा पुत्र भरपूर जवानी मे उनसे छिन गया, जिसे वह बहुत प्रेम करते थे और अपने सब बच्चो मे सबसे अधिक होनहार समझते थे। एक देशभक्त की वे आशाए टूट गई कि एक दिन वह अपनी मृत्यु शय्या पर लेटे ही परिवार के होनहार बच्चे को उनकी और से शुरू किये गये कार्य जारी रखने और लोगो के लिए महान युद्ध करने की वसीयत करेगा।

निराशाजनक राजनीतिक प्रतिक्रिया की उस अवधि के कुछ समय बाद मौत ने उनका एक बहुत प्यारा मित्र तथा सहयोगी उनसे छीन लिया,

जिस मित्र की स्मृति का उन्होंने अपनी पहली महत्वपूर्ण पुस्तक 'यंग इंडिया', जो भारतीय राजनीतिक आंदोलनों के बारे में थी, समर्पित की थी, गहरी भावनाओं के साथ द्वारका दास की चर्चा करते हुए उन्होंने लिखा, "मेरा बहुत प्रिय मित्र जो अक्तूबर 1912 में पंजाब में सार्वजनिक जीवन विफल हो जाने के कारण दिल टूट जाने से मर गया।" उसकी स्मृति में यह पुस्तक "विनम्र श्रद्धांजलि के रूप में समर्पित की गई, जिसने सार्वजनिक जीवन के महान सिद्धांतों और महानता की कीमत पर किसी बात से समझौता नहीं किया।"

विभाजित कांग्रेस तिलक के माण्डले से लौटने के काफी समय बाद तक पूर्ण न बन सकी। तब तक यह अधिकतर मिताचारियों का संगठन रही और लाजपत राय उससे लगभग अलग ही रहे। 1909 में यूरोप से लौटने पर उन्होंने अपना व्यवसाय फिर से शुरू कर लिया और सार्वजनिक जीवन में प्रत्यक्ष तौर पर राजनीतिक कार्य करने की बजाय अपने लिये और रास्ते ढूंढ लिये। जैसा कि हमने देखा है, पंजाब हिंदू सभा की स्थापना में उनका हाथ था। एक बार लाहौर (अनारकली) आर्य समाज की वार्षिक बैठक पर, उन्होंने डी० ए० वी० कालिज में आयुर्वेदिक तथा तकनीकी विभाग स्थापित करने के लिये धन एकत्र किया। राष्ट्रीय शिक्षा के लिये अपने ही ढंग से काम करने का यह भी एक रास्ता था। उन्होंने डी० ए० वी० हाई स्कूल में अपने मित्र प्रिंसिपल (महात्मा) हंसराज के नाम पर लैक्चर हाल बनाने के लिये धन एकत्र करने के लिये भी सहायता की। 1909 में उन्होंने "दलित" जातियों—अछूतों—के बारे में एक भाषण माला दी। दरअसल, अब वह "दलित" वर्गों में कार्य करने की ओर अधिक ध्यान देते थे। इसके परिणाम स्वरूप नवंबर 1913 में आर्य समाज की शताब्दी के अवसर पर यह घोषणा की गई कि लाजपत राय राजकुमारों के तुल्य राशि—कम से कम उन दिनों के स्तर के अनुसार वह इस प्रकार की ही थी—50 हजार रुपये दलित वर्गों में कार्य के लिये दे रहे हैं। इस में से आधी राशि रावी के पार भूमि का एक टुकड़ा खरीदने के लिये खर्च की जा रही थी, जहां दलित वर्गों के परिवारों के लिये आदर्श बस्ती बनाने की योजना थी। इसका उद्देश्य था कि इन वर्गों के शैक्षिक तथा आर्थिक उत्थान

के लिये काय किया जाये। जालधर जिलें मे "दलित" वर्गो के लिये कई स्कूल तथा केंद्र खोले गये। शहीद भाई बाल मुकुद, जमा हमने देखा है, लाजपत राय की देखरेख मे इन केंद्रो का चलाते थे।

उसी वप 1913 मे उन्होंने अपने पैतक गाव जगराव मे एक हाई स्कूल स्थापित किया, जिसका नाम उनके पिता के नाम पर राधाकिशन हाई स्कूल रखा गया।

इस बीच उन्हें नगरपालिका की सदस्यता पेश की गई। लाजपत राय को उम्मीदवार बनाना अपने आप में एक घटना थी। मतदान के समय इससे पूव कभी भी इतना नैसर्गिक उत्साह देखने मे नही आया था और उन्हें इतने मत प्राप्त हुए, जो एक रिकाड था। वह मनोरजन के तौर पर याद किया करते थे कि एक दिन जब अपने चुनाव अभियान के सिलसिले में उन्होंने एक सभा में भाषण समाप्त किया, तो नगरपालिका का सदस्य बनने के इच्छुक एक अन्य व्यक्ति—जो बिल्कुल ही अलग किस्म की राजनीति वाले थे—दोनो हाथ जोड उनसे कहने लगे कि वह उनकी ओर से भी कुछ शब्द कह दें, क्योंकि "वाहे गुरु ने उन्हें यही बल दिया है"—बल, लोगो को मुग्ध करने का, वह भद्र पुरुष स्वय अवैतनिक मजिस्ट्रेट थे और इसलिए उन्हें "ठोस" बल प्राप्त था। "एक घटना जो कई दशक बाद तक याद रही एक अनपढ़ मतदाता के एक मतदान केन्द्र पर आने की थी, जिसने अपने उम्मीदवार का चयन दिखाने के लिए अपने हाथ मे लाजपत राय का एक चित्र लिया हुआ था।"

इस समय तक उन्होंने एक प्रारंभिक शिक्षा सघ स्थापित कर दिया था, जिसका उद्देश्य देवनागरी के माध्यम से अशकालिक अध्यापक नियुक्त करके, कम खच पर साक्षरता का प्रचार करना था। ये अध्यापक मोहल्ला मे जाकर पढाते थे। वह स्वय भी गलियो मोहल्लो मे जाते थे, ताकि साक्षरता का अभियान चला सकें तथा उसकी प्रगति की निगरानी कर सकें।

नगरपालिका म लाजपत राय के कार्यों ने सरकारी तथा एग्लो इडियन क्षेत्रा म उनके शत्रुआ से भी प्रशसा करवाई । आखिरकार उन्होने उनके काल्पनिक चित्र मे, जो उन्होने अपने मन म बनाया था, सशोधन शुरु कर दिया जिसे तहत उन्हें ऐसा "उत्साही" समझ लिया गया था जो राज नीतिक अपराधो मे सभी बुरे मनो का प्रेरणा देता है। लाजपत राय के नगर-पालिका की सदस्यता के कायकाल मे लाहौर की गलियो मे पहली बार बिजली की रोशनी की व्यवस्था हुई । परन्तु उनके सहयोग से नगर-पालिका क्षेत्र म जो प्रमुख सुधार हुआ, वह हीरामण्डी की वैश्याओ के क्षेत्र को अलग करने का था । अलग किये जाने से पूव उनमे से कई अनारकली क्षेत्र म होती थी ।

व्यापारिक तथा औद्योगिक प्रगति मे उनकी रुचि बढ रही थी । पजाब नेशनल बैंक के निदेशक के तौर पर उनके काय से उस सस्था को बहुत सहायता मिली । उन्होंने लघु उद्योग शुरू करने के लिए भी प्रयत्न किये । शायद इन प्रयत्नो के फलस्वरूप पजाब म होजरी उद्योग प्रचलित हुआ । सहकारी जीवन बीमा कम्पनी (कोआप्रेटिव लाइफ इशोरेंस कम्पनी) शुरू करने म भी उनका हाथ था ।

'द पजाबी' तथा प्रेस लाभ लेकर बेच दिय गये और उनकी योजना अब इस धन से राजनीतिक कायकर्ताओ को प्रशिक्षण देने की थी ।

परतु उनके यूरोप चले जाने के कारण ये सभी योजनाए स्थगित हो गइ । इसके परिणामस्वरूप वकील के तौर पर उनका काम भी ठप्प हो गया । 1909 म 'इग्लिशमैन' के मुकदमे मे गवाही देते हुए उन्होने बडे सकोच से कहा था कि उनका दर्जा पजाब चीफ कोट के चोटी के छ-सात वकीलो म है । और अब यदि वह वकालत करना चाहें तो वह पहले नबर पर बडी आसानी मे आ सकते है । जैसा वह स्वय कहते है

"वकालत के व्यवसाय म मैं काफी अच्छा धन कमा रहा था और इस व्यवसाय म चोटी पर आने की सभावनाए बहुत उज्ज्वल थी । चीफ कोट के जजो ने भी (पजाब की उच्चतम अदालत का अभी उच्च

न्यायालय का दर्जा नहीं दिया गया था), जो किसी समय मुझे अच्छा नहीं समझते थे, क्योंकि मेरे राजनीतिक विचार अतिवादी थे और इसी कारण कभी-कभार मेरे साथ पक्षपात बरत लेते थे, उन्होंने भी अपना व्यवहार बदल लिया है और अब मेरे साथ नरमी से बात करते हैं। मेरे मुवक्किल मुझ पर गहरा विश्वास रखते हैं और मुझे अच्छी फीस देते हैं। नगरपालिका में मेरे काम ने अधिकारियों के व्यवहार में एक विशेष परिवर्तन ला दिया है और अब वे इस विचार में सहमत हो रहे हैं कि आखिरकार मैं भी उचित व्यक्ति हूँ और वैसा ठोस क्रांतिकारी नहीं, जैसा वह सोचते थे।"

निर्वासित दूत

of I&B/ND/85

37. नीरस लक्ष्य को लाभप्रद बनाया

चौथी बार इंग्लैंड की यात्रा—और वह भी पहली यात्रा के समान कांग्रेस प्रतिनिधि के रूप में।

इंडियन नेशनल कांग्रेस ने दिसम्बर 1913 में कराची में अपने वार्षिक अधिवेशन में निर्णय किया कि एक शिष्ट मण्डल इंग्लैंड भेजा जाये, क्योंकि सेक्रेटरी आफ स्टेट फार इंडिया लार्ड क्र्यू 1914 की वसंत ऋतु के आरम्भ में संसद में एक बिल पेश करना चाहते थे, जिसका उद्देश्य 'इंडिया आफिस' में सुधार करना था। कराची-अधिवेशन ने शिष्ट मंडल की स्वीकृति तो दे दी, परन्तु उसके खर्च के लिए धन की स्वीकृति न दी और यह कठिन कार्य प्रांतीय संगठनों पर छोड़ दिया। यह खर्च इन संस्थाओं या स्वयं सदस्यों को उठाना था। इस व्यवस्था के साथ यह अधिकार भी प्रांतीय संगठनों को दे दिया गया कि शिष्ट मण्डल के सदस्यों के नामों का प्रस्ताव भी वही करें। पंजाब ने इस कार्य के लिये लाजपत राय को चुना, अन्य प्रान्तों से जो लोग चुने गये, उनमें भूपेंद्र नाथ बसु (बंगाल), एम० ए० जिन्ना तथा समर्थ (बम्बई) और कृष्ण सहाय (बिहार) थे। लाजपत राय ने यह मनोनयन तुरंत स्वीकार कर लिया, क्योंकि उनका अनुभव था कि कभी-कभार यूरोप की यात्रा "बहुत शिक्षाप्रद तथा प्रेरक थी। इसके अतिरिक्त यह राजनीतिक तौर से भी लाभकारी थी।"

कांग्रेस के आगामी अधिवेशन के लिये जो मद्रास में करने का प्रस्ताव था, उनका नाम कांग्रेस अध्यक्ष के तौर पर भी लिया जा रहा था। परन्तु यह अनिवार्य था कि वह इंग्लैंड में भारत का प्रतिनिधित्व करें, जिस समय भारत के संबंध में कानून ब्रिटिश संसद में विचाराधीन हो। ये कुछ असम्बद्ध बातें थीं, जिनको उन्होंने लार्ड क्र्यू के बिल, उसकी व्यवस्था तथा उसके शब्दों और वाक्यों से अधिक महत्व दिया। बिल तथा उसके मसौदे का मामला भूपेंद्र नाथ बसु पर छोड़ा जा सकता था, जो कलकत्ता के बहुत सोच विचार करने वाले मिताचारी थे, जो अपने बारे में बहुत गंभीर थे

और वैधानिक ''इसके आगे'' और "किस कारण" जैसे शब्दों का और भी अधिक गम्भीरता से लेते थे।

लाजपत राय अपने साथी प्रतिनिधियों के साथ न जा सके, क्योंकि उस समय बम षड्यन्त्र के एक मुकदमे की अभी सुनवाई हो रही थी। कई बार तो ऐसी बुरी अफवाहें भी सुनाई पड़ती थीं कि सम्भवतः किसी प्रकार लाजपत राय को भी इस मामले से जोड़ दिया जाये, शायद उनके घर की तलाशी ली जाये और उन्हें एक षड्यन्त्रकारी के तौर पर या आतंकवादी कारवाइयों को प्रोत्साहन देने के लिये गिरफ्तार कर लिया जाये। लाजपत राय को इस बात की पूरी जानकारी थी कि इस प्रकार के मामले से संबद्ध कोई मामूली-सा प्रमाण भी उनके विरुद्ध नहीं मिलेगा, परन्तु वह जानते थे कि पुलिस उनकी मित्र नहीं है और उन्हें यह भी मालूम था कि कई बार पुलिस वालों में ईमानदारी तो बिल्कुल होती ही नहीं। 1914 के उन दिनों की चर्चा करते हुए लाजपत राय ने लिखा है, "उस समय के पूरी तरह उज्ज्वल दिनों में केवल एकमात्र काली छाया यह आशंका थी कि कहीं पुलिस मुझे लाहौर बम केस से किसी-न-किसी तरह उलझा न दे, जो उन दिनों दिल्ली में विचाराधीन था।" खैर, उन्हें दो अभियुक्तों में बहुत गहरी दिलचस्पी थी और जो सहायता उनसे संभव हो सकती थी, उन्होंने की। उनके लिए वह रुके हुए थे। उनमें से एक प्रिंसिपल हंसराज के पुत्र बलराज थे, जो उनके प्रिय पुत्र प्यारे कृष्ण थे, जो बहुत ही युवावस्था में मर गये थे, बहुत प्रिय मित्र थे। बलराज की लाजपत राय के घर, उनकी पुस्तकों तथा कागजों तक पूरी पहुँच थी। दूसरे व्यक्ति भाई परमानन्द के एक संबंधी, भाई बाल मुकुन्द थे, जो अछूतों के कल्याण की योजना तैयार करने के लिये कोई एक वर्ष से लाजपत राय के साथ काम कर रहे थे। भाई बाल मुकुन्द इतने नेक व्यक्ति थे कि वह उनकी भरपूर प्रशंसा करते थे। अपनी आत्म कथा के अंश में लाजपत राय ने भाई बाल मुकुन्द की स्मृति को भरपूर श्रद्धांजलि अर्पित की है, "अपने जीवन में मुझे बहुत से पढ़े लिखे और बहुत से अर्द्ध पढ़े लिखे भारतीय युवक मिले हैं, जिन्होंने मातृभूमि के लिये आत्म बलिदान तथा सेवा के लिये लगन की उच्च कोटि की भावना दिखाई

है । बाल मुकुद, जो उस समय केवल 20 वष की उम्र के थे, अपनी किस्म के इन लोगो म सर्वोच्च थे । उनका व्यक्तिगत चरित्र बिल्कुल शुद्ध आर निष्काम था, जिसका उदाहरण कम ही मिलता है। उनका मेर साथ बहुत स्नेह था और वह मेरे कहन पर किसी भी समय जीवन न्यौछावर कर सकते थे । मन उनके मन को रचनात्मक सामाजिक काय करने की ओर प्रेरित किया, राजनीतिक भाग-दौड की ओर नही। उन्होंने यह बात मान ली और अछूतो म काय करना आरम्भ कर दिया । केवल एक बार, वह भी उस एक वष के अन्त क करीब जो उन्होने मेरे पास बिताया, मुझे यह सकेत दिया कि उनका मन रचनात्मक काय की ओर अधिक नही है, वह तो देश की राजनीतिक स्वाधीनता के लिये कोई मजबूत तथा क्रातिकारी कदम उठान के पक्ष मे अधिक हैं । एक गुप्त क्रातिकारी सगठन के साथ उनके सबधो की कहानी का पता 1914 के एक मुकदमे के दौरान चला । मुझे इन सबधो के आरम्भ होन की सही तारीख तो याद नही, परतु यह बात उनकी प्रशसा के तौर पर कही जा सकती है कि जब "कारवाइ" का समय आया, वह स्वय ही मेरी सेवा छोडकर चले गये । बाल मुकद गभीर और ईमानदार युवक थे, जो क्षणिक आवेगो मे बह जाने वाले नही थे । अब यह बात बिल्कुल स्पष्ट हो गई थी कि उन्होंने क्रातिकारी सगठन म शामिल होन का निणय बडे सोच विचार के पश्चात् किया । मेरे पास नौकरी तो केवल एक चाल थी । मै तो उन्हें बहुत ही उच्चाशय वाला समझता था जो मेरे साथ धोखा नही कर सकते थे और कुछ अवसरो पर हुए वार्तालाप को जो एक वष की नौकरी के दौरान उन्होंने कभी कभार मेरे साथ किया, स्मरण करते हुए मेरे लिए यह सोचने का कारण है कि मेरे साथ धोखे का रवैया अपना कर वह प्रसन्न नहीं थे ।

"एक बात जिसने मुझे पूरी तरह असावधान कर दिया, वह यह थी कि मेरे साथ एक वष की सेवा के दौरान उन्होने एक युवती से शादी कर ली और वह उनके प्रति बहुत स्नेह दिखाते थे ।

" जा तक मुझे याद है, अभियोग पक्ष यह बात प्रमाणित नहीं कर पाया कि लारेंस गार्डन, लाहौर मे बम फेंकने की जो क्रूर घटना हुई

थी, उसमे उनका हाथ था । अभियुक्ता के विरुद्ध यही मुख्य आरोप था । परन्तु अदालतो ने यह बात जान ली कि जिस उद्देश्य के लिये 1911 मे बम फेंका गया, उसके लिये कार्य करने वाले गुप्त सगठन के पीछे जो व्यक्ति काय कर रहे है, यह उनमे से एक थे । उस मुकदमे के अभियुक्ता के बारे मे यह सदेह भी था कि दिसम्बर 1912 मे लार्ड हार्डिंग की हत्या के लिये जो हमला किया गया था, उनका उससे भी सम्बध था ।

'बाल मुकद को फासी दे दी गई और उसी दिन लाहौर म उनकी युवा पत्नी का देहात हो गया ।

'मुझे भाई बाल मुकद की गिरफ्तारी से पूव इस बात की कोई जानकारी नही थी कि उनका क्रातिकारी आदोलन से सबध है । यदि मुझे इसके बारे मे पहले जानकारी होती, तो मैं उन्हें इस आदोलन से अलग करने के लिये प्रयत्न करता और सभव था कि मैं उनकी जान बचा सकता, ताकि उन्हें देश की अच्छी सेवा तथा अधिक लाभकारी कार्यों मे इस्तेमाल किया जा सकता ।"

इस प्रकार लाजपत राय उस समय तक जहाज पर सवार न हुए, जब तक अभियोग पक्ष ने अपना खेल पूरा न कर लिया और उनके मित्रो ने, जिनमे प्रिंसिपल हसराज भी थे, उन्हें यह सुझाव दिया कि अब उन्हें अपनी रवानगी और स्थगित नही करनी चाहिए ।

भूपेंद्र नाथ बसु तथा अय प्रतिनिधि तब तक लाड क्रयू के साथ मुलाकात कर चुके थे और उन्होने उनके साथ बिल की व्यवस्थाओ के बारे मे बातचीत भी कर ली थी, जब लाजपत राय 17 मई 1914 को उनके साथ शामिल हुए । कलकत्ता के उस मिताचारी ने अपने आपको व्यावहारिक तौर पर प्रतिनिधिमडल का प्रमुख बना लिया था ।

लाजपत राय कहते है, "बाबू भूपेंद्र नाथ बसु अनौपचारिक रूप से हमारे शिष्टमडल के प्रमुख थे । उन्होने इडिया आफिस के अधिकारियो तथा ब्रिटिश राजनीतिज्ञो के साथ निकट सम्पक बना लिया था, और स्वभाव तथा प्रशिक्षण की दृष्टि से बातचीत जारी रखने के लिये वह बहुत उपयुक्त व्यक्ति थे । वह समय समय पर हमें बताते कि

अधिकारी की इच्छा है कि क्या किया जाये, वह कहा तक रियायत देंगे और क्या व्यावहारिक है और क्या नही है। उनके मार्गदशन म हम विवरण तैयार करते और उन्हे सेक्रेट्री आफ स्टेट फार इडिया के विचार के लिये उन्हें देते। वह उन पर कितना विचार करते यह बात केवल भूपेन्द्र बाबू को ही मालूम होती।"

और बिल के बारे म

"लार्ड क्र्यू ने जो बिल पेश किया, वह व्हिग बिल था, जिससे कोई भी सतुष्ट न हुआ और जिसका सभी ओर से विरोध हुआ। जब प्रतिनिधि मडल भारत से रवाना हुआ था, उस समय बिल की व्यवस्थाए प्रकाशित नही हुई थी, इसलिए उसके बारे मे भारतीय राय व्यक्त नही की गई थी। जब व्यवस्थाओ का पता चल गया, तो भारतीय समाचार पत्रो ने बहुत असतोष व्यक्त किया। अधिक-से-अधिक जो किया गया, वह अनमना-सा समर्थन और वह भी बहुत ही सीमित। शिष्ट मण्डल के सदस्य भी इस बारे में एक मत नही थे। व्यक्तिगत तौर पर मुझे कोई ऐसी बात दिखाई नहीं दी कि बिल का स्वागत किया जाये, परन्तु हमारे प्रमुख इस बात का समर्थन करने पर बाध्य थे और सवसम्मति की खातिर हमने अपने विवरण सेक्रेट्री आफ स्टेट को दे दिये, जिनमें आमूल परिवतन सुझाव के बाद हमने बिल को सामान्य समथन दे दिया। परन्तु टोरी पार्टी ने बिल का जोरदार विरोध किया और टोरी समाचार-पत्रो ने तो उसके विरुद्ध एक हगामा खडा कर दिया।"

लाड क्र्यू का बिल अस्वीकार कर दिया गया और लाजपत राय का कहना था कि "किसी को भी इसका अधिक खेद नही था, सिवाय भारतीय शिष्टमण्डल के नेता के।"

इस बिल का ध्यान रखना तो लाजपत राय की इग्लड यात्रा का उपयुक्त बहाना था। इसलिये इसके साथ साथ उन्होने कई अन्य बातो म भी रुचि ली, विशेषकर उन्होने यह अवसर अपने सबध और व्यापक तथा गहरे करने के लिये इस्तेमाल किया, जो उस लक्ष्य के लिए लाभकारी हो सकें, जिसे उन्होने अपनाया हुआ था। वह कीर हार्डी से उस समय नही मिल पाये, जब श्रमिक नेता भारत की यात्रा पर

थे । उस समय वह माण्डले मे मरकारी कदी थे । 1909 म मैत्री के लिये पूरे अवसर मिल गये । 1914 मे लदन पहुचने पर उनके स्वागत के जो पत्र मिले, उन पहले पत्रो मे कीर हार्डी का पत्र भी था, "हाउस आफ कामन्स में दोपहर के भोज के बार-बार न्योते के साथ ।"

फिर वह फ्रैड्रिक मैकार्नेस थ, जिन्होने, जैसा कि हमने 'निर्वासन' के अध्यायो मे देखा, कामन्स मे लडी गयी लडाई मे मौर्ले को बिल्कुल न बख्शा । स्वाभाविक तौर पर लाजपत राय और उनके बीच गहरी मैत्री स्थापित हो गई थी ।

लाजपत राय ने लिखा है कि "मैकार्नेस एक अन्य अग्रेज थे, जिनकी मैत्री और अतिथि सत्कार के स्रोत से मैने जीभर कर पिया । 1907 मे उन्होने मेरे हित को अपनाया और मेरे निर्वासन के बारे मे लगातार प्रतिदिन प्रश्न उठाकर जान मौल तथा लिबरल पार्टी के अन्य नेताओ की मैत्री खो दी थी । 1907 मे उन्हें बहुत अच्छा समझा जाता था । उनकी परिपक्व विद्वता, उनकी कानूनी योग्यता, उनकी गभीर तथा ठोस दलीलो, उनके सतुलित भाषणो के कारण उनके बारे मे महत्वपूर्ण बातो के लिये सोचा जाता था । उस समय तो उन्हें उभरता हुआ मूल परिवतनवादी समझा जाता था । परन्तु अफसोस । मेरे निर्वासन ने उनका पतन कर दिया ।

"बिना मुकदमे के निर्वासन "उदारवादी" सिद्धातो का ऐसा मूलभूत उल्लघन था, जिसके साथ मैकार्नेस बिल्कुल समझौता न कर पाये । विलक्षण जान मौर्ले की कोई दलील या स्पष्टीकरण उन्हें सदन मे मेरे निर्वासन के बारे मे प्रश्न करने से न रोक सके । उनकी मेरे साथ कभी भेंट नही हुई थी, न ही उन्हें मेरे बारे मे कोई जानकारी थी । वह तो केवल सिद्धात की खातिर लड रहे थे । वह इसी सिद्धात को पूजते थे । इस सिद्धात की वकालत के कारण वह पार्टी के नेताओ के मन मे सम्मान गवा बठे । जान मौर्ले की भारतीय नीति पर तेज हमले करने के कारण उनसे इतनी घृणा की जाती थी कि सालिसिटरो ने उन्हे मुकदमे भेजने बन्द कर दिये और जोरदार वकालत

वाले वह श्रेष्ठ वकील शीघ्र ही बिना मुकदमे के कनिष्ठ वकील बनकर रह गये ।

'श्रौड्रिक मवार्नेस किसी भी तरह से क्रांतिकारी विचार तथा प्रवृत्ति के व्यक्ति नहीं थे। वह बडे शब्दों के प्रयोग को बिलकुल पसंद नहीं करते थे और न ही क्रांतिकारी तौर-तरीकों का। वह शांति पसंद व्यक्ति थे और सदा ही आन्दोलन के लिये सांविधानिक तरीकों का समर्थन करते थे। उनकी पत्नी भी उतनी ही नेक दिल महिला थी और उनकी भारतीय दर्शन तथा साहित्य में बहुत रुचि थी। उनके साथ मेरा परिचय 1908 09 में हुआ तथा अन्त तक उनकी मित्रता तथा विश्वास मुझे प्राप्त रहा" ।

एक और बहुमूल्य मित्रता वेब्ब दम्पति के साथ थी। उनके बारे में वह लिखते हैं

"एक अन्य अंग्रेज दम्पति जिनकी मैत्री तथा मेहरबानी मेरे लिये बहुत लाभकारी रही, वह वेब्ब दम्पति थे। उनकी विद्वता तथा ज्ञान और शानदार रचनाएं विश्व प्रसिद्ध हैं, परन्तु शायद बहुत कम लोग जानते हैं कि मित्रों के तौर पर वे कितने भले और अच्छे हैं। वे समाजवादी हैं, परन्तु क्रांतिकारी समाजवादी नहीं। ब्रिटिश फेबियन सोसायटी, फेबियन मनोवृत्ति और फेबियन साहित्य पूर्णतया उनकी देन है। लेबर पार्टी के संगठन में उनका योगदान शानदार रहा है। 1914 में इंग्लैंड में ठहरने के दौरान श्री सिडनी वेब्ब मेरे लिए बहुत लाभप्रद रहे।"

निस्संदेह वयोवृद्ध सर विलियम वेडरबर्न के बारे में तो उन्हें बहुत कुछ देखना-जानना ही था

"दरअसल सारे भारतीय राजनीतिक कार्यकर्ताओं सभी वर्गों के भारतीयों के लिये, स्वर्गीय सर विलियम वैडरबर्न एक मित्र दार्शनिक तथा मार्गदर्शक थे। वह अवकाश प्राप्त आई० सी० एस० थे। वह उच्चकोटि के अंग्रेज देशभक्त थे, परन्तु उनके बारे में यह कहना बिलकुल उचित था कि वह भारत से प्रेम करते थे। उनको पेंशन के रूप में भारतीय निधि से मिलने वाला प्रत्येक पैसा भारत के कल्याण

थे। उस समय वह माण्डले में सरकारी कैदी थे। 1909 में मैत्री के लिये पूरे अवसर मिल गये। 1914 में लदन पहुंचने पर उनके स्वागत के जो पत्र मिले, उन पहले पत्रों में कीर हार्डी का पत्र भी था, "हाउस आफ कामन्स में दोपहर के भोज के बार-बार न्योत के साथ।"

फिर वह फ्रैड्रिक मैकार्नेस थे, जिन्होंने, जैसा कि हमने 'निर्वासन' के अध्यायों में देखा, कामन्स में लडी गयी लडाई में मौर्ले को बिल्कुल न बख्शा। स्वाभाविक तौर पर लाजपत राय और उनके बीच गहरी मैत्री स्थापित हो गई थी।

लाजपत राय ने लिखा है कि "मैकार्नेस एक अन्य अंग्रेज थे, जिनकी मैत्री और अतिथि सत्कार के स्रोत से मैंने जीभर कर पिया। 1907 में उन्होंने मेरे हित को अपनाया और मेरे निर्वासन के बारे में लगातार प्रतिदिन प्रश्न उठाकर जान मौर्ल तथा लिबरल पार्टी के अन्य नेताओं की मैत्री खो दी थी। 1907 में उन्हें बहुत अच्छा समझा जाता था। उनकी परिपक्व विद्वता, उनकी कानूनी योग्यता, उनकी गंभीर तथा ठोस दलीलों, उनके संतुलित भाषणों के कारण उनके बारे में महत्वपूर्ण बातों के लिये सोचा जाता था। उस समय तो उन्हें उभरता हुआ मूल परिवर्तनवादी समझा जाता था। परन्तु अफसोस। मेरे निर्वासन ने उनका पतन कर दिया।

"बिना मुकदमे के निर्वासन "उदारवादी" सिद्धांतों का ऐसा मूलभूत उल्लंघन था, जिसके साथ मैकार्नेस बिल्कुल समझौता न कर पाये। विलक्षण जान मौर्ले की कोई दलील या स्पष्टीकरण उन्हें सदन में मेरे निर्वासन के बारे में प्रश्न करने से न रोक सके। उनकी मेरे साथ कभी भेंट नहीं हुई थी, न ही उन्हें मेरे बारे में कोई जानकारी थी। वह तो केवल सिद्धांत की खातिर लड रहे थे। वह इसी सिद्धांत को पूजते थे। इस सिद्धांत की वकालत के कारण वह पार्टी के नेताओं के मन में सम्मान गंवा बैठे। जान मौर्ले की भारतीय नीति पर तेज हमले करने के कारण उनसे इतनी घृणा की जाती थी कि सालिसिटरों ने उन्हें मुकदमे भेजने बन्द कर दिये और जोरदार वकालत

वाले वह श्रेष्ठ वकील शीघ्र ही बिना मुकदमे के कनिष्ठ वकील बनकर रह गये ।

"कौड्रिक मकार्नेस किसी भी तरह में क्रांतिकारी विचार तथा प्रवृत्ति के व्यक्ति नहीं थे। वह कडे शब्दो के प्रयोग को बिल्कुल पसद नहीं करते थे और न ही क्रांतिकारी तौर तरीका का। वह शांति पसद व्यक्ति थे और सदा ही आदोलन के लिये सावैधानिक तरीका का समर्थन करते थे। उनकी पत्नी भी उतनी ही नव दिल महिला थी और उनकी भारतीय दर्शन तथा साहित्य मे बहुत रुचि थी। उनके साथ मेरा परिचय 1908 09 मे हुआ तथा अन्त तक उनकी मित्रता तथा विश्वास मुझे प्राप्त रहा" ।

एक और बहुमूल्य मित्रता वैब्ब दम्पति के साथ थी। उनके बारे म वह लिखते है

'एक अन्य अग्रेज दम्पति जिनकी मैत्री तथा मेहरबानी मेरे लिये बहुत लाभकारी रही, वह वैब्ब दम्पति थे। उनकी विद्वता तथा ज्ञान और शानदार रचनाए विश्व प्रसिद्ध ह, परन्तु शायद बहुत कम लोग जानते है कि मित्रो के तौर पर वे कितने भले और अच्छे ह । वे समाजवादी ह, परन्तु क्रांतिकारी समाजवादी नहीं । ब्रिटिश फेबियन सोसायटी, फेबियन मनोवृत्ति और फेबियन साहित्य पूर्णतया उनकी देन ह। लेबर पार्टी के सगठन मे उनका योगदान शानदार रहा है । 1914 म इग्लैड म ठहरने के दौरान श्री सिडनी वैब्ब मेरे लिए बहुत लाभप्रद रहे।"

निस्सदेह वयोवृद्ध सर विलियम वैडरबर्न के बारे म तो उन्हें बहुत कुछ देखना-जानना ही था

"दरअसल, सारे भारतीय राजनीतिक कार्यकर्त्ताओ, सभी वर्गों के भारतीयो के लिये, स्वर्गीय सर विलियम वैडरबर्न एक मित्र, दार्शनिक तथा मार्गदर्शक थे । वह अवकाश प्राप्त आई० सी० एस० थे । वह उच्चकोटि के अग्रेज देशभक्त थे, परन्तु उनके बारे मे यह कहना बिल्कुल उचित था कि वह भारत से प्रेम करते थे । उनका पेंशन के रूप म भारतीय निधि से मिलने वाला प्रत्येक पैसा भारत के कल्याण

के लिये खर्च होता था। वह इंडियन नेशनल कांग्रेस की ब्रिटिश समिति के अध्यक्ष थे और उनके साप्ताहिक समाचार पत्र 'इंडिया' के लिये अधिकतर धन उन्हीं से मिलता था। जो भी भारतीय राजनीतिज्ञ राजनीतिक कार्यों के लिए इंग्लैंड आते थे, वे उनसे सलाह-मशविरा करते और वह उनके कार्य तथा स्थिति को सुखद बनाने के लिए हर संभव प्रयत्न करते। उनकी सलाह तथा सहायता हमारे लिए लगभग अनिवार्य थी।"

जब लाजपत राय लंदन पहुंचे, उन दिनों सर विलियम विडी (फ्रांस) गये हुए थे। परंतु जैसे ही वह लौटे (मध्य जून में) वह कांग्रेस के सभी प्रतिनिधियों से मिले। विडी से उन्होंने लाजपत राय को लिखा था कि वह प्रतिनिधिमंडल प्रातः 11 बजे मुलाकात करेंगे, परन्तु उन्होंने इच्छा व्यक्त की कि वह (लाजपत राय) 10.15 पर आ जायें क्योंकि "अन्य प्रतिनिधियों से बातचीत करने से पूर्व वह उनके साथ कुछ वार्तालाप करना चाहते हैं।" बातचीत के दौरान मुख्य विषय इंडिया आफिस के बारे में लार्ड क्रयू का बिल था। सर विलियम ने लाजपत राय को बार बार "मैरेडिथ" में अपने ग्रामीण निवास स्थान पर आमंत्रित किया। "पंजाब में असंतोष की स्थिति" बार बार उनकी बातचीत का विषय था। यह सुझाव दिया गया कि सर विलियम इस विषय के बारे में एक टिप्पणी लिखें और उसे इंडिया आफिस को पेश करें पर शायद ऐसा हुआ नहीं।

लाजपत राय ने ब्रिटेन के श्रमिक तथा व्यापार संगठनों के आन्दोलन में रुचि ली और 1914 में ही उन्होंने भारत में एक श्रमिक संगठन आन्दोलन शुरू करने के बारे में विचार किया।

'वेब्ब दम्पति ने उन्हें फेबियन समर स्कूल' में आमंत्रित किया। इंगलिश लेक जिले के सुंदर क्षेत्र में इस यात्रा ने एक साथ ही "राहत और शिक्षा" दी।

इस स्कूल के अनुभव का स्मरण करते हुए उन्होंने बाद में लिखा कि 'जुलाई के अन्तिम दस दिन इंग्लैंड के उच्च कोटि के सामाजिक कार्यकर्ताओं और दार्शनिकों के साथ आनन्दमय वार्तालाप में गुजरे। उनमें

श्रीमती और श्री वैब्ब, श्री बर्नार्ड शा, श्री काल तथा श्री वबिट शामिल थे। कोल के नेतृत्व में युवा दल विद्रोह किये हुए था। उन्होंने खुले आम वैब्ब दम्पति की आलोचना की, उन पर आक्षेप किया तथा उनका मजाक उडाया। परन्तु उपर्युक्त ने कभी नाराजगी व्यक्त नही की और आक्षेप तथा आलोचना को विनोदशीलता से लिया।"

लाजपत राय सदा चौकन्ने रहे आर उन्होने विदेश मे शिक्षा सस्थाओ के काय के अध्ययन का काई भी अवसर बहुत कम खाया। इस बार उन्होने इग्लैड म भारतीय छात्रा की समस्याओ की ओर विशेष ध्यान दिया। इस उद्देश्य के लिये उन्होने इंडिया आफिस के टी० डब्ल्यू० आनल्ड के साथ कई बार भेट की और जब 'न्यू स्टेट्समैन' के सम्पादक ने वैब्ब के सुझाव पर, जो उस समय उनका मागदशन तथा नियत्रण करते थे, भारतीय विषया पर कुछ लेख स्वीकार करने के लिये सहमति व्यक्त की, तो लाजपत राय ने उन्हे कई लेख दिये, जिनमें 'भारतीय छात्रा की समस्याए' नच भी था। यह लेख लिखने के 15 वष बाद भी वह उन्हे बिल्कुल प्रासगिक लगा और उन्होने इसे अपनी आत्मकथा के अश मे शामिल किया।

* * *

कामागाटा मारू की घटना का मामला एक बहुत उलझी हुई समस्या थी, जो उन दिनो के समाचार पत्रा मे मोटी खबरा मे प्रकाशित हुई। इसने मई-जून, जुलाई 1914 मे ब्रिटिश अधिकार क्षेत्र मे आमतौर पर कनाडा म रहने वाले भारतीया के प्रश्न को गरमा गरम प्रश्न का रूप दे दिया और लाजपत राय ने इग्लड म अपने निवास के दौरान, विशेष तौर पर समाचार-पत्रा म प्रकाशन के माध्यम से यथायोग्य यागदान दिया। लदन म 'न्यू स्टेट्समैन' के अलावा पत्रकारिता का उनका मुख्य सम्पर्क 'डेली न्यूज' के साथ (जिसका सम्पादन ए० जी० गार्डिनर करते थे) तथा 'वस्ट मिन्सटर' के साथ था (जिसके सम्पादक जे० ए० स्पेंडर थे)।

कामागाटा मारू की दुखद घटना के सबध म अपने काय के बार म अपनी आत्मकथा के अश म लिखते हुए वह कहते है

"इस प्रश्न को बाबा गुरुदित सिंह के प्रयत्नों ने प्रमुखता का रूप दे दिया, जिन्होंने हिंदुस्तानियों से भरा एक जहाज लेकर कनाडा के तट तक पहुचाने की चेष्टा की और इस उद्देश्य के लिए विशेष तौर पर एक जहाज किराये पर लिया, ताकि ब्रिटिश कोलम्बिया के प्रवासी कानूनों को आजमाया जा सके, जिन्होंने भारतीयों के वहा आने पर प्रतिबंध लगा दिया था और कहा था कि वे जिस जहाज पर भारत से आये हैं, सीधे उसी से कनाडा पहुचे, यह एक असभव बात थी, जो साधारण जहाज यात्रियों को पश्चिमी कनाडा के तट तक पहुचाते थे, वे ही भारतीय यात्रियों को ले जाते थे, क्योंकि इसके लिए उन्हें दडस्वरूप उन यात्रियों को नि शुल्क उसी स्थान पर पहुँचाना पडता था, जहा से वे जहाज पर चढे थे। बहुत धन खर्च करके तथा बडे आत्म विश्वास के साथ पजाब के निवासी बाबा गुरुदित सिंह ने, जो चीन मे ठेकेदार रहे थे और कुछ धन कमा चुके थे, एक जापानी जहाज किराये पर लिया और उसमे पाच सौ सिखो को सवार करके कनाडा के तट तक ले गये। इन सिखो को जहाज से नही उतरने दिया गया और सागर मे तथा तट पर उनके ऊपर कडा पहरा लगा दिया गया। उनमे से एक यात्री ने अपने वकील की मार्फत अदालत मे बदी प्रत्यक्षीकरण याचिका पेश की, जो अस्वीकार कर दी गई। उच्चतम न्यायालय मे भी उसकी अपील मजूर न हुई और आखिरकार जहाज को सवारियो समेत वहा से लौटने पर मजबूर कर दिया गया। मई मे इग्लैंड पहुचने पर मैंने इस मामले मे रुचि लेनी शुरू कर दी और अडर सेक्रेट्री आफ स्टेट फार इंडिया तथा कुछ अन्य लोगो के साथ मुलाकात करने और उनसे इन मामलो मे हस्तक्षेप करने के अतिरिक्त मैंने महत्वपूर्ण सम्पादको से भेंट की और समाचार पत्रो को भी लिखा और इस नीति के खतरो के बारे मे बताया।

लाजपत राय ने प्रमुख कनडियन राजनीतिज्ञ हेनरी बोरासा से भी मुलाकात की

"हेनरी बोरासा उस समय कनाडा की ससद मे फ्रेंच कनेडियन लिबरल गुट के नेता थे। वह बडे सभ्य, शक्तिशाली तथा प्रभावशाली व्यक्ति थे और मान्ट्रियल मे प्रकाशित होने वाले एक समाचार पत्र के सम्पादक थे। मेरे

साथ भेंट करने की उनकी इच्छा का कारण कुछ और था, वह नहीं था जो चाल्म गवट ने सोचा था। मैंने उनके साथ लदन में काफी लम्बी चौडी बातचीत की और उसके बाद मैं अमरीका में भी उनसे मिला। उन्होंने उपनिवेशों में एशियाई विरोधी नीति की सारी जिम्मेदारी ब्रिटिश पर डाल दी। उनकी अधिक रुचि विश्व भर में नाकराज का सामान्य विकास करने में थी, विशेषकर भारतीयों के लिए कनाडा आने की छूट की नीति के मुकाबले। उनसे भेंट बड़ी प्रसन्नता की बात थी, परन्तु मेरे साथ वह उस संबंध में तुरंत सहायता देने का इकरार न कर सके, जिस मामले में मेरी तुरंत रुचि थी।"

ब्रिटिश साम्राज्यवाद के शिकार कामागाटा मारु के लोगों को राहत देने के सभी प्रयत्न विफल हो गये। जिन प्रवासियों को वहां जाने से रोका गया था, अपने देश लौटे पर जब वे बज बज घाट पर (कलकत्ता के निकट) उतरे, तो दमदम गोलियों ने उनका स्वागत किया।

38. साथी प्रतिनिधियों के साथ मतभेद

घर से यात्रा पर रवाना होते समय उन्होंने सोचा था कि वह छ मास के लिए यात्रा पर रहेंगे। अब उन्हें इंग्लैंड में आए हुए दस सप्ताह बीत चुके थे और कांग्रेस प्रतिनिधि मंडल का अधिकृत कार्य पहले ही समाप्त हो चुका था। उन्होंने महाद्वीप की यात्रा का कार्यक्रम बनाया—जिसमें सामान्य तौर पर फ्रांस, जर्मनी, स्विटजरलैंड और आस्ट्रिया शामिल थे, बाद में बलकान और तुर्की और इनके पश्चात मिस्र होते हुए घर वापसी। उन्होंने इन देशों के प्रमुख व्यक्तियों के साथ परिचय प्राप्त कर लिए थे। वेब्स ने इस कार्य में विशेष तौर से सहायता की थी। उन्होंने यह सारी व्यवस्था उस समय की, जब वह जुलाई के अंत में फेबियन समर स्कूल में भाग लेने के लिए गये थे। स्कूल की समाप्ति पर उन्हें इंग्लैंड से विदा होना था, परन्तु वेल्स से विदा होने से पूर्व ही सेराजेवो हत्याकांड का समाचार वहां पहुंच गया था, जिससे विश्व युद्ध भड़क उठा था।

वह 31 जुलाई को इंग्लैंड लौटे और उन्होंने देखा कि संभावित विपत्ति के संदेह से वातावरण तनावपूर्ण था—वे जटिल अस्फुट भावनाएं, जो विवेक शून्यकाल से पूर्व होती हैं। यात्रा कार्यालय उन्हें उस समय तक महाद्वीप की यात्रा की सलाह देने को तैयार नहीं था, जब तक यह स्पष्ट न हो जाए कि स्थिति का परिणाम क्या होने जा रहा है। अगले दिन ही आस्ट्रिया और जर्मनी में विधिवत युद्ध की घोषणा हो गई।

ब्रिटिश सरकार द्वारा फ्रांस का पक्ष लेने के निर्णय से ब्रिटेन में रहने वाले भारतीयों के लिए भयंकर प्रश्न उठ खड़े हुए। उनके स्वाभाविक मनोवेग तथा सोचे समझे व्यवहार, आत्मविरोध तथा झिझक का लाजपत राय ने शल्य चिकित्सक की छुरी के कौशल से विश्लेषण किया, जब उन्होंने आत्मकथा का खण्ड लिखा:

'मंत्रिमंडल द्वारा निर्णय लेने के 24 घंटे के अंदर ही मैंने अनेक भारतीयों से बातचीत की, जो नेशनल लिबरल क्लब में तम्बाकू पीने

के कमरे में बैठे थे और इस प्रकार बातचीत कर रहे थे जैसे यह कोई उत्सव का अवसर था। इनमें कई उच्च स्तर के भारतीय थे—हिन्दू तथा मुसलमान। उनकी प्रसन्नता तथा आनन्दोत्सव इतना बेतुका हो गया कि श्री जिन्ना को उन्हें उनके अनुचित व्यवहार के लिए डाटना पड़ा, यह बात सोचते हुए कि क्लब के अंग्रेज सदस्य स्थिति के बारे में इतने निराश तथा चिंतित थे। उसके 24 घंटे के अन्दर स्थिति बिल्कुल बदल गई। सभी प्रमुख भारतीयों में, जिनमें क्लब में उपस्थित व्यक्ति भी शामिल थे, एक प्रकार की होड़ लग गई कि वे साम्राज्य के प्रति वफादारी व्यक्त करने में एक दूसरे को मात दे दें और इस बात का श्रेय ले सकें कि उन्होंने नेतृत्व किया है। कांग्रेस प्रतिनिधि मंडल के सदस्यों में भी मतभेद पैदा हो गए।

"इन दिनों में से एक अवसर पर मुझे इंडियन नेशनल कांग्रेस की ब्रिटिश समिति के कार्यालय जाने का अवसर मिला और मैंने देखा कि मेरे दो सहयोगी कांग्रेस की ओर से वफादारी व्यक्त करने का एक वक्तव्य जारी करने के बारे में विचार कर रहे थे। उन्होंने प्रमुख ब्रिटिश राजनेताओं से विचार-विमर्श किया था और उन्होंने मशविरा दिया था कि वे बिना देरी के ही ऐसा कर दें। उन्हें केवल एक विचार बेचैन और परेशान कर रहा था कि शायद इसमें मैं उनका साथ न दू। इसलिए उन्होंने मुझे देखते ही प्रहार आरंभ कर दिया। वे चाहते थे कि वहीं और उसी समय यह वक्तव्य जारी कर दिया जाए, क्योंकि हम तीनों बहुमत में थे, इसलिए अन्य सदस्य उनके अनुमान के अनुसार, स्वयं हस्ताक्षर कर देंगे। परन्तु जिस प्रकार उन्हें आशा थी वे मुझे तुरंत सहमत न कर सके। मैंने कई कारणों से उनके प्रस्ताव पर विरोध व्यक्त किया।

1 इस प्रश्न पर विचार करने के लिए प्रतिनिधि मंडल की कोई औपचारिक बैठक नहीं बुलाई गई थी।

2 प्रतिनिधि जिस काम के लिए आये थे, वह पूरा हो चुका था और बिल अस्वीकार हो जाने के पश्चात् प्रतिनिधि मंडल विधिवत् भंग कर दिया गया था।

271 इस सबध मे अपने विचार व्यक्त नही किए थे और न ही इस सबध मे हम कोई निर्देश भेजे थे।

3 स्वदेश म भारतीय नेताओं ने

'मेरे सहयोगी मेरे इस बाधक विरोध के लिए बहुत नाराज थ। उनमे से एक, श्री मामथ, ने मुझे गालिया दी और हमारे बीच कुछ गरमागर्मी भी हुई। आखिरकार, यह पता चला कि एक अन्य प्रतिनिधि, श्री एम० ए० जिना नेशनल लिबरल क्लब म उपस्थित थे और उन्हे बुलाया जा सकता था। ऐसा ही किया गया। वह आये और उन्होंने मेरे साथ सहमति व्यक्त की। इसलिए यह मामला स्थगित करना पडा। यह निर्णय किया गया कि प्रतिनिधियो की एक औपचारिक बैठक अगले दिन प्रात बुलाई जाए और उसके लिए पाचवें सदस्य को, जो अनुपस्थित थे सूचना भेज दी जाए। अगले दिन औपचारिक बठक हुई और बहुमत मे यह निर्णय किया गया कि अभी कोई जल्दी नही है और हमे भारत से समाचारो की प्रतीक्षा करनी चाहिए।

"इसी बीच, अन्य भारतीयो न अभियान आरभ कर दिया कि एक आम घोषणा करवाई जाए जिस पर उस समय ब्रिटेन मे उपस्थित सभी भारतीयो के हस्ताक्षर हो। इस अभियान को चलाने वालो मे प्रमुख तौर पर सर एम० भावनगरे तथा पडित भगवान दीन दुबे शामिल थे। इडियन नेशनल काग्रेस के पराजित प्रतिनिधि उन लोगो की अपील सर विलियम वैडरबन के पास ले गए, जो उन दिनो मैरडिथ मे थे और उनका तैयार किया हुआ एक प्रारूप ले आए।

"मुझे इस वक्तव्य की प्रथम जानकारी 'टाइम्स' पढने से मिली, जिसमे वक्तव्य का सारांश प्रकाशित हुआ और साथ मे यह टिप्पणी भी थी कि उस पर सभी प्रतिनिधियो ने, जिनम म भी शामिल था, हस्ताक्षर किए हैं।

'ऐसा दिखाई पडता है कि किसी ने इस विश्वास के साथ मेरे हस्ताक्षर कर दिए थे कि समय आने पर मैं सर विलियम वैडरबन द्वारा तैयार किए गए मसौदे को स्वीकार कर लूगा। देश और मेरे अपने हित मे उस वक्तव्य पर मेरे हस्ताक्षर आवश्यक समझे गए थे।

"7 अगस्त को मुझे हैम्पस्टीड मे पडित भगवान दीन दुबे की ओर से एक तार मिला

"लार्ड क्र्यू को भेजे वफादारी का विश्वास दिलाने वाले पत्र पर सभी वयोवृद्ध भारतीयों तथा प्रतिनिधि मंडल के सदस्यों के हस्ताक्षर हो गए हैं । यदि आप भी हस्ताक्षर करना चाहते हैं, तो तुरंत 3 मिडल टैम्पल लेन पहुचें ।" उसके पश्चात् क्या हुआ, उसका विवरण लाजपत राय ने इस प्रकार दिया है ।

"मैं वक्तव्य पर हस्ताक्षर करने के लिए पंडित दुबे के यहां न गया परन्तु एक दो दिन बाद मैंने नेशनल लिबरल क्लब में उस पर हस्ताक्षर कर दिए । शायद मेरे हस्ताक्षर अंतिम थे । इसलिए मैं साम्राज्य के हित के लिए युद्ध में सहयोग देने के लिए वफादारी की नीति पर निश्चित तौर से बाध्य था । लगभग सभी राष्ट्रवादी नेता साम्राज्य के प्रति वफादारी और निष्ठा की घोषणा में शामिल हो गए थे । वाइसराय की विधान परिषद् में सर्वसम्मति से एक प्रस्ताव पास किया गया जिसमें कहा गया था कि उस समय तथा युद्ध के दौरान भारतीय सैनिकों का खर्च भारतीय खजाने की ओर से वहन किया जाएगा । यह स्वाभाविक ही था कि ब्रिटिश जनता, संसद तथा समाचार पत्र भारत तथा भारतीय वफादारी की भरपूर प्रशंसा कर रहे थे । 10 सितंबर को 'द टाइम्स' ने सर वेलंटाइन सिरोल का एक पत्र प्रकाशित किया जिसमें उन्होंने इस बात की ओर ध्यान दिलाया कि युद्ध ने यह बात सिद्ध कर दी है कि पढ़े-लिखे नेताओं या राजकुमारों तथा भारतीय जनता पर कोई प्रभाव नहीं है, यहां तक कि वे नहीं चाहते कि भारत से ब्रिटिश राज गायब हो । उसी अंक में बाबू भूपेंद्र नाथ बसु का एक पत्र भी प्रकाशित हुआ ।

'इंग्लैंड में बहुत प्रसन्नता व्यक्त की गई और भारत की पेशकश को स्वैच्छिक, स्वाभाविक, उत्साहपूर्ण, सर्वव्यापी आदि कहा गया । आम तौर पर यह दलील दी गई कि ऐसा इसी कारण है कि ब्रिटिश शासन न्यायोचित है ।

'सर फिरोजशाह मेहता का एक भाषण जो उन्होंने बम्बई में दिया था ब्रिटिश समाचार पत्रों में बहुत उद्धृत किया गया । 'डेली मेल' ने एक मुख्य संपादकीय लिखा, जिसका शीर्षक था 'जीने योग्य एक दिन' ।

'अब हमारे लिए यह बहुत लज्जापूर्ण स्थिति थी, जो छता पर चढ कर गला फाडकर कह रहे थे कि भारत में ब्रिटिश शासन अप्राकृतिक, अनुचित तथा गलत है और भारत का 'लहू चूसने' की इस नीति के कारण भारत आर्थिक तौर पर कमजोर होता जा रहा है, वफादारी की यह 'लहर' ब्रिटिश शासन के विरुद्ध हमारे वक्तव्यो के उत्तर मे हमारे मुह पर दे मारी गई थी । इन परिस्थितियो मे मने वेब्ब दम्पति से 'न्यू स्टेट्समैन' के लिए 'भारत और युद्ध' विषय पर एक लेख लिखने की आज्ञा मागी। स्वाभाविक तौर पर उन्होंने यह लेख देखने की इच्छा व्यक्त की। जब यह लेख सपादक के पास पहुचा, तो उ होंने इसे प्रकाशित करने से इ कार कर दिया, क्योकि उसमे इगलड के प्रति गैर वफादारी तथा शत्रुता की भावनाए व्यक्त होती थी।"

"उ हाने दूसरा प्रयत्न किया और वेब्ब की सिफारिश के साथ सपादक ने उसे स्वीकार कर लिया । यह लेख उनके अपने नाम से नही था, बल्कि 'एक जानकार' के नाम से था।"

"सर विलियम वेडरबन का लेखक के बारे मे पता नही था, परन्तु उ होंने 'एक जानकार' द्वारा दिए सुझावो की पुष्टि करते हुए एक अधिक लम्बा पत्र भेज दिया, इसके अतिरिक्त उ होंने लाजपत राय को भी लिखा जिसमे कहा गया था 'द न्यू स्टेट्समैन' मे 'भारत और युद्ध' शीर्षक मे एक बहुत बढिया लेख पढने पर (क्या आपको जानकारी है कि यह किसने लिखा है) मैंने निर्णय किया है कि सपादक के नाम एक लम्बा पत्र ही मेरा सदेश अधिक अच्छे ढग से पहुचा सकता है। कृपया अगला अक देखिए, शायद यह उसम प्रकाशित होगा ।'

जब सर विलियम को यह मालूम हुआ कि 'एक जानकार' राय के अलावा कोई और व्यक्ति नही, तो उ होंने लिखा

"जैसा कि आपके अपने शब्दो मे यह पक्ष पश करने के औचित्य म सदेह था, मै यह सोचता हू कि म 'वस्टमिंस्टर' को या 'द न्यू स्टेटसमन' को एक पत्र लिखू (आप जिसको उचित समझें), जिसम ब्रिटिश सरकार के एक शुभचिंतक और सुविज्ञ भारतीय मित्र के तौर पर आपके विचार लिखू । यदि आपको यह योजना पसद हो, तो आप मुझे

उस पत्र की एक प्रति भेज दें, जो आपने 'वेस्टमिंस्टर' को लिखा था, फिर मैं एक मसौदा तैयार करूंगा, जो स्वीकृति के लिए आपको भेज दूंगा।"

परन्तु लाजपत राय का कहना है

"अंग्रेजी समाचारपत्रों में भारत की वफादारी के बारे में, जो सही महत्वपूर्ण लेख प्रकाशित हुआ, वह अनाम लेखक का लेख था, जो पहली अक्तूबर को 'यू एज' में 'एक आक्सफोर्ड भारतीय' के नाम से छपा।

"जब वफादार भारतीय समाचारपत्रों ने भारत में युद्ध के नाम पर चंदे जमा करने और युद्ध ऋणों की मांगों के बारे में शिकायतें शुरू कीं, तो मैंने, 'द न्यू स्टेट्समैन' में एक अन्य लेख लिखा, (इस बार हस्ताक्षरों के साथ था) जो भारत पर युद्ध के आर्थिक प्रभाव के बारे में था। कुछ अंग्रेजों ने उसे गैर वफादारी की बातें कहकर कटु आलोचना की।"

"अब चौदह वर्ष बाद इस मामले पर फिर से विचार करने पर मैं महसूस करता हूं कि 1914 के युद्ध में भारत के राष्ट्रीय नेताओं का व्यवहार बहुत ही अनुचित और गैर-देशभक्तिपूर्ण था। मैं यह मानने से इन्कार करता हूं कि वह या उनके देशवासी इंग्लैंड से प्रेम करते थे और उसकी केवल उसी की खातिर रक्षा करने को चिंतातुर थे। मुझे यह कहने में कोई झिझक नहीं है कि वफादारी और निष्ठा की बहुत सी घोषणाएं केवल ढोंग थीं, छल था। परन्तु जो बात स्वीकार की जा सकती है, वह शायद यही है कि केवल वही नीति थी, जो अपनाई जा सकती थी। वे किसी और बात के लिए तैयार न थे और उनमें से कुछ का विश्वास था कि युद्ध और युद्ध का अनुभव बुरा नहीं होगा। न्याय के तौर पर यह बात स्वीकार की जानी चाहिए कि केवल दो व्यक्ति ही ऐसे थे, जिन्होंने युद्ध के लिए भारतीय धन तथा भारतीय आदमी देने के विरुद्ध मामूली-सी आवाज उठाई, वे थे—स्वर्गीय बाल गंगाधर तिलक और पंडित मदन मोहन मालवीय। सार्वजनिक व्यक्तियों के लिए लाखों आदमी और रुपये देने का प्रस्ताव स्वीकार करना और वह भी बिना किसी शर्त के, विशाल हृदयता और उदार भावना कही जा सकती है परन्तु यह केवल उनकी राजनीतिक अयोग्यता ही सिद्ध हुई।"

39. बंधन-मुक्त छोर पर

उनके भारत लौटने मे काफी विलम्ब हो गया था। कांग्रेस का मद्रास अधिवेशन, जिसके लिए वह बहुत संभावित अध्यक्ष समझे जा रहे थे, निकट आ रहा था। क्या वह मद्रास मे अध्यक्ष पद संभालने के लिए उचित समय पर स्वदेश लौट पाएंगे ?

परन्तु, सर्वप्रथम प्रश्न तो यह है कि क्या उन्हें अध्यक्ष-पद पेश किया जाएगा ? इस बारे मे उस समय तक निश्चित रूप से नही कहा जा सकता, जब तक वह निर्वाचित नही हो जाते। बम्बई से एस० एस० मार्मोरा द्वारा चुपचाप विदेश चले जाने के बाद से कई बातें हो चुकी थी। सबसे बडी बात तो यह थी कि युद्ध जारी था—बडा युद्ध, जिसने कई बडे-बडे व्यक्तियो को डावाडोल कर दिया था। कुछ व्यक्ति, जो सामान्य परिस्थितियो मे शायद उन्हें अध्यक्ष के तौर पर सहन कर सकते, युद्धकाल मे इस पद के लिए उनके निर्वाचन को ठीक न मानते, क्योंकि कांग्रेस पर अभी भी मिताचारियो का कब्जा था।

देश से मिलने वाली सूचनाओ के अनुसार, नौ मे से छः प्रांतीय कांग्रेस समितियो ने उनके पक्ष मे मत दिया था। सामान्य तौर पर यह बात निश्चित मान ली जाती थी कि स्वागत समिति प्रांतीय संस्थाओ के बहुमत के निर्णय पर अपनी मुहर लगा देगी। इलाहाबाद से प्रकाशित होने वाले 'द लीडर' ने, जो भारत के अन्य समाचार-पत्रो के समान कांग्रेस के मामला की जानकारी रखता था, बडे विश्वास के साथ यह भविष्यवाणी कर दी थी। यद्यपि उसे स्वय सारे मामले मे गडबड हो जाने की आशका थी, फिर भी वह आशा कर सकता था कि यह बात सभव हो सकती है कि उन्हें वह पद सभालने के लिए आमंत्रित किया जाए जो कई वर्ष पूर्व तिलक तथा कई अन्य नेताओ ने उन्हें सौंपने की इच्छा की थी। उस समय इस प्रस्ताव ने उन्हें बहुत उलझन मे डाल दिया था, क्या अब स्थिति भिन्न होगी ? उन्होंने सोचा और परिस्थितियो के अनुसार उनकी राय मे भी समर्थन के मुकाबले विरोधी तत्व अधिक पुष्ट नजर आए। यही बात हुई भी, मगर के मिताचारी कांग्रेस नेताओ ने स्वय यह महसूस किया कि लाजपत राय, जिन्हें वे कभी भी अपने मे से एक नही समझ पाए थे, युद्ध के कारण पैदा हुई असाधारण

परिस्थिति म बहुत उचित अध्यक्ष सिद्ध न होंगे और इस प्रकार स्वागत समिति ने सघटक इकाइयो के बहुमत के निर्णय को रद्द कर दिया । 'द लीडर' के सपादक, सी० वाई० चिन्तामणि ने लालाजी का इस सारी कारवाई के बारे मे एक गोपनीय रिपोर्ट भेजी ।

इस बात की कोई जानकारी नही थी कि यह 'अवधि' कितनी देर रहेगी, इग्लैंड म भी माहौल अधिक सुखद नही था—यह उनके अपने हमवतनो की कृपा-दृष्टि थी (जिनम उनके साथी प्रतिनिधि भी शामिल थे)—इसलिए उन्होने अध महासागर पार करने का निणय किया ।

'एस० एस० फिलाडेल्फिया 14 नवबर को लिवरपूल स रवाना हुआ । उस पर केवल एक ही वग के यात्री थे, उस पर अनेक भारतीय थे जिनमे लाजपत राय, बनारस के बाबू शिवप्रसाद गुप्त (जो यात्रा कामनस्म म लाजपत राय के असली साथी थे), वास्तविक प्रोफेसर (बाद मे सर) जगदीश चद्र बोस और उनकी पत्नी और प्रा० विनय के० सरकार भी थे । अनेक अय व्यक्ति भी थे (विभिन्न राष्ट्रो के), जिन्हें ब्रिटेन छोडने पर मजबूर किया गया। काफी समय से वहा रहने के बावजूद, युद्ध शुरू हो जाने पर इन व्यक्तियो को 'विदेशी शत्रु' घोषित कर दिया गया था ।

अध महासागर यात्रा (जसे 1905 की) बिना किसी घटना के नही थी । उन्हें 48 घटे स भी अधिक समय के लिए खराब मौसम का सामना करना पडा था । इस समय मे, लाजपत राय ने लिखा है, "हम अपने केबिनो से बाहर न निकल, भोजन के लिए भी नही ।" फिर भी उन्होने कहा है "कुल मिलाकर मैंने यात्रा का आनन्द लिया ।"

21 नवम्बर को हमें गगनचुम्बी भवन दिखाई देने लगे और उसके शीघ्र बाद हम न्यूयाक मे उतर गए । लाजपत राय ने लिखा है, "हमारे पजाबी मित्रो का बदरगाह की गोदी मे उनके मित्रो ने स्वागत किया, जिन्हे सूचना दी हुई थी", परन्तु स्वय उन्हें (और बनारसी मित्र को) ' होटल मे स्थान पाने मे कुछ कठिनाई हुई क्योंकि रगभेद इसम रुकावट था ।" उनका कहना है कि इस प्रकार का उनका यह पहला अनुभव था – स्पष्ट है 1905 की सक्षिप्त यात्रा के दौरान उन्हे रगभेद का ऐसा प्रत्यक्ष अनुभव नही हुआ था । आखिरकार, उन्हें होटल मे कमरे ल लेने म सफलता प्राप्त हो गई और न्यूयाक मे कोई चार सप्ताह बिताने

के पश्चात वे अमरीका भ्रमण पर निकल पड़े जिसमें बोस्टन, वाशिंगटन, एटलांटा, न्यू आर्लिएंस, शिकागो और साल्ट लेक सिटी की यात्रा शामिल थी। 2 मार्च 1915 में वह लास एंजिल्स पहुंच गए। उन्हें अमरीकी श्रोताओं को संबोधित करने के कई अवसर प्राप्त हुए, जहां उन्होंने अधिकतर भारतीय विषयों पर भाषण किए, परन्तु "यात्रा का मुख्य उद्देश्य अध्ययन तथा मनोरंजन था।"

वह हमेशा ही चाहते थे कि उनकी यात्राएं "शैक्षिक महत्व की हों और वह बिना जल्दबाजी के अपनी आंखों को हमेशा खुला रखे हुए, जाना पसंद करते थे। अमरीका भ्रमण के दौरान उन्होंने जिन बातों की ओर विशेष ध्यान दिया उनमें रंगभेद का प्रश्न, शिक्षा संस्थाएं, दानशीलता द्वारा लोक हितकारी कार्यों और इस सबके अतिरिक्त "उस प्रक्रिया की ओर जिससे विभिन्न नस्लों के मेल मिलाप से एक राष्ट्र ने जन्म लिया, शामिल थे"—जिसे अमरीकी लोग 'द मेल्टिंग पाट" कहते हैं। इन अध्ययनों के परिणाम 'द यूनाइटेड स्टेट्स आफ अमेरिका : द इम्प्रेशंस आफ ए हिन्दू' में दिए गए हैं। इन्हें कलकत्ता की पत्रिका 'द माडर्न रिव्यू' ने धारावाहिक रूप से प्रकाशित किया और बाद में इसी संस्था ने इसे पुस्तक रूप में भी प्रकाशित किया। (उप शीर्षक में 'हिन्दू' शब्द व्यापक 'भारतीय' के पर्याय के रूप में इस्तेमाल किया गया। अमरीका में इस शब्द का यही अर्थ उस समय तक लिया जाता था, जब तक भारत के विभाजन की योजना नहीं बनी।

अमरीका का यह भ्रमण कोई छः मास चलता रहा। उन्होंने अपना काफी समय लिखने में खर्च किया। 'यंग इंडिया' इस अवधि की उत्पत्ति है परन्तु हम इस पुस्तक तथा अन्य पुस्तकों की कहानी की चर्चा किसी अन्य अध्याय में करेंगे। वह प्रशांत महासागर के तट पर भारतीय समुदाय के साथ संपर्क में आए और उन्होंने उन लोगों में क्रांति का उफान देखा। इस विषय के बारे में इससे सम्बद्ध अध्याय में अच्छी तरह चर्चा की गई है। छः मास के बाद वह जापान के लिए रवाना हो गए और कुछ मास वहां ठहरने के बाद फिर अमरीका लौट आए जहां वह कुछ और समय के लिए ठहरे। हमारे विवरण में जापान के विराम के बारे में अलग से उचित ढंग से चर्चा की जाएगी और अमरीका में ठहरने के बारे में, जापान यात्रा से पूर्व और उसके पश्चात के दिनों का एक ही विषय के रूप में विवरण होगा।

40. जापान यात्रा का कार्यक्रम

युद्ध लगभग एक वर्ष से चल रहा था और इसके शीघ्र समाप्त होने की कोई संभावना दिखाई नहीं दे रही थी। क्योंकि आप सभी जानते थे कि यह शायद वर्षों तक जारी रहे। वह युद्ध विराम होने तक सारे वर्ष कहां बिताएंगे? सात मास अमरीका में रह लेने के पश्चात् वह यह नहीं जान सके थे कि वह स्वदेश लौट पाएंगे या इस अवधि में निर्वासित ही रहेंगे। सात मास इंग्लैंड में रहने के पश्चात् वह अंध महासागर पार करके अमरीका आये थे, सात मास अमरीका में बिताने के बाद उन्होंने प्रशांत महासागर पार करके जापान की यात्रा करने का निर्णय किया था। उन्होंने अपने देश को छोड़ कोई अन्य एशियाई देश नहीं देखा था। बर्मा को भी, जो उस समय ब्रिटेन में भारतीय साम्राज्य का भाग था, सही अर्थों में देख लेने का वह दावा नहीं कर सकते थे, वहां तो वह केवल एक सरकारी कैदी के रूप में ले जाए गये थे। जापान को, जो पूर्वी देशों में आधुनिक तौर पर सबसे अधिक उन्नत देश था, तब्दीली के लिए देख लेना कोई बुरा विचार नहीं था। यह निर्वासन जारी ही रहना था, तो जापान, उदय होते सूर्य की धरती, को उस अवधि के लिए देखने में शायद अमरीका देखने के समान ही भला हो।

जापान की यात्रा का निर्णय हो जाने के पश्चात् शिवप्रसाद गुप्त ने मई में प्रशांत महासागर का पार किया, लाजपत राय भी कुछ महीने बाद जापान पहुंच गये। उन्हें दो पाण्डुलिपियां मुकम्मल करनी पड़ी, 'यंग इंडिया' तथा इंग्लंड डैट' (इंग्लैंड का ऋण), इसके अतिरिक्त महात्मा मुंशी राम ने (बाद में स्वामी श्रद्धानंद) उन्हें सूचना दी थी कि उनका सबसे बड़ा पुत्र, हरीशचंद्र, राजा महेंद्र प्रताप के साथ इंग्लैंड चला गया है और वहां से उसके अमरीका जाने तथा उनसे मिलने की संभावना है। लाजपत राय को हरीशचंद्र में दिलचस्पी थी और वह महेंद्र प्रताप की योजनाओं के समाचार के बारे में उत्सुक थे। परन्तु हरीशचंद्र के आने में काफी विलम्ब हो गया।

लाजपत राय 3 जुलाई 1915 को सान फासिस्को से जहाज पर सवार हो गये। उन्हें यह निश्चय नही था कि यह अगली भेंट तक के लिए विदाई थी या अमरीका को अन्तिम विदा थी, वह भारत लौटन को तरस रहे थे, परन्तु उनकी योजना अनिश्चित थी। दो सप्ताह के लिए उनका जहाज प्रशात महासागर पर तैरता रहा। वह सुदर हवाई द्वीप समूह मे ठहरे, जहा वह सुदर सागर के दृश्य देखकर मुग्ध हो गये, वहा उन्होंने अद्भुत समुद्री जीव, झाडिया और वक्ष भी देखे।

19 जुलाई को वह यावोहामा मे उतरे, जहा वह बिल्कुल अजनबी थे, बदरगाह की गोदी मे उनके स्वागत के लिए कोई भी नही था। यात्रा मे शायद यह पहला अवसर था कि वह अपना सामान जहाज मे ही छोडकर स्वय ही टोक्यो के किसी होटल मे रिहाइश की व्यवस्था के लिए निकल पडे। यह स्थान योकोहामा से 27 किलोमीटर दूर था।

परतु उन्होंने आशा के विपरीत शीघ्र ही अपने आपको परिचित कर लिया और यह काफी सख्या मे अपने हमवतनो के कारण ही नही, अमरीका मे अपने सहयात्रियो के सहयोग से भी हुआ, शिवप्रसाद गुप्त तथा प्रोफेसर विनय के० सरकार पहले ही वहा पहुच चुके थे। किमोनो मे सज्जित, काठ के जूतो मे, परतु आश्चय जनक ढग से चुस्त अपनी दिनचर्या मे व्यस्त, लोग उन्हे अपने देशवासियो के समान लगे।

अध्ययन या सैर सपाटे के लिए जुलाई का मास बिल्कुल उपयुक्त नही था — तापमान एकदम बढ गया था, जिससे उन्हें प्रिय लाहौर के गर्मी के दिनो की याद आ गयी। जापान के विश्वविद्यालयो की काय पद्धति देखना और विश्वविद्यालय के लोगो तथा छात्रो से मिलना उनकी मुख्य रुचि थी — और उन्हें विश्वविद्यालय बद मिले। इसलिए उन्होंने कुछ समय, गर्मी के पयटन स्थल झील हैकोने, पर बिताया।

टोक्यो मे वह इम्पीरियल होटल मे ठहरे हुए थे, परन्तु क्योंकि उनकी योजना अधिक दिनो के लिए ठहरने की थी, इसलिए उन्हें सुझाव दिया गया कि किराये पर मकान लेकर ठहरना अधिक सस्ता रहेगा। इसलिए वह इम्पीरियल होटल से जापानी किस्म के दा

मंजिला मकान में चले गए जो उस समय के इम्पीरियल विश्वविद्यालय के निकट, तीसरे हाई स्कूल के पीछे, काआमिचो में हागा वाड में था। लालाजी ऊपर की मंजिल में रहते तथा काम करते थे और नीचे की मंजिल एक युवा साथी, पेशावर के केशोराम सब्बरवाल को दे दी थी, जो कुछ वर्ष पूर्व लालाजी से भारत में मिले थे और उनसे कुछ ही समय पूर्व जापान पहुंचे थे। यह निष्ठावान युवा साथी कई प्रकार से लालाजी के लिए बहुत लाभकारी सिद्ध हुआ और लालाजी के जापान से रवाना होने तक उनके साथ रहा। जापान में रिवाज के अनुसार एक नौकरानी रसोई का काम करने तथा घर की देखभाल के लिए रखी गई थी।

लालाजी के जापान आने का कुछ कारण यह था कि वह बंधन-मुक्त छोर पर थे। परन्तु उनका यह इरादा बिल्कुल नहीं था कि उनकी जापान यात्रा केवल सैर सपाटा ही रहे। उनकी असल उत्सुकता तो यह जानने में थी कि पूर्व का यह देश किस प्रकार आधुनिक प्रगति में फिर से महान बना है। रूस-जापान युद्ध के शीघ्र बाद, उन्होंने जापान के पुनरुत्थान के बारे में एक पंजाबी वकील की उर्दू पुस्तक की भूमिका लिखी थी। उन्होंने डी० ए० वी० कालिज में जापानी भाषा की शिक्षा के लिए एक जापानी अध्यापक भी नियुक्त किया था, उत्तर भारत में उस समय ऐसी व्यवस्था और कहीं नहीं थी। इंग्लैंड से अमरीका के लिए यात्रा की व्यवस्था करने से पूर्व ही, उन्होंने जापान की यात्रा के बारे में सोचा हुआ था, इस बात का पता उनके पत्र व्यवहार से लगता है। निस्सदेह उनका उद्देश्य स्वयं जापान के उस रहस्य का अध्ययन करना था, जिसके कारण उस देश ने शानदार प्रगति की। परन्तु उनके मन में एक और उद्देश्य भी था

'मैंने यह निश्चय किया था कि भारत और जापान के बीच सम्पर्क स्थापित करने का प्रयत्न किया जाए, जो दोनों देशों के लिए स्थायी महत्व का हो सके। इसलिए इसी उद्देश्य को सामने रखकर मैंने विभिन्न व्यक्तियों से मिलना तथा संस्थाओं को देखना शुरू कर दिया।"

भाषणा के लिए उन्हें लगभग सभी विश्वविद्यालयों से (इम्पीरियल विश्वविद्यालय को छोड़कर) तथा टोकियो के महत्वपूर्ण स्कूलों से आमत्रण प्राप्त हुए। 'वासेदा' तथा 'कियू' विश्वविद्यालयों तथा हायर कमशियल स्कूल का विशेष उल्लेख करना आवश्यक है। काउट (बाद में मार्क्विस) ओकूमा जो उस समय प्रधान मत्री थे, वासेदा के अध्यक्ष थे। विश्वविद्यालय के डीन, प्रोफेसर शियाजावा, जिन्होंने लालाजी के भाषण समारोहों की अध्यक्षता की, लालाजी के एक बहुत अच्छे मित्र बन गये और वह अक्सर लालाजी को 'निप्पन क्लब' में आमंत्रित करते। यह क्लब विश्वविद्यालय का ही भाग था।

कियू' में सर्वोच्च व्यक्ति, प्रोफेसर कामादा ने लालाजी के भाषण समारोहों की अध्यक्षता की (लालाजी अंग्रेजी में बोलते थे और अंग्रेजी भाषा जानने वाले प्रोफेसर उनका जापानी भाषा में अनुवाद किया करते थे)। यहां भी क्लब सम्पर्क स्थापित हुए, प्रोफेसर कामादा ने लालाजी को विश्वविद्यालय क्लब 'कोजुशा' में आमंत्रित किया। हायर कमशियल स्कूल बाद में कमशियल विश्वविद्यालय बन गया। स्कूल के गवनर, बैरन कादा, ने लालाजी के भाषणों की अध्यक्षता की। एक युवा छात्र तत्सुनोसुके युमेदा, जो बाद में ख्याति प्राप्त प्रोफेसर बना, लालाजी को मिलने अकसर उनके घर आता था। दरअसल, लालाजी के लिए इस घर का चयन स्वयं युमेदा ने ही किया था। लालाजी के बारे में जापानी समाचारपत्रों में, जो कुछ भी प्रकाशित होता, वह उसका अनुवाद लालाजी को बताने में सहायता देता था— यह सब कुछ वह निःशुल्क करता था। लालाजी उसे अक्सर दोपहर या रात के भोज के लिए आमंत्रित कर लेते थे।

जापान के प्रधान मत्री ओकूमा के साथ डेढ़ घंटे की एक भेंट के बारे में वासेदा के एक प्रोफेसर प्रधान म... जापानी म
कही गई बातों के लिए ... थे, जबकि ... अंग्रेजी
में कही बातें वह स्वयं ... थे। ... है कि
यद्यपि जापान के बारे ... वह ... गांधी
है, वह इस बात से मह

के साथ भीषण युद्ध में उलझी हुई थी। उसकी हार्दिक इच्छा थी कि यह युद्ध उस समय तक जारी रहे जब तक दोनों पक्षों की कमर न टूट जाए (अमरीका तब तक युद्ध से अलग था)। ओकूमा ने वासेदा विश्वविद्यालय में भी छात्रों के समक्ष धारा प्रवाह भाषण किया और जिस प्रकार उन्होंने जापानी छात्रों को राजनयिक मामलों में विश्वास में लिया, उससे लालाजी बहुत प्रभावित हुए।

टोकियो के पत्रकारों ने लालाजी के सम्मान में भोज दिया, जिसमें उन्होंने एक महत्वपूर्ण भाषण किया। उसमें सुझाव दिया गया कि एक प्रकार का एशियाई संघ बनाया जाए। इस सुझाव को समाचार पत्रों ने तो बहुत महत्व दिया, परन्तु उसके आगे कोई प्रगति न हुई।

लालाजी ने 'यामयोरी शिम्बून' के कार्यालय में आयोजित एक समारोह में भी भाषण किया, यह उस समय एक नवोदित समाचार पत्र था। अब यह वहां के तीन प्रमुख महानगरीय समाचार पत्रों में से एक है, जिसकी बिक्री पांच लाख प्रतियों से अधिक होने का दावा किया जाता है। लालाजी का 'यामायोरी शिम्बून' में बहुत अच्छा प्रचार हुआ। उनके कुछ लेख 'कुकुमिन शिम्बून' में भी प्रकाशित हुए, यह समाचार-पत्र अब बन्द हो चुका है, परन्तु उन दिनों इसका बड़ा जोर था। 'आसाही शिम्बून' के कुछ पत्रकार भी लालाजी से मिलने आया करते थे। यह समाचार पत्र अब विश्व भर में सर्वाधिक प्रसार संख्या वाले समाचार पत्रों में से एक है। भाषा की बाधा होने के बावजूद लालाजी को जापानी समाचार-पत्र बहुत ही अनुकूल महसूस हुए।

राजनयिकों तथा राजनीतिक नेताओं के साथ सम्पर्कों में लालाजी का महत्वपूर्ण सम्पर्क प्रधान मंत्री काउंट ओकूमा के साथ था। परन्तु आधिकारिक स्थिति के कारण आत्मसंयम और राजनयिक कौशल आवश्यक था। कई बार लालाजी को 'निप्पन क्लब' में प्रधान मंत्री के साथ मैत्रीपूर्ण बातचीत करने के लिए उनकी मनःस्थिति की जानकारी लेनी पड़ती थी। उसके लिए वह प्रोफेसर शियोजावा के साथ, जो वासेदा में डीन और ओकूमा के बहुत निकट थे, बातचीत करते थे।

लालाजी ने कई मन्त्रियों तथा राजनयिक व्यक्तियों से भी बातचीत की। कुल मिलाकर यह बातचीत निराशाजनक ही रही। 'एशियाई संघ' के प्रस्ताव के बारे में उन्हें धीरे-धीरे अहसास हुआ कि वह जापानी राजनीति के ढांचे में फिट नहीं बैठता था। जापान के राजनीतिक नेता ऐसी कोई बात करने को तैयार न थे, जो चीन को शक्तिशाली बनाए — उन्हें तो केवल इसी बात की चिन्ता थी कि उसका शोषण करने को जापान को 'खुली छूट' हो। जहां तक भारत का प्रश्न था, वह ब्रिटिश-जापान समझौते के आदर्शों को इसकी प्राकृतिक अथवा स्वाभाविक सीमाओं से बहुत आगे तक खींच रहे थे। सिंगापुर में भारतीय सैनिकों का विद्रोह ब्रिटेन की खातिर जापानी नौसेना के कर्मचारियों ने दबा लिया था, इस प्रकार जापानी अधिकारियों ने बड़ी वफादारी से समझौते को व्यापक बनाकर उस मामले के लिए काम किया था, जो पूरी तरह ब्रिटिश साम्राज्य का 'घरेलू' मामला था। जापान के समाचार-पत्रों में कुछ लेखकों ने इसकी आलोचना भी की थी। दरअसल, समाचार-पत्र इस समझौते के बारे में कुछ नाराज थे, परन्तु उनकी मुख्य शिकायत यह थी कि इस समझौते के अनुसार विदेशी शक्तियों को चीन में बराबर के अवसर प्राप्त थे और जापान को 'खुली छूट' नहीं थी—यह बात लाजपत राय की एशियाई एकता की धारणा से बहुत दूर थी, जिस ढंग से वह इस समझौते के बारे में सोचते थे।

लालाजी का एक महत्वपूर्ण नया सम्पर्क, महान चीनी नेता डा० सन यात सेन से, जिन्होंने जुलाई 1913 में दूसरी असफल चीनी क्रांति के बाद से जापान में शरण ली हुई थी। लाजपत राय की एशियाई धारणा सन यात सेन के विचार से बहुत कुछ मिलती जुलती थी और इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं कि दोनों में अक्सर मुलाकात होती और इस सम्पर्क ने मित्रता का रूप ले लिया। श्रीमती सेन ने अपनी अमरीकन पृष्ठभूमि के साथ दुभाषिए का कार्य किया। दुर्भाग्य की बात है कि इन नेताओं की इन बैठकों की कोई अधिकृत जानकारी हमें उपलब्ध नहीं है।

हमने जापान में भारतीय समुदाय के बारे में बहुत कम चर्चा की है। पी० ए० ठाकुर तथा अन्य क्रान्तिकारियों के साथ लालाजी के

सम्पर्क विशेष चर्चा का महत्व रखते है — इस विषय की अगले अध्याय मे चर्चा की गई है ।

एक छात्र के तौर पर लालाजी ने जापान से, जो जानकारी एकत्र की, उन्होंने वह अपने देशवासियो को 'माडर्न रिव्यू' कलकत्ता के माध्यम से भेंट कर दी, जिसने यह सारी लेखमाला (कुछ अन्य बातें जोडकर) एक पुस्तिका के रूप मे भी प्रकाशित की, इस पुस्तिका का नाम था 'द एवोल्यूशन आफ जापान एंड अदर पेपर्स । इन 'पत्रों' का क्षेत्र बहुत व्यापक था, जिनमे जापान की "राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक" स्थिति की चर्चा की गई थी ।

उनके लिए "जापानियो की दो बहुत ही आश्चर्यजनक बातें थी— उनकी जोरदार देशभक्ति तथा पिछले पचास वर्ष के थोडे समय मे यानी 'मेजीकाल' के बाद की गई आश्चर्यजनक प्रगति । लालाजी ने उनकी सफलता के कारणो का अध्ययन करना को बहुत उचित समझा वे गुण जानने के लिए जिनका कारण उनका चरित्र यूरोपियन संगठन का शिकार होने से बच गया और इसके साथ ही उन्हें सुसगठित और सुयोग्य कौम बनाने में मदद मिली जिसका प्रमाण उन्होंने रूस और जापान के बीच बडे युद्ध के दौरान दिया ।"

जापान मे लालाजी के ठहरने के दौरान वहा की प्रमुख घटना सम्राट ताईशो का सिंहासनारोहण थी । भारतीय समुदाय ने उस अवसर पर अपनी ओर से एक भोज की व्यवस्था करने का निर्णय किया और लालाजी से इस समारोह की अध्यक्षता करने को कहा । अपनी स्वीकृति से पूर्व उन्होंने दो शर्तें रखी — पहली यह कि अपने हमवतनों की ओर से केवल वही बोलेंगे और दूसरी यह कि कोई जाम तजवीज नहीं किए जाएगे और न ही कोई 'राजनीतिक' भाषण किया जाएगा। 27 नवबर 1915 ईईनो सेस्कन होटल म दिया गया यह भारतीय भोज बहुत ही शानदार रहा, जिसमे बहुत से लोगो ने हिस्सा लिया। गैर भारतीय प्रमुख व्यक्तियो मे (कुछ अमरीकी तथा अग्रेजो के अतिरिक्त) 70 जापानी थे, जिनमे अधिकतर प्रमुख शिक्षाशास्त्री थे — सभी विश्वविद्यालयो तथा टोकियो के प्रमुख कालिजो के प्रतिनिधि

इनमे थे — और अन्य प्रमुख व्यक्तियो मे व्यापार, उदयोग, राजनीति तथा पत्रकारिता के क्षेत्र के व्यक्ति शामिल थे। 'द जापान एडवर्टाइजर' (जिसके मालिक एक अमरीकी यहूदी थे) के ब्रिटिश सम्पादक 'ह्यूग ब्यास' ने अगले दिन के अपने अक मे लिखा कि लाजपत राय के भाषण को सुनकर मुझे लायड जार्ज की याद आ गई। निस्सदेह उन्होने इस अवसर पर राजनीति बीच मे लाने पर स्वय प्रतिबध लगा दिया था, पर उन्हे अपने हमवतनो की ओर से धन्यवाद तथा शुभकामनाए तो भेंट करनी ही थी।

इस भोज के बाद कुछ घटनाए हुई, यद्यपि ये घटनाए इस भोज का परिणाम नही हो सकती थी। इनसे भारतीय समुदाय मे हलचल अवश्य हुई। इसकी चर्चा अगले अध्याय के लिए रख ली गई है।

गृहवियोगी निर्वासित को देश लौटने मे पेश आने वाली कठिनाइयो के बारे मे पूरी तरह सोचना था। अपनी आत्मिक स्मृतियो मे, जो लालाजी अपने अन्तिम दिनो मे लिए रहे थे, हम पढते है "अमरीका से रवाना होते समय मैने लौटने का इरादा नही किया था, यदि मुझ भारत आने मे अपनी सुरक्षा को कोई खतरा न होता। मुझे अभी जापान आए एक सप्ताह से अधिक नही हुआ था। मै यह निर्णय नही कर सका कि मेरा भारत लौटना खतरे से खाली होगा या नही।"

'व्यक्ति की सुरक्षा' बडी लचीली अभिव्यक्ति है और सभव है इसे उन्होने जान बूझकर चुना हो। युद्ध मे प्रत्येक बात उचित दिखाई देती है और निस्सदेह उन्होने अपने आपको ब्रिटिश शासको के लिए अस्वीकार्य व्यक्ति बना लिया था। उनके व्यक्तिगत खतरो मे गिरफ्तारी तथा कैद ही नही, जो सभवत बिना मुकदमे के हो सकती थी, अन्य प्रकार की गलत कारवाइया भी थी — जिस प्रकार से उन्होने आयरिश देशभक्त सर रोजर केसमेंट के साथ किया, जो सब विदित है और जिसके बारे में एम० एन० राय ने अपनी स्मृतियो मे उनका अपहरण करने के लिए बार-बार किए गए प्रयत्नों की चर्चा की है।

युद्ध-काल मे भारत मे भारत रक्षा कानून के अधीन वातावरण, पजाब मे ओ डायर का शासन, युद्ध के प्रति उनका अपना व्यवहार, जिसकी जानकारी

ब्रिटिश समाचार-पत्रों ने दी, जर्मन समर्थक गदर पार्टी के लोगों के साथ उनके खुलेआम मेल-जोल के बारे में गलत-सलत सूचनाएं दिए जाने की संभावना—ये सभी वे तथ्य थे, जिनके कारण उनके लिए भारी खतरा हो सकता था। विशेषकर सिंगापुर में विद्रोह के पश्चात् बहुत अधिक परेशान किए जाने की कहानियां सुनने में आईं। भारत लौटने का अपना विचार शायद उन्हें जापान में एक सप्ताह ठहरने के अन्दर ही छोड़ देना पड़ा, शायद इस कारण कि जो लोग चीन सागर के रास्ते भारत लौटते थे, उन पर बहुत अत्याचार होता था, लोगों को गिरफ्तार करने, उनकी तलाशी लेने, उन्हें नजरबन्द करने तथा हागकाग और सिंगापुर में उन्हें अन्य कई तरीकों से परेशान करने की कहानियां भी सुनने में आई थीं। (उनके मित्र शिव प्रसाद गुप्ता इस प्रकार परेशान किए गए लोगों में थे)।

भारत लौटने की योजना छोड़ देनी पड़ी थी। यद्यपि सर्वोच्च जापानी अधिकारी उनके साथ सम्मानपूर्वक पेश आ रहे थे, परन्तु राष्ट्रीय नीति के हिस्से के तौर पर समझौते का अधिक महत्व दिया जाना उनके मन में कुछ शंकाएं पैदा करता था। प्रोफेसर शियाजावा ने उन्हें बताया था, "उनके लिए जापान में ठहरना बिल्कुल उचित होगा" और "निजी भय" के तौर पर यह भी कह दिया था कि यह नहीं कहा जा सकता कि कब ब्रिटिश अधिकारी उनकी वापसी के लिए जापान पर दबाव डालना आरम्भ कर दें।

इसके अतिरिक्त उनके लिए जापान में करने के लिए कोई विशेष बात नहीं थी। अमरीका में अपने देशवासियों के राजदूत के तौर पर वह अपने देश के लिए काफी कुछ कर सकते थे। ब्रिटिश शासकों द्वारा जापान पर दबाव डालने के मुकाबले में अमरीका पर दबाव डाले जाने की संभावनाएं न के बराबर थीं, और अमरीका का अब तक निष्पक्ष रहना निर्णायक बात थी।

भोज से काफी समय पूर्व, लालाजी ने अमरीका लौट जाने का मन बना लिया था और इसके अनुसार उन्होंने दिसंबर के लिए जहाज पर सीट आरक्षित करने के लिए कह दिया था। भाषा की बाधा के कारण अधिक समय के लिए वहां ठहरना नीरस बन सकता था और जिस ढंग से ब्रिटिश-जापान समझौता लागू किया जा रहा था वह खतरनाक था। अमरीका अभी भी युद्ध से अलग था—यही एक निर्णायक वजह थी कि उन्होंने अमरीका को समझौते के दबाव वाले एशियाई देश के मुकाबले प्राथमिकता दी।

4 दिसंबर को उन्होंने मिशन वायसरा ने सूचित किया कि उनके लिए एम० एस० तेनियो मानू पर केबिन आरक्षित कर दिया गया है और उसके एक सप्ताह बाद (12 दिसंबर को) मित्रों ने उन्हें योकोहामा से विदाई दे दी।

लालाजी को आशा थी कि उनके युवा साथी, केशोराम सब्बरवाल उस यात्रा में उनका साथ देंगे। दरअसल, जब जापान में उनकी पहली भेंट हुई थी, तो उस युवक ने उन्हें बताया था कि वह शिक्षा प्राप्त करने के लिए अमरीका जाएगा और इस उद्देश्य के लिए वह घर से धन की प्रतीक्षा कर रहा है। इस प्रकार जब लालाजी ने उन्हें अपने साथ मकान में सहयोगी बना लिया, तो उन्होंने आवश्यकता पड़ने पर उस युवक को वित्तीय सहायता देने का आश्वासन भी दिया। जब लालाजी को उनके क्रांतिकारी पार्टी के साथ संबंधों की जानकारी मिली, तो लालाजी ने यह शर्त लगा दी कि वह युवक अमरीका पहुंचने पर कुछ समय के लिए क्रांतिकारी पार्टी से अलग ही रहेगा। परन्तु रास बिहारी की इच्छा थी कि सब्बरवाल उनके पास रहें, इसलिए वह उन्हें जाने नहीं देना चाहते थे। नौजवान उलझन में था और अन्त में रास बिहारी का दबाव काम कर गया, शायद इसलिए (जिस प्रकार आप अगले अध्याय में पढ़ेंगे) वह महान क्रांतिकारी नेता उस समय विशेष प्रकार की कठिनाइयों से दो-चार था।

सब्बरवाल ने लालाजी की बहुत सेवा की थी और यह स्वाभाविक ही था कि लालाजी को उनसे बहुत स्नेह हो गया था, जिसके परिणामस्वरूप लालाजी का अन्त तक उनमें दिलचस्पी रही और लालाजी के अमरीका निवास के दौरान उनमें काफी पत्र व्यवहार चलता रहा।

यद्यपि सब्बरवाल लालाजी के साथ अमरीका न जा सके, फिर भी उन्होंने अपनी वैकल्पिक व्यवस्था कर दी और लालाजी के साथ एक और युवक को भेज दिया, जो अमरीका में कृषि के अध्ययन के लिए जाना चाहता था। यह थे एस० एस० सरना जो बाद में न्यूयार्क में एक सफल व्यापारी बने। यह संभव है कि किसी प्रकार की शरारत का सन्देह करते हुए लालाजी अपने साथ एक विश्वास पात्र व्यक्ति रखना चाहते थे। इस प्रकार केशोराम सब्बरवाल ने उनके मन की बात जान ली और लालाजी द्वारा "खतरा व्यक्तिगत सुरक्षा' के बारे में बात करने का अर्थ था भी यही।

41. युद्ध के दौरान भारतीय क्रांतिकारी

इंग्लैंड से जाना लाजपत राय के लिए यहां अपने हमवतनों के 'वफादारी' के दिखावे के वीभत्स पाखंड से दूर भागने के समान था। अमरीका में भारतीय समुदाय में यह रोग देखने को भी नहीं था। इसके विपरीत, विशेषकर जब वह प्रशांत महासागर के तट पर कैलीफोर्निया में अपने हमवतनों से (जो अधिकतर पंजाबी थे) मिलने गए, तो उन्होंने देखा कि वहां तो इंग्लैंड के शत्रुओं के साथ सहयोग करने के लिए एक आन्दोलन शुरू किया जा रहा था, ताकि भारत में ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध लड़ाई शुरू की जा सके। यहां तो उनके अपने स्वयं की भी, जो तिलक के समान ब्रिटेन को लगातार ऐसी सहायता देने का, जिससे भारत का सम्मान तथा हित सुरक्षित रहे, कायरता समझा जाता और भारतीय स्वाधीनता संग्राम के विरुद्ध बहुत बड़ा द्रोह समझा गया। यद्यपि इंग्लैंड में सावधान भारतीय राजनयिकों को यह राजद्रोही दिखाई देते थे, तो यहां क्रांतिकारी आतिशबाजी के धुंधलके में जोशीले, परन्तु अपरिपक्व युवकों को एक कमदिल देशद्रोही। यहां यह मूलभूत सिद्धांतों की अनदेखी करके औचित्य की बात थी, यहां देशभक्ति के क्षणिक जोश में व्यावहारिक सावधानी की जैसे धज्जियां उड़ा दी जाती हों। जर्मनी भारत का भला चाहता था या नहीं, इतनी बात ही बहुत थी कि वह भारत के साथ युद्ध कर रहा था। भारत में विद्रोह के लिए आह्वान होना ही चाहिए—और इस घड़ी यह जर्मनी के लिए उचित था। भले ही यह आह्वान ऊंचे कगार से अथाह खाई में छलांग लगाने के बराबर ही क्यों न हो। लाजपत राय ऐसी योजनाओं की मूर्खता और तबाही को भली भांति समझते थे। परन्तु भारतीय क्रांतिकारी, विशेषकर गदर पार्टी के कुछ नेता, उनसे शामिल होने और यहां तक कि उनसे नेतृत्व करने का अनुरोध कर रहे थे। गदर पार्टी की स्थापना हरदयाल ने युद्ध आरम्भ होने से कुछ समय पूर्व की थी। लाजपत राय ने इसके लिए 'नहीं, धन्यवाद' कहकर उसी प्रकार इंकार कर दिया जिस प्रकार उन्होंने महात्मा गांधी के अहानिकर एम्बुलेंस कोर का नेतृत्व करने के निमंत्रण के लिए किया था।

उलझन में डाल देने वाले ये आह्वान, अनुरोध के तौर पर, विनती के तौर पर, झुंझलाहट के साथ तथा निंदा के साथ अमरीका स्थित भारतीय क्रांतिकारियों

21—136 M of I&B/ND/85

ने जापान के लिए रवाना होने से पूर्व तथा जापान से लौटने के बाद किए तथा जापान में ठहरने के दौरान वहां रहने वाले भारतीय क्रांतिकारियों ने किए।

क्रांतिकारियों के साथ यह भेंट कई बार चौकन्ने ढंग से और अचानक ही हो जाती थी। जिस युवक ने जापान में उनके साथ इकरार किया था कि वह उनके सचिव, मार्गदर्शक और दुभाषिए का कार्य करेगा और जिसकी इस कार्य के लिए प्रोफेसर विनय कु० सरकार ने सिफारिश की थी, उसके बारे में पता चला (दो सप्ताह के अन्दर ही) कि वह क्रांतिकारी गतिविधियों के साथ जुड़ा हुआ है और फिर वह अचानक ही गायब हो गया। वह जाते समय एक पत्र छोड़ गया, जिसमें कहा गया था कि वह अनिश्चित काल के लिए जा रहा है। बाद में लाजपत राय को पता चला कि उसकी पार्टी ने उसे किसी काम के लिए चीन भेजा है।*

अधिक उलझनपूर्ण एक भेंट उनके जापान पहुंचने के एक पखवाड़े के अन्दर ही हुई। गर्मियों के एक पर्यटन स्थल की यात्रा के दौरान उन्होंने होटल में ठहरे हुए लोगों की सूची पर नजर डाली, तो अचानक ही उनकी नजर कुछ ऐसे नामों पर पड़ी, जो उनके लिए परेशानी का कारण हो सकते थे। वह जापान की पुलिस द्वारा परेशान किए जाने को निमंत्रण नहीं देना चाहते थे इसलिए उन्होंने तुरंत ही वे कमरे छोड़ देने का निर्णय कर लिया, जो थोड़ी देर पूर्व ही लिये थे। यद्यपि उनकी पहले मुलाकात नहीं हुई थी, फिर भी उस असुविधाजनक व्यक्ति को जब लाजपत राय के वहां पहुंचने की सूचना मिली, तो उनसे मिलने चला आया। लालाजी ने स्पष्ट शब्दों में उसे बता दिया कि वे होटल छोड़कर जा रहे हैं। परन्तु उस असुविधाजनक व्यक्ति ने लालाजी पर कृपा करते हुए विश्वास दिलाया कि "वह उसी पल होटल छोड़कर जा रहा है—और वह चला भी गया।' बाद में उन्होंने टोकियो में (समय निश्चित करके) मुलाकात की, और उनमें समझौता हो गया कि 'उनमें से प्रत्येक अपने रास्ते पर जाएगा और वे एक दूसरे पर आक्षेप नहीं करेंगे।' लाजपत राय का कहना है कि

---

*शायद यह काम भारत को सागर मार्ग से शस्त्र भिजवाने का था। युवक का नाम अवनि मुखर्जी था। उसे सिंगापुर में गिरफ्तार कर लिया गया था और कुछ समय बाद छोड़ दिया गया था। उसने डा० शहीर के भेष में मास्को की यात्रा की। वह एक विवादास्पद व्यक्ति था जिस पर कुछ लोगों को सन्देह था। लाहौर में लालाजी को कभी कभी उसके पत्र प्राप्त हुआ करते थे। कहते हैं वह 1922 में भारत आया था परन्तु उस समय लालाजी जेल में थे।

"मैंने समझौते का अपना पक्ष निभाया, परन्तु दूसरा पक्ष अपने वचन पर कायम न रहा।" शीघ्र ही उन्होंने देखा कि उनकी बहुत निकट से निगरानी की जा रही है। वह जहा कही भी जाते जापान की पुलिस रात दिन उनका पीछा करती। यह जानते हुए कि उनकी गतिविधियां पर नजर रखी जा रही है, उन्हें गर्मियो के पर्यटन स्थल वाले व्यक्ति या उसके किसी सहयोगी से मिलना पसद नही था।

लाजपत राय ने लिखा है "परन्तु एक दिन वही जवान जान बूझकर और शरारत करने के उद्देश्य से मिलने चला आया। उसके साथ पुलिस के दो कर्मचारी भी थे। वे मेरे आगन म न आए, परन्तु सारा समय सामने के मुख्यद्वार के बाहर उपस्थित रहे। मैंने उसे आगाह किया कि वह मुझे उलझन मे न डाले और काफी कठिनाइ से मन उसे चले जाने के लिए सहमत किया। कुछ ही दिनो के बाद यह घोषणा की गई कि वह अपने पहरेदारो' को चकमा दे गया है और देश छोड गया है। परन्तु दूसरा भद्र पुरुष अभी भी जापान मे था और शीघ्र ही अमरीका से उसका एक अन्य सहयोगी उसके साथ आ मिला। यह पूर्वोक्त के लिए प्रशसा की बात है कि उसने मुझे परेशान नही किया और कभी भी मेरे घर मिलने न आया, यद्यपि हम एक समान मित्र के घर पर मिलते रहे, क्योकि काफी समय तक मुझे उसके सही नाम तथा व्यक्तित्व के बारे मे जानकारी नही थी परन्तु अमरीका से जो उसका साथी आया था, वह मुझे अकेला नही छोडता था। वह मुझसे बार-बार मिलते रहने पर बजिद था। वह बडी शान से रहता था और उसने जापानी अधिकारियो के मन मे सदेह पैदा कर दिया था।"

थोडा बहुत अचभे म पडना उचित ही था। वह, जिनका नाम तथा व्यक्तित्व लालाजी को उलझन मे डाल रहा था, रास बिहारी घोष के अतिरिक्त और कोई नही थे, जो हार्डिंग बम षड्यन्त्र के नेता थे। वह जापान चले गये थे और पी० एन० ठाकुर का नाम धारण करके वहा रह रहे थे। गर्मी के पर्यटन केंद्र के उनके सहयोगी थे, भगवान सिंह ज्ञानी। केशोराम सब्बरवाल की एक बार भारत मे राम बिहारी घोष के साथ भेंट हो चुकी थी और उन्होंने अन्त म 'ठाकुर' के बारे मे लालाजी के सदेह दूर किए थे।

जापान की ये घटनाए मुलाकातो के सिलसिले का आरम्भ नही थी। दरअसल, यह तो उनके न्यूयार्क पहुचने के शीघ्र बाद नवम्बर 1914 के बाद

ही आरम्भ हो गई थी। उनके एक साथी, प्रोफेसर विनय के० सरकार, डाक्टर चक्रवर्ती के घर पर भोज के लिए आमंत्रित किए जाने के लिए जिम्मेदार थे, जहां कई जमन-समथक भाषण किए गए। लाजपत राय को भोजन, सगति और सारा वातावरण ही असुविधाजनक लगा और यह बात उन्होंने प्रोफेसर सरकार से स्पष्ट कर दी, जिनके साथ वह अन्य लोगों के जाने से पूर्व ही वहां से चले गये थे। एक जमन एक अंग्रेज की मिट्टी की बनी हुई मूर्ति अपने साथ लाया था, जो उसने बहुत जोश के साथ भाषण करते हुए चकनाचूर कर दी। उस जगह से जाने से पूर्व लाजपत राय ने साफ-साफ कह दिया था कि उस जमन की गैर जिम्मेदार बातों तथा उसके भद्दे काम के साथ उनका कोई वास्ता नहीं था। उन्होंने अपने रवैये के बारे में किसी का संदेह न नहीं रहने दिया था। उन्होंने कहा

"मैं एक भारतीय देशभक्त हूं और अपने देश के लिए स्वाधीनता चाहता हूं। मुझे जमनों के साथ कोई सहानुभूति नहीं है और न ही मैं उनके विरुद्ध हूं। वर्तमान हालात पर विचार करते हुए हम इसे बेहतर समझेंगे कि हम ब्रिटिश साम्राज्य में रहते हुए स्वशासित हों, न कि उस साम्राज्य से अलग हो और किसी अन्य राष्ट्र के अधीन हो जाए।

"मेरी सदा से ही यह कट्टर धारणा रही है और मैं इस सिद्धांत को मानता हूं कि विदेशी सहायता से प्राप्त की गई आजादी प्राप्त करने योग्य नहीं होती।"

कुछ दिन पश्चात और फिर जी० के० सरकार द्वारा उन्हें भोपाल के मौलवी बरकत-उल्ला से मिलने का अवसर प्राप्त हुआ, जो टोकियो विश्वविद्यालय में पारसी के अध्यापक थे और जिनके बारे में विचार था कि उन्होंने हरदयाल के साथ मिलकर गदर पार्टी की स्थापना की है। इस भेंट और व्यक्तित्व के बारे में लाजपत राय ने लिखा है

'थोड़े समय बाद प्रोफेसर सरकार ने बरकत उल्ला के साथ भेंट की व्यवस्था की। हमने उनके साथ कई बार भेंट की और उन्होंने मुझे बताया कि उन्हें भारत में भारी विद्रोह होने की आशा है, एक तिथि निश्चित कर दी गई है और हर चीज पूरी तरह तैयार है। उन्होंने यह भी बताया कि काबुल के अमीर उनके साथ हैं और मुझे उनके साथ सहयोग करते हुए डरने की कोई जरूरत नहीं, क्योंकि भारत तीन महीनों में स्वतंत्र हो जाएगा। मैं

उन्हें 'वगलोल' कहता था, जिसका अर्थ था कि वह व्यक्ति बहुत अधिक आशावादी और एक प्रकार का मूर्ख था। मैंने उन्हें बताया कि जो कुछ उन्होंने कहा है उसमें मुझे रत्ती भर विश्वास नहीं है और यह भी कि मैं भारत में न अमीर का शासन चाहता हूं और न जर्मनों का। और ब्रिटिश शासन के साथ मुझे कितनी भी घृणा क्यों न हो मुझे इन हालात में यह विश्वास नहीं है कि यदि ये शक्तियां ब्रिटेन को पराजित कर दें, तो भारत उन विदेशी आक्रमणकारियों से अपनी रक्षा करने योग्य है। उन्होंने मुझे कायर बताया और भेद की अन्य बातें बताने से इन्कार कर दिया। फिर भी हम मित्रों के समान वहां से रवाना हुए। उनकी सूझ के बारे में मेरी कोई अच्छी राय नहीं थी, परन्तु उनकी देशभक्ति तथा चरित्र बहुत उच्च कोटि का था। बाद में हम कई बार मिले, परन्तु उन्होंने मुझे और कुछ नहीं बताया।"

भोपाल के उन मौलवी की दयानतदारी और पक्की देशभक्ति की उन्होंने बाद में सदा ही कदर की और उनके मन में उनके प्रति बड़ा आदर था, और जब उनके देहावसान की सूचना मिली, तो उन्होंने 'द पीपुल' में उन्हें हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित की।

उन्हें कुछ जर्मनों से मिलने का अवसर भी मिला। प्रोफेसर सरकार के सहयोग से एक जर्मन प्रोफेसर के साथ एक भोज के अवसर पर भेंट हुई, जिसने बाद में बातचीत के दौरान शिकागो में बताया कि उनके कई जर्मनों के साथ सम्पर्क हैं। परन्तु लालाजी को प्रोफेसर सरकार की भूमिका सदा ही बहुत रहस्यमयी लगी।

हेरम्ब लाल गुप्त ने लगातार प्रयत्न किए कि भारत-जर्मन योजनाओं के लिए लालाजी का सहयोग प्राप्त किया जाए। उनकी मुलाकात फरवरी 1915 के आरम्भ में न्यूयार्क में हुई थी।

"अन्तिम दिन प्रातः ही जब मैं वाशिंगटन जाने के लिए रवाना होने को था, एच० एल० गुप्त मुझसे मिलने आये, मेरे पास अपने कमरे में बात करने के लिए समय नहीं था, इसलिए वह टैक्सी में मेरे साथ ही बैठ गये और हम इकट्ठे ही पैंसिलवेनिया रेलवे स्टेशन चले गए। उन्होंने मुझे यह विश्वास दिलाने का प्रयत्न किया कि वह जर्मन सरकार के विश्वास पात्र हैं और उन्होंने यह जानना

चाहा कि क्या मैं उनके साथ सहयोग कर सकता हूं। मैंने इसका उत्तर न में दिया। उन्होंने मेरे साथ फिर किसी स्थान पर भेंट करने का वायदा किया।"

एच० एल० गुप्त उन्हें फिर शिकागो में मिले

"उन्होंने मेरे साथ बहुत लम्बी मंत्रणा की, शायद दो बार। उन्होंने मुझे उनके साथ सहयोग करने के लिए सहमत करने का प्रयत्न किया और यह जताया कि यह अवसर बहुत महत्वपूर्ण है। उन्होंने मुझे बताया कि जर्मन उत्सुक हैं कि मैं उनका साथ दूं और वह मेरी सलाह मानने को तैयार हैं, उन शर्तों पर जो मैं रखना चाहूं। मैंने उनके सामने अपनी स्थिति स्पष्ट कर दी और उस आन्दोलन के साथ किसी प्रकार का संबंध रखने से इन्कार कर दिया। मैंने उन पर इस इच्छा के लिए बल दिया कि जो धन उन्हें जर्मनों से प्राप्त होता है, उसमें से कुछ धन शिक्षा पर और अमरीका के दक्षिणी राज्यों में भारतीयों के लिए बस्तियां बसाने पर खर्च किया जाए, जो मुख्य तौर पर भारतीय राजनीतिक शरणार्थियों के लिए हों।"

दृढ़ रहने वाले उस क्रांतिकारी के साथ अंतिम भेंट

"गुप्त के साथ मेरी अगली भेंट लास एंजिलस में शिकागो की बैठक के कुछ दिन पश्चात हुई। वह विशेष तौर पर मुझसे भेंट करने आये थे। अपने पक्ष के लिए मेरा समर्थन प्राप्त करने का यह उनका अन्तिम यत्न था। वह चाहते थे कि मैं स्वाधीनता की एक घोषणा पर हस्ताक्षर कर दूं, जिसे वे लोग जारी करना चाहते थे और जिसमें उनका प्रस्ताव उन भारतीय सैनिकों को उकसाने का था, जो फ्लैंडर्स में लड़ाई लड़ रहे थे कि वे विद्रोह कर दें। एक बार फिर उन्होंने मुझे सारे संगठन का नेता बनाने की पेशकश की और मुझे बताया कि जर्मन नेताओं ने अपने दूतावासों को विशेष निर्देश दिए हैं कि वे मेरा समर्थन प्राप्त करने का प्रयत्न करें और यह कि वे लोग वही सब करने को तैयार हैं, जो मैं चाहूंगा। एक बार फिर मैंने इन्कार कर दिया और अंत में वही सुझाव दिया, जो भविष्य में प्रचार के लिए तथा उन्हें और अन्य लोगों के लिए शरण की व्यवस्था करने के लिए दिया था। उन्होंने वायदा किया कि यदि संभव हो सका, तो इस उद्देश्य के लिए कुछ धन अलग से रखा जाएगा और संकेत दिया कि शायद वह मुझे सौंप दिया जाए। कुछ दिन बाद उन्होंने फर्जी नाम से तार दिया कि ऐसा संभव

नही हो पाया। गुप्त के साथ वह मेरी अन्तिम भेंट थी। बाद म म अमरीका से जापान के लिए रवाना हो गया।

"मेरे लिए यह विश्वास करने का कारण है कि राम चन्द्र ने उन्हे मेरे सुझाव के विरुद्ध राय दी थी।"

हरम्ब लाल गुप्त का जापान मे हुई उन कई घटनाओ के साथ सबध था, जो नए सम्राट के राज तिलक के पश्चात दिए गए भारतीय भोज के बाद वहा घटी थी। लालाजी की मृत्यु के पश्चात प्रकाशित हुई उनकी आत्मकथा के अश मे हम पढते हैं

'जस ही भोज समाप्त हुआ, दो भारतीय क्रातिकारियो को, (दोना ही बगाली थे) जो मुख्य तौर पर भोज की व्यवस्था करने के लिए जिम्मेदार थे नोटिस दे दिया गया कि वे पाच दिन के अन्दर जापान मे चले जाए। दो पुलिस कास्टेबल उनकी हर समय निगरानी करने पर नियुक्त कर दिए गए। इससे भारतीय तथा जापानी लोगो, दोना मे ही भारी रोष उत्पन्न हुआ। लगभग सारे जापानी समाचार पत्रो ने इस आदेश की निन्दा की और उन राजनीतिक शरणार्थियो द्वारा शरण लेने के अधिकार का उल्लघन किए जाने की कडी आलोचना की जिनका यूरोप के लोग बहुत आदर और सम्मान करते थे। प्रमुख जापानी समाचार-पत्रो तथा अन्य प्रमुख लोगो का एक प्रतिनिधि मण्डल पुलिस प्रमुख से मिला, परन्तु उसने यह कहकर पिण्ड छुडा लिया कि यह आदेश विशेष विभाग द्वारा जारी किया गया है। प्रधान मत्री काउट ओकूमा उस समय बीमार होने के कारण अपने कमरे मे ही थे। उन्होने कहा कि मुझे इस आदेश की कोई जानकारी नही है और मै इसे रद्द नही कर सकता, क्योकि ऐसा करना विदेश मत्री का अपमान होगा। इस प्रकार जापानी राजनीतिज्ञो ने इस आदेश से प्रभावित होने वाले भारतीयो के बचाव के लिए एक और तरीका ढूढ लिया। अन्तिम दिन सायकाल वे भारतीय जिनका दो कास्टेबल पीछा करते थे, जापान की ससद के एक प्रमुख सदस्य से मिलने उनके घर गए। वे तो अन्दर चले गए, परन्तु पुलिसवाले बाहर ही रहे। कुछ समय के बाद पता चला कि दोनो भारतीय किसी और द्वार से बाहर निकल गए थे और गायब थे। वे कभी गिरफ्तार न हो पाए। उनम से एक तो कुछ समय बाद अमरीका पहुच गये और दूसरे जापान

में ही रहे और यदि मेरी जानकारी ठीक है, उन्होंने सम्मानित जापानी महिला से शादी करली है।"

जो व्यक्ति जापान में ही रह गये थे और गुप्तवास में रहे, परन्तु जिन्होंने बाद में जापान में निश्चिन्त जीवन बिताया, वह राम बिहारी उर्फ ठाकुर थे। शीघ्र ही उन्होंने जापान के लोगों में काफी रसूख पैदा कर लिया था। दूसरे व्यक्ति हेरम्ब लाल गुप्त थे, जो अमरीका लौट आये, परन्तु वह अपना महत्व खो बैठे और भारत जर्मन योजना तथा जर्मन कार्य के लिए विश्वास पात्र प्रतिनिधि न रहे, उनका स्थान डॉक्टर चक्रवर्ती ने ले लिया। राम बिहारी के पास भी काफी धन था और जब वह छिपे हुए थे, उन्हें यह क्रान्तिकारी धन संकट टल जाने तक सुरक्षापूर्वक रखना था। इसके लिए उन्होंने लालाजी तथा सब्बरवाल दोनों से सहायता मांगी तथा दोनों ने ही उनकी सहायता की। काफी अच्छी रकम—साढ़े उन्नीस हजार येन—लालाजी के पास सुरक्षित रही, जो उन्होंने अमरीका से ठाकुर को भेजी, जब यह विश्वास हो गया कि वह कुछ लोगों की मार्फत यह धन सुरक्षित रूप से प्राप्त कर लेंगे।

लालाजी ने स्पष्ट तौर पर सच्चे मन से क्रान्तिकारियों की वे योजनाएं स्वीकार न की, जो जर्मन या किसी अन्य विदेशी सहायता पर निर्भर करती थी। उन्होंने कई सच्चे क्रान्तिकारियों की संकट के समय सहायता की। ठाकुर संकट के समय अपने धन के लिए सुरक्षा चाहते थे। कुछ समय पश्चात एक अन्य क्रांतिकारी एम० एन० राय को मेक्सिको में सहायता की आवश्यकता थी, क्योंकि वह उन दिनों लगभग बेसहारा थे और यह लालाजी ही थे, जिन्होंने उनकी सहायता की, जिस प्रकार उन्होंने अन्य कई क्रान्तिकारियों की कठिनाई के समय की थी और उन्हें वह धन दिया जिस की उन्हें आवश्यकता थी।

यह है क्रांतिकारियों के साथ लालाजी के संबंध की संक्षेप सी कहानी, इसका उद्देश्य केवल यह बताना है कि युद्ध और युद्ध के दौरान भारतीय क्रान्तिकारियों की योजनाओं के प्रति लालाजी का दृष्टिकोण क्या था। इसका उद्देश्य इन सम्पर्कों का पूर्ण ब्यौरा देना नहीं। लालाजी क्रान्तिकारी आन्दोलनों तथा गोपनीय संगठनों का गूढ़ और सावधानीपूर्वक अध्ययन करते थे। उनकी

पुस्तक 'रिप्लैक्शन्स आन रिवाल्यूशन'* में, जो उन्होंने अपनी पत्रिका के लिए लिखी थी, उनके व्यक्तिगत सम्पर्कों और आंतरिक ज्ञान का सारगर्भित संक्षिप्त वर्णन दिया गया है, यह आज भी अध्ययन के उपयुक्त है। उन्होंने अपने इस्तेमाल के लिए यादाश्त के तौर पर कुछ विवरण भी लिखा, जो प्रकाशन हेतु नहीं था। यह विवरण उनके प्रकाशक मित्र श्री डब्ल्यू० बी० हुबुवाख के पास मुहरबंद लिफाफे में सुरक्षित रहा। यह विवरण भारतीय क्रांतिकारियों के बारे में था। इसमें कई भारतीय क्रांतिकारियों के बारे में स्पष्ट टिप्पणी प्राप्त होती है, जो सारी की सारी सराहना करने वाली नहीं है।**

---

*यह भाग 'द पीपुल' में लाजपत राय अंक से लिया गया है।

**इस बाद पाण्डुलेख को श्री बी० एन० जोशी ने सम्पादित तथा प्रकाशित किया है और पुस्तक का नाम है—आटो बायोग्राफिकल राइटिंग्ज आफ लाजपत राय।

42. निर्वासित राजदूत

उन्हें घर छोड़े बीस महीने हो चुके थे, जब कि मूल योजना छ मास की यात्रा की थी। युद्ध लगभग डेढ़ वर्ष से चल रहा था और कोई भी नहीं कह सकता था कि यह युद्ध कितने महीने या कितने वर्ष और जारी रहेगा। वह एक बार फिर अमरीका पहुंच गये थे। इस बार थोड़े समय के लिए नहीं, बल्कि काफी समय के लिये ठहरने का कार्यक्रम था। भारत लौटना सम्भव दिखाई नहीं देता था। बाद की घटनाएं स्पष्ट तौर पर यह व्यक्त करती हैं कि यदि उन्होंने भारत लौटने का प्रयत्न भी किया होता, तो सम्भव था कि उन्हें लौटने की आज्ञा न दिलाई जाती, क्योंकि 'युद्ध विराम' के कई मास बाद भी उन्हें प्रवेश-पत्र (वीसा) प्राप्त करने में काफी कठिनाई हुई थी। दरअसल, शान्ति स्थापित होने के बाद भी यह कठिनाई हुई थी। उन्होंने देखा कि वस्तुतः वह निर्वासित थे और राजनीतिक शरण के लिए वह जापान के मुकाबले अमरीका को प्राथमिकता दे रहे थे।

इस प्रकार 1915 के अन्त में युद्ध काल का यह निर्वासित अमरीका लौट आया और उन्होंने उस परिस्थिति के अनुसार काम करने के लिए तैयारी आरम्भ कर दी। अमरीकनों तथा अमरीका में भारतीय श्रमिकों की विशेष समस्याओं के अध्ययन की चर्चा तो वह अमरीका के बारे में लिखी गई अपनी पहली पुस्तक में जापान जाने से पूर्व ही कर चुके थे। अब उन्होंने अपनी गतिविधि का रुख भारतीय समस्या के बारे में अमरीकी लोकमत को जानकारी देने की ओर मोड़ दिया, ताकि वह अमरीकी सहानुभूति प्राप्त कर सकें, जो यथासम्भव भारत के हित के लिए इस्तेमाल हो सके। अब वह अमरीका में उसी प्रकार थे, जैसे कुछ समय पूर्व हंगरी का देशभक्त-निर्वासित लुई कोसथ था, जिसने अपने देश के हित के लिए अपना जीवन अर्पण कर दिया था। वह अपने पराधीन लोगों की ओर से अमरीका के स्वाधीनता प्रसाद लोगों में दूत के तौर पर कार्य कर रहे थे।

अमरीका के नगरों में विवेकानन्द ने जो हलचल पैदा की थी, उसके अलावा ऐसा जान पड़ता था कि अमरीका के अच्छी तरह पढ़े लिखे तथा

उदारचित्त लोगों के लिए भारत का कोई अस्तित्व नहीं था। एक अमरीकी स्कूल की एक हिन्दू छात्रा ने लाजपत राय को बताया कि भारतीय इतिहास उसके पाठ्यक्रम में शामिल है, परन्तु अध्यापिका की ओर से उस विषय को छोड दिया जाता है। छात्रा द्वारा यह पूछे जाने पर कि वह भारतीय इतिहास के बारे में एक शब्द भी क्यों नहीं कहती, तो अध्यापिका ने उत्तर दिया कि भारतीयों ने कोई विशेष सफलता प्राप्त नहीं की, इसलिए इतिहास में उनके वर्णन का कोई अधिकार नहीं। यह विशेष बात थी, यद्यपि अमरीका में हिटनी तथा लैनमन जैसे संस्कृत विद्वान भी हुए हैं।

ऐसी स्थिति का समाधान करने के लिए और विशेषकर भारत की स्वाधीनता की समस्या के महत्व की ओर ध्यान आकर्षित करने के लिए लाजपत राय ने अपने आपको व्यस्त कर लिया। अमरीका अभी भी निष्पक्ष था, चाहे ब्रिटेन आजादी और प्रजातंत्र के नाम पर अमरीका का समर्थन प्राप्त करने के लिए पूरा प्रयास कर रहा था। भारत विरोधी प्रचार, जिसका उद्देश्य भारत में ब्रिटिश साम्राज्य के शासन को जारी रखने को उचित बताना था, इस प्रचार का अंग था। भारत में ईसाई प्रचार की गतिविधियां बहुत हद तक अमरीकी वित्तीय सहायता पर निर्भर करती थीं और यह कार्य करने वाले कुछ प्रचारकों के लिए भारतीय इतिहास तथा संस्कृति का बहुत ही गलत ढंग से पेश करना और भारतीय लोगों को विधर्मी व्यक्त करना बहुत लाभकारी था। ऐसे स्वार्थी लोग अमरीकी लोगों के सामने भारत के बारे में सही तस्वीर पेश करने के रास्ते में बाधक थे। विशेषकर युद्ध काल में अमरीका में ब्रिटिश प्रचार को देखते हुए भारतीय दृष्टिकोण पेश करने की आवश्यकता पहले से अधिक थी और चूंकि ब्रिटेन हर स्थान से समर्थन प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहा था, लाजपत राय ने इस अवसर को उचित समझा कि भारतीय प्रश्न को आगे लाया जाए। निर्वासित नेता ने बहुत शीघ्र सम्पर्क पैदा कर लिया। भारत के इस राष्ट्रवादी नेता में कोई ऐसी सर्वव्यापक अथवा महानगरीय बात थी, जिससे वह विभिन्न राष्ट्रों तथा मसलों के लोगों में अपने को घुला मिला लेते थे। उनके प्रजातान्त्रिक तथा यथार्थवादी ढंग में वह विशेष अपील थी, जो खासकर अमरीकनों जैसी ही थी जिनकी सहायता वह ढूंढ रहे थे। यहां तक कि वह कभी रूखेपन से कोई असुखद बात उनके मुंह पर कह देते और उनके

गौरव की धज्जियां उडा दते, वे उस व्यक्ति की ईमानदारी का ताड जान और उनके क्षुद्र कर दन वाले व्यवहार के कारण उन्हें और अधिक पसद करते और उनको आरसे न्हे ढग स नग, परम्परागत झूठी बाता का अलग किए जाने का अच्छा समझते। सुयोग्य अमरिकी पत्रकार फ्रासिस हैकिट, जो उन दिनो अमरीका के बुद्धिवादी साप्ताहिक 'द न्यू रिपब्लिक' के एक कमचारी थे स्मरण करते हुए कहते हैं कि उनका परिचय हाने के थाडी देर पश्चात, लाजपत राय ने कहा —

आप जानते हैं कि भारत मे अमरिकी लोग तो हमारे लिए अग्रेजो मे भी बुरे हैं।"

श्री हैकिट का कहना है, "मुझे यह सुनकर आश्चय नही हुआ, क्योंकि जिन लोगो को नई नई सत्ता प्राप्त होती है, वे निरकुश ही ही जाते हैं, परन्तु उन्होंने जो बात कही थी, उसमे मजे की बात यह थी कि उन्होंने किस प्रकार बिना लाग-लपेट के यह बात कही थी। लाजपत राय सच कहने से टलते नही थे।"

लाजपत राय ने विशेषकर अतिवादी नेताओ, प्रगतिशील पत्रकारो और विश्वविद्यालयो के व्यक्तियो के साथ मैत्री बनाई। शीघ्र ही सावजनिक वक्ता के तौर पर उनकी माग बहुत बढ गई और उन्होंने समाचार पत्रा के लिए भी काफी लिखा। जैसा कि हम देखेंगे, इसका प्रमुख कारण भारत के स्वाधीनता आन्दोलन के बारे मे उनकी पुस्तक थी, जिसे वह 'यग इडिया' कहते थे। बुद्धिवादी, उदारचित्त तथा अतिवादी पत्रिकाओ के लिए वह भारत तथा अन्य एशियाई देशो के बारे मे लिखी गई पुस्तको की समीक्षा करते थे या उन पुस्तको की जो पूर्वी दशा से सबधित विषयो के बारे मे होती थी—इन समीक्षाओ के कारण उन्हें सम्पक बनाने मे सहायता मिली और उनके बारे मे काफी क्षेत्रो की जानकारी हो गई।

जब लालाजी पूरी तरह व्यवस्थित हो गए और उन्होंने भारतीय स्वाधीनता के लक्ष्य को लेकर सुनियोजित तथा विधिवत काय आरभ कर दिया तो सहायता के लिए उन्हें कुछ सहायको की तलाश हुई और उन्हें एन० एम० हार्डिकर जसे वफादार और निष्ठावान सहयोगी मिले, जो उस समय डाक्टरी के छात्र थे।

अक्तूबर 1915 मे लाजपत राय ने अमरीका मे इडियन होम रूल लीग की स्थापना की और स्वय उसके अध्यक्ष बने। भारत के लिए अथक सघर्ष करते वाले जे० टी० सडरलैंड उस लीग के अध्यक्ष थे (सडरलैंड ने लालाजी के अमरीका से आ जाने के बाद भी काय जारी रखा)। इस सगठन के अन्य सहयोगियो मे के० डी० शास्त्री, एन० एस० हार्डिकर सचिव के तौर पर और आर० एल० वाजपेयी पाषद के तौर पर थे।

जनवरी 1917 से लीग ने अपनी एक छोटी सी मासिक पत्रिका निकाली, जिसका नाम था 'यग इडिया'। पत्रिका के कार्यालय से भारत की घटनाओ के बारे मे जानकारी प्राप्त करने के लिए बहुत से लोग 1400 ब्राडवे आने लगे, इसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि लालाजी ने वहा एक सूचना केन्द्र स्थापित कर दिया और उसके बाद एक सहायक सगठन के तौर पर 'वर्क्स यूनियन' की स्थापना कर दी।

लीग, यग इडिया तथा सूचना केंद्र, भारत का पक्ष सगठित ढग से विश्व जनमत के समक्ष पश करने का पहला प्रयत्न था, इसलिए विदेशो में भारत के प्रचार के इतिहास म यह विशेष महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इससे पूर्व विदेशो मे भारतीय प्रचार थोडा बहुत इग्लड तक सीमित था, जहा इडियन नेशनल काग्रेस की ब्रिटिश समिति, वेडरबन के नेतृत्व म काग्रस के दृष्टिकोण का प्रचार करती थी और वह भी प्रमुख तौर पर अपनी पत्रिका 'इडिया' के माध्यम से। 'यग इडिया' का सम्पादन लाजपत राय स्वय करते थे और उसके प्रबध से एन० एस० हार्डिकर उनकी सहायता करते थ। यह बहुत छोटा सा प्रयत्न दिखाई पडता था, परन्तु इसका प्रभाव बहुत व्यापक था। बहुत बडे निडर पोत के समान नही, परन्तु छोटे आकार के तथा किफायती युद्धपोत के समान।

लीग तथा यग इडिया' अधिकृत तौर पर इडियन नेशनल काग्रेस से सम्बद्ध नही थी, यदयपि एसा सहयाग उस स्थिति मे जब कि काग्रेस के दोनो गुट 1916 के लखनऊ अधिवेशन मे फिर से एक हो गए थे, लाजपत राय के लिए कठिन न होता। अमरीका मे उनका कार्य अनधिकृत रहा, परन्तु भारत म यदि किसी बडे नेता ने उनके साथ जबानी सहानुभूति स बढकर कुछ किया, तो वह थे बाल गगाधर तिलक, जो 1918 मे वेलिंटाइन शिरोल के

गौरव की धज्जियां उडा देते, वे उस व्यक्ति की ईमानदारी को ताड जाते और उनके क्षुब्ध कर देने वाले व्यवहार के कारण उन्हें और अधिक पसद करते और उनकी ओर से रूखे ढग से नम्र, परम्परागत झूठी बातो का अलग किए जाने को अच्छा समझते। सुयोग्य आयरिश पत्रकार फ्रांसिस हैकिट, जो उन दिनो अमरीका के बुद्धिवादी साप्ताहिक 'द न्यू रिपब्लिक' के एक कर्मचारी थे, स्मरण करते हुए कहते हैं कि उनका परिचय होने के थोडी देर पश्चात, लाजपत राय ने कहा —

"आप जानते है कि भारत मे आयरिश लोग तो हमारे लिए अग्रेजो से भी बुरे हैं।"

श्री हैकिट का कहना है, "मुझे यह सुनकर आश्चर्य नही हुआ, क्योकि जिन लोगो को नई-नई सत्ता प्राप्त होती है, वे निरकुश हो ही जाते हैं, परन्तु उन्होने जो बात कही थी, उसमे मजे की बात यह थी कि उन्होने किस प्रकार बिना लाग लपेट के यह बात कही थी। लाजपत राय सब बहुत से दलत नही थे।"

लाजपत राय ने विशेषकर अतिवादी नेताओ, प्रगतिशील पत्रकारो और विश्वविद्यालयो के व्यक्तियो के साथ मैत्री बनाई। शीघ्र ही सार्वजनिक वक्ता के तौर पर उनकी माग बहुत बढ गई और उन्होने समाचार पत्रो के लिए भी काफी लिखा। जैसा कि हम देखेंगे, इसका प्रमुख कारण भारत के स्वाधीनता आन्दोलन के बारे मे उनकी पुस्तक थी, जिसे वह 'यग इडिया' कहते थे। बुद्धिवादी, उदारचित्त तथा अतिवादी पत्रिकाओ के लिए वह भारत तथा अन्य एशियाई देशो के बारे म लिखी गई पुस्तको की समीक्षा करते थे या उन पुस्तको की जो पूर्वी दशा से सबधित विषयो के बारे मे होती थी—इन समीक्षाओ के कारण उन्हें सम्पर्क बनाने म सहायता मिली और उनके बारे म काफी लोगो को जानकारी हो गई।

जब लालाजी पूरी तरह व्यवस्थित हो गए और उन्होने भारतीय स्वाधीनता के पक्ष को लेकर सुनियोजित तथा विधिवत कार्य आरभ कर दिया तो सहायता के लिए उन्हें कुछ सहायको की तलाश हुई और उन्हें एन० एम० हार्डिकर जसे वफादार और निष्ठावान सहयोगी मिले, जो उस समय डॉक्टरी के छात्र थे।

अक्तूबर 1915 मे लाजपत राय ने अमरीका मे इंडियन होम रूल लीग की स्थापना की और स्वयं उसके अध्यक्ष बने। भारत के लिए अथक संघर्ष करने वाले जे॰ टी॰ सडरलैंड उस लीग के अध्यक्ष थे (सडरलैंड ने लालाजी के अमरीका से आ जाने के बाद भी कार्य जारी रखा)। इस संगठन के अन्य सहयोगियो मे के॰ डी॰ शास्त्री, एन॰ एस॰ हार्डिकर सचिव के तौर पर और आर॰ एल॰ बाजपेयी पार्षद के तौर पर थे।

जनवरी 1917 से लीग ने अपनी एक छोटी सी मासिक पत्रिका निकाली, जिसका नाम था 'यंग इंडिया'। पत्रिका के कार्यालय से भारत की घटनाओ के बारे मे जानकारी प्राप्त करने के लिए बहुत मे लोग 1400 ब्राडवे आने लगे, इसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि लालाजी ने वहा एक सूचना केन्द्र स्थापित कर दिया और उसके बाद एक सहायक संगठन के तौर पर 'वर्क्स यूनियन' की स्थापना कर दी।

लीग, यंग इंडिया तथा सूचना केंद्र, भारत का पक्ष संगठित ढंग से विश्व जनमत के समक्ष पेश करने का पहला प्रयत्न था इसलिए विदेशो मे भारत के प्रचार के इतिहास म यह विशेष महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इससे पूर्व विदेशो में भारतीय प्रचार थोडा बहुत इंग्लैंड तक सीमित था, जहा इंडियन नेशनल कांग्रेस की ब्रिटिश समिति, वेडरबर्न के नेतृत्व मे कांग्रेस के दृष्टिकोण का प्रचार करती थी और वह भी प्रमुख तौर पर अपनी पत्रिका 'इंडिया' के माध्यम से। 'यंग इंडिया' का सम्पादन लाजपत राय स्वयं करते थ और उसके प्रबंध मे एन॰ एस॰ हार्डिकर उनकी सहायता करते थे। यह बहुत छोटा सा प्रयत्न दिखाई पडता था, परन्तु इसका प्रभाव बहुत व्यापक था। बहुत बडे निडर पोत के समान नही, परन्तु छोटे आकार के तथा किफायती युद्धपोत के समान।

लीग तथा 'यंग इंडिया' अधिकृत तौर पर इंडियन नेशनल कांग्रेस से सम्बद्ध नही थी, यद्यपि ऐसा सहयोग उस स्थिति मे जब कि कांग्रेस के दोनो गुट 1916 के लखनऊ-अधिवेशन मे फिर से एक हो गए थे, लाजपत राय के लिए कठिन न होता। अमरीका म उनका कार्य अनधिकृत रहा, परन्तु भारत मे यदि किसी बडे नेता ने उनके साथ जबानी सहानुभूति से बढकर कुछ किया, तो वह थे बाल गंगाधर तिलक, जो 1918 म वेलेंटाइन शिरोल के

विरुदध मानहानि का मुकदमा लडने तथा हारने इंग्लैंड गये थे। लोकमान्य तिलक का व्यक्तित्व हिमालय के समान बहुत ऊंचा था और सागर के समान गहरा जैसा कि गांधीजी ने उन्हें पाया, फिर भी उनमें वसी सर्वव्यापकता और विश्व-नागरिकता नही थी, जो लाजपत राय में थी और न ही उनको लाजपत राय जैसा अन्तर्राष्ट्रीय अनुभव था। ब्रिटेन की अपनी यात्रा के दौरान लोकमान्य को ब्रिटिश समाचार पत्रो दवारा प्रचार सहायता प्राप्त करने मे बहुत बडी बाधाओ का सामना करना पडा था। शायद इसी अनुभव के बाद ही उन्हे लाजपत राय दुवारा किए जा रहे शानदार काय के महत्व का पता चला था। इंग्लैंड से लाजपत राय को भेजे गए पत्रों मे तिलक ने उन्हे बहुत प्रोत्साहन दिया था और काफी सहायता देने का पक्का इकरार भी किया था।

डाक्टर एन० एम० हार्डिकर स्मरण करते हुए कहते हैं कि अपने लोगों को लिखे गए कुछ पत्रों में उन्होंने कहा था कि धन की कमी के कारण लालाजी को अपने काम मे काफी कठिनाई आ रही है और लोकमान्य ने उनमें से कई पत्र देखे थे।

लोकमान्य से मिली सहायता बहुत ही उचित अवसर पर थी और यह कहना एक बहुत बडी समस्या है कि लोकमान्य से सहायता न मिलने की सूरत में अमरीका मे इंडियन होम रूल लीग अपना काय जारी रख पाती। एन० एम० हार्डिकर इस बात का स्मरण करते हैं कि लालाजी लोकमान्य की कितनी कृतज्ञता महसूस करते थे।

लोकमान्य ने पहली बार पाच हजार डालर भेजे थे (उस समय यह राशि लगभग 17 हजार रुपये के बराबर थी) युदध कालीन सेंसर शिप के कारण इस प्रकार पैसे भेजने मे विशेष कठिनाई होती थी। इसी लिए ऐसा जान पडता है कि लोकमान्य ने श्रीमती एनी बेसेंट से सहायता ली। अभी भी उनका मन सदेह-मुक्त नही था, इसलिए 1919 के आरभ मे उन्होंने लदन से एक पत्र लिखा, जिसमे तिलक ने इच्छा व्यक्त की थी कि वह 'तुरत सूचना दे कि उन्होंने जो पाच भेजे थे क्या वे तुम्हें मिल गए है।' सेंसर की पकड से बचने के लिए 'पाच' मे 'पाच हजार' का अर्थ लिया गया था। जब उन्हें निश्चय हो गया कि 'पाच' गुम नही हुए, तो उन्होंने एक हजार डालर और भेजे।

भारतीय हित के लिए एक और महत्वपूर्ण बात अमरीका मे भारत की साख के लिए 1918 मे टैगोर की अमरीका की भाषण-यात्रा थी। यद्यपि स्पष्ट तौर से यह राजनीतिक मामला नही था, फिर भी इसमे अमरीकी चेतना मे भारत का पहले के मुकाबले अधिक स्थान मिला। कवि तथा देशभक्त मे भेंट तो न हुई, परन्तु इस बात मे कोई सदेह नही कि टगोर की अमरीका यात्रा मे लाजपत राय द्वारा सुनियोजित ढग से किए जा रहे काय का सहायता अवश्य मिली।

लाजपत राय के होम रूल लीग प्रचार का परिणाम यह हुआ कि शाति सम्मेलन के अवसर पर अमरीकी सीनेट की विदेशी सबध समिति के समक्ष भारत का पक्ष विधिवत पेश किया गया। सीनेटर डडले फील्ड मैलोन ने उस विवरण को सीनेट के समक्ष प्रस्तुत किया। अन्य लोगो के साथ साथ सीनेटर नौरिस इस काय से सम्बद्ध थे। निस्सदेह, विवरण मुख्य तौर से लाजपत राय ने तैयार किया था। अगर लाजपत राय अमरीका म न होते तो ऐसा कभी न हो पाता।

एन० एस० हार्डिकर ने बताया है कि भारत का पक्ष 'विदेशी सबध समिति' मे किस ढग से पेश किया गया। ऐसा दिखाई पडता है कि लालाजी का समिति म अधिक विश्वास नही था और वह किसी ऐसे द्वार पर दस्तक देने को तैयार न थे, जिसके बारे मे उन्हे विश्वास था कि वहा से सहानुभूति नही मिलेगी। परन्तु उनके कुछ सहयोगी, जिनम स्वय हार्डिकर भी शामिल थे, सोचते थे कि इस अवसर को व्यथ नही जाने देना चाहिए।

ऐसा जान पडता है कि जब समिति की ओर से निमत्रण कार्यालय म पहुचा, हार्डिकर वहा उपस्थित नही थे। लालाजी मौजूद थे और उन्हे यह जानकारी न थी कि समिति मे इस सम्बध म निवेदन किया गया है। इस प्रकार अजीब स्थिति उत्पन्न हो गई थी और चूकि वह अपने सहायको द्वारा किए गए काम से इन्कार नही कर सकते थे, इसलिए उन्हे इसे स्वीकार करना पडा। निस्सदेह, युवा मित्र अच्छी तरह जानते थे कि इस मामले के साथ केवल लालाजी ही निपट सकते थे, उनका कोई सहायक नही। समिति चाहती थी कि उसके सामने भारत का जो पक्ष पेश किया जाना है, वह दो दिन के बाद ही उसे सुनेगी। इतनी कम अवधि म

भारत का समूचा पक्ष लिखना था तथा उसकी छपाई होनी थी। इसलिए लालाजी को मजबूरी मे इस स्थिति मे हस्तक्षेप करना पडा और ज्ञापन लिखने के लिए उन्हें केवल एक दिन दिया गया। वह सारी रात बैठे यही काम करते रहे और अगले दिन बारह पन्नो का ज्ञापन छपकर तैयार हो गया था।

पांडुलिपि प्रकाशक को सौंप दिए जाने के पश्चात लालाजी ने अपने वकील मित्र डडले फील्ड मैलोन मे सम्पर्क किया और समिति के समक्ष पेश होने के लिए अपने साथ चलने के लिए सहमत कर लिया। इस प्रकार जिन लोगो ने यह स्थिति पैदा की थी कि लालाजी उसका सामना करे, उनम उनके शरारती मुख्य सहायक हार्डिकर के शब्दो मे—"समिति के सामन यह काय श्री मैलोन की सहायता से आप पेश कर लीजिए", कहकर वे सब स्वतत्र हो गए, "ताकि थकान दूर करने के लिए शाम को नाटक देख सके" और इसलिए वे न्यूयार्क लौट गए।

अमरीका मे भारत के पक्ष का बहुत व्यापक प्रचार हुआ तथा उसे बहुत समर्थन मिला जो उन परिस्थितियो के कारण सभव था। भाग्य की बात थी कि उनका पक्ष पेश करने के लिए अमरीकी लोगो म लाजपत राय भारत के दूत मे—बहुत ही योग्यता और आकषक व्यक्तित्व वाले दूत, जो केवल निर्वासित ही नही थे उन्होंने अपने विश्वास की खातिर बडी दढता से कठिनाइया झेली थी।

सन् 1918–19 मे प्रेसिडेंट विल्सन की आवाज सबसे शक्तिशाली थी। उनका नाम उन सच्ची तथा साहसी आत्माओ के लिए प्रकाश स्तम्भ था जो नए सशक्त समार की तलाश मे थे, जहा व्यक्ति अधिक स्वतत्र जीवन बिताए और अलग-अलग राष्ट्र अधिक शाति तथा मेल जाल से रह सकें। भारत मे उन्हें एक विस्तृत पत्र भेजा गया, जिसमे एस० सुब्रह्मण्य अय्यर ने भारत का पक्ष काफी व्यापक रूप में पेश किया था। भारतीय समाचार पत्रो म अमरीका के उस स्वतत्रता दूत द्वारा भेजे गए पत्रोत्तर की प्रतिध्वनि गूजती रही, यह स्वतत्रता दूत, जो एक समय पर अमरीका म बडे नामो को जिनम अब्राहम लिंकन का नाम भी शामिल था, पीछे छोडने की स्थिति म हो गया था। शायद भारत के अतर्राष्ट्रीय विधिवेत्ताओ को अमरीकी परिप्रेक्ष्य म इस सारे मामले क न्यून महत्व का एहसास नहीं था।

परंतु इस पत्र का अमरीकी समाचार पत्रों में कुछ प्रचार हुआ, इसका श्रेय निश्चय ही लाजपत राय द्वारा इसके लिए तथा भारतीय हित के लिए किए गए उनके कार्य को जाता है।

हार्डिकर इसी प्रकार के एक अन्य अवसर की चर्चा करते हैं जब एक सीनेटर ने जो भारत के हित में बोलना चाहते थे, लालाजी से सहायता मांगी थी।

लालाजी अमरीकी लोगों के बीच दूत थे, इसलिए उनकी गतिविधि का केंद्र वाशिंगटन नहीं हो सकता था। उन्होंने सोचा कि उनके लक्ष्य के अधिक हित में यही था कि वह उदारवादी तथा अतिवादी और वामपंथी क्षेत्रों या विश्वविद्यालय के लोगों, पत्रकारों और ऐसे बुद्धिजीवियों में कार्य करें, जो उनके प्रति सहानुभूतिपूर्ण रवैया अपना सकें और जिनमें लोकमत तैयार करने की कुछ क्षमता हो। उन्होंने सत्ताधारी लोगों में संपर्क करने का कोई प्रयत्न न किया। उन्होंने सोचा कि इसके लिए उपयुक्त समय नहीं आया था।

भारत सरकार ने यह बात पक्की तरह मान ली थी कि लाजपत राय ने अमरीका में जो भी प्रकाशित किया है—पत्रिका, पुस्तिका अथवा पुस्तक—उसे भारत में आने की बिल्कुल आज्ञा नहीं देनी है। क्या ब्रिटिश प्रचारकों ने यह आरोप नहीं लगाया था कि वह एक जर्मन एजेंट थे? ब्रिटिश सरकार ने उनकी पुस्तक 'यंग इंडिया' पर प्रतिबंध लगा दिया। इस मूर्खतापूर्ण प्रतिबंध का कमाण्डर जोशिया सी॰ वैजवुड ने हाउस आफ कामंस में बड़े नाटकीय ढंग से उल्लंघन किया। 'यंग इंडिया' विजयी रही, परन्तु प्रतिबंध और पुस्तक के बीच इस संघर्ष से महत्वपूर्ण इस कहानी की चर्चा हम उस अध्याय में करेंगे, जो लाजपत राय द्वारा इस अवधि में लिखी गई पुस्तकों के उल्लेख के लिए है—वह विशुद्ध मानवीय संबंधों का जोखिम था—जिसने दो सादृश्य आत्माओं के बीच मैत्री संबंध पैदा कर दिए। लाजपत राय तथा वैजवुड के बीच कई वर्षों की घनिष्ठ मैत्री की तो दोनों देशों में चर्चा थी, परन्तु इस बात का बहुत कम लोगों को पता था कि यह मित्रता कमांडर वैजवुड द्वारा भारतीय देशभक्त लेखक के लिए, जिन्हें उन्होंने देखा भी नहीं था, डटकर संघर्ष करने से आरंभ हुई। उसके थोड़ी देर बाद वैजवुड अमरीका गये और बाल्टीमोर, न्यूयार्क में दोनों की पहली भेंट हुई। इस मुलाकात से पूर्व भी ('यंग इंडिया' की घटना के बाद) उनके बीच पत्र-व्यवहार हुआ था। उसके बाद से उन्होंने पत्रों द्वारा एक दूसरे के कुशल-क्षेम, विचारों तथा कार्यों का पूरी

तरह ध्यान रखा । इस प्रकार एक अंग्रेज के साथ उनकी उच्च कोटि की मित्रता अमरीका में हुई ।

वेजवुड के साथ पत्र व्यवहार में हम एक नया सुझाव देखते हैं, जिसमें लाजपत राय के पर्शिया (ईरान) जाने की बात कही गयी है । वेंजवुड का लिखे एक पत्र में हम देखते है कि लाजपत राय पर्शिया जाने के प्रस्ताव से सहमत हैं, यदि कुछ शर्तें पूरी कर दी जाए । लाजपत राय के इस पत्र से शायद यह संकेत मिलता है कि युद्ध के प्रति व्यवहार में यह परिवर्तन उनका ब्रिटेन के युद्ध प्रयत्नों में सहयोग देने के लिए सहमत होना है । परन्तु गैरपनिक पत्र इस परिवर्तन का एकमात्र संकेत है, उनके सार्वजनिक भाषणों तथा लेखों में ऐसी कोई बात नहीं दिखाई देता । लाजपत राय के साथ पत्र व्यवहार में वेंजवुड ने अपने इस सुझाव के बारे में क्या किया और ब्रिटिश विदेश विभाग तथा इंडिया आफिस के व्यक्तियों ने, जिनके साथ उन्होंने इस प्रस्ताव के बारे में अवश्य चर्चा की होगी, कैसा रवैया अपनाया, यह हमें पता नहीं है । हम तो केवल यही जानकारी है कि यह बात नहीं हुई । वेंजवुड के प्रस्ताव के बारे में मैंने लालाजी से कभी कुछ न सुना, मुझे तो इसके बारे में जानकारी उनकी मृत्यु के बाद उनके कागजातों से ही मिली । परन्तु एक बात मुझे अच्छी तरह याद है कि लालाजी एक बार बता रहे थे कि युद्ध समाप्त हो जाने के बाद आगा खां ब्रिटिश विदेश विभाग से कह रहे थे कि उन्हें पर्शिया में राजदूत नियुक्त कर दिया जाए । इस प्रकार शायद उन्हें इस राजनयिक पद के लिए पर्दे के पीछे हुई गतिविधियों के बारे में जानकारी अवश्य थी ।

भारत में वाइसराय नियुक्त होने से तुरन्त पहले मार्क्विस रीडिंग वाशिंगटन में ब्रिटिश राजदूत थे । जब रीडिंग ने वाशिंगटन में पद संभाला, तो वेंजवुड ने उन्हें भारत के निर्वासित राजदूत का परिचय देते हुए लिखा था ।

इस वृत्तांत के दौरान अमरीका में लाजपत राय के अनेक मित्रों की चर्चा हो चुकी है । आदरणीय जे० टी० सडरलैंड वह व्यक्ति थे, जिन्होंने इस काम में उनकी सबसे ज्यादा मदद की थी । वह भारत आये थे और लाजपत राय से भेंट की थी, एक विवरण में, जो उन्होंने हावाक के लिए, (मार्च 1916 के आरंभ में) जो 'यंग इंडिया' के प्रकाशक थे, तैयार किया (पुस्तक के लिए, साप्ताहिक के लिए नहीं), वह 'दलित वर्ग' के उत्थान के लिए लाजपत राय के कार्यों का स्मरण

करते हैं, यानी चार करोड अछूतो अर्थात 'दलित वर्गों' के कल्याण कार्य की ओर, वह कहते हैं

"दो वर्ष पूर्व मैंने एक राष्ट्रीय सम्मेलन में भाग लिया, जो इस उद्देश्य से बुलाया गया था। उन्होंने इसकी अध्यक्षता की और एक जोरदार भाषण दिया।"

यह उत्कृष्ट गतिविधि एक विशेष वर्ग के ईसाई प्रचारको को अच्छी न लगी, क्योंकि वे इसे अपने अधिकार क्षेत्र मे हस्तक्षेप समझते थे और इसी कारण लाजपत राय के प्रति उनका व्यवहार अमैत्रीपूर्ण रहा। परन्तु आदरणीय जे० टी० सडरलैंड जो उन ईसाई लोगो से अधिक नेक ईसाई थे, न्यूयार्क के दिनो से लाजपत राय के बहुत ही घनिष्ठ मित्रो मे से थे।

सडरलैंड स्वय कई वर्षों से इस प्रश्न के उत्तर के लिए कार्य कर रहे थे कि "क्या भारत को स्वराज मिलना चाहिए ?" परन्तु उन्हे कोई प्रकाशक मिलने का यकीन नही था। उनके सामान्य प्रकाशक केवल धार्मिक साहित्य ही प्रकाशित करते थे, जो राजनीतिक दिलचस्पी का नही होता था और उनके विचार मे अन्य कोई ऐसा साहित्य प्रकाशित करने को तैयार न होता क्योंकि उन पर अमरीका मे ब्रिटिश प्रचार का प्रभाव था। उन दिनो अमरीका मे सबसे अधिक गरमागरम प्रश्न यह था कि क्या अमरीका को यूरोप के युद्ध मे हस्तक्षेप करना चाहिए और सडरलैंड के व्यवहार ने उन्हे प्रभावशाली वर्गों मे अप्रिय बना दिया। उनकी पुस्तक 'इडिया इन बाडेज' एक ऐसा सशक्त दस्तावेज थी, जो भारत मे तीसरे दशक मे प्रकाशित हुई।

एक अन्य अच्छे ईसाई, जिन्होंने भारत के लिए लाजपत राय के काम मे सहानुभूतिपूर्ण रुचि ली, आदरणीय जान हेनेस होम्स थे, जो यूनिटेरियन चर्च के एक प्रमुख व्यक्ति थे। वह शिकागो से प्रकाशित होने वाले साप्ताहिक 'यूनिटी' को सम्पादित करते थे। सभव है लाजपत राय की उनके साथ भेंट न्यूयार्क मे अपना कार्यालय स्थापित करने के पूर्व उन दिनो हुई हो, जब वह शिकागो मे रहते थे। 'यूनिटी' ने बाद मे गाधी के नेतृत्व मे आयोजित सामुदायिक आन्दोलन के समय जो सेवा की, उसे भुलाया नही जा सकता।

प्रकाशक बी० डब्ल्यू० ह्यूबाख, लेखक के साथ एक व्यावसायिक प्रबंध के अधीन ही कार्य नही कर रहे थे, वह एक विश्वसनीय मित्र भी थे और यही कारण है कि हमे उन भारतीय क्रांतिकारियो के बारे मे, जो लालाजी को

जापान तथा अमरीका में मिले थे, कुछ विस्तृत ज्ञापन, जो प्रकाशन हेतु नहीं, बल्कि याददाश्त के तौर पर लालाजी ने अपने हाथ से लिखे थे, एक बंद लिफाफे में उस विश्वसनीय मित्र के पास रहे। लालाजी के देहान्त पर जो सार्वजनिक शोक समारोह हुआ, उसमें ह्यूबाश ने भावपूर्ण श्रद्धांजलि अर्पित की और 1943 में वह पाण्डुलिपि जो उन्हें सौंपी गयी थी, जब किसी ने उसकी मांग न की तो उन्होंने वह मुहरबंद लिफाफा न्यूयार्क पब्लिक लाइब्रेरी को सौंप दिया, जिसे कोई 15 वर्ष बाद भारत के राष्ट्रीय पुरालेख विभाग ने प्राप्त कर लिया। ह्यूबाश का साप्ताहिक 'फ्रीमैन' उन अमरीकी साप्ताहिकों में से एक था, जिसे लालाजी विशेषतौर पर पसंद करते थे, परन्तु उसका प्रकाशन लालाजी के भारत लौटने के बाद आरंभ हुआ था।

लालाजी की मित्रता बहुत से पत्रकारों से थी, इनमें उदारवादी, अतिवादी तथा वामपंथी विचारों वाले व्यक्ति शामिल थे। ओस्वाल्ड गैरिसन विलार्ड उन बुद्धिजीवी, उदारचित्त पत्रकारों में श्रेष्ठ थे, जो उन दिनों अमरीका में थे। अमरीका से लौट आने के पश्चात् भी लालाजी उनके साप्ताहिक 'द नेशन' की बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा किया करते थे और शौक के साथ पढ़ते थे। 'द नेशन' के बाद एक अन्य साप्ताहिक था 'द न्यू रिपब्लिक', जिसके संपादकीय सदस्यों में अवश्य ही उनके कई मित्र थे। वाल्टर लिपमैन, फ्रांसिस हैकिट, वह प्रतिभावान आयरिश, जिनकी पहले ही चर्चा की जा चुकी है, आदि का पूरा उल्लेख करना आवश्यक है। हैकिट परिवार के साथ लालाजी के संबंधों के परिणामस्वरूप साप्ताहिक के कार्यालय के बाहर भी उनसे भेंट होती थी और वह अपनी डेनिश पत्नी, सिग्ने तोक्सविग, की चर्चा किया करते थे, जो महिला स्वतन्त्रता की कट्टर समर्थक थी और इसी कारण उन्होंने अपने पति का नाम नहीं अपनाया था। "देखिए, जब कभी किसी ने उन्हें श्रीमती हैकिट कहकर संबोधित किया, तो आम तौर पर बड़ा तमाशा बनता था—क्या मेरा अपना नाम नहीं है, श्री राय?" वह रोष व्यक्त करती हुई कहा करती थी।

जान हेनेस होम्स और उनके साप्ताहिक की पहले ही चर्चा की जा चुकी है और यहां अपनी सूची में हम एक और साप्ताहिक का नाम जोड़ते हैं, जो इन सब में अधिक वामपंथी था—'द मासेज'। लालाजी का इन साप्ताहिक पत्रिकाओं के कार्यालयों में सदा स्वागत होता था और वहां उनके व्यक्तिगत संपर्क थे, जिनकी वह कदर करते थे और कभी-कभार उनके संपादकीय भोज में भी शामिल होते थे।

भारत के लोगों के निर्वासित राजदूत के संबंध श्रमिक संगठनों के क्षेत्र तथा नीग्रो नेताओं से भी थे। वह राजनीति तथा सरकार के नेताओं के साथ संबंध रखने के लिए कोई विशेषतौर पर उत्सुक नहीं थे। परन्तु हमने सीनेटर मैलोन तथा सीनेटर नौरिस का उल्लेख पहले ही कर दिया है। इङले फील्ड मैलोन व्यवसाय से वकील थे और संभवत लालाजी ने उनसे कई बार कानून के अपने ज्ञान के लिए सलाह भी ली हो। हालांकि उनका नाम लेते हुए कहते हैं "अमरीका में हमारे वकील"। एक अन्य वकील मित्र थे—जान विवन, जिनसे लालाजी ने अपनी वसीयत लिखते समय सलाह ली थी। अमरीका में प्रवास के दौरान उन्होंने तीन बार वसीयत लिखी, पहली वसीयत 1916 में तथा अन्तिम 1919 में लिखी थी। जुलाई 1921 में गांधीजी को लिखे पत्र में विदेश में रहने के दिनों में प्राप्त हुए सार्वजनिक धन के बारे में उन्होंने लिखा। लालाजी ने उस वसीयत की चर्चा भी की, जो उन्होंने भारत के लिए रवानगी की तैयारी के समय लिखी थी और जो उन्होंने "जॉन विवन, 31, नैस्साऊ स्ट्रीट न्यूयार्क के पास जमा करवा दी है, जो मेरे एक मित्र तथा न्यूयार्क के विशेष योग्यता प्राप्त योग्य वकील हैं।"

लालाजी वाशिंगटन में अमरीकी सरकार के कर्णधारों से संपर्क बनाने के लिए अधिक प्रयत्न नहीं करते थे, परन्तु उन्हें अमरीका में रहने वाले भारतीयों की समस्याओं की जानकारी थी और इस कारण आवश्यक था कि वह कभी-कभार अधिकारियों के द्वार भी खटखटाए। इस प्रकार हमें उनके कागजात में श्रम विभाग की कुछ चिट्ठियां मिलती हैं, जिनसे पता चलता है कि उन्होंने भारतीय समुदाय के लोगों को कुछ क्षेत्रों में बसाने के लिए प्रस्ताव भेजे थे और इन प्रस्तावों के बारे में अन्तिम उत्तर हमें एक पत्र में मिलता है (सहायक सचिव के कार्यालय से), जो 15 मई 1916 का है, जिसमें उन्हें सचिव विलसन के उत्तर के बारे में बताया गया है।

"आपके प्रस्तावों को, जिनमें अमरीका द्वारा दी गई भूमि में हिन्दुओं को बसाने की योजनाएं भेजी गई हैं, कानूनी व्यवस्था किए बिना लागू करना संभव नहीं है और ऐसी कानूनी व्यवस्था करने की फिलहाल कोई गुंजाइश नहीं है।"

लालाजी के इस राजदूत के विश्वविद्यालयों तथा ज्ञान केन्द्रों में कई अच्छे संबंध थे। इस वर्ग के नामों की सूची में जिसका पहले उल्लेख किया जा चुका है, हम कोलम्बिया विश्वविद्यालय के विख्यात अर्थशास्त्री प्रोफेसर ई० आर० ए० सैलिगमैन का नाम जोड़ते हैं। भारत लौटने पर जब लाजपत राय के पुत्र, अमृत, ने

उच्च शिक्षा के लिए विदेश जाने की इच्छा व्यक्त की, लालाजी ने उन्हें सबसे पहले कोलम्बिया विश्वविद्यालय में सैलिगमैन के पास जाने के लिए कहा, यद्यपि बाद में अमृत जर्मनी चले गये। यह अनिवार्य था कि वह राजनीति शास्त्र के कई प्रमुख लेखकों से मिलें। हम देखते हैं कि जे० ए० हौब्सन इस बात के लिए खेद व्यक्त करते हुए कि वह "31 तारीख को आपके साथ अन्तर्राष्ट्रीय भोज में सम्मिलित नहीं हो सकते, क्योंकि मैं उस दिन न्यूयार्क में उपस्थित नहीं हूंगा।" और उन्होंने कहा है

"मुझे आशा है कि आप इस देश में प्रजातान्त्रिक नीति के पक्ष में लोकमत को प्रभावित कर रहे हैं, यद्यपि अमरीका में लोकमत का तात्पर्य कुछ अजीब सा है।"

के० के० कावाकामी का, जो अन्तर्राष्ट्रीय सबंधो के बारे में एक विशेषज्ञ थे और अमरीका में रहते थे, यहां उल्लेख किया जाना आवश्यक है। उसने इस विषय पर कई पुस्तकें लिखी थीं विशेषकर जापान की विदेश नीति पर। ये सभी पुस्तकें अमरीका में प्रकाशित हुई थी। उनके युवा सहयोगी तथा प्रशंसकों में एक एग्नेस स्मैडले भी थी, जिन्हें भारतीय क्रान्तिकारियों में गहरी रुचि हो गई थी और भारत के स्वाधीनता आन्दोलन के बारे में वह बहुत उत्सुक थीं। बाद में उन्हें वीरेन्द्र चट्टोपाध्याय से बहुत स्नेह हो गया था (श्रीमती सरोजिनी नायडु के भाई, जो बर्लिन में रहते थे) जो पहले विश्व-युद्ध में जर्मनी के सहयोगी और प्रमुख भारतीय क्रान्तिकारी थे। एग्नेस स्मैडले ने बाद में चीन की क्रांति पर कई पुस्तकें लिखी तथा एक आत्मकथा रूपी उपन्यास 'डाटर आफ अर्थ' लिखा जिसमें लाजपत राय, रणजीत सिंह के नाम से नायक थे। उनके जिन्दादिली के स्वभाव के कारण, लालाजी स्नेह में उन्हें पक्षी कहा करते थे। जब उन्होंने भारतीय समाचार पत्रों के लिए लिखना आरम्भ किया, वह प्रायः अपने लेखों के नीचे 'ए० (एलिस) बर्ड' लिखा करती थी।

उनके अन्तर में बैठे चिरस्थायी छात्र ने उन्हें इस ओर प्रवृत्त किया कि वह अपने निर्वासन का अच्छा प्रयोग करें। न्यूयार्क में उनकी आदत थी कि वह अपना काफी समय दो पुस्तकालयों में बिताते थे—न्यूयार्क पुस्तकालय तथा कोलम्बिया पुस्तकालय। ये दोनों पुस्तकालय उन्हें विशेष सुविधाएं प्रदान करते थे और वह अक्सर उन्हें पुस्तकों के बारे में सुझाव दिया करते थे कि ऐसी नई पुस्तकें मंगवाएं, जो विशेषकर भारतीय इतिहास तथा राजनीति के बारे में तथा भारतीय रुचि

के बारे में हो। लाजपत राय का मुहरबंद लिफाफा न्यूयार्क पब्लिक लाइब्रेरी को सौंपते समय निस्सदेह डी० डब्ल्यू० ह्यूवाश के मन में वे संबंध थे, जो उनके मित्र ने न्यूयार्क में ठहरने के दौरान इस संस्था के साथ बना लिए थे।

अमरीका में उनके अनेक हमवतनों का हम पहले ही उल्लेख कर चुके हैं, विशेष कर भारतीय क्रांतिकारियों वाले अध्याय में।

उनके निकट सहयोगियों में निस्सदेह एन०एस० हार्डिकर थे, जिनके संस्मरणों के आधार पर हमने लाजपत राय के अमरीका के दिनों का इतना विस्तृत वर्णन किया है। एक युवा सहयोगी थे डी०एस०वी० राव, जो लाजपत राय के भारत लौटने के कुछ मास बाद ही भारत आ गये और उन्होंने अपने आपको उनकी सेवा के लिए समर्पित कर दिया। उस होनहार युवक की उस समय मृत्यु हो गई, जब लाजपत राय जेल में थे।

अमरीका में उस समय रहने वाले बहुत से भारतीय बुद्धिजीवी जो बुद्धिजीवी-व्यवसायों तथा उच्च अध्ययन में लगे हुए थे, स्वाभाविक ही उनके पास आते थे या तो अपने देश के एक महान नेता के तौर पर प्रशंसक के रूप में या उनसे सलाह या मार्गदर्शन पाने के लिए। डॉक्टर तारकनाथ दास, जो राजनीति विज्ञान के अध्यापक थे और जिन्होंने भारतीय स्वाधीनता के अन्तर्राष्ट्रीय महत्व पर जोर देते हुए बहुत कुछ लिखा, लालाजी के साथ बहुत निकट सम्पर्क में रहे। जब लाहौर में लालाजी ने साप्ताहिक पत्रिका 'द पीपुल' आरंभ की, तो डाक्टर तारकनाथ दास के लेख उसमें नियमित रूप से प्रकाशित होते रहते थे। उनकी पत्नी अमरीकी थी और उन्होंने बाद में अमरीकी नागरिकता ले ली, परन्तु इसके कारण भारत की आजादी के बारे में उनका उत्साह कम न हुआ।

लालाजी ने यह बात बहुत गहराई से महसूस की कि भारत विज्ञान तथा टैक्नालाजी के क्षेत्र में बुरी तरह पिछड़ता जा रहा है और उन्हें इस बात से विशेष संतोष हुआ, जब उन्होंने देखा कि उनके कई हमवतनों ने इन क्षेत्रों में काफी योग्यता का परिचय दिया। इस सूची में हम डाक्टर कोकटनूर, एन० बिस्सी और चीनी के टैक्नालाजिस्ट सारंगधर दास का उल्लेख कर सकते हैं, जिनकी जर्मन पत्नी फ्रेडा तीसरे दशक के उत्तरार्ध में मुख्य तौर पर लालाजी के समर्थन के सहारे ही भारत आई थी। वह एक चित्रकार थी और लालाजी ने उन्हें कई चित्र बनाने का काम सौंप दिया, परन्तु उनका मन भारत में न टिक पाया और वह शीघ्र ही यूरोप लौट गई। वहां जाकर उन्होंने अपनी कहानी एक पुस्तक के रूप में लिखी, जिसका

शीर्षक था 'मैरिड टू इंडिया'। आर० के० प्रेमचा ने, जिन्होंने कलकत्ता मे अपना व्यापार स्थापित कर लिया था, लालाजी के लौटने पर उनके साथ पत्र सपर्क रखा। एक और विशिष्ट नाम, जिसका उल्लेख हमे अवश्य करना चाहिए, वह है डा० आनन्द के० कुमारस्वामी, जो भारतीय कला के विशेषज्ञ थे। वह केवल कला आलोचक ही नही थे, उन्होने भारतीय कला के अपने ज्ञान को भारतीय इतिहास के पुन निर्माण और सही भावना के साथ अन्तरावलोकन के लिए इस्तेमाल किया। इस कार्य मे उन्होने सिस्टर निवेदिता का सहयोग लिया, जिनके लिए लालाजी के मन मे सदा ही प्रशसा थी।

इस प्रकार नाम गिनाते जाने मे कोई तुक नही। इन नामो से तो यह जानकारी अवश्य मिलती है कि लालाजी का सम्पर्क कैसे लोगो से था और वह किस प्रकार के सम्पर्कों की कदर करते थे। प्रत्येक व्यक्ति जिसकी भारत की स्वाधीनता मे रुचि थी, उनके पास आता था और वे सभी लोग, जो उनके व्यक्तित्व से आकर्षित होते थे या उनकी स्पष्टवादिता से और कभी कभार घबरा देने वाली सरलता से या उनके स्वाभाविक प्रजातान्त्रिक ढग से, जिससे वह बडे-छोटे सभी लोगो से पेश आते थे और जिनसे वर्ग तथा जाति के सभी भेद दूर हो जाते थे और सारे ससार को सगा बना लेते थे या उन उच्च आदर्शों के लिए जो बलिदान से भरपूर उनके जीवन की कहानी से। ऐसे सभी लोग अवश्य ही उस लक्ष्य के लिए उनके मित्र बन जाते थे, जिनकी खातिर वह सघर्ष कर रहे थे। वह उस प्रजातत्र की प्रतिमूर्ति थे, जिसे राबर्ट बर्न्स ने अपने एक गीत मे गौरव दिया था और उनके प्रचारक थे वाल्ट ह्विटमैन। वे लोग उनकी उपेक्षा नही कर सकते थे, जिन्होने वाल्ट ह्विटमैन को ऊपर उठाया था और अभी भी उठा रहे थे, उनके नाम को श्रद्धाजलि अर्पित करने के लिए, चाहे उनके तौर-तरीका मे कई आन्तरिक विरोध थे। इस प्रकार वे लोग उनकी ओर आकर्षित होते थे, जिनकी भावनाए उनके समान होती थी। उन्होंने उच्च सरकारी या वित्तीय क्षेत्रो मे सपर्क पैदा नही किए परन्तु उन लोगो के साथ सम्पर्क पैदा किए, जिन्हें प्रगतिशील नेताओ के रूप मे मान्यता दी जा सकती थी और जो स्थापित व्यवस्था के साथ नही, बल्कि अधिकतर असहमता के साथ थे।

एक प्रगतिशील शिक्षा सस्था (वयस्को के लिए) विशेषकर जिसने उन्हें आकर्षित तथा प्रभावित किया परन्तु जिसके बारे मे उन्होने अमरीका के बारे म अपनी पुस्तक म उल्लेख नहीं किया, शायद उन्हें इस सस्था के बारे मे जानकारी पुस्तक

प्रकाशित होने के बाद मिली थी वह थी 'यूयार्क' की रैंड स्कूल आफ सोशल साइंसेज। अपनी यात्राओं के आरंभ में उन्होंने छात्र तथा अध्यापक की जो दोहरी भूमिका अपनाई थी वह अमरीका में भी जारी रही। रैंड स्कूल में उन्होंने इतिहास और राजनीति के बारे में अनेक भाषण सुने और अनेक बार भाषण दिए। उदाहरण के तौर पर उन्होंने 'एशिया इन वर्ल्ड पालिटिक्स' विषय पर एक शृंखला में छह भाषण दिए।

इसी प्रकार की एक भाषण माला उन्होंने एक अन्य प्रगतिशील संस्था के तत्वावधान में सम्पन्न की—वह थी अमरीकी महिला संघ।

अमरीका में प्रवास के दौरान उन्होंने एक भाषा संस्था में नियमित छात्र के तौर पर अपना नाम दर्ज करवा लिया, ताकि प्रारंभिक स्पेनिश भाषा सीख सकें। यह अमरीका में रहने वाले के एक विशाल समुदाय की भाषा है। परन्तु उन्होंने कोई विशेष प्रगति न की और अत एव उन्हें यूरोपियन भाषा के तौर पर अंग्रेजी का ही ज्ञान था।

भारतीयों के समान आयरलैंड निवासी भी ब्रिटेन से स्वाधीन होने के लिए संघर्ष कर रहे थे। उनके आंदोलन को अमरीका में सहज ही सहानुभूति मिली और काफी ठोस समर्थन भी मिला, क्योंकि कई पीढ़ियों से काफी आयरलैंड निवासी सागर पार करके अमरीका आ बसे थे और वहां की नागरिकता प्राप्त कर ली थी। ब्रिटिश साम्राज्यवाद का उन्हीं के समान शिकार होने के कारण आयरिश लोगों को भारतीय उद्देश्य के साथ सहानुभूति थी। इसी बीच ईमोन डी वेलेरा जेल से भागकर सागर पार कर गये। लाजपत राय की इस महान आयरिश नेता के साथ भेंट एक महत्वपूर्ण घटना थी और जिस प्रकार एन० एस० हार्डिकर अपने संस्मरण में बताते हैं, दोनों नेताओं ने अपने अपने देश को आजादी दिलाने के उपायों के बारे में विचार-विमर्श किया।

की ओर से लेखों के लिए निमंत्रण आए, यह 'यंग इंडिया' के कारण थे, और यह कोई छोटी उपलब्धि नहीं थी।

ब्रिटेन तथा भारत की सरकारों ने इस पुस्तक पर पाबन्दी लगाने में कोई समय न गंवाया। परन्तु अन्तिम निर्णय उनका नहीं था—विलायत इंग्लैंड में। वहां, कमांडर जे० सी० वैजवुड के मार्गदर्शन में इंडिया होम रूल लीग की मुद्रण-अनुमति से चुपचाप एक अंग्रेजी संस्करण प्रकाशित कर लिया गया और उसकी प्रतियां संसद के सभी सदस्यों में बांट दी गई। स्वयं वैजवुड ने अंग्रेजी संस्करण का प्राक्कथन लिखा, हाउस आफ कामंस में पुस्तक की छपी प्रति अपने हाथ से लहराते हुए उन्होंने पुलिस को चुनौती दी कि वह जो अधिक से-अधिक कर सकती है, कर ले। इससे स्काटलैंड यार्ड व्यस्त हो गया और उसने बाकी सभी प्रतियां कब्जे में ले लीं।

उस समय वैजवुड लिबरल पार्टी के सदस्य थे और कुछ ही समय बाद वह लेबर पार्टी में शामिल हो गए। परन्तु फिर भी वे इतने [illegible] कट्टर समर्थक जाने जाते थे, जिनके विचार कुछ मामलों में अराजक थे और जो बहुत ही स्वतंत्र विचारों के समर्थक थे। उन्होंने हाल ही में मेसोपोटामिया आयोग का अपना काम समाप्त किया था, उस काम ने उनके मन में गहरी रुचि पैदा कर दी और उनकी [illegible] की स्थिति ने भारत में उसकी प्रगति में रुचि पैदा कर दी।

सुनाई थी। कई कारणो से लेखक ने अपना नाम गुप्त रखा और यह पुस्तक प्रकाशित होने तक वह इस निर्णय पर कायम रहे। प्रकाशक को ख्याल आया कि भारत जैसे सुदूर विषय पर लिखी गई पुस्तक की, जिसके लेखक को उनके व्यक्तिगत मित्रो के अलावा बहुत कम लोग जानते थे, बिक्री करना कठिन बात होगी। श्री ह्यूबाख ने इसलिए एक महत्वपूर्ण व्यक्ति का इस पुस्तक से सबध पैदा करने के बारे मे सोचा। यह प्रमुख व्यक्ति इसकी भूमिका के लेखक की सामान्य भूमिका म था। श्री ह्यूबाख ने प्रोफेसर ए० यू० पोप को लिखा (जो लाजपत राय के घनिष्ठ मित्र थे, और जिन्हे आदोलन मे सहानुभूतिपूर्ण रुचि थी और वह एक जाने माने लेखक थे जिन्होने इस्लामी कला के बारे मे कई कीमती पुस्तकें लिखी थी, जो बहुत अधिकृत मानी जाती थी) और सुझाव दिया कि विंस्टन चर्चिल से भूमिका लिखने के लिए कहा जाए। प्रोफेसर पोप इस सुझाव से सहमत हो गये और उन्होने इसके अनुसार चर्चिल को पत्र लिख दिया, परन्तु चर्चिल ने यह प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया और कहा कि "वह भारत के बारे मे पर्याप्त जानकारी नही रखते।" पुस्तक आखिरकार प्रकाशित हो गई जिस पर लेखक का अपना नाम था और इसकी भूमिका भारत के अमरीकी मित्रो मे सर्वाधिक सच्चे तथा जोशीले मित्र आदरणीय डा० जे० टी० सदरलैंड ने लिखी। यह पुस्तक "मेरे परम प्रिय मित्र, पजाब के श्री दवारका दास, एम० ए० को समर्पित है, जो अपने प्रात मे (अक्तूबर 1912 म) सार्वजनिक जीवन का पतन हो जाने पर दिल टूट जाने से स्वर्गवासी हो गए। यह पुस्तक सार्वजनिक जीवन के प्रति अटल रवैये, उनके ऊचे सिद्धातो तथा उनके शानदार प्रचार के प्रति एक तुच्छ सी श्रद्धाजलि है।'

लेखक के परिचय की तिथि नवम्बे, पेन्सिल्वेनिया, मार्च 1916 की है। अगस्त 1916 तक पुस्तक प्रकाशित हो चुकी थी। उसे समाचार पत्रो ने उचित स्थान दिया। अन्य लोगो के अलावा श्री एच० डब्ल्यू० नेविन्सन ने पूरी लम्बाई की जोशीली समीक्षा लिखी जो उनके अमरीकी साप्ताहिक न्यू रिपब्लिक के लिए थी। छ मास से भी कम अवधि म पुस्तक के दूसरे सस्करण की माग हो गई और यह अप्रैल 1917 मे प्रकाशित हुआ, इसकी भूमिका नई थी। आरम्भ म अमरीकी प्रतिक्रिया बडी उत्साहजनक रही, यद्यपि पुस्तक को न भारत भेजा जा सका, न ब्रिटेन। लेखक को परिचित बनाने मे भारत के उद्देश्य को सहायता मिली। कई सामायटियो तथा विश्वविद्यालयो की ओर से भाषणो के लिए और समाचार-पत्रो तथा पत्रिकाओ

43. 'यंग इंडिया'

लाजपत राय द्वारा अमरीका में लिखी गई अनेक पुस्तकों में से 'यंग इंडिया' सबसे अधिक महत्वपूर्ण थी। पुस्तक के मुख पृष्ठ पर, पुस्तक के नाम के नीचे लिखा 'राष्ट्रीय आन्दोलन की आंतरिक व्याख्या तथा इतिहास'—इस पुस्तक के विषय-वस्तु का सूचक है। भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन की एक व्याख्या (जिस काल के बारे में यह है) के तौर पर यह इसके प्रकाशन से चौथाई शताब्दी बाद तक जारी रही और इस विषय पर अन्य व्यापक साहित्यिक रचनाओं में इसका स्थान श्रेष्ठतम रहा। लेखक का इस आन्दोलन का आन्तरिक ज्ञान इसके विभिन्न चरणों तथा क्षेत्रों में, कांग्रेस के अन्दर तथा इसके बाहर और दलों के प्रति निष्पक्ष रवैया और उनके साथ गहरा सोच विचार, वस्तुनिष्ठ जांच, जिसके अनुसार उन्होंने भारतीय समस्या का अध्ययन किया, इस सबके कारण वह इस कार्य के लिए सर्वाधिक उपयुक्त थे। संविधानवाद के प्रति कट्टर दृढ़ता, अहिंसक सत्याग्रह, आतंकवादियों के बम तथा रिवाल्वर, सशस्त्र विद्रोह के प्रयत्न, इन सबकी अलग-अलग दृष्टिकोणों से व्याख्या और विश्लेषण—यह सब इतने उत्कृष्ट ढंग से किया गया है कि यह अद्वितीय बन गई है। कई प्रकार से 'यंग इंडिया' लाजपत राय द्वारा रचित सर्वोत्तम पुस्तक है। इस पुस्तक का नाम ही उनके विचार के सशक्त पहलू को व्यक्त करता है, जहां 'यंग इंडिया' बार बार व्यक्त होने वाला अभिप्राय है। कुछ समय पश्चात् उन्होंने एक पत्रिका का प्रकाशन आरंभ किया, जिसका नाम 'यंग इंडिया'* रखा गया और बाद में भारत लौटने पर उनके भाषणों तथा समाचार पत्रों में प्रकाशित लेखों के संग्रह का नाम 'द काल टू यंग इंडिया' रखा गया।

इस पुस्तक का इतिहास वर्णन योग्य है। 'यंग इंडिया' की कल्पना तथा रचना लालाजी के युद्ध काल के निर्वासन के पहले भाग में मुकम्मल हुई। यद्यपि पाण्डुलिपि लालाजी के कैलीफोर्निया के दिनों में पूर्ण हुई, इसके कुछ भाग जापान में लिखे गये थे।

बी०डब्ल्यू० ह्यूबाश ने जो प्रकाशक थे यह कहानी संक्षेप रूप में 30 नवम्बर 1928 को सिविक क्लब, न्यूयार्क में लाजपत राय के निधन पर शोक सभा में

*यह महात्मा गांधी द्वारा इसी नाम की पत्रिका आरम्भ करने से कुछ समय पूर्व की बात है।

सुनाई थी। कई कारणों से लेखक ने अपना नाम गुप्त रखा और यह पुस्तक प्रकाशित होने तक वह इस निर्णय पर कायम रहे। प्रकाशक का ख्याल आया कि भारत जैसे सुदूर विषय पर लिखी गई पुस्तक की, जिसके लेखक को उनके व्यक्तिगत मित्रों के अलावा बहुत कम लोग जानते थे, बिक्री करना कठिन बात होगी। श्री ह्यूबाख ने इसलिए एक महत्वपूर्ण व्यक्ति का इस पुस्तक से सबध पैदा करने के बारे में सोचा। यह प्रमुख व्यक्ति इसकी भूमिका के लेखक की सामान्य भूमिका में था। श्री ह्यूबाख ने प्रोफेसर ए० यू० पोप को लिखा (जो लाजपत राय के घनिष्ठ मित्र थे, और जिन्हें आन्दोलन में सहानुभूतिपूर्ण रुचि थी और वह एक जाने माने लेखक थे जिन्होंने इस्लामी कला के बारे में कई कीमती पुस्तकें लिखी थीं, जो बहुत अधिकृत मानी जाती थीं) और सुझाव दिया कि विंस्टन चर्चिल से भूमिका लिखने के लिए कहा जाए। प्रोफेसर पोप इस सुझाव से सहमत हो गये और उन्होंने इसके अनुसार चर्चिल को पत्र लिख दिया, परन्तु चर्चिल ने यह प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया और कहा कि "वह भारत के बारे में पर्याप्त जानकारी नहीं रखते।" पुस्तक आखिरकार प्रकाशित हो गई जिस पर लेखक का अपना नाम था और इसकी भूमिका भारत के अमरीकी मित्रों में सर्वाधिक सच्चे तथा जोशील मित्र आदरणीय डा० जे० टी० सडरलैंड ने लिखी। यह पुस्तक 'मेरे परम प्रिय मित्र, पंजाब के श्री द्वारका दास, एम० ए० को समर्पित है, जो अपने प्रांत में (अक्तूबर 1912 में) सार्वजनिक जीवन का पतन हो जाने पर दिल टूट जाने से स्वर्गवासी हो गए। यह पुस्तक सार्वजनिक जीवन के प्रति अटल रवैये, उनके ऊंचे सिद्धांतों तथा उनके शानदार प्रचार के प्रति एक तुच्छ सी श्रद्धांजलि है।"

लेखक के परिचय की तिथि बर्कले, केलिफोर्निया, मार्च 1916 की है। अगस्त 1916 तक पुस्तक प्रकाशित हो चुकी थी। उसे समाचार पत्रों ने उचित स्थान दिया। अन्य लोगों के अलावा श्री एच० डब्ल्यू० नेविनसन ने पूरी लम्बाई की ओजस्वी समीक्षा लिखी, जो उनके अमरीकी साप्ताहिक 'न्यू रिपब्लिक' के लिए थी। छः मास से भी कम अवधि में पुस्तक के दूसरे संस्करण की मांग हो गई और यह अप्रैल 1917 में प्रकाशित हुआ। इसकी भूमिका नई थी। आरम्भ में अमरीकी प्रतिक्रिया बड़ी उत्साहजनक रही यद्यपि पुस्तक को न भारत भेजा जा सका, न ब्रिटेन। लेखक को परिचित बनाने में भारत के उद्देश्य को सहायता मिली। कई सोसायटियों तथा विश्वविद्यालयों की ओर से भाषणों के लिए और समाचार पत्रों तथा पत्रिकाओं

1927 के अत के करीब इस पुस्तक पर से प्रतिबध उठा लिया गया और लोक सेवा सघ (सर्वेंटस आफ द पीपुल सासायटी) ने इसे पुन प्रकाशित किया, यद्यपि भारतीय सस्करण के लिए प्राक्कथन की आवश्यकता नही थी, फिर भी गैरकानूनी अग्रेजी सस्करण का वेजवुड द्वारा लिखा गया प्राक्कथन, जा 'यग इडिया' के इतिहास का भाग बन चुका था, रहने दिया गया।

यह सस्करण शीघ्र ही समाप्त हो गया, परन्तु लालाजी ने सोचा कि नया सस्करण प्रकाशित करने से पूव इसमे सशोधन कर दिया जाए ताकि 1916 के बाद का काल भी इसमे शामिल हा सके। मुझे याद है उनके साथ अन्तिम रेल यात्रा मे उन्होंने मुझसे इस काम मे सहायता देने को कहा था, जिस प्रकार मने उनकी अन्तिम पुस्तक, 'अनहैप्पी इडिया' के सबध म किया था, हमने एक-दा अन्य प्रस्तावित पुस्तका के बारे मे भी विचार किया। इनमे पार्नेल का जीवन (उर्दू आत्मकथाओ की शृखला के लिए) के बारे म पुस्तक थी, जिसके बारे मे हम सहयोग कर सकते थे। यग इडिया' के बारे मे उन्होंने दूसरे भाग के बारे म विचार किया था, जिसमे बाद का काल शामिल हो, जो (उन्होंने सुझाव दिया) हम मिलकर लिखें ताकि पहला भाग जैसे का-तैसा ही रह। परन्तु इस योजना को कार्यान्वित करने के लिए वह जीवित न रह।

'यग इडिया' की एक साथी पुस्तक लगभग एक वर्ष के अन्दर ही तैयार हो गई। इसमे भारत पर ब्रिटिश शासन के प्रभावा का उल्लेख किया गया था। इसके प्रथम पन्ने पर जो घोषणा दी गई थी, वह थी 'ब्रिटिश भारत का आर्थिक इतिहास'। परन्तु जब यह पुस्तक प्रकाशित होकर आई, तो इसका आकर्षक शीर्षक था 'भारत पर ब्रिटेन का ऋण' (इग्लडस डैट टू इडिया), इस पुस्तक की अतर्निहित धारणा को आकडो तथा दस्तावेजा से पूरी तरह पुष्टि की गई थी। दरअसल, इस पुस्तक मे एक विशेष बात यह थी कि इसमे लेखक ने विशेषतौर पर ब्रिटिश लोगो के कथन ही उद्धृत किए थे। जैसा कि उन्होंने परिचय मे लिखा था। रोजमर्रा के जीवन म केवल उसी व्यक्ति को कष्ट का पता हो सकता है जिसे यह कष्ट भुगतना पडता हो, परन्तु राजनीति म सामान्य ज्ञान का यह सिद्धान्त उलट हा गया दिखाई पडता है।

की ओर से लेखों के लिए निमंत्रण आए, यह 'यंग इंडिया' के कारण थे, और यह कोई छोटी उपलब्धि नहीं थी।

ब्रिटेन तथा भारत की सरकारों ने इस पुस्तक पर पाबंदी लगाने में कोई समय न गंवाया। परन्तु अन्तिम निर्णय उनका नहीं था—विशेषकर इंग्लैंड में। वहां, कमांडर जे० सी० वैजवुड के मार्गदर्शन में इंडिया होम रूल लीग की मुद्रण अनुमति से चुपचाप एक अंग्रेजी संस्करण प्रकाशित कर दिया गया और उसकी प्रतियां संसद के सभी सदस्यों में बांट दी गईं। स्वयं वैजवुड ने अंग्रेजी संस्करण का प्राक्कथन लिखा, हाउस आफ कामंस में पुस्तक की छपी प्रति अपने हाथ से लहराते हुए उन्होंने पुलिस को चुनौती दी कि वह जो अधिक से अधिक कर सकती है, कर ले। इसके पश्चात स्काटलैंड यार्ड व्यस्त हो गया और उसने बाकी सभी प्रतियां कब्जे में ले लीं।

उस समय वैजवुड लिबरल पार्टी के सदस्य थे और कुछ ही समय बाद वह लेबर पार्टी में शामिल हो गए। परन्तु फिर भी वे इकहरे ढंग के कड़े समर्थक जाने जाते थे, जिनके विचार कुछ मामलों में अतिवादी थे और वह बहुत ही स्वतंत्र विचारों के सांसद थे। उन्होंने हाल ही में मैसोपोटेमिया आयोग का अपना कार्य समाप्त किया था, उस काम ने उनके मन में गहरी रुचि पैदा कर दी और उनकी असहमति की टिप्पणी ने भारत में उनकी प्रगति में रुचि पैदा कर दी।

वैजवुड तथा लाजपत राय व्यक्तिगत रूप से एक दूसरे को नहीं जानते थे, परन्तु 'यंग इंडिया' की इस सद्भावना ने दोनों के बीच गहरी और घनिष्ठ मित्रता की नींव डाल दी। शीघ्र ही दोनों एक दूसरे को नियमित रूप से पत्र लिखने लगे, चाहे उनकी पहली मुलाकात तब तक न हुई, जब तक वैजवुड अमरीका की यात्रा पर न गये। लाजपत राय ने वैजवुड से आग्रह किया कि वह ब्रिटिश गृह मंत्रालय से पता करें कि 'यंग इंडिया' के किन विचार भागों पर उसे आपत्ति है, ताकि पुनर्विचार करके उनमें संशोधन कर दिया जाए या उन्हें काट दिया जाए। वैजवुड ने तुरंत ही यह सुझाव अस्वीकार कर दिया।

भारत में इस पुस्तक पर प्रतिबंध उस समय तक जारी रहा जब तक लाजपत राय स्वयं विधायक नहीं बन गए और इस स्थिति में नहीं हो गए कि गृह सदस्य तथा अन्य लोगों पर दबाव डालने की स्थिति में नहीं पहुंच गए।

1927 के अंत के करीब इस पुस्तक पर से प्रतिबंध उठा लिया गया और लोक सेवा संघ (सर्वेंटस आफ द पीपुल्स सोसायटी) ने इसे पुनः प्रकाशित किया, यद्यपि भारतीय संस्करण के लिए प्राक्कथन की आवश्यकता नहीं थी, फिर भी गैरकानूनी अंग्रेजी संस्करण का वेजवुड द्वारा लिखा गया प्राक्कथन, जो 'यंग इंडिया' के इतिहास का भाग बन चुका था, रहने दिया गया।

यह संस्करण शीघ्र ही समाप्त हो गया, परन्तु लालाजी ने सोचा कि नया संस्करण प्रकाशित करने से पूर्व इसमें संशोधन कर दिया जाए, ताकि 1916 के बाद का काल भी इसमें शामिल हो सके। मुझे याद है उनके साथ अन्तिम रेल यात्रा में उन्होंने मुझसे इस काम में सहायता देने को कहा था, जिस प्रकार मैंने उनकी अन्तिम पुस्तक, 'अनहैप्पी इंडिया' के संबंध में किया था, हमने एक-दो अन्य प्रस्तावित पुस्तकों के बारे में भी विचार किया। इनमें पार्नेल का जीवन (उर्दू आत्मकथाओं की शृंखला के लिए) के बारे में पुस्तक थी, जिसके बारे में हम सहयोग कर सकते थे। यंग इंडिया' के बारे में उन्होंने दूसरे भाग के बारे में विचार किया था, जिसमें बाद का काल शामिल हो, जो (उन्होंने सुझाव दिया) हम मिलकर लिखें ताकि पहला भाग जैसे-का-तैसा ही रहे। परन्तु इस योजना को कार्यान्वित करने के लिए वह जीवित न रहे।

'यंग इंडिया' की एक साथी पुस्तक लगभग एक वर्ष के अंदर ही तैयार हो गई। इसमें भारत पर ब्रिटिश शासन के प्रभावों का उल्लेख किया गया था। इसके प्रथम पन्ने पर जो घोषणा दी गई थी वह थी 'ब्रिटिश भारत का आर्थिक इतिहास'। परन्तु जब यह पुस्तक प्रकाशित होकर आई, तो इसका आकर्षक शीर्षक था 'भारत पर ब्रिटेन का ऋण' (इंग्लैंडस डैट टू इंडिया), इस पुस्तक की अंतर्निहित धारणा की आंकड़ों तथा दस्तावेजों से पूरी तरह पुष्टि की गई थी। दरअसल, इस पुस्तक में एक विशेष बात यह थी कि इसमें लेखक ने विशेषतौर पर ब्रिटिश लोगों के कथन ही उद्धृत किए थे। जैसा कि उन्होंने परिचय में लिखा था। रोजमर्रा के जीवन में केवल उसी व्यक्ति को कष्ट का पता हो सकता है जिसे यह कष्ट भुगतना पड़ता हो, परन्तु राजनीति में सामान्य ज्ञान का यह सिद्धान्त उलट हो गया दिखाई पड़ता है।

"सरकारों तथा शासकों को अक्सर समय उन्हीं के शब्द स्वीकार किए जाते हैं, शासित लोगों तथा प्रजा के नहीं। इसी लिए मैंने खुद अंग्रेजों द्वारा कही गई बातें ही चुनी हैं।"

पुस्तक के मौलिक ज्ञान का कोई दावा नहीं किया गया, फिर भी अंतर्निहित विचारों की दृष्टि से यह पुस्तक अपने मौलिक ज्ञान से इन्कार करने में ही मौलिक थी।

'पटरे के नीचे मेंढक का बच्चा है यह जानता
टूलवन का हर कदम है कहां पहुंचता
मेंढक पर घूमती हुई तितली
उसे सबक देती है सब्र का।'

इस प्रकार मुख-पृष्ठ पर यह दावा किया गया था। परन्तु उस प्रकार के पाठक जिन्हें मेंढक के पटरे के नीचे टर्राने से चिढ़ है या बहुत उपेक्षा के शीघ्र ही इस प्रभावशाली ढंग में आकर्षित हो गए थे, जिसे यत्रणा देने वाली घटनाओं का वर्णन करने के लिए इस्तेमाल किया गया था और यह बात मेंढक के मेंढकों की भाषा में नहीं स्वयं दबाव डालने वाला या उनके भाई बन्दों की भाषा में कही गई थी। बहुत ही औचित्य के साथ यह पुस्तक उन बहादुर, ईमानदार तथा नेकदिल अंग्रेज पुरुषों तथा महिलाओं के नाम लिखी गई थी, जिनके प्रमाणों पर यह सैद्धांतिक तौर पर आधारित थी। 'इंग्लैंड्स डैट टू इंडिया' में उन मूल पुस्तकों तथा अन्य प्रामाणिक पुस्तकों, पत्रिकाओं तथा अन्य महत्वपूर्ण रचना स्रोत से उदधरण एकत्र किए गए थे जो इधर उधर बिखरे पड़े थे। ये स्रोत आम व्यक्ति की पहुंच में नहीं थे। यह आर्थिक अनुसंधान की उस उच्च परम्परा के अनुसार थी जो दो प्रमुख भारतीय राजनीतिक नेताओं, दादा भाई नौरोजी और आर० सी० दत्त, ने स्थापित की थी और इसके साथ (तथा विलियम डिग्बी की रचना भी) ब्रिटिश शासन के अधीन भारत का प्रामाणिक आर्थिक इतिहास दिया गया है।

पुस्तक के आरम्भ में भारत में ब्रिटिश लोगों के आने से पूर्व वहां के आर्थिक इतिहास का संक्षेप में अनुदर्शन दिया गया है और उसके पश्चात यह दिखाया गया है कि विशाल ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना और ब्रिटेन की औद्योगिक क्रांति

में भारत का क्या योगदान था, एक अध्याय बहुत ही जटिल विषय 'प्रशासन या निवास' के बारे में था और उसके पश्चात दो उद्योगों—कपड़ा तथा जहाज और जहाज-रानी—का, केवल भारत में तथा भारत के प्रति ब्रिटिश नीति की व्याख्या की गई है। उसके बाद के अध्याय कृषि तथा लोगों की आर्थिक दशा के बारे में हैं और एक अध्याय अकाल तथा उसके कारणों के संबंध में है। इनके सिंचाई और शिक्षा—ब्रिटिश शासन के बहु प्रचारित लाभ—इन सभी की बाद में चर्चा की गई है। पुस्तक के अंतिम पृष्ठों में एक अध्याय में कर तथा सरकारी खर्च की चर्चा की गई है तथा एक अन्य अध्याय में भारत की प्रगति के बारे में कुछ भ्रामक धारणाएं' विषय की चर्चा की गई है।

यह पुस्तक बी० डब्ल्यू० ह्यूबाश ने अमरीका में प्रकाशित की थी। समाचार-पत्रों ने इसकी बहुत प्रशंसा की। यह पुस्तक ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा कही गई बातों पर आधारित होने के कारण, अमरीका में युद्धकाल के दौरान ब्रिटिश प्रचार का मुंहतोड़ उत्तर सिद्ध हुई, जिस प्रचार में यह व्यक्त किया गया था कि भारत में ब्रिटिश शासन के कारण वहां बहुत ही प्रगति हुई है। इसके अतिरिक्त जो शोषण किया गया, उसे दानवीरता के रूप में व्यक्त किया गया था।

इस पुस्तक की तैयारी के लिए पुस्तकालय सुविधाओं की आवश्यकता थी, जो लाजपत राय को कैलीफोर्निया में नहीं मिल सकती थी। वह पहले ही न्यूयार्क चले गये थे और वहां कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय पुस्तकालय ने उन्हें आवश्यक सुविधाएं प्रदान कर दीं। विश्वविद्यालय के दो प्रोफेसरों ने उनकी पाण्डुलिपि का अध्ययन किया। ये प्रोफेसर थे ए० आर० मुसी और प्रसिद्ध अर्थशास्त्री ई० आर० ए० सलिगमन।

इस पुस्तक का विशेष सामयिक महत्व था, केवल अमरीका में ब्रिटिश प्रचार के कारण ही नहीं, बल्कि इसलिए भी कि अंग्रेज समर्थक समाचार-पत्रों में प्रस्ताव प्रकाशित किये जा रहे थे कि युद्ध के बाद भारत ब्रिटेन के विदेशी ऋण के एक भाग की अदायगी का भार अपने ऊपर ले ले। दूसरे शब्दों में वे चाहते थे कि भारत ब्रिटेन के युद्ध का खर्च दे।

लाजपत राय ने प्रस्तावना में कहा है, "भारत ने बहुत शानदार ढंग से ब्रिटेन का समर्थन किया और कुछ राष्ट्रवादी नेताओं को तो ग्रेट ब्रिटेन के शत्रुओं के

आक्रमणों का मुकाबला करने में काफी कठिनाई का सामना करना पड़ा। हमें इस बात की आशा करनी चाहिए कि वे झूठी आशाओं के अधीन कष्ट नहीं झेल रहे और ग्रेट ब्रिटेन इस प्रस्ताव के प्रति सच्चा है कि वह अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार में औचित्य और न्याय के पक्ष में है।"

प्रस्तावना में न सिर्फ ऐसी युद्धोत्तर आशाओं का उल्लेख था, परन्तु उसमें गंभीर संदेह भी व्यक्त किए गए थे।

"ग्रेट ब्रिटेन ने युद्ध में बहुत हानि उठाई है। जैसे ही युद्ध समाप्त होगा इस हानि को पूरा करने के लिए शोर मचेगा। साम्राज्य के किसी अन्य भाग से इस सम्बन्ध में इतनी आशा नहीं है, जितनी भारत से। उसकी अपनी सरकार में कोई आवाज नहीं और वह इतना बेसहारा है कि अपनी आवाज भी नहीं सुना सकता। न वह रोक सकता है और न ही जवाब दे सकता है। इस बात से आसान और क्या होगा कि उसे युद्ध का खर्च सहन करने को कहा जाए?"

यह संदेह आने वाले वर्षों में भारतीय मुद्रा की विनिमय दर में किए गए फेरबदल को देखते हुए आश्चर्यजनक नहीं।

भारत में इस पुस्तक पर कई वर्ष प्रतिबंध रहा। अन्त में जब यह प्रतिबंध उठाया गया, तब तक करीब दस वर्ष का समय बीत चुका था। लालाजी का विचार था कि इसे फिर से जारी करने से पूर्व वह पुस्तक में संशोधन करके इसे अद्यतन बना देंगे या किसी अन्य व्यक्ति से ऐसा करने को कहेंगे पर यह विचार कार्यान्वित न हो सका।

राजनीतिक स्थिति के बारे में लाजपत राय की अगली पुस्तक 1919 में प्रकाशित हुई। इसका नाम था 'द पोलिटिकल फ्यूचर आफ इंडिया'। भारत में संविधानिक सुधारों के बारे में माटेंग्यू चेम्सफोर्ड रिपोर्ट कुछ महीने पूर्व ही (जुलाई 1918) प्रकाशित हुई थी और गरमागरम बहस का विषय थी। 'द पालिटिकल फ्यूचर आफ इंडिया' (यह भी बी० डब्ल्यू० ह्यूबाश द्वारा प्रकाशित हुई थी) मुख्य तौर पर इस रिपोर्ट की ही आलोचना थी।

पुस्तक में दिए गए विचार और सर्वेक्षण का परिणाम प्रभावशाली ढंग से अन्तिम पैरे में दिया गया है

"गणवादी चीन उत्तर-पूर्व मे, सांविधानिक पर्शिया (ईरान) उत्तर-पश्चिम मे और बालशेविक रूस सुदूर उत्तर मे, इन हालात को देखते हुए भारत मे निरकुश शासन अत्यधिक मूर्खता की बात है। देवता भी ऐसा नही कर सकते। ऐसा करना तब भी सभव नही, यदि विधान सभा अपनी सारी बैठकें दमनकारी कानून बनाने और पास करने मे लगा दे। विश्व शांति, अन्तर्राष्ट्रीय मेलजोल तथा सद्भावना, ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल की नेकनामी, साम्राज्य की सुरक्षा, यह सभी माग करते हैं कि भारत मे शान्तिपूर्ण प्रजातत्र लागू किया जाए तथा उसका विकास किया जाए।"

यह पुस्तक अमरीकी पाठको तथा ब्रिटिश राजनयिको के लिए लिखी गई थी। अमरीका प्रजातत्र और आत्म निर्णय के मित्र देशो के लक्ष्य के रूप मे अभिभूत कर दिया गया था। यदि इस बात को मन मे रखा जाए तो यह पुस्तक भारत के मामले की आदर्श प्रस्तुति मालूम पड़ेगी। प्राय प्रत्येक अध्याय का साराश डेविड लायड जार्ज के भाषणो से लिया गया। इन भाषणो से तो लेखक को भारतीय क्रातिकारी पार्टी के अध्याय के लिए भी उपयुक्त उदधरण मिले, जो ब्रिटिश प्रधानमत्री द्वारा ग्लासगो मे 'युदध के कारण तथा उद्‌देश्य' विषय पर दिया गया था।

क्राति वह बुखार है, जो किसी देश की सरकार द्वारा स्वास्थ्य के नियमो की लगातार और हानिकर ढग से उपेक्षा करने से आता है।"

इससे रौलेट सिफारिशो का सारा ढाचा तहस नहस किया जा सकता था। ऐसा होना आवश्यक भी था, क्योकि यह पजाब मे मार्शल ला के तुरत बाद प्रकाशित हुई थी और मार्शल-ला रोलट एक्ट के कारण हुए आदोलन की वजह से लागू किया गया था।

लाजपत राय ने, भारत के अन्य राष्ट्रवादी नेताओ के समान, उस स्थिति मे सुधारो के प्रस्तावो के प्रति बहुत आशावादी रवैया अपनाया था। इसे उदारवादी कहा जा सकता है। यह वह प्रभाव है, जो 'द पोलिटिकल फ्यूचर' मे मिलता है। परन्तु बाद मे जब श्री माटेग्यू द्वारा बनाए गए खाके को भरा गया, हर कदम पर प्रतिक्रियावाद की ध्वनिया सुनाई पडी और सारी योजना को इतना बदल दिया गया कि उसकी पहचान कठिन हो गई। तब 'द पोलिटिकल फ्यूचर' मे जो अपनी उदघोषणाओ मे सुनिश्चित नही था, इसके प्रति शकाए व्यक्त की गई। प्रस्तावना का अत इस प्रकार होता है

23—136 M of I&B/ND/85

बिल के साथ निराशाओं का एक सिलसिला आरम्भ हुआ, सिफारिशों से आगे की कार्रवाई, क्या वे कुछ कम कर देंगे ? श्री माटेग्यू का बिल, जिसे हाउस आफ कामन्स में जून के आरम्भ में पेश करने का प्रस्ताव है, इस प्रश्न का उत्तर देगा।

बिल ने निराशाओं का एक सिलसिला आरम्भ कर दिया, जिसमें आगे की कारवाई संयुक्त समिति द्वारा करने की व्यवस्था थी और बाद में उन लोगों द्वारा जिन्होंने कानून के अधीन विभिन्न नियम तथा सूचियां तैयार की थी।

इस अध्याय में जिन तीन पुस्तकों की चर्चा की गई है, उनके अतिरिक्त लाजपत राय ने अपने अमरीकी पाठकों का कई पुस्तिकाएं भी दी, जिनमें से तीन का यहां उल्लेख करना आवश्यक है। उनमें से एक थी ब्रिटेन के प्रधानमंत्री डेविड लायड जार्ज के नाम खुला पत्र (ऐन ओपन लेटर टू डेविड लायड जार्ज) और दूसरी आदरणीय एडविन सेमुअल माटेग्यू के नाम, जब उन्हें सेक्रेटरी आफ स्टेट फार इंडिया नियुक्त किया गया।

इन सार्वजनिक पत्रों में से पहले के लिए तुरंत उत्तेजना उन समाचारों से उत्पन्न हुई, जिनमें कहा गया था कि भारत के शासकों ने जर्मनी के विरुद्ध अपने युद्ध के लिए भारत को डेढ़ सौ करोड़ रुपये का योगदान देने के लिए कहा है। इस प्रकार निर्दयतापूर्ण ढंग से भारत जैसे पराधीन देश का उन साम्राज्यवादी शासकों द्वारा शोषण हृदयविदारक था। भारत का खून "चूस लिया गया", यह बात स्वयं माटेग्यू ने कही थी। एन०एस० हार्डिकर का कहना है कि लालाजी को यह सब बहुत ही बुरा लगा था और उन्होंने लगातार सात घंटे बैठकर यह पत्र मुकम्मल किया।

इस पत्र को अमरीकी समाचार पत्रों में बहुत प्रचार मिला।

एन०एम० हार्डिकर ने दूसरा पत्र माटेग्यू को लिखे जाने की कहानी बतायी है।

भारत के अनेक राजनयिकों ने माटेग्यू का अपने मुक्तिदाता के रूप में उसी तरह स्वागत किया, जैसे 1906 में उन्होंने जान मोर्ले के गुण गाए थे, जिसके अधीन माटेग्यू ने इंडिया आफिस में पहला अनुभव प्राप्त किया था। यह प्रारम्भिक समूह स्तुति और इसका निराशामय अन्त---इनकी लाजपत राय ने इस खुले पत्र में चर्चा की है। भारत के भविष्य के बारे में प्रचारित कई विरोधी प्रस्तावों के बारे में टिप्पणियां हुई थी, विशेषकर इस्लिंगटन प्रस्तावों, कांग्रेस

लीग योजना और जी० के० गोखले के ज्ञापन के मसौदे के बारे में, जो उनकी मृत्यु के बाद प्रकाशित हुआ था। अन्त में इन सबकी समीक्षा करते हुए लाजपत राय ने लिखा है :

"गोखले की योजना का लेखा-जोखा करते समय यह बात याद रखनी चाहिए कि यह उस समय तैयार की गई, जब (क) वह गंभीर रूप से बीमार थे (ख) युद्ध के प्रारम्भिक दिनों में, जब 1915, 1916 और 1917 की घटनाएं नहीं घटी थीं। उस समय के बाद दुनिया बहुत आगे चली गई है, जिसकी गोखले ने कल्पना भी नहीं की थी। इस योजना पर उनकी अति सावधानी की छाया है, यह अधिक-से अधिक एक हिचकिचाहट भरा समझौता है, उनकी इच्छाओं का रूप नहीं। मैं गोखले का सम्मान करता हूं, परन्तु इन बातों को स्वीकार नहीं करता। मेरा विचार है कि उनसे अधिक गहरी देशभक्ति वाला, देश के प्रति इतने सच्चे प्रेम वाला और सम्मान की कोमल भावनाओं तथा आत्म सम्मान वाला कोई और व्यक्ति ब्रिटिश शासनकाल में पैदा नहीं हुआ। वह निष्काम भाव और भ्रष्टाचार से इतने ऊंचे थे कि उन पर संदेह भी नहीं हो सकता। परन्तु अपनी संभावनाओं की धारणा के बारे में वह कुछ भीरु तथा अत्यधिक सावधान थे। उन्हें यह डर था कि उन्हें स्वप्नद्रष्टा न कहा जाए। उन्हें इस आरोप से अधिक भय लगता था कि उन्हें मही कल्पनाजीवी न कहा जाए। इसलिए उनका मन उचित मांगें करते समय भी रुक जाता था। वह एक कमजोर वार्ताकार थे।"

ज्ञापन में वित्तीय स्वायत्तता के मामले में अधिक झिझक दिखाई गई थी और वित्तीय स्वायत्तता के बिना भारतीय समस्या का समाधान नहीं हो सकता था।

जिस पुस्तिका पर हमें अभी विचार करना है— रिफ्लेक्शन्स आन दी पोलिटिकल सिचुएशन इन इंडिया'—उसका इतिहास बड़ा रोचक है। तिथि के अनुसार यह पुस्तिका इस अध्याय में विचार की गई अन्य पुस्तकों से पहले की है। दरअसल यह मूल रूप में युद्ध के आरम्भिक महीनों में लिखी गई थी, जब लालाजी जापान में थे। बाद में जर्मनों ने इसे पा लिया और इसका सम्पादन करके इसे 'इंडियन नेशनलिस्ट कमेटी' (यूरोपियन सेंटर) द्वारा प्रकाशित किया और इसे 'वरलैग वान ओटो विगैंड, लिपजिग' के साथ लगाकर जारी किया। बड़े उपकार के साथ उन्होंने इसकी अपनी प्रस्तावना

लिखी और बडे ही रहस्यमय ढग से "अधिकार सुरक्षित" कर लिए। परिचय मे हमे बताया गया है कि 'रिफ्लैक्शस' की इस पुस्तक म (लेखक दवारा) "प्रारम्भिक तौर पर ब्रिटेन की जनता को इस विश्वास के साथ सबोधित किया गया, जिसे भारत की मिताचारी पार्टी न बडे ऊचे स्वर मे व्यक्त किया था कि अग्रेज लोग 'याय तथा औचित्य प्रिय' है और ब्रिटिश जनता, की आत्मा सुप्तावस्था मे ही है जो भारत के उन करोडो लोगा द्वारा जाग्रत की जा सकती है, जो ब्रिटिश सत्ता के अधीन कराह रहे हैं।"

लेखक के बारे मे हमे बताया गया है

"वह मिताचारियो और क्रातिकारिया के मध्य खडे हैं। अपने सारे जीवन मे उ हाने सावजनिक तौर पर मिताचारिया का व्यवहार अपनाया, यद्यपि उनका मन, दृष्टिकोण तथा आकाक्षाए क्रातिकारिया के साथ रही। वतमान पुस्तिका उनके राजनीतिक व्यवहार का विशेष उदाहरण है। ब्रिटिश राजनयिको को एक मलीपूण चेतावनी के रूप मे उ होने अपना ढग बदलने के लिए कहा, यह हकीकत है इससे भारत मे क्राति का खतरा छुपा हुआ है और ऐसा दिखाई देता है कि लाजपत राय का इसके प्रकाशन से यह उद्देश्य था कि वह एक मिताचारी नता के तौर पर ब्रिटेन को अन्तिम चेतावनी देने का अपना पवित्र कतव्य निभा दे।"

परिचय के लेखक ने यह बात स्पष्ट कर दी कि वह सावजनिक रवये मे लाजपत राय के साथ सहमत नही, परन्तु यह पुस्तिका अपने गुणो के आधार पर प्रकाशित की जा रही है क्योंकि यह "काफी उचित ढग तथा स्पष्टता से भारत की वतमान स्थिति की व्याख्या करती है। इसी कारण से हम यूरोपियन जनता का ध्यान इस ओर आकर्षित करते है।"

पुस्तिका मे उस समय भारत म ब्रिटिश शासन तथा पजाब मे ओ' डायर शासन के जोरदार दमनचक्र के बारे म लाजपत राय क अपने स्पष्टवादी ढग से कई तथ्य कहे गए हैं। कहा नही जा सकता 'यूरोपियन जनता' न इस पुस्तिका की ओर ध्यान दिया या नही, भारत सरकार न तुरत ही इस पर प्रतिबध लगा दिया और पजाब चीफ कोट से इसके लेखक का वकालत का लाइसेंस रद्द करने को कहा और उसके पश्चात सामान्य कारवाई के तौर पर उनकी सभी रचनाओ पर प्रतिबध लगा दिया। चीफ

कोट ने शायद इस ज्यादती से किसी अन्य वकील का लाइसेंस रद्द नही किया होगा, अर्थात उसे किसी अपराध के लिए सजा दिए बिना अथवा सुनवाई किए बिना।

हमारे सर्वेक्षण मे लालाजी की बहुसजक लेखनी दवारा रचित अनेक छोटी रचनाओ की चर्चा नही हुई। हम 'फाइट फार कट्री' और 'ए काल टू यग इडिया' का उल्लेख कर सकते हैं। ये दानो उनके अपने देश-वासियो को, अमरीका मे भारतीय छात्रो को, सबोधित थी और 'सल्फ डिटर्मनिशन फार इंडिया' अमरीका मे यूरोपियन लोगो का सबोधित थी। इन छोटी रचनाओ म से कुछ यद्यपि क्षणिक थी, फिर भी उनकी ऐसी रचनाओ ने राष्ट्रीय सीमाओ के अन्दर काफी प्रभावशाली काय किया। एन० एस० हार्डिकर ने एक पुस्तिका 'इडिया ए ग्रेवयाड' का विशेषतौर से उल्लेख किया है, जिसने बहुत ध्यान आकर्षित किया। "इसकी एक लाख से अधिक प्रतिया प्रकाशित की गई।" इसे विश्व के समाचार-पत्रो म भी बहुत प्रकाशित किया गया, इटैलियन, जमन, फ्रेंच, स्पेनिश, रूसी तथा फारसी भाषाओ म तथा भारतीय भाषाओ मे भी।

इस अध्याय मे अब तक केवल उन पुस्तको का उल्लेख हुआ है, जो लालाजी ने अमरीका मे निवास के दिनो मे अपने विदेशी पाठको, विशेषकर अमरीकी पाठको, के लिए लिखी थी।

'यग इडिया' और 'इग्लडस डेट टू इडिया' निश्चय ही इस देश के पाठको के लिए बहुत अधिक रुचि वाली पुस्तकें थी, परन्तु इस देश म उनके प्रवेश पर प्रतिबध था। इसलिए ये अमरीका मे निर्वासित राजदूत के काय का प्रमुख भाग बन गइ। परन्तु देशभक्त ने निर्वासन-काल मे अपने देश के लोगो की उपेक्षा नही की। इसलिए हम इस अध्याय को समाप्त करने से पहले कुछ अन्य पुस्तको का उल्लेख करेंगे, जिनमे से कुछ का तो पहले ही इस अध्याय मे नाम आ चुका है।

युदधकाल का सिलसिला लालाजी की रचना 'आय समाज' से आरम्भ हुआ, जिसकी सक्षेप रूप मे हम पहले चर्चा कर चुके हैं। यह विशेष या सामान्य तौर पर स्वदेशी पाठको के लिए नही थी, परन्तु निश्चय ही उन लोगो मे इसकी माग थी। उसके बाद 'प्राब्लम आफ नेशनल

एजुकेशन इन इंडिया' आई, जिसे इंग्लैंड में 'एलन एंड अनविन' ने प्रकाशित किया था। यद्यपि यह पुस्तक आधी शताब्दी पहले लिखी गई थी, फिर भी भारत सरकार के प्रकाशन विभाग ने इसे फिर से प्रकाशित किया। इसकी प्रस्तावना स्वर्गीय राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसैन ने लिखी थी, जो एक प्रमुख शिक्षाशास्त्री थे और जिन्हें लालाजी की टिप्पणियां तथा सुझाव बहुत ही उपयुक्त और प्रासंगिक लगे। इसके पश्चात केवल भारतीय पाठकों के लिए दो पुस्तकें हैं, एक जापान के बारे में और दूसरी अमरीका के बारे में। उनका इस विवरण में पहले ही उल्लेख किया जा चुका है। ये चार पुस्तकें और उर्दू में आत्मकथा रूप में वृतांत, जिसकी हम अभी चर्चा करेंगे, उन तीन पुस्तकों में शामिल की जानी हैं, (कुछ पुस्तिकाओं के अतिरिक्त) जिनका इस अध्याय में विशेष उल्लेख किया गया है। ये निर्वासन काल में लिखी उनकी पुस्तकों की सूची में शामिल की जानी हैं। समाचार-पत्रों के लिए उनकी रचनाओं पर तो एक पूरी पुस्तक लिखी जा सकती है। साहित्यिक रचना तो उनकी गतिविधियों का केवल एक भाग थी। फिर भी इस क्षेत्र में उनके काम से काफी पता लग जाता है कि इस काल में उन्होंने कितना कठिन परिश्रम किया। उन दिनों के उनके अनुयायी सचिव एन० एस० हार्डिकर के इस कथन में बहुत अतिशयोक्ति नहीं कि चाहे लीग का कार्यालय हो या कोई अन्य स्थान, उन्होंने लालाजी को पढ़ने या लिखने की सामग्री के बिना कभी नहीं देखा था।

लालाजी के जीवनी-लेखक के लिए उस काल की लालाजी की सबसे अधिक महत्वपूर्ण रचना और प्रकाशित पुस्तकों की शृंखला में कुछ पहले लिखी एक उर्दू पाण्डुलिपि थी, जो उन्होंने न्यूयार्क में (नवम्बर 1914 में) लिखी, जिसमें उन्होंने 1907 में निर्वासन के समय तक की अपनी आत्म-कथा लिखी। यह पाण्डुलिपि—लालाजी के अपने हाथ से लिखे एक सौ कागज—इंग्लैंड में वैस्टब्रुक परिवार के पास सुरक्षित रही। वह तीसरे दशक में यूरोप की यात्रा के समय यह पाण्डुलिपि अपने साथ ले आए परन्तु इसे उनकी मृत्यु के बाद ही बाहर निकाला गया और धारावाहिक रूप में उनके अपने पत्रों में प्रकाशित किया गया—उर्दू रूप दैनिक 'वन्दे मातरम्' में, अंग्रेजी रूप 'द पीपुल' में तथा हिंदी रूप पंजाब केसरी' में प्रकाशित हुआ।

लालाजी द्वारा भारतीय समाचार पत्रों को दिए गए लेखों से, अमरीका में छपी उनकी पुस्तक पर प्रतिबंध के कारण पैदा हुआ अभाव किसी हद तक कम हो गया। रामानन्द चटर्जी की मासिक पत्रिका 'द माडर्न रिव्यू' उस समय बहुत ही सम्मानित पत्रिका थी और लालाजी के विचार तथा शिक्षापूर्ण रचनाएं इस पत्रिका में अक्सर प्रकाशित होती रहती थीं। जापान तथा अमरीका के बारे में उनके अध्ययन पहली बार इसी पत्रिका में प्रकाशित हुए। अक्सर लालाजी भारतीय राजनीति के विषयों पर भी लिखते रहते थे, एक स्मरणीय विषय महात्मा गांधी के साथ राजनीति में अहिंसा के स्थान के बारे में उनका विवाद था, जिसने काफी दिलचस्पी पैदा की। इस विवाद में वाद विवाद का एक भाग अमूर्त सिद्धांत के बारे में था। जब उन्होंने 1919 में मार्शल लॉ के अधीन पंजाब की कठिनाइयों के बारे में सुना, तो उनके मन की वेदना कुछ और ही किस्म की थी। दूरी के कारण उनका दुख और अधिक तीव्र हो गया और इसकी अभिव्यक्ति प्रभावशाली ढंग से उनकी कलम ने की, जिसने उस देशभक्त का लहूलुहान हृदय उसके देशवासियों को दिखाया।

44. झांकियां

"मैं खाली बैठने को बुरा समझता हूं। मैंने अपना खाना स्वयं बनाया है, मैंने अपने कपड़े खुद धोए हैं। मैंने अपना कमरा साफ किया। कई बार शाम को भोजन के स्थान पर पांच सेंट की डबलरोटी खाई है। इसलिए नहीं कि मेरे पास पैसे नहीं थे। मेरे पास सार्वजनिक धन के हजारों रुपये हैं। परन्तु इसमें मैं अपने लिए एक पैसा भी खर्च नहीं करूंगा।"

—लाजपत राय

इस बात में राजदूतों वाली कोई शान शौकत नहीं थी। परन्तु निर्वासित देशभक्त के सादा, सरल जीवन का अपना गौरव था। जब उन्होंने देखा कि उनका प्रवास काफी लम्बा होगा, तो उन्होंने निर्णय कर लिया कि वह अधिक खर्च वाले होटलों से संबंध नहीं रखेंगे। यद्यपि बाद में अमरीकी समाचार पत्रों के लिए उनकी रचनाओं से आंशिक तौर पर उनका व्यक्तिगत खर्च पूरा होने लगा था उन्होंने यह पूर्वानुमान लगा लिया था कि उन्हें अनिश्चित काल के लिए अपनी बचत पर निर्भर करना पड़ेगा। कई बार उनका घरेलू खर्च बहुत कम होता था और यह बहुत सादा था। इस प्रकार वह और उनके साथी भारतीय देशभक्त, जो उनके पास एकत्र हो गए थे, रहते तथा कार्य करते रहे और उन्होंने रसोई का प्रबंध भी बिना नौकर के चलाया। डाक्टर हार्डिकर हमारे लिए न्यूयार्क में उन दिनों की बहुमूल्य झांकियां प्रस्तुत करते हैं।

एन० एस० हार्डिकर ने लालाजी के पूर्णकालिक सचिव की आवश्यकता पूरी करने के लिए डॉक्टरी की अपनी शिक्षा बीच में ही छोड़ दी। दरअसल वह कुछ और ही थे—गुरु से शिक्षा तथा निर्देश लेने वाले युवा अनुयायी, गुरु के कार्य सहायक, गुरु के साथ रहने तथा उनकी सेवा करने वाले पूर्णकालिक साथी।

लाजपत राय अपनी निजी सुविधाओं के लिए सार्वजनिक धन खर्च करने में पूरी ईमानदारी से गुरेज़ करते थे, उस समय भी जब वह अपनी पूरी शक्ति तथा समय देश हित में लगा रहे थे और अपनी आजीविका कमाने के लिए कोई कार्य नहीं करते थे। उन्हें जो धन मिलता था वह आमतौर पर

निजी तौर पर भेंट किया हुआ होता था, किसी संस्था के कोष के लिए नहीं होता था और वह धन किसी विशेष उद्देश्य के लिए निर्धारित नहीं होता था। फिर भी लाजपत राय इस सारे धन को अमानत समझते थे, जो पूरी कड़ाई से उसी उद्देश्य के लिए खर्च किया जाना था, जिसके लिए वह कार्यरत थे। इन वर्षों में उन्होंने बार-बार अपनी वसीयत लिखी और उसमें अपने पास अमानत के तौर पर पड़े इस धन का पूरा ब्यौरा दिया। वह एक या दो सार्वजनिक व्यक्तियों को (जैसे पंडित मालवीय) इन मामलों के बारे में अवगत रखते थे, ताकि यदि उनकी मृत्यु हो जाए तो अमानत के इस धन में कोई गड़बड़ी न हो। यह उनकी विशेषता थी कि भारत लौटने पर उन्होंने इस लेन-देन का पूरा हिसाब किताब महात्मा गांधी को भेज दिया। 9 जुलाई 1921 का उनका पत्र (महात्मा गांधी को), जिसमें उन्होंने वह पूर्ण ब्यौरा दिया था, उस संदर्भ के साथ शुरू होता है, जो उन्होंने कोई एक वर्ष पहले मौखिक रूप से दिया, पत्र इस प्रकार शुरू होता है

"पिछले वर्ष अगस्त में जब मैं बम्बई में था, मैंने आपको कुछ धन के बारे में बताया था, जो अमानत के तौर पर जापान और अमरीका में रहने वाले राष्ट्रवादियों ने मुझे सौंपा था और मैंने उसका क्या किया था।"
इस धन की कहानी बताने से पहले उन्होंने यह बात स्पष्ट कर दी कि "जब मैं विदेश में था मैंने अपने निजी खर्च के लिए अपना ही धन खर्च किया था। इसमें उन मदों का खर्च भी शामिल है, जो मैंने देश के हित के लिए खर्च किया।"

नवम्बर 1914 में जब वह न्यूयार्क पहुंचे (हमें उनके पत्रों से पता चलता है) उनके पास उनके अपने दस हजार रुपये थे। समय समय पर उनका बड़ा पुत्र पैसे भेजता रहा था। पत्र में उनका ब्यौरा भी दिया गया है और यह रकम 27 हजार रुपये बनती है। समाचार पत्रों के लिए दी गई रचनाओं तथा भाषणों से उन्हें (चार वर्ष की अवधि में) 12 हजार रुपये की आय हुई। लगभग तीन हजार रुपये उनकी पुस्तकों की रायल्टी से प्राप्त हुए। इस प्रकार "मेरे अपने धन का कुल जोड़ 52 हजार रुपये बनता है, जो मेरे खर्च के लिए, जिसमें मेरी यात्रा का खर्च भी शामिल है, पर्याप्त है। मैं बहुत सादगी से रहता था और अपने कपड़े (स्वदेशी) घर से मंगवाता था। मेरा व्यक्तिगत खर्च

कभी भी 100 डालर प्रतिमास से अधिक नही हुआ। कई बार तो यह इससे भी कम होता था। शेष धन मैंने देशहित के लिए खच किया।"

महात्मा गाधी को लिखे इस लम्बे पत्र के कुछ और *अश उद्धृत किए जाने* चाहिए—लाजपत राय के जीवन की झाकिया देने के लिए नही, बल्कि इसलिए कि वह अमानत के तौर पर उन्हें सौपे गए धन की किस प्रकार से व्यवस्था करते थे। विभिन्न साधनो से विभिन्न कार्यों के लिए प्राप्त धन का पूरा ब्यौरा देने के बाद और उसे खच करने या लगाने के बारे म जानकारी देते हुए वह लिखते हैं

"*इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाएगा कि ऋण-पत्रा मे लगाई गई राशि* मुझे अमानत के तौर पर सौपे गए धन तथा उसके ब्याज से काफी अधिक *थी। 23 दिसम्बर 1919 को जब म भारत के लिए जहाज पर सवार* होने वाला था, मैंने ये ऋण पत्र सुरक्षा के लिए 'इक्विटेबिल ट्रस्ट कम्पनी, *न्यूयाक*' को सौप दिए थे और उसके साथ ही मैंने एक नयी वसीयत तैयार की और उसे थी जान क्विन, 31 नस्साऊ स्ट्रीट, न्यूयाक के पास जमा करवा दी, जो एक प्रिय मित्र तथा न्यूयाक के एक प्रमुख वकील हैं। इस वसीयत मे मने कहा कि ये ऋण पत्र मेरी सम्पत्ति नही और यदि भारत पहुचने से पहले या भारत पहुचने के छ मास के अन्दर मेरी मत्यु हो जाए, तो यह धन पजाब मे राजनीतिक प्रचार के लिए तीन न्यासियो को सौप दिया जाए। पडित मदन मोहन मालवीय को एक न्यासी नामजद किया गया था। पहली वसीयत 1916 मे तथा अन्तिम 1919 मे तैयार की गई थी। इसका अथ है कि 1916 से लेकर अब तक हमेशा ही कोई न-कोई वसीयत तैयार रही है।"

दुर्भाग्य की बात ही है, "1919 के बाद ऋण पत्रा का मूल्य काफी गिर गया है—कुछ की कीमत तो बहुत ही अधिक गिरी है।" यदयपि एक स्थान पर लगाई पूजी ने लाभ दिया है, परन्तु कुल मिलाकर काफी घाटा रहा है। अन्तिम निष्कष इस प्रकार है

"सभी ऋण पत्रा का वतमान मूल्य मोटे तौर पर लगभग छ हजार डालर या इससे कुछ अधिक होगा, जो वतमान विनिमय दर पर 24 हजार रुपये के करीब होते हैं। मैंने न्यूयाक में इक्विटेबिल ट्रस्ट कम्पनी तथा

अपने पुत्र से कह दिया है कि वे उन हिस्सों को बेच दें और यह राशि भारत भेज दें। और मैं इस पूंजी का इस प्रकार खर्च करना चाहता हूं।"

महत्वपूर्ण बात यह है कि जो अन्तिम मद दी गई है, वह है—"एक हजार रुपया खिलाफत कोष के लिए।"

पत्र के अन्तिम पैरे भी यहां उद्धृत किए जाने चाहिए

"आपकी जानकारी के लिए मैं यहां लिख देना चाहता हूं कि अमरीका में मिनटों में मेरे धन कमाने की जो कहानियां कही जाती हैं, वे सत्य नहीं। दरअसल मैंने मूर्खतापूर्ण सौदों में सात सौ डालर गंवाए हैं।

यह विवरण अमरीका और जापान में मेरी ओर से प्राप्त तथा खर्च किए धन की पूरी कहानी है। यह ब्यौरा याददाश्त से तैयार किया गया है। और संभव है कि इसमें आने पाइयों की कोई गलती हो। आपको इस बात की स्वतंत्रता है कि आप इस विवरण को जिस तरह चाहें इस्तेमाल करें। मैं इसकी एक प्रति जानकारी हेतु पंडित मदन मोहन मालवीय को भेज रहा हूं।"

भारत में राजनीतिक राय यह समझने में बहुत सुस्त थी कि धीरे-धीरे अमरीकी राय को प्रभावित करने का क्या महत्व है। इसलिए लाजपत राय ने जो कार्य आरम्भ किया था, उसके लिए स्वदेश से धन प्राप्त करने की आशा नहीं की जा सकती थी (राजनीतिक नेताओं में केवल तिलक ही ऐसे थे, जो इस कार्य के महत्व को समझ सकते थे—जैसा कि इस वृतांत में उचित स्थान पर उल्लेख किया गया है)। इसके बावजूद ऐसा जान पड़ता है कि लाजपत राय ने कुछ लोगों को कोई अपील या 'परिपत्र' भेजे थे। हमें इसकी जानकारी लालाजी के कागजों में मुशीर हुसैन किदवई के पत्रों से मिलती है (लखनऊ के मुशीर हुसैन किदवई अन्त तक लालाजी को पत्र लिखते रहे)। ऐसा दिखाई पड़ता है कि अपील का कोई परिणाम न निकला, परन्तु पैन इस्लामी के पत्र का अध्ययन बहुत दिलचस्प है और शायद असाधारण रुचि की बात लगे

"प्रिय मित्र,

"मुझे आपका परिपत्र मिला और मैंने इसे बहुत रुचि से पढ़ा। जैसा कि शायद आप जानते होंगे, मैं जीवन भर राष्ट्रवादी तथा विश्व-इस्लाम एकता का समर्थक रहा हूं। यही कारण है कि मैंने आपका सारा पत्र बहुत दिलचस्पी से पढ़ा है।

"जहां तक भारतीय राजनीति में तथा इस्लाम के बारे में आपके सुझाव हैं, मैं आपके बहुत से सुझावों से सहमत हूं।

"हमारी ओर से संगठन में त्रुटि रही है और दुर्भाग्य से यह त्रुटि अभी भी जारी है, परन्तु जिस प्रकार आपका इस बारे में कोई भ्रम नहीं है कि विदेशी हस्तक्षेप से कोई भला हो सकता है मेरा भी यही विचार है। शायद अन्तर केवल यही है कि आपको किसी विदेशी सैनिक हस्तक्षेप से कोई आशा नहीं और मुझे किसी भी प्रकार के विदेशी हस्तक्षेप से। विदेशों में मैं भारत को छोड़ अन्य सभी देशों को—जिस में इंग्लैंड तथा अमरीका भी हैं—को भी शामिल करता हूं।

"हमें जो शिक्षा दी गई है वह यही है कि केवल शक्ति का ही महत्त्व है और हममें इस समय इसका अभाव है। यही कारण है कि हमारी तरफ घृणा की दृष्टि से देखा जाता है।

"सीनेटर रीड का यह कथन अधिक गलत नहीं था, जब उन्होंने कहा था कि हम ग्रेट ब्रिटेन की चल सम्पत्ति हैं। भौतिकवादी यूरोप के लिए भारत की पुरातन संस्कृति कुछ भी नहीं और न ही इस्लाम की अद्वितीय सभ्यता कुछ है। पूर्वी कौमों में यूरोप केवल जापान का सम्मान करता है। वह केवल इसी लिए कि जापान तलवार उठा सकता है।

"इन विचारों के लिए आप मुझे दोष नहीं दे सकते, यदि मैं संदेह करूं कि विदेशों में अखबारी प्रचार पर इतना अधिक खर्च करना उचित नहीं है। परन्तु ये केवल मेरे व्यक्तिगत विचार हैं। मैं आपके पत्र के बारे में भारतीय नेताओं के साथ विचार करूंगा विशेषकर मुस्लिम नेताओं के साथ और बाद में आपको बताऊंगा कि वे क्या सोचते हैं।

"मुझे यह पत्र भेजने के लिए आपको एक बार फिर धन्यवाद।"

अगले महीने विश्व-मुस्लिम एकता समर्थक मित्र ने लाजपत राय को अपना कुछ साहित्य भेजा, मुख्य तौर पर एक पुस्तक की 'गोपनीय' प्रति, "जो वैसे यूरोप तथा अमरीका में सार्वजनिक तौर पर प्रकाशित करने के लिए हैं" और अलग से भेजे गए अपने पत्र में उन्होंने लाजपत राय के कार्य के बारे में ये टिप्पणियां की हैं

"मैं उस कार्य के लिए आपका हार्दिक आभारी हूं, जो आप अमरीका में कर रहे हैं। कृपया आप मुझे भारतीय राजनीति के बारे में पुस्तिकाएं तथा अन्य प्रकाशन भी भेजें। आप जानते हैं कि मैं भारतीय राष्ट्रवाद तथा मुस्लिम विश्व एकता का समर्थक हूं। मैं जीवन भर यही रहा हूं—सारे भारत में केवल एक व्यक्ति, जो एक ही समय पर इन दोनों सिद्धान्तों पर कायम है।

"मैं सदा ही राजनीतिक, यहां तक कि शैक्षिक पृथक्तावाद की नीति का विरोधी रहा हूं।

"मुझे अभी वे पत्र नहीं मिले, जिनकी आपने चर्चा की है। जब वे आ जाएंगे, तो मैं उन्हें श्री जिन्ना तथा हसन इमाम को दिखाऊंगा।"

1916 के अन्त में वह न्यूयार्क चले गये, क्योंकि जो कार्य उन्होंने आरम्भ किया था, उसके लिए वही अच्छा मुख्यालय था। वहां उन्हें साहित्यिक कार्य के लिए पुस्तकालय की अच्छी सुविधाएं उपलब्ध थीं। न्यूयार्क अपने में ही मानव समुदाय के विभिन्न रूपों के अध्ययन के लिए तथा इसके अतिरिक्त अमरीकी जनमत को प्रभावित करने के कार्यक्रम के निर्देशन के लिए भी उचित स्थान था। विशेषकर जब कि अमरीका भी युद्धरत हो गया था। भारत के हित में रुचि लेने वाले सभी लोगों के लिए 1400 ब्राडवे एकत्र होने का केंद्र बन गया था।

न्यूयार्क जाने के कुछ समय बाद, कुछ समय के लिए लालाजी ने मोतियों के एक गुजराती व्यापारी श्री दवे के अतिथि सत्कार का आनन्द लिया। वह स्वयं तो मदाग्नि ग्रस्त थे, परन्तु उनकी रसोई पकाने वाली सेविका बहुत कुशल थी और उसके पकवानों के साथ न्याय करने के लिए, अच्छा खाना खाने के शौकीन और भर पेट खाने वालों का सदा स्वागत रहता था।

बहुत कडे सेंसर, तथा जासूसी आदि के कारण कई कठिनाइया उत्पन्न हो गई थी। तब तक अमरीकी सरकार युद्ध से अलग थी, ब्रिटिश जासूस उन लोगो को परेशान कर सकते थे, जिनके बारे मे अनुमान था कि वे ब्रिटेन के मित्र नही। ऐसा दिखाई पडता है कि लाजपत राय की ओर उनका विशेष ध्यान था। इसका एक उदाहरण, फ्रासिस हैकिट द्वारा उस विवरण से मिलता है, जो उ होने 'द पीपुल' के लाजपत राय अक के लिए लिखा और जिसमे लाजपत राय के 'न्यू रिपब्लिक' के कार्यालय मे एक बार आने का ब्योरा दिया गया है

"एक दिन वह इक्कीसवी गली मे ऐसे ही हगामे के बीच हमारे कार्यालय मे आये। उनके हाथ मे एक छोटा सा पुराना डिस्क (चक्कर) था, यह एक माइक्रोफोन था, जो 'खुफिया सेवा' वालो ने शाडवे कार्यालय की उस इमारत मे लगा दिया था, जहा वे और उनके निर्वासित साथी मिला करते थे। उन्हें पता चल गया कि तहखाने मे खुफिया सेवा वालो ने एक गुप्तचर तैनात कर दिया था। लाजपत राय ने हसते हुए बताया कि ट्राफी के तौर पर यह डिस्क हटाने से पहले उस वदकिस्मत गुप्तचर पर भारतीय भाषाओ मे खूब बौछार हुई थी। मुझे विश्वास है कि उन्हे देखकर हम मे से बहुत अधिक शिकवा करने वालो को विश्वास हो गया था कि लाजपत राय खुफिया सेवा के जोरदार आकर्षण के कारण है, जिस प्रकार उन्होने कहा था।"

लालाजी कभी कभार ब्रिटिश अखबारो के लिए लिखा करते थे और सिडनी वैब ने अपने एक पत्र मे कुछ बातो के बारे मे उन्हें समझाया था

"प्रिय लाजपत राय,

"मुझे आपके दो पत्र मिले हैं। डाक सेवा की जो वर्तमान स्थिति है, वह पत्र-व्यवहार जारी रखने योग्य नही। मुझे आपको यह याद दिलाने की आवश्यकता नही कि सभी पत्र खोले जाते हैं इसी लिए कोई निजी बात लिखने की आवश्यकता नही। आपने जो सामग्री समाचार-पत्र सम्पादक के लिए भेजी है, मैं उसे पहुचा दूगा, परन्तु आपके लेख अधिक सुरक्षित रहेंगे, यदि उन्हें सीधे ही सम्पादक को भेज दिया जाए। म समझता हू

कि उस देश मे, जिसका आपने नाम लिया है, या दरअसल सभी देशो मे सरकार के लिए वह काय करना आवश्यक समझा जाता है, जो सामान्य काल म बिल्कुल मनमर्जी का या गैरकानूनी समझा जाएगा, परन्तु युद्ध की स्थिति म न्यायपूण ढग से इसकी आलोचना नही की जा सकती और न ही इसका असर हो सकता है। मैं इस या किसी और सरकार के कार्यों को उचित ठहराने का बहाना नही करता, परन्तु शिकायत करना व्यर्थ है। विश्व के विभिन्न भागो मे बहुत से लोगो द्वारा जो बड़ा ही कठिन दमन सहन किया जा रहा है, वह बहुत ही चिंताजनक है मेरे ख्याल मे यह स्मरण रखने की बात है कि यह समय तो बीत ही जाएगा और जो लोग कष्ट झेल रहे हैं उन्हें यह भी विचार कर लेना चाहिए कि शान्ति स्थापित हो जाने पर उनकी स्थिति क्या होगी। मुझे विश्वास है आप इस पत्र को गलत नही समझेंगे, जिसमें उन लोगो के प्रति गहरी सहानुभूति का कोई अभाव नही, जो कष्ट उठा रहे हैं। इस समय तो हम केवल यही कर सकते है कि जो भयानक विपत्ति हमारे विश्व पर आई है, उसमें जो भी अच्छा कर सकें कर लें। विपत्ति मे भूतकाल की सभी बुरी प्रवृत्तिया अस्थायी तौर पर और प्रबल हो गई हैं। मुझे आशा है कि वह समय अधिक दूर नही जब हम फिर मिलेंगे।'

भारत के प्रति अमरीकी लोकमत को ठीक रखने के लिए यह आवश्यक था कि ब्रिटिश प्रचार का खडन किया जाए। परन्तु कई बार तो लालाजी की टक्कर उन लोगो से हो जाती थी, जो ब्रिटिश एजेंट नही कहे जा सकते थे। ईसाई प्रचारक किस्म के लोग, जिन्होंने अकाल पीडित क्षेत्रो के अनाथो के लिए आश्रम बनाने की लालाजी की कारवाई का बुरा माना था, क्योंकि ईसाई धम का प्रसार करने वालो के लिए ऐसे अनाथ "लूट का माल" ही थे और फिर विधर्मियो की "भलाई" करने वाले ईसाई प्रचारको का लालाजी के कायक्रम कभी पसद नही आ सकते थे। उन्होंने यह बात भी महसूस की कि भारत की पुरातन सस्कृति की जो तस्वीर वह अमरीकी लोगो के सामने पेश कर रहे हैं, वह उनके हितो के विपरीत है, क्योंकि अमरीका से धन बटोरने के लिए यह आवश्यक था कि भारत को मूर्तिपूजको की भूमि बताया जाए जहा अज्ञानता का अंधेरा फला हुआ है। ऐसा करके ही उन्हें ईसाई धम का प्रसार करने के लिए धन

उपलब्ध हो सकता था। लालाजी क्रिश्चियन कालिज, लाहौर से सम्बद्ध एक प्रचारक के साथ हुए मुकाबले का विवरण सुनाया करते थे। वह व्यक्ति एक बार लालाजी के श्रोताओं में बैठा था और उसने लालाजी के कुछ आकड़ों को चुनौती दी। जब उसे इस बात में सफलता न मिली, तो उसने कहा, "श्री राय, क्या आप यह नहीं सोचते कि हम भी आपके समान भारत से प्रेम करते हैं ?" तुरंत उत्तर मिला। "मैं अपने देश से उस प्रकार प्रेम करता होता जिस प्रकार आप करते हैं, तो तुरंत जाकर निकट की नदी में डूब जाता।"

डाक में कई बार ऐसे पत्र आते, जिनकी आशा भी नहीं होती थी और उन पत्रों में अजीब अनुरोध होते थे। ऐसा एक पत्र लिफाफे समेत उनके कागजों में सुरक्षित था, क्योंकि उसमें उन्हें हंसी का अवसर मिला था। हम उस पत्र को यहां उद्धृत करते हैं

"लाजपत राय,

"मेरे प्यारे लाजपत राय।

"मेरे मित्र तथा शुभचिंतक श्री पी० बी० शुक्ल ने मुझे बताया है कि संभवतः आप मेरी आध्यात्मिक प्रगति की इच्छा तथा उत्सुकता की पूर्ति में सहायता कर सकते हैं। आप मुझे जो भी सलाह देंगे या कोई निर्देश देंगे, मैं विश्वास दिलाता हूं कि उसका अध्ययन किया जाएगा और उसकी कदर की जाएगी।"

(आध्यात्मिक मार्गदर्शकों के रूप में हिंदुओं की हालीवुड में भी मांग थी)

लालाजी के कागजों में मेरे लिए मामूली से आश्चर्य का कारण वह पत्र था, जिससे पता चलता है कि वह स्पेनिश भाषा की शिक्षा प्राप्त करने के लिए दाखिल हुए थे। हमें मालूम है कि उन्होंने स्कूली दिनों में जो भाषाएं सीखी थीं, उनमें और कोई वृद्धि न हुई थी, परन्तु इस पहेली का समाधान नहीं हो पाया कि उन्होंने स्पेनिश भाषा सीखने की आवश्यकता क्या महसूस की। यह ठीक है कि स्पेनिश विश्व की एक महत्वपूर्ण भाषा है, परन्तु जो काम लालाजी कर रहे थे, उसके लिए स्पेनिश भाषा सीखने की कोई आवश्यकता नहीं थी। क्या यह किसी स्पेनिश-भाषी मित्र की प्रेरणा के

कारण किया गया ? यदि ऐसा था, तो यह कौन था ? स्पेनिश भाषा का संयुक्त राज्य अमरीका के मुकाबले मध्य तथा दक्षिण अमरीका म बहुत अधिक महत्व है। क्या लालाजी ने किसी अवसर पर उन देशो मे सम्पर्क स्थापित करने का प्रयत्न किया था ? हम जानते हैं कि लालाजी न अपने क्रांतिकारी मित्रो को सुझाव दिया था, जो कार्यान्वित न हो सका। इस सुझाव मे उन्होन कहा था कि उन्हें (क्रान्तिकारी मित्रो को) जो धन मिल रहा है या जो धन वे एकत्र कर रहे है, उसका कुछ भाग वे दक्षिण अमरीकी राज्यो म ऐसी आवासीय बस्तियां बसाने पर खर्च करें, जिनमे आवश्यकता पड़ने पर भारत के राजनीतिक शरणार्थी शरण ले सकें। यद्यपि जमनी स प्राप्त होने वाले धन पर नियत्रण करने वालो ने इस सुझाव पर अमल न किया, तो क्या स्वय उन्होंने अपने तौर पर अपने मन म ही इस प्रस्ताव पर कारवाई जारी रखी थी ? क्या उन्होंने सोचा था कि स्पेनिश भाषा का ज्ञान इस काम मे सहायक हो सकता था ? इस बात की हम जानकारी नही। परन्तु हम स्पेनिश कक्षा म दाखिल होने के कारणो के बारे म और कोई अटकल नही लगा सकते और सबके बाद निर्वासित देशभक्त की अपनी आत्मा की एक झलक। 'यंग इंडिया' मे प्रकाशित 'ऐट द मदस फीट' के शीर्षक से प्रकाशित एक लेख से कुछ अंश—यह लेख अनाम छपा था।

"मा, आपको मैं क्या भेंट करू ? मेरे पास आपको अर्पित करने के लिए कुछ नही। मै दीन हू, अतिदीन। परन्तु मेरे पास एक वस्तु है जो आपको कभी भी तथा कही भी भेंट की जा सकती है, और वह है मेरा असीम प्रेम। आ मा! म आपसे प्रेम करता हू, म आपका आदर करता हू। क्या आप मुझे क्षमा कर देंगी, यदि म यह कहू कि म आपका श्रद्धालु हू ? मै जानता हू कि ऐसा कहना निलज्जता तथा दिखावा है। परन्तु आप मेरी आत्मा को पवित्र करने वाली देवी हो। आप इसमे अवगत हो, इसलिए मुझे विश्वास है कि आप मुझे मना नही करोगी। ओ मातृ भूमि! आप ऐसी माताओ की मा हो, इसलिए आपका स्थान सर्वोच्च है, सर्वोपरि है। इतना ही नही आपने 'जगत जननी' का नाम प्राप्त किया है। हे भारत मा! यह केवल आप ही हैं, जिनका म इतना अधिक सम्मान करता हू।"

यह सरासर भावप्रवणता थी—शायद कुछ बचकानापन भी, उन लोगों के लिए जो प्रौढ और गंभीर हैं और यह गुमनाम क्यों प्रकाशित किया गया ? शायद इसलिए कि उनका अपना निष्पक्ष अनुमान भी इसी प्रकार का रहा होगा। परन्तु शायद निर्वासन की पीडा ने अपने मनोवेगों की पीडा को बच्चों की भाषा में व्यक्त करने पर विवश किया हो। उनकी आन्तरिक मजबूरी ने मन की वेदना व्यक्त करने पर विवश किया हो और फिर भी सार्वजनिक तौर पर उसमें इस दशा को स्वीकार करने का साहस न हो। यह एक देशभक्त ही है, जो अपने देश की एक देवी के समान और मां के समान आराधना करता है और इतना भावुक हो सकता है। किसी कवि की इतनी ही शक्तिशाली भावना शायद किसी और ही रूप में अभिव्यक्त हो। परन्तु *लाजपत राय कवि नहीं थे।* यद्यपि कुछ लोगों को ये वाक्य बचकाने से लगे होंगे परन्तु इनमें भावनाओं की बहुत तीव्रता है। मुझे इसका निर्णायक प्रमाण उस समय मिला, जब इसने भगतसिंह को बहुत प्रभावित किया। उन्होंने इसे उतार लिया और पढ़ा बार बार पढ़ा और अपने साथियों को पढ़कर सुनाया।

लालाजी के निर्वासन से लौटने के पश्चात् मैंने उन्हें बहुत निकट से अलग अलग मनोवेगों में उनके अन्तिम समय तक देखा था, मुझे उनके भाषणों या रचनाओं में कोई ऐसी बात दिखाई नहीं देती, जो इतनी अधिक प्रबल भावुकता दर्शाने वाली हो। ऐसी स्थिति उनके साथ केवल निर्वासन में ही हो पाई। तीव्र भावुकता तो उनमें उसी समय नजर आ सकती थी, जब वह बहुत ही दर्दनाक दृश्य से प्रभावित होते थे—उदाहरण के तौर पर जब उन्होंने अकालपीडित क्षेत्रों में लोगों को बहुत असहाय स्थिति में और भारी संख्या में मरते देखा, परन्तु इसमें संदेह नहीं कि *'यंग इंडिया'* के इस अंश जैसी भावुकता बिल्कुल अलग बात है।

45. भारतीय स्थिति के बारे में चिंतन

जर्मनी की हार हो गई तथा मित्र राष्ट्र अपने पंच-वर्षीय विश्वयुद्ध में विजयी हो गए 'ताकि विश्व को प्रजातंत्र के लिए सुरक्षित बनाया जा सके।" भारतीय सैनिकों ने यूरोप तथा एशिया में विभिन्न युद्ध क्षेत्रों में अपनी वीरता के शानदार जौहर दिखाए थे और मित्र राष्ट्रों की विजय निश्चित बनाने के लिए भारत के साधनों को खुले हाथों खर्च किया गया था। विडम्बना की बात है कि उसके शासकों ने भारत के लोगों को दबाए रखने तथा अपनी साम्राज्यशाही को और सुरक्षित रखने के लिए नए दमनकारी कानून बनाए। रोलट एक्ट और उसके बाद गांधी के नेतृत्व में चले आन्दोलन, विदेशी शासकों द्वारा जलियांवाला बाग कांड के रूप में इसका उत्तर भारत के लोगों के नेता के रूप में गांधी का उभरना—यह सुविदित कहानी है। ब्रिटिश शासकों द्वारा समाचारों पर दबाव की अनैतिक कार्रवाई के परिणामस्वरूप विदेशों में लोगों को जलियांवाला बाग कांड के बारे में सही और पूरी जानकारी कई महीनों के बाद मिली। जब लाजपत राय ने अपने देशवासियों के कष्ट तथा निरादर की बातें सुनीं, तो उनके लिए निर्वासन सहन करना कठिन हो गया। सम्बद्ध ब्रिटिश अधिकारी (अमरीका में) कोई सहायता नहीं दे रहे थे। युद्ध समाप्त हो जाने के बाद भारत के लिए उनकी यात्रा की मनाही की जा रही थी या उसकी व्यवस्था में विलम्ब किया जा रहा था। उन्होंने अपने मन की वेदना एक 'संदेश' में वर्णन की है, जो उन्होंने भारतीय समाचार पत्रों में प्रकाशित करने के लिए भेजा।

"पंजाबियों के नाम संदेश" शुरू होता है

"प्रिय मित्रो! मैं आपको कैसे बताऊं कि पंजाब की वर्तमान स्थिति के बारे में मैं इस समय कैसा महसूस करता हूं? मेरा दिल भरा हुआ है, परन्तु मेरी जबान गूंगी है। मैंने आपके पास पहुंचने का पूरा प्रयत्न किया है परन्तु मैं सफल नहीं हो पाया। मैं शहीद नहीं बनना चाहता, परंतु मैं चाहता हूं कि आपकी कठिनाइयों में मैं आपके काम आ सकूं।"

उसके पश्चात इस स्थिति मे उनका चितन आरम्भ हुआ, जिस ढग से वह स्थिति को इतनी दूर से अनुभव कर सकते थे, वह अपने हमवतना से कहते हैं, "सुनो, विचारो, निर्णय करो तथा दृढ हो जाओ।' वह अति कटुतापूर्ण ढग से ब्रिटिश शासको के बारे म शिकवा नही करते, बल्कि अपने देशवासियो के बारे म शिकायत करते है, जिन्होने अपनी मातभमि का अपमानित किया है।

"मेरा हृदय बहुत कटु है, मेरी आत्मा बहुत दुखी है, अफसरशाही की कारवाइया पर मेरा मन गुस्से से भरा हुआ है और इससे भी अधिक मुझ अपने देशवासिया के चरित्र तथा व्यवहार पर गुस्सा आता है। यह ऐसे देशवासिया के कारण ही है कि आप लोगा का इतना कष्ट हुआ है आपका इतना निरादर हुआ है। बताया गया है कि पजाब मत और उत्साहहीन है। सारा सावजनिक जीवन ठप्प हो गया है और प्रत्येक व्यक्ति भयभीत है। वकीलो ने 'राजनीतिक अपराधियो" के मुकदमे लडने से इन्कार कर दिया और समाचार पत्रो का प्रकाशन बन्द कर दिया है। मित्रता, प्रेम, सहानुभूति, बधुत्व तथा भाईचारे की भावना सब गायब हो गई है। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी-अपनी पडी है, चाहे बाकी सभी जहन्नुम म जाए। मैं इस स्थिति की कल्पना कर सकता हू। मन इस प्रकार की स्थिति का कुछ रूप 1907 और फिर 1910 मे देखा था। परन्तु इस बार ता चोट बहुत जारदार पडी है और इसके परिणामस्वरूप हम पूरी तरह पछाड दिए गए हैं।'

उन्होन पजाब के युवका से आग्रह किया कि व कष्ट झेलन वाले नेताआ का "साहस, नेकदिली और सच्ची आत्मा" से साथ दें।

उनके चितन के फलस्वरूप सस्थाआ के बारे म यह टिप्पणी आई

"फिर हमारे बीच कई ऐसे लोग है, जो नेक और देशभक्त हैं और सस्थाओ से सम्बद्ध हैं। यह बात याद रखिए कि सस्थाए केवल उद्देश्य पूर्ति के लिए साधन मात्र हैं। वे हमारे लिए है, हम उनकी खातिर नही जो लोग नैतिक पक्ष से उच्च, जिम्मेदारी की भावना के प्रति जागरूक, आत्म-बलिदानी सिद्धातो तथा उद्देश्यो के लिए बलिदान करन का तैयार

है, वे संस्थाएं स्थापित कर सकते है, परन्तु जिन लोगो का नैतिक पतन हो चुका है, जिनमे बंधुत्व की भावना लोप हो चुकी है और जिनमे मित्रो, सहयोगियो के प्रति शिष्टाचार और वफादारी नही है, जो समझौता करने तथा अवसरवादिता के लिए सदा तैयार रहते हैं और आपातस्थिति मे सिद्धांत तब्दील करने को तैयार रहते हैं, वे लम्बी अवधि तक संस्थाओ की सेवा नही कर सकते। संस्थाएं तब तक न जान डाल सकती हैं, न प्रेरणा का स्रोत बन सकती है, जब तक जीवंत और हिम्मत वाले व्यक्ति उनका नेतृत्व न करे। अपनी संस्थाओ के साथ डटे रहो। उन्हें कायम रखो, बनाए रखो और जिस प्रकार भी द मको हर स्थिति मे उनका साथ दो, परन्तु उन्हें हर कीमत पर बचाने के लिए कभी भी अपना सम्मान और उच्च प्रकृति को चिंता के सागर मे न डुबाओ। इन संस्थाओ, सस्थाओ तथा व्यक्तियो की खातिर अपने साहस तथा उत्साह को न गिरने दो। अपनी हिम्मत को बुलंद रखो और उसे किसी भी ढंग से खराब तथा भ्रष्ट न होने दो।'

जब उन्होने ये वाक्य लिखे होगे, तो उनके मन मे कितना दर्द उठा होगा, क्योंकि जब हम यह स्मरण करते है कि जब से वह सार्वजनिक जीवन मे दाखिल हुए थे, उन्होंने अपनी अधिकतम क्षमता से इन संस्थाओ की सेवा की थी।

इस चिंतन का परिणाम साम्प्रदायिक संस्थाओ के बारे में इन टिप्पणियो के रूप में आया

"आप अपनी हिंदू सभाओ तथा मुस्लिम लीगो को अपना ध्यान आप करने दो। आपकी मुसीबतो के लिए वे बहुत हद तक जिम्मेदार है। उनका आधार मिथ्या है। उनका प्रचार झूठा है, उनके उद्धरण विषैले हैं और उनकी संगति निरुत्साहित करने वाली है। धर्म, नस्ल और सम्प्रदायो के बारे मे सभी विवादो को कुछ समय के लिए छोड दो।"

साम्प्रदायिक संगठनो की निंदा के लिए लाजपत राय द्वारा कहे गए ये सबसे कडे तथा कटु शब्द थे। निस्संदेह यह विदेश मे बिताए गए उनके पाच वर्षो का बढता हुआ प्रभाव था।

अमरीकी नारी के, पद्धति में, जो उन्होंने किसी हद तक अपना ली थी, अपने देशवासियों को संगठित होने, शिक्षा देने तथा आन्दोलन करने का आह्वान किया'। उन्होंने अपना उपदेश, इन शब्दों में सूत्र में दिया : "मनुष्यों के समान व्यवहार करो।"

गांधीजी को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए उन्होंने कहा कि उनके ख्याल में 'गांधीजी इस समय आपके सर्वश्रेष्ठ नेता हैं।" वह चाहते थे कि उनके देशवासी उनकी (गांधीजी की) भावना अपनाएं। अन्त में उन्होंने फिर भारत से अपनी अनुपस्थिति पर खेद व्यक्त किया।

"मुझे इस बात का खेद है कि मैं सीधे आपकी सहायता नहीं कर सकता, परन्तु मैं जबान, कलम तथा धन से जो भी कर सकता हूं करूंगा, यद्यपि शारीरिक तौर पर मैं आपके साथ नहीं हूंगा। आपकी खातिर मैं भीख मांगूंगा, उधार मांगूंगा तथा चोरी करूंगा। मैं आपकी खातिर काम करूंगा और जो कुछ भी अर्जित करूंगा, आपको भेज दूंगा। बीसवीं शताब्दी के पंजाबियों के लिए यह बात कहने का अवसर नहीं दिया जाना चाहिए कि उनकी आत्माएं इतनी दुर्बल थीं कि वे एक ही चोट में पूरी तरह कुचल दिए गए तथा इतने उत्साहहीन हो गए कि फिर से उनमें उत्साह पैदा न हो सके।'

इस संदेश पर हस्ताक्षर की जगह ये शब्द थे :

'यह जो गम और दुख में आपके भाग है।"

यूरोपियन युद्ध आरम्भ होने से पूर्व ही पंजाब में स्थिति भड़कने लगी थी। प्रांत में ओ'डायरवाद प्रधान था। 26 मई 1913 को माईकल ओ'डायर जो प्रांत में 15 वर्ष के बाद लौटा था और पहले मूल रूप में जो छोटे पदों पर कार्य कर चुका था, सरकार के प्रमुख के रूप में आया था।

ब्रिटिश शासकों के व्यवहार का एक बहुत ही महत्वपूर्ण परिणाम यह निकला था कि स्वयं गांधीजी जो युद्ध में ब्रिटिश लोगों की अपने ढंग से सहायता करते रहे थे, हताश हो गए थे। लाजपत राय ने इस बात को स्पष्ट तौर से महसूस किया। एन० एस० हार्डिकर ने लालाजी की गांधी-जी के बारे में जो टिप्पणियां दी हैं वे इसी अवधि से सम्बद्ध हैं।

राष्ट्रपिता महात्मा गाधी के बारे म उन्होंने कहा है

"वह एक उभरते हुए सितारे हैं। यह बात कोई नही कह सकता कि वह क्या प्राप्त करेंगे और कब। कुछ समय के लिए तो उस कार्यक्रम को देखना होगा जो, वह आरम्भ करगे। वह जो भी शब्द कहेंगे या लिखेंगे, उनकी उचित ढग से व्याख्या करनी होगी। उचित यह है, कि प्रतीक्षा की जाए और देखा जाए।'

चाहे वह घटनास्थल से बहुत दूर थे और अधिकतर उन्हें अमरीकी समाचार पत्रो म भारत के बारे म संक्षिप्त समाचारो से प्राप्त जानकारी पर निर्भर करना पडता था, फिर भी उन्होंने अवश्य ही गाधीजी के क्रिया कलापो का बहुत गभीरता से अवलोकन किया होगा और जब वह इस सदेश को लिखने बैठे होगे, ऐसा जान पडता है कि उन्होंने नए नेता के बारे म पक्का अनुमान लगा लिया होगा, जिस नए नेता को उन्होन युद्ध के आरम्भिक दिनो में लदन की भेंट के समय देखा था।

अपने लोगो से उनका सम्पर्क काफी लम्बी अवधि के लिए टूटा रहा था। यह 'अवधि" भी अब समाप्त हो गयी थी। उन्हें अवश्य अपने लोगो म आना ही चाहिए था। अमरीका में उन्होने जो सस्थाए स्थापित की थी, उनका जो प्रबध वह कर सकते थे, कर दिया। परन्तु ब्रिटिश अधिकारियो न उनका रास्ता रोक दिया और उन्हे पासपोर्ट लेने के लिए काफी सघर्ष करना पडा।

अत मे पासपोर्ट प्राप्त करने का यह सघर्ष कैसे समाप्त हुआ, इसके बारे म फ्रासिस हैविट ने बहुत रोचक प्रकाश डाला है

"न्यूयार्क मे इग्लड के पासपोर्ट कार्यालय मे बीसा प्राप्त करने म उन्हे कठिन परिश्रम करना पडा। मुझे इस बात मे कोई सदेह नही कि उनका नाम काली सूची मे था। बाहरी कार्यालय मे उनकी उपस्थिति मे यथा-सम्भव विलम्ब किया गया, क्योकि ऐसा दिखाई पडता था कि उन्होने एक अग्रेज द्वारपाल को बहुत नाराज कर दिया था, जिसकी शक्ल का वर्णन शेक्सपीयर ने अति व्यग्यात्मक ढग से अमर कर दिया है। जब भी लाजपत राय सामने होते, वह महान अधिकारी तब तक उन्हें टकोरता रहता जब तक वह गुस्से से भरकर हताश न हो जाते। यह ब्रिटिश साम्राज्य

द्वारा छेडछाड करने का नीच धधा था और इसके बारे मे वह दोपहर के भोज के समय अपने आपको मित्रो के बीच गुस्से से फट पडने से न रोक सके। और फिर एक ऐसी बात हुई, जिससे उनके लिए सारा मामला सुलझ गया। उस भोज में एक महिला भी उपस्थित थी, जिनका एक अंग्रेज अधिकारी बहुत अधिक प्रशसक था। अपने मित्र लाजपत राय का इस प्रकार अपमानित किए जाने पर वह क्रोध से बिफर उठी और उन्होंने अपने प्रशसक अधिकारी को बुलाकर यह बदतमीजी बन्द करने के लिए कहा। यह परेशानी तुरत समाप्त हो गई और वीसा जारी कर दिया गया। कुछ ही सप्ताह मे लाजपत राय इग्लैड से थे और सक्रेटरी फार इडिया से बात कर रहे थे।"

किस प्रकार एक अनधिकृत राजदूत, अमरीका मे इतनी लम्बी अवधि के लिए इस स्थिति मे रहने के बाद राजनयिक तौर-तरीको से अलग रह सकता था।

एक लम्बी अनुपस्थिति के बाद 20 फरवरी 1920 को लाजपत राय स्वदेश लौट आये।

अन्तिम जिनके लिए प्रथम बना था

46. कांग्रेस अध्यक्ष

तीसरी बार यह प्रश्न उनके सामने आया—क्या कांग्रेस अध्यक्ष पद के लिए अपने नाम के प्रचार की अनुमति दें? पुरानी समस्या अब नहीं रही थी, उनकी मिताचारियों से अलग न होने की इच्छा और मिताचारियों का यह प्रयत्न कि उन्हें किसी-न किसी प्रकार अलग रखा जाए। कांग्रेस बड़ी तेजी से एक सार्वजनिक आन्दोलन बन रही थी। मिताचारियों की अब कोई खास गिनती नहीं थी। अमृतसर-अधिवेशन ने यद्यपि कोई अतिवादी कार्यक्रम तैयार नहीं किया, फिर भी उनके स्वभाव के अनुकूल ही यह एक जनप्रिय खेल था। गोखले के निधन के कारण *उस गुट के साथ लाजपत राय के संबंध जो समान राजनीतिक दृष्टिकोण की* बजाय व्यक्तिगत आदर के अधिक थे, टूट गए थे। 1907 के अनुपात का उन्हें कोई कष्ट नहीं था—कि मिताचारी उन्हें स्वीकार करेंगे या नहीं, या उनकी नामजदगी से गोखले के लिए उलझन होगी। उनको 1914 में समान चिन्ता नहीं थी कि मिताचारी साठगांठ करके चालबाजी कर लेंगे और उनके विदेश में होने के कारण अपने गुट का कोई व्यक्ति आगे ले आएंगे—क्योंकि अब किसी मिताचारी को कांग्रेस पर थोपे जाने की सम्भावना नहीं थी। अब यह आशंका भी नहीं थी कि वह उस गुट का प्रतिनिधि माना जाएगा, जो दूसरे गुट के विरोधी के मुकाबले में खड़ा हो।

मिताचारी यद्यपि कांग्रेस की राजनीति से समाप्त होते जा रहे थे, फिर भी कुछ नई समस्याएं उत्पन्न हो रही थीं। अभी उन्हें भारत आए मुश्किल से तीन महीने हुए थे कि महात्मा गांधी ने अपना पहला घोषणा पत्र प्रकाशित कर दिया जिसमें सविनय अवज्ञा कार्यक्रम प्रतिपादित किया गया था। इस कार्यक्रम के लिए खिलाफत नेताओं ने गांधीजी के साथ मशविरा करके अपने आपको वचनबद्ध कर लिया था। एक प्रकार से सविनय अवज्ञा उनकी अपनी भावनाओं को, उनके अपने राजनीतिक दर्शन को, बहुत प्रशंसनीय ढंग से व्यक्त करता था। परन्तु कार्यक्रम की कुछ बातों का अनुमोदन करने में उन्हें बहुत कठिनाई हो रही थी। इन सभी बातों से महत्वपूर्ण प्रश्न था—क्या लोग महात्मा गांधी के इस धुआंधार जन कार्यक्रम के प्रति सहयोग देंगे? दूसरे शब्दों में, क्या इसके लिए उपयुक्त समय आ गया था? व्यक्तिगत

बातो का इतना अधिक महत्व नही था, परन्तु प्रत्येक बात व्यावहारिक गति के पक्के अनुमान पर निर्भर करती थी। बीत समय मे उनके अपने सबध उन्हें महाराष्ट्र तथा बगाल के राष्ट्रवादियो के बहुत निकट लाते थे, परन्तु यह गाधी तो एक नई शक्ति थे। गाधीजी के सता जैसे व्यक्तित्व, उनके साहस, सादगी और सच्चाई के कारण, लालाजी उनका बहुत आदर करते थे और उन्हें भारत के लोगो के लिए आदर्श नेता मानने लगे थे। ऐसा नेता जो व्यक्तिगत जीवन मे जनता के समान हो और पैगम्बर के समान उनका मार्गदर्शन कर सके, जैसे मूसा ने अपने लोगो को उन्हें मिस्र से निकालने के लिए किया था। उन्होने दक्षिण अफ्रीका मे गाधीजी के उभरने पर गहरी उत्सुकता से नजर रखी थी और स्वदेश लौटने पर उनकी गतिविधियो को ध्यान से देखा था। जब युद्ध आरम्भ हुआ था तो लालाजी ने उन्हे इग्लैड मे कार्यरत देखा था तथा प्रतिभाशाली लोगो का सगठन करने के उनके उत्साह तथा लगन की प्रशसा की थी, यद्यपि गाधीजी की राजनीति मे वह भागीदार नही थे। बाद मे गाधीजी के साथ सार्वजनिक तौर पर समाचार पत्रो मे उनका मतभेद प्रकट भी हो गया था जो गाधीवादी राजनीतिक दर्शन के मूलमत्र अहिंसा के सिद्धात के बारे मे था। परन्तु दृष्टिकोण मे मतभेद होने के बावजूद वह गाधीजी के व्यक्तित्व तथा कार्य की सदा प्रशसा करते थे। विशेषकर रोलट एक्ट के दिनो के बाद मे वह गाधीजी की ओर अधिक आकर्षित महसूस करने लगे थे और अमरीका के लिए रवाना होने से पूर्व यह बात उन्होने देशवासियो के नाम अपने सदेशो मे स्पष्ट शब्दो मे कही थी। "वह (गाधीजी) हमारी इच्छा के अनुसार सही नेता है", ऐसा उन्होने कहा था। फिर भी गाधीजी के नेतृत्व की किसी बडे अभियान मे परख नही हुई थी, जिसके आधार पर उन्हे उस युद्ध का फील्ड मार्शल नियुक्त किया जा सकता जिसे शुरू करने की उन्होंने बात की थी। गाधीजी इस बात को जानने के लिए दृढ दिखाई देते थे कि जो अधिक अनुभवी हैं वे सहयोग देते है या नही इस बात का भी सकेत था कि यदि वयोवृद्ध नेताओ ने सहमति व्यक्त न की तो शायद उन्हें भविष्य मे कठिनाई का सामना करना पडे। यह चयन करना निश्चय ही आसान बात नही थी, और उनके लिए जो पाच वर्ष के लिए भारत से बाहर रहे थे यह कठिनाई विशेषतौर पर थी। लाजपत राय दल के गुटो से अलग रहने की पुरानी नीति पर कायम रहे। फिर भी ऐसा दिखाई देता था जैसे नए गुट बन रहे हो। अप्रैल के तीसरे सप्ताह मे गाधीजी ने घोषणा-पत्र जारी कर दिया, जिसमे उन्होंने होम रूल लीग के अध्यक्ष के तौर पर अपने कार्यक्रम की घोषणा की थी और तिलक ने नेशनल डमोक्रेटिक पार्टी की ओर से एक अन्य घोषणा पत्र जारी

कर दिया। लाजपत राय को इनमे एक या दूसरे गुट के साथ सम्बद्ध होने की कोई जल्दी नही थी।

मई 1920 के अंत मे अखिल भारतीय कांग्रेस समिति की बैठक बनारस मे हुई और उसने पहली बार असहयोग के बारे मे विचार किया। तिलक यद्यपि बनारस मे थे, वह बैठक मे शामिल न हुए। बनारस की बैठक ने निर्णय किया कि इस कार्यक्रम पर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के विशेष अधिवेशन मे कलकत्ता मे विचार किया जाए।* दरअसल, अमृतसर मे यह समझा गया था कि पंजाब की घटनाओं की जांच करने वाली हंटर समिति द्वारा तैयार की जा रही रिपोर्ट पर विचार करने के लिए एक विशेष अधिवेशन की जरूरत होगी। यह रिपोर्ट तो पहले ही प्रकाशित हो चुकी थी—भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की उप-समिति की रिपोर्ट भी—और सरकार ने अपना निर्णय भी घोषित कर दिया था। इस बीच सेवर्स की शान्ति संधि पर हस्ताक्षर हो गए थे और खिलाफत के बारे मे मुसलमानो की आशंकाएं सत्य सिद्ध हुई थी। परन्तु पंजाब की घटनाओं तथा खिलाफत की ज्यादतियों को मिलाकर असहयोग आन्दोलन का जन्म हुआ था। अमृतसर अधिवेशन के बाद सुधार कानून (रिफार्म्स एक्ट) के अन्तर्गत नियम बनाकर प्रकाशित कर दिए गए थे और कई लोगो के विचार मे इन नियमों ने माटेग्यू सुधारों का काफी बड़ा भाग छीन लिया था, जिसे अमृतसर अधिवेशन पहले ही "असंतोषजनक तथा निराशाजनक" घोषित कर चुका था। इन सब बातों पर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के विशेष अधिवेशन मे विचार किया जा सकता था और यह विशेष अधिवेशन सितम्बर 1920 के पहले सप्ताह मे कलकत्ता मे बुलाया गया था।

कांग्रेस की सांविधानिक मशीनरी ने शीघ्र ही काम आरम्भ कर दिया, ताकि उस अधिवेशन के लिए कांग्रेस अध्यक्ष चुना जा सके, जो उन असाधारण परिस्थितियों के कारण आवश्यक हो गया था, जो भारत तथा उसकी राष्ट्रीय कांग्रेस के सामने आई थी। स्वाभाविक ही था कि कई लोगो के सामने लालाजी का नाम आया, क्योंकि लम्बी सेवा तथा बलिदान के जीवन को ऐसी मान्यता काफी समय पहले

*कुछ ही दिन बाद एक औपचारिक सम्मेलन असहयोग पर विचार करने के लिए इलाहाबाद में आयोजित किया गया जिसमें भारत के सभी भागों का प्रतिनिधित्व था। गांधीजी ने मुसलमानों से व्यावहारिक रूप से समझौता कर ही लिया था तथा अपने असहयोग कार्यक्रम को अंतरात्मा का विषय बना लिया था। कांग्रेस चाहे जो कुछ भी निर्णय करे उनके लिए अब पीछे हटने का कोई गुंजाइश नहीं बची थी।

ही दी जानी उचित थी। और लाग यह दरवा चाहत थे कि निर्वासन में इतने वर्षों म उन्होंने जो अनुभव प्राप्त किया है, उसमें से वह उन्हें क्या दत हैं। इसके अतिरिक्त इस विशेष अधिवेशन का पंजाब के साथ हुई ज्यादतियों के प्रश्न पर विशेष तौर से विचार करना था और इसलिए "महानतम पंजाबी" अध्यक्षीय पद के लिए बहुत ही उपयुक्त रहता।

अन्य नामों का प्रस्ताव भी किया गया—उनमें स्वयं तिलक का नाम भी था। 24 जुलाई को उस वर्ष के कांग्रेस अध्यक्ष मोती लाल नेहरू की ओर से जोरदार तार मिला 'तिलक ने निश्चित रूप से मना कर दिया है। आपके अलावा और कोई उपयुक्त नहीं'। 27 जुलाई को नेहरू ने रमराव से फिर तार दिया (जहां एक बड़े मुकदमे में वह तथा प्रतिपक्ष के वकील के रूप में सी०आर० दास व्यस्त थे) 'आप विधिवत विशेष कांग्रेस के अध्यक्ष निर्वाचित हो गए हैं। बधाई'। परन्तु वह अब भी अनिश्चित थे, क्योंकि चुनाव ने कोई सर्वसम्मति और न ही स्पष्ट बहुमत का संकेत दिया था। परन्तु किसी भी ओर से उनके नाम का विरोध न हुआ, जिस प्रकार 1907 या 1914 में देखा गया था। उन्होंने कई मित्रों से सलाह ली और फिर भी कई रोज तक निर्णय न किया। उनके कागजों में 'ट्रिब्यून' लाहौर के सम्पादक कालीनाथ राय तथा उनके पुराने मित्र मूलराज के पत्र हैं—दोनों पर 28 जुलाई की तिथि है और दोनों ने उन्हें स्वीकार करने के लिए जोर दिया था।

'स्पष्ट बहुमत के दिन समाप्त होने जा रहे हैं और वर्तमान स्थिति में, जो लोग पूर्णतया आपके चुनाव के पक्ष में हैं, शायद वे भी और ही विचारों के कारण रुक गए हों, जिनका आपके दावों से बिल्कुल सम्बन्ध नहीं"। यह बात राय ने कही थी। और मूलराज ने कहा कि अध्यक्ष का काम दायित्वहीन नहीं होगा और उन्होंने संक्षिप्त रूप में उन बड़ी शक्तियों की चर्चा की जो उन्हें (कांग्रेस को) कुचलने के लिए तुली हुई थीं, परन्तु उन्होंने विशिष्ट तौर पर सलाह दी, 'शायद हमारे मित्र लाला हरकिशन लाल के शब्दों में सबसे उपयुक्त यही है कि हम यह मामला उच्च शक्तियों के हाथों में छोड़ दें।' इन सबसे अधिक, बंगाल के राष्ट्रवादियों की इच्छाओं को, जिनके प्रति उनके मन में बहुत आदर था और वे ही मेजबान थे, 29 जुलाई को एक तार द्वारा सूचित किया गया

"बंगाल का बहुमत पूरी तरह आपके चुनाव का समर्थन करता है। स्वीकार कर लो—चौधरी।" (यह सर आशुतोष चौधरी थे, जो कुछ समय पहले कलकत्ता हाई कोर्ट के जज के पद से मुक्त हुए थे और कलकत्ता में कांग्रेस की गतिविधियों में विशिष्ट भाग ले रहे थे)।

इस प्रकार वह कलकत्ता में एक मास के अन्दर होने वाले विशेष अधिवेशन की अध्यक्षता करने के लिए सहमत हो गए।

इस अवसर पर तिलक के देहांत ने (1 अगस्त 1920) उदासी और बढ़ा दी। इससे सारा देश शोकाकुल हो गया, परन्तु यह उन लोगों के लिए विशेष आघात था, जो असहयोग के नए कार्यक्रम में अभी भी अलग थे। वे उनके युक्तियुक्त निर्णय तथा नेतृत्व की आवश्यकता को बहुत बुरी तरह महसूस करते थे। लोकमान्य के स्तर के नेता के बिना किसी भी समय बहुत बड़ी शून्यता उत्पन्न हो सकती थी, ऐसे नाजुक अवसर पर यह शून्यता अवश्य ही राजनीतिक स्थिति का बहुत महत्वपूर्ण तत्व थी। लाहौर में कांग्रेस के एक अधिवेशन के अवसर पर प्रथम भेंट से लेकर, जो कोई बीस वर्ष पहले हुई थी, लाजपत राय तिलक की ओर आकर्षित रहे थे। समय बीतने के साथ यह अदृश्य बंधन, जो किसी शक्तिशाली व्यक्ति के कारण पैदा हुआ था, और अधिक मजबूत हो गया था। उनके राजनीतिक मत का मूल शायद समान था, परन्तु समय की नीतियों में कभी-कभार मतभेद होना आवश्यक था और कई बार ये मतभेद बहुत तीव्र होते थे, जैसे 1907 में सूरत में हुए। विशेष बात तो यह है कि उनके प्रति तिलक का आकर्षण कभी कम नहीं हुआ, चाहे मतभेद बहुत ही तीव्र दिखाई देते रहे हों। सूरत में [illegible] ने पक्षपात करने से इन्कार कर दिया था तो वह तिलक के कुछ [illegible] के मन से उतर गये थे परन्तु सूरत एक अमिट चित्र की छाप छोड़ गया [illegible] बात बनी रही और जिसे वह बड़ी प्रसन्नता से याद करते थे—वह था सूरत के दृश्य पर तिलक का छाये रहना। अपनी ओर से तिलक ने [illegible] अद्वितीय सदभावना दिखाई और लालाजी के [illegible] सम्बन्धों में कभी भी विकृति न आई हो। [illegible] किसी अन्य भारतीय नेता से उतना समर्थन न मिला, [illegible] उन्होंने किसी गुट के साथ औपचारिक [illegible] किया, परन्तु उनका राजनीतिक [illegible] गोखले के निधन के बाद वह तिलक [illegible]

हो गए थे, लेकिन प्रमुख की मृत्यु के बाद भी क्या उस गुट के साथ उनके स्नेह और वफादारी के संबंध बने रहने वाले थे ? गुट के अन्दर भी अपने तौर पर यह प्रश्न उभरा कि उसका नेता कौन होगा और कुछ का विचार था कि महाराष्ट्र से बाहर का कोई नेता हो और उनका संकेत पंजाब के नेता की ओर था जिसका राजनीतिक दृष्टिकोण वे जानते थे और जो अन्य किसी भी प्रमुख भारतीय नेता की तुलना में उनके नेता के दृष्टिकोण से अधिक मिलता था। तिलक के देहान्त के कुछ समय बाद यह स्पष्ट दिखाई देने लगा था कि यद्यपि महात्मा गांधी जोर देकर यह कहते थे कि यदि लोकमान्य जीवित होते, तो वह उनके आन्दोलन को आशीर्वाद देते। फिर भी तिलक गुट गुजरात के इस नए नेता के साथ ठीक तरह व्यवहार नहीं कर रहा था और न ही उनके नए उपदेश के प्रति, जिसका वह प्रचार कर रहे थे। इसमें लाजपत राय के लिए गांधीजी तथा उनके असहयोग आंदोलन के प्रति निश्चित रूप से बाध्य होने में कठिनाई और बढ़ी थी। अभी उनके लिए परिस्थिति को कुछ और समय के लिए निकट से देखना था।

कलकत्ता में अपने अध्यक्षीय भाषण में भी उन्होंने अपने आपको असहयोग कार्यक्रम के पक्ष या विरोध के लिए बाध्य न किया और भविष्य में आने वाले अध्यक्षों को भी यही सलाह दी कि किसी प्रकार के विवाद में तटस्थ रहने का क्या लाभ है।

"किसी ऐसे प्रश्न के बारे में जिस पर सारा देश स्पष्ट तौर से बंटा हुआ हो, जिस प्रकार हमारे समक्ष उपस्थित मुद्दे पर है अध्यक्ष को कांग्रेस के निर्णय का पूर्वानुमान लगाने की कोशिश नहीं करनी चाहिये।

'असहयोग कार्यक्रम के प्रश्न के बारे में मेरी अपनी राय है परन्तु कांग्रेस अधिवेशन के दौरान मैं निष्पक्ष रहकर कारवाई का संचालन करूंगा।"

('विशेष अधिवेशन' के अध्यक्ष के रूप में उनके लिए इस कथन के अनुसार चलना आसान था, क्योंकि इसका कार्यकाल अधिवेशन के साथ ही समाप्त हो गया)।

यद्यपि बहुत कम समय रह गया था—मुश्किल से एक महीना—जब उन्होंने इस पद के लिए स्वीकृति दी, अध्यक्षीय भाषण कोई 50 हजार शब्दों का जोरदार भाषण था। यह एक बहुत लम्बा काम था और अपने ढंग में उत्कृष्ट भी। वह तैयार भाषण देने वाले में नहीं थे क्योंकि, वह अपने श्रोताओं के साथ लगातार परिसंवाद की स्थिति बनाए रखते थे। खुशकिस्मती से उनकी स्मरण शक्ति न

उनकी इस समस्या का समाधान कर दिया। उन्होंने 50 हजार शब्दों का यह भाषण देते समय छपे हुए भाषण का बहुत ही कम सहारा लिया, इस प्रकार की वक्तृता शक्ति से बहुत से श्रोता आश्चर्यचकित रह गए।

इस भाषण का तीन चौथाई भाग पंजाब के कष्ट की लम्बी दास्तां के बारे में था, जो उसने ओ'डायर के शासन में झेले थे और जिसके परिणामस्वरूप मार्शल ला का दमन चक्र चला था। जबसे उन्होंने पंजाब के अपमान तथा कष्ट की खबरें सुनी थीं, उनके मन में जो पीड़ा उठ रही थी, वह उन्होंने अपने भाषण में उड़ेल दी। उन्होंने भाषण का आरम्भ ओ'डायर शासन के शुरू की कुछ घटनाओं की चर्चा से किया। उन्होंने याद दिलाया कि जब बैंकों का संकट उत्पन्न हुआ था, तो पंजाब नेशनल बैंक के निदेशक के तौर पर उनका व्यक्तिगत अनुभव क्या था।

"यूरोपियन संस्थाओं को तुरंत तथा उदारता से सहायता दी गई थी, परन्तु भारतीय संस्थाओं को समय पर सहायता न देकर डूब जाने दिया गया—ऐसा शायद नैतिक प्रभाव के लिए किया गया था बैंकों के संकट ने हमें अहसास दिलाया, शायद इससे पूर्व ऐसा अहसास नहीं था कि वर्तमान शासन प्रणाली ने हमें बहुत ही असहाय स्थिति में पहुंचा दिया है। हम उस स्थिति को बहुत गहराई से महसूस करते थे, जिसके कारण विदेशी पूंजीपतियों के लिये यह संभव हो गया था कि वे हमारे ऊपर अपनी पद्धति लागू करने के अलावा अपनी शर्तें तथा व्यापार भी हम पर लागू कर सकें, उसी धन से, जो सरकार ने राजस्व के रूप में हमसे ही वसूल किया था। जब औद्योगिक आयोग ने पंजाब का दौरा किया, लाला हरकिशन लाल ने अपनी गवाही में यह सारे तथ्य उसके सामने रखे और जब आयोग के एक सदस्य ने उनसे यह पूछा कि क्या वह जानते हैं कि वह क्या कह रहे हैं, तो उन्होंने जोरदार 'हां' में उत्तर दिया।"

अपने श्रोताओं के सम्मुख इसी तान में उन्होंने ओ'डायर के सारे शासन-काल की चर्चा की, ताकि यह दिखाया जा सके कि 'यह आरम्भ से अंत तक आतंकवाद और भय का शासन था और अप्रैल मई 1919 में उसे अपनी चरम स्थिति तक पहुंचा दिया गया था।" मांटेग्यू के शब्दों में (जनरल डायर के बारे में) जो विचार सर माईकल ओ'डायर ने अपने समक्ष रख लिये थे, वे थे—"आतंकवाद, निरादर, अधीनता और मार्शल-ला की घोषणा करने तथा इसे लागू करने के बारे में वे चरम सीमा पर पहुंच गए थे।" उन्होंने मार्शल-ला की कार्रवाइयों

का अध्ययन किया और यह निर्णय दिया कि "पजाब मे जो भी व्यक्ति मार्शल-लॉ लागू किए जाने के लिए तथा इसके दौरान तथा बाद मे होने वाली घटनाओ के लिए जिम्मेदार थे, सर माईकल उनमे से प्रमुख दोषी थे।" "असल मे मै तो यह कहने का साहस करूगा कि भारत मे सारे ब्रिटिश शासन के दौरान इतिहास मे किसी भी व्यक्ति ने ब्रिटिश साम्राज्य को इतनी हानि नही पहुचाई और ब्रिटिश कौम की नेकनामी को दाग नही लगाया, जितना सर ओ'डायर ने किया।"

उन्होने ओ'डायर के विरुद्ध बाकायदा आरोप पत्र तैयार किया, जिसमे लगभग बारह आरोप थे— जानबूझकर 'भेदनीति' अपनाई, साम्प्रदायिक, शहरी तथा देहाती लोगो मे मतभेद को बढावा दिया, भर्ती और युद्ध-कोष के सबध मे अपने अभियान के लिए अपने अधिकारो का दुरुपयोग किया और जो व्यक्ति उस के 'पाशविक तथा भयकर' कार्यो मे उसकी कठपुतलिया बनने के दोषी थे, उन्हें सरक्षण दिया, ऐसी स्थिति पैदा करने के लिए कि मार्शल लॉ लागू करने की घोषणा हो। उन्होने ओ'डायर पर आरोप लगाया कि उसने भारत सरकार को गुमराह किया तथा जान-बूझकर धोखा दिया ताकि इसके लिए स्वीकृति ली जा सके और मार्शल लॉ जारी रखने के लिए उसने जान बूझकर हेरा-फेरी की। आरोप-पत्र मे उसे पाशविक आदेश लागू करने तथा मार्शल लॉ आदेशो के अधीन पाशविक सजाए देने के लिए भी जिम्मेदार ठहराया गया, जिसके लिए उसने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष स्वीकृति दी। उन्होने यह आरोप भी लगाया कि वह "जलियावाला कत्लेआम की घटना के लिए भी जिम्मेदार था", क्योकि उसने इसके लिए बिना शर्त स्वीकृति दी थी। आरोप पत्र की अतिम बात यह थी कि ओ डायर ने अपना पद छोडने से पूर्व 'गैरकानूनी ढग से तथा जबरी प्रशसा पत्र प्राप्त किए कि उसकी सेवाए शानदार थी—ये प्रमाण पत्र उसने अपनी सफाई के लिए इग्लैड मे गैरकानूनी ढग से इस्तेमाल किए। लाजपत राय ने जो आरोप लगाए, उनके समर्थन मे प्रमाण भी जुटाए। उनके भाषण का बडा भाग य प्रमाण ही थे, जिसके लिए उन्होने ओ डायर के अपने कथनो से ही उद्धरण दिए। ओ डायर के कार्यकाल के आरम्भिक समय के बारे मे प्रमाणो के लिए उन्होने अपनी निजी जानकारी को आधार बनाया। बाद के काल के लिए उन्होने ये प्रमाण उन तथ्यो से लिए कि किस प्रकार ओ' डायर ने युद्ध के लिए भर्ती की तथा किस तरह 'स्वेच्छा' से चदा लिया। जारशाही ढग से 'षड्यत्र' के मामले बनाए तथा उनका निपटारा किया। इसके अतिरिक्त उन्होने हटर रिपोर्ट तथा काग्रेस उप समिति की रिपोर्ट का, जो मार्शल लॉ की

गड़बड़ से सम्बद्ध थी, तथा दो प्रमाणिक स्रोत पुस्तकों का इस्तेमाल किया, जो प्रमाणों से भरपूर थीं।

बाद में ओ'डायर ने सर शंकरन नायर के विरुद्ध मानहानि का मुकदमा जीत लिया और दावा किया कि इस तरह उसका पक्ष ठीक सिद्ध हुआ है। असलियत यह थी कि शंकरन नायर के पक्ष में एक बहुत बड़ी बाधा यह थी कि वह ओ'डायर के गलत कार्यों में अप्रत्यक्ष तौर से भागीदार रहे थे, क्योंकि वह भारत सरकार के सदस्य थे। भारत सरकार ओ'डायर के सामने बहुत कमजोर सिद्ध हुई और हकीकत यह है कि सर शंकरन निराश होकर नौकरी छोड़ गये थे और इस प्रकार उस विवाद में एक पक्ष बन गये थे, जो ओ'डायर के लिए लाभप्रद ही था। वैसे इस सारी बात का अर्थ इतना ही था कि भारत सरकार ने कभी भी उसका हाथ नहीं रोका था। परन्तु यदि वह अपने आप को सही अर्थों में ठीक सिद्ध करना चाहता था तो उसे कांग्रेस उप समिति के विरुद्ध मानहानि का दावा करना चाहिए था, या शायद हंटर समिति के अधिकांश सदस्यों के विरुद्ध मुकदमा चलाने की आज्ञा लेनी चाहिये थी और इस सबसे अधिक उसे लाजपत राय पर मुकदमा दायर करना चाहिये था, जिन्होंने अन्य सभी लोगों के मुकाबले और अधिक जोरदार शब्दों में उसके विरुद्ध गंभीर आरोप लगाए थे। पंजाब ने, जिसे ओ'डायर ने आतंकित किया था, लालाजी के माध्यम से, उसके विरुद्ध उसकी गलत कारवाइयों के लिए आरोप लगाए थे और इन आरोपों को कभी चुनौती नहीं दी गई थी।

पंजाब के साथ की गई ज्यादतियों के अतिरिक्त विशेष अधिवेशन को दो अन्य महत्वपूर्ण प्रश्नों पर विचार करना था—तुर्की की शांति संधि तथा माटेंग्यू सुधारों को कार्यान्वित करने के लिए बनाए गए नियमों पर। सुधारों के बारे में उन्होंने अपनी योजना को संक्षेप में, किंतु स्पष्ट रूप से, एक वाक्य में समाप्त कर दिया।

"1918 में यह आंशिक तौर पर उल्लास की बात थी, 1919 में यह विषाद बन गई और 1920 में इसने निराशा का रूप ले लिया।"

जो कुछ 'उल्लास' उनके मन में उत्पन्न हुआ था, जब सैक्रेटरी आफ स्टेट और वाइसराय की संयुक्त-रिपोर्ट आई थी, वह रिपोर्ट द्वारा कानून का रूप लेने पर बिल्कुल गायब हो गया और जब इस कानून को लागू करने के लिए नियम बनाए गए तो यह और अधिक निराशा का विषय बन गया। उन्होंने अपने लोगों से यह निश्चय करने को कहा कि "वह पूरी रोटी चाहते हैं, उसका आधा टुकड़ा नहीं।

आज मुझे यह विश्वास होता कि इस आधे भाग का चयन अफसरशाही ने नहीं किया, तो मैं उस आधे भाग को लेने से भी इंकार न करता। यह अफसरशाही मिलावट और पकाने में इतनी दक्ष है कि जो आधा भाग वह रखना चाहती है, उसी में सारे पौष्टिक तत्व है और बाकी का आधा भाग भूसे से भी बुरा है। वे इतने कौशल से व्यवस्था करते है कि आटा गूंधते समय उस आधे भाग में रोग के कई कीटाणु डाल देते है, जो आपको देने का प्रस्ताव है।

इसे सौभाग्य ही कहा जाना चाहिए कि हिंदू, मुसलमान, सिख, ईसाई, शहरी और देहाती, ब्राह्मण तथा गैर ब्राह्मण, स्वदेशी तथा विदेशी, ब्रिटिश नागरिक तथा देशी रियासतों के रहने वाले सैनिक तथा असैनिक का जो भेद नियमों तथा अधिनियमों में रखा गया है, उसके होते हुए भी, हम एक राष्ट्रीय भावना उत्पन्न कर सके और एक स्वतंत्र राष्ट्र के तौर पर जीने और प्रगति करने योग्य हो सके।"

तुर्की की संधि के बारे में वह बहुत जोरदार ढंग से तथा बुद्धिमत्ता से बोले। इस प्रश्न के धार्मिक पक्ष ने उनका अधिक समय नहीं लिया।

"श्री लेलैंड बक्सटन के शब्दों में यह कोई विशेष महत्व की बात नहीं कि यह प्रोफेसर या वह डाक्टर इस बारे में क्या सोचता है कि मुसलमानों का क्या विश्वास है। महत्व की बात तो यह है कि सुन्नी मुसलमानों की बहुसंख्या यह सोचती है कि तुर्की का सुल्तान उनका खलीफा है और मुसलमानों का हित इसी में है कि वह बड़े, शक्तिशाली और स्वतंत्र देश का प्रमुख हो। मुस्लिम कानून की पुस्तकें इस राज्य की सीमाएं निर्धारित करती है।"

केवल धार्मिक पहलू के बारे में अन्तिम निर्णय उस मत के अनुयायियों का होना चाहिए

"तब हमें यह बात स्वीकार कर लेनी चाहिए कि इस मामले में केन्द्रीय खिलाफत समिति ने जो निर्णय दिया है, वह सही है। यह मामला हमारे मुसलमान हमवतनों को निपटाना है और इस बारे में उन्होंने निर्णय कर दिया है।

इस बात में कोई संदेह नहीं कि ब्रिटिश प्रधान मंत्री ने भारतीय मुसलमानों से जो इकरार किए थे, शान्ति-संधि का समय आने पर उन वायदों को रद्दी की टोकरी में फेंक दिया गया, इस बात में भी कोई सन्देह नहीं कि भारतीय मुसलमानों

म "तुर्की शाति सधि इस्लाम के मूलभूत सिद्धाता का घोर उल्लघन करती ह, उनके धार्मिक दायित्व निभाने म बाधा डालती है और उस राष्ट्र के साथ मैत्रीपूण सबध बनाए रखना असभव करती है, जो उसका कारण है।"

शाति सधि क राजनीतिक परिणाम और भारत की समस्या पर उसके अप्रत्यक्ष प्रभाव (केवल भारतीय मुसलमाना पर ही नही) के बारे म उन्हे बहुत कुछ कहना था

"परन्तु मेरे अनुमान म तुर्की शाति सधि म कई और मामले भी शामिल है, जिन पर विचार करने की आवश्यक्ता है। म तो यह कहता हू कि एशिया म ब्रिटिश शासन का और विस्तार भारत के हिता के लिए हानिकर है और मानवजाति की स्वाधीनता के लिए घातक है। ब्रिटिश शासको ने एशिया और अफ्रीका के कई क्षेत्रा को जीतने के लिए बार बार भारतीय सैनिका का इस्तेमाल किया है। बहुत समय के लिए यह अलिखित कानून रहा है, जिसका यूरोप के सभी शासको ने पालन किया कि यूरोप के किसी भी युद्ध मे गैर-यूरोपियन सैनिक इस्तेमाल नही किए जाएगे। पिछले युद्ध म इस कानून को समाप्त कर दिया गया। मित्र राष्ट्रो द्वारा युद्ध से पूव तथा बाद म अफ्रीकी तथा भारतीय सैनिक इस्तेमाल किए गए। काले सनिको ने जमनी पर कब्जा किया और कुछ समय के लिए आयरलैंड म भी रह। निस्सदेह मैं घृणाजनक सामाजिक प्रतिबध हटाए जान के विरुद्ध नहीं हू। उस दृष्टि से तो मैं उसका स्वागत करता हू, परन्तु उससे निश्चय ही सैन्यवाद की सभावना बढती है।"

विस्तृत सभावनाए शायद कई व्यक्तिया की समझ म न आई हो।

"यदि ब्रिटिश साम्राज्यवादिया को भारतीय सना मिस्र, ईरान, अरब, मेसोपोटेमिया, सीरिया और मध्य-एशिया म इस्तेमाल करने मे कोई सकोच नही, तो उन्हें इन देशो से भर्ती की गई सेना का हमारे विरुद्ध इस्तेमाल करने मे क्यो सकोच होगा? यदि यह सत्य सिद्ध हो जाए तो हिंदू मुस्लिम समस्या दस गुनी अधिक गभीर तथा खतरनाक हो जाएगी।"

इसके विपरीत, "यदि इन देशो की मुस्लिम जनसख्या ब्रिटिश कब्जे का विरोध जारी रखे, जो सभव है कई वर्षो तक जारी रहेगा, तो इन क्षेत्रो मे उनके विरुद्ध युद्ध करने के लिए भारतीय सेना लगातार वहा रखी जाएगी। इसका अथ है कि हमारे मानवीय तथा आर्थिक साधनो पर समाप्त न होने वाला व्यय होता रहेगा।"

उन्हें इस बारे मे कोई भ्रम नही था कि लीग आफ नेशन्स अलग अलग देशो के बीच नया सौहार्द पैदा करेगी —"सज्जनो लीग आफ नेशन्स जैसी कोई वस्तु नही है । ग्रेट ब्रिटेन और फ्रास ही लीग है ।"

उन्होने खिलाफत के साथ अत्याचार की बात दृढता से की और पजाब के साथ हुई ज्यादती की बात पूरे जोर से कही, परन्तु जैसा हमने कहा है, वह इन दोनो के परिणाम के बारे मे चुप रहे, वह था इन ज्यादतियो को दूर करने के लिए महात्मा गाधी का असहयोग कार्यक्रम । गाधीजी का अली भाइयो तथा कई अन्य मुस्लिम नेताओ ने समर्थन किया और आखिरकार अमृतसर काग्रेस अधिवेशन के अध्यक्ष पण्डित मोती लाल नेहरू ने भी । मोती लाल छोटा सा परिवर्तन चाहते थे—कि स्कूलो तथा अदालतो का बहिष्कार धीरे धीरे किया जाए—और यह सशोधन करवाने के बाद, असहयोग प्रस्ताव स्वीकार कर लिया, जो स्वय गाधीजी ने रखा था । विपिन चन्द्र पाल ने एक सशोधन रखा, जिसका सी० आर० दास ने समर्थन किया । दरअसल, गाधीजी के कार्यक्रम का विरोध करने का नेतृत्व दास के हिस्से मे आया । तिलक का देहावसान हो चुका था । लाजपत राय अध्यक्ष की निष्पक्षता से ही सतुष्ट थ । इस प्रकार दास ने बगाल और महाराष्ट्र के राष्ट्रवादियो का इस कार्यक्रम का विरोध करने मे नेतृत्व किया । विषय समिति म यह प्रस्ताव बहुत कम बहुमत से, अर्थात् केवल सात मतो के अन्तर से, पास हुआ, परन्तु पूर्ण अधिवेशन मे गाधीजी ने भारी बहुमत से विजय प्राप्त की । मतदान व्यापक रूप से हुआ । इस उद्देश्य के लिए पण्डाल खाली करवाया गया और मतदान को, जो स्वय अध्यक्ष की निगरानी मे हुआ, छ घटे लगे । कुल 1,855 मत गाधीजी के प्रस्ताव के पक्ष मे तथा 873 सशोधन के पक्ष मे आए । समापन अधिवेशन म लाजपत राय ने कुछ शकाए व्यक्त की, शेष अधिवेशन से वह वैस ही 'निष्पक्ष' आए जसे गए थे ।

असहयोग के सिद्धात से वह हृदय से सहमत थे । कलकत्ता कार्यक्रम के साथ भी एक प्रकार से उनका कोई विरोध नही था । यह तो जिसे ब्यौरा कहा जा सकता है उसी पर ही वह अड गए । परन्तु उन्होने यह आवश्यक समझा कि अपने अनुराग के बारे मे स्पष्ट कर दें । 'वफादार' लोग सरकार की ओर से दिए गए खिताब तथा अलकरण लौटाने को तैयार न थे, परन्तु यह बात अच्छाई म ही थी कि अन्य लोग इस भीड से निकल जाए और लोगो की आखो म इसकी साख गिर जाने दें । यदि वकीलो की भारी सख्या अदालतो का बहिष्कार कर दें, तो लोगो का जाएगा कुछ नही, बल्कि उन्हें बहुत बडी प्राप्ति होगी । उनका अपना भी फिर

से वकालत आरम्भ करने का कोई इरादा नहीं था और अपने अनुभव से उन्हें पता था कि ब्रिटिश न्याय प्रणाली ने क्या हानि की है। राष्ट्रवादी गुट ने गांधीजी के कार्यक्रम के अन्य आलोचकों के लिए विधान मण्डलों का बहिष्कार सबसे बड़ी बाधा थी, परन्तु यह सुझाव स्वयं लाजपत राय ने दिया था और गांधीजी ने इसे शामिल कर लिया था। कलकत्ता अधिवेशन के बाद उन्हें अपना विचार बदलने का कोई औचित्य दिखाई न दिया। शिक्षा के बहिष्कार को वह आसानी से स्वीकार न कर सके। राष्ट्रीय शिक्षा के उद्देश्य के लिए वह अपनी दृष्टि के अनुसार कार्य करते रहे थे, उसी समय से जब से वह एक युवक के तौर पर सार्वजनिक जीवन में शामिल हुए थे। भारत में तथा विदेश में उन्होंने बहुत-सा समय राष्ट्रीय शिक्षा से सम्बद्ध समस्याओं का सावधानी से अध्ययन करने में लगाया था। चोटी के बहुत ही कम नेताओं ने इन समस्याओं के अध्ययन में जो समय लगाया था, वह लाजपत राय द्वारा इस उद्देश्य के लिए लगाए समय से आधा भी नहीं था। अपने अनुभव तथा अध्ययन को उन्होंने 'द प्राब्लम आफ नेशनल एजुकेशन इन इंडिया' में प्रस्तुत किया था जिसकी पाण्डुलिपि वह भारत लौटने से पूर्व अंग्रेज प्रकाशक को सौंप आए थे। उन संस्थाओं से, जिन्हें बनाने में उन्होंने बड़ी लगन से सहायता दी थी, जो निराशा तथा कटु अनुभव उन्हें हुए, उसे देखते हुए कोई व्यक्ति उस हानि की गहराई तथा गंभीरता से नहीं समझ सकता था, जो गलत शिक्षा प्रणाली ने लोगों को पहुंचाई थी। फिर भी वह स्कूली शिक्षा से राष्ट्र के लोगों को होने वाले लाभ को देखते हुए इसे समाप्त करने के पक्ष में नहीं थे।

कार्यक्रम के विभिन्न गुणों के अतिरिक्त उन्हें जिस बात की चिन्ता थी वह थी—क्या इसके लिए उपयुक्त समय है? गलतियों का कोई महत्व नहीं, यदि बगुले के समान अभियान, लोगों के सही तथा दृढ़ समर्थन के साथ सफल हो जाए, कागजों पर बनाई गई पूरी तरह सफल योजना बिल्कुल असफल हो सकती है, यदि उसे लोगों का मन स्वीकार न करे। इसलिए वह इस बात को उचित समझते थे कि घटनाचक्र की प्रतीक्षा की जाए तथा उसका अध्ययन किया जाए। वह आंदोलन में न कूदे, परन्तु जो लोग इसमें शामिल हुए न उनकी आलोचना की और न निन्दा। "मुझे आत्म त्याग के इस निर्णय में देश से समर्थन प्राप्त होने के बारे में संदेह है। मैं आंदोलन की प्रगति में बाधा डालने वाली कोई बात नहीं करूंगा। मैं आपके लिए सफलता की कामना करता हूं और यदि आपको लोगों का समर्थन प्राप्त हो जाता है, तो मैं आपका उत्साही समर्थक हूंगा।" यह बात

गाधीजी ने (तिलक की मत्यु के बाद) असहयाग आन्दोलन के बारे म तिलक के व्यवहार के बारे मे कही। उस समय लाजपत राय का रवैया भी कोई भिन्न नहीं था। एक बात के बारे मे वह अपन मन मे पूरी तरह स्पष्ट थे—'एक वष के अदर स्वराज' सभव न होने की बात। वह उन आशावादी लोगो में से नहीं थे, जिनका यह विश्वास था कि यदि वह कलकत्ता-कायक्रम को एक वष के लिए कार्यान्वित कर दें, तो सरकारी तत्र ठप्प हो जाएगा और भारत पर शासन करने की ब्रिटिश दृढ़ता टूट जाएगी। वह भली भाति जानत थे कि स्वराज के लिए सघष काफी सख्त और लम्बा होगा और कलकत्त-कायक्रम अधिक से अधिक प्रारभिक चरण हो सकता ह। 'स्वराज तक आप प्रतीक्षा करे' का नारा जनोत्तेजक नेताओ के लिए आकषक हो सकता था, परन्तु उनके विचार मे राष्ट्रीय नेताओ के लिए बुद्धिमत्ता की बात नहीं थी कि वे राष्ट्रीय राजनीति को ऐसे नारो पर आधारित करें, जो ऐसी आकाक्षाए उत्तेजित कर, जिनके पूरा होन की सभावना कम ही हो।

47. असहयोग

लाहौर लौटकर वह चुपचाप उस काय म जुट गए, जो उन्होंने असहयोग अधिवेशन स पहले अपन हाथ म लिया था। वह अपन उर्दू दैनिक 'वन्दे मातरम्' के लिए काय करते थे और उन्होंने 'राजनीति की तिलक विचारधारा' (तिलक स्कूल आफ पालिटिक्स) की योजना आरंभ कर दी, जिसकी घोषणा उन्होंने पहले ही कर दी थी। वह उस स्कूल के लिए धन एकत्र करने जाते थे, यद्यपि वह छात्रों को कालिज छोड़ देने के लिए नहीं कहते रहे थे, बल्कि वह सोचते थे कि यदि उनमें से कुछ ने 'असहयोग' किया, तो सभव है उन्हें ठोस राजनीतिक प्रशिक्षण देने के लिए स्कूल को अच्छा अवसर मिल जाए।

पंजाब म असहयोग अभियान सही अर्थों म शुरू होता दिखाई नहीं देता था। पंजाब कांग्रेस समिति ने इसके लिए काफी उत्साह न दिखाया, इसलिए सैफुद्दीन किचलू, के० सथानम और सारदूल सिंह कवीश्वर को सचिव बनाकर एक तदर्थ असहयोग समिति गठित कर दी गई। ये तीनों व्यक्ति तथा रामभज दत्त चौधरी और सरला देवी असहयोग अभियान के प्रमुख नेता थे। कुछ समय बाद कुछ कालिज छात्रों न भी उनकी सहायता करनी आरंभ कर दी। सथानम और कवीश्वर ने लाजपत राय और हरकिशन लाल का समर्थन प्राप्त करने का जोरदार प्रयत्न किया, क्योंकि व जानते थे कि इन बड़े नेताओं के बिना पंजाब म सही अर्थों म जोरदार अभियान चलाया जाना संभव नहीं था। हरकिशन लाल, जो बड़े जोरदार उपहास करने वाले थे, उनके जोरदार अनुरोध सुनते रहते और उन्हें हंसी मजाक म टाल देते जिसके कारण वे यही अनुमान लगाते रहते कि उसका अर्थ 'हां' से है या 'न' से। वह सभी गंभीर दलीलों को हंसी म उड़ा देते और 'हां' या 'न' दोनों ही अनुमानित हुए रहते। लाजपत राय आंदोलन के लिए शुभ कामना करते, परंतु वह अभी इसमें शामिल होने को सहमत न होते थे।

महात्मा गांधी पंजाब आए, कुछ दिनों के लिए कालिज छात्रों म बहुत उत्तेजना फैली और उनकी हड़तालों ने प्रबंध समितियों को चिंतित कर दिया। महात्मा गांधी को देखने तथा सुनने के लिए लोगों की भारी भीड़ भी एकत्र हुई। परन्तु यह यात्रा लालाजी को आंदोलन मे शामिल करवाने मे असफल रही। गांधीजी के चले जाने के पश्चात भारी संख्या में छात्रों ने, जिन्होंने हड़ताल म भाग लिया

था, अपनी सामान्य पढाई फिर आरभ कर दी, केवल मुट्ठी भर छात्र कालिज न गए। उनकी यात्रा का परिणाम कुल मिलाकर कोई विशेष न हुआ। पजाब अब भी स्थिति का जायजा लेता हुआ दिखाई देता—और लालाजी की स्थिति तो निश्चय ही यही थी।

छात्र—व्यक्तिगत रूप से (या छोटे गुटो मे), सामूहिक रूप से बिल्कुल नहीं—लालाजी से मशविरा लेने आते कि क्या वे असहयोग मे शामिल हो जाए। उनका सामान्य उत्तर यही होता था कि छात्रो को अपनी लाभ-हानि का जायजा स्वय लेकर निर्णय करना चाहिए। वह कालिजो मे दी जा रही उदार शिक्षा को अधिक महत्व नही देते थे, परन्तु उनका विचार था कि किसी छात्र को इस शिक्षा का त्याग तभी करना चाहिए, जब वह उसके बहुत विरुद्ध हो और इस सबध मे दृढ हो, केवल क्षणिक मनोवेग के अधीन ऐसा न कर रहा हो। यदि राय लेने वाला डाक्टरी या इजीनियरी का छात्र हो या ऐसे छात्र के पिता हो, तो वह निश्चित तौर पर असहयोग करने के विरुद्ध सलाह देते। केवल स्नातक होना बेकार था, परन्तु देश को अधिक डाक्टरो, इजीनियरो तथा तकनीशियनो की जरूरत थी। कानून के छात्रो को वह खुले दिल से असहयोग करने की सलाह देते थे।

कभी कभार उनके पास वे लोग भी आते, जिन्होने निश्चित रूप से अपनी कालिज शिक्षा से 'असहयोग' किया था। वे उनके पास आशकाए लेकर आते, क्योकि वह आदोलन के साथ नही थे। परन्तु उन्हें इस बात से आश्चर्य होता कि लाजपत राय का रवैया मैत्रीपूर्ण होता और वह उन्हें खुशी से सलाह देते और इनके लिए तिलक स्कूल उनका स्वागत करता। वह उन्हें सलाह देते कि वे हर शिक्षा से असहयोग न करें। वह जानते थे कि आम तौर पर छात्रो ने अपने माता पिता की इच्छा के विरुद्ध शिक्षा से असहयोग किया है। उनके लिए उन्होने किराये पर एक हास्टल की व्यवस्था कर दी और उनके निर्वाह के लिए वजीफे देने के वास्ते वह उदारता से 'स्कूल' के कोष से धन की व्यवस्था करते थे। इस स्कूल मे केवल उनके अपने राज्य से ही असहयोग करने वाले छात्र नही आते थे, कुछ उत्तर प्रदेश से कुछ केन्द्रीय प्रान्त और महाराष्ट्र से और एक या दो दक्षिण से भी आए।

इस प्रकार नागपुर मे होने वाले कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन तक यह स्थिति इस तरह धीरे धीरे चलती रही। अब समय आ गया था कि या तो वह सक्रिय रूप से आन्दोलन मे शामिल हो जाए या निश्चित तौर पर इससे अलग हो जाए।

यद्यपि पजाब म आदोलन पूरी तरह तज नही हुआ था, वह दख सकते थे कि इसकी सभावना काफी थी। दो अन्य प्रान्ता म आदालन के प्रति उत्साह उन के लिए प्रसन्नतापूर्ण और आश्चर्यजनक था।

एक प्रकार से वह आदोलन की ओर आकर्षित हो रहे थे और उनकी निष्पक्ष मैत्री की अपनी मौज थी। कांग्रेस अधिवेशन के साथ साथ नागपुर म अखिल भारतीय छात्र सम्मेलन भी आयोजित किया जा रहा था। उन्होने सम्मेलन की अध्यक्षता करन का निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। फिर कलकत्ता वाली स्थिति बन गई, कांग्रेस द्वारा असहयोग प्रस्ताव पास किया जाना, जिसे वह स्वीकार नही कर सकत थे—अन्तर केवल इतना था कि छात्र सम्मेलन आयोजित करन वाले यह पहले से जानते थे कि वे क्या करने जा रहे हैं और यह भी जानते थे कि यह बात उनके अध्यक्ष के अनुकूल नही होगी।

परन्तु उन्होने छात्रा के साथ बिलकुल स्पष्ट तौर स बात करन से कन्नी नही काटी, ऐसा जान पडता था कि वह इस सम्बन्ध मे गहराई से सोच रहे थे।

कलकत्ता मे विशेष कांग्रेस अधिवेशन म अपन भाषण के अन्त म मन कहा था कि "म असहयोग की उस बात के विरुद्ध हू, जा स्कूला तथा कालिजो का बहिष्कार करन से सम्बद्ध है।" कांग्रेस अधिवेशन से लौटन क तुरत बाद मन एक सावजनिक सभा को सबोधित किया और मैंने छात्रा तथा अन्य लागा को बताया कि म आर्ट्स तथा कानून के सभी कालिजो को समाप्त करन का स्वागत करूगा। जब भी छात्र मेरे पास सलाह लेने क लिए आते थे, मै निम्नलिखित शीर्षको के अधीन सलाह देता था

"कानून के कालिज तुरत छोड दो। डाक्टरी, इजीनियरी और तकनीकी कालिज बिलकुल न छोडो। आर्ट्स कालिज स्थिति पर अच्छी तरह विचार करो।"

हम सभी इस बात पर सहमत थे कि "वतमान शिक्षा प्रणाली म अफसरशाही को मजबूत करने की प्रवत्ति है। हम इसके लिए कम से कम काय करना चाहिए, हमे अपनी वतमान राजनीतिक जिम्मेदारियो को महसूस करते हुए ऐसी संस्थाए स्थापित करनी चाहिए जो सरकार के वित्तीय तथा शैक्षिक नियत्रण से मुक्त हो।

परन्तु मैं यह नहीं जानता कि हम इस बात के लिए सहमत हैं कि जो राष्ट्रीय स्कूल तथा कालिज अब स्थापित किए गए हैं उन में राजनीतिक प्रचार करने का अधिक महत्वपूर्ण कार्य भी करेंगे। हम ऐसा नहीं कर सकते। हम तो कम-से-कम समय में स्वराज प्राप्त करना है और हम अपना समय तथा शक्ति ऐसी समस्या के समाधान के लिए नहीं दे सकते जिसके लिए धन तथा समय दोनों की आवश्यकता है। इस लिए मैं अपने मित्रों से कहता रहा हूं कि हमें कोई ऐसी जिम्मेवारी नहीं लेनी चाहिए और न कोई ऐसा कार्य संभालना चाहिए जो किसी भी प्रकार से उस कार्य के प्रतिकूल हो, जो हमारे हाथ में ले रखा है। यदि हम ऐसा करते हैं तो हम अपनी शक्ति उन कार्यों में नष्ट करेंगे, जिनके परिणाम शीघ्र प्राप्त होने की संभावना नहीं। हम राष्ट्रीय सरकार की स्थापना के बिना राष्ट्रीय शिक्षा नीति तैयार नहीं कर सकते। यह बात स्पष्ट करने के बाद मैं हर छात्र से पूछता और उसे प्रोत्साहित करने के लिए तैयार हूं कि प्रत्येक छात्र जो किसी भी भाग से तथा कारण से कालिज में है वह कालिज छोड़ दे। यदि कांग्रेस के आन्दोलन को महत्वपूर्ण बनाना है और उसे इस बात के बारे में कोई भ्रम न हो कि उनकी शिक्षा के लिए स्थानीय प्रान्तीय या राष्ट्रीय तौर पर व्यवस्था की जा रही है। संभव है कुछ स्थानों पर व्यवस्था की जाए किस प्रकार की जा रही है परन्तु उस पर अभी आग्रह नहीं करना चाहिए।

छात्रों ने उनके चेतावनी देने वाले शब्दों की ओर कोई ध्यान न दिया और "बिना शर्त" सभी सरकारी और सरकारी सहायता प्राप्त कालिजों और सरकार की ओर से अधिकार प्राप्त विश्वविद्यालयों का "बहिष्कार" करने का निर्णय किया। प्रस्ताव में आशा की गई कि "राष्ट्रीय नेता प्रत्येक प्रांत में शीघ्र ही राष्ट्रीय कालिज स्थापित करें जो राष्ट्रीय प्रणाली पर राष्ट्रीय विश्वविद्यालयों से सम्बद्ध हों तथा वे भारतीय युवकों की सामान्य शिक्षा तथा औद्योगिक प्रशिक्षण के लिए शिक्षा संस्थाएं स्थापित करें।"

उन्होंने चेतावनी के ये शब्द कहकर अपना कर्तव्य पूरा कर दिया था और सम्मेलन से चले गये, ताकि जो निर्णय वे उचित समझें ले लें। उनकी कांग्रेस नेताओं को सलाह मशविरे के लिए जरूरत थी।

खुशकिस्मती से कांग्रेस में भी उस समय समझौते की भावना थी। पिछले तीन महीनों में सभी ने महसूस कर लिया था कि उन्हें गांधीजी का स्वीकार करना ही होगा और गांधीजी ने भी महसूस कर लिया था कि यदि लाजपत राय और सी० आर० दास ने उनके साथ सहयोग न किया, तो वह कितने निःसहाय होंगे। वह उनका सहयोग प्राप्त करने के लिए चिंतातुर थे, क्योंकि वह चाहते थे कि संयुक्त मोर्चा बनाया जाए। दोनों पक्ष ईमानदारी तथा सच्चे दिल से एकता चाहते थे और इस बात के लिए सहमत थे कि केवल ब्यौरे के प्रश्न पर ही वे शर्तें नहीं रखेंगे।

कलकत्ता प्रस्ताव में लालाजी ने शिक्षा के बहिष्कार के बारे में जो आपत्तियां की थीं, उनकी ओर ध्यान दिया गया था और आपत्तियां दूर करने के लिए नया फार्मूला तैयार किया गया था। कलकत्ता के प्रस्ताव में कहा गया था

"सरकारी, सरकार से सहायता प्राप्त करने वाले तथा सरकारी नियंत्रण वाले स्कूलों तथा कालिजों से धीरे-धीरे बच्चों को हटा लेना और विभिन्न प्रांतों में राष्ट्रीय कालिज तथा स्कूल स्थापित करना।"

नागपुर में इसे विस्तार दिया गया

"16 वर्ष या इससे अधिक आयु के छात्रों से सरकारी, सरकार से सहायता प्राप्त तथा किसी प्रकार की सरकारी नियंत्रण वाली संस्थाओं से तुरंत हट जाने का आग्रह और बिना इसके परिणाम के बारे में सोचे, यदि वे महसूस करें कि इन

संस्थाओं में रहना उनके जमीर के विरुद्ध है क्योंकि उनकी प्रणाली पर सरकार का प्रभाव है, जिसे राष्ट्र ने समाप्त करने का निश्चय किया हुआ है और ऐसे छात्रों को सलाह देना कि या तो वे असहयोग आंदोलन के सिलसिले में कोई विशेष सेवा करें या राष्ट्रीय संस्थाओं में अपनी शिक्षा जारी रखें।

"सरकार से सम्बद्ध या सहायता प्राप्त स्कूलों के न्यासियों, प्रबंधकों तथा अध्यापकों को तथा नगर पालिकाओं और स्थानीय बोर्डों से आह्वान करना कि वे उनके राष्ट्रीयकरण में सहायता करें।"

लालाजी इस बात से संतुष्ट थे कि स्कूली शिक्षा को समाप्त करना टल गया है और स्कूल जाने वाले छोटे बच्चों तथा कालिज जाने वाले तरुणों में आवश्यक विभेदीकरण किया गया है और राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली आरंभ करने की जिम्मेदारी जो कलकत्ता प्रस्ताव में दिखाई देती थी, वह जल्दबाजी में नहीं की गई। यदि केवल डॉक्टरी तथा तकनीकी शिक्षा को स्पष्ट तौर से अलग कर लिया जाता तो उनकी नीति का पूरी तरह समर्थन हो जाता, परन्तु ऐसा होना आसानी से संभव दिखाई नहीं देता था जैसा कि उन्होंने स्वयं छात्र सम्मेलन को बताया था। वह जानते थे कि डाक्टरी और इंजीनियरी शिक्षा ब्रिटिश सैनिकवाद के साम्राज्य के उद्देश्यों के लिए इस्तेमाल हो रही है। उन्होंने जो प्राप्त किया, उसी से पूरी तरह संतुष्ट थे।

सी० आर० दास विधान मण्डलों का बहिष्कार करने का सैद्धांतिक तौर पर विरोध करते थे। नागपुर-अधिवेशन से पूर्व आम चुनाव समाप्त हो गए थे। बहिष्कार की कृपा से 80 प्रतिशत से अधिक मतदाताओं ने मतदान में भाग नहीं लिया था। नागपुर में जब रात को देर तक समझौते तथा संयुक्त मोर्चा बनाने की बात चल रही थी, सी०आर० दास ने मुहम्मद अली को बताया कि उन्होंने असहयोग को स्वीकार करने का निर्णय कर लिया है। इस बात से मुहम्मद अली को इतनी प्रसन्नता हुई कि उन्होंने बंगाल के नेता के दोनों गाल चूम लिए। अगले दिन प्रमुख प्रस्ताव, जिसमें कलकत्ता का प्रस्ताव दोहराया गया था और समझौते के बाद अंतिम रूप से संशोधित असहयोग कार्यक्रम शामिल किया गया था, सी० आर० दास ने पेश किया और लाला लाजपत राय ने उसका अनुमोदन किया। यह महात्मा गांधी की बहुत बड़ी जीत थी—ऐसी जीत जिसका श्रेय दास, गांधी और लाजपत राय को समान रूप में जाता था। कांग्रेस के अधिकृत इतिहासकार से इस अवसर का वर्णन कुछ विकृत ढंग से चित्रित किया है

"कलकत्ता मे असहयोग का स्टूल केवल एक टांग के सहारे खडा था। नागपुर म यह चारो टागा पर पूरे सतुलन के साथ खडा हो गया, गाधी तथा नेहरू, दास एव लालाजी सभी उसके समथक थे।"

आशिक तौर पर इन मामला को पर्दे के पीछे रूप दिया गया था, क्योंकि खुले वाद्-कला से सभी मतभेदो को दूर नही किया जा सकता था। पजाब के प्रतिनिधि मण्डल ने, जैसी कि आशा थी, उनके साथ विचार विमश किया और इसमे भी सहायता मिली। फिर भी यह तो हुआ, मुख्य बात यह हुई कि पुन एकता हो गई थी और यह एकता केवल कच्चा काम नही, बल्कि हार्दिक एकता थी।

असहयोग प्रस्ताव के अतिरिक्त लालाजी से एक अन्य प्रस्ताव का अनुमोदन कराया गया, इससे भी उतना ही महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ क्योंकि इससे कांग्रेस के सिद्धान्त पर प्रभाव पडा। 1908 म लेकर कोई व्यक्ति तब तक कांग्रेस पार्टी का सदस्य नहीं बन सकता था, जब तक वह ब्रिटिश साम्राज्य का समथन न करे—यह एक प्रकार की वफादारी की शपथ थी, जो मिताचारी नेताओ ने निश्चित की थी। मुख्यतौर पर उन उग्रवादियो को कांग्रेस से बाहर रखने के लिए, जो स्पष्ट तौर से ब्रिटिश साम्राज्य से सबध विच्छेद के समथक थे। अब जब कि मिताचारी कांग्रेस से बाहर हो गए थे, इसके जारी रखने का कोई औचित्य नही था। असहयोग के कायक्रम के साथ यह वसे भी ठीक नही बैठता था। इस त्रुटि को हटाने का प्रस्ताव गाधीजी ने पेश किया और लाजपत राय न उसका अनुमोदन किया। अब कांग्रेस का सिद्धान्त था "स्वराज, सभी शातिमय और जायज साधनो से," पहले यह था "ब्रिटिश साम्राज्य के अन्दर सावैधानिक साधनो से जिम्मेदार सरकार की स्थापना"। केवल साधन ही नही बदले थे, लक्ष्य भी बदल गया था।

जोरदार भाषण म लालाजी न इस सिद्धान्त का इतिहास बताया और स्पष्ट किया कि किस प्रकार इस मामले पर मतभेद की सूरत मे विच्छेद होने का कुछ कारण था। उन्होने कहा कि उस समय भी मुझे यह बात अनुचित लगी थी कि श्री अरविन्द जैसे सच्चे और आदशवादी देशभक्त कांग्रेस से बाहर रखे जाए।

"यह बात नही कि उस समय मुझे यह विश्वास था कि हमारे पास पूण स्वराज प्राप्त करने या इस उद्देश्य मे काय करने के लिए साधन है, परन्तु मेरा विचार था कि हम म से किसी को यह अधिकार नही कि कांग्रेस की कारवाई मे किसी ऐसे व्यक्ति को भाग न लेने दिया जाए, जिसके आदश इतने ऊचे हैं।"

संस्थाओं में रहना उनके जमीर के विरुद्ध है क्योंकि उनकी प्रणाली पर सरकार का प्रभाव है, जिसे राष्ट्र ने समाप्त करने का निश्चय किया हुआ है और ऐसे छात्रों को सलाह देना कि या तो वे असहयोग आंदोलन के सिलसिले में कोई विशेष सेवा करें या राष्ट्रीय संस्थाओं में अपनी शिक्षा जारी रखें।

"सरकार से सम्बद्ध या सहायता प्राप्त स्कूलों के न्यासियों, प्रबंधकों तथा अध्यापकों का तथा नगर पालिकाओं और स्थानीय बोर्डों से आह्वान करना कि वे उनके राष्ट्रीयकरण में सहायता करें।'

लालाजी इस बात से संतुष्ट थे कि स्कूली शिक्षा का समाप्त करना टल गया है और स्कूल जाने वाले छोटे बच्चों तथा कालिज जाने वाले तरुणों में आवश्यक विभेदीकरण किया गया है और राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली आरंभ करने की जिम्मेदारी जो कलकत्ता प्रस्ताव में दिखाई देती थी, वह जल्दबाजी में नहीं की गई। यदि केवल डाक्टरी तथा तकनीकी शिक्षा को स्पष्ट तौर से अलग कर लिया जाता तो उनकी नीति का पूरी तरह समर्थन हो जाता, परन्तु ऐसा होना आसानी से संभव दिखाई नहीं देता था जैसा कि उन्होंने स्वयं छात्र सम्मेलन को बताया था। वह जानते थे कि डाक्टरी और इंजीनियरी शिक्षा ब्रिटिश सैनिकवाद के साम्राज्य के उद्देश्यों के लिए इस्तेमाल हो रही है। उन्होंने जो प्राप्त किया, उसी से पूरी तरह संतुष्ट थे।

सी० आर० दास विधान मण्डलों का बहिष्कार करने का सैद्धान्तिक तौर पर विरोध करते थे। नागपुर अधिवेशन से पूर्व आम चुनाव समाप्त हो गए थे। बहिष्कार की कृपा से 80 प्रतिशत से अधिक मतदाताओं ने मतदान में भाग नहीं लिया था। नागपुर में जब रात को देर तक समझौते तथा संयुक्त मोर्चा बनाने की बात चल रही थी, सी०आर० दास ने मुहम्मद अली को बताया कि उन्होंने असहयोग को स्वीकार करने का निर्णय कर लिया है। इस बात से मुहम्मद अली को इतनी प्रसन्नता हुई कि उन्होंने बंगाल के नेता के दोनों गाल चूम लिए। अगले दिन प्रमुख प्रस्ताव, जिसमें कलकत्ता का प्रस्ताव दोहराया गया था, और समझौते के बाद अंतिम रूप से संशोधित असहयोग कार्यक्रम शामिल किया गया था, सी० आर० दास ने पेश किया और लाला लाजपत राय ने उसका अनुमोदन किया। यह महात्मा गांधी की बहुत बड़ी जीत थी—ऐसी जीत जिसका श्रेय दास, गांधी और लाजपत राय को समान रूप से जाता था। कांग्रेस के अधिकृत इतिहासकार ने इस अवसर का वर्णन कुछ विकृत ढंग से चित्रित किया है

'कलकत्ता म असहयोग का स्टूल केवल एक टाग के सहारे खडा था । नागपुर म यह चारो टागो पर पूरे सतुलन के साथ खडा हो गया, गाधी तथा नहरू, दास एव लालाजी सभी उसके समथक थे ।"

आशिक तौर पर इन मामलो को पर्दे के पीछे रूप दिया गया था, क्योकि चुस्त वाक् कला से सभी मतभेदो को दूर नही किया जा सकता था । पजाब के प्रतिनिधि मण्डल न जैसी कि आशा थी, उनके साथ विचार-विमश किया और इसमे भी सहायता मिली । फिर भी यह तो हुआ, मुख्य बात यह हुई कि पुन एकता हो गई थी और यह एकता केवल कच्चा काम नही, बल्कि हार्दिक एकता थी ।

असहयोग प्रस्ताव के अतिरिक्त लालाजी से एक अन्य प्रस्ताव का अनुमोदन कराया गया, इससे भी उतना ही महत्वपूण परिवतन हुआ क्योकि इससे काग्रेस के सिद्धान्त पर प्रभाव पडा । 1908 से लेकर कोई व्यक्ति तब तक काग्रेस पार्टी का सदस्य नहा बन सकता था, जब तक वह ब्रिटिश साम्राज्य का समथन न करे—यह एक प्रकार की वफादारी की शपथ थी, जो मिताचारी नेताओ न निश्चित की थी । मुख्यतौर पर उन उग्रवादियो को काग्रेस से बाहर रखने के लिए, जो स्पष्ट तौर से ब्रिटिश साम्राज्य से सबध विच्छेद के समथक थे । अब जब कि मिताचारी काग्रेस से बाहर हो गए थे, इसके जारी रखन का कोई औचित्य नही था । असहयोग के कायक्रम के साथ यह वैसे भी ठीक नहीं बैठता था । इस त्रुटि का हटाने का प्रस्ताव गाधीजी ने पेश किया और लाजपत राय न उसका अनुमोदन किया । अब काग्रेस का सिद्धान्त था "स्वराज, सभी शातिमय और जायज साधनो से," पहले यह था "ब्रिटिश साम्राज्य के अन्दर सावैधानिक साधनो से जिम्मेदार सरकार की स्थापना" । केवल साधन ही नहीं बदले थे, लक्ष्य भी बदल गया था ।

जोरदार भाषण म लालाजी न इस सिद्धान्त का इतिहास बताया और स्पष्ट किया कि किस प्रकार इस मामले पर मतभेद की सूरत म विच्छेद होने का कुछ कारण था । उन्होंने कहा कि उस समय भी मुझे यह बात अनुचित लगी थी कि श्री अरविन्द जैसे सच्चे और आदशवादी देशभक्त काग्रेस से बाहर रखे जाए ।

"यह बात नही कि उस समय मुझे यह विश्वास था कि हमारे पास पूण स्वराज प्राप्त करने या इस उद्देश्य से काम करने के लिए साधन है, परन्तु मेरा विचार था कि हम म से किसी का यह अधिकार नही कि काग्रेस की कारवाई मे किसी ऐसे व्यक्ति को भाग न लेने दिया जाए, जिसके आदश इतने ऊचे हैं ।"

जो लोग 'साम्राज्य" तथा "राष्ट्रमण्डल' में भिन्नता की बात करते थे, उनको उत्तर देते हुए पूछा कि क्या कोई ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल है? ब्रिटिश लेबर के तीन प्रतिनिधियों में से एक हालैण्ड नाइट ने उत्तर दिया था, "अभी तक नहीं", ब्रिटिश राजनयिकों के वचनों की चर्चा करते हुए लालाजी ने कहा —

"हम अंग्रेज सज्जन व्यक्तियों के शब्दों पर पूर्ण विश्वास कर सकते हैं, परन्तु हम ब्रिटिश राजनयिकों के शब्दों पर विश्वास नहीं कर सकते।"

जायजा लेते हुए उन्होंने ब्रिटिश-मन्त्रिमण्डल के बड़े नामों—लायड जार्ज, विन्सटन चर्चिल, मिलनर और माटेग्यू के नाम लिए और कहा, 'वर्तमान ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल के किसी एक सदस्य का नाम लो जिसकी बात या किसी कुजड़े की बात में अधिक महत्व हो।' उन्होंने कहा कि कांग्रेस के सिद्धान्त में परिवर्तन का यह जरूरी अर्थ नहीं कि ब्रिटेन से संबंध विच्छेद होगा, बल्कि इसका अर्थ यह है कि यदि यह संबंध बने तो यह तभी रहेंगे, यदि भारत के लोगों की इच्छा होगी और वह भी उनकी शर्तों पर ही।

'साधनों' में परिवर्तन की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा

"मैं उन लोगों में से हूं जिनका यह विश्वास है कि हर राष्ट्र को, समय आ जाने पर, यह अन्तर्भूत अधिकार है कि वह दमनकारी निरंकुश सरकार के विरुद्ध सशस्त्र विद्रोह करे, परन्तु मुझे विश्वास नहीं कि हमारे पास इस समय ऐसे सशस्त्र विद्रोह के लिए साधन या इच्छा शक्ति भी है। मैं भविष्य की संभावनाओं की चर्चा नहीं करता, परन्तु मैं चाहता हूं कि मेरे देशवासियों के मन में कोई गलतफहमी अथवा शंका पैदा न हो कि राष्ट्रीय कांग्रेस के नेता यह नहीं चाहते कि उनके सामने जो लक्ष्य निर्धारित किए गये हैं, उनकी प्राप्ति के लिए वे हिंसा पर उतारू हो जाएं।"

लालाजी यह भली प्रकार जानते थे कि उनकी ओर से असहयोग को स्वीकार करने का अर्थ बहुत बड़ा दायित्व है। पंजाब का इस संबंध में पूरा जोर लगाना होगा और यह लगभग पूरी तरह उसी का दायित्व होगा, इसके अतिरिक्त उसे अपने सहयोगियों के साथ राष्ट्रीय स्तर पर भी जिम्मेदारी निभानी होगी। कठिन कार्य का समय आ गया था, परन्तु यह कठिन कार्य ऐसा था जिससे उन्हें प्रसन्नता होती थी।

नागपुर-अधिवेशन से लौटते ही वह पंजाब में स्थिति का सुधारने में व्यस्त हो गये। पहली बात जो उन्होंने की, वह थी कालिज छात्रों का एक सम्मेलन बुलाने की, क्योंकि इन छात्रों से ही अपने उस आंदोलन के लिए कार्यकर्ता लेने थे, जो 'अभियान' वह शुरू करने जा रहे थे। उनके साथ सम्पर्क रखने वाले छात्र कार्यकर्ता के तौर पर और उस छात्र के तौर पर जो उनके आह्वान पर आगे आया, मुझे बुलाया गया और पंजाब में एक छात्र सम्मेलन की व्यवस्था करने का निर्देश दिया गया।

एक स्वागत समिति बनाई गई, जिसने विधिवत अपने कार्यकर्ताओं का चुनाव किया (मैं इस समिति तथा सम्मेलन का सचिव था)। अध्यक्ष पद के लिए लालाजी ने सैफुद्दीन किचलू के नाम का सुझाव दिया। लाहौर जिले में निषेधाज्ञा लागू कर दी गई, इसलिये सम्मेलन का स्थान बदलकर गुजरांवाला कर दिया गया। निस्संदेह लालाजी ने छात्रों को संबोधित किया। उन्होंने समाचार-पत्रों में जोरदार अभियान आरंभ कर दिया और डी० ए० वी० कालिज अधिकारियों पर आक्षेप करने से भी न झिझके। पहली बार तथा अंतिम बार उनका समाचार पत्रों में सार्वजनिक तौर पर अपने पुराने मित्र तथा सहयोगी महात्मा हंसराज के साथ मतभेद हुआ और एक बार जब यह शुरू हो गया, तो उन्होंने इसे बड़ी दक्षता से चलाया।

कालिज बंद न हुए, परन्तु उन्हें अपना संदेश गांवों तक पहुंचाने के लिए छात्र कार्यकर्ता मिल गए। असहयोग के दिनों में व्यवहार के अनुसार छात्रों ने एक आश्रम स्थापित किया और वहां आरंभिक तैयारी के लिए थोड़ी देर ठहरने के बाद खादी के कपड़े पहन और सभी ओर गांवों में फैल गए।

कांग्रेस कार्य समिति ने तिलक स्वराज कोष के लिए एक करोड़ रुपये जमा करने तथा कांग्रेस के एक करोड़ सदस्य भर्ती करने का व्यापक कार्यक्रम बनाया था। लालाजी के पंजाब में इस संबंध में कमी नहीं रहनी चाहिए थी, उनकी छात्र सेना ने इस संबंध में शानदार कर्तव्य निभाया। उन्होंने स्वयं भी असहयोग करने वाले वकीलों की संख्या में वृद्धि की। राष्ट्रीय उत्साह की एक अद्वितीय लहर उत्पन्न हो गई। ऐसा दिखाई देता था कि यह अधिक-से-अधिक बलवान होती जाएगी और जो कुछ भी उसके सामने पड़ा उसे बहा ले जाएगी। मार्च में रावलपिंडी में हुए प्रांतीय सम्मेलन में बहुत उत्साह देखने में आया और फिर

26—136 M of I&B/ND/85

अनेक प्रांतीय तथा क्षेत्रीय सम्मेलन हुए। कुछ मास पहले जहां सभी ओर उपेक्षा तथा निरुत्साह दिखाई देता था, सभी कुछ बदलकर एक नई तथा जोरदार स्थिति में बदल गया था।

लाहौर में लालाजी ने नगरपालिका चुनाव के लिए अपने उम्मीदवार खड़े किए और कांग्रेस के लिए लगभग सभी हिंदू सीटें जीत लीं। यह विजय पुराने सदस्यों के विरुद्ध, जो अपने आपको अजेय समझते थे, भारी बहुमत से प्राप्त हुई। लाहौर नगरपालिका में कांग्रेस सदस्यों का दल अफसरशाही के लिए बहुत कष्ट का कारण बन गया। अन्य स्थानों पर भी लाहौर का अनुकरण किया गया।

जो छात्र कालिजों को छोड़ आए थे, उनके पीछे कई विकट समस्याएं भी आई। कुछ समय के लिए तो गांवों का कार्य ठीक रहा, परन्तु उसके बाद उन्होंने अपनी शिक्षा पूरी करने की इच्छा व्यक्त की। उन्होंने उनकी शिक्षा की व्यवस्था करने पर जोर दिया। अस्थायी तौर पर एक कौमी महाविद्यालय स्थापित किया गया, जो कालिज छात्रों को शिक्षा देगा जिन्हें शिक्षा पूरी करने पर कौमी विद्यापीठ से डिग्रियां दी जाएंगी, लालाजी इसके कुलपति थे। एक स्कूल विभाग जिसमें हस्तशिल्प पर अधिक बल दिया गया था, स्थापित किया गया (लालाजी का नाती—उनकी पुत्री का इकलौता पुत्र—इस स्कूल में दाखिल होने वाले पहले छात्रों में था)। कुछ अन्य स्थानों पर भी कई स्कूल स्थापित हो गए। जगरांव में लालाजी के अपने स्कूल—राधाकिशन हाई स्कूल का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया और शीघ्र ही इसके छात्रों की संख्या कम हो गई।

इन सभी समस्याओं का अर्थ था—कठिन परिश्रम और इनमें से कठिनतम कार्य था तिलक स्वराज कोष के लिए एक करोड़ रुपये जमा करने का। इसके लिए पंजाब ने अपना हिस्सा जरूर जुटाना था चाहे कुछ भी हो।

इस उद्देश्य से लालाजी ने लगातार दौरे किए, कई बार तो एक ही दिन में दूर के कई कस्बों में सभाओं में भाषण दिए और उनके लिए इस कोष के वास्ते हिस्सा निर्धारित किया तथा इसे वसूल किया। नौ लाख रुपये की राशि पंजाब के लिए बहुत बड़ी थी, परन्तु लालाजी शाही भिखारी थे और वह तब तक आराम से न बैठे, जब तक उन्होंने यह रकम इकट्ठी न कर ली।

लालाजी न धुआधार काय किया। निस्सदह सामान्य कार्यों की भी उपेक्षा नही की जा सकती थी—पजाब के सवश्रेष्ठ दनिक समाचार पत्र के सम्पादक के नाते तथा अन्य सामान्य छोटे-बडे काम और भी थे। इसके अतिरिक्त उन्हें पजाब से बाहर के अक्सर बुलावे आते रहते थे। पाच छ राष्ट्रीय नेताओ म से एक होने के नात, उन पर अन्य प्रातो का भी दायित्व था और राष्ट्रीय काय समिति की बैठक भी थोडी थोडी अवधि के बाद होती रहती थी और ये बैठके सारे भारत मे होती थी। इनम मे एक यात्रा मे अली बधु लालाजी के साथ थे। किसी प्रकार उनके धुलाई मे आए कपडे आपस म बदल गए और बडे भाई की बहुत बडी सलवार जो पूरी तरह खोलन पर पहनने के एक कपडे की बजाय एक तम्बू के समान दिखाई देती थी, उस यात्रा की स्मृति के तौर पर काफी दर तक उनके पास रही—यह उस समय हिंदू-मुसलमान नताओ के सहयोग की भी याद थी।

48. हास्यास्पद गीत नाटिका

नवबर 1921 के आरम्भ तक सभी दल सचमुच ही तुरत निर्णायक सघर्ष के लिए उतारू होते दिखाई दे रहे थे। आदोलन के नेता ने 'एक वर्ष के अदर 'स्वराज' का वायदा किया था और स्थानीय नेताओ तथा स्वयसेवको ने यह सदेश देश के कोने-कोने मे पहुचा दिया था। वर्ष का अन्त होने को था। ऐसा 'सकेत' था कि यदि कोई भयकर बात नही, तो कोई उग्र बात अवश्य होगी। सविनय अवज्ञा बहुत ही निश्चित दिखाई पड रही थी, गाधीजी तथा काग्रेस कार्य कारिणी समिति की मुख्य चिंता प्रारम्भिक अभियान का ब्यौरा निश्चित करने की थी।

लार्ड रीडिंग का भी खुले राजद्रोह का मुकाबला करने के लिए अपेक्षाकृत नरम उपाय जारी रखने का इरादा रहा था। मध्यस्थता करने वालो (पण्डित मदन मोहन मालवीय और शकरन नायर जसे) के प्रयत्न असफल हो चुके थे, लार्ड रीडिंग की गाधीजी तथा अन्य काग्रेस नेताओ के साथ भेंट वार्ताओ का कोई परिणाम नही निकला था। लार्ड रीडिंग को इस बात की विशेष चिन्ता लगी थी जब ड्यूक आफ कनाट आए, तो उनका बहिष्कार न हो (असल मे प्रिंस आफ वेल्स ने आना था, परन्तु बाद मे कार्यक्रम बदलकर ड्यूक को उनका प्रतिनिधित्व करने को कहा गया)। वाइसराय ने पहले पूरी शक्ति से प्रहार न किया, क्योकि वह चाहता था कि ड्यूक के आने के अवसर पर स्थिति ठीक रहे। परन्तु तब तक स्पष्ट हो गया था कि दोनो पक्षों मे समझौता नही हो पाया, काग्रेस नेताओं ने अपने सविनय अवज्ञा आदोलन के प्रति पूरी ईमानदारी के साथ यह दृढ निर्णय किया था कि ड्यूक का पूरी शक्ति से बहिष्कार करेंगे। इसलिए लार्ड रीडिंग द्वारा पहले से अपनाई दमनकारी नीति को, जो अली बधुओ को कैद किए जाने से स्पष्ट हो चुकी थी, और कड़ा न करने का कारण समाप्त हो चुका था। ऐसा दिखाई पडता था कि दोनो ओर से स्थिति पूरी तेजी से सकट की ओर बढ रही थी।

बम्बई म दगा क रूप म एक अप्रत्याशित उलझन उत्पन्न हो गई । 17 नवबर का भीड ने अपना गुस्सा निकाला जो अधिकतर उन पारसियो के विरुद्ध था, जो बहिष्कार के विरुद्ध थे । असहयोग आदोलन के नेताओ ने लोगा से शान्तिपूर्ण वातावरण बनाए रखने का जो अनुरोध किया था, उसे बहुत जोरदार आघात पहुचा । जब बम्बई म गडबड आरम्भ हुई, उस समय गाधीजी स्वय बम्बई मे थे । घटनाओ पर बहुत क्षुब्ध होकर उन्होने अनशन आरम्भ कर दिया । लालाजी तथा आदोलन के अय प्रमुख नेता तुरत उनके पास पहुचे । शीघ्र ही बम्बई मे सामान्य स्थिति बहाल हो गई । महात्माजी को अनशन समाप्त करने के लिए सहमत कर लिया गया । काग्रेस की काय समिति ने स्थिति पर विचार किया और अहिंसा तथा अनुशासन क महत्व पर बल देन के लिए उसने सविनय अवज्ञा के बारे में अपनी नीति मे कुछ परिवतन कर दिया । प्रातीय काग्रेस समितियो से कह दिया गया कि काय-समिति की पूर्व सहमति के बिना उन्हें सामूहिक अभियान आरभ करन की आज्ञा नही होगी । अनुशासनहीनता को दबान के उद्देश्य से स्वयसेवको की प्रतिज्ञा और कडी कर दी गई ।

परन्तु इसका अथ यह नही था कि गति धीमी कर दी गई है । इसके विपरीत पूरी शक्ति से आगे बढने की पूरी दृढता के सकेत दिखाई दे रहे थे । ऐसी स्थिति म दोनो पक्षो ने अपना-अपना अनुमान लगाया और अपनी योजनाओ पर कारवाई की । जब आदेश मिल गया कि 'कडाई' से कारवाई की जाए, तो निस्सदेह पजाब के अधिकारियो पर निभर किया जा सकता था ।

बम्बई के फसला के बाद लाजपत राय लाहौर लौटे । उनकी राजनीतिक समझ प्रात के अधिकारियो के बदले हुए रुख का अहसास कर सकती थी । बम्बई की घटनाओं ने भी उनके विचारो को विषय दे दिया था । अनुशासन का अभाव तथा इसके प्रति आदोलन के नेता की अजीब, अप्रत्याशित और बहुत तेज प्रतिक्रिया से यह मालूम हो गया कि सत्याग्रह के कवच म कमजोर स्थान है । असफलता की इतनी बात नही, परन्तु यदि ऐसी घटनाए बार-बार हो, तो क्या नेता पीछे हट जाएगा या आत्मसमपण कर देगा ? सदेह उत्पन्न हुए और पलभर के लिए दबा दिए गए, काय समिति से सभी बातें बिल्कुल सतोषजनक ढग से हुई । बम्बई मे यह बात भी उनके दिमाग मे बठ गई कि कुछ विश्वासपात्र सहायक भी इतने स्वच्छ नही थे, जितनी उनसे आशा की जा सकती थी और उन्हें यह आश्चय हो रहा था कि क्या प्रमुख सही तौर पर इससे बिल्कुल अनजान है ।

लालाजी अपने प्रांत मे बम्बई मे लिए गए निर्णयो को ईमानदारी से लागू कराने मे व्यस्त हो गए। अपने सहयोगियो को सारी बातें पूरी तरह समझाने के लिए उन्होने प्रांतीय कांग्रेस समिति की बैठक बुलाई। परन्तु अधिकारियो का बदला हुआ रुख देखते हुए, उन्होंने अहसास कर लिया कि शायद उन्हें अधिक समय के लिए स्वतंत्र तौर पर काम न करने दिया जाए। क्या उन्हें डटकर विरोध करते हुए जेल चले जाना चाहिए, या उचित रहेगा कि आंदोलन को सही ढग से दिशा निर्देश देने के लिए वह कुछ और समय के लिए उपलब्ध रहें? तब भी उन्हें इस बात का विश्वास नही था कि उन्हें कुछ और समय के लिए छोडा जाएगा, जब कानून और व्यवस्था की मशीनरी ने आक्रामक ढग से अपना जाल फैला दिया था। उन्होंने महसूस किया कि यही उचित रहेगा कि प्रमुख को इस प्रकार बदली हुई परिस्थिति से अवगत करा दिया जाए और उनकी इच्छा जान ली जाए। सैंसरशिप के जोर के कारण, सचार के सामान्य साधन डाक तथा तार शायद विश्वसनीय और तुरत न होते। मुझे विशेष दूत के तौर पर साबरमती भेजा गया। इस बात की व्यवस्था की गई कि कम से-कम एक बात के बारे मे महात्मा गाधी की इच्छा की जानकारी तार द्वारा दे दी जाए—क्या लालाजी तुरत गिरफ्तारी दे दें या अभी कुछ समय के लिए ऐसा न करें। सैंसर को धोखा देने के लिए संदेश को एक व्यापारिक रूप देने का तरीका अपनाया गया, जिससे यह संदेश बिल्कुल अहानिकर दिखाई दे—प्रकट रूप से यह चने या कपास की खरीद के बारे मे होगा। यह तार लालाजी के नाम पर नहीं, बल्कि एक कल्पित नाम पर भेजा जाना था, सभवत अमवत राय के नाम पर।

मैं साबरमती चला गया—वहा पहुचने पर मुझे पता चला कि महात्माजी कुछ घटे पूर्व सूरत के लिए रवाना हो गए थे, जहा से वह बारदोली जाएगे ताकि उस स्थान पर शुरू किए जाने वाले सविनय अवज्ञा आंदोलन की निगरानी कर सकें। सूरत के लिए रवाना होने से पहले मैंने श्रीमती कस्तूरबा गाधी के आतिथ्य आदर का आनन्द लिया और पहली बार भाखडी (गेहूं की गुजराती टिकिया) जैसी वस्तु के साथ खाना खाया। सूरत में मैंने अनाविल आश्रम मे महात्माजी के साथ भेंट की और उन्हें अपना सदेश दिया। उन्होंने धैर्य से सुना और फिर अपनी राय तथा निर्देश दिए। अन्त मे उन्होंने मुझसे पूछा कि क्या मैं ठीक तरह से उनकी बात समझ गया हू तथा उनका सदेश ठीक ढग से लालाजी तक पहुच जाएगा। मैंने हा मे उत्तर दिया। परन्तु उनका काम करने का ढग बहुत सुव्यवस्थित था और वह इतने पर ही बात

नही छोडते थे। उन्होंने मुझसे हमारी बातचीत का साराश लिखने का कहा, मने वैसा ही किया। वह मेरी रिपोट से सहमत हो गए और स्वीकृति दे दी और उनके एक सचिव ने (मेरा ख्याल है उनके पुत्र देवदास ने) अपनी फाइलो के लिए उसकी प्रति उतार ली। मेरे मसौदे मे महात्मा गाधी ने केवल एक सशोधन किया, उचित स्थान पर उन्होने सात शब्द जोडे, जो उनके सदेश का साराश थे —"लालाजी गिरफ्तारी दे और उससे न टले।" उनका विचार था कि उस अवसर पर "गिरफ्तारी दने" से सभव है आदोलन के नए नताओ के लिए आवश्यक तथा सहायक हो, जिन्हें अभी परीक्षा तथा परिचय प्रमाण की आवश्यकता है। उनसे आज्ञा लेने से पहल महात्माजी ने मुझे साथ चलन का कहा, ताकि मै स्वय देख सकू कि किस प्रकार बारदोली सामूहिक सविनय अवज्ञा की कठिन परीक्षा के लिए तैयार हो रहा था। फिर बातचीत चलते-चलते देश के सामने पेश व्यापक तथा बडे मसलो पर पहुच गई और कुछ गभीरता स सोचते हुए महात्माजी ने कहा कि मै तो पहले ही इस बात से अचभित हो रहा हू कि क्या सविनय अवज्ञा (या क्या यह सत्याग्रह था?) को सौम्य 'विष्णु' का रूप दिया जा सकता है, क्योकि जैसा कि उन्होंने कहा, इस आदोलन के 'रुद्र' रूप की कल्पना की हुई थी। मैने स्पष्टीकरण चाहा परन्तु जो झलक मै प्राप्त कर चुका था मुझे उसी से सतुष्ट हाना पडा, क्योकि महात्माजी ने कहा कि वह स्वय स्पष्टीकरण की प्रतीक्षा कर रहे है, यह विचार तो अभी मद्धिम रूप मे उनके मन म आया है, यदि स्पष्ट हो गया तो इसे निस्सदेह 'यग इडिया' के कालमो मे प्रकाशित किया जाएगा।

बारदोली जाने का निमत्रण मुझे अस्वीकार करना पडा, क्योकि म इस बात के बारे मे निश्चित नही था कि लालाजी को वह और कितने दिन स्वतत्र व्यक्ति के रूप मे रहने देते है और यदि सभव हो सके मै उनकी गिरफ्तारी से पूव उनके पास रहना चाहता था। जिस गुप्त भाषा मे हमने योजना बनाई थी, उसी के अनुसार मैने सूरत तार घर मे उपज-व्यापार का सदेश दे दिया और वापस रवाना हो गया। जब मै दिल्ली स्टेशन पर उतरा, जहा से मुझे गाडी बदलनी थी तथा डा० एम० ए० असारी से मिलना था, मैने समाचार पत्र बेचने वालो को आवाज लगाते सुना, 'लाला लाजपत राय गिरफ्तार कर लिए गए।"

तो मेरे सदेश के बावजूद कि वह अभी ऐसा न करे, उन्होंने सौदा' कर ही लिया था।

ाय था। इसलिए समिति की यह बैठक जिसमे सदस्यो के अतिरिक्त बाहर भाग ी से सकता था, सार्वजनिक समझी जाएगी, जब कि सार्वजनिक स्थान, जहा प्राट के नाम पर गुप्त आम न्याय बाटा जा रहा था—क्योकि ब्रिटिश कानून । व्यवस्था है कि न्याय निजी रूप म नहीं दिया जा सकता, निजी स्थान समझ । रहे थे। पजाब मे कुछ काग्रेस कार्यकर्ताओ पर इस दौरान इसलिए मुकदमा लाया गया था क्योकि उन्होंने एक अदालत म 'अनधिकार' प्रवेश किया जहा र राजनीतिक मुकदमे की सुनवाई हो रही थी।

काग्रेस सचिव ने डिप्टी कमिश्नर के पत्र का उत्तर तुरत दिया। अगले दिन त कुछ और पत्राचार हुआ। डिप्टी कमिश्नर यह आश्वासन चाहता था कि क म केवल उन्हीं बातो पर विचार किया जाएगा, जो पहले ही भेजे जा के एजेंडा मे दज है। उसने और मामले भी उठाए, उनका बैठक से कोई सबध ' कुछ नही थी, परतु यदि ईसप की कथा को स्मरण रखा जाए, तो सबध र था।

जो कुछ अधिकारियो ने निर्धारित किया था, उसे काग्रेस अपने आपको मूर्ख नाए बिना स्वीकार नही कर सकती थी। लालाजी की काय समिति ने अपनी बैठक रने तथा मजिस्ट्रेट की आपत्तियो की परवाह न करने का निणय किया। इस ल्लघन के परिणाम निस्सदेह पूरी तरह से स्पष्ट थे। लालाजी ने सदस्यो का हले ही सदेश भेजने की व्यवस्था कर ली थी, ताकि वे निर्धारित समय से काफी हले उपस्थित हो जाए और गिरफ्तारी से पूर्व अपनी कारवाई पूरी कर लें। कारवाई' को पूरी तरह से तयार कर लिया गया था, ताकि किसी प्रकार का लम्ब न हो। अगले दिन प्रात महात्मा गाधी को उनका पत्र तथा देशवासियो 'नाम उनका सदेश, दोनो ही उनकी गिरफ्तारी से पूर्व ही तयार कर लिए ए थे।

अतिम आदेश, जिसमे राजद्रोही बैठक कानून के अधीन बैठक करने की निश्चित प मे मनाही की गई थी, दोपहर बाद दो बजे से थोडी देर पहले मिला, जिस समय ठक चल रही थी। दो बजने से पूर्व ही समिति ने अपनी सारी कारवाई समाप्त र ली थी, सिवाय मजिस्ट्रेट को यह बताने के कि वे उसके आदेशो को क्या मानते हैं और किस प्रकार गिरफ्तार हो। उन्हें अधिक समय के लिए प्रतीक्षा हीं करनी पडी।

यह गडबड 2 दिसंबर 1921 को प्रांतीय कांग्रेस समिति की बैठक बुलाने के प्रश्न पर हुई, जो अगले दिन होने वाली थी। ऐसा जान पडता था कि अधिकारी तो केवल बहाना ढूढ रहे थे, और यह बहाना काफी अच्छा हो सकता था। 1908 के राजद्रोह सभा कानून के अधीन---1907 में निर्वासन के समय का लाल किताब का उपहार---लाहौर में इसकी घोषणा कर दी गई। दरअसल, उन्होंने तीन जिलों---लाहौर, अमृतसर और शेखूपुरा में घोषणा कर दी थी। उन्होंने स्वयंसेवी संगठन को भी गैर कानूनी घोषित कर दिया।

पंजाब में कांग्रेस ने इस चुनौती को स्वीकार कर लिया। प्रांतीय कांग्रेस समिति की कार्यकारी परिषद ने 27 नवंबर की अपनी बैठक में राष्ट्रीय कांग्रेस समिति द्वारा बम्बई बैठक में तैयार निर्देशों के अनुसार कांग्रेस और खिलाफत के स्वयंसेवकों का पुनर्गठन किया। अनुशासनहीनता तथा हिंसा की सभी शंकाओं को समाप्त करने के लिए यह फैसला भी किया गया कि केवल बहुत छोटी सभाएं की जाएं और नियम के तौर पर उपस्थिति पर इस ढंग से नियंत्रण किया जाए कि कोई भी ऐसा व्यक्ति बैठक में शामिल न हो, जो कांग्रेस के अहिंसा के अनुशासन का पालन करने और जेल जाने को तैयार न हो।

डिप्टी कमिश्नर मेजर फेरर बहाने ढूंढने में व्यस्त हो गया। ईसप की प्रसिद्ध बाल कथा के उस भेड़िये के समान जिसने मेमने को खाने से पहले उससे वार्तालाप किया था। सार्वजनिक शान्ति भंग होने की तो कोई आशंका न थी, क्योंकि यहां तो केवल समिति की बैठक होनी थी। पहले भी इस प्रकार की कोई गडबडी या उत्तेजना नहीं हुई थी और स्थिति को पूरी तरह ठीक रखने के लिए संयोजकों द्वारा विशेष व्यवस्था की जा रही थी। परन्तु इससे संयोजकों को उसी प्रकार कोई सहायता नहीं मिलने वाली थी, जिस प्रकार कथा के मेमने को नदी के बहाव के नीचे की ओर पानी पीने या एक वर्ष पहले पैदा न होने के कारण नहीं मिली थी।

बैठक से एक दिन पूर्व डिप्टी कमिश्नर के पत्र के रूप में ईसप की कथा के समान वार्तालाप आरम्भ हुआ। ऐसा दिखाई देता था कि वह समिति की बैठक को जो समिति के कार्यालय में द्वार बंद करके होनी थी और जिसमें सिवाय सदस्यों के और किसी ने भाग नहीं लेना था, एक सार्वजनिक सभा मान रहा था जो राजद्रोही बैठक कानून के अन्तर्गत आती थी। दमन की हांडी के इर्द गिर्द जादू का नृत्य आरम्भ हो गया था और इस बात की आम चर्चा थी कि न्याय अन्याय था और अन्याय

न्याय था। इसलिए समिति की यह बैठक जिसमें सदस्यों के अतिरिक्त कोई भाग नहीं ले सकता था, सार्वजनिक समझी जाएगी, जब कि सार्वजनिक स्थान, जहां सम्राट के नाम पर खुले आम न्याय बांटा जा रहा था—क्योंकि ब्रिटिश कानून की व्यवस्था है कि न्याय निजी रूप में नहीं दिया जा सकता, निजी स्थान समझे जा रहे थे। पंजाब में कुछ कांग्रेस कार्यकर्ताओं पर इस दौरान इसलिए मुकदमा चलाया गया था क्योंकि उन्होंने एक अदालत में 'अनधिकार' प्रवेश किया जहां एक राजनीतिक मुकदमे की सुनवाई हो रही थी।

कांग्रेस सचिव ने डिप्टी कमिश्नर के पत्र का उत्तर तुरंत दिया। अगले दिन प्रातः कुछ और पत्राचार हुआ। डिप्टी कमिश्नर यह आश्वासन चाहता था कि बैठक में केवल उन्हीं बातों पर विचार किया जाएगा, जो पहले ही भेजे जा चुके एजेंडा में दर्ज हैं। उसने और मामले भी उठाए, उनका बैठक से कोई संबंध या तुक नहीं थी, परंतु यदि ईसप की कथा को स्मरण रखा जाए, तो संबंध जरूर था।

जो कुछ अधिकारियों ने निर्धारित किया था, उसे कांग्रेस अपने आपको मूर्ख बनाए बिना स्वीकार नहीं कर सकती थी। लालाजी की कार्य समिति ने अपनी बैठक करने तथा मजिस्ट्रेट की आपत्तियों की परवाह न करने का निर्णय किया। इस उल्लंघन के परिणाम निस्संदेह पूरी तरह से स्पष्ट थे। लालाजी ने सदस्यों को पहले ही संदेश भेजने की व्यवस्था कर ली थी, ताकि वे निर्धारित समय से काफी पहले उपस्थित हो जाएं और गिरफ्तारी से पूर्व अपनी कार्रवाई पूरी कर लें। 'कार्रवाई' को पूरी तरह से तैयार कर लिया गया था, ताकि किसी प्रकार का विलम्ब न हो। अगले दिन प्रातः महात्मा गांधी को उनका पत्र तथा देशवासियों के नाम उनका संदेश, दोनों ही उनकी गिरफ्तारी से पूर्व ही तैयार कर लिए गए थे।

अन्तिम आदेश, जिसमें राजद्रोही बैठक कानून के अधीन बैठक करने की निश्चित रूप से मनाही की गई थी, दोपहर बाद दो बजे से थोड़ी देर पहले मिला, जिस समय बैठक चल रही थी। दो बजने से पूर्व ही समिति ने अपनी सारी कार्रवाई समाप्त कर ली थी सिवाय मजिस्ट्रेट को यह बताने के कि वे उसके आदेशों को क्या समझते हैं और किस प्रकार गिरफ्तार हों। उन्हें अधिक समय के लिए प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी।

तो कर ली थी, परन्तु इनके लिए कोई उचित कारण तलाश करने के लिए अब उन्होंने सिर खुजाना आरम्भ कर दिए। ऐसा कारण ढूंढना आसान बात नहीं थी, यह इससे स्पष्ट हो गया कि अभियोग पक्ष ने सुनवाई स्थगित करने का बार बार अनुरोध किया। यद्यपि मुकदमे के तथ्य बहुत सरल थे कि उनकी व्यापक जांच-पड़ताल की आवश्यकता हो, फिर भी अदालत ने पुलिस का अनुरोध स्वीकार कर लिया। जैसा कि लाजपत राय ने अपने एक बयान में लिखा, जो उन्होंने सुनवाई के दौरान दिया, जिसका वर्णन हम थोड़ी देर बाद करेंगे।

'प्रत्यक्ष तौर पर यह एक ऐसा मुकदमा था, जिसमें कोई रिमांड न आवश्यक था और न ही उचित। जिला मजिस्ट्रेट ने राजद्रोही बैठक कानून के अधीन कारवाई की थी, उसने स्वयं हमें गिरफ्तार किया था और यदि यह कानून लागू किया था, तो हम दोषी थे। यह मुकदमा कोई एक घंटे में समाप्त किया जा सकता था।"

इस सारे मामले के कानूनी तौर पर उचित होने के बारे में गिरफ्तारी के शीघ्र बाद ही संदेह उत्पन्न हो गए थे और लाजपत राय ने तार घर में ही हो रहा लम्बा चौड़ा विचार-विमर्श देखा था। "मजिस्ट्रेट जिसने हमारे मुकदमे की बाद में सुनवाई की, पूरे समय के लिए उस स्थान पर उपस्थित रहा और हम कुछ भी सोचें, संभवत उसने सलाह मशविरे में भाग लिया होगा।" 'बदलते आधार' का सिलसिला भी तार घर में ही आरम्भ हो गया था। जिला मजिस्ट्रेट दरअसल उन्हें राजद्रोही बैठक कानून दिखा रहा था, परन्तु अब उसे समिति की बैठक पर लागू किए जाने के बारे में संदेह उत्पन्न होने लगे थे। जिस मजिस्ट्रेट ने उनका पुलिस रिमांड दिया था, उन्हें बताया था कि उनके विरुद्ध भारतीय दंड विधान की धारा 145 के अधीन कारवाई की जा रही है और यदि वे चाहें तो जमानत पर रिहा किए जा सकते हैं। मजिस्ट्रेट ने उदारता से अभियोग पक्ष को दो सप्ताह के लिए रिमांड दे दिया था, ताकि वह केस तैयार कर सकें।

7 दिसंबर 1921 को उन्हें अदालत में ले जाया गया और एक और रिमांड स्वीकार कर लिया गया।

"प्रत्यक्ष तौर पर अधिकारी अपने कानून के बारे में निश्चित नहीं थे और इस मुकदमे के संबंध में कानून ढूंढने के लिए समय दरकार था। जिला मजिस्ट्रेट तथा पुलिस को यह यकीन नहीं था कि उन्होंने हम पर आरोप लगाने के लिए अपराध कानून की सही धारा का प्रयोग किया था। इसलिए हमें जेल में बन्द कर दिया

भी तरह से 'जनता या जनता के किसी भाग के लिए सावजनिक बैठक नही थी" —"बैठक की सूचना केवल प्रांतीय कांग्रेस समिति के सदस्यों को दी गई थी — जो कि प्रांत की विभिन्न कांग्रेस समितियों के निर्वाचित प्रतिनिधि हैं और इन सदस्यों द्वारा निर्वाचित सदस्यों को — जो नाम से निर्वाचित हुए है।" डिप्टी कमिश्नर को इस तथ्य की जानकारी दे दी गई थी (कार्यालय के क्लर्कों तथा चपरासियों को भी बैठक मे शामिल न करने की सावधानी बरती गई थी) और जब मेजर फेरर बैठक मे आया, तो उसने उन्हें यह नही बताया कि उनकी सभा किसी प्रकार से गैरकानूनी है या उसने बैठकों की मनाही की हुई है, उसने तो चिल्लाकर केवल इतना ही कहा था "मैं इस बैठक को सावजनिक बैठक घोषित करता हूं। मैं आदेश देता हूं कि आप तितर बितर हो जाओ।" जिसका कोई अर्थ नही था और न ही ऐसा कोई कानून था।

"मैं किसी तकनीकी दलील का लाभ नही लेना चाहता। मेरा तो यह कहना है कि आदि से लेकर अंत तक सारी कारवाई गैरकानूनी थी और यह एक और कारण है कि मैं सरकार को मान्यता नही देता — मैं यह स्वीकार नही करता कि यह कानून के अनुसार स्थापित की गई है।"

इस अवसर पर सरकारी वकील, श्री हरबर्ट ने आपत्ति की कि अभियुक्त तथ्य बयान नही कर रहा, तो तुरत उत्तर मिला, "श्री हरबर्ट यह एक तथ्य है। यह सरकार की पाशविक शक्ति है, जिसे श्री फेरर मूर्तिमान करते हैं।" श्री हरबर्ट ने अपनी आपत्ति पर ज़ोर दिया और अदालत ने वक्तव्य का यह भाग दज करने से इन्कार कर दिया। "आपने मुझे वक्तव्य देने को कहा है और यह मेरा काम नही कि यह देखूं कि आप इसे दज करते है या नही" अभियुक्त ने भावहीन स्वर में उत्तर दिया और तुरत ही कहा

मैंने चालीस वर्ष वकालत की है और मैने ऐसा कोई कानून नही देखा कि मजिस्ट्रेट ने अभियुक्त को बयान देने से रोका हो।'

मजिस्ट्रेट मैं ऐसा बयान सुनने को तैयार नही हूं।

ला० राय तब मैं विरोध के तौर पर बैठ जाता हूं। कृपया आप यह लिखेंगे कि आपने मुझे एक वक्तव्य देने से रोका? कृपया आप यह तथ्य भी लिख लीजिए

मजिस्ट्रेट यदि यह तथ्य है तो ?

गया और कानून की तलाश का सिलसिला जारी रहा। 13 दिसंबर को जैसे ही हम कचहरी में दाखिल हुए, हमें बताया गया कि जिलाधीश ने परिवादी के रूप में 1911 के कानून 10 की धारा 6 के अधीन एक शिकायत की है। मजिस्ट्रेट ने बताया कि पहले वह शिकायत का निपटारा करेगा यद्यपि यह समन का मामला है और दूसरा वारण्ट का मामला है। मेरे मन में यह बात स्पष्ट थी कि यह कारवाई सम्राट के विधि अधिकारी, जिलाधीश और संभवत सुनवाई करने वाले मजिस्ट्रेट से सलाह मशविरे के बाद की है। इस प्रकार अभियोग पक्ष को यह निर्णय करने में 9 दिन लग गए कि इस मुकदमे में कौन-सा कानून लागू करना है। और चूंकि वे कोई खतरा मोल लेने को तैयार न थे, उन्होंने दोहरी कमान इस्तेमाल करने का निर्णय किया, ताकि मजिस्ट्रेट भारी सजा दे सके।"

ऐसा दिखाई पड़ता था कि यह विलम्ब समाप्त नहीं होगा। आखिरकार अभियोग पक्ष ने अपना पक्ष 19 दिसंबर को पेश कर दिया, 21 तारीख को लालाजी को अपना बयान देने के लिए बुलाया गया। अगले दिन सरकारी वकील ने 'बहस' की और मजिस्ट्रेट ने 4 जनवरी 1922 तक अपना आदेश सुरक्षित रखा। दरअसल यह निर्णय सात तारीख को घोषित किया गया, पांच सप्ताह के लिए उन्होंने उन्हें जेल में केवल इसलिए रखा, क्योंकि वे अयोग्य तथा बुद्धिहीन थे।

जब मजिस्ट्रेट ने आरोप निश्चित कर लिए, तो प्रत्येक अभियुक्त से पूछा कि वह अपने को 'दोषी' मानता है या 'निर्दोष'। असहयोग के दिनों की सामान्य परम्परा के अनुसार केवल एक ही उत्तर दिया गया "हम कुछ नहीं कहते"। लालाजी ने कहा कि वह सरकार के अधिकार को मान्यता नहीं देते और न ही उसकी अदालतों का और उन्होंने अदालत की कारवाई में भाग न लिया। उनकी ओर से कोई वकील पेश न हुआ, न ही उन्होंने कोई गवाह पेश किया और न ही अभियोग पक्ष के गवाहों से कोई जिरह की गई। असहयोग आंदोलन की परम्परा के अनुसार मुकदमे की सुनवाई के अंत में लालाजी ने एक संक्षिप्त वक्तव्य दिया। वक्तव्य में कहा गया था कि प्रांतीय कांग्रेस समिति को लिखे गए पहले दो पत्रों में मेजर फेरर ने बैठक की मनाही का कोई आदेश नहीं दिया था यह पत्र तथा अंतिम पत्र, जिसमें बैठक की मनाही की गई थी, मेजर फेरर ने लाहौर के डिप्टी कमिश्नर के तौर पर भेजे थे, जिला मजिस्ट्रेट के तौर पर नहीं। और डिप्टी कमिश्नर की हैसियत से उसका राजद्रोही बैठक कानून से कोई वास्ता नहीं और बैठक किसी

भी तरह से "जनता या जनता के किसी भाग के लिए सार्वजनिक बैठक नही थी" —"बैठक की सूचना केवल प्रातीय कांग्रेस समिति के सदस्यो का दी गई थी — जो कि प्रात की विभिन्न कांग्रेस समितिया के निर्वाचित प्रतिनिधि हैं और इन सदस्यो द्वारा निर्वाचित सदस्यो को — जो नाम से निर्वाचित हुए हैं।" डिप्टी कमिश्नर को इस तथ्य की जानकारी दे दी गई थी (कार्यालय के क्लर्का तथा चपरासियो को भी बैठक मे शामिल न करने की सावधानी बरती गई थी) और जब मेजर फेरर बैठक मे आया, तो उसने उन्हें यह नही बताया कि उनकी सभा किसी प्रकार से गैरकानूनी है या उसन बैठकी की मनाही की हुई है , उसने तो चिल्लाकर केवन इतना ही कहा था "मैं इस बैठक को सार्वजनिक बैठक घोषित करता हू। मैं आदेश देता हू कि आप तितर बितर हो जाओ।" जिसका कोई अर्थ नही था और न ही ऐसा कोई कानून था।

"मैं किसी तकनीकी दलील का लाभ नही लेना चाहता। मेरा तो यह कहना है कि आदि से लेकर अत तक सारी कारवाई गैरकानूनी थी और यह एक और कारण है कि मैं सरकार को मान्यता नही देता — मैं यह स्वीकार नही करता कि यह कानून के अनुसार स्थापित की गई है।'

इस अवसर पर सरकारी वकील, श्री हरबट ने आपत्ति की कि अभियुक्त तथ्य बयान नही कर रहा, ता तुरत उत्तर मिला, "श्री हरबट यह एक तथ्य है। यह सरकार की पाशविक शक्ति है, जिसे श्री फेरर मूर्तिमान करत है।" श्री हरबट ने अपनी आपत्ति पर जोर दिया और अदालत न वक्तव्य का यह भाग दज करन से इन्कार कर दिया। "आपने मुझे वक्तव्य देने को कहा है और यह मेरा काम नही कि यह देखू कि आप इसे दज करते है या नही," अभियुक्त न भावहीन स्वर मे उत्तर दिया और तुरत ही कहा

'मैने चालीस वष वकालत की है और मने ऐसा कोई कानून नही देखा कि मजिस्ट्रेट ने अभियुक्त को बयान देने से रोका हो।"

मजिस्ट्रेट मैं ऐसा बयान सुनने को तैयार नही हू।

ला० राय तब मै विरोध के तौर पर बैठ जाता हू। कृपया आप यह लिखेगे कि आपने मुझे एक वक्तव्य दन से राका? कृपया आप यह तथ्य भी लिख लीजिए

मजिस्ट्रेट यदि यह तथ्य है ता ?

ला० राय : हां, यह यह है कि बैठक में मेरे बिना किसी ने कोई टिप्पणी नहीं की और न ही भाषण दिया। मैं बैठक की सारी जिम्मेदारी अपने ऊपर लेता हूं कि मैंने बैठक बुलाई, इसकी अध्यक्षता की और उसका संचालन किया।

7 जनवरी 1922 को मजिस्ट्रेट ने अपना निर्णय सुना दिया और धारा 115 के अधीन लालाजी को एक वर्ष के कठोर परिश्रम की सजा सुनाई और दूसरे आरोप के लिए 6 महीने कारावास और पांच सौ रुपये जुर्माने की सजा सुनाई गई।

गिरफ्तारी, मुकदमा और सजा सभी एक ही चीज थे—और इस बुरे उदाहरण ने भारत में ही नहीं, ब्रिटेन में भी ध्यान आकर्षित किया। सामान्य समिति की बैठक को रोकने के लिए राजद्रोही बैठक कानून का इस्तेमाल करना अपने तौर पर काफी नई बात थी, जिस पर अधिक जानकार पत्रिकाओं ने ध्यान आकर्षित किया जैसे मानचेस्टर गार्डियन तथा 'द नेशन' और उन्होंने मुकदमे की सुनवाई से पूर्व ही उस पर टिप्पणी भी की। 'द नेशन' ने लालाजी के बारे में कहा कि वह उत्तर-पश्चिम भारत में श्री गांधी के सबसे मजबूत समर्थक हैं। उन्हें इंग्लैंड तथा अमरीका से उनके समकालीन किसी भी भारतीय राष्ट्रवादी के मुकाबले अधिक लोग जानते हैं, उसने लिखा था 'उन्हें प्रांतीय कांग्रेस समिति की एक बैठक के लिए गिरफ्तार किया गया था, जो क्रिसमस सप्ताह में होने वाले राष्ट्रीय कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन के प्रारम्भिक कार्य के संबंध में एक सामान्य बैठक थी।"

'द नेशन' की टिप्पणी में आगे कहा गया था, "अनुमान है श्री लाजपत राय पर बाकायदा मुकदमा चलाया जाएगा, जो उस व्यक्ति के लिए एक नया अनुभव होगा, जिसे चौदह वर्ष पूर्व ईस्ट इंडिया कम्पनी के एक पुराने अध्यादेश के अधीन निर्वासित करने से भारत तथा संसद में एक तूफान उठ खड़ा हुआ था। भारत में ऐसा कोई अन्य व्यक्ति नहीं है, जिसका व्यक्तित्व तथा इतिहास अफसरशाही सरकार को इतने गंभीर रूप से दोषी करार देता हो। गांधी के समान वह भी बेईमान सिद्धांत के व्यक्ति नहीं' — जैसा कि श्रीमती ब्राउनिंग ने मैजिनी के बारे में कहा था। स्वभाव से वह एक उदारवादी राजनयिक हैं, व्यवसाय से एक वकील, काम से वह लोकहितैषी तथा शैक्षिक सुधारक, जिनका समाज सेवा तथा आत्म बलिदान का लम्बा इतिहास है। और इस बात का क्या कारण है कि वह आज असहयोगी हैं और भारत सरकार उन्हें गांधी के बाद दूसरा खतरनाक व्यक्ति समझती है, बजाय इसके कि वह अपने उचित स्थान पर पंजाब के जिम्मेदार वकील होते, वह कारण कन्याकुमारी से खैबर तक प्रत्येक पढ़ा लिखा भारतीय जानता है।'

उन पर 'बाकायदा' मुकदमा चलाया गया और यह अनुभव 'नया' ही नही था 'अनोखा' भी था जिसने सरकार को भी बदनाम कर दिया। उन्होने तुरत हस्तक्षेप किया और भारतीय दड विधान की धारा 145 के अधीन दी गई सजा तुरत माफ कर दी गई। दूसरे आरोप के अधीन दी गई सजा के बारे म भी उन्होने अपने विधि अधिकारियो का मशविरा लिया और जनवरी समाप्त होने से पूव ही उन्होने जाब्ता फौजदारी की धारा 104 के अधीन सजा के आदेश भी वापस ले लिए। एक सरकारी सूचना भी जारी की गई, जिसमे स्वीकार किया गया था कि जिस प्रकार की बैठक के लिए लाजपत राय तथा उनके साथियो को गिरफ्तार किया गया था, सावजनिक बैठक नही थी और वह राजद्रोही बठक कानन के अधिकार क्षेत्र के बाहर है।

इस प्रकार महामहिम की प्रजा के चार व्यक्ति गिरफ्तार किए गए, उन पर मुकदमा चलाया गया, उन्हें सजा दी गई और पूरे 59 दिन जेल मे रखा गया, तब जाकर पजाब सरकार को पता चला कि उसके प्रतिनिधि जो कुछ कर रहे थे, वह सारा गैरकानूनी था।

पजाब सरकार का अपने मजिस्ट्रेटो दवारा की गई इन भीषण गलतियो को ठीक करते हुए भी लाजपत राय को स्वतत्र करने का कोई इरादा नही था। उनके तीन साथी तो रिहा कर दिए गए परन्तु उन्हें नही छोडा गया। 30 जनवरी की आधी रात के बाद उन्हें जगाकर जेल अधीक्षक के कार्यालय म ले जाया गया और 'रिहा' कर दिया गया। जसे ही वह जल के दवार से बाहर निकले, उन्हें एक और 'आदेश' दिखाया गया जो उन्हें केवल पाच मिनट पहले दी गई स्वतत्रता का मुह चिढा रहा था। इस आदश पर भी जिला मजिस्ट्रेट मेजर एम० एल० फरर के हस्ताक्षर थे और इसम कहा गया था

चूकि लाला लाजपत राय के विरुदध 1911 के कानून 10 की धारा 7 और 1908 के कानून 14 की धारा 17 के अधीन आरोप है, इसलिए आपको आदेश दिया जाता है कि आप उन्ह गिरफ्तार करके 31 जनवरी को सट्रल जेल मे मेरे सामने पश कर।

तिथि 30 जनवरी 1922 हस्ताक्षर—एम० एल० फरर
जिला मजिस्ट्रेट—लाहौर

जेल का दवार उन्हें दोबारा प्रवेश देने के लिए फिर खुला। उनका बिस्तर तथा अय सामान फिर से जेल कोठरी म पहुचा दिया गया, जो दो मास स उनका

घर था। किसी भी मताधिकार प्राप्त व्यक्ति को चूहे बिल्ली के समान इस खेल मे इतने शीघ्र स्वतत्र और दोबारा बदी बनाने की कार्रवाई इतनी गुप्त ढग से कभी नही हुई थी। अगले दिन विश्व ने उनकी आधी रात को दोबारा गिरफ्तारी की खबर सुनी और उनकी रिहाई का किसी को पता ही नही चला।

गैरकानूनी कारवाइयो को ठीक करने का प्रयत्न विफल हो गया था। दरअसल अब तो बहुत अधिक गैरकानूनी कारवाइया थी, जबकि पहले केवल दो या तीन ही थी। एक बात है कि उस अपराध के लिए दोबारा मुकदमा चलाना सभी कानूनो के विरुद्ध था, क्योकि तकनीकी तौर पर उनकी पहली सजा अभी भी मौजूद थी। उनकी रिहाई का आदेश देते समय सरकार ने जाब्ता फौजदारी की धारा 104 के अधीन उनकी सजा माफ कर दी थी परन्तु (झूठी मर्यादा की खातिर) उनकी सजा को समाप्त नही किया था। इस आधी कारवाई ने कई प्रश्नो को जन्म दिया जिनका सामना करना सरकार के लिए आसान नही था। यह उन प्रश्नो की बौछार है जो लालाजी ने बाद मे भेजे गए एक वक्तव्य मे की

"(क) क्या पजाब सरकार इन गिरफ्तारिया तथा मुकदमे मे एक पक्ष थी ? क्या उसने इनकी स्वीकृति दी थी या अधिकार दिया था ?

(ख) यदि उसने स्वीकृति अथवा अधिकार दिया था तो क्या उसने इन मुकदमा के बारे मे अपने विधि अधिकारियो से मशविरा किया था ?

(ग) यदि किया था और विधि अधिकारियो ने इन मुकदमा की स्वीकृति दी थी, तो उन्होने भारतीय दड विधान की धारा 145 के अधीन दी गई सजा इतनी शीघ्र क्षमा क्यो की थी ? क्या यह क्षमा, राज्य-क्षमा के तौर पर की गई थी या इसलिए कि उन्होने सजा को गैरकानूनी पाया था ? यदि यह सजा गैरकानूनी थी तो उन्होने सजा सुनाने की स्थिति तक पहुचने मे पहले ही सरकारी वकील को मुकदमा वापस लेने के लिए आदेश क्यो न दिया ? यदि वह राज्य-क्षमा का मामला था तो आदेश मे इसकी चर्चा क्यो न की गई ?

(घ) यदि उन्होने अपने विधि अधिकारियो से मशविरा नही किया, तो यह किसकी गलती थी ? सरकार की या जिला अधिकारियो की ?

(ड) यदि यह गलती जिला मजिस्ट्रेट की थी तो सरकार ने इस भारी गलती के लिए अपनी नाराजगी व्यक्त करने के लिए क्या कारवाई की, जो जिला मजिस्ट्रेट और मुकदमे की सुनवाई करने वाले मजिस्ट्रेट ने की थी ?

(घ) उसने अभियुक्त का हुई उस परेशानी, चिन्ता, कष्ट और खच के लिए जो इस अवध नजरबन्दी के कारण उसे उठानी पडी, क्या मुआवजा दिया ?

(छ) जिन लागा के विरुद्ध सरकार ने 3 दिसबर को पजाब प्रातीय काग्रेस समिति की बठक तितर बितर करत समय शक्ति का प्रयोग किया था उनसे क्षमा याचना करन तथा उन्हें मुआवजा देने के लिए सरकार ने क्या कार्रवाई की ?

(ङ) के अधीन हम देखत हैं कि जिस मजिस्ट्रेट न हमे सजा दी थी उसकी पदोन्नति कर दी गई है और जिला मजिस्ट्रेट अब भी लाहौर जिले का इचाज है ।

(च) के सबध म मुझे उन्ही दस्तावेजो के आधार पर भारतीय दड विधान की धारा 145 के अधीन लगाए गए आरोपा के लिए, रिहाई के पाच मिनट के अन्दर ही दोबारा गिरफ्तार कर लिया गया । यह समझ लेना चाहिए कि तकनीकी तौर पर यह दोनो सजाए अभी भी कायम है । और सरकार जब चाहे उन्हें अभियुक्त के विरुद्ध इस्तेमाल कर सकती है ।"

सुनवाई करन वाले मजिस्ट्रेट न—वह काई जी० एच० हैरिस, प्रथम वग का मजिस्ट्रेट था—13 फरवरी का उनके विरुद्ध आराप निश्चित कर दिए—

"कि तुमन 3 दिसम्बर 1921 या इसके आसपास लाहौर म पजाब प्रातीय काग्रेस समिति के अध्यक्ष क नाते एक घाषणा पत्र जारी किया, यह घोषणा-पत्र 6 दिसबर 1921 के ट्रिब्यून मे प्रकाशित हुआ । इस घाषणा पत्र म तुमने प्रत्यक काग्रेस कायकर्ता को, जिसे परिणामा की काई चिन्ता नहा, राष्ट्रीय स्वयसेवी सगठन म भर्ती होने का आह्वान किया, जिस सगठन का सरकार गरकानूना घोषित कर चुकी थी । इस प्रकार तुमने 1908 के फौजदारी कानून सशोधन एक्ट 14 की धारा 17(1), जा भारतीय दड विधान की धारा 117 के साथ पढी गई, दडनीय अपराध किया, जो मेरे विचाराधिकार म है ।"

एक बार फिर अभियोग पक्ष तथा अदालत को कानूनी बेचनी का दौरा पडा । अब तक जिला मजिस्ट्रेट ने कानून के साथ काफी खिलवाड कर लिया था । वत मान मामले मे उसने जो गरकानूनी कारवाइया की थी वह लाजपत राय द्वारा दिए गए दानो परो म दर्ज हैं जिसम से हम पहले उद्धरण दे चुके है और जिनके बारे म हम फिर चर्चा कर रहे ह —

'इन दो अपराधो म से एक समन का मामला है और उसके लिए जमानत हो सकती है । दूसरा भी समन का मामला है यदि अपराध 1908 के कानून

14 की धारा 17(1) के अधीन है, परन्तु वारण्ट में बड़े आराम से इस धारा का उल्लेख नहीं किया गया। 31 तारीख को मुझे जिला मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया गया और उसने जाब्ता फौजदारी की धारा 167 के अधीन मेरा रिमांड दे दिया, जो प्रत्यक्ष तौर पर इस मामले पर लागू नहीं होता। उसने मुझसे यह नहीं पूछा कि क्या मैं जमानत पर रिहा होना चाहता हूं। 31 तारीख को जब मैंने जिला मजिस्ट्रेट से अपने विरुद्ध लगाए गए आरोपों के बारे में पूछा, तो उसने केवल वारण्ट में दर्ज धाराओं का नाम लिया। 1908 के कानून 14 की धारा 17 के बारे में मेरे प्रश्न के उत्तर में जिला मजिस्ट्रेट ने कहा कि वह कुछ नहीं कह सकता, परन्तु इन्सपेक्टर ने उपधारा (2) का नाम लिया।

'जाब्ता फौजदारी की धारा 167 लागू ही नहीं होती थी क्योंकि यह मुकदमा तो जिला मजिस्ट्रेट की ओर से स्वयं जिला मजिस्ट्रेट ने शुरू किया था। जब रिमांड स्वीकार हो गया तो पुलिस ने जाब्ता फौजदारी की धारा 154 के अधीन प्राथमिक रिपोर्ट दर्ज की (प्रारम्भिक रिपोर्ट का खाना नं० 1 और अन्तिम टिप्पणी देखिए) ताकि धारा 167 के अधीन कारवाई का वध बनाया जा सके। अभियोग पक्ष ने मेरे घोषणा पत्र को आधार बनाया था इसलिए किसी रिमांड की आवश्यकता नहीं थी।"

परन्तु मजिस्ट्रेट द्वारा कानून के साथ खिलवाड़ करने तथा इस मुकदमे में लाजपत राय के अनोखे अनुभव का अभी अन्त नहीं हुआ था।

आरोप पत्र तैयार होने और 13 तारीख को उसे लाजपत राय को पढ़कर सुनाने के बाद (लाजपत राय ने कोई बयान देने से इन्कार कर दिया था) सरकारी वकील दलीलों के लिए अदालत को सम्बोधित करना चाहता था, परन्तु अदालत ने उस मामूली-सी औपचारिकता को भी समाप्त कर दिया क्योंकि मामला इतना स्पष्ट और सीधा था कि दलीलों की आवश्यकता ही नहीं थी केवल एक चीज शेष थी, वह था निर्णय और उसके लिए अदालत ने 15 फरवरी निश्चित कर दी।

15 तारीख को कोई फैसला न सुनाया गया। इसके स्थान पर नई चालबाजी शुरू की गई। स्पष्ट तौर पर उन्हें पता चल गया था कि उस मामले को, जिसमें कुछ भी दम नहीं है, वे कुछ बनाकर हास्यास्पद स्थिति पैदा कर रहे हैं। लाजपत

राय के वक्तव्य से एक उद्धरण "ऐसा दिखाई पड़ता है कि 13 और 15 तारीख के बीच मजिस्ट्रेट तथा अभियोग पक्ष को पता चला

(1) कि 3 और 6 दिसबर को राष्ट्रीय स्वयंसेवक सगठन स्थापित ही नही हुआ था।

(2) और उसे 16 दिसबर तक गैरकानूनी घोषित नही किया गया था जिसके बारे म 12 दिसम्बर का एक आदेश पजाब सरकार के गजट म प्रकाशित किया गया था।

(3) 3 दिसम्बर और उसके पश्चात जेल म होने के कारण म इस सगठन की स्थापना तथा उसकी गतिविधियो के लिए जिम्मेदार करार नही दिया जा सकता था। इस बात की जानकारी मिलने के बाद मजिस्ट्रेट तथा अभियोग पक्ष न सलाह मशविरा शुरू कर दिया और ये त्रुटिया दूर करन के लिए फैसले की घोषणा स्थगित कर दी, य सभी बातें अभियुक्त के पीठ पीछे हुइ और मेरे लिए यह विश्वास करन म कारण है कि जिला मजिस्ट्रेट, कानूनी अधिकारी तथा सुनवाई करने वाला मजिस्ट्रेट—सभी, इस मामले के पक्ष हैं।"

निष्कर्ष यह था कि 15 तारीख को फसला न सुनाया गया, उस दिन मजिस्ट्रेट न 20 तारीख के लिए मामला स्थगित कर दिया क्योंकि

'सरकारी वकील श्री हरबट मुकदमा स्थगित करना चाहते ह क्योकि वह एक अर्जी देना चाहते ह। उनका कहना है कि मुकदमे म गलती हो गई है निस्सदेह यह गलती अभियोग पक्ष की है जिसने इस मामले का शुरू मे अदालत मे सही ढग म पेश नही किया। वह चाहता है कि यह मुकदमा 20 फरवरी 1922 तक स्थगित कर दिया जाए।'

20 तारीख को मजिस्ट्रेट न दोनो मामलो के लिए नए सिरे स, अलग अलग आरोप तयार किए, व इस प्रकार थे

'कि आपने 3 दिसबर 1921 या इसके आसपास लाहौर मे पजाब प्रातीय काग्रेस समिति के अध्यक्ष के नाते एक घोषणा-पत्र जारी किया जो 6 दिसबर, 1921 के ट्रिब्यून म प्रकाशित हुआ, इस घोषणा पत्र म आपने सामान्य जनता को

उकसाया कि वह उन सभी स्थानो पर, जहा राजद्रोही बैठक कानून लागू है साव जनिक सभाए करें, जो इस कानून का सरासर उल्लघन है, तथा गिरफ्तारिया दी जाए। आपने सविनय अवज्ञा का प्रचार किया और इस प्रकार अपराध किया जो 1911 के कानून 10 की धारा 7 तथा भारतीय दड विधान की धारा 117 के अधीन सजा योग्य है और मेरे विचाराधिकार मे है।

आपने 3 दिसबर 1921 या उसके निकट लाहौर म पजाब प्रातीय काग्रेस समिति के अध्यक्ष की हैसियत से घोषणा पत्र जारी किया जो 5 दिसबर 1921 के ट्रिब्यून' म प्रकाशित हुआ, उस घोषणा पत्र म आपने प्रत्येक काग्रेसी को, जिसे परिणाम की चिता नही थी, राष्ट्रीय स्वयसेवक सगठन मे नाम लिखवाने का कहा। यह सगठन फौजदारी कानून सशोधन एक्ट की धारा 17 के अधीन गैरकानूनी है। उसी प्रकार जिस तरह काग्रेस और खिलाफत के स्वयसेवक सरकार द्वारा कानून विरोधी घोषित किए गए हैं और इस प्रकार आपने कुछ व्यक्ति या व्यक्तियो के वग को, जिनकी सख्या दस से अधिक थी, अपराध करन के लिए उकसाया, जो 1908 के अधिनियम 14 की धारा 17 (1) के अधीन, भारतीय दड विधान की धारा 117 के साथ, सजा योग्य है, तथा मेरे विचारा धिकार मे है।"

उस दिन पहली बार लालाजी ने असहयोगवर्ता की लापरवाही को छोडकर क्षोभ के पल मे मुकदमे की सुनवाई मुल्तवी करने का आग्रह किया, ताकि वह दोष सूची मे सशोधन करन की सरकारी वकील की याचिका का उत्तर दे सकें। अदालत ने, जो अभियोग पक्ष के अनुरोध मानन में इतनी उदार थी, कारवाई स्थगन के बारे म लालाजी का अनुरोध अस्वीकार कर दिया और लिखा

'श्री हरबट सरकारी वकील ने आज एक याचिका पेश की है, इसमे कहा गया है कि इस मामले का समन का मुकदमा समझा गया है, परन्तु अभियुक्त से 7 फरवरी 1922 का पूछे गए प्रश्नो तथा अभियोग पक्ष द्वारा पश की गई गवाहियो को ध्यान मे रखते हुए, यह मुकदमा वारण्ट का मामला बनता है जो 1881 के अधिनियम 10 की धारा 7 और उसके साथ भारतीय दड विधान की धारा 117 के अधीन आता है। इसलिये सरकारी वकील की प्राथना है कि इस मामले म उपराक्त धाराओ के अधीन आरोप निर्धारित किए जाए और अभियुक्त

से कहा जाए कि वह अपनी सफाई पेश करे और यदि उसकी इच्छा हो तो इस्तगासे के गवाहों का जिरह के लिए बुला ले।

'अभियुक्त ने अदालत से निवेदन किया है कि उसे सरकारी वकील द्वारा दी गई याचिका का उत्तर देने के लिए समय दिया जाए। वर्तमान स्थिति में मुझे कारवाई स्थगित करना अनुचित दिखाई देता है। मैं सरकारी वकील से सहमत हू कि इस मुकदमे की सुनवाई वारण्ट केस के तौर पर की जानी चाहिए थी। अदालत द्वारा अभियुक्त से, जो एक वकील है, 7 फरवरी 1922 को पूछे गए प्रश्न से उसे पता चल गया होगा कि उसके विरुद्ध मुकदमा 1911 के अधिनियम 10 की धारा 7 और भारतीय दड विधान की धारा 117 के अधीन है।

"अभियुक्त न सारे मुकद्मे म कहा है कि वह असहयोगकर्त्ता है जिसका अर्थ है कि वह मुकदमे की कारवाई मे भाग नही लेगा। मैं सरकारी वकील से सहमत हू कि अभियुक्त के साथ पक्षपात नही होगा, यदि उसके विरुद्ध आरोप आज निर्धारित किए जाए और फिर उसे जो याचिका वह देना चाहे उसके लिए समय दे दिया जाए।"

जब सक्षिप्त स्थगन के लिए उनका आवेदन स्वीकार करने से इन्कार कर दिया गया, तो लालाजी ने दरअसल अपना मुकदमा किसी अन्य अदालत म तब्दील करवाने के लिए उच्च न्यायालय म याचिका देन की धमकी दी थी। जो कुछ अदालत ने स्वय किया और जो उसने अभियोग पक्ष को करने दिया, निस्सदेह वह क्षुब्ध करने के लिए काफी था, परन्तु लालाजी के क्षोभ का असल कारण तो कही और ही था। (वह हम अगले अध्याय मे देखेंगे)। इसके पश्चात लालाजी ने अदालत के सामने कोई लिखित या जबानी बयान न दिया, परन्तु उन्होने एक बयान बाहर भेजा जिसमे अपने सबध मे इन दोनो मुकदमो का इतिहास जुडा हुआ था। यही वह बयान था जिससे हम उद्धरण दे रहे थे।

इसमे उन्होने अधिकारियो को नही, अपने देशवासियो को सबोधित किया था, जिसमे सत्ताधारी लोगो के चालबाजी वाले तौर-तरीके नगे किए गए थे। यह बयान जारी करने का तात्पर्य शुरू से ही बिल्कुल स्पष्ट था। यह अपनी निर्दोषता सिद्ध करने के लिए नही, न ही दया या सहानुभूति जीतने के लिए था, इसका उद्देश्य तो केवल यह दिखाना था कि "पजाब मे सम्राट के कई अधिकारी और मजिस्ट्रेट कानून से कितने अनजान हैं और किस प्रकार कानून के अधिकारा

या राजनीतिक उद्देश्यों के लिए दुरुपयोग किया जा रहा है।" न्याय व्यवस्था के इस आश्चर्यजनक भण्डाफोड़ में अंत मे उन्होंने लिखा —

"यह बात सत्य के अधिक निकट होगी और इससे सरकार की मान मर्यादा बढ़ेगी यदि यह सरकार यह कह दे कि असहयोग के कारण हमने कानून के अनुसार हममे व्यवहार के सभी अधिकार खो दिए है और जहा तक हमारा संबंध था सभी कानून नियम तथा अधिनियम निलम्बित कर दिए गए है। ऐसा करने से दोनो पक्षो को बहुत से अनुचित कष्ट से बचाया जा सकेगा।"

उनके विरुद्ध लगाए गए नए आरोपो के बारे म असल तथ्यो का भी इस बयान म साराश दिया गया था

"कि 14 नवबर को संगठन को, जिसे अब 'खिलाफत स्वयसेवक' कहते हैं, गैरकानूनी घोषित करने की मूल अधिसूचना भी गलत थी। पहली बात तो यह कि 'कांग्रेस स्वयसेवक' नाम का कोई संगठन नही था। जिन युवको को स्वय सेवक कहते थे उनके अलग अलग स्थानो पर अलग अलग नाम थे। प्रातीय स्तर पर ऐसा कोई संगठन नही था। जो पजाब प्रातीय कांग्रेस समिति के अधीन काम करते थे उन्हें भारतीय राष्ट्रीय सेवा कहते थे। जो नगर कांग्रेस समिति, लाहौर के अधीन काम करते थे उन्हें स्वराज सेना कहते थे। इस मामले पर बम्बई मे 20 नवबर को अखिल भारतीय कांग्रेस समिति की कार्य समिति की बैठक म विचार किया गया था और यह निर्णय किया गया था कि स्वयसेवको का बिल्कुल नए सविधान के अधीन संगठित किया जाए। (क) उसका नाम नेशनल वाल टियर कोर होगा (ख) सारे प्रात के लिए उसकी एक ही इकाई होगी और (ग) वह एक केंद्रीय प्रातीय बोर्ड के अधीन होगी। (घ) प्रत्येक व्यक्ति को अहिंसा तथा अन्य मामलो के बारे म लिखित रूप मे तीन अलग प्रतिज्ञा पत्र हस्ताक्षर करके देने होगे (ड) इन सभी प्रार्थना पत्रो को पजाब प्रातीय बोर्ड को स्वीकार करना था। इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि न तो मूल अधिसूचना ठीक ढंग से जारी की गई थी और न ही दूसरी अधिसूचना को पिछली तारीख मे लागू किया जा सकता था। कोई स्वतंत्र मजिस्ट्रेट अभियोग पक्ष को यह कमी पूरी करने के लिए और समय नही दे सकता था। वह पिछले दस सप्ताह से मुझ पर मुकदमा चला रहे हैं और उनके पास तथ्य तथा कानून, दोनो ढूढने के लिए काफी समय था। परन्तु मजिस्ट्रेट तो न्याय तथा औचित्य के सभी विचारो के प्रति बिल्कुल निष्क्रिय था। वह तो जिला मजिस्ट्रेट तथा सम्राट को प्रसन्न करना चाहता था।

इसलिए अमल मे उसने उनकी इच्छा के अनुसार किया और मुझे उत्तर देने या आपत्ति करने के लिए एक दिन भी न दिया।"

उसके नए आरोप सिद्ध होने मे भी कई अनियमितताए थी क्योकि यह बयान छपने तक उन्हें सजा हो चुकी थी।

"धारा 117 (भारतीय दड विधान) के अध्ययन से पता चलेगा कि वह इस मुकद्दमे के तथ्या पर लागू नही होती।

पहली बात—अगर यह मान लिया जाए कि मने लोगा को उकसाया कि वे स्वयसेवक बनें तथा सावजनिक सभाए करें, यह स्पष्ट है कि धारा 117 लोगा द्वारा सामूहिक कारवाई से सम्बद्ध है (फौजदारी 41, वीकली रिपोटर 3 के अनुसार जो दड विधान रतनलाल पेनल कोड म उदधत किया गया है)। स्वयसेवक के तौर पर नाम लिखवाना *प्रत्येक व्यक्ति का व्यक्तिगत काय है।* यह जनता की ओर स सामूहिक तौर पर और इकट्ठे नही किया जा सकता। इस प्रकार जनता द्वारा सामूहिक तौर पर और मिलकर लेक्चर अथवा भाषण नही हो सकते कि 1911 के कानून 10 की धारा 7 के अधीन आए।

दूसरी बात—राष्ट्रीय स्वयसेवक सगठन घोषणा पत्र के बाद तक सगठित नही हुआ था।

तीसरी बात—घोषणा पत्र मे स्पष्ट तौर से कहा गया था कि काय समिति की पूव स्वीकृति के बिना किसी भी व्यक्ति द्वारा सविनय अवज्ञा नही की जानी थी।

चौथी बात—यही घोषणा पत्र और यही तथ्य भारतीय दड विधान की धारा 145 के अधीन दोप सिद्धि तथा सजा का आधार थे, जो अब भी कायम है।

पाचवी बात—इन दोनो कानूना की भाषा ऐसी है जिससे यह आभास होता है कि उकसाना मूल अपराध का ही भाग है। मुझे इस बात पर आश्चय हो रहा है कि इस घोषणा पत्र के आधार पर मेरे सिर पर कितने आरोपा की तलवार लटक रही है। परन्तु म बलि का बकरा बनने के लिए सहमत हू।"

इस सबके बाद भी वह दोषी सिद्ध हुए और उन्हें दो वष के कारावास का दड दिया गया।

49. बारदोली का निर्णय

पंजाब कांग्रेस की बैठक में लालाजी की गिरफ्तारी और 20 फरवरी 1922 को उन्हें सजा सुनाए जाने के बीच के तीन महीनों में भारतीय राजनीति में बहुत परिवर्तन हो गए थे। बीज तो गिरफ्तारी के समय ही मौजूद थे परन्तु उनके फूटने के बाद के जीवन की भविष्यवाणी करना शायद इतना सरल नहीं था। यह घटना चक्र दो कारणों से हुआ—कांग्रेस द्वारा सविनय अवज्ञा आंदोलन शुरू करने तथा कांग्रेस द्वारा हिंसा पर उतारू न होने के आदेश के बावजूद भीड़ द्वारा हिंसक कारवाइयां करने से।

'सविनय अवज्ञा' को तो शुरू से ही लगातार अहिंसक असहयोग कार्यक्रम की चरम स्थिति माना गया था, यद्यपि यह संभव है कि असहयोग के प्रवर्तक ने अपने मन में यह आशा लगा रखी हो कि असहयोग आंदोलन के कर अदायगी न करने की स्थिति तक पहुंचने से पूर्व ही सरकार से समझौता हो जाएगा। यह आशा पूरी न होने पर बारदोली के लोगों ने—जो गुजरात का एक छोटा सा तालुका है—वल्लभ भाई पटेल के मार्गदर्शन तथा अध्यक्षता में अक्तूबर 1921 में सविनय अवज्ञा का आंदोलन शुरू करने का निर्णय किया। असहयोग के प्रवर्तक ने यह योजना बनाई थी कि यह प्रयोग बारदोली में उनकी अपनी देख रेख में शुरू होगा ताकि अन्य जगहों के स्थानीय नेताओं के लिए यह आदर्श का काम दे। कार्यकारिणी ने 3 नवम्बर 1921 को पास किए गए प्रस्ताव में कुछ कसौटियां निर्धारित की थीं, यदि वे खरी उतरतीं तो प्रांतीय कांग्रेस समितियों को भी व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से सविनय अवज्ञा शुरू करने की अनुमति दे दी जाने वाली थी। इसके एक पखवाड़े के अन्दर ही बम्बई में फसाद हो गए—जिनमें 50 व्यक्ति मरे तथा 400 घायल हो गए। ये दंगे उस समय हुए जब प्रिंस आफ वेल्स के भारत आगमन के अवसर पर सार्वजनिक बहिष्कार के लिए हड़ताल का आह्वान किया गया। अहिंसक असहयोग का नेता पीछे हट गया। परन्तु प्रभावशाली अनशन के अतिरिक्त कुल मिलाकर परिणाम यह निकला कि सविनय अवज्ञा आंदोलन शुरू करने के लिए और अधिक प्रतिबंध लगा दिए गए और स्वयंसेवकों के लिए अहिंसा की और अधिक व्यापक प्रतिज्ञा तैयार की गई। परन्तु आंदोलन किसी भी स्थिति में नहीं छोड़ा जाना था। निश्चय ही इसे तेज किया जाना था।

अधिक से-अधिक स्वयसवको के नाम दज किए जाते थे और यद्यपि किसी विशष क्षेत्र म सविनय अवज्ञा आन्दोलन आरम्भ करन का निणय अब प्रातीय समितिया नही कर सकती थी, फिर भी उनसे आशा की जाती थी कि व ऐसे अभियान के लिए सक्रिय तैयारिया आरम्भ कर दें और यदि सभव हो इसकी गति और तज कर दें। बम्बई के दगो ने बारदाली के सघष की तयारी की गति धीमी कर दी थी, परन्तु स्पष्ट तौर पर एसी काई आशका नही थी कि किसी मगलभावी घायणा के साथ यह कहकर उस निणय को छोड दिया जाए कि कायक्रम अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दिया गया है। अभियान की घडी की प्रतीक्षा मे वातावरण का तनावपूण रखा गया था।

यह वह अवसर था जब लालाजी गिरफ्तार हुए। दश म हर पल काई बडी घटना होन की आशा की जा रही थी। उन्होने अपना विश्वास 'स्वराज एक वष मे' पर निश्चित नही किया था, परन्तु इसकी प्राप्ति के लिए वह निकट भविष्य म, काई साहसी प्रयत्न करने की प्रतीक्षा अवश्य कर रहे थे। गिरफ्तारी के समय दशवासिया के नाम एक सदेश म उन्होने कहा

'जब मन अमरीका का तट छोडा था, म जानता था कि मुझे अधिक समय के लिए जेल से बाहर नही रहन दिया जाएगा और वहा से रवाना होत समय मन अपने मित्रा को बता दिया था कि यदि मुझे अपन देशवासियो मे रहकर छ महीने के लिए भी काय करन दिया गया ता मैं सतुष्ट रहूगा। परन्तु अब भगवान की कृपा से मुझे आपके साथ 19 महीने रहकर काम करन का अवसर मिला है और मैं बहुत प्रसन्नचित्त से जेल जा रहा हू और मुझे विश्वास है कि जा कुछ भी हमन किया है, हमन अपने अन्त करण और भगवान की इच्छा के अनुसार किया है। मेरे मन मे न काई भय है और न काई सदेह। मुझे यकीन है कि जा माग हमने चुना है वह सही माग है और हमारी सफलता निश्चित है। मेरा यह विश्वास भी है कि म शीघ्र ही आपके पास लौट आऊगा और फिर से अपना काय करूगा। परन्तु यदि ऐसा न भी हुआ, तो म आपका विश्वास दिलाता हू कि जब म अपने स्रष्टा के पास जाऊगा ता मुझे किसी बात का खेद नही होगा। म एक कमजोर तथा नाजुक व्यक्ति हू और यह दावा नही करता कि मेरे पास महात्मा गाधी जसी शानदार आध्यात्मिकता है। कई बार म अपने गुस्से को नियत्रण मे नही रख पाता न ही म यह कहता हू कि मेरे मन म ऐसी भावनाए कभी उत्पन्न नही

हुई जो मेरे मन मे नही आनी चाहिए। परन्तु मै यह बात पूरी सच्चाई से कह सकता हू कि मैंने अपने देश तथा कौम का हित सदा ही अपने मन मे रखा है और मैने जो भी कार्य किया उसमें मेरी नजर सदा ही देश के हित पर रही। म जानता हू कि अपना कर्तव्य पालन करते समय मैंने बहुत सी गलतिया की है और कई बार ऐसी आलोचना भी की है जिससे मेरे देशवासियो को नाराजगी हुई हो। मै उस सबके लिए क्षमा चाहता हू। मुझे आशा है कि विशेषकर मेरे मिताचारी और आर्यसमाजी भाई उसके लिए क्षमा कर देंगे।

"मेरे देशवासियो, अब म आपको विदा करता हू। म इस दृढ निश्चय के साथ जेल जा रहा हू कि मेरी प्यारी मातभूमि का सम्मान आपके हाथो मे सुरक्षित है। 'वन्दे मातरम' तथा 'तिलक स्कूल आफ पालिटिक्स' मेरे दो बच्चे हैं। उन दोनो को भी म आपके सरक्षण मे सौंपता हू।"

अली बधु तो लालाजी से भी पहले गिरफ्तार हो चुके थे, यद्यपि महात्मा गाधी ने उन्हें इस बात के लिए सहमत कर लिया था कि वे अपने कुछ वक्तव्यो के लिए खेद व्यक्त कर दें। फिर एक एक करके प्रथम पक्ति के अन्य नेता भी जेल गए—सी० आर० दास, अबुल कलाम आजाद और मोतीलाल नहरू। अब महात्मा गाधी को उनकी आलोचना तथा सलाह उपलब्ध नही थी। अब तो मतलब केवल मात्र एक व्यक्ति का मामला रह गया था।

काग्रेस अधिवेशन दिसबर 1921 मे अहमदाबाद म हुआ और महात्माजी को औपचारिक रूप मे काग्रेस का कार्यकारी प्रमुख नियुक्त कर दिया। यदि आप चाहें तो डिक्टेटर कह सकते है। परन्तु इसे स्पष्ट तौर पर युद्ध काल की आवश्यकता समझा गया था। महात्माजी को ये असाधारण अधिकार, अभियान आरभ करने तथा उसे यथासभव सफल बनाने के लिए दिए गए थे। काग्रेस के जिन प्रस्तावो मे उन्हें परोक्ष रूप मे डिक्टेटर नियुक्त किया था उनमे विशेष तौर पर उनके निरकुश अधिकारो की सीमा निश्चित कर दी गई थी

'काग्रेस के कार्यकर्ताओ की बडे पैमाने पर सभावित गिरफ्तारियो को देखते हुए यह काग्रेस अधिवेशन काग्रेस के कार्य के लिए सामान्य व्यवस्था बनाए रखने के उद्देश्य से आगामी निर्देशो तक महात्मा गाधी को काग्रेस के पूर्ण कार्यकारी अधिकार देता है कि वह काग्रेस का विशेष अधिवेशन बुला सकते हैं या अखिल भारतीय

कांग्रेस समिति या काय ममिति की बटक बुला सकत है। वह कांग्रेस क दो अधिवेशनों के बीच की अवधि मे ऐसे अधिकार इस्तेमाल कर सक्त है और आपात स्थिति मे अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर सक्त है।

"यह कांग्रेस अधिवेशन इसके द्वारा उस कथित उत्तराधिकारी तथा उसके बाद नियुक्त होने वाले सभी उत्तराधिकारिया का उनके पूववर्तिया के ये सभी अधिकार प्रदान करता है।

"शत यह है कि इस प्रस्ताव की किसी बात से यह न समझा जाए कि महात्मा गाधी या उनके किसी उपरोक्त उत्तराधिकारी का भारत सरकार या ब्रिटिश सरकार के साथ शांति की शर्तें तय करने का पूण अधिकार नही होगा, जब तक आल इंडिया कांग्रेस कमेटी की पूव अनुमति न ली गई हो और उसी विशेष उद्देश्य के लिए बुलाए गए विशेष कांग्रेस अधिवेशन न उसकी पुष्टि न की हो। यह शत भी है कि कांग्रेस के वतमान सिद्धात महात्मा गाधी या उनके उत्तराधिकारिया द्वारा तब्दील नही किए जाएगे जब तक उनके लिए कांग्रेस से पूव अनुमति नही ली जाएगी।"

महात्मा गाधी ने नेतत्व सभाल लिया और अभियान पूरी गति से चल पडा। 1 फरवरी 1922 को उन्होंने लाड रीडिंग का प्रसिद्ध अल्टीमेटम दे दिया, जिसमे कहा गया था कि गिरफ्तार किए गए जिन व्यक्तियो के विरुद्ध कोई हिंसक मामला सिद्ध नही होता उन सबका एक सप्ताह के अंदर रिहा कर दिया जाए, इसके अतिरिक्त यह आश्वासन दिया जाए कि खिलाफत और पजाब के सबध म जो ज्यादतिया हुई है उन्हें दूर करवाने के लिए तथा स्वराज की प्राप्ति के लिए अहिंसक आंदोलन जारी रखने की पूण स्वतत्रता होगी। यदि इस अवधि मे इसके अनुसार नही किया गया तो सविनय अवज्ञा आंदोलन शुरू कर दिया जाएगा। जिसका आरभ बारदोली में होगा।

फिर अचानक ही एक नया अध्याय आरम्भ हो गया। एक अनजान से छोटे गाव चौरी चौरा मे (उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जिले म) अनियमित रूप से विद्रोह हो गया, जिसके बाद यह नाम ऐतिहासिक बन गया। 22 कांस्टेबल मार डाले गए।

बम्बई (17 नवबर) फिर मद्रास (13 जनवरी) और अन्त म चौरी चौरा मे 5 फरवरी को 'बारदोली अल्टीमेटम' की अवधि समाप्त होने मे दो दिन पूव ये घटनाए हुइ।

महात्मा गांधी एक बार फिर पीछे हट गए। इस अचानक और दूसरे झटके के बाद उन्होंने सविनय अवज्ञा आंदोलन के बारे में पुनः विचार आरम्भ कर दिया। क्या उन्होंने यह पुनः विचार बम्बई की घटनाओं के बाद ही आरम्भ कर दिया था? क्या यह विचार बम्बई की घटनाओं के बाद से प्रिंस आफ वेल्स की गड़बड़ के समय भी जारी था? क्या 'विष्णु रूप' इसी विचार का आरम्भ था जो हिंसक घटनाओं के कारण किया गया। इन प्रश्नों के जो कुछ भी उत्तर रहे हों, इस गाथा से सम्बंधित अगली घटना 12 फरवरी 1922 वाली थी। कांग्रेस कार्यकारिणी समिति की बैठक बारदोली में हुई तथा महात्मा गांधी की सलाह पर व्यापक सविनय अवज्ञा आंदोलन को अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दिया गया, यह निर्णय बम्बई तथा चौरी चौरा में हिंसा के फूट पड़ने के कारण लिया गया था। गिरफ्तारियां देने, जुलूस निकालने तथा सार्वजनिक सभाएं करने और अधिकारियों द्वारा लगाए गए प्रतिबंध तोड़ने जैसी सभी गतिविधियां छोड़ दी गईं और इनके स्थान पर कांग्रेस कार्यकर्ताओं से कहा गया कि वे अपनी शक्ति रचनात्मक कार्यों में लगाएं, जिसकी सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात चरखा कातना थी।

अभियान के आरम्भ की घड़ी आने की प्रतीक्षा की यह चरम पराकाष्ठा थी।

50. शिष्टता से निश्चेष्ट

अतत गाधीजी न पीछे लौटने का निश्चय कर ही लिया । लालाजी को इस प्रकार के अन्त की पूर्वसूचना से किसी प्रकार की सात्वना नहीं हुई । उन्होंने सब किस्म की शकाए समाप्त कर दी थी और मन मे किसी प्रकार का सकोच रखे बिना महात्माजी के नतृत्व को स्वीकार कर लिया था और उनके प्रति पूरी वफा-दारी दिखाई थी । मौन धारणा यह थी कि 'सेनापति निमर्श' वह और उनके अन्य सहयोगी पूरी वफादारी से आज्ञापालन कर रहे थे, अपनी सना को निश्चय ही विजय या पराजय तक पहुचा दगा । परतु सेना को परीक्षा म डाले बिना ही सेनापति न उसे पीछे हट जाने का आदेश द दिया था । निश्चय ही इस प्रकार पीछे हटना पूरी तरह विश्वासघात दिखाई देता था । आयरलैंड के लाखो किसान अपन 'प्रमुख' डेनियल ओ'कानल' से 'युद्ध का आदश सुनने के लिए उपस्थित थे परन्तु उन्हें चुपचाप घर लौटा दिया गया था —यह उदाहरण भी उस प्रतिक्रिया को व्यक्त नहीं कर सकता जो गाधीजी न ठीक उस अवसर पर, जब लोगो को बहुत उच्च आशाए थी, कार्यक्रम वापस लेन का निणय करके जन समूह की मनोस्थिति पर अकथनीय उल्टा प्रभाव डाला था ।

यह पृष्ठ भूमि थी जब लालाजी न 20 फरवरी को अदालत के मुकदम की सुनवाई स्थगित करने की माग की थी और मुकदमा किसी अन्य अदालत म तब्दील करन के लिए याचिका पश करने की धमकी दी थी । दरअसल मुकदमा तब्दील करवाने मे उनकी अधिक रुचि नही थी । "मै ता केवल समय चाहता था" यह बात उन्होंने एक लम्बे वक्तव्य मे लिखी जिसकी चर्चा हम फिर करेंगे । उनके मन म बहुत रोष था कि स्थिति को खराब किया जा रहा है और हालत को सभालने के लिए उन्हें जेल से बाहर आना चाहिए था ताकि कम से-कम अपने अतद्वद को पूरी तरह व्यक्त कर सके । वह जानत थे कि उनके विरुद्ध बहुत कच्चे आधार पर गलत ढग से बनाया गया मुकदमा है, वह समन का मामला था और जमानत पर उनकी रिहाई हो सकती थी और उनके लिए इतना ही अवसर शायद बहुत होता कि जेल से बाहर जाकर वह आदोलन वापस लेने वाले अपन सहयोगियो पर गुस्सा निकाल सकते और अपना मन हल्का करके जेल म अपने साथियो के पास लौट सकते । कार्य समिति के बारदोली निणय पर विचार

करने के लिए अखिल भारतीय कांग्रेस समिति की बैठक 24 तारीख को बुलाई गई थी इसलिए उन्हें जेल से बाहर जाने में और भी शीघ्रता करनी थी।

वह जेल से बाहर आने पर बहुत गंभीर थे। के० संथानम, जो न कैदी थे और न उन पर मुकदमा चल रहा था, परन्तु एक मित्र के नाते अदालत में उपस्थित थे, उन्होंने लाजपत राय को इस प्रकार मनोवेग में विद्रोह न करने के लिए सहमत कर लिया। परन्तु इतने जोश के मनोवेग में लालाजी को संभाल पाना आसान नहीं था। अदालत के कमरे के एक कोने में काफी देर तक लम्बी बहस चलती रही तब जाकर लालाजी सहमत हुए। यह सहमति मैत्री के नाते निवेदना और विनती के कारण थी, वैसे वह संथानम तथा उनका समर्थन करने वाले मित्रों की दलीलों से संतुष्ट नहीं हुए थे।

अब उन्होंने अपनी भावनाएं व्यक्त करने के लिए महात्मा गांधी को लिखे एक लम्बे पत्र का रास्ता अपनाया। यह संथानम के साथ हुए समझौते का भाग था कि अखिल भारतीय कांग्रेस समिति में स्वयं जाकर यह गुस्सा निकालने की बजाय वह एक पत्र द्वारा ऐसा करें और यह पत्र स्वयं संथानम पहुंचाने की व्यवस्था करेगा। पत्र के आरम्भ में गांधीजी को महान व्यक्ति तथा महान नेता के तौर पर बहुत उच्च श्रद्धांजलि अर्पित की गई थी, उसके साथ ही कहा गया था कि उनकी महानता के अनुसार ही उनकी गलतियां भी बहुत बड़ी थीं। गांधीजी के अपने शब्द के अनुसार (हिमालय जितनी बड़ी) पत्र में ऐसे अवसरों का उल्लेख था, जब उन्होंने ऐसी गलतियां की थीं। पत्र में असहयोग के कई अंशों की आलोचना भी की गई थी जो अन्य लोगों को केवल इसी लिए स्वीकार करने पड़े थे क्योंकि गांधीजी ने ऐसा करने की जिद की थी, वैसे उनके अनुमान के अनुसार वे ठीक नहीं थे। इस सबके बावजूद पत्र में बारदोली निर्णय की बहुत कटु आलोचना की गई थी और एक सुयोग्य शल्यचिकित्सक के चाकू के इस्तेमाल के समान अहिंसा की त्रुटियों को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया था क्योंकि पूर्ण अहिंसा का वातावरण जिसे गांधीजी आन्दोलन आरम्भ करने के लिए आवश्यक समझते थे बिलकुल ही असंभव बात थी कि यह बहुत बड़े जनसमूह का नेतृत्व करने का प्रश्न था। पत्र सरल और निष्कपट था और अंत में लालाजी ने क्षमा याचना की थी कि यदि उन्होंने भूल से कोई नाराजगी की बात कर दी हो। और महात्मा गांधी से अनुरोध किया था कि वह उन्हें मनोवेग के अधीन तथा जल्दबाज चाहे जो समझ लें, पर गैरवफादार न समझें।

महात्मा गाधी ने इस पत्र की प्राप्ति सूचना, के० सथानम को लिखे एक पोस्ट कार्ड द्वारा दी। उन्होंने केवल इतनी बात कही कि लालाजी शिष्टता से निश्चेष्ट हो चुके हैं'। और उन्हें ऐसे पत्र लिखने का कोई अधिकार नही—यह ऐसा उत्तर था, जिसमे एक उपयुक्त तथ्य की अनदेखी की गई थी—वह था कि लालाजी ने राजनीतिक बंदियो के लिए महात्मा गाधी द्वारा निर्धारित संहिता को कभी स्वीकार नही किया था और वह उसके लिए बाध्य नही थे। यह बात स्मरण करना उपयुक्त है कि इसी प्रकार के रोष पत्र जेल से प्रमुख सहयोगियो ने भी भेजे थे परन्तु उन्हें यह कभी न कहा गया कि वह शिष्टता से निश्चेष्ट हो चुके है। यह पत्र एक बहुत महत्वपूर्ण दस्तावेज था जो लाहौर सेंट्रल जेल से छिपाकर बाहर लाया गया। गाधीजी ने, यह देखते हुए कि यह पत्र गुस्से की स्थिति मे लिखा गया था, ये निर्देश दिए कि इस पत्र को कागजात मे न रखा जाए। परन्तु इस निर्देश के बावजूद यह दस्तावेज बच गया और इस दलील की कोई गुजाइश नही दिखाई देती कि यह पत्र बारदोली निर्णय द्वारा पीछे हट जाने के विरुद्ध एक शात निर्णय था-'मनोवेग' के उस पल मे बहुत समय बाद, जब असहयोग आन्दोलन का जायजा लेने के बारे मे समाचार पत्रो के लिए लेख शृखला मे उन्होंने लिखा

"परन्तु बारदोली के बारे मे निर्णय तथा बारदोली के प्रस्ताव, जो इस निर्णय के परिणामस्वरूप थे, विश्वास करने वाले तथा आशापूर्ण राष्ट्र पर बम के समान गिरे। यह धक्का बहुत ही अचानक, महाप्रलय के समान तथा अप्रत्याशित था। इसने लोगो को चकित ही नही किया बल्कि कुछ हद तक आश्चर्य मे डाल दिया और उनके मन मे गुस्सा पैदा कर दिया। पार्टी के कोई बीस हजार नेता तथा कार्यकर्ता जेल मे थे। लगभग एक करोड रुपये एकत्र किये गये थे। प्रातो मे प्रमुख कार्यकर्ताओ का अभाव हो गया था। सरकार तथा उसके एजेंटो द्वारा अधिक से अधिक उत्तेजना के बावजूद उन्होंने अपने आपको शात रखा था। हजारो लोगो ने पुलिस द्वारा जेलो मे दी मुसीबते सहन की थी और उसके विरुद्ध कोई प्रतिक्रियात्मक कारवाई नही की थी। यह सभी कुछ बारदोली मे आरम्भ होने वाले स्वर्णयुग की आशा से किया गया था। निराशा, रोष और गुस्सा होना इसकी स्वाभाविक प्रतिक्रिया ही थी।'

महात्मा गाधी को अन्य जेलो से भी आलोचना प्राप्त हुई—मोतीलाल नेहरू से और शायद सी० आर० दास से भी। महात्मा गाधी ने लालाजी की प्रतिक्रिया के बारे मे, अपने मित्रो के साथ 24 फरवरी 1922 को डा० एम० ए० अन्सारी

के घर पर विचार-विमर्श किया और यह टिप्पणी दी कि जो लोग जेलों में 'शिष्टता से निश्चेष्ट' हैं उनसे आंदोलन के बारे में सलाह तथा मार्गदर्शन मिलना संभव नहीं। परोक्ष रूप से यह महात्माजी की निजी संहिता थी, इस संगठन का अधिकार प्राप्त नहीं था। न ही लालाजी और न ही मोतीलाल एवं दास ने अपने को 'शिष्टता से निश्चेष्ट' समझा।

बारदोली के बाद स्वाभाविक ही था कि महात्माजी के सभी सूझवान सहयोगियों ने स्थिति का नए सिरे से जायजा लेना आरम्भ कर दिया। कुछ भी हो, लालाजी ने तो बारदोली निर्णय से पीछे हटने का फैसला होते ही पुनः विचार शुरू कर दिया था।

जब अन्य प्रमुख नेता जेलों से बाहर आए, तो उन्होंने स्थिति को नई दिशा देनी शुरू कर दी। जून 1922 में अखिल भारतीय कांग्रेस समिति ने 'सविनय अवज्ञा समिति' नियुक्त कर दी और नवंबर में अखिल भारतीय कांग्रेस समिति ने इस समिति की रिपोर्ट पर विचार किया। प्रकट रूप में यह समिति सविनय अवज्ञा आंदोलन फिर से आरम्भ करने के लिए बनाई गई थी और अखिल भारतीय कांग्रेस समिति ने प्रांतीय संगठनों को कुछ शर्तों के अधीन सविनय अवज्ञा फिर से आरम्भ करने की अनुमति दे दी थी। परन्तु कमोबेश यह समझा जाता था कि निकट भविष्य में ये शर्तें पूरी होने की संभावना नहीं थी और न ही सविनय अवज्ञा आंदोलन शुरू किए जाने की। इस समिति के प्रयत्नों का परिणाम केवल यही हुआ कि विधान मंडलों पर लगाया गया प्रतिबंध वापस लेने का सुझाव दिया गया और इस प्रकार कांग्रेस पार्टी को ऐसा संगठन बनाने का अवसर मिल गया जो 1924 में होने वाले चुनावों के लिए सक्रिय काम कर सके।

लालाजी भी प्रायः इस दौरान जेल में रहे थे और अपनी जन्मभूमि में उस विद्रोह के लिए अपना योगदान दे रहे थे जिसके परिणामस्वरूप स्वराज पार्टी की स्थापना हुई। सी० आर० दास पंजाब आये और यह स्वाभाविक ही था कि वह जानना चाहते थे कि बारदोली के बाद के दौर में लालाजी के विचार क्या थे। उन्हें लालाजी से मुलाकात नहीं करने दी गई और इस प्रकार व्यक्तिगत विचार विमर्श संभव न हो सका। परन्तु लालाजी ने सी० आर० दास को एक पत्र में लिखकर विचार व्यक्त कर दिए जिन्हें उन्होंने 'अपने विचारों के बारे में अत्यधिक साफ तथा स्पष्ट' कहा। इस पत्र का आरम्भ धार्मिकता की धरती पर आत्मन

पर स्वागत तथा एक प्रगसन और सहयोगी श्रमिक की ओर से स्नेहपूर्वक सलाम तथा आदर" शब्दों से हुआ। इस पत्र म लालाजी ने निश्चित निणय के तौर पर लिखा कि "हमार प्रचार ने आश्चयजनक प्रथा डाल दी है और यह शानदार ढग से सफल रहा है। हमारी गलतियों के बावजूद इसने हमारे लोगों की मनोवैज्ञानिक स्थिति बिल्कुल ही बदल दी है और उनके राजनीतिक विचारों, दृष्टिकोण तथा आदर्शों म परिवतन ला दिया है। इस दृष्टिकोण से देखने पर मुझे हमारे किये पर कोई खेद नहीं।"

प्रारम्भिक स्थिति मे असहयोग आन्दोलन के बारे म अपने संशय की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा -

"तुम जानते हो मुझे कलकत्ता के विशेष कांग्रेस अधिवेशन के अवसर पर इस कायक्रम के बारे म पूर्ण रूप से सदेह था, परन्तु पिछले दो वर्षों का पुनरावलोकन करते समय मुझे कोई सदेह नही कि आखिरकार महात्माजी ठीक ही थे।"

इस निणय के बावजूद जब उन्होंने असहयोग कायक्रम के एक-एक नुक्ते पर विचार किया, तो ऐसा दिखाई पडता था कि उन्हें अपने विचारो मे काफी परिवतन करने की आवश्यकता थी। कुल मिलाकर, उन्होंने देखा कि यह कायक्रम एक वष के अभियान के लिए बहुत बढिया था। परन्तु अब जबकि यह कुछ कम जोरदार कायक्रम बनाने की सोच रहे हैं, जो अधिक लम्बी अवधि के लिए होगा, वे पुराने दकियानूसी सिद्धांतो को नहीं दुहरा सकते। जो बलिदान लोगो से एक वर्षीय कार्यक्रम के लिए मांगे जा सकते हैं, वे अनिश्चित काल के कायक्रम के लिए नही मांगे जा सकते। वह चाहते थे कि रणनीति मे लचीलापन होना चाहिए, जिसकी महात्माजी मे कई बार कमी दिखाई देती थी।

"असल गलती जिसके लिए मैं खेद व्यक्त करने को तैयार हू वह दिसबर और जनवरी म महात्माजी के व्यवहार मे लचीलेपन का अभाव था। मेरा विचार है कि राजनीति म व्यक्ति को सिद्धातो के मामले मे लचीला नही होना चाहिए (अवश्य नही) परन्तु रणनीति तथा तरीको मे लचीलापन होना चाहिए। कृपया मुझे गलत मत समझिए, 'रणनीति' से मेरा अथ 'छलबल' से नही है। म किसी भी स्थिति मे ईमानदारी तथा सत्य की व्यावहारिकता की बलिवेदी पर बलिदान देने को तैयार नही हू। परन्तु फिर भी मैं अपने आपको इस बात के साथ सहमत नही कर सकता कि राजनीतिक अभियान से रणनीति तथा व्यावहारिकता को

बिल्कुल ही निकाल दिया जाए। मेरे अनुमान में महात्माजी ने युद्धस्थिति को स्थगित करने का आदेश देने का वह अवसर खो दिया जो वायसराय ने दिसंबर में उन्हें दिया था। फिर मालवीय सम्मेलन के अवसर पर उनके रवैये का लचीला न होना तथा उनके अल्टीमेटम गंभीर गलतियां थी। मैं यह सारा कुछ कपटपूर्ण आलोचना की भावना से नहीं कर रहा और न ही महात्माजी की गल्तियां निकालने के उद्देश्य से ही कर रहा हूं, बल्कि मैं तो ऐसा इसलिए कर रहा हूं कि अपने कार्य की सही समीक्षा करने के लिए ऐसा करना आवश्यक है (अपने लाभ तथा हानि और गलत तथा ठीक कामों की) ताकि हम भविष्य के लिए तैयारी कर सकें। हम यह देखना चाहिए कि हम कहां खड़े हैं। सरकार आशंकित भी है और उद्दंड भी। वह देश में हमारे प्रभाव से भयभीत है परन्तु हम कुचल देने के लिए दृढ़ दिखाई देती है। हमें कुचल देने के काम में उन्होंने न्याय, औचित्य और नैतिकता सभी बातों को त्याग दिया है। वह तो युद्ध तथा प्रेम में सभी कुछ उचित है, के सिद्धांत में विश्वास रखते हैं और उसी पर अमल करते हैं। निस्संदेह हमने उनसे कभी ऐसी आशा नहीं की थी, परन्तु महात्माजी तथा हम लोगों में से कुछ ने सोचा था कि वह इन सभी बातों तथा सिद्धांतों का ध्यान रखेंगे।"

प्रमुख संशोधन जिसमें दास की रुचि थी वह विधान मण्डलों से प्रतिबंध को हटाने का था। महाराष्ट्र के नेता चाहते थे कि असहयोग का सारा कार्यक्रम समाप्त कर दिया जाए। यद्यपि लालाजी उनके दृष्टिकोण से सहमत थे, फिर भी वह उस बात को नहीं समझ पा रहे थे कि उन बातों को "छोड़ देने का क्या लाभ होगा जिनका प्रभाव पहले ही समाप्त हो चुका था तथा उनसे कोई हानि नहीं हो रही थी।" इस प्रकार स्कूलों के बहिष्कार की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा

"हम स्कूलों के विरुद्ध कोई प्रचार नहीं कर रहे, यह बात (स्कूलों का बहिष्कार) आदर्श से अधिक और कुछ नहीं। जो व्यक्ति इस पर अमल नहीं कर सकता कांग्रेस उसे सजा नहीं देती।"

इसी प्रकार वह अदालतों के बहिष्कार की निन्दा की बातों पर बेकार समय नष्ट नहीं करना चाहते थे, यद्यपि अदालतों का पूर्ण बहिष्कार 'असंभव' बात थी, जिस बात को सभी असहयोगकर्ताओं ने अपने व्यवहार में स्वीकार किया।

"मैं कई कांग्रेसजनों को जानता हूं (जिनमें से कुछ नेता भी हैं) जिन्होंने दीवानी अदालतों का बहिष्कार नहीं किया। क्या व्यापारी लोग दीवानी अदालतों का

बहिष्कार कर सकते है ? क्या जमीदार तथा कृपक ऐसा कर सकते हैं ? यदि हम चाहते हैं कि काग्रेस पार्टी सर्वव्यापी राष्ट्रीय सगठन हो, तो इस विचार को कार्यान्वित करना बिल्कुल असभव है ।"

परन्तु "मेरे विचार मे हमने बहुत बुद्धिमत्ता से काम लिया कि सरकार द्वारा हमारे विरुद्ध आरम्भ किये फौजदारी मुकदमो मे अपनी सफाई नही दी, हम एक प्रदशन करना चाहते थे वह हमने सफलतापूवक कर दिया है . यह स्वीकार किए बिना कि हमने अब तक गलती की है . मैं सोचता हू कि अब वह अवसर आ गया है कि इस मामले मे रवैये के परिवतन की स्वीकृति दी जाए । युद्ध-काल के इस उपाय का (असहयोग कायक्रम के) समथन किया जा सकता है, परन्तु इसे लम्बे अनिश्चित काल के लिए नैतिक आदेश के साथ भी लागू नही किया जा सकता । हममे से जो चाहें इसे कर लें परन्तु राष्ट्र तथा काग्रेस सगठन समूचे तौर पर ऐसा नही कर सकता ।"

इस पत्र मे उन्होंने उस प्रमुख सशोधन की ब्यौरेवार चर्चा नही की जिसम दास की रुचि थी—विधान मण्डलो पर काग्रेस का प्रतिबध । प्रतिबध को उचित करार देते हुए, जो उन्होने स्वय आरम्भ किया था और असहयोग आदोलन के प्रवतक ने जिसे स्वीकार कर लिया था । उन्होने कहा

"अब हम तीसरी बात की चर्चा करते हैं जो शायद सबसे अधिक महत्वपूर्ण है । ध्यानपूवक विचार करने के बाद मैं इस राय पर पहुचा हू (अस्थायी रूप से) कि परिपदा मे सहयोग या विरोध करने के लिए जाना एक गलती होगी । 'प्रति सवेदी सहयोग' या 'प्रतिसवेदी असहयोग' केवल शब्द हैं और उनका कोई अथ नही । सबसे अच्छी-से अच्छी बात हम केवल यह कर सकते हैं कि सिएन फिएन योजना पर अमल करें—अर्थात् मुकाबले की सरकार स्थापित करें । सरकारी मतदाता सूचियो के अनुसार विरोधी सभा तथा विरोधी परिपद निर्वाचित करने से अधिक नैतिक विजय मिलेगी । मेरे तुच्छ अनुमान मे तो बुद्धिमत्ता यही है कि कायक्रम मे सभी परिवतन अगले वप अप्रैल अथवा मई मे होने वाले विशेष अधिवेशन तक स्थगित कर दिए जाए । राजनीति एक परिवतनशील खेल है और मैं नहीं मानता कि कोई ऐसी पहले से तैयार नीति हो सकती है जो हर अवसर पर उपयुक्त हो । सविनय अवज्ञा आदोलन की तब तक आज्ञा न दो, तब तक उसे आरम्भ न करो जब तक यकीन न हो जाए कि तुम हर कीमत तथा हर खतरे

पर उसे लागू कर सकते हो। जहा तक व्यक्तिगत सविनय अवज्ञा का प्रश्न है उस समय तक इसकी व्यापक स्तर पर स्वीकृति न दो जब तक आप कम से-कम पचास हजार व्यक्तियो को गिरफ्तारिया देने तथा उन्हें जेल भिजवाने की व्यवस्था नही कर सकते, परन्तु इसके साथ ही इसकी मनाही भी न करो।"*

परन्तु अब वह परिषदा पर लगी निषेधाज्ञा खत्म करने के बारे मे सोच रहे थे, यद्यपि उनके विचारो ने अभी स्पष्ट रूप नही लिया था। न तो सुधारो को कार्यान्वित करने की उदार धारणा उनके मन को जची थी और न ही अन्दर से असहयोग करके रुकावट डालने की नीति अच्छी लगी थी। असल बात यह थी कि वह जो विधान मडलो का विरोध करने के सिद्धात के प्रवर्तक थे, इन सदनों का बहिष्कार करने पर अधिक जोर नहीं दे रहे थे। दास के तुरत लक्ष्य के लिए इतना ही काफी था। दास ने सदेश भेजा कि वह इस परिवर्तन पर गया अधिवेशन मे ही जोर देंगे और उनकी इच्छा थी कि इस उद्देश्य के समर्थन के लिए वह (लालाजी) जेल म रहते हुए जो भी कर सकते हैं, करें।

यह निवेदन व्यर्थ नहीं था। लालाजी ने एक बहुत तीखी तथा जोरदार लेख माला लिखी जो समाचार पत्रो मे 'सांविधानिक आलोचक का चिंतन' के रूप मे प्रकाशित हुई, जिसम सविधान के सबध मे शिकायत करने वाला अपने मन का बोझ दयालदास के आगे हलका करता है, जो तपस्वी के रूप में, जो गाधीवाद के सिद्धान्त की एक विशेषता है, प्रतिदिन ठीक छ बजे प्रात मिलता है, बिना इस बात की परवाह किए कि नवम्बर मे कितनी सर्दी है और चाय का एक प्याला भी स्वीकार नही करता। एक बडी प्यारी आत्मा जो अपने सिद्धात की खातिर फासी पर झूल सकती है अथवा आग म कूद सकती है। गाधी जी ने उनके लिए जीवन तथा मृत्यु की सभी समस्याए हल कर दी थी और उन्हें अपने बारे मे सोचने की सभी चिंताओ से मुक्त कर दिया था।

*इस पत्र के अतिम अश म हिन्दू-मुस्लिम एकता के बारे म कुछ बात बताई गई है। आज तक इस पत्र के अशो को अक्सर उद्धृत (या गलत उद्धृत) किया जाता रहा है। आगे के अध्यायो म हम इस के बारे म कुछ उल्लेख करेंगे।

51. कैद

'आपके बन्दी के तौर पर म आपसे कोई रियायत अथवा विशेष सुविधा नही चाहूगा, जो आप देंगे, मैं खा लूगा तथा जो मशक्कत आप चाहेंगे करूगा," यह बात लालाजी न हरकिशन लाल से कही (जो उस समय पजाब सरकार के मत्री थे), जब गिरफ्तारियो से कुछ सप्ताह पूव, वह एक दिन दोपहर बाद 2, कोट स्ट्रीट म मिलने आए थे।

दरअसल वह कैद को आत्मानुशासन तथा शाति के लिए शिक्षा का अवसर मानते थे।

"मैं बिल्कुल प्रसन्नचित्त हू", यह बात लालाजी ने महात्मा गाधी को एक पत्र मे प्रात लिखी (उस दिन वह गिरफ्तारी की प्रतीक्षा कर रहे थे) "और मैं किसी रियायत के लिए चिरलाहट नही करूगा। यदि वे इतने दयालु भी होंगे कि मुझे कुछ विशेष सुविधा भी दें, ता मैं उनसे आग्रह करूगा कि वह मेरे साथ साधारण कैदी जैसा व्यवहार ही करें, परन्तु मुझे विश्वास नही कि वह इतने दयालु भी होंगे। आप विश्वास रखें मैं आपके आन्दोलन को बदनाम नही करूगा।"

हवालात भेजे जाने से पूव, सरकारी तारघर से उन्होने सदेश भेज दिया कि उनके लिए जेल म घर से खाना न भेजा जाए। जेल म उनके 'भाग्य' मे जो लिखा होगा वह खा लेंगे। जेल भेजे जाने के पश्चात, जब उन पर कुछ सप्ताह तक मुकदमा चल रहा था, पजाब के लोगो के नाम सदेश म उन्होंने फिर इसी स्वर म बात कही थी। उन्होंने अपनी कैद को 'नतिक साधना' बताया और यह अवसर प्रदान करने के लिए भगवान को धयवाद दिया। आसपास पहली नजर डालने से ही कुछ मौलिक रुचियो के बारे मे उनके मन मे विचारो का एक सिलसिला आरम्भ हो गया था, जिसने उनके मन म जेलो के सुधार के लिए दृढ रुचि उत्पन्न कर दी। वह केवल राजनेता ही नही थे और उन्हें केवल राजनीतिक कैदियो को रियायतें देने मे ही रुचि नही थी, उनकी व्यापक मानवता मे घणित महापराधी भी शामिल थे। इस सदेश म हम इसकी अच्छी झलक मिलती है

"पिछली बार (1907 म) मुझे जेल जीवन का कोई अनुभव नही था और मुझे वह दृश्य देखने का अवसर नही मिला था, जहा मनुष्यो को मानवता से गिरा

पर उसे लागू कर सकते हो। जहा र
उस समय तक इसकी व्यापक स्तर र
पचास हजार व्यक्तियो को गिरफ्तारि
नही कर सकते, परन्तु इसके साथ ही इ

परन्तु अब वह परिषदा पर लगी
यद्यपि उनके विचारो ने अभी स्पष्ट र
वित करने की उदार धारणा उनके
करके रुकावट डालने की नीति अ
विधान मडलो का विरोध करने के
करने पर अधिक जोर नही दे रहे
काफी था। दास ने सदेश भेजा कि
जोर देंगे और उनकी इच्छा थी
जी) जेल मे रहते हुए जो भी कर

यह निवेदन व्यर्थ नही था। र
माला लिखी जो समाचार पत्रो
प्रकाशित हुई, जिसमे सविधान के
बोझ दयालदास के आगे हलका
के सिद्धात की एक विशेषता है प्र
बात की परवाह किए कि नवम्बर मे
स्वीकार नही करता। एक बडी
फासी पर झूल सकती है अथवा आग
जीवन तथा मृत्यु की सभी समस्याए है
सोचने की सभी चिताओ से मुक्त कर

---

*इस पत्र के अतिम अश म हि दू मुस्लिम एकता
इस पत्र के अशो को अक्सर उद्धृत (या गलत उद्धृत)
म हम इस के बारे म कुछ उल्लेख करेंगे।

इस लम्बे उद्धरण के लिए किसी क्षमा याचना की आवश्यकता नही। इससे हम केवल जेल-सुधारो के बारे म विशाल दृष्टिकोण का ही पता नही चलता, परन्तु यदि ध्यान से विचार किया जाए, तो लाजपत राय के प्रजातान्त्रिक होने का प्रकट प्रभाव भी मिलता है, जो केवल लम्बी बहस के बाद ही प्राप्त करना सभव हो सकता था।

अधिकारिया को भी इस बात की कोई चिन्ता नही थी कि उन्हे विशेष सुविधाए दी जाए। एक बात यह भी थी कि मजिस्ट्रेटो ने अपनी मूखतापूण अज्ञानता के कारण ऐसी बडी-बडी गलतिया की थी, जिनसे निकलना उनके लिए एक समस्या बन गयी थी और इस भावना को छुपाने के लिए असाधारण कायकौशल की आवश्यकता थी जो कि वह उनके लिए सिरदद सिद्ध हो रहा था। वर्ना कोई ऐसा कारण नही था कि उनके मुकदमे के लिए सफाई की तैयारी करने के वास्ते किसी भी सबधी या मित्र को उनसे भेंट की आज्ञा न दी जाए। शुरू मे उन्हें तथा उनके साथियो को मुलाकात की आज्ञा न दी गई, यहा तक उनको वकीलो के साथ भी नही मिलने दिया गया। लालाजी के कहने के अनुसार, जेल नियमावली को भी निलम्बित कर दिया गया था।

परन्तु यह त्रुटिपूण स्थिति शीघ्र ही समाप्त हो गई थी और विचाराधीन मुकदमे वाले व्यक्ति के तौर पर उन्हें मुलाकातो की सभी सुविधाए दी जाने लगी। जेल के भोजन के साथ मित्रो द्वारा उदारता से भेजे गए फलो आदि की टोकरिया भी शामिल होने लगी, परन्तु वे अन्य काग्रेसी कैदियो के साथ मिल-बाटकर खाए जाते थे। जेल अधिकारियो द्वारा उन्हें जो भोजन दिया जाता था, वह विरस और थोडा होता था और अक्सर ठीक ढग से पका हुआ भी नही होता था। फिर भी, कुछ अन्य काग्रेसी कैदियो को—जिन्हे जेल अधिकारी महत्वपूण नही समझते थे—और भी कम तथा घटिया खाना दिया जाता था। 'उच्च श्रेणी' के चौदह कैदियो ने, जिनके प्रमुख लालाजी थे जेल अधीक्षक को लिखा कि यह भेदभाव समाप्त किया जाए।

परन्तु अधिकारियो ने ऐसे समतावादी अनुरोधो की ओर कोई ध्यान नही दिया चाहे, यह 'अच्छी श्रेणी' के कैदियो द्वारा अपनी सुविधाए छोड देने को लेकर थे या 'साधारण श्रेणी' द्वारा 'घटियापन' के विरुद्ध आवाज उठाने के रूप मे थे। और कई बार तो 'साधारण' वग वाले 'अच्छे वर्ग' वालो के साथ खुश

दिया जाता है। जो अनुभव मुझे इस बार हो रहा है उसने मुझे पढा दिया है कि धन, समृद्धि, ज्ञान तथा प्रतिष्ठा से मनुष्य मात्र के सम्मान मे वृद्धि नही की जा सकती। ससार मे बहुत कम 'मनुष्य' है और मेरी केवल यह इच्छा है कि मैं मनुष्य बन सकू। मेरे आसपास असख्य मनुष्य है, उनमे से बहुत सेक्रेटरी है तथा कुछ अधिकारी। मेरे अनुमान मे जेलो से बाहर रहने वाले अधिकतर लोग, जिन्हें धन, सम्पदा, ज्ञान तथा प्रतिष्ठा के कारण समाज में सम्मान से देखा जाता है, इन कैदियो से अच्छे नही हैं। वे जेलो से बाहर है, क्योकि समाज की सरचना के अनुसार गरीबी तथा असहायपन को सजा दी जाती है, अपराध को नहीं। कौन है जो बदमाशी नही करता? परन्तु निधन तथा असहाय कैदी को निर्दयता से मानवता के स्तर से गिरा दिया जाता है, जबकि अन्य लोगो को बदमाशी के लिए पदोन्नति तथा समृद्धि मिलती है। एक बंदी को मानवोचित व्यवहार से वचित कर दिया जाता है, केवल इसीलिए कि वह एक कैदी है। इतना ही नही धीरे-धीरे उसके सभी श्रेष्ठ गुण समाप्त कर दिए जाते हैं और वह केवल एक पशु रह जाता है। उसके जेलर भी पशु बन जाते है, क्योकि समाज उन्हें सहन करता है। दोनो मामलो मे परिणाम वही है। मैंने यह महसूस किया है कि हमारे लिए यह जरूरी है कि हम मनुष्यो से केवल इसी लिए प्यार करें कि वे मनुष्य हैं उनकी धन, सम्पदा, ज्ञान तथा प्रतिष्ठा के लिए नही। जेलें शैतान के घर हैं उनके अन्दर भी इतनी बेईमानी तथा शरारत है कि जिसका वर्णन नही किया जा सकता। मेरा मन इस दुर्व्यवहार तथा दुःख के मारे अपराधियो से अधिक-से अधिक प्रेम करना चाहता है। वे दुष्ट तथा अपराधी हैं, क्योकि समाज ने गैर-मानवीय व्यवहार के साथ उन्हें ऐसा बना दिया है, नही तो उनमे से प्रत्येक के अन्दर भी वही अमूल्य देन मौजूद है जो महात्मा गांधी मे है। ये जेलें सुधार के उद्देश्य से नही बनाई गईं, बल्कि इसलिए बनाई गई हैं कि कुछ व्यक्ति जो सत्ता मे है, उन्हें अपने गर्व के पोषण का अवसर प्राप्त हो सके। वे लोग स्वय असहाय है। उनकी शिक्षा तथा प्रशिक्षण उनके असहायपन के लिए जिम्मेदार हैं। यही कारण है कि वे स्वय दया के पात्र हैं। मैं अपने मन को बिल्कुल स्वतत्र करने का प्रयत्न कर रहा हू (किसी प्रकार के कठोर विचारो से) ताकि मेरे मन में उनके प्रति कोई कठोर विचार न हो और न ही उनके प्रति कोई शिकवा शिकायत हो। इन्ही कारणो से मै अपनी कैद को एक अद्वितीय वरदान समझता हू। आत्म सयम और मानवता के ज्ञान का अभ्यास करने के लिए इससे बढकर और कोई पाठशाला नही है, शर्त केवल यह है कि व्यक्ति अपने स्वभाव को ऐसा करने के योग्य बना ले।"

नहीं होते थे, यद्यपि उन्हें यह मालूम होता था कि 'अच्छे' वर्ग वाला कुछ बाहर से भेजते थे उसे वे 'साधारण' वर्ग वालो के साथ मिल ने इस पर नाराज थे कि उनके पास वैसे उपहार क्यो नहीं आते।

यह व्यय राय अथवा प्रतिवेदन जब समाप्त हो गए, तो वह में 'अच्छे वर्ग' के कैदी के जीवन मे व्यस्त हो गये। जब मुकदमे की की अवधि समाप्त हो गई तो जेल से बाहर के ससार से उनका स्वाभाविक ही था। उस समय के जेल नियमो के अनुसार एक मास के अन्तर से ही हो सकती थी। अब उन्होने जेल के उपहार अक्सर या नियमित रूप से प्राप्त करने पर भी निर्भरता थी। जेल के अधीनस्थ कर्मचारी उनके प्रति बहुत सहानुभूति थे। श्रद्धा तथा सम्मान, जो प्रतिदिन उन्हें कैदियो तथा मिलता था अवश्य ही माडले दुर्ग मे सलाम करने का स्मरण कुछ साथी कैदियो पर, जो आम तौर पर राजनीतिक नहीं सेवा के लिए निर्भर कर सकते थे, जो वह केवल श्रद्धाभाव से कभार वह थके हुए दिखाई देते, तो सावले चेहरे वाला एक काफी बलिष्ठ था, उनकी मालिश कर दिया करता और श्रद्धालु, जो जेल मे उनके साथ थे, उस विशेषाधिकार किया करते थे। काग्रेसी स्वयसेवक उनकी सेवा का थे, विशेषकर उनमे से एक, जो लाहौर कोर्ट का कप्तान दोआबा का अनपढ अकाली सिख था, जिसकी शिक्षा के लिए देर के इकट्ठे जेल मे रहे, कोई कमर बाकी न रखी।

पुस्तकें तथा लेखन-सामग्री की खुली आज्ञा थी, परन्तु सम. पत्रिकाओ की कडी मनाही थी और समाचार-पत्र एक ऐसी वस्तु थी, वह रह नहीं सकते थे। दरअसल वह बहुत अच्छे कैदी थे, क्योकि खुशी से सहन किए, रियायतो तथा सुविधाओ के लिए कभी और सम्मान की मर्यादा को कभी न छोडा, उन्होने अपने आसपास मनुष्यो मे गहरी रुचि ली उनके साथ मैत्री की और उनके मन म कोशिश भी की। इस सबके अनुसार, एक कैदी के तौर पर उनकी पर वह नहीं थी जो महात्मा गाधी के एक आदर्श सत्याग्रही की होनी चा यदि जेल अधिकारी इस बात को नहीं समझते कि समाचार पत्र का

क्या महत्व है, तो यह स्वयं उनका काम था कि वह प्रतिबंध के बावजूद प्राप्त करें। महान राजनीतिक बंदियों के जेल-संस्मरण पढ़ने वाले इस बात से सहमत होंगे कि जितनी अच्छी संगति वह चाहते थे, वह उन्हें मिलती थी, फिर चाहे यह संगति महात्मा गांधी की नहीं थी। दरअसल इन मामलों में धर्म की खातिर बलिदान देने वालों की नीति उन लोगों से बिल्कुल भिन्न होती है, जिन्होंने राजनीतिक उद्देश्यों के लिए बलिदान किए। निस्संदेह यदि वह महात्मा गांधी के सत्याग्रही बन और उन्होंने 'शिष्टता से निश्चेष्ट' होने की घोषणा स्वीकार की थी, तो बात कुछ अलग थी।

वह गांधी संहिता के लिए बाध्य नहीं थे और उन्होंने बाहरी संसार के साथ संबंधों के लिए अपने ही सम्पर्क बना रखे थे, जिनसे उन्हें समाचार-पत्र तथा पत्रिकाएं प्राप्त होती रहती थीं और जो उन्हें समाचार-पत्रों में प्रकाशित कराना होता था, वह भी बाहर पहुंच जाता था और पत्र भी बाहर पहुंच जाते थे, जो सामान्य व्यवस्था में बाहर नहीं पहुंच सकते थे। यह उनके युवा सहयोगियों का काम था—लोक सेवकों का (सर्वेंटस आफ पीपुल) कि समाचार पत्रों की आवश्यक कतरनें या विशेष तौर पर तैयार किया गया समाचार-सारांश आदि प्रतिदिन जेल द्वार पर पहुंच जाता, जहां से उनकी अपनी व्यवस्था का कार्य आरम्भ हो जाता था। जब सी० आर० दास को उनके साथ मुलाकात की अनुमति न दी गई, तो बदली हुई स्थिति के बारे में उन्होंने अपने विचार इन सम्पर्क मार्गों से भेज दिए थे और देशबंधु के सुझाव पर उन्होंने समाचार-पत्रों में लेख लिखकर कांग्रेस द्वारा विधान परिषदों पर लगाया गया प्रतिबंध समाप्त करने के बारे में आवश्यक प्रचार भी किया था।

जो पत्र तथा लेख सी० आर० दास को प्राप्त हुए थे, उनको उन्होंने गया अधिवेशन में बहुत प्रभावशाली ढंग से प्रयोग किया था। जब महात्मा गांधी का आंदोलन वापस लेने के ढंग पर आपत्ति का पत्र मिला तो वह इतना कहकर ही संतुष्ट हो सके कि लालाजी तथा मोतीलाल के 'शिष्टता से निश्चेष्ट' होने के कारण ऐसे पत्र लिखने का अधिकार नहीं रखते। लालाजी और दास तथा नेहरू प्रकट तौर से यह नहीं मानते थे कि जब किसी व्यक्ति को जेल भेज दिया जाता है तो वह 'शिष्टता से निश्चेष्ट' हो जाता है (बाद की जेल यात्राओं में यह मालूम हो जाएगा कि महात्मा गांधी भी यह सिद्धांत लागू करने से हट गए थे)।

नही होते थे, यद्यपि उन्हे यह मालूम होता था कि 'अच्छे' वर्ग वालो के मित्र जो कुछ बाहर से भेजते थे उसे वे 'साधारण' वर्ग वालो के साथ मिल-बाटकर खाते थे। वे इस पर नाराज थे कि उनके पास वैसे उपहार क्यो नही आते।

यह व्यर्थ रोष अथवा प्रतिवेदन जब समाप्त हो गए, तो वह लाहौर सट्रल जेल मे 'अच्छे वर्ग' के बंदी के जीवन मे व्यस्त हो गये। जब मुकदमे की लम्बी सुनवाई की अवधि समाप्त हो गई तो जेल से बाहर के ससार से उनका सम्पर्क कम होना स्वाभाविक ही था। उस समय के जेल नियमो के अनुसार मुलाकातें केवल एक मास के अतर से ही हो सकती थी। अब उन्होने जेल के भोजन मे पूरक उपहार अक्सर या नियमित रूप से प्राप्त करने पर भी निर्भरता समाप्त कर दी थी। जेल के अधीनस्थ कर्मचारी उनके प्रति बहुत सहानुभूति तथा आदर रखते थे। श्रद्धा तथा सम्मान, जो प्रतिदिन उन्हें कैदियो तथा कैदी कार्यकर्ताओ से मिलता था अवश्य ही माडले दुर्ग मे सलाम करने का स्मरण करवाते होगे। अपने कुछ साथी कैदियो पर, जो आम तौर पर राजनीतिक नही होते थे, वह व्यक्तिगत सेवा के लिए निर्भर कर सकते थे, जो वह केवल श्रद्धाभाव से ही करते थे। कभी-कभार वह थके हुए दिखाई देते, तो सावले चेहरे वाला एक युवा भगी कैदी, जो काफी बलिष्ठ था, उनकी मालिश कर दिया करता और लालाजी के कुछ अन्य श्रद्धालु जो जेल मे उनके साथ थे, उस विशेषाधिकार प्राप्त भगी से कुछ ईर्ष्या किया करते थे। काग्रेसी स्वयसेवक उनकी सेवा का कोई अवसर नही गवाते थे, विशेषकर उनमे से एक, जो लाहौर कोट का कप्तान था और दूसरा, जो दोआबा का अनपढ अकाली सिख था, जिसकी शिक्षा के लिए लालाजी ने, जितनी देर वे इकट्ठे जेल मे रहे, कोई कसर बाकी न रखी।

पुस्तकें तथा लेखन-सामग्री की खुली आज्ञा थी, परन्तु समाचार-पत्र तथा पत्रिकाओ की कडी मनाही थी और समाचार-पत्र एक ऐसी वस्तु थी, जिनके बिना वह रह नही सकते थे। दरअसल वह बहुत अच्छे बंदी थे, क्योकि उन्होने कष्ट खुशी से सहन किए, रियायतो तथा सुविधाओ के लिए कभी चिल्लाहट न की और सम्मान की मर्यादा को कभी न छोडा, उन्होने अपने आसपास रहने वाले मनुष्यो मे गहरी रुचि ली, उनके साथ मैत्री की और उनके मन मे उतरने की कोशिश भी की। इस सबके अनुसार, एक कैदी के तौर पर उनकी नीति स्पष्ट तौर पर वह नही थी जो महात्मा गाधी के एक आदर्श सत्याग्रही की होनी चाहिए थी। यदि जेल अधिकारी इस बात को नही समझते कि समाचार पत्र या उनके लिए

क्या महत्व है, तो यह स्वय उनका काम था कि वह प्रतिबध के बावजूद प्राप्त कर। महान राजनीतिक बंदियों के जेल-संस्मरण पढने वाले इस बात से सहमत होंगे कि जितनी अच्छी सगति वह चाहते थे, वह उन्हें मिलती थी, फिर चाहे वह सगति महात्मा गाधी की नही थी। दरअसल इन मामलो म धर्म की खातिर बलिदान देने वालो की नीति उन लोगो से बिल्कुल भिन्न होती है, जिन्होने राजनीतिक उद्देश्यो के लिए बलिदान किए। निस्सदेह यदि वह महात्मा गाधी के सत्याग्रही बने और उन्होने 'शिष्टता से निश्चेष्ट' होने की घोषणा स्वीकार की थी, तो बात कुछ अलग थी।

वह गाधी-सहिता के लिए बाध्य नहीं थे और उन्होने बाहरी ससार के साथ सबधो के लिए अपने ही सम्पर्क बना रखे थे, जिनसे उन्हें समाचार पत्र तथा पत्रिकाए प्राप्त होती रहती थीं और जो उन्हें समाचार-पत्रो मे प्रकाशित कराना होता था, वह भी बाहर पहुच जाता था और पत्र भी बाहर पहुच जाते थे, जो सामान्य व्यवस्था म बाहर नहीं पहुच सकते थे। यह उनके युवा सहयोगियो का काम था—लोक-सेवको का (सर्वेंटस आफ पीपुल) कि समाचार पत्रो की आवश्यक कतरन या विशेष तौर पर तैयार किया गया समाचार-साराश आदि प्रतिदिन जेल द्वार पर पहुच जाता, जहा से उनकी अपनी व्यवस्था का काय आरम्भ हो जाता था। जब सी० आर० दास को उनके साथ मुलाकात की अनुमति न दी गई, तो बदली हुई स्थिति के बारे मे उन्होने अपने विचार इन सम्पर्क मार्गों से भेज दिए थे और देशबधु के सुझाव पर उन्होने समाचार-पत्रो मे लेख लिखकर काग्रेस द्वारा विधान-परिषदो पर लगाया गया प्रतिबध समाप्त करने के बारे मे आवश्यक प्रचार भी किया था।

जो पत्र तथा लेख सी० आर० दास को प्राप्त हुए थे, उनका उन्होने गया अधिवेशन म बहुत प्रभावशाली ढग से प्रयोग किया था। जब महात्मा गाधी का आदोलन वापस लेने के ढग पर आपत्ति का पत्र मिला तो वह इतना कहकर ही सतुष्ट हो सके कि लालाजी तथा मोतीलाल के 'शिष्टता से निश्चेष्ट' होने के कारण ऐसे पत्र लिखने का अधिकार नही रखते। लालाजी और दास तथा नेहरू प्रकट तौर से यह नही मानते थे कि जब किसी व्यक्ति को जेल भेज दिया जाता है तो वह 'शिष्टता से निश्चेष्ट' हो जाता है (बाद की जेल यात्राओ मे यह मालूम हो जाएगा कि महात्मा गाधी भी यह सिद्धात लागू करने से हट गए थे)।

समाचार पत्र उनके लिए अनिवार्य थे और वह उन्हें प्राप्त कर लेते थे, चाहे जेल के नियम कुछ भी रहे हो। यदि उन्हें बडल मिलने मे देरी हो जाती, तो वह काफी बेचैन हो जाते। यदि इसमे अत्यधिक देरी हो जाती, तो फिर सारी शक्ति समाप्त हो जाती। वह जोर जोर से कोसते और रोष व्यक्त करते कि उनके लोगो ने उनका थोडा सा ध्यान करना भी छोड दिया है। जेल के कुछ कर्मचारियो को इस बात की जानकारी थी कि समाचार पत्र न मिलने पर वह कितने चिन्तातुर होते है, दयालु डाक्टर जब चक्कर लगाने आते तो अक्सर 'ट्रिब्यून' की अपनी प्रति उनकी कोठरी के पास 'भूल' जाया करते थे, ताकि चोरी छिपे लाया जाने वाला अपना समाचार-पत्र मिलने से कुछ घटे पूर्व ही उन्हें समाचार पत्र पढने का अवसर प्राप्त हो सके। माडले म भी हज्जाम तथा भिश्ती उन्हें अपने ढग से समाचार-पत्र पहुचाया करते थे।

पजाब के अधिकारी सामान्य तौर पर मुलाकातो का अवसर देने मे सकोच से काम लेते थे, परन्तु कभी-कभार वे आज्ञा दे भी देते थे, जब मुलाकात करने वाला सी० आर० दास जैसा आपत्तिजनक व्यक्ति नही होता था, पडित मदन मोहन मालवीय ने जेल म उनके साथ बहुत लम्बा वार्तालाप किया, यद्यपि वह उनके लिए लाए गए समाचार-पत्रो तथा पत्रिकाओ का बडल उन्हे न दे सके और यह बाद मे साधारण साधनो से उन तक पहुचा दिया गया। सी० एफ० एड्रयूज को मुलाकात की आज्ञा लेने मे विशेष कठिनाई न हुई। डाक्टर एन० आर० धर्मवीर जो पैडीहैम (इग्लैंड) म वकालत करते थे और लम्बी अनुपस्थिति के बाद थोडी अवधि के लिए भारत आए थे, लालाजी से भेंट करने के लिए बहुत उत्सुक थे। उन्होने लालाजी के साथ दो बार भेंट की, एक बार लाहौर मे तथा दूसरी बार धर्मशाला मे।

सत निहाल सिंह भी काफी लम्बी अनुपस्थिति के पश्चात 1921 के आरम्भ मे भारत लौटे थ, जब लालाजी के पहले मुकदमे के पश्चात् उन्हे गरकानूनी कैद की सजा सुनाई गई थी। वह प्रिंस आफ वेल्स के साथ आए समाचार पत्र प्रतिनिधियो मे शामिल थे और एक दिन भोज के समय उन्होंने पजाब के राज्यपाल सर एडवड मैक्लागन से आग्रह किया था कि क्या उन्हे अपने मित्र लाजपत राय से भेंट करने की आज्ञा मिल सकती है? सर एडवड ने तुरत आवश्यक निर्देश जारी कर दिए। विशेषाधिकार प्राप्त मुलाकाती होने के नाते सत निहाल सिंह ने जेल मे जेल अधिकारियो से इच्छा व्यक्त की कि वह लालाजी से उनकी जेल कोठरी

मे मिलना चाहगे। उन्हे सीधे कोठरी म ले जाया गया और बाद म उन्होन अपन सस्मरण सुस्पष्ट तथा प्राजल शैली म दिए हैं। उन्होंने विशेषतौर पर जेल म दिया गया खाना देखकर बहुत दुख व्यक्त किया। वह "चमडे जसी रोटी का टुकडा अपन साथ ल गये ताकि उसे श्री माटेग्यू को दिखा सकें, परन्तु मेरे लदन लौटन से पूव ही बेचारे माटेग्यू को उनके विरोधियो न पद से हटा दिया था।" मन निहाल सिंह न यह भी लिखा कि "लालाजी न जेल के आतरिक जीवन की जो जानकारी प्राप्त की उसन उनके मन मे विद्रोह उत्पन्न कर दिया। उन्होने मुझे जेल अधिकारी की उपस्थिति म बताया कि जब वह जेल से बाहर आएगे तो जेलो के सुधार के लिए काय करेगे।"

अन्य मित्रो मे से, जो उनके निकट सहयोगी थे और उनके साथ ही जेल म थे, के० सथानम और डाक्टर गोपीचन्द भागव को तो उसी समय रिहा कर दिया गया जब पजाब सरकार न सजा देने वाले मजिस्ट्रेटो द्वारा की गई गल्तियो को सुधारने का प्रयत्न किया। इस कमी को राम प्रसाद ने पूरा कर दिया, जिन्हें वन्दे मातरम्' मे उनके लेखो के कारण दो वष के कारावास की सजा दी गई थी। एस० ई० स्टोकस को लालाजी तथा उनके अन्य पजाबी मित्रो से अलग रखे जाने का उतना ही दुख था जितना लालाजी को। आगा मुहम्मद सफ्दर जिन्हें लालाजी न (प्रातीय काग्रेस समिति की अनुमति से) अपन बाद पजाब काग्रेस का प्रमुख नियुक्त किया था, शीघ्र ही जेल मे उनसे आ मिले। कुछ अन्य प्रमुख मुसलमान मित्र भी थे— उत्तर-पश्चिम सीमात से खान अब्दुल गफ्फार खा, जो उस समय नौजवान थ और अभी ख्याति प्राप्त नही थे, परन्तु ऊचे लम्बे कद, विनम्र तथा सदभावपूण व्यवहार के कारण आकर्षक व्यक्तित्व के धनी, एक अन्य प्रमुख नेता थे। इन मुस्लिम मित्रो का साथ होने से लालाजी को उनके साथ स्पष्ट और खुलकर बातचीत करन से भारतीय राजनीति म मुसलमानो के धार्मिक तथा नागरिक दृष्टिकोण समझन का अवसर मिल पाया। ऐसे अवसर उन्हें पहले कभी नही मिले थ।

उनके कारावास के दौरान ही लक्ष्मी इश्योरेंस कम्पनी की स्थापना की कल्पना की गई। वह इस बात के लिए उत्सुक थे कि सथानम को, जिन्होने अपनी शानदार वकालत छोड दी थी और जो पजाब म उनके सहायको मे से बहुत ही बुद्धिमान थे, रोजगार की तलाश मे अपनाया हुआ प्रात छोडना न पडे। इसी चिन्ता के कारण उन्हें यह जीवन बीमा कार्यालय खोलने की बात सूझी।

इसी कारावास के दौरान ही उनकी महत्वपूर्ण पुस्तकों की तीसरी किस्त की रचना हुई। पहली किस्त की रचना पिछली शताब्दी के अन्तिम दशक में आर्य समाज के दिनों में हुई थी। उसमें उर्दू की जीवनियां भी थीं, जिनकी रचना में एबटाबाद के लम्बी बीमारी के दिनों का काम भी था। एक छोटी पुस्तक की रचना माण्डले दुर्ग में छः महीने के कारावास के दौरान हुई थी। रचना क्रम की दूसरी महत्वपूर्ण किस्त पांच वर्ष के निर्वासन काल की देन थी और यह तीसरी किस्त वर्तमान कारावास की उपज थी। इसमें (समाचार-पत्रों के कुछ लेखों के अतिरिक्त) प्राचीन भारत का उर्दू इतिहास भी था, जिसके 600 पन्ने थे। 'महान व्यक्तियों' की एक अतिरिक्त रचना (अशोक के बारे में) भी थी और नए सिरे से लिखी 'महान व्यक्ति—शिवाजी' पुस्तक भी थी।

समाचार-पत्रों में प्रकाशित रचनाओं में उनके वे लेख भी शामिल थे, जिनमें से कुछ उन्होंने असहयोग आन्दोलन की रूढ़िवादी विचारधारा के विरुद्ध कांग्रेस में विद्रोह खड़ा करने के लिए, विशेषकर विधान मंडलों पर प्रतिबंध के विरुद्ध विद्रोह उत्पन्न करने के लिए लिखे थे। 'सांविधानिक आलोचक का चिन्तन' (द कौजिटेशंज आफ ए कांस्टिट्यूशनल ग्रम्बलर) लेख माला अपनी किस्म की एक ही थी और जिस उद्देश्य से लिखी गई थी, उसको बहुत बल मिला। 'शिष्टता से निश्चेष्ट होने के कारण उन्होंने बिना नाम के या छद्म नाम से लिखना आरम्भ कर दिया, कई बार उनके लेखों के नीचे 'विदुर' नाम से हस्ताक्षर होते थे। गुप्त नाम धारण करने से 'सांविधानिक आलोचक' उत्पन्न हुआ, जिसके चिंतन ने मूलभूत की पूरी शक्ति को निष्पक्ष पड़ताल तथा बेलाग विश्लेषण के साथ इस ढंग से मिलाया कि वह निष्ठुर तथा निष्कपट आत्म आलोचना का रूप ले सका और कई बार तो यह व्यंग्य और विडम्बना ऐसी शानदार प्रतिभा व्यक्त करती थी कि यह इच्छा होती कि काश वह गुप्त रहने के लिए ही बाध्य रहते, ताकि उन्हें अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावशाली अभिव्यक्ति की जरूरत रहती और वह इस प्रतिभा का पूरा और उचित लाभ उठा सकते।

एक और वर्णन योग्य रचना 'भारतीय राजनीति का क० ख० ग०' (ए० बी० सी० आफ इंडियन पालिटिक्स) थी, जो 'माडर्न रिव्यू' में उनके पुत्र के नाम से प्रकाशित हुई परन्तु ध्यान से पढ़ने वाले पाठक आसानी से पता लगा सकते थे कि वह पिता की कृति थी। यह एक अद्वितीय प्रयत्न है (मार्क्सवादी क्षेत्रों के बाहर) जब किसी भारतीय राजनीतिक नेता ने मूलभूत सिद्धांतों की जांच-पड़ताल की

हो और सक्रिय राजनीति को ठोस सामाजिक आधार से जोडने का प्रयत्न किया हो। लालाजी को स्वय सिद्धातवादी वनने का विशेष शौक बिल्कुल नही था। कुछ उदारवादी नेता 'कानून तथा व्यवस्था' और 'मूलभूत कतव्यो' की कुछ पाठ्य पुस्तको के बारे म बातें श्रद्धामय ढग से करते थे और उन्होंने गहराई से यह बात महसूस की थी कि उन भद्र पुरुषो का निरपेक्ष राजनीतिक तथा आधुनिक समाज वैज्ञानिक प्रवृत्तियो की शिक्षा दी जानी चाहिए। उन्होंने बम्बई के अपने प्रसिद्ध भाषण म मिताचारियो पर भारी विश्वासघात करने का आरोप लगाया था और बाद मे श्रीनिवास शास्त्री के साथ द्वद्व का आनन्द लिया था। 'चिन्तन' मे उन्होंने वही आरोप उसी उत्साह तथा तीव्रता से लगाया। ए०वी०सी० में न (जो उन्होंने सिद्धातवाद के समथक के मुखोटे का जायजा लिया था कि मिताचारियो अपने आपको उदारवादी कहते थे) दमन की नीति के बारे मे अफसरशाही के साथ मिली-भगत करने के लिए ओढ़ा था।

वह एक कैदी का कठिन काय भी करते थे, और उन्हें यह काय करने से प्रेम था। पहले कुछ सप्ताहो मे उन्होंने हाथ से कताई करने मे निपुणता प्राप्त करने का प्रयत्न न किया—बारदोली के निणय के बाद तो वह करना भी नहीं चाहते थे। परन्तु हाथ से काय करने का उन्होंने एक और साधन ढूढ लिया। यह था मूज, जिससे उन्होंने कई चटाइया बनाई। उन्हें अपने हाथ से किए काय पर बहुत गर्व था। जब वह जेल से बाहर आए, तो वे चटाइया अपने साथ ले आए। थोडे ही समय मे ये चटाइया एक-एक करके या तो उन धनी प्रशसको के घरो मे पहुच गईं जो उन कार्यों के लिए उदारता से धन देते थे, जो उन्होंने आरम्भ किए हुए थे, या उन मित्रो के घरो मे पहुच गइ, जिनका स्नेह उनके लिए अमीरो के दान से भी अधिक बहुमूल्य था।

दो वष की कद काफी कडी सजा थी और दरअसल यह बात आश्चयजनक ही थी कि जेल की असुखद स्थिति में भी उनका स्वास्थ्य खराब न हुआ।

बारदोली का कदम वापस लेने का निणय, जो असल म पराजय ही बन गया और बार बार साम्प्रदायिक दगो के कारण देश म स्थिति निराशाजनक होती जा रही थी। इस उदासी मे एक मौत ने और वृद्धि कर दी—उनके पिता का 1923 म देहात हो गया। वह इस बात को जानते थे और गहराई से महसूस करते थे कि अन्तिम समय म उनके निकट न होने को पिता ने बहुत महसूस किया होगा।

इन कई कारणों ने उनका स्वास्थ्य बिगाड़ दिया। यद्यपि उन्हें कुछ समय के लिए अधिक ठंडे स्थान, धर्मशाला जेल (कांगड़ा घाटी में) में रखा गया था, फिर भी उनका स्वास्थ्य अधिक चिन्ता का कारण बना हुआ था। इससे पूर्व ही जेल में उनके युवा साथी डाक्टर गोपीचंद भार्गव ने देख लिया था कि जेल का खाना उन्हें हजम नहीं होता था, अनिद्रा रोग बढ़ रहा था और उन्हें अजीर्ण हो रहा था। धीरे-धीरे उनकी समूची शारीरिक व्यवस्था अस्त व्यस्त होती दिखाई दे रही थी। उन्हें थोड़ा-थोड़ा ज्वर भी रहने लगा और जेल के डाक्टर उनका कोई उपचार न कर सके। ज्वर लगातार आ रहा था और उनका बल कम हो रहा था। फेफड़ों को किसी प्रकार का रोग लग गया था। परन्तु वह कैसा था, उसके बारे में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता था। उनके स्वास्थ्य की खराबी से व्यापक चिन्ता होना स्वाभाविक ही था। सरकार को विधान परिषद में प्रश्नों का सामना करना पड़ा, आरम्भ में तो उन्होंने इतना कहना ही काफी समझा कि बीमारी गंभीर नहीं है उनका ठीक ढंग से उपचार हो रहा है। कारावास से पूर्व ही उनका जिगर बढ़ा हुआ था, जेल के डाक्टर बिल्कुल असफल रहे और रोगी को अपने डॉक्टरों से मशविरा करने की अनुमति दे दी गई। डॉक्टर महाराज कृष्ण कपूर तथा डॉ॰ निहालचन्द सीकरी ने उनका निरीक्षण किया और केंद्रीय जेल के अधीक्षक लै॰ कर्नल ए॰ डब्ल्यू॰ ग्रेग के साथ इस संबंध में विस्तारपूर्वक बातचीत की। डा॰ महाराज कृष्ण कपूर ने अपनी राय एक लम्बे पत्र में लै॰ कर्नल ग्रेग को भेज दी। फेफड़ों की स्थिति गहरी चिन्ता का कारण थी, क्योंकि थोड़ी-थोड़ी अवधि के बाद निरीक्षण करने से पता चला था कि रोग लगातार बढ़ रहा था और परिवार में तपेदिक के रोग की पृष्ठभूमि के कारण यह एक बड़ी चेतावनी बन गई थी। जब डाक्टरों ने लाहौर की जोरदार गर्मी में छ-सात सप्ताह उन्हें लगातार हल्का ज्वर आते देख लिया, तो उन्हें धर्मशाला (कांगड़ा) जेल भेज दिया गया। वहां भी रोग चिन्ता का बराबर कारण बने रहने के कारण पंजाब सरकार को मजबूर होकर उनकी रिहाई का निर्णय लेना पड़ा। इसलिए उनको वापस लाहौर भेज दिया गया और वहां से 16 अगस्त 1923 को रिहा कर दिया गया। उन्हें तब्दील करने आदि की व्यवस्था को गोपनीय रखने का उद्देश्य था, परन्तु यह व्यवस्था पूर्णतया गुप्त न रह सकी। कैदी ने यह जानकारी देने के लिए अपनी व्यवस्था इस्तेमाल करनी चाही, परन्तु वह भी पूरी तरह

सुरक्षित न रह पाई । सर्वेंट्स आफ पीपुल सोसायटी क श्री पी० एल० सोंधी को लिखे उनके दो पत्र रास्ते मे ही पकडे गए । यह जानकारी उन्हें धर्मशाला से रवाना होने से पूर्व ही मिल चुकी थी । फिर लाहौर मे भी इस मामले की गोपनीयता कायम न रह पाई और इस प्रकार जब उनकी गाडी लाहौर रेलवे स्टेशन पर पहुची, जहा से उन्हें अन्तिम व्यवस्था के अनुसार जेल पहुचाया जाना था, पी० एल० सोंधी प्लेटफाम पर उस स्थान पर उपस्थित थे, जहा लालाजी उतरे । यह बात लालाजी के लिए आश्चय तथा प्रसन्नता का कारण और सुरक्षा अधिकारियो के लिए बेचैनी का कारण थी । लालाजी न विजय की मन स्थिति मे उन्हें छेडते हुए कहा "देख लो, मेरी गुप्तचर व्यवस्था किस प्रकार काम करती है ।"

52. महान व्यक्ति : पुनरावलोकन

जेल के अभ्यस्त हो जाने के तुरंत बाद लालाजी ने अपने पास भारतीय इतिहास के बारे में बहुत-सी पुस्तकें जमा कर लीं और व्यापक रूप में प्राचीन भारत का इतिहास उर्दू में लिखने का कार्य आरम्भ कर दिया। लाहौर जेल में रहने के पहले दो मास में उन्होंने इस पुस्तक के छः सौ से कुछ अधिक पन्ने लिखवा दिए। जब तक डाक्टर गोपीचन्द भार्गव, जो उनके निजी सचिव के तौर पर कार्य कर रहे थे, रिहा हुए, पुस्तक का पहला मसौदा तैयार हो गया था। लालाजी के जेल से बाहर आने पर यह पुस्तक लोक सेवा संघ द्वारा उनके सामान्य प्रकाशक के सहयोग से प्रकाशित कर दी गई। जैसा कि हम पहले देख चुके हैं, नौवें दशक में लालाजी ने प्राचीन भारत के बारे में एक छोटी-सी पुस्तक प्रकाशित की थी और वायदा किया था कि वह इस संबंध में एक व्यापक पुस्तक लिखेंगे। कारावास ने उन्हें फुरसत का समय दिया और उन्होंने यह कार्य आरम्भ कर दिया, जिससे उनका एक पुराना वायदा पूरा हो गया तथा इससे उन्हें व्यक्तिगत रूप में बहुत प्रसन्नता भी हुई। नये संस्करण में पहले संस्करण के समान मूल शोधकार्य का कोई दावा नहीं किया गया था, परन्तु सामान्य पाठकों के लिए, जो यूरोपियन भाषाओं से लाभ नहीं उठा सकते थे, इस विषय पर यह बहुत बढ़िया पुस्तक थी। लालाजी ने विशेष प्रयत्न किया था कि उस समय तक भारतीय आर्य संस्कृति के बारे में जो भी ब्यौरा उपलब्ध था उसके अनुसार एक मुकम्मल चित्र पेश किया जाए। एक बहुत ही रोचक परिशिष्ट में उन्होंने इस संस्कृति की तुलना आधुनिक पश्चिमी संस्कृति के साथ की थी और आशा व्यक्त की थी कि मनुष्य एक और नई संस्कृति को जन्म देगा जिसमें इन दोनों के सर्वोत्तम गुणों का सुचारु तथा सुव्यवस्थित सम्मिश्रण होगा।

इस खण्ड के बाद वह एक और खण्ड लिखना चाहते थे, जो मुगल-काल के बारे में हो। दरअसल, उन्होंने इस संबंध में बहुत-सी सामग्री एकत्र भी कर ली थी, यह फारसी की मूल पुस्तकों में से थी, जो उन्होंने कुछ जेल में तथा कुछ जेल से लौटने पर एकत्र की। परन्तु उन्हें इस सामग्री को पुस्तक रूप देने का फुरसत न मिल सकी। उन्होंने पहले खण्ड में संशोधन करने का विचार भी कुछ वर्ष बाद बनाया। इसके लिए भी उन्हें फुरसत न मिल पाई, यद्यपि उनके देहांत से कुछ समय पूर्व इस पुस्तक के हिंदी संस्करण के लिए उनके निर्देश के अनुसार कुछ संशोधन अवश्य किया

गया। प्राचीन भारत का उर्दू इतिहास उन्होंने अपने पहले अध्यापक, मुशी राधा किशन को समर्पित किया, जिनसे इतिहास के अध्ययन का शौक उन्हें विरासत मे मिला था—और जिनकी मृत्यु उस समय हुई, जब वह जेल म इस पुस्तक को तैयार कर रहे थे।

इतिहास के अध्ययन की उर्दू-शृखला मे अगली पुस्तक महाराजा अशोक के बारे म थी, जो तीन सौ पन्नो से अधिक की थी। उन्नीसवी शताब्दी के नौवें दशक म अशोक एक बहुत ही मदधम प्रतिध्वनि थे। उसके बाद के वर्षों मे भारतीय इतिहासकारो का गौरवमय कारनामा अशोक को इस गुमनामी से निकालकर अमर व्यक्तियो की दीर्घा में उचित स्थान दिलाना था। यह सफलता अशोक की अपनी दूरदृष्टि के कारण मिली, क्योकि उन्होने अपनी कहानी पत्थरो पर अकित करवा दी थी। पत्थरो पर अकित यह इतिहास दूर-दूर फैले क्षेत्रो से मिला था जो भारतीय ब्रिटिश साम्राज्य के बहुत बडे क्षेत्र मे फैले हुए थे और उन लोगो के लिए पूर्ण उत्तर थे, जो यह कहते थे कि ब्रिटिश राज्य मे पहले भारत मे प्रशासनिक एकता कभी नही थी। परन्तु अशोक के जीवन का मुख्य आकर्षण उनका उच्च आदर्शवाद था, जो पैगम्बरो तथा दार्शनिको के जीवन मे देखा जा सकता है, राजाओ के जीवन मे नही। उनका यह महान तथा अद्वितीय गुण ही था जिसने लालाजी को आकर्षित किया और अशोक के जीवन की कहानी अपने लोगो के लिए लिखने के वास्ते प्रेरित किया।

अशोक की महान राजाज्ञाओ पर टिप्पणी करते हुए जब लालाजी अपने आपको एक सवेदनशील मनोवैज्ञानिक के रूप म व्यक्त करते हुए कहते हैं कि कभी कभी उन्हें व्यक्तिगत गरूर की गध आती है, "परतु इस कमजोरी स तो कोई पगम्बर प्रचारक, वक्ता, फकीर अथवा नेता बचा हुआ नही, और यदि इस प्रकार की कमजोरी से कोई मुक्त भी हुआ हो तो उसने आने वाली पीढ़ियो के लिए अपने आपको बिल्कुल खो दिया है।"

महाराजा अशोक पुस्तक का समर्पण समुचित तौर पर महात्मा गाधी को किया गया। लालाजी ने गाधीजी से इस सबध मे आज्ञा ले ली थी, परतु पुस्तक इसके बिना ही प्रकाशित हुई, या तो इसका कारण प्रकाशक की गलती थी या फिर यह अनुमति बहुत देर से मिली होगी।

29—136 M of I&B/ND/85

'महाराजा अशोक' नामक पुस्तक के अन्त मे चालीस पन्नो का शोध निबंध है। यह उपकथन लालाजी का जीवन दर्शन समझने की चेष्टा रखने वाले व्यक्ति के लिए बहुत महत्व का है, इसका विकास किस प्रकार हुआ, जब औपचारिक धर्म से सबध विच्छेद हो चुका था। दूसरे शब्दो मे स्वतंत्र परिपक्वता, परमात्मा तथा मनुष्य, धर्म तथा मानव जीवन के सही उद्देश्यो के बारे म जो अन्तिम रुचि तथा महत्व की बाते मानी जाती है, वह लालाजी का दृष्टिकोण था। कई वर्षो के लिए वह प्रवचन मच से दूर रहे थे, परन्तु धर्म के प्रति अशोक की तल्लीनता न उन्हें प्रवचन का उचित अवसर प्रदान कर दिया, जिसके द्वारा वह इस विशाल विषय पर अपने विचार व्यक्त कर सके। अशोक के जीवन के बारे मे इस पुस्तक के उपकथन से हम कुछ उद्धरण दे रहे है

'म अपने तौर पर किसी भगवान मे विश्वास नही रखता जो कही ऊचे स्थान पर अपने आसन से दिन रात हम पर शासन चलाता है और जिसे यकीनी तौर पर सर्वशक्तिमान, न्यायपूर्ण तथा दयालु कहा जा सकता है, यद्यपि वह दड भी देता है और नाश भी करता है और जिसकी प्रार्थना तथा आराधना के साथ पूजा अर्चना की जानी चाहिए। हा, मैं ऐसी हस्ती मे अवश्य विश्वास करता हू, जो सारे अस्तित्व का अन्तिम कारण है, जिसके स्वभाव का कोई भी निश्चित नही कर सकता। वह हस्ती कौन है या वह क्या है इसको कोई मालूम नही कर पायगा। ससार अनन्त तथा सुदर है, इसलिए वह हस्ती भी ऐसी ही होगी। परन्तु कोई व्यक्ति उस 'परम' को नही जानता और न ही जान सकता है। वेदो तथा उपनिषदो का यह कथन नेति-नेति यह नही, यह नही, मेरे मन क इस सत्य का प्रकट करता जान पडता है। बडी विनम्रता से उपनिषदो म कहा गया है कि जो जानने का दावा करता है, कुछ नही जानता।

"परन्तु जो धर्म यह कहते है कि वह सब बुद्धिमान और न्यायप्रिय है, निश्चय ही 'उसका' अपमान करते हैं जबकि उसके साथ ही वे अपने अनुयाइयो मे कहते हैं कि यह ससार दु खो का घर है और प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए उन्हें त्याग क माग पर चलना चाहिए। हमे, जो जीवन दिया गया है, वह जीने के लिए दिया गया 'जीवन मृत्यु के चक्कर' से मुक्ति प्राप्त करने के लिए नही। जीवन को दीर्घ और सुदर बनाने तथा इस विशाल और समृद्ध बनाने के लिए कि दान और प्रेम इस प्रकार मिल जाए कि जीवन ही प्रेम रूप बन जाए। जीवन को ऐसे उच्च तथा सम्पूर्ण जीवन की ओर ले जाने के लिए और इस सच्ची प्रसन्नता के लिए प्रयत्न करना

ही जीवन का प्रयोजन है और यही स्वर्ग है। इस प्रकार की सम्पूर्णता की प्राप्ति के लिए सत्य के बिना और कुछ अधिक सहायता नही दे सकता। उपनिषदों म ठीक ही लिखा है, सत्य से ऊपर कोई धर्म नही है। जो भी व्यक्ति इस धर्म को अपना लेता है, वह सही अर्थों मे धर्मात्मा बन जाता है और सत्य उसे अहकार तथा गर्व से मुक्त करता है, काम तथा क्रोध से मुक्ति देता है, धनलोलुपता तथा अन्य सभी बातों से, जो घटिया और जकड़न वाली हैं, मुक्त करता है। वह सदा उच्च स्थान पर, स्वतंत्र तथा निर्भीक महान तथा दयालु रहता है और उसकी प्रेम धारा बहती रहती है। उसके लिए सारा ससार सुंदरता का दृश्य होगा।

"क्या सृष्टा ने मनुष्य के लिए प्रकृति और सुंदरता की रचना इसलिए की थी कि वह उन्हें घातक विष के समान त्याग दे? क्या वह अपनी सर्वोत्तम सुंदर कृति, स्त्री को ऐसी वस्तु बना सकता था कि उसे त्याग दिया जाए? निस्सदेह सत्य तथा प्रेम का धर्म, मनुष्य को इस बात के लिए बाध्य करता है कि सुंदरता की मूर्ति का दुरुपयोग न किया जाए और न ही उसे काम-तृप्ति के लिए दास बनाया जाए।

"और सुंदरता के इस व्यापक दृश्य मे स्त्री की क्या भूमिका है? यह केंद्रीय प्रश्न है, विशेषकर सन्यास के दर्शन म (जो भारत म कई शताब्दियो से प्रचलित है) जिसके अनुसार स्त्री बुराई की प्रतिमा है या मनुष्य के पतन का मूल कारण है और इसकी निंदा से अक्सर अपने ही उद्देश्य को विफल कर देते हैं।" लालाजी इस प्रश्न म घृणा नही करते और मातृत्व की सुंदरता पर बल देते हुए स्त्री की महान तथा उच्च भूमिका बताते ह और अपने इस दर्शन मे सुंदरता शामिल कर देते हैं।

"स्त्री, प्रकृति की रचना म एक अद्भुत प्रतिमान है और इसके साथ ही सूक्ष्म रूप म समूची प्रकृति भी। मातत्व ब्रह्माण्ड की अधिकतम आश्चर्यजनक, बहुत ही सुंदर और महानतम अभिव्यक्ति है। पुरुष के लिए इससे महान और कोई बात नही है कि वह उसकी रचनात्मक शक्ति मे प्रकृति का अनुसरण करे।

"स्त्री, पुरुष के प्रेम की प्रेरणा स्रोत है। वेद, स्त्री को वीरों की जननी बनने को कहते हैं, परन्तु यह तभी सभव हो सकता है जब प्रकृति क आदेशानुसार पुरुष तथा स्त्री शुद्ध प्रेम मे एक दूसरे मे युक्त हो, ऐसे प्रेम मे, जिसमे पाप लेशमात्र भी न हो।

"इस सृजनात्मक कर्तव्य में दूर भागना धर्म नहीं, बल्कि इसे निभाना धर्म है। यह स्त्री ही है जो पुरुष को सिखाती है कि सृजनात्मक क्रिया के लिए कोई भी जोखिम—मृत्यु भी—ज्यादा नहीं। प्रजनन के लिए स्त्री को कितना जोखिम उठाना पड़ता है।

"प्रजनन ही तो सृजन का एकमात्र रूप नहीं। अनुसंधान, आविष्कार, खोज, कला और दस्तकारी सभी रचनात्मक क्रियाएं हैं। इन रचनात्मक शक्तियों का अधिकतम विकास करना और उन्हें पूर्ण अवसर देना—यही स्वर्ग है।

"आध्यात्मिक उपलब्धि का अर्थ यह नहीं कि अल्लाह या राम राम रटते जाओ, वेदों का उच्चारण करते रहो या मंदिरों की घंटियां बजाते रहो। सर्वोच्च उपलब्धि उन लोगों की है जो अपनी रचनात्मक शक्तियों का विकास करके इस संसार की सुंदरता में वृद्धि करते हैं। जो व्यक्ति इस प्रकार की उपलब्धि प्राप्त कर लेते हैं और अपने चारों ओर सुंदरता फैलाते हैं, उनकी सभी खामियां तथा अवगुण इस महान सुंदरता में ढक जाते हैं।

"त्याग करके जीवन का अन्त कर देना उस सुंदरता को, जो रचनात्मक है, नकारात्मक बनाना है। यहां तक कि उचित समय पर मृत्यु की भी अपनी सुंदरता है, परन्तु असामयिक मृत्यु बहुत बुरी होती है जिसके विरुद्ध सारी प्रकृति रोष व्यक्त करती है।"

धर्म, जो पुजारी वर्ग की उत्पत्ति है, उसके लिए, वह अधिक प्रशंसा के शब्द नहीं कहते

"क्या इन रीतियों या धर्मों का उस बात में कोई अधिक महत्व है जिस पर मैं विचार करने जा रहा हूं परंतु यह मेरा पक्का विश्वास है कि वह विशुद्ध धर्म नहीं—वह सामाजिक धर्म का एक भाग मात्र है। यह शिक्षा देना कि जो उन्हें स्वीकार नहीं करेगा वह नरक में जाएगा, मानव-जाति को गुमराह करना है। मेरे लिए यह जरूरी नहीं कि मृत्यु के बाद के जीवन की धारणा को स्वीकार करूं या अस्वीकार, परंतु मैं मृत्यु से पहले के जीवन की उपेक्षा नहीं कर सकता और इस जीवन में हम अधिक से अधिक प्राप्त करना चाहिए—सत्यवादी जीवन बिताकर। मैं इस बात में विश्वास नहीं रखता कि मनुष्य को भविष्य की खातिर वर्तमान जीवन का परित्याग कर देना चाहिए। इसके विपरीत यदि मृत्यु के बाद कोई और जीवन है वह उस व्यक्ति के लिए और भी समृद्ध होना चाहिए जिसने वर्तमान जीवन का

जिया है और उसे पूरा किया है, उस व्यक्ति के मुकाबले, जिसने वर्तमान जीवन का त्याग किया है। जीवन धर्म का सही अर्थ तो यह है कि न तो कोई व्यक्ति फकीर बने और न ही स्त्री का त्याग करे। यदि किसी व्यक्ति को फकीर बनकर जीवन प्राप्त होता है उसे फकीर बन जाने दो, मैं उसे नहीं रोकूंगा। परन्तु मैं उनके ढंग के जीवन को उच्चतम नहीं मानूंगा। परीक्षा में से गुजरना और [illegible] में पूरे उतरना मेरे विचार में उच्चतम है, उससे भागकर फकीरी में [illegible] लेने के मुकाबले। स्त्री से भागना पुरुषत्व का अभाव है, उसकी [illegible] [illegible] का अहसास करना और मातृत्व का अनुभव करना और उसकी [illegible] करना यही सच्चा जीवन है। सभी खतरों का सामना करना तथा उनमें [illegible] [illegible], अपने मन तथा व्यक्तित्व में सुंदरता को रचा लेना और [illegible] [illegible] आत्मा का सुरमा बना लेना तथा अपने मन को प्रेम स्थान बना लेना, यही सर्वोच्च उपलब्धि है। इससे महान और कोई जीवन नहीं है।"

बौद्ध सम्राट के जीवन पर लिखी पुस्तक में [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] थे, उन्होंने बुद्ध को भी श्रद्धांजलि अर्पित की। उन्हें [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] मानते थे। वह बुद्ध तथा उनके उपदेशों के बारे में [illegible] पुस्तक लिखना चाहते थे। इस बात की घोषणा उन्होंने इस पुस्तक द्वारा भी की है, परन्तु वह [illegible] वचन निभा न पाए।

इस शृंखला की अन्तिम पुस्तक [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] थी, जो 1896 में इस विषय पर लिखी पुस्तक का [illegible] [illegible]। भूमिका में बताया गया है कि लेखक ने शिवाजी पर लिखी गई इस पुस्तक के [illegible] [illegible] का [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] तथ्य तथा निष्कर्ष असंगत [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] पुस्तक का प्रकाशन [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] पुस्तक में संशोधन करने का [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] बैठे, तो उन्होंने एक बड़ी [illegible] [illegible], [illegible] पुस्तक लिख दी, जिसका [illegible] उपलेख मूलरूप में [illegible] [illegible], जिसे [illegible] [illegible] 1896 का [illegible] [illegible] गया था।

इस बीच दोनों [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] उसके बाद के [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] थी। पारसी [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] जम निर्णय [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

किया था। 1896 म मराठी सामग्री बहुत ही कम थी, उस समय एक मराठा मित्र पर निभर करना पड़ा था, जो उन्हें एम० जी० रानडे की मराठी रचना 'मराठा इतिहास' (हिस्ट्री आफ द मराठाज) जो अभी पाण्डुलिपि के रूप में ही थी, पढ़कर सुनाता था। अंग्रेज लेखकों (ग्राट डफ) जैसे द्वारा लिखित, जो इतिहास उस समय उपलब्ध थे, वह केवल फारसी स्रोतों पर ही निभर दिखाई देते थे, अब रोलिनसन जैसे उनके उत्तरवर्तियो न मराठी दस्तावेजो तथा इतिहास पुस्तकों के अनुसार पहली रचनाओ तथा निणयो की जाच पड़ताल करने का प्रयत्न किया था (लालाजी ने जब वह अमरीका मे थे रोलिनसन की पुस्तक की समीक्षा की थी) इसके अतिरिक्त ताकाखाऊ और किर्लोस्कर जैसे मराठी विद्वान भी थे, जिन्होंने मराठी सामग्री तथा मराठी दृष्टिकोण अंग्रेजी भाषा मे उपलब्ध कराया। इन सभी बातों की रोशनी मे व्यापक सशोधन की ही नहीं, दरअसल नये सिरे से पुस्तक लिखने की आवश्यकता थी।

इसके अतिरिक्त उन्नीसवी शताब्दी के नौवें दशक के बाद, लालाजी का अपना दृष्टिकोण भी विशाल हो गया था। सन 1895 मे तिलक तथा उनके सहयोगियों ने महाराष्ट्र को एक नया वार्षिक उत्सव दिया था—शिवाजी उत्सव, जो शिवाजी के राजतिलक की स्मृति मे था। शिवाजी को नायक के रूप मे व्यक्त करने का नायक पूजा का सिलसिला आरम्भ हो गया था। उस समय लालाजी ने अपने विषय को नायक-पूजा करने वाले की दृष्टि से पेश किया और यह स्वाभाविक ही था कि कई बार उनकी प्रस्तुति एक समथक अथवा प्रचारक जैसी थी। वतमान दृष्टिकोण विशुद्ध रूप से इतिहास के एक विद्यार्थी का था और प्रस्तुति अधिक वास्तविक तथा आलोचनात्मक थी।

अपनी नई प्रस्तावना मे उन्होंने लिखा

"एक झूठ, झूठ ही है, बेईमानी, बेईमानी ही है, फरेब, फरेब ही है और स्वाथ, स्वाथ ही है, साम्राज्यवाद और कुछ नहीं केवल साम्राज्यवाद ही है, चाहे वह एशिया मे हो, यूरोप मे या अमरीका म, चाहे वह अंग्रेजो द्वारा हो, भारतीयो द्वारा, चीनियो द्वारा, हब्शियो द्वारा अथवा जापानियो द्वारा। उनमे से किसी एक को केवल इसी लिए और समझना कि लेखक हमारा अपना आदमी है, पाप है। पापी, पापी ही है, उसकी नस्ल या राष्ट्रीयता चाहे कुछ भी हो। उसके लिए कृपा प्राप्त करने की खातिर परिस्थितियो की दलील चाहे दी जाए परन्तु वह उसका पाप नहीं धो सकती। हम यह दलील भी द सकते है कि नैतिकता के मापदड

विभिन्न युगों के लिए विभिन्न रहे हैं और किसी व्यक्ति के बारे में अनुमान उसके युग के मापदंड से ही लगाया जा सकता है। शिवाजी के बारे में हम अपना निर्णय यह सामान्य सिद्धांत निश्चित करने के बाद में ही देंगे। अपनी जवानी के दिनों में, हिन्दू राष्ट्रवाद के मदोन्मत्त प्रभाव के अधीन मैंने शिवाजी के चरित्र के बारे में, जो अनुमान लगाया था, वह इस अध्याय के अन्त में दिया गया है। मैं यह नहीं कहूंगा कि वह अनुमान झूठा था और अब उसे वापस ले लिया गया है, परन्तु मैं यह कह सकता हूं कि जो कुछ उस समय लिखा गया था, वह उससे कुछ भिन्न है, जो अब मेरा विश्वास है, वह अनुमान समय से प्रभावित हुए बिना नहीं रहा।"

शिवाजी दरअसल आलोचनात्मक तथा और भी कड़ी परीक्षाओं में बहुत सफल रहे—उस व्यक्ति के समान, जिसकी सफलता उसकी निश्चित उपाधि है, जिसके कारण वह माननीय व्यक्तियों में गिना जा सके, जिसका निजी जीवन शानदार हद तक स्वच्छ था, जो युद्ध तथा लूटमार के समय भी स्त्रियों का उच्च सम्मान करता था, जिसके नेतृत्व के महान गुण और चरित्र उसके व्यक्तित्व को उसके समकालीन व्यक्तियों में विशिष्ट उज्ज्वल स्थान दिलाते हैं जब उनकी तुलना की जाती है या उनका औरंगजेब से मुकाबला किया जाता है। परन्तु लालाजी ताकाखाऊ जैसे प्रशंसकों द्वारा शिवाजी के दैवीकरण के प्रयत्नों को स्वीकार न कर सके, जिन्हें प्राचीन तथा आधुनिक इतिहास में शिवाजी की तुलना में योग्य प्रशासक और प्रतिभावान नेता नजर ही नहीं आता था और जो इसके अतिरिक्त शिवाजी के व्यक्तिगत शासन की आधुनिक प्रजातांत्रिक विचारों की रोशनी में व्याख्या करते थे। लालाजी की दृष्टि में शिवाजी साम्राज्य निर्माता थे, उनका शासन प्रजा के अपने शासन की धारणा के अनुसार स्वराज नहीं था, उनके मंत्री प्रत्येक तानाशाह द्वारा नियुक्त अफसरशाही अमला के समान थे, लोगों के प्रतिनिधि नहीं थे और यद्यपि वह एक दयालु तानाशाही थी, लालाजी किसानों से की जाने वाली भारी जबरी वसूली को दयालुता से स्वीकार नहीं कर सके दो बटा पांच तथा कुछ और कर जिससे यह वसूली कुल उपज का लगभग आधा हो जाती थी। शिवाजी के प्रति उनकी प्रशंसा बहुत अधिक तथा सच्ची थी, फिर भी लालाजी उन्हें "स्वतंत्रता का समर्थक" घोषित नहीं कर सकते थे।

उन्होंने अफजल खां और शायस्ता खां की घटनाओं का नए सिरे से जायजा लिया, फिर भी शिवाजी की निन्दा न कर सके। 'फरेब' का दोष सही सिद्ध न हो सका। न ही वह शिवाजी के छापामार तौर-तरीकों की भी निन्दा कर पाये, "एक

टाली के लिए जिसके पास साधन नही और जिसे बढ़िया सगठित सेना को चुनौती देनी हो, छापामार युद्ध प्रणाली ही सर्वोत्तम है।" उनके मन में राजपूतो की बिना सोचे समझे जूझने की प्रवत्ति की बहुत प्रशसा थी, परतु वह इस बात को भी भलीभांति समझते थे कि इस ससार मे स्थिति के अनुसार व्यवहार करना अत्यावश्यक है और ऐसा न होना बिल्कुल घातक हो सकता है। उनके अपने सदर्भ के मापदडो से उनका मूल्याकन करने पर शिवाजी बहुत ऊचे नजर आते थे। पर बाहरी मानदडो के आधार पर विचार करने वाले गलती करते हैं, पर इसका अर्थ यह नही था कि लालाजी का मापदड, यदि कहा जाए, पश्चिम के मापदडो से कम था। शिवाजी के मूल्याकन के बारे मे प्रोफेसर रालिसन के इस आरोप का कि शिवाजी का मूल्याकन उन्ही के युग तथा उन्ही के लोगो (देश) के मापदड के अनुसार ही किया जाना चाहिए, लालाजी ने उपयुक्त उत्तर दिया, जो पश्चिम के मापदडो के बारे मे था, उन्होने कहा कि पश्चिम के प्रख्यात विद्वानो ने भी राष्ट्रो का नैतिक व्यवहार आकने के लिए तीन अलग अलग मापदड अपना रखे थे। एक केवल सैद्धातिक उद्देश्य तथा केवल प्रचार मात्र के लिए, दूसरा यूरोपियन राष्ट्रो से व्यवहार के लिए और तीसरा 'घटिया और बेकानून नस्लो" की निन्दा के लिए। "उपयुक्त मापदड" से लालाजी का तात्पर्य साम्राज्य निर्माताओ का मूल्याकन करने के मापदडों से है चाहे वे पूर्व के हो या पश्चिम के। सिकदर, तैमूरलग, महमूद गजनवी, अलाउद्दीन खिलजी, नैपोलियन या क्लाइव की व्यक्तिगत अथवा सार्वजनिक नैतिकता के साथ तुलना करने पर शिवाजी कही भी ओछे नही ठहरते थे। यदि वह तुलना मे कम दिखाई देते है, तो केवल अशोक की तुलना मे, सिकदर और नैपोलियन की तुलना मे नही।

सक्षिप्त वर्णन में लालाजी ने महान व्यक्तियो को तीन वर्गों मे बाटा है। इनमे से सर्वोच्च वे व्यक्ति हैं, जिन्होने निजी लाभ का मामूली सा ध्यान किए बिना अन्य लोगो की भलाई के लिए कार्य किया, इनमे बुद्ध, शकर, ईसा, मुहम्मद, उमर, सेंट, पाल, नानक, दयानन्द, गाधी, अशोक, कार्ल मार्क्स, मैजिनी और वाशिगटन शामिल है। इस सर्वोच्च वर्ग मे शिवाजी नही आते थे। महान व्यक्तियो के सबसे निम्नवर्ग मे वे व्यक्ति आते है, जिन्होने स्वार्थ के लिए बहुत अत्याचार किए जैसे चगेज खा और तमूरलग। शिवाजी मध्य वर्ग मे आते थे, जिनकी उपलब्धि, चाहे मुख्य तौर पर व्यक्तिगत आकाक्षा से प्रेरित थी फिर भी उससे लोगो को लाभ हुआ था।

53. सोलन में स्वास्थ्य लाभ

यह बात बिल्कुल अनिवार्य हो गई थी कि उन्हें शीघ्रता के साथ किसी ठंडे स्थान पर पहुंचा दिया जाए, ताकि उन्हें लाहौर की झुलसा देने वाली गर्मी से बचाया जा सके। सोलन में व्यवस्था कर ली गई और जेल से रिहा हो जाने के दो तीन दिन के अन्दर ही वह पहाड़ पर चले गये। थोड़े ही समय में उनका ज्वर काबू में आ गया और उन्होंने स्वास्थ्य लाभ करना आरम्भ कर दिया। ऐसा दिखाई पड़ता था कि जवान न रहने के बावजूद उनमें तंदुरुस्त होने की शक्ति कम नहीं हुई और अन्त तक यह देखा गया कि गंभीर रोग के बाद भी, जब एक बार उनके रोग का निदान हो गया, वह बहुत शीघ्रता से स्वस्थ हो गए और उसके पश्चात् उन्होंने लिखने, सार्वजनिक भाषण देने तथा दौरे करने का सिलसिला बहुत शीघ्र फिर से आरम्भ किया, जितना शीघ्र उनके मित्र तथा डाक्टरों को आशा न थी — इस्पात की उस कमानी के समान जिस पर से दबाव हटाते ही वह पूर्ववत् अपने स्थान पर आ जाती है। सोलन में यद्यपि उनका रोग बढ़ने से रोक लिया गया था और जल्दी ही उन्हें खतरे से बाहर घोषित कर दिया गया था, फिर भी उनका स्वास्थ्य पूरी तरह ठीक न हुआ। ऐसा दिखाई पड़ता था कि उनके शरीर को लम्बी अवधि के लिए आराम की आवश्यकताएं थीं, कुछ भी हो, गर्मी का सारा मौसम उन्हें सोलन में स्वास्थ्य लाभ करने के लिए बिताना पड़ा, निस्संदेह वह कुछ पढ़ने लिखने का काम और अपने से सम्बद्ध संस्थाओं के लिए निर्देश तथा सलाह-मशविरा देते रहे। कभी-कभार वह राजनीतिक सलाह मशविरे में भी भाग लेते थे, क्योंकि अबुल कलाम आजाद तथा मोतीलाल नेहरू ने भी गर्मी का मौसम सोलन में बिताया था। उनकी मुलाकातें अक्सर होती थीं और बड़ी चिन्ता से नई समस्या—हिन्दू मुस्लिम विवाद के बारे में तथा विधान मण्डलों पर "कब्जा" करने के संबंध में बातचीत करते थे। यह विचार हो रहा था कि हिन्दू-मुस्लिम समस्या के समाधान के लिए "राष्ट्रीय संधि" की जाए, जिस प्रकार की सीमित संधि लखनऊ कांग्रेस में की गई थी। काकीनाडा (आंध्र प्रदेश) में होने वाले आगामी कांग्रेस अधिवेशन में ऐसी संधि पर विचार होने की आशा थी। लालाजी तथा आजाद ने ऐसी संधि के बारे में व्यापक

आधार के लिए कई बार बातचीत की और ऐसा दिखाई पड़ता था कि इस सम्बंध में वह मोटे तौर पर सहमत हो गए थे।

मोतीलाल नेहरू के साथ राजनीतिक बातचीत सामान्य तौर पर स्वराज पार्टी की रूपरेखा तथा लोगों को कांग्रेस पार्टी द्वारा विधान मण्डलों पर कब्जा करने के कार्यक्रम के बारे में शिक्षित करने तथा इस सम्बन्ध में लोकमत तैयार करने के बारे में होती थी। स्वराज पार्टी तो पहले ही स्थापित हो चुकी थी, तब लालाजी जेल में ही थे। सी० आर० दास उसके अध्यक्ष तथा मोतीलाल नेहरू उसके सचिव थे। लालाजी ने जेल में होते हुए भी सहायता की थी। अब जब वह जेल से रिहा हो गये थे, तो इस बात की पूरी आशा थी कि ऐसे स्वास्थ्य के साथ, वह जितनी सहायता उनसे बन पायेगी, करेंगे। विशेषतौर पर पंजाब विधान परिषद के आम चुनाव की निगरानी का दायित्व उन्हीं का होगा। सोलन में स्वास्थ्य लाभ करते समय ही उन्होंने पंजाब विधान परिषद के चुनाव के लिए उम्मीदवारों का चयन किया, उनका प्रचार किया। इस काम में उन्हें स्वराज पार्टी की ओर से पूर्ण अधिकार प्राप्त था। पार्टी के लिए उन्होंने जो सफलताएं प्राप्त की, वह स्वराज पार्टी के लिए गर्व की बात थी। यहां पार्टी के लिए अन्य विधान मंडलों की तरह स्पष्ट बहुमत प्राप्त करना संभव नहीं था, जिस प्रकार उसने नागपुर में किया, परन्तु फिर भी शहरी क्षेत्रों की सभी हिंदू सीटें, कुछ देहाती स्थान और कई सिख सीटें पार्टी के लिए जीत ली गई। निस्सदेह इस प्रांत में और अधिक सफलता की आशा भी नहीं की जा सकती थी, क्योंकि यहां की परिस्थितियां विशेष प्रकार की थीं। हिन्दुओं तथा मुसलमानों में समझौते का अब कोई अस्तित्व नहीं था, इसलिए स्वराज पार्टी वालों को मुसलमानों में अधिक सफलता की आशा भी नहीं थी और इसका अर्थ था—आधी सीटें। पंजाब में शहरी लोगों के मुकाबले के लिए देहाती उम्मीदवार खड़े करने की नीति जान बूझकर अपनाई गई थी। निर्वाचन क्षेत्र इसी ढंग से बनाए गए थे, ताकि अधिकतर स्थान जमींदार प्रतिनिधि ही जीतें। पंजाब के जमींदार भी अन्य स्थानों की तरह प्रतिक्रियावादी थे। इसलिए जितनी सीटों पर भी विजय प्राप्त हुई, यद्यपि वह पार्टी के लिए अधिक बहुमत वाली बात नहीं थी, फिर भी वह बधाई का पात्र थी।

पंजाब स्वराज पार्टी लगभग पूरी तरह लालाजी के निर्देशन में कर दी गई, यद्यपि वह स्वयं परिषद के सदस्य नहीं थे (न ही पार्टी के) और शीघ्र ही लालाजी

न कॉन्फ्रेंस [illegible] का काम, [illegible] कि स्वराज दे उन दलों को [illegible] के [illegible], [illegible] वह इन [illegible] के [illegible] को विशेष [illegible] का [illegible] रख सके (जो विधानसभा में [illegible] न दे और फिर भी पार्टी का [illegible] [illegible] दे)।

इस प्रांत की विशेष कठिनाइयों के अतिरिक्त [illegible] [illegible] [illegible] अपनी नीति अपनाने के सुझाव से अधिक प्रभावित नहीं हुए। जब उन्होंने पूर्ण स्वराज्य के लिए स्वराज पार्टी का काम देख लिया (केवल बंगाल और केन्द्र में ही नहीं शेष भारत में भी) तो वह इन बड़ी-बड़ी बातों और दोनों के विरुद्ध हो गये कि विधान सभा में जाकर काम में बाधा डालने वाली नीति' से उन्हें समाप्त कर दिया जाए।

'अन्दर से असहयोग' की नीति को कांग्रेस के गया-अधिवेशन में कोई अधिक समर्थन न मिला। कांग्रेस का अधिकृत इतिहासकार लिखता है

'गया-कांग्रेस अधिवेशन दो विरोधी गुटों के बीच जीवन मृत्यु का संघर्ष था। इस बात की आशा नहीं की जा सकती थी कि दास जैसे व्यक्तित्व का आदमी, जिसे मोतीलाल और विट्ठल भाई जैसे प्रमुख व्यक्तियों का समर्थन था, लोगों की भावना के आगे आसानी से झुक जाएगा और परिषद का बहिष्कार करने के लिए सहमत हो जाएगा। इसलिए एक पार्टी संगठित की गई और कार्यक्रम तैयार किया गया। दास को बंगाल की प्रांतीय परिषद पर कब्जा करना था और मोतीलाल को दिल्ली तथा शिमला पर धावा बोलना था। महाराष्ट्र को नागपुर की खबर रखनी थी।

'दास के पास गया" कांग्रेस अधिवेशन की कार्यवाही करने समय दो महत्वपूर्ण दस्तावेज थे। एक अध्यक्षीय भाषण और दूसरा अध्यक्ष पद से उनका त्याग पत्र और साथ में स्वराज पार्टी का संविधान।"*

जब गया अधिवेशन समाप्त हुआ, दास ने अपना त्यागपत्र दे दिया, अभी उसके बारे में अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के निर्णय के लिए बैठक की प्रतीक्षा

*देशबन्धु के पास तीसरा दस्तावेज़ जेल से लिखा लालाजी का गोपनीय पत्र था। जिस में उन्होंने परिषद कार्यक्रम के बारे में अपने विचार व्यक्त किए थे। पत्र में इस व्यक्तियों का जिक्र था जिन्हें इस पत्र के बारे में बताना था, परन्तु दास ने इस पत्र के बारे में सभी [illegible] से सभी को बता दिया।

हो रही थी कि सी० राजगोपालाचारी के नेतृत्व मे "न बदलने" वाला ने एक दूसरे के विरुद्ध अपना अभियान पूरे जोर स शुरू कर दिया। अखिल भारतीय काग्रेस समिति की बैठक होने तक अबुलकलाम आजाद और जवाहरलाल नेहरू, जो गया काग्रेस अधिवेशन के समय जेल मे थे, रिहा होकर आ गए थे और उनके जोरदार प्रयत्नो से कुछ सप्ताह के लिए युद्धविराम हो गया, ताकि एकता के लिए प्रयत्न किए जा सकें और विच्छेद रोका जा सके। परन्तु एकता नही हो पाई और निर्धारित समय बीत गया और अखिल भारतीय काग्रेस समिति ने प्रस्ताव पास कर दिया, जिसका सी० राजगोपालाचारी तथा पुरातन विचारो वाले अथवा "न बदलने वाले गुट" ने विरोध किया था। उनमे से छ ने काय समिति से त्याग पत्र दे दिया। डाक्टर असारी की अध्यक्षता मे काय समिति का पुनर्गठन किया गया और स्थिति से निपटने के लिए काग्रेस का विशेष अधिवेशन सितबर के तीसरे सप्ताह मे अबुलकलाम आजाद की अध्यक्षता मे बुलाया गया।

जब यह अधिवेशन हुआ लालाजी अभी सोलन मे स्वास्थ्य लाभ कर रहे थे। जेल से रिहाई के लिए लालाजी को शुभकामनाए भेजी गइ।

अधिवेशन बहुत ही चिन्ता का कारण था क्योकि आमतौर पर इस बात की आशका थी कि काग्रेस पूरी तरह दो हिस्सो मे विभाजित हो जाएगी। दास और नेहरू इस बात की ओर पूरा ध्यान दे रहे थे कि उनके समर्थक दिल्ली मे एकत्र हो जाए और इस उद्देश्य के लिए वे पूरे कौशल का प्रयोग कर रहे थे।

6 सितबर को मोतीलाल नेहरू का तार आया

'यदि डाक्टर आज्ञा दे, तो 10 सितबर को दिल्ली मे होने वाले प्रारम्भिक सम्मेलन मे आपकी उपस्थिति बहुमूल्य होगी। आपके ठहरने के लिए कुतुब मे व्यवस्था होगी, केवल चुने हुए लोग आपसे मिलेंगे, तार दीजिए—नेहरू'।

परन्तु लालाजी को प्रारम्भिक बैठक तथा अधिवेशन मे दूर ही रहना था।

दिल्ली अधिवेशन को कार्यवाही की अध्यक्षता के लिए आजाद को चुना गया, क्योकि उन्हें दोनो का विश्वास प्राप्त था। परन्तु इस बात का सदेह बढ़ता जा रहा था कि क्या इससे भी विभाजन रुक पाएगा। जब से आजाद जेल से बाहर आये थे, उनके प्रयत्नो से समझौते के लिए केवल दो महीने की अवधि प्राप्त करने मे सफलता मिली थी। ऐसा दिखाई पड़ता था कि [illegible] काय उनकी

समझौता करवा पाना की क्षमता से बाहर है। परन्तु खुशकिस्मती से एक अन्य नेता उचित समय पर जेल से रिहा होकर आ गये और अधिवेशन से पहले ही आकर उन्होंने अशुभ विपत्ति टाल दी। मुहम्मद अली ने बताया कि "एक पक्षी ने मेरे कान में कहा है कि परिषद में प्रवेश के विरुद्ध महात्माजी स्वयं नहीं लड़ेंगे।" उन्होंने इन बातों को बड़े सुंदर ढंग से अस्पष्ट रखा, परन्तु परिवर्तन न चाहने वालों के लिए यह अनुमान लगाने का कोई कारण नहीं था कि वह दूसरे गुट के पक्ष में भेदभाव बरत रहे हैं और ऐसा दिखाया गया कि महात्मा गांधी ने जेल से देवदास गांधी द्वारा मुहम्मद अली को संदेश भेजा है, जिसमें समझौते का समर्थन किया गया है। कांग्रेस अधिवेशन ने एक अनुमति बाधक प्रस्ताव पास किया, जिसमें घोषणा की गई

"ऐसे कांग्रेसजन जिन्हें धार्मिक या अन्तःकरण की दृष्टि से विधान मण्डलों में प्रवेश पर कोई आपत्ति नहीं उन्हें चुनाव के लिए उम्मीदवार बनने की छूट है और वे आगामी चुनाव में अपने मताधिकार का प्रयोग कर सकते हैं। इसलिए यह कांग्रेस अधिवेशन परिषदों में प्रवेश के विरुद्ध सभी प्रचार स्थगित करता है।"

यही निर्णय तीन मास बाद काकीनाडा में नियमित वार्षिक अधिवेशन के समय दोहराया गया, जिसमें सी० राजगोपालाचारी ने भी इसका समर्थन किया। इस निर्णय से स्वराज पार्टी को वह छूट मिल गई जो वह चाहती थी, कांग्रेस से पूर्ण अधिकार प्राप्त करने जैसी बात कुछ समय के लिए प्रतीक्षा कर सकती थी।

दिल्ली कांग्रेस ने भी दस सदस्यों की एक समिति राष्ट्रीय संधि का मसौदा तैयार करने के लिए बनाई। अखिल भारतीय कांग्रेस समिति की पिछली बैठक में जो काम डाक्टर अंसारी को सौंपा गया था उसमें अब लालाजी को भी शामिल कर लिया गया।

सोलन का लम्बा प्रवास आखिरकार समाप्त हो गया। लालाजी लाहौर लौट आए, उनका स्वास्थ्य अभी भी कुछ कमजोर था, परन्तु वह किसी सीमा तक अपना सामान्य कार्य करने लगे थे।

54. एक हकीम द्वारा रोग-मुक्ति

सोलन मे रहते समय एक बार लालाजी को एक प्रकार का उदरशूल हुआ। उसके बाद दूसरी बार और तीसरी बार फिर उसी प्रकार की पीडा हुई, बाद मे तो यह उदरशूल हर सप्ताह ही होने लगा—हर बार उससे, पिछले सप्ताह के मुकाबले अधिक कष्ट होता था। सोलन तथा शिमला के डाक्टरो ने ऐमिटीन का टीका लगाया तथा कई अन्य उपचार किए, परन्तु उदरशूल पहले से अधिक शीघ्र तथा तीव्र होने लगा और हर बार उस शूल के बाद वह पहले मे कमजोर होते गए।

अच्छी चिकित्सा सुविधा के लिए वह लाहौर चले आये हालांकि गर्मी का मौसम अभी समाप्त नही हुआ था। डा० महाराज कृष्ण कपूर, डा० निहालचन्द सीकरी, डॉ० गोपीचन्द भार्गव, ले० कर्नल डी० एच० राय, लै० कर्नल अमीरचन्द —ये सभी मित्र डाक्टर प्रतिदिन उनका हाल पूछने आते। उनमे से कुछ तो दिन मे कई बार आते, आपस मे सलाह मशविरा करते और अपने ज्ञान के अनुसार उनका अच्छे से अच्छा उपचार करते। उन्हे पूरी तरह तरल खुराक दी जाने लगी और बिस्तर मे लेटे रहने को कहा गया तथा प्रतिदिन जुलाब दिया गया। हवा बदल तथा औषध परिवर्तन के बावजूद कोई लाभ होता दिखाई नही दे रहा था। सभी डाक्टर इस बात पर सहमत थे कि रोग का कारण उनके पित्ताशय म था। पित्त नली मे बाधा पडी हुई थी, शायद यह पित्त पथरी के कारण थी। कई तरह की स्वास्थ्य जाच मे कोई ठोस परिणाम न निकला।

प्रसिदध रोग विज्ञानी, मेजर सी० जे० फावस, जो सेवामुक्त होने के बाद शिमला पहाडियो मे बस गए थे, सोलन मे लालाजी से मिलते रहे थे। इसका मुख्य कारण यह था कि तपदिक सनिटोरियम की स्कीम को बढावा देन के लिए वह लालाजी का सहयोग प्राप्त कर सके। उन्हें संदेह हुआ कि यह तकलीफ स्ट्रैप्टो कोकी के कारण है और इसके अनुसार उन्होने स्वय टीका बनाया और लिखा कि उन्हें इससे "महत्वपूण' परिणाम की आशा ह।

"पित्त पथरिया', बहुत ढीठ सिदध हुइ। जुलाब तथा तरल खुराक भी रोगी को उनसे मुक्त न करा सके। इस बीच उदरशूल बार बार [illegible] कमजोर हो गए थे और अगर डॉक्टरो [illegible]

का जोखिम न उठाते । इसके अतिरिक्त कोई चोटी का अन्य चिकित्सक भी उस समय लाहौर में उपस्थित नहीं था ।

आखिरकार लालाजी ने डॉक्टरों से कह दिया कि यदि वह फला दिन तक सफल न हो पाए, तो वह किसी अन्य चिकित्सा प्रणाली का सहारा ले लेंगे । डॉक्टर खुद बुरी तरह उलझन में पड़े हुए थे और नोटिस की अवधि समाप्त होने पर डॉक्टरों की ओर से कोई विशेष विरोध के बिना एक दो होमियोपैथिक डॉक्टरों से जो उस समय लाहौर में थे, उपचार कराया गया । उन्हें भी कोई सफलता न मिली तो लाहौर के एक हकीम को बुलाया गया । वह थे स्वर्गीय शिफा उल मुल्क फकीर मुहम्मद, जो लाहौर के चोटी के हकीम होने के अलावा लालाजी के अपने नगर जगराव के थे और इसके अतिरिक्त वह अपने स्कूल काल में मुंशी राधा किशन के शिष्य रह चुके थे । हकीम अजमल खां, जिनसे वह पहले भी कई बार मशविरा ले चुके थे, उस समय दिल्ली में नहीं थे और उनका कोई पता नहीं मिल रहा था । दिल्ली के एक-दो अन्य प्रसिद्ध हकीमों के बारे में पता किया गया, परन्तु उनमें से भी कोई मिलता दिखाई नहीं देता था । तब के० डी० कोहली ने एक नबीना साहिब के बारे में सुना—एक नेत्रहीन हकीम, जिन्हें दिल्ली आए अधिक समय नहीं हुआ था और जिन्होंने कई रोगी ठीक कर दिए थे, जिनको अंग्रेजी चिकित्सा प्रणाली के डॉक्टरों ने अपेंडिसाइटिस का रोगी होने की संभावना व्यक्त की थी । टेलीफोन पर संक्षेप में बातचीत के बाद कोहली तुरंत ही उस नेत्रहीन करामाती हकीम को लाहौर ले आए ।

वृद्ध हकीम अगले दिन प्रातः लाहौर पहुंचे और आते ही उन्होंने आश्चर्यजनक आत्मविश्वास के साथ रोगी के उपचार का कार्य संभाल लिया । उन्होंने आधे घंटे में ही भविष्यवाणी कर दी कि उदरशूल अब नहीं होगा और दो दिन के अन्दर वह कार्य मुक्त होकर दिल्ली लौट सकेंगे ।

अब जान पड़ा कि वह हकीम डाक्टर एम० ए० अंसारी के बड़े भाई थे, और दिल्ली में उन्हें बहुत कम लोग जानते थे, क्योंकि उन्होंने अपने जीवन का अधिक समय हैदराबाद दरबार की सेवा में बिताया था और दरबार के साथ अनबन हो जाने पर वह हाल ही में दिल्ली आए थे । उन्होंने लालाजी की नब्ज देखने में कोई पंद्रह मिनट लगाए, क्योंकि हकीम को आते ही ऊपर लालाजी के कमरे में पहुंचा दिया गया । जब तक हकीमजी ने लालाजी की नब्ज देखी, मैंने उनका सामान कमरे में अच्छी तरह टिका दिया । जब मैं ऊपर पहुंचा, तब तक वह रोग

का निरूपण तथा पूर्वानुमान लगाने का कार्य पूरा कर चुके थे और इस बात पर जोर दे रहे थे कि उन्होंने लालाजी की नब्ज देखने मे काफी समय लगाया है, उन्हें विश्वास है कि कही कोई पथरी नही है केवल थूक-कफ की खराबी है, वह उनकी दवाई से ठीक हो जाएगी। उन्होंने केवल तरल खुराक दिए जाने पर भी आपत्ति की और इससे भी अधिक आपत्ति बार-बार जुलाब देने पर की। पहले दिन ही उन्होंने कुछ ठोस पौष्टिक आहार देने पर जोर दिया, परन्तु उसके लिए लालाजी बहुत झिझक रहे थे। वह एक दिन के लिए या एक वक्त के भोजन को करने के लिए सहमत हो गए। फिर भी उन्होंने शोरबे मे रोटी डालकर खिला ही दी।

जब हकीमजी पहुंचे थे, तो लालाजी को दिन म कई बार उदरशूल के दौरे पडते थे और जो कोई भी उनके पास होता था, पीडा से उनको तडपते हुए देखना कठिन हो जाता था। उस शाम लालाजी को बहुत अधिक कष्ट था, जब दिल्ली से के० डी० कोहली ने नवीना हकीम का सुझाव दिया था। लालाजी बहुत ही अधिक पीडा मे थे, शाम को डाक्टर महाराज कृष्ण ने लालाजी को देखा। लालाजी अब उनकी चिकित्सा म नही थे, क्योंकि उनका अंग्रेजी दवाइयो का इलाज बन्द कर दिया गया था। परन्तु उन्हें आज्ञा दे दी गई कि यदि वह चाहें तो पीडा कम करने के लिए उपाय कर सकते है। उन्होंने तुरत ही टीका लगाने की सिरिंज निकाली, परन्तु उनके थैले मे मार्फिया का कोई टीका नही था। वह घर से टीका लाने के लिए तुरत बाहर म गए, परन्तु वहा भी कोई ऐसा टीका न मिला। दवाई विक्रेताओ की सभी दुकान उस समय बन्द था और जब तक वह किसी विक्रेता से टीके की व्यवस्था करें, तब तक काफी समय बीत गया था। यह सब देरी भी उस समय हुई जब प्रत्येक पल कष्ट की घडी महसूस हो रही थी। आखिरकार टीका लगा दिया गया, जिससे पीडा घटी तो नही, परन्तु उसका अहसास अवश्य कम हो गया, क्योंकि बार-बार टीके लगाने के कारण अब टीके भी कम असर करने लगे थे। उस दिन डाक्टर काफी रात तक ठहरे रहे। वह बहुत चिंतामग्न थे। उन्हें विश्वास हो गया था कि दवाइयो म उपचार होने की अब कोई आशा नहीं रही। एकमात्र उपाय शल्य चिकित्सा ही थी। उन्हें इस बात का यकीन नही था कि रोगी उस कष्ट को सहन कर पायेगा भी या नहीं और दूसरे लाहौर म उस समय उपलब्ध सर्जन इतने कुशल भी नही थे कि वे सफलतापूर्वक आपरेशन कर सकें, फिर भी लाभ-हानि का

लेखा जोखा करने के पश्चात् उन्होंने रोगी को अगले दिन आपरेशन के लिए सर्जन को सौंप देने का निर्णय किया।

अगले दिन प्रात हकीमजी ने रोगी को संभाल लिया और उनके आने के बाद शूल का हल्का सा दौरा पडा और वह भी केवल कुछ मिनटों के लिए। हकीम ने कहा कि यह दर्द बिल्कुल भिन्न प्रकार का है और उन्होंने निश्चित तौर पर दावा किया कि वह पीडा, जो रोगी को अब तक कष्ट देती रही थी पहले ही हमेशा के लिए समाप्त हो गई है। हकीमजी का शय्यागत उपचार और उनका व्यक्तित्व, उनका शिष्टतापूर्ण व्यवहार और दरबारी अदब आदाब, वार्तालाप की प्रतिभा, उनका आत्मविश्वास, यह सब भी उपचार में उतने ही महत्वपूर्ण थे शायद जितना उनकी शीशियों वाली पेटी में दी गई दवाइयां। उनकी स्मरणशक्ति तथा उनकी संवेदनशील उंगलियों का बिना गलती किये अनेक शीशियों में से सही शीशी निकालना अदभुत था। उन्होंने लाहौर में दो रातें तथा तीन दिन बिताए, वह इस बात को मानने के लिए बिल्कुल तैयार नहीं थे कि इससे अधिक समय के लिए उनकी वहां जरूरत थी। वह यह कहते हुए दिल्ली के लिए रवाना हुए कि उन्हें हफ्ते दस दिन में लालाजी से दिल्ली में मिलकर बहुत प्रसन्नता होगी और फिर वह उनकी पूरी प्रणाली को ठीक करने के लिए लम्बी अवधि के लिए उपचार करेंगे।

डाक्टर-मित्रों को बहुत अंदेशा था। उनमें में एक ने हकीमजी के साथ बातचीत की और शारीरिक संरचना के बारे में उनसे कुछ प्रश्न पूछे और घोषणा कर दी कि उन्हें तो बिल्कुल कोई ज्ञान नहीं। कुछ दिनों के लिए दर्द का न होना केवल सौभाग्यपूर्ण संयोग था, जो डाक्टरों का विश्वास था कि पित्त पथरी की स्थिति के बदल लेने के कारण नहीं हुआ था। परन्तु यह एक हकीकत थी कि उस दिन के बाद फिर कभी लालाजी को वह पीडा नहीं हुई।

रोग चाहे कहीं भी था, हकीमजी ने उसका उपचार कर दिया था। प्राय एक रात में ही नवीना साहिब पंजाबभर में करामाती के तौर पर प्रसिद्ध हो गए और शीघ्र ही अनेक लोग दिल्ली में उनके दवाखाने पर पहुंचने शुरू हो गए। कई वर्ष तक उनकी यह जोरदार ख्याति बनी रही। जब कभी भी लालाजी आभार के तौर पर हकीमजी के पास कुछ उपहार लेकर जाते, तो वह विरोध करते हुए कहा करते थे "क्या मुझे पहले ही काफी सिला नहीं मिल गया है कि मेरा नाम हजारों लोगों में प्रसिद्ध हो गया है उनमें जिन्होंने मेरा नाम नहीं सुना था।"

55. बंगाल की संधि

कुछ समय बाद यह सुझाव दिया गया कि सभवत सागर तट लालाजी के स्वास्थ्य के लिए ठीक रहे, खुश्क तथा स्वास्थ्यवधक होने के नाते कराची का चयन किया गया। वहा वह कुछ समय के लिए जमवत राय के अतिथि रहे जो 'द पजाबी के बाद के दिना से वहा बस गये थ और बहुत ही सफल व्यापारी के रूप म सफलता प्राप्त की थी। 8 दिमबर 1924 को लालाजी को कराची मे मोतीलाल नेहरू का एक तार मिला "अबुल कलाम आजाद का महत्वपूण मशविरा करने का प्रस्ताव है, यदि स्वास्थय आज्ञा दे, तो 11 जनवरी को दिल्ली पहुचें—नेहरू'। इसके बाद पण्डितजी का एक और तार मिला "12 को लाहौर पहुच सकते हो, दास को तार दे रहा हू।"

वे विचारो के आदान प्रदान के लिए लाहौर मे मिले। इस बात की आवश्यकता इस मामूली सी आशा के कारण हुई थी कि शायद लालाजी आगामी काग्रेस अधिवेशन म भाग ले सकें।

कुछ दिनो के बाद वह फिर सिंध के लिए रवाना हो गय, ताकि कराची मे स्वास्थ्य लाभ कर सकें। कुछ दिनो के लिए वह हदराबाद रुके। पिछली यात्रा के दौरान उन्होने जैरामदास दौलतराम और चोयथराम गिडवानी तथा अन्य राजनीतिक कायकर्ताओ के साथ बातचीत की थी, जो मुख्य तौर पर दगो से उत्पन्न स्थिति तथा उसके बाद समाधान का कोई सिदधान्त खोजने के बारे मे थी। लालाजी ने देखा कि हैदराबाद के मित्र उनका दष्टिकोण सुनने के लिए बहुत उत्सुक थे। कराची के लिए दूसरी बार रवाना होने से पूव लालाजी को लाहौर मे जैरामदास से पत्र तथा तार मिले थे, जिसम अनुरोध किया गया था कि वह काकीनाडा अवश्य पहुचें विशेषकर प्रस्तावित हिन्दू-मुस्लिम सम्मेलन के लिए। 'डाक्टर चोयथराम और मैं आपसे निवेदन करते है कि 22 तारीख से पहले हिन्दू काग्रेसजना की एक बैठक का आयोजन करे, यदि 22 तारीख की हिंदू मुस्लिम बठक स्थगित नही की जा सकती।" और इस पत्र के बाद तार दिया गया, जिसमे कहा गया था "चोयथराम और मैं आपस अपील करत है कि काकीनाडा मे अवश्य भाग लें नहीं तो हिदू मुस्लिम प्रश्न बिगड जाएगा।'

काकीनाडा जाने का इरादा न होने के कारण, उन्होंने इन मित्रों के साथ उनके कांग्रेस की बैठकों में भाग लेने के लिए रवाना होने से पूर्व हैदराबाद में भेंट की। उन्हें कार्यकर्ताओं की यह टोली बहुत अच्छी लगी। विशेषकर वह जयरामदास से उनकी वफादारी, निष्ठा और काम करने के सुव्यवस्थित ढंग से बहुत प्रभावित हुए। लालाजी ने जयरामदास तथा अन्य मित्रों के साथ ताजा राजनीतिक स्थिति के बारे में विचार विमर्श किया, विशेषकर अपने तथा उनके प्रांत की समस्याओं के बारे में। इस वार्तालाप के बीच में भारतीय इतिहास के बारे में भी बातचीत होती रही। उन्होंने स्मरण किया कि कारावास के दौरान भारतीय इतिहास की पुस्तक लिखते समय उन्होंने भारत पर प्रथम मुस्लिम आक्रमण के कुछ ब्यौरे प्राप्त करने चाहे थे और उन्हें चाचनामा की प्रति नहीं मिल पाई थी। वह चाचनामा का पूर्ण विवरण पढ़ना चाहते थे। इस स्रोत पुस्तक का अंग्रेजी अनुवाद अब छप नहीं रहा था, उसकी प्रति उन्हें तुरंत प्राप्त न हो पाई, परन्तु उन्होंने इकरार किया कि वह प्रति प्राप्त करने का प्रयत्न करेंगे। बाद में उन्हें इसकी प्रति मिल गई और वह उन्होंने लालाजी के पास पहुंचा दी।

काकीनाडा आने के लिए सभी प्रलोभनों के बावजूद वह कराची में ही रहे। परन्तु जब कांग्रेस अधिवेशन आरम्भ हुआ तो वे उसके समाचार सुनने के बारे में अधीर हो उठे। दोपहर बाद वह गाड़ी पर घूमने तथा विलफटन के साथ सैर करते निकल जाते। रास्ते में वह एक समाचार-पत्र के कार्यालय के बाहर ताजा समाचार जानने के लिए कार रोक लेते। सम्पादक खुलकर मुस्कराता हुआ बाहर निकल आता और जब वह कोई समाचार पूछते, तो फिर खाली मुस्करा देता और आखिरकार कह देता कि कोई विशेष समाचार नहीं है। ऐसा सिलसिला कई दिन चलता रहा और अंत में हमें पता चला कि शिष्टता के कारण वह हमें स्पष्ट तौर पर यह नहीं बता पा रहे थे कि उनके समाचार पत्र के पास समाचार सेवा की कोई व्यवस्था नहीं है और उसे स्वयं दिन के समाचारों के लिए सायंकाल प्रकाशित होने वाले समाचार पत्रों की प्रतीक्षा करनी पड़ती है। मैं उन दिनों कराची में लालाजी के साथ था तथा शेष यात्रा में भी उनके साथ रहा और शाम को साथ ही घूमने जाता था।

फिर भी, लालाजी के लिए कुछ महत्वपूर्ण समाचार उनके कराची में ठहरने के समय प्राप्त हुए। इनमें से तीन महत्वपूर्ण थे। एक कांग्रेस अधिवेशन

55. बंगाल की संधि

कुछ समय बाद यह सुझाव दिया गया कि सभवत सागर तट लालाजी के स्वास्थ्य के लिए ठीक रहे, सुख तथा स्वास्थ्यवर्धक होने के नाते कराची का चयन किया गया। वहा वह कुछ समय के लिए जसवत राय के अतिथि रहे जो 'द पजाबी' के बाद के दिनो मे वहा बस गये थ और बहुत ही सफल व्यापारी के रूप मे सफलता प्राप्त की थी। 8 दिसबर 1924 को लालाजी को कराची मे मोतीलाल नेहरू का एक तार मिला "अबुल कलाम आजाद का महत्वपूर्ण मशविरा करने का प्रस्ताव है, यदि स्वास्थ्य आज्ञा दे, तो 11 जनवरी को दिल्ली पहुचें—नेहरू"। इसके बाद पण्डितजी का एक और तार मिला "12 को लाहौर पहुच सकते हो, दास का तार दे रहा हू।"

व विचारो के आदान प्रदान के लिए लाहौर मे मिले। इस बात की आवश्यकता इस मामूली सी आशा के कारण हुई थी कि शायद लालाजी आगामी काग्रेस अधिवेशन म भाग ले सके।

कुछ दिनो के बाद वह फिर सिंध के लिए रवाना हो गय, ताकि कराची मे स्वास्थ्य लाभ कर सकें। कुछ दिना के लिए वह हैदराबाद रुके। पिछली यात्रा के दौरान उन्होंने जैरामदास दौलतराम और चोयथराम गिडवानी तथा अन्य राजनीतिक कार्यकर्ताओ के साथ बातचीत की थी, जो मुख्य तौर पर दगा मे उत्पन्न स्थिति तथा उसके बाद समाधान का कोई सिद्धान्त खोजने के बारे मे थी। लालाजी ने देखा कि हैदराबाद के मित्र उनका दृष्टिकोण सुनने के लिए बहुत उत्सुक थे। कराची के लिए दूसरी बार रवाना होने से पूर्व लालाजी को लाहौर मे जैरामदास से पत्र तथा तार मिले थे, जिसमे अनुरोध किया गया था कि वह काकीनाडा अवश्य पहुचें, विशेषकर प्रस्तावित हिन्दू-मुस्लिम सम्मेलन के लिए। 'डाक्टर चोयथराम और म आपसे निवेदन करते हैं कि 22 तारीख से पहले हिन्दू काग्रेसजनो की एक बैठक का आयोजन कर, यदि 22 तारीख की हिन्दू मुस्लिम बैठक स्थगित नही की जा सकती। और इस पत्र के बाद तार दिया गया, जिसमे कहा गया था "चोयथराम और मैं आपसे अपील करते है कि काकीनाडा म अवश्य भाग लें नही तो हिन्दू मुस्लिम प्रश्न बिगड जाएगा।

कांकीनाडा जाने का इरादा न होने के कारण, उन्होंने इन मित्रों के साथ उनके कांग्रेस की बैठक में भाग लेने के लिए रवाना होने से पूर्व हैदराबाद में भेंट की। उन्हें कार्यकर्ताओं की यह टोली बहुत अच्छी लगी। विशेषकर वह जयरामदास से उनकी वफादारी, निष्ठा और काम करने के सुव्यवस्थित ढंग से बहुत प्रभावित हुए। लालाजी ने जयरामदास तथा अन्य मित्रों के साथ ताजा राजनीतिक स्थिति के बारे में विचार विमर्श किया, विशेषकर अपने तथा उनके प्रांत की समस्याओं के बारे में। इस वार्तालाप के बीच में भारतीय इतिहास के बारे में भी बातचीत होती रही। उन्होंने स्मरण किया कि कारावास के दौरान भारतीय इतिहास की पुस्तक लिखते समय उन्होंने भारत पर प्रथम मुस्लिम आक्रमण के कुछ ब्यौरे प्राप्त करने चाहे थे और उन्हें चाचनामा की प्रति नहीं मिल पाई थी। वह चाचनामा का पूर्ण विवरण पढ़ना चाहते थे। इस खास पुस्तक का अंग्रेजी अनुवाद अब छप नहीं रहा था, उसकी प्रति उन्हें तुरंत प्राप्त न हो पाई परन्तु उन्होंने इकरार किया कि वह प्रति प्राप्त करने का प्रयत्न करेंगे। बाद में उन्हें इसकी प्रति मिल गई और वह उन्होंने लालाजी के पास पहुंचा दी।

कांकीनाडा आने के लिए सभी प्रलोभनों के बावजूद वह कराची में ही रहे। परन्तु जब कांग्रेस अधिवेशन आरम्भ हुआ, तो वे उसके समाचार सुनने के बारे में अधीर हो उठे। दोपहर बाद वह गाड़ी पर घूमने तथा तिलपदन के साथ सैर करने निकल जाते। रास्ते में वह एक समाचार पत्र के कार्यालय के बाहर ताजा समाचार जानने के लिए कार रोक लेते। सम्पादक खुलकर मुस्कराता हुआ बाहर निकल आता और जब वह कोई समाचार पूछते, तो फिर खाली मुस्करा देता और आखिरकार कह देता कि कोई विशेष समाचार नहीं है। ऐसा सिलसिला कई दिन चलता रहा और अंत में हमें पता चला कि शिष्टता के कारण वह हमें स्पष्ट तौर पर यह नहीं बता पा रहे थे कि उनके समाचार पत्र के पास समाचार सेवा की कोई व्यवस्था नहीं है और उसे स्वयं दिन के समाचारों के लिए सायंकाल प्रकाशित होने वाले समाचार पत्रों की प्रतीक्षा करनी पड़ती है। मैं उन दिनों कराची में लालाजी के साथ था तथा शेष यात्रा में भी उनके साथ रहा और शाम को साथ ही घूमने जाता था।

फिर भी लालाजी के लिए कुछ महत्वपूर्ण समाचार उनके कराची में ठहरने के समय प्राप्त हुए। इनमें से तीन महत्वपूर्ण थे। एक कांग्रेस अधिवेशन

से पहले का, दूसरा कांग्रेस अधिवेशन के दौरान का तथा तीसरा उससे तुरत बाद का।

इनम से पहला समाचार बगाल की सधि का था जो सी० आर० दास ने बगाल की राजनीति म मुसलमानो का समथन प्राप्त करने के लिए की थी। लालाजी को यह समाचार सुनकर धक्का लगा। उन्हें सधि की कुछ धाराए बिल्कुल पसद नही थी। उनका यह पक्का विचार था कि बगाल के लिए अलग सधि करना दूरदर्शिता की बात नही थी, विशेषकर उस समय, जब राष्ट्रीय-सधि के प्रश्न पर बातचीत हो रही थी। क्योंकि राष्ट्रीय सधि समिति ने, जिसके लालाजी भी सदस्य थे, एक मसौदा तैयार किया था, जिस पर काकीनाडा मे विचार किया जाना था। बगाल के लिए सधि न एक प्रकार से राष्ट्रीय सधि को डबा दिया था। दो विरोधी मसौदे देखकर काकीनाडा अधिवेशन ने अपनी स्वीकृति रोक ली और केवल उन्हें प्रचारित कर दिया।

लालाजी के लिए अधिक गभीर बात यह नही थी कि मोर्चो के गुण क्या थे या किस अवसर पर उसे पास किया गया था, बल्कि अधिक महत्वपूर्ण बात तो यह थी कि दास ने उन्हें जान-बूझकर इस मामले से अपरिचित रखा था और इस घटना की सूचना उन्हें केवल समाचार पत्रो से ही मिली थी, जबकि स्वय उन्हें (लालाजी को) यह विश्वास था कि वह आपस म बहुत निकट सलाह से काय कर रहे थे। कई अन्य लोगो की तरह लालाजी को सदेह था कि इस समझौते म बातचीत के लिए मौलाना अबुल कलाम आजाद का बहुत बडा हाथ था। यह केवल निष्कर्ष था, जो आज प्राय सत्य सिद्ध हो चुका है क्योंकि मौलाना ने इस समझौते के लिए दास की राजनीतिक बुद्धि की भरपूर प्रशसा की थी। यदि गलतफहमी सही सिद्ध हुई तो यह बहुत गभीर बात थी, क्योंकि अबुल कलाम आजाद लालाजी के साथ बिल्कुल अलग सधि पर बातचीत करते रहे थे और उन्होने दास से सधि की, जिसे अब उचित बताया, निश्चित रूप, म निन्दा की थी। यह पक्की बात थी कि अबुल कलाम कलकत्ता म थे, तो क्या दास कलकत्ता के मुसलमानो के साथ सधि करने समय उनकी पूरी उपेक्षा कर सकते थे? कुछ भी हो, दास लालाजी से थोडी देर के लिए कलकत्ता म मिले थे और यद्यपि उन्होने हिन्दू मुस्लिम प्रश्न पर काफी बातचीत की थी, फिर भी उन्होने ऐसा कोई सकेत नही दिया था कि कोई स्थानीय सधि होने वाली थी। यदि इस सधि का विचार उनकी बातचीत के बाद आया था, तो दास का यह पूरी

पूरी जानकारी थी कि लालाजी एक राष्ट्रीय सधि के बारे म कायरत हैं और यह कम-से-कम इतना तो कर सकते थे कि लालाजी को बता देते कि स्थानीय आपात् स्थितियो के कारण वह मजबूर हो गए ह। दास न ता इतनी मामूली शिष्टता भी नही की थी।

सधि होन म अबुल कलाम का हाथ रहा हो या नही, यदि उनका हाथ था तो यह उचित बात नहीं थी। परन्तु जो दास ने किया था, उससे लालाजी को व्यक्तिगत रूप स कष्ट पहुचा था। यह बात मत्री तथा वफादारी के उनके अपने उसूलो के बिल्कुल विरुद्ध थी और फिर दास तो इतन प्यारे मित्र थे। अपने राजनीतिक जीवन मे उनके निकटतम सबध महाराष्ट्र और बगाल के राष्ट्रवादियो के साथ रहे। जब देश से लम्बी अनुपस्थिति के बाद लालाजी ने राजनीतिक काय कलकत्ता के विशेष अधिवेशन से ही फिर से आरम्भ किया था, दास उस समय बगाल के राष्ट्रवादियो के प्रमुख थे और वह तथा महाराष्ट्र के गुट इकट्ठे थे। कलकत्ता म गाधीजी, लालाजी या दास को परिवर्तित नही कर पाए थे। दोनो ही नागपुर अधिवेशन तक डटे रहे थे और फिर दोनो ने ही गाधीजी के साथ समझौता कर लिया था। जेल मे होते हुए दोनो ने असहयोग के रुढिवादी कायक्रम के खिलाफ विद्रोह आरम्भ कर दिया था, दास पहले रिहा हो गये थे और उन्होने खुलेआम विद्रोह आरम्भ कर दिया था, लालाजी ने जेल कोठरी से बडी प्रसन्नता स उन्हे सहयाग दिया था। रिहाई से लेकर अब तक वह सोचते रहे थे कि दास, मोतीलाल नेहरू तथा स्वय व बहुत निकटतम सम्पक से काय कर रहे थे। नेहरू से भी कही अधिक उन्हे दास से लगाव था, क्योकि वह बगाल के साथ लालाजी के पुरान बहुमूल्य सबधो के प्रतीक थे और जो गाधीवादी असहयाग की तथा उससे दूर जाने के राजनीतिक चक्कर मे उनके इतन निकट थे—इलाहाबाद के पण्डितजी से बहुत निकट, जिन्होने कलकत्ता म ही असहयोग का स्वीकार कर लिया था, जबकि दास और लालाजी ने उसके बाद ऐसा किया था और जो परिषदो के कायक्रम के साथ उन दोनो के बाद सहमत भी हुए।

लालाजी ने यह स्मरण भी किया कि दास न उनके गुप्त पत्र, जो उन्होने जेल से भेजे थे प्रचारित करके उनके साथ न्याय नहीं किया। उनम स एक पत्र म उन्होने बहुत ही स्पष्ट ढग से दास के सामन वे सदेह रख दिए थे, जो लाहौर केन्द्रीय जेल मे कुछ मुस्लिम मित्रो के साथ बातचीत के दौरान उनके मन मे

उत्पन्न हुए थे। यद्यपि यह पत्र केवल दास के लिए था फिर भी लालाजी को पता चला था कि दास ने इस पत्र को इस प्रकार नहीं रखा था।

कुछ समय पूर्व बम्बई के श्रमिक नेता जोसफ बैपतिस्ता ने, जो बहुत तेज जबान थे, एक चुटकुला बनाया था कि इतिहास का यह निर्णय होगा कि "दासवादी गधे थे" (दासिज वर ऐसेज)। अब लालाजी को यह चुटकुला आधी निराशा तथा आधी हंसी में याद आया और कई दिन उन्हें यह चुटकुला अपने आपसे दोहराते सुना गया। "संधि" ने उनके मन पर बहुत बोझ डाला, यद्यपि वह यह कहने में स्वतंत्र थे कि इससे उन्हें हैरानी हुई और वह इसे स्वीकार नहीं करते, फिर भी वह अपनी भावनाओं को स्वतंत्रता से व्यक्त न कर पाए। जहां सी० आर० दास का संबंध होता, वह संकोच से काम लेते।

कांग्रेस अधिवेशन की जिस बात ने लालाजी को आश्चर्य में डाला, वह अध्यक्ष पद से मुहम्मद अली का यह निर्भीक प्रस्ताव था कि "अछूतों" का हिन्दुओं तथा मुसलमानों में विभाजन कर दिया जाए—और यह भी एकता के लिए योगदान तथा उसको बढ़ावा देने के लिए था! स्वाभाविक ही इससे लालाजी अशांत हुए। इसलिए एक दिन प्रातः उठते ही उन्होंने पवित्र दिन के अवसर पर प्रतिज्ञा के तौर पर घोषणा की—दरअसल यह गुरु गोविन्दसिंहजी का जन्म दिन था— कि वह देश से अस्पृश्यता समाप्त करने के लिए देशव्यापी आंदोलन चलाएंगे। उन्होंने इस प्रतिज्ञा की पृष्ठभूमि तथा तात्पर्य स्पष्ट करने के लिए मुझे एक काफी लम्बा पत्र दिया, ताकि मैं उसे समाचार-पत्रों के लिए तार के रूप में संक्षिप्त कर सकूं और साथ ही यह भी कहा कि इससे पत्रकारिता के काम के बारे में मेरी रुचि का भी पता चल जाएगा (क्योंकि वह पहले ही मुझे पत्रकारिता का प्रशिक्षण देने के लिए निर्णय कर चुके थे)। वह एक वर्ष में स्वराज्य दिलाने का वायदा तो नहीं कर सकते थे, परंतु बारह मास में अस्पृश्यता काफी हद तक दूर की जा सकती है। सविनय अवज्ञा कार्यक्रम तो पीछे रह गया था और अब वह "रचनात्मक कार्य' में जुटे रहे थे और उनके कथनानुसार विश्वविद्यालय प्रतीक्षा कर सकते हैं और—

तीन समाचारों में से सबसे प्रमुख 13 जनवरी
को मिला और सहज में यह सबमें
था यरवदा जेल में महात्माजी

अम्पताल, पुणे मे कनल मडाक का उनका आपरेशन करना पडा था। शीघ्र ही घोपणा की गई कि आपरेशन सफल रहा है, परन्तु इससे चिन्ता समाप्त नही हुई। लालाजी ने पुणे जाने का निणय कर लिया और हमने बम्बई के लिए जहाज़ पकड लिया।

इन बातो के कारण उन पर पडने वाले बोझ के बावजद कराची म उनका ठहरना उनके स्वास्थ्य के लिए निश्चित रूप से अच्छा रहा था। जब उनका मन चाहता था वह कुछ लिख-पढ लेत थे या अपनी चिट्ठी-पत्री को देख लेत थे परन्तु अधिक बाझ का काय नही करत थे। जलवायु बल देने वाली थी मौसम बढिया और चलान के लिए क्लिफ्टन गाडी, बहुत बढिया सडक तथा मागर तट एक मनोहर स्थान था। मबसे बढिया बात यह थी कि दशक बहुत अधिक नही होत थे। कुछ-एक थे जा बार-बार आत थे, टी०एन० वासवानी क, छ डक्टर—जिनके साथ वह कभी-कभार गीता के बारे मे विचारा का आदान-प्रदान कर लेते थे। एक अन्य सज्जन थे, जा शारीरिक शिक्षा म बहुत रुचि रखत थे। वह लालाजी को उनके स्वास्थ्य के बारे मे कुछ गुर बताना चाहते थे और उन्हाने लालाजी का एक पेडोमीटर दिया था क्योकि वह इस बात का महत्व देते थे कि दिन भर मे उनकी टागा न कितना काय किया है। अपनी इच्छा से लालाजी कभी कभार जमशेद मेहता, अब्दुल्ला हार या हातिम अलवी से मिलने चले जात और कभी-कभार शाम को घूमने के लिए निकलने से पूव समृद्ध व्यापारियो, पजाबिया, सिंधिया या मारवाडिया के पास लाक सेवा सघ के लिए धन एकत्र करन चले जात थे। परन्तु भीड का सामना नही करना पडता था, बेवक्त आने वाले दशनाभिलापिया की ममस्या नही थी और कोई सावजनिक समारोह नही थे सिवाय उस विशाल उद्यान अभिनन्दन के, जा कराची के नागरिका की ओर से उनके सम्मान म दिया गया था।

बम्बई म वह एक दिन ठहरे, कुछ मित्रा से मिले और पुणे के लिए रवाना हा गये। एन० सी० केलकर तथा केसरी गुट से सम्बद्ध उनके मित्रो ने बहुत सद्भावना तथा गरमजोशी के साथ उनका स्वागत किया, जा महाराष्ट्र के प्रति उनकी पुरानी मित्रता के कारण उचित ही था। उन्हें सबसे बडी चिन्ता महात्मा गाधी को देखने की थी, इसलिए वह शीघ्रता से सासून अस्पताल पहुचे। रोगी ने मुस्कुरा कर उनका स्वागत किया। आधी चिन्ता तो इमी से ममाप्त हो गई। निस्सदेह तब तक गभीर आशका का कारण ममाप्त हा चुका था, यद्यपि

उत्पन्न हुए थे। यद्यपि यह पत्र केवल दास के लिए था, फिर भी लालाजी का पता चला था कि दास ने इस पत्र का इस प्रकार नहीं रखा था।

कुछ समय पूर्व बम्बई के श्रमिक नेता जोसफ बैपतिस्ता ने, जो बहुत तेज जबान थे, एक चुटकुला बनाया था कि इतिहास का यह निर्णय होगा कि "दासवादी गधे थे" (दासिज वर एसेज)। अब लालाजी को यह चुटकुला आधी निराशा तथा आधी हंसी में याद आया और कई दिन उन्हें यह चुटकुला अपने आपसे दोहराते सुना गया। 'संधि' ने उनके मन पर बहुत बोझ डाला, यद्यपि वह यह कहने में स्वतंत्र थे कि इससे उन्हें हैरानी हुई और वह इसे स्वीकार नहीं करते, फिर भी वह अपनी भावनाओं को स्वतंत्रता से व्यक्त न कर पाए। जहां सी० आर० दास का संबंध होता, वह संकोच से काम लेते।

कांग्रेस अधिवेशन की जिस बात ने लालाजी को आश्चर्य में डाला, वह अध्यक्ष पद से मुहम्मद अली का यह निर्भीक प्रस्ताव था कि "अछूतों" का हिन्दुओं तथा मुसलमानों में विभाजन कर दिया जाए—और यह भी एकता के लिए योगदान तथा उसको बढ़ावा देने के लिए था! स्वाभाविक ही इससे लालाजी अशांत हुए। इसलिए एक दिन प्रातः उठते ही उन्होंने पवित्र दिन के अवसर पर प्रतिज्ञा के तौर पर घोषणा की—दरअसल यह गुरु गोविन्दसिंहजी का जन्म दिन था— कि वह देश में अस्पृश्यता समाप्त करने के लिए देशव्यापी आंदोलन चलाएंगे। उन्होंने इस प्रतिज्ञा की पृष्ठभूमि तथा तात्पर्य स्पष्ट करने के लिए मुझे एक काफी लम्बा पत्र दिया ताकि मैं उसे समाचार पत्रों के लिए तार के रूप में संक्षिप्त कर सकूं और साथ ही यह भी कहा कि इससे पत्रकारिता के काम के बारे में मेरी रुचि का भी पता चल जाएगा (क्योंकि वह पहले ही मुझे पत्रकारिता का प्रशिक्षण देने के लिए निर्णय कर चुके थे)। वह एक वर्ष में स्वराज्य दिलाने का वायदा तो नहीं कर सकते थे, परन्तु बारह मास में अस्पृश्यता काफी हद तक दूर की जा सकती है। सविनय अवज्ञा कार्यक्रम तो पीछे रह गया था और अब वह "रचनात्मक कार्य' में जुट रहे थे और उनके कथनानुसार विश्व विद्यालय प्रतीक्षा कर सकते हैं अछूत नहीं।

तीन समाचारों में से सबसे प्रमुख समाचार उन्हें कराची में 12 या 13 जनवरी को मिला और सहज में यह सबसे अधिक चौंका देने वाला था। यह समाचार था यरवदा जेल में महात्माजी का अपेंडेसाइटिस से रोगी होने का। सम्पूर्ण

अस्पताल, पुणे म कनल मडाक को उनका आपरेशन करना पडा था । शीघ्र ही घोषणा की गई कि आपरेशन सफल रहा है, परन्तु इससे चिन्ता समाप्त नही हुई । लालाजी ने पुणे जाने का निणय कर लिया और हमन बम्बई के लिए जहाज़ पकड लिया ।

इन बाता के कारण उन पर पडन वाले बोझ के बावजूद, कराची मे उनका ठहरना उनके स्वास्थ्य के लिए निश्चित रूप से अच्छा रहा था । जब उनका मन चाहता था वह कुछ लिख-पढ लेत थे या अपनी चिट्ठी पत्री का देख लेते थे, परन्तु अधिक बाझ का काय नही करत थे । जलवायु बल देने वाली थी, मौसम बढिया और चलाने के लिए क्लिफटन गाडी, बहुत बढिया सडक तथा सागर तट एक मनोहर स्थान था । सबसे बढिया बात यह थी कि दशक बहुत अधिक नही होते थे । कुछ एक थे, जो बार बार आते थे, टी०एल० वासवानी क, छ डक्टर— जिनके साथ वह कभी कभार गीता के बारे मे विचारो का आदान-प्रदान कर लेते थे । एक अय सज्जन थे, जो शारीरिक शिक्षा मे बहुत रुचि रखत थे । वह लालाजी को उनके स्वास्थ्य के बारे मे कुछ सूत्र बताना चाहते थे और उन्हाने लालाजी को एक पेडोमीटर दिया था, क्योकि वह इस बात को महत्व देते थे कि दिन भर मे उनकी टागो ने कितना काय किया है । अपनी इच्छा से लालाजी कभी कभार जमशेद मेहता, अब्दुल्ला हारू या हातिम अलवी स मिलने चले जाते और कभी-कभार शाम को घूमने के लिए निकलने से पूव समृद्ध व्यापारियो, पजाबियो, सिंधियो या मारवाडियो के पास लोक सेवा सघ के लिए धन एकत्र करने चले जाते थे । परन्तु भीड का सामना नही करना पडता था बेवक्त आने वाल दशनाभिलाषियो की समस्या नही थी और कोई सावजनिक समाराह नही थे, सिवाय उस विशाल उद्यान अभिनन्दन के, जो कराची के नागरिको की ओर से उनके सम्मान मे दिया गया था ।

बम्बई मे वह एक दिन ठहरे, कुछ मित्रो से मिले और पुणे के लिए रवाना हो गये । एन० सी० केलकर तथा केसरी गुट से सम्बद्ध उनके मित्रो ने बहुत सद्भावना तथा गरमजोशी के साथ उनका स्वागत किया, जो महाराष्ट्र के प्रति उनकी पुरानी मित्रता के कारण उचित ही था । उन्हें सबसे बडी चिन्ता महात्मा गाधी को देखने की थी, इसलिए वह शीघ्रता से सासून अस्पताल पहुचे । रोगी ने मुस्कुरा कर उनका स्वागत किया । आधी चिन्ता ता इसी से समाप्त हो गई । निस्सदेह तब तक गभीर आशका का कारण समाप्त हो चुका था, यदयपि

उत्पन्न हुए थे। यदयपि यह पत्र केवल दास के लिए था फिर भी लालाजी का पता चला था कि दास ने इस पत्र को इस प्रकार नहीं रखा था।

कुछ समय पूर्व बम्बई के श्रमिक नेता जोसफ बैपतिस्ता ने, जो बहुत तेज जबान थे, एक चुटकला बनाया था कि इतिहास का यह निर्णय होगा कि "दासवादी गधे थे" (दासिज वर ऐसेज)। अब लालाजी को यह चुटकुला आधी निराशा तथा आधी हंसी में याद आया और कई दिन उन्हें यह चुटकुला अपने आपसे दोहराते सुना गया। 'गधे' ने उनके मन पर बहुत बोझ डाला, यद्यपि वह यह कहने में स्वतंत्र थे कि इससे उन्हें हैरानी हुई और वह इसे स्वीकार नहीं करते, फिर भी वह अपनी भावनाओं को स्वतंत्रता से व्यक्त न कर पाए। जहां सी० आर० दास का संबंध होता, वह संकोच से काम लेते।

कांग्रेस अधिवेशन की जिस बात ने लालाजी को आश्चर्य में डाला, वह अध्यक्ष पद से मुहम्मद अली का यह निर्भीक प्रस्ताव था कि "अछूतों" का हिन्दुओं तथा मुसलमानों में विभाजन कर दिया जाए—और यह भी एकता के लिए योगदान तथा उसका बढ़ावा देने के लिए था! स्वाभाविक ही इससे लालाजी अशांत हुए। इसलिए एक दिन प्रातः उठते ही उन्होंने पवित्र दिन के अवसर पर प्रतिज्ञा के तौर पर घोषणा की—दरअसल यह गुरु गोविन्दसिंहजी का जन्म दिन था— कि वह देश से अस्पृश्यता समाप्त करने के लिए देशव्यापी आंदोलन चलाएंगे। उन्होंने इस प्रतिज्ञा की पृष्ठभूमि तथा तात्पर्य स्पष्ट करने के लिए मुझे एक काफी लम्बा पत्र दिया ताकि मैं उसे समाचार पत्रों के लिए तार के रूप में संक्षिप्त कर सकूं और साथ ही यह भी कहा कि इससे पत्रकारिता के काम के बारे में मेरी रुचि का भी पता चल जाएगा (क्योंकि वह पहले ही मुझे पत्रकारिता का प्रशिक्षण देने के लिए निर्णय कर चुके थे)। वह एक वर्ष में स्वराज्य दिलाने का वायदा तो नहीं कर सकते थे, परन्तु बारह मास में अस्पृश्यता काफी हद तक दूर की जा सकती है। सविनय अवज्ञा कार्यक्रम तो पीछे रह गया था और अब वह "रचनात्मक कार्य" में जुट रहे थे और उनके कथनानुसार विश्वविद्यालय प्रतीक्षा कर सकते हैं अछूत नहीं।

तीन समाचारों में से सबसे प्रमुख समाचार उन्हें कराची में 12 या 13 जनवरी को मिला और सहज में यह सबसे अधिक चौंका देने वाला था। यह समाचार था यरवदा जेल में महात्माजी का अपेंडेसाइटिस से रोगी होने का। सामने

रोगी का स्वास्थ्य कमजोर था, फिर भी उसमे संतोषजनक ढंग से सुधार हो रहा था ।

लालाजी को पुणे आकर बहुत प्रसन्नता हुई और उन साहसी मित्रो का स्मरण हो आया जो अब नही थे और जिनकी मित्रता का उनके लिए बहुत महत्व था—लोकमान्य तथा गोखले—1905 मे पुणे की उनकी प्रथम यात्रा और कुछ समय बाद लाहौर म गोखले का उनका अतिथि होना तथा सिंहगढ और शिवाजी की ऐतिहासिक स्मृतिया भी उनके मन मे आ गई । सबसे सुखद समाचार जो उन्हे मिला वह था कि केलकर लोकमान्य तिलक की जीवनी तैयार कर रहे ह । मराठी की यह पुस्तक सभवत पूर्ण जीवनी हो । वह बहुत प्रसन्नता तथा सुख महसूस कर रहे थे । निस्सदेह उन्होने इस अवसर का नई समस्याओ के बारे म विचार-विमर्श के लिए पूरा उपयोग किया । ये नई समस्याए गडबडी, हिंदू मुस्लिम एकता, अछूतो के बारे मे मुहम्मद अली का प्रस्ताव आदि थी । बातचीत मे पुणे के मित्रो के अलावा, कुछ अन्य नेता भी, जिनमे कर्नाटक के गगाधर राव देशपाडे भी थे, शामिल हुए । ये नेता महात्माजी की बीमारी के सबध मे वहा आए हुए थे ।

बम्बई लौटकर लालाजी ने कई पुराने मित्रो से भेंट की, जिनमे विटठल भाई पटेल और आर० बी० लोटावाला भी थे । वह वालकेश्वर रोड पर सेठ हिंदूमल दानी के घर पर ठहरे, जहा पटेल पुणे जाने से पूर्व मिलने आए । बाद मे वह पटेल के कार्यालय, आर्य भवन मे (उनकी राजनीतिक गतिविधियो का कार्यालय) मिले, जो चौपाटी के निकट था । बातचीत के दौरान पटेल ने लालाजी को काकीनाडा काग्रेस अधिवेशन के बारे मे अपने विचारो से अवगत कराया तथा उनसे यह भी पूछा कि बम्बई मे अब वह कहा जाएगे । लालाजी ने कहा कि फिलहाल उनका ध्यान कलकत्ता की ओर केंद्रित है, ताकि वह सी० आर० दास को यह बता सकें कि वह इस सधि वाले मामले को क्या समझते है । म उन्हें चूम लूगा और बता दूगा कि वह गधे हैं और म उन्हें फिर भी प्रेम करता हू ।" पटेल भी इस सधि को ठीक नही समझते थे, परन्तु जहा तक फटकार के तौर पर चूमने वाली बात भी उनके विचार मे दास उस प्रकार के व्यक्ति नही थे जो ऐसा करने को अच्छा समझे ।

कलकत्ता जाते हुए लालाजी नागपुर म ठहरे जहा उन्होने बरिस्टर देशमुख से भेट की और उन्हें अभ्यकर से मिलने का अवसर भी मिला—सभवत मुझे

भी वहा आ गये थे—इम प्रकार पुणे और नागपुर के बीच उन्हाने महाराष्ट्र के प्राय सभी बडे नताआ मे मुलाकात कर ली और उनसे स्वय स्पष्ट तौर पर विचारो का आदान प्रदान कर लिया ।

आखिरकार वह कलकत्ता पहुच गये ।

जब वह रुसा राड पर विशाल भवन की सीढिया चढे, जिनको नाना आर हिन्दू दवी दवताआ की मूर्तिया ताका तथा अय उचित स्थानो पर सजाई हुइ थी, उन्हें वाप्तिस्ता की गुस्ताखीपूण बात अवश्य याद आई होगी, जा इतिहास के निणय के बारे मे थी, उन्हें दास को चूमने और उन्हें यह कहने की कि वह गधे हैं और वह फिर भी उन्हें चाहते है, अपनी इच्छा का स्मरण भी हुआ होगा और उनके साथ ही विट्ठल भाई पटेल की चेतावनी भी, जो इस विषय म अन्तिम शब्दों के समान थी ।

जिस विशाल कमरे म वह बातचीत के लिए बठे, वहा योजना के अनुसार बातें होती दिखाई न दी । आरभ मे बातचीत का माहौल बहुत ही भावहीन था, जिसमे लालाजी का अपन मन की बात बिना नाराजगी पैदा किए कहना कठिन दिखाई दे रहा था। औपचारिक अभिवादन के पश्चात दास न लालाजी से उनके स्वास्थ्य के बारे मे पूछा। फिर लालाजी न दास से पूछा कि उनका पुत्र कहा था, क्या कर रहा था और उसकी योजनाए क्या थी। दास ने सरसरी तौर म उत्तर दिये और बहुत ही घृणापूवक बताया कि बिहार के मकान के अतिरिक्त (जहा उनका पुत्र था), उसकी योजनाए क्या थी ? यानी कुछ नही और — उनकी जायदाद केवल रुसा रोड का यह मकान रह गया है और वह कह नही सकते कि यह कब उनसे कर्जों की अदायगी के लिए छिन जाएगा । इस समय दास इतने उदास थे जितना कोई भी नही हो सकता था, क्योकि अपनी सम्पत्ति समाप्त हाने पर देशबधु के अलावा और कौन इम प्रकार चिन्तारहित हो सकता था ?

जब वह लालाजी को अपने मामला के बारे मे बता चुके, दास न भी लालाजी से उसी प्रकार क प्रश्न पूछे—घरेलू किस्म के। फिर दोना आर चुप्पी छा गई। जब इस चुप्पी का तोडना ही पडा, तो दास ने एक ही धमाके से इसे ताडा ।

दास 'बताइए, आपके मन म मेरे विरुद्ध क्या है?"

लालाजी 'अधिकतर उस ढग के विरुद्ध जैसा आपन किया है ।

रोगी का स्वास्थ्य कमजोर था, फिर भी उसमें संतोषजनक ढंग से सुधार हो रहा था।

लालाजी को पुणे आकर बहुत प्रसन्नता हुई और उन साहसी मित्रों का स्मरण हो आया जो अब नहीं थे और जिनकी मित्रता का उनके लिए बहुत महत्व था—लोकमान्य तथा गोखले—1905 में पुणे की उनकी प्रथम यात्रा और कुछ समय बाद लाहौर में गोखले का उनका अतिथि होना तथा सिंहगढ और शिवाजी की ऐतिहासिक स्मृतियां भी उनके मन में आ गईं। सबसे सुखद समाचार जो उन्हें मिला वह था कि केलकर लोकमान्य तिलक की जीवनी तैयार कर रहे हैं। मराठी की यह पुस्तक संभवतः पूर्ण जीवनी हो। वह बहुत प्रसन्नता तथा सुख महसूस कर रहे थे। निस्संदेह उन्होंने इस अवसर का नई समस्याओं के बारे में विचार-विमर्श के लिए पूरा उपयोग किया। ये नई समस्याएं गड़बड़ी, हिंदू मुस्लिम एकता, अछूतों के बारे में मुहम्मद अली का प्रस्ताव आदि थीं। बातचीत में पुणे के मित्रों के अलावा, कुछ अन्य नेता भी, जिनमें कर्नाटक के गंगाधर राव देशपांडे भी थे, शामिल हुए। ये नेता महात्माजी की बीमारी के संबंध में वहां आए हुए थे।

बम्बई लौटकर लालाजी ने कई पुराने मित्रों से भेंट की, जिनमें विट्ठल भाई पटेल और आर० बी० लोटावाला भी थे। वह वालकेश्वर रोड पर सेठ हिंदूमल दानी के घर पर ठहरे, जहां पटेल पुणे जाने से पूर्व मिलने आए। बाद में वह पटेल के कार्यालय, आर्य भवन में (उनकी राजनीतिक गतिविधियों का कार्यालय) मिले, जो चौपाटी के निकट था। बातचीत के दौरान पटेल ने लालाजी को काकीनाडा कांग्रेस अधिवेशन के बारे में अपने विचारों से अवगत कराया तथा उनसे यह भी पूछा कि बम्बई से अब वह कहां जाएंगे। लालाजी ने कहा कि फिलहाल उनका ध्यान कलकत्ता की ओर केंद्रित है ताकि वह सी० आर० दास को यह बता सकें कि वह इस संधि वाले मामले का क्या समझते हैं। 'मैं उन्हें चूम लूंगा और बता दूंगा कि वह गधे हैं और मैं उन्हें फिर भी प्रेम करता हूं।" पटेल भी इस संधि को ठीक नहीं समझते थे, परन्तु जहां तक फटकार के तौर पर चूमने वाली बात थी, उनके विचार में दास उस प्रकार के व्यक्ति नहीं थे, जो ऐसा करने को अच्छा समझें।

कलकत्ता जाते हुए लालाजी नागपुर में ठहरे, जहां उन्होंने बैरिस्टर देशमुख से भेंट की और उन्हें अभ्यंकर से मिलने का अवसर भी मिला—संभवतः मुझे

भी वहा आ गये थे—इस प्रकार पुणे और नागपुर के बीच उन्होंने महाराष्ट्र के प्राय सभी बडे नेताओ से मुलाकात कर ली और उनसे स्वय स्पष्ट तौर पर विचारो का आदान-प्रदान कर लिया ।

आखिरकार वह कलकत्ता पहुच गये ।

जब वह रसा रोड पर विशाल भवन की सीढिया चढे जिनकी दोनो ओर हिन्दू देवी-देवताओ की मूर्तिया ताको तथा अन्य उचित स्थानो पर सजाई हुई थी, उन्हें वाप्तिस्ता की गुस्ताखीपूर्ण बात अवश्य याद आई होगी, जो इतिहास के निर्णय के बारे म थी, उन्हें दास को चूमने और उन्हें यह कहने की कि वह गधे हैं और वह फिर भी उन्हें चाहते है, अपनी इच्छा का स्मरण भी हुआ होगा और उनके साथ ही विट्ठल भाई पटेल की चेतावनी भी, जो इस विषय मे अन्तिम शब्दो के समान थी ।

जिस विशाल कमरे मे वह बातचीत के लिए बैठे, वहा योजना के अनुसार बातें होती दिखाई न दी । आरभ मे बातचीत का माहौल बहुत ही भावहीन था जिसमे लालाजी का अपने मन की बात बिना नाराजगी पैदा किए कहना कठिन दिखाई दे रहा था । औपचारिक अभिवादन के पश्चात् दास ने लालाजी से उनके स्वास्थ्य के बारे मे पूछा । फिर लालाजी ने दास से पूछा कि उनका पुत्र कहा था, क्या कर रहा था और उसकी योजनाए क्या थी । दास ने सरसरी तौर से उत्तर दिये और बहुत ही घृणापूर्वक बताया कि बिहार के मकान के अतिरिक्त (जहा उनका पुत्र था), उसकी योजनाए क्या थी ? यानी कुछ नही और — उनकी जायदाद केवल रसा रोड का यह मकान रह गया है और वह कह नही सकते कि यह कब उनसे कर्जों की अदायगी के लिए छिन जाएगा । इस समय दास इतने उदास थे, जितना कोई भी नही हो सकता था, क्योंकि अपनी सम्पत्ति समाप्त होने पर देशबधु के अलावा और कौन इस प्रकार चिन्तारहित हो सकता था ?

जब वह लालाजी को अपने मामलो के बारे म बता चुके, दास ने भी लालाजी से उसी प्रकार के प्रश्न पूछे—घरेलू किस्म के । फिर दोनो और चुप्पी छा गई । जब इस चुप्पी को तोडना ही पडा, तो दास ने एक ही धमाके से इसे तोडा ।

दास "बताइए, आपके मन मे मेरे विरुद्ध क्या है?"

लालाजी 'अधिकतर उस ढग के विरुद्ध जैसा आपने किया है ।

दिल्ली मे निवास के दौरान उन्हें हकीम अजमल खा और डाक्टर एम० ए० असारी के साथ हिंदुओं और मुसलमानों के बीच बिगड रहे सबधो के बारे मे बातचीत करने का अवसर भी मिला ।

स्वास्थ्य लाभ के लिए सागर किनारे निवास और उसके पश्चात कई प्रातो मे घुमक्कडपन, जो पुणे की तुरत यात्रा मे आरम्भ होकर दिल्ली तथा लाहौर मे समाप्त हुआ, काफी लाभकारी रहा । शायद इससे उन्हें असहयोग आदोलन के असफल होने के पश्चात देश को झूठ अच्छी तरह जान सकने का अवसर मिल गया हो काकीनाडा अधिवेशन मे भाग लेने से शायद इतना न मिल पाता । इससे उनकी कार्य की प्रथम प्राथमिकता भी तय हो गई—वह थी "अछूत उद्धार", जो काम उन्हें निकटतम भविष्य मे करना था ।

वर्तमान लेखक इस महत्वपूर्ण यात्रा मे लालाजी के साथ था लाहौर से सिंध तथा वापस लाहौर तक ।

56. छुआछूत के विरुद्ध सघर्ष

अस्पृश्यता अथवा छुआछूत के विरुद्ध अभियान की कल्पना 1923 के अत मे हुई और इसका तुरत कारण वह अन्यायपूर्ण प्रस्ताव था, जो मुहम्मद अली न अपन अध्यक्षीय भाषण म काकीनाडा-अधिवेशन मे किया था कि अछूतो को हिन्दू तथा मुसलमान प्रचारक सगठनो के बीच विभाजित कर दिया जाए। यह सुझाव असल मे एक समृद्ध मुसलमान न दिया था जो इस क्षेत्र मे इस्लाम के काय के लिए काफी धन देने को तैयार था। इस विचार की सूचना काग्रेस का उसके मुसलमान अध्यक्ष ने इस प्रस्ताव के रूप मे दी थी कि इससे टकराव के एक प्रभावी कारण का अत होगा। शीघ्र ही यह भी पता चल गया कि वह अनाम, अमीर, मुसलमान, दानशील व्यक्ति महामहिम आगा खा थे, जिनका धन तथा जन असत्न मे पहले ही हिन्दू धम म मत परिवतन के लिए काफी हस्तक्षेप कर रहे थे।

जुगल किशोर बिरला द्वारा पाच हजार रुपये महीना देन की वदान्यता ने लालाजी का तुरत धन मागने से एक प्रकार से मुक्त कर दिया और उन्होने पजाब म काय के लिए सीधे ही अछूत उद्धार समिति नियुक्त कर दी जिसम सनातनी व्यक्ति रूढि विरुद्ध व्यक्तियो के साथ सहयोग कर सकते थे। लालाजी ने एक अखिल भारतीय समिति नियुक्त की, जिसके अध्यक्ष वह स्वय ही थे। इस समिति का मुख्यालय, सब्जी मडी दिल्ली म था। लोक सेवा सघ के सदस्य (जिसकी शाखाओ की सख्या, नई शाखाओ समेत 12 से अधिक हो गई थी) सारे-के-सारे अछूत उद्धार के लिए पजाब तथा उत्तर प्रदेश मे फैल गए। इस सस्था के अधीन पूणकालिक कायकर्ताओ की सख्या एक समय पर लगभग एक सौ हो गई थी। यह काय अधिकतर पजाब दिल्ली और उत्तर प्रदेश तक सीमित था, परन्तु लोक सेवा सघ के केंद्र ता इन क्षेत्रो से बाहर भी थे। इस क्षेत्र म लालाजी द्वारा पहले किए गए काय की एक निशानी रावी के निकट भूमि का एक टुकडा था, जो शाहदरा रेलवे स्टेशन से अधिक दूर नही था और बारहदरी के निकट था। उन्होन यह भूमि एक बस्ती बसान के लिए खरीदी थी, जहा

दिल्ली मे निवास के दौरान उन्हे हकीम अजमल खा और डाक्टर एम० ए० असारी के साथ हिन्दुओ और मुसलमानो के बीच बिगड रहे सबधो के बारे म बातचीत करने का अवसर भी मिला ।

स्वास्थ्य लाभ के लिए सागर किनारे निवास और उसके पश्चात कई प्रातो म घुमक्कडपन, जो पुणे की तुरन्त यात्रा से आरम्भ होकर दिल्ली तथा लाहौर म समाप्त हुआ, काफी लाभकारी रहा । शायद इसमे उन्हें असहयोग आन्दोलन के असफल होने के पश्चात देश का मूड अच्छी तरह जान सकने का अवसर मिल गया हो काकीनाडा अधिवेशन मे भाग लेने से शायद इतना न मिल पाता । इससे उनकी काय की प्रथम प्राथमिकता भी तय हो गई—वह थी "अछूत उद्धार" जो काम उन्हे निकटतम भविष्य म करना था ।

वतमान लेखक इस महत्वपूण यात्रा म लालाजी के साथ था लाहौर म सिंध तथा वापस लाहौर तक ।

56. छुआछूत के विरुद्ध संघर्ष

अस्पृश्यता अथवा छुआछूत के विरुद्ध अभियान की कल्पना 1923 के अंत में हुई और इसका तुरंत कारण यह अन्यायपूर्ण प्रस्ताव था जो मुहम्मद अली ने अपने अध्यक्षीय भाषण में काकीनाडा-अधिवेशन में किया था कि अछूतों को हिन्दू तथा मुसलमान प्रचारक संगठनों के बीच विभाजित कर दिया जाए। यह सुझाव असल में एक समृद्ध मुसलमान ने दिया था, जो इस क्षेत्र में इस्लाम के काम के लिए काफी धन देने को तैयार था। इस विचार की सूचना कांग्रेस को उसके मुसलमान अध्यक्ष ने इस प्रस्ताव के रूप में दी थी कि इससे टकराव के एक प्रभावी कारण का अंत होगा। शीघ्र ही यह भी पता चल गया कि यह अनाम, अमीर, मुसलमान, दानशील व्यक्ति महामहिम आगा खां थे, जिनका धन तथा जन अगले में पहले ही हिंदू धर्म में मत परिवर्तन में निए काफी हस्तक्षेप कर रहे थे।

जुगल किशोर बिरला द्वारा पांच हजार रुपये महीना देने की वदान्यता ने लालाजी को तुरंत धन मांगने से एक प्रकार से मुक्त कर दिया और उन्होंने पंजाब में काम के लिए सीधे ही अछूत उद्धार समिति नियुक्त कर दी, जिसमें सनातनी व्यक्ति रूढ़ि विरुद्ध व्यक्तियों के साथ सहयोग कर सकते थे। लालाजी ने एक अखिल भारतीय समिति नियुक्त की, जिसके अध्यक्ष वह स्वयं ही थे। इस समिति का मुख्यालय सब्जी मंडी दिल्ली में था। लोक सेवा संघ के सदस्य (जिसकी शाखाओं की संख्या, नई शाखाओं समेत 12 से अधिक हो गई थी) सारे के सारे अछूत उद्धार के लिए पंजाब तथा उत्तर प्रदेश में फैल गए। इस संस्था के अधीन पूर्णकालिक कार्यकर्ताओं की संख्या एक समय पर लगभग एक सौ हो गई थी। यह कार्य अधिकतर पंजाब दिल्ली और उत्तर प्रदेश तक सीमित था, परन्तु लोक सेवा संघ के केंद्र तो इन क्षेत्रों से बाहर भी थे। इस क्षेत्र में लालाजी द्वारा पहले किए गए कार्य की एक निशानी रावी के निकट भूमि का एक टुकड़ा था, जो शाहदरा रेलवे स्टेशन से अधिक दूर नहीं था और बारहदरी के निकट था। उन्होंने यह भूमि एक बस्ती बसाने के लिए खरीदी थी, जहां

दिल्ली मे निवास के दौरान उन्हे हकीम अजमल खा और डाक्टर एम० ए० असारी के साथ हिदुओ और मुसलमानो के बीच बिगड रहे सबधो के बारे म बातचीत करने का अवसर भी मिला ।

स्वास्थ्य लाभ के लिए सागर किनारे निवास और उसके पश्चात कई प्रातो मे घुमक्कडपन, जो पुणे की तुरत यात्रा से आरम्भ होकर दिल्ली तथा लाहौर म समाप्त हुआ, काफी लाभकारी रहा । शायद इसस उन्हें असहयोग आदोलन के असफल होने के पश्चात देश का झूठ अच्छी तरह जान सकने का अवसर मिल गया हो कोकीनाडा अधिवेशन मे भाग लेने से शायद इतना न मिल पाता । इससे उनकी काय की प्रथम प्राथमिकता भी तय हो गई—वह थी "अछूत उद्धार" का काम उन्हें निकटतम भविष्य मे करना था ।

वतमान लेखक इस महत्वपूण यात्रा म लालाजी के साथ था, लाहौर मे सिंध तथा वापस लाहौर तक ।

56. छुआछूत के विरुद्ध संघर्ष

अस्पृश्यता अथवा छुआछूत के विरुदध अभियान की कल्पना 1923 के अत म हुई और इसका तुरत कारण वह अन्यायपूर्ण प्रस्ताव था, जो मुहम्मद अली न अपन अध्यक्षीय भाषण मे काकीनाडा-अधिवेशन मे किया था कि अछूता को हिन्दू तथा मुसलमान प्रचारक सगठना के बीच विभाजित कर दिया जाए। यह सुझाव असल म एक समृदध मुसलमान ने दिया था जो इस क्षेत्र म इस्लाम के कार्य के लिए काफी धन देन को तैयार था। इस विचार की सूचना काग्रेस या उसके मुसलमान अध्यक्ष न इस प्रस्ताव के रूप म दी थी कि इससे टकराव के एक प्रभावी कारण का अत होगा। शीघ्र ही यह भी पता चल गया कि यह अनाम, अमीर, मुसलमान, दानशील व्यक्ति महामहिम आगा खा थे, जिनका धन तथा जन असल म पहले ही हिदू धम म मत परिवतन के लिए काफी हस्तक्षेप कर रहे थे।

जुगल किशोर बिरला दवारा पाच हजार रुपये महीना देन की सहायता न लालाजी को तुरत धन मागने से एक प्रकार से मुक्त कर दिया और उन्होने पजाब मे काय के लिए सीधे ही अछूत उदधार समिति नियुक्त कर दी, जिसमे सनातनी व्यक्ति रूढि विरुदध व्यक्तिया के साथ सहयोग कर सकते थे। लालाजी न एक अखिल भारतीय समिति नियुक्त की, जिसके अध्यक्ष वह स्वय ही थे। इस समिति का मुख्यालय, सब्जी मडी दिल्ली मे था। लोक सेवा सघ के सदस्य (जिसकी शाखाओ की सख्या, नई शाखाओ समेत 12 से अधिक हो गई थी) सारे के-सारे अछूत उद्धार के लिए पजाब तथा उत्तर प्रदेश म फल गए। इस सस्था के अधीन पूर्णकालिक कायकर्ताओ की सख्या एक समय पर लगभग एक सौ हो गई थी। यह काय अधिकतर पजाब दिल्ली और उत्तर प्रदेश तक सीमित था, परन्तु लोक सेवा सघ के केद्र तो इन क्षेत्रो से बाहर भी थे। इस क्षेत्र म लालाजी द्वारा पहले किए गए काय की एक निशानी रावी के निकट भूमि का एक टुकडा था, जो शाहदरा रेलवे स्टेशन से अधिक दूर नही था और बारहदरी के निकट था। उन्होने यह भूमि एक बस्ती बसान के लिए खरीदी थी, जहा

दलितवर्ग के कुछ परिवारों को बसाने की योजना थी और एक केंद्र बनाने का विचार था, जिसमें उन लोगों को शिक्षा देने तथा लघु उद्योग लगाकर अपना जीवन स्तर सुधारने का कार्यक्रम था। बीच में अन्य बातें आ गईं विशेषकर निर्वासन की लम्बी अवधि। अब उन्होंने कई बार इस योजना को कार्यान्वित करने तथा इस भूमि का उचित प्रयोग करने के बारे में विचार किया—अछूतों के लिए बस्ती बसाने के बारे में। परन्तु इस बार अधिक जोर सार्वजनिक सभाओं, रात्रि बैठकों, और सम्मेलनों द्वारा हिंदुओं में प्रचार करने पर था ताकि उनके मन से अस्पृश्यता का विचार निकाला जा सके। बारहदरी की यह भूमि आखिरकार लोक सेवा संघ ने लालाजी के देहांत के बाद बेच दी और उससे प्राप्त धन संघ के अछूत उद्धार फंड में चला गया। इस भूमि का एक भाग संघ के पास रहा, जिसमें एक साधारण आश्रम स्थापित किया गया जिसे ग्रामीण उद्योग ऐसोसिएशन चलाती थी।

महात्मा गांधी के नेतृत्व में कांग्रेस ने रचनात्मक कार्यक्रम में अस्पृश्यता समाप्त करने का सूत्र भी शामिल किया था। लालाजी ने इसे कार्यान्वित करने के लिए अपना समय तथा शक्ति दी क्योंकि यह सूत्र उन्हें सारे कार्यक्रम में अच्छा लगता था। उनके विचार में न यह धार्मिक था, न धर्मपरिवर्तन से सम्बद्ध। दरअसल उनका दृष्टिकोण महात्मा गांधी द्वारा प्रचारित कार्यक्रम से भिन्न नहीं था। फिर भी कुछ आलोचक जो रचनात्मक कार्यक्रम को स्वीकार करते थे, लालाजी के अछूत उद्धार पर आपत्ति करते थे कि यह साम्प्रदायिक काम है। शायद इसलिए कि यह कांग्रेस के तत्वावधान में नहीं था। यह बात बहुत कम लोगों को मालूम थी कि लालाजी ने कांग्रेस कार्यकारिणी को रचनात्मक कार्यक्रम के इस सूत्र को लागू करने के लिए अर्[illegible] अर्पित की थी। उन्होंने यह पेशकश की थी [illegible] करने के लिए सामान्य कोष पर बोझ न [illegible] तौर पर धन जुटाएंगे। कार्यकारिणी [illegible] किया और न इस संबंध में [illegible] किया देशबंधु दास ने [illegible]

किया था, परन्तु अध्यक्ष (मुहम्मद अली) प्रस्तावित बोर्ड में शामिल किए जाने वाले कुछ नामों को, जो लालाजी ने तजवीज किए थे, स्वीकार न कर सके। जिन नामों पर आपत्ति थी, उनमें मालवीयजी का नाम भी था। देशबंधु ने कहा था कि वह मौलाना के साथ इस विषय पर फिर बातचीत करेंगे। परन्तु लालाजी को बाद में कार्यकारिणी, अध्यक्ष या देशबंधु से इस संबंध में कोई सूचना न मिली। परंतु विश्वस्त सूत्रों से पता चला था कि मौलाना ने कहा था कि कांग्रेस "दूसरे श्रद्धानंद" को अपने तत्वावधान में काम करने की आज्ञा नहीं दे सकती। कुछ भी हो, उन्होंने लालाजी को अस्पृश्यता के बारे में कांग्रेस के कार्यक्रम को सफल बनाने का अवसर न दिया। इसमें आश्चर्य की कोई बात न थी, क्योंकि लालाजी का निर्णय मुहम्मद अली द्वारा अध्यक्ष के रूप में आगा खां के प्रस्ताव के पूरी तरह विरुद्ध था। यह महत्वपूर्ण बात है कि महात्मा गांधी ने काफी समय बाद, जब वह अली बंधुओं के प्रभाव से मुक्त हो गए थे, हरिजन संघ की स्थापना की थी।

आरम्भ में बिरला परिवार द्वारा केवल एक वर्ष के लिए धन देने का वायदा किया गया था, परन्तु हकीकत यह है कि उन्होंने यह सिलसिला लालाजी की मृत्यु तक जारी रखा और उसके बाद भी कुछ कम दर पर यह सहायता मिलती रही। फिर, हरिजन संघ की स्थापना हो गई और उन्होंने इसकी राशि बढ़ा दी। पंजाब के लिए हरिजन संघ लालाजी के कार्य को ही आगे बढ़ाने के बराबर था, क्योंकि धीरे धीरे उन्होंने अपने आजीवन सदस्य अछूत उद्धार समिति से हटा लिए थे, क्योंकि उनकी कहीं और आवश्यकता थी।

31—136 M of I&B/ND/85

57. एक बार फिर यूरोप को

अस्पृश्यता के विरुद्ध अभियान पूरी तरह आरम्भ हो जाने, अपने युवा आजीवन सदस्यों को "अछूतों" की सेवा के लिए फँसा देने तथा अस्पृश्यता के विरुद्ध संघर्ष करने तथा महत्वपूर्ण लोगों के साथ विचार विमर्श कर चुकने के बाद लालाजी कुछ फुरसत महसूस कर रहे थे। पंजाब के चुनाव उन्होंने सोलन में उपचार तथा स्वास्थ्य लाभ करते हुए लड़े थे और पंजाब परिषद में स्वराज पार्टी के सदस्य प्रमुख विपक्ष के तौर पर अपना काम उचित ढंग से करने के लिए पूरी तरह स्थिर हो गए थे। अपने भ्रमण के दौरान उन्होंने लोक सेवा संघ के लिए धन एकत्र किया था और लाहौर लौटकर उन्हें 'वंदे मातरम्' का काम देखने का अवसर भी मिल गया था। कुल मिलाकर वह उस काम से संतुष्ट थे, जो उन्होंने उपचार तथा स्वास्थ्य लाभ के दिनों में किया था।

परन्तु यह महसूस किया गया कि सही अर्थों में वह तभी स्वस्थ हो पाएंगे, यदि वह पूरी तरह और विश्राम करेंगे। लेबर पार्टी के सत्ता में आने के पश्चात कई नेताओं के मन में आया कि विदेशों में सबसे अधिक अनुभव वाले कांग्रेसी नेता होने और इंग्लैंड में अच्छे संबंध होने के कारण (विशेषकर क्रांतिकारियों तथा लेबर नेताओं से) लालाजी को अनौपचारिक प्रतिनिधि के तौर पर कुछ समय के लिये वहां भेजा जा सकता है या यदि वह विदेश में छुट्टी बिताएं तो स्वास्थ्य लाभ के साथ साथ वह राजनीतिक कार्य भी कर पाएंगे। इस संबंध में इंग्लैंड से भी सुझाव मिले थे। विशेषकर बीट्रिस वैब्ब का पत्र भी आया था (सिडनी वैब्ब, मंत्रिमंडल में शामिल हो गए थे और लार्ड पासफील्ड बन गए थे, परन्तु बीट्रिस ने लेडी पासफील्ड कहलवाने से इन्कार कर दिया था)। वह तो यह सोचती थी कि मंत्रिमंडल में किसी को बताया जाए कि भारत के लिए क्या किया जा सकता था, इसलिए यह सुझाव दिया था कि यह बात अच्छी होगी, यदि लालाजी कुछ समय के लिए उनके पास आ जाएं। यद्यपि उन्होंने चेतावनी दे दी थी कि उन्हें किसी बड़ी बात की आशा नहीं रखनी चाहिए। उन्होंने कहा कि लेबर पार्टी ने कार्यभार संभाला है, सत्ता नहीं संभाली। सोलन तथा कराची ने उनके स्वास्थ्य को किसी हद तक ठीक कर दिया था। यूरोप की थोड़ी अवधि की यात्रा संभवत उनसे बहुत से दायित्व संभालने योग्य शक्ति दे दे। आखिरकार सोलन या भारत में

किसी अन्य स्थान पर उन्हें पूर्ण विश्राम नहीं मिल पाया था, जो उनके स्वास्थ्य के लिए अब अति आवश्यक था। यूरोप के विशेषज्ञों से सलाह मशविरा भी शायद लाभकारी रहता। लेबर सरकार शायद कुछ अधिक न कर पाए परन्तु यह भी एक और बहाना था, जिसके कारण 1924 से यूरोप यात्रा हो सकती थी। उन्होंने यह यात्रा करने का निर्णय कर लिया। उन्होंने 9 अप्रैल, 1924 को बम्बई से लायड ट्रीस्टिनो का जहाज पकड़ लिया।

यह यात्रा उन्होंने केवल स्वास्थ्य लाभ के उद्देश्य से की थी। यह यात्रा अच्छी रही, जो विश्राम उन्हें मिला वह उनके लिए लाभकारी रहा। उन्होंने विशेषज्ञों से सलाह भी ली, विशेषकर स्विटजरलैंड के नर्सिंग होम्स की। अपने पुराने मित्रों के साथ फिर मुलाकात उनके लिए प्रसन्नता की बात थी। पुराने साथियों से स्विट्जरलैंड में श्यामजी कृष्ण वर्मा, पैरिस से राणा और मदाम कामा, युवा लोगों में बर्लिन में चट्टोपाध्याय तथा एग्नेस स्मैडले, जिन्हें अपने अमरीका प्रवास में वह पंछी कहा करते थे और इसी आधार पर वह अपनी रचनाओं के नीचे, जो भारतीय पत्रिकाओं में भी प्रकाशित हुआ करती थीं 'एक पंछी' द्वारा लिखा करती थीं (ए बर्ड या एलिस बर्ड)। अपनी पुस्तक में जो उनका आत्मकथा रूपी सर्वोत्तम उपन्यास 'धरती की बेटी' (डाटर आफ अर्थ) था, लालाजी का नया नाम रखा था (रणजीत सिंह)। वह कुछ समय पूर्व ही अंध महासागर पार करके आई थीं और उन दिनों बर्लिन में चट्टोपाध्याय के साथ रह रही थीं। वे दोनों कम्युनिस्ट विश्व क्रांति के लिए कार्य कर रहे थे। इंग्लैंड में लालाजी भारतीय मित्रों तथा वैजवुड दम्पति से भी मिले तथा वैब्ब दम्पति और अंग्रेज मित्रों से भी भेंट की जो अधिकतर लेबर तथा क्रांतिकारी वर्ग से थे। इस यात्रा में उनका कोई निश्चित लक्ष्य नहीं था इसलिए उन्होंने अधिक सार्वजनिक भाषण या लिखने का कार्य नहीं किया।

मई 1924 का पूरा महीना उन्होंने इंग्लैंड में हैम्पस्टैड में रहते हुए बिताया। उन्होंने शीघ्र ही प्रधानमंत्री रम्जे मैकडोनाल्ड के साथ भेंट का अवसर जुटा लिया। उन्होंने लार्ड ओलिवर के साथ सम्पर्क भी किया। उन्होंने लालाजी को 7 मई को सेवाय में अपने साथ दोपहर का भोजन करने का निमन्त्रण दिया। कुछ दिन पश्चात उन्हें लार्ड ओलिवर का पत्र मिला, जिसमें कहा गया था "मुझे अति प्रसन्नता होगी, यदि आपके साथ बातचीत का एक और अवसर मिल जाए।" और साथ ही सेवाय में दोपहर को भोजन का निमन्त्रण था। उन्हें आपस

मे बातचीत करने का कई बार अवसर मिला और उनकी मैत्री लेबर सरकार के सत्ता से हट जाने के पश्चात भी जारी रही। लाड ओलिवर जो विशद् सहानुभूतियो तथा विस्तृत सस्कृति के व्यक्ति थे बहुत ही अच्छे साथी हो सकते थे। सबसे अच्छी बात, जो राजनीतिक क्षेत्र मे इस सम्पर्क से हुई, वह यह थी कि लालाजी ने इडिया आफिस को यह अहसास करवा दिया कि भारतीय जेलों म सुधार की बहुत आवश्यकता थी। इस प्रकार उन्होने लाहौर केंद्रीय जेल म की गई अपनी प्रतिज्ञा पूरी की। शेष मामलो मे लालाजी ने बाद मे अवसर स्वय कहा कि आलिवर 'स्थायी तौर पर अस्थिर" व्यक्ति था।

लालाजी के इग्लैंड निवास के आरम्भ म ही एक दिन (5 मई को) प्रात 'टाइम्स' ने अपने कलकत्ता सवाददाता को तार के हवाले से समाचार दिया कि श्री गाधी का परिपदो मे सहयोग करने का कायक्रम है। वह उसे काग्रेस के आगामी अधिवेशन मे स्वीकार करवाएगे और वह विधान सभाआ तथा परिपदो म बहुमत प्राप्त करने का प्रयत्न भी करगे। समाचार चौका देने वाला था और लालाजी का उसके बारे म तुरत विश्वास नही हो रहा था। महात्मा गाधी जुहू में स्वास्थ्य लाभ कर रहे थे और सवाददाताआ को अपनी याजनाओ के बारे मे अटकले लगाने का अवसर दे रहे थे। लालाजी ने महात्मा गाधी से इस समाचार के बारे म तार दवारा पूछा जिसका उत्तर मिला

"ऐसी बात स्वप्न में भी नही सोची। दिलो मे कोई परिवर्तन की सभावना नहीं, जिसके कारण सहयोग हा सके —गाधी।" यह उत्तर उन्होने तुरत ही 'टाइम्स' रैमजे मैकडोनल्ड तथा लाड ओलिवर को भेज दिया।

इग्लैंड मे स्थिति के बारे म अपने प्रभावा की जानकारी उन्होन पडित मोतीलाल नेहरू तथा मालवीयजी को भेज दी जिनके साथ उनका पत्र व्यवहार नियमित रूप से चल रहा था। ये प्रभाव क्या थे, उनकी जानकारी उस उद्धरण से मिल सकती है जो मालवीयजी दवारा उन्हें कुछ समय बाद भेजे पत्र मे है, जिसका उददेश्य उन्हें भारत की ताजा स्थिति से अवगत रखना था

"जहा तक लेबर पार्टी का प्रश्न है म अब तक की सारी स्थिति को समझ गया हू। वह भारत के लिए कुछ-न कुछ करके प्रसन्न हागे परन्तु उनके पास काफी अधिकार नही है। वे हमारे लिए कोई ऐसी बात करने को तयार नही जिसके लिए लिबरल तथा कजर्वेटिव पार्टियो का समयन उन्हें नही मिल सकता। यह समयन किसी ऐसी

बात के लिए नही मिलेगा, जिसका भारत सरकार समर्थन नही करेगी। भारत सरकार इस देश के लोकमत के प्रति जिदी हो गई है और यह बात इग्लैंड मे लोकमत के अनुकूल है। इसलिए जब तक हम अपने आपको अधिक अच्छी तरह सगठित नही करते और यहा अपना प्रचार जोरदार ढग से नही करते, हमे स्थिति मे महत्वपूर्ण परिवर्तन होने की आशा नही लगती। सुधार समिति (रिफार्म कमेटी), जिसमे सर टी० बी० सप्रू, सर शिवस्वामी अय्यर और श्री जिन्ना शामिल है, निस्सदेह प्रातीय तथा केंद्र सरकारो के बारे म कई सिफारिशें करेगी, जो हमे प्रातीय स्वायत्ता के मार्ग पर आगे ले जाएगी। पर मुझे यकीन नही है कि समिति सर्वसम्मति से ऐसी स्वायत्तता के लिए सिफारिश करेगी। दरअसल मेरा विचार है कि यह ऐसी सिफारिश करेगी ही नही।

"जहा तक केंद्र सरकार का प्रश्न है सभावनाए इतनी आशाजनक नही है। परन्तु मेरे पास इसके सिवा कोई विकल्प भी नही कि केंद्र सरकार मे जिम्मेदारी दिए जाने की खातिर कायरत रहू। मुझे आशा है कि उपरोक्त तीनो व्यक्ति इस प्रकार की जिम्मेदारी दिए जाने का किसी-न-किसी सीमा तक समर्थन अवश्य करेंगे। परन्तु हमारी सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि हम इस विषय पर लोकमत को सगठित करने मे कहा तक सफल होते है और इस आवाज को काफी शक्तिशाली बना पाते हैं। इसके लिए भारतीय लोकमत के सभी वर्गों मे पूर्ण एकता की आवश्यकता है। परन्तु दुर्भाग्य की बात है कि काग्रेस जनो मे भारी फूट पडी हुई है।"

फिर भी कई छोटी बातो के लिए लालाजी से कहा गया था कि लेबर सरकार से सम्पर्क करे। उदाहरण के तौर पर मालवीयजी के पत्रो मे आगे कहा गया था

"मैं आपसे अनुरोध करूगा कि आप स्वदेश लौटने से पहले एक बार फिर इग्लैंड जाए। सभवत हमारी राष्ट्रीय समस्याओ के कई पहलू आपके इग्लैंड पहुचने तक यह बात अनिवार्य कर दें कि आप प्रधानमत्री, सक्रेट्री आफ स्टेट तथा सामान्य तौर पर लेबर पार्टी से बातचीत करे। मेरे मन मे विशेष बात यह भी है कि हमारा रक्षा व्यय कम किया जाए। मैं आपको कुछ लेख भेज रहा हू जो विधान सभा मे मेरे सुयोग्य सहयोगियो में एक मै० राम अयगार ने लिखे हैं, इनसे आपको यह पता चल जाएगा कि वर्तमान सरकार के प्रमुख व्यक्तियो का ध्यान

विशेष तौर पर आकर्षित करने की आवश्यकता क्या है और लेबर पार्टी से यह कहने की जरूरत क्या है कि हमारा व्यय घटाया जाए। यहां 27 हजार ब्रिटिश सैनिक हैं उनके रखने का कोई औचित्य नहीं। यह बात मैंने वित्त बिल पर अपने भाषण में विरोध व्यक्त करते हुए कही थी। भारतीय क्षेत्रीय सेना को इस ढंग से संगठित करने की बात पर भी जोर दिया गया था कि उसे दूसरी सुरक्षा पंक्ति बनाया जाए। इसका परिणाम सैनिक व्यय में कटौती के रूप में होगा। यह शायद हम अधिकार न दें। परन्तु लेबर सरकार सैनिक खर्च की बात समझने की कोशिश क्या नहीं कर सकती और इस खर्च में उचित कमी करने की बात क्या नहीं कर सकती? यदि ऐसा हो जाए तो उन करों का बोझ कम हो जाएगा, जिनके नीचे आम लोग कराह रहे हैं। और इससे प्रांतीय सरकारें इस स्थिति में हो जाएंगी कि वह अपनी देख रेख में लिए गए लोगों में राष्ट्र निर्माण की गतिविधियां आरम्भ कर सकें। कुछ अन्य मामले भी हो सकते हैं, जिनके बारे में आपके लिए अंग्रेज नेताओं के साथ बातचीत करना संभव हो पाए। कुल मिलाकर मेरे विचार में यह कई पहलुओं से लाभकारी होगा कि स्वदेश लौटने से पूर्व आप फिर इंग्लैंड जाएं।"

पत्र में भारत में घटित कुछ घटनाओं की जानकारी भी दी गई थी

"मेरा ख्याल है आपको यहां के समाचार पत्र पर्याप्त संख्या में मिल जाते होंगे और आपको उन घटनाओं की पूरी जानकारी होगी, जो अहमदाबाद में हुई हैं। इस बात की भविष्यवाणी करना कठिन है कि बेलगांव में होने वाले वार्षिक कांग्रेस अधिवेशन में क्या होगा। स्वराज पार्टी के नेताओं की बैठक अगले मास के आरम्भ में कलकत्ता में हो रही है और श्री गांधी अखिल भारतीय यात्रा आरम्भ करने वाले हैं ताकि लोकमत अपने पक्ष में तैयार कर सकें। निस्संदेह यदि वह असहयोग आंदोलन में अधिक जान तथा शक्ति डाल सकें, तो वह सरकार पर स्वराज पार्टी द्वारा परिषदों में किए जा रहे कार्य के मुकाबले अधिक प्रभाव डाल सकेंगे। परन्तु श्री गांधी जो चाहते हैं क्या उसको प्राप्त कर पायेंगे, यह बात अभी संदेहजनक है। फिर भी, जहां तक उनका प्रश्न है, उनके लिए कोई और रास्ता भी तो नहीं। मैंने स्वराज पार्टी को एक वर्ष पूर्व यह बता दिया था कि श्री गांधी यह रास्ता अपनाएंगे जो उन्होंने अब निर्णय किया है। इसके बिना मुझे आशा नहीं कि वह इतने सशक्त हो सकें कि परिषद में प्रवेश कर पाएं।"

मालवीयजी ने उनके विश्राम करने पर अधिक बल दिया और विशेषतौर पर देश म होने वाले विवादो के बारे में खामोश ही रहने को कहा

"कृपया अपने आपको स्विट्जरलैंड मे निवास के समय पूर्ण आराम दीजिए। अछूत उद्धार का काय चल रहा है। राम प्रसाद इसे ठीक तरह से चला रहे हैं। परन्तु अभी बहुत कुछ किया जाना है। मैं इस समस्या को जितनी शीघ्र सभव हो सके, हल करने के लिए पूरी तरह जागरूक हू।"

परन्तु देश की गतिविधियो के बारे मे उन्हे मोतीलाल नेहरू अधिक नियमित ढग से जानकारी देते रहते थे। वह स्वराज पार्टी के अन्य सभी नेताओ के मुकाबले लालाजी के साथ अपनी योजनाओ के बारे मे सलाह मशविरा किया करते थे। नेहरू उन्हें वह सभी ब्यौरा भेजते थे, जो उन्हें भारतीय समाचार-पत्रो म मिलना सभव नही था, महात्मा गाधी तथा उनके बीच बातचीत तथा कार्यकारिणी, अखिल भारतीय काग्रेस समिति की बैठको की जानकारी आदि।

इग्लड की इस यात्रा के दौरान वह पहली बार औपचारिक रूप से किसी समाजवादी पार्टी मे शामिल हुए। इसम सदेह नही कि उनका दृष्टिकोण काफी लम्बी अवधि से समाजवाद से और न्यूयार्क के रैंड स्कल जैसे समाजवादी सबधो से प्रभावित रहा था। भारत मे उनका सामाजिक कार्यक्रम था, जो उन्होने उस समय तैयार किया था, जब वह अभी अमरीका मे ही थे। ये सब स्पष्ट रूप से इगित करते थे कि उनका झुकाव समाजवाद की ओर था परन्तु उनका विचार नही था कि भारत मे समाजवादी आन्दोलन या पार्टी शुरू करने के लिए उचित समय आ गया है। परन्तु 1920 मे लौटने पर उन्होने अपने श्रमिक सगठन के आन्दोलन को अखिल भारतीय रूप दिया और अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन काग्रेस के प्रारम्भिक अधिवेशन की अध्यक्षता की। अब अगला कदम समाजवादी पार्टी मे शामिल होने का था। भारत मे कम्युनिस्ट पार्टी पहले ही थी, परन्तु उसका निर्देशन रूस से होता था। स्वदेशी समाजवादी सगठन तो अभी स्थापित होना था। इग्लड मे निवास के दौरान लालाजी इडिपडट लेबर पार्टी मे शामिल होने के लिए सहमत हो गए, बाद मे उन्होने विधायक दल म समाजवादी या लेबर गुट बनाने के भरसक यत्न किए परन्तु कोई खास सफलता न मिली। जिन कुछ लोगो की रुचि वह पैदा कर पाए उनमे दीवान चमन लाल, तारिणी सिन्हा और एस० एम० जोशी शामिल थे। परन्तु इग्लैंड मे वह निश्चित रूप से इडिपेंडेंट लेबर पार्टी मे शामिल हो गए।

जब वह इस्ताम्बूल मे थे (जिसका नाम उन दिनो कास्टेटिनोपल था) उन्हें जार्ज लेंसबरी से एक पत्र मिला जिसके साथ ए० फेनर ब्राकवे का एक पत्र भेजा गया था, जिसमे कहा गया था

"आपको (लाजपत राय को) केंद्रीय लदन शाखा का सदस्य नामजद करने का अधिकार है, यद्यपि वह शायद राष्ट्रीय शाखा का सदस्य बनना पसद करे, क्योकि वह अक्सर लदन मे बाहर होगे।

'वह राष्ट्रीय शाखा के सदस्य बन सकते है, इसके लिए उन्हें कम से कम पाच पौंड वार्षिक चन्दा देना होगा। यदि आप चाहते है कि वह केंद्रीय लदन शाखा के सदस्य बनें, तो जे० एलन स्किनर, 92 आक्ले स्ट्रीट, चैलसी, एस० डब्ल्यू० 3, इसके सचिव है।"

इग्लैंड मे कुछ खास काम नही था। पुराने मित्रो से उनकी मुलाकात हो चुकी थी, कुछ नए मित्र भी बने थे, सारे लेबर नीतिवानो का अध्ययन किया जा चुका था, उनसे उनकी कठिनाइयो के बारे मे सुन लिया गया था और एक प्रकार की दिमागी गणित प्रक्रिया से इस बात का अनुमान लगा लिया गया था कि उनकी सहानुभूति तथा मित्रता का जो वाह्य रूप है उसकी तह मे असलियत कितनी है। उनका एक महत्वपूर्ण काम इडिपेंडेंट लेबर पार्टी मे शामिल होना तथा आखिर उनके मन मे भारतीय जैसा के प्रति रुचि पैदा करना था। इसलिए वह छ सप्ताह स्विटजरलैंड मे ठहरने तथा कुछ दिनो के लिए यूरोप मे घूमने के लिए रवाना हो गये। उन्होने जर्मनी डेनमार्क, आस्ट्रिया, हगरी और तुर्की मे प्रवेश के लिए वीसा-वृद्धि करवा ली थी। इग्लैंड से रवाना होने से पूर्व भारतीय छात्रो तथा भारतीय डाक्टरो ने उन्हें थैली भेंट की, जो बाद मे गुलाब देवी तपेदिक अस्पताल के कोष मे दे दी गई। सबसे पहले उन्हें अपने स्वास्थ्य के बारे मे सोचना था और सब बातो से अधिक वह स्विटजरलैंड मे समय बिताना चाहते थे।

मोतीलाल नेहरू के अधिकतर पत्र उन्हें स्विटजरलैंड मे निवास के दौरान मिले और महात्मा गाधी का यह पत्र भी वही मिला

प्रिय लालाजी,

मुझे प्रसन्नता है कि आखिरकार आप वहा पहुच गए हैं जहा आपको होना चाहिए था। मुझे आशा है कि जब तक आपका स्वास्थ्य पूरी तरह ठीक नही हो जाता आप इस स्थान से नही हिलेंगे।

मुझे आशा है यहा की घटनाए आपको विचलित नही करेगी । स्वराज पार्टी वाला तथा मेरे बीच एक ही मच पर सहयोग सभव नही, परन्तु अलग अलग पार्टी मे काय करने से यह सभव हो सकता है । काग्रेस को एक समय पर केवल एक ही कायक्रम आरम्भ करना चाहिए । एक ही समय पर आप सरकार तथा लोगो से किस प्रकार आशा रख सकते है ?

4-7 24 भवदीय

एम० के० गाधी

लाला लाजपत राय,

ग्लेरेंस, मौंटरियूस, स्विटजरलड ।

वह कास्टेंटिनोपल जाने को बहुत उत्सुक थे । उन्होंने युवा तुर्क आन्दोलन को आरम्भिक दिनो से बड़े ध्यान से देखा था और इसके नेताओ की प्रशसा की थी । वे अब सत्ता मे थे, उस विशाल साम्राज्य मे नही जिस पर सुल्तान अब्दुल हामिद का शासन था, बल्कि अपनी मातभूमि पर । परन्तु उन्हें यूरोप की शक्तियो द्वारा पैदा की गई कठिनाइयो का सामना करना पड रहा था । इन कठिनाइयो को आशिक तौर पर 1923 की लुसाने सधि से हल कर लिया गया था । इसलिए उन्होंने सोचा कि उन्हें युवा तुर्को को अपना शासन चलाते हुए देखने का अच्छा अवसर मिलेगा, वह शासन जो तुर्की की सेनाओ ने सशस्त्र सत्ता छीन लेने के बाद स्थापित किया था । उनका कास्टेंटिनोपल मे स्वागत किया गया, उन्हें इस बात का गव था कि स्वागत करने वालो मे वहा के महत्वपूण लोग भी शामिल थे । भारतीय मुहाजरिन मे से एक शौकत उस्मानी ने, 'हजरत काल' के अपने सस्मरणो मे लिखा है कि किस प्रकार अनवर पाशा से उनकी भेंट मध्य एशिया मे किसी स्थान पर हुई थी, तो उस प्रसिद्ध सैनिक ने उनसे जो पहला प्रश्न पूछा था वह लाजपत राय तथा उनकी गतिविधियो के बारे मे था और उन्होंने भारतीय नेता के नेतत्व को गहरी श्रद्धाजलि अर्पित की थी ।

लाजपत राय के पुत्र, अमृतराय, जो जमनी मे शिक्षा प्राप्त कर रहे थे अब लालाजी के पास आ गये थे । तुर्की से पिता तथा पुत्र मिस्र चले गये और कुछ दिन वहा ठहरने के पश्चात् वह उसी इटैलियन जहाज से अलेक्जाद्रिया से बम्बई के लिए रवाना हो गए, जिसमे लालाजी बम्बई से विदेश गए थे । वह 20 सितबर, 1924 को बम्बई पहुच गये ।

58. स्वराज पार्टी में

'अब आप तीनों में से लालाजी के लिए कौन स्थान खाली करेगा?" यह आक-स्मिक सा प्रश्न शामलाल नेहरू ने पंजाब के स्वराज पार्टी के तीन विधायकों दुनीचन्द (अम्बाला), रायजादा हंसराज तथा दीवान चमन लाल से पूछा था, जो विधान सभा के पुस्तकालय में उन्हें बातें करते मिल गए थे। उन्हें कुछ देर पहले ही पता चला था कि विधायक की पात्रता के नियमों में संशोधन किया जाने वाला है और यह निर्णय किया गया था कि वर्तमान नियम, जिसके अनुसार छः मास से अधिक कैद भुगतने वाला कैदी विधायक बनने के अयोग्य है, समाप्त हो जाएगा।

"हममें से कोई भी, और प्रसन्नता से," शामलाल के प्रश्न का पंजाब के तीनों विधायकों ने एक ही उत्तर दिया। उन सभी को प्रसन्नता थी कि लालाजी विधायक बनने योग्य होंगे।

यह गैर सरकारी भविष्यवाणी 1925 के आरम्भ में विधानसभा के दिल्ली अधिवेशन में सामने आ गई। तब लालाजी सदन के सदस्य बनने के अयोग्य थे, केवल जेल की सजा के कारण ही नहीं, बल्कि इसलिए भी कि चीफ कोर्ट ने उन्हें वकालत के व्यवसाय की मनाही कर दी थी। 1917 में युद्धकाल में अमरीका में निर्वासन के दौरान प्रशासन ने उनकी कुछ पुस्तकों पर प्रतिबंध लगा दिया था। इसके अतिरिक्त अयोग्यता के बारे में उनके कुछ मित्रों ने भी नहीं सोचा था और आमतौर पर जेल की सजा को ही एकमात्र बाधा माना जाता था। यह प्रश्न स्वाभाविक ही था कि यदि यह बाधा दूर हो जाए तो क्या लालाजी के लिए सदन में स्थान मिल जाएगा।

जिस दिन शामलाल यह समाचार लाए उसी दिन रायजादा हंसराज ने लालाजी को एक पत्र लिखा, जिसमें उन्होंने कहा कि वह अपनी सीट लालाजी के लिए छोड़ने को तैयार हैं। आगामी कई मास में उन्होंने अपनी पेशकश कई बार दोहराई और यह बात लालाजी पर छोड़ दी कि वह जब उचित समझें इस पेशकश से लाभ ले सकते हैं।

उसी अधिवेशन के दौरान नियमों में संशोधन को अधिसूचित कर दिया गया परन्तु यह काफी नहीं था। छः मास की सीमा बढ़ाकर एक वर्ष कर दी गई और

चूंकि लालाजी ने कुल मिलाकर इस अवधि से अधिक जेल काटी थी, यह बात निश्चित दिखाई नही देती थी कि वह चुनाव के योग्य हो सकेंगे । रायजादा ने स्वयं विधानसभा में कुछ प्रमुख वकीलो से इस बारे मे सलाह ली, जिनमें एम० ए० जिन्ना भी थे, परन्तु कोई भी संतोषजनक उत्तर न दे पाया । बाद मे शिमला-अधिवेशन के दौरान गृह सदस्य सर अलेक्जेंडर मुडडीमैन से अनौपचारिक तौर मे पूछा गया और उनकी व्याख्या से लालाजी के लिए विधानसभा का रास्ता साफ हो गया, सर अलेक्जेंडर की व्याख्या के अनुसार यह विभिन्न जेल सजाओ का कुल जोड नही, बल्कि एक ही बार की सजा की अवधि के आधार पर था । लालाजी को किसी भी मामले मे दी गई कैद की सजा एक वर्ष से अधिक नही थी, इसलिए संभव था कि उन्हें सदन की सदस्यता के योग्य समझा जाए ।

इसके थोडे समय बाद लालाजी सोलन मे बीमार हो गए । स्वस्थ होने पर उन्होंने रायजादा हंसराज को बताया कि उन्होंने संशोधित नियम की व्याख्या के बारे मे अच्छी तरह समझ लिया है और अब वह विधानसभा मे जा सकते है । इस पर रायजादा ने अपना त्याग पत्र लिख दिया और इसे लालाजी को देने के लिए स्वयं लाहौर चले आये ।

दूसरी अयोग्यता के बारे मे लालाजी के कुछ मित्रो ने पंजाब के अधिकारियो से पूछताछ की और इस बात का पता लगाया कि उनका लालाजी के लौटने मे रुकावट डालने का कोई इरादा नही था । शायद यह अनुमान लगाया गया था कि किसी भी हालत मे यह अयोग्यता चीफ कोर्ट को अर्जी देकर समाप्त करवाई जा सकती है । क्योंकि इस बात को निश्चित कर लिया गया था कि कोई विरोधी उम्मीदवार इस असुखद तथ्य को ढूढ निकालकर रिटर्निंग अधिकारी के सामने नही लाएगा । लालाजी को यह पक्का यकीन हो गया था कि विधानसभा के लिए उनका रास्ता साफ हो गया था । इस प्रकार रायजादा हंसराज ने त्याग पत्र दे दिया और अपने निर्वाचन क्षेत्र को समाचार-पत्रो द्वारा विदाई देते हुए उन्होंने धन्यवाद सहित यह बात स्मरण कराई कि वे निर्विरोध निर्वाचित हुए थे और विश्वासपूर्वक उन्होंने आशा व्यक्त की कि लालाजी को भी उसी प्रकार बिना मुकाबले के चुन लिया जाएगा । विधानसभा मे अपने सहयोगियो का धन्यवाद देते हुए रायजादा ने आशा व्यक्त की कि लालाजी पंडित मोतीलाल के लिए "बढ़िया तथा सच्चे मित्र" सिद्ध होंगे ।

जब उपचुनाव की तारीखें राजपत्र में प्रकाशित हो गईं, तो लालाजी को तार द्वारा दिल्ली से जालंधर बुलाया गया, ताकि वह कागज दाखिल कर सकें। लालाजी तथा रायजादा ही नामांकन पत्र दाखिल करने वाले थे। लालाजी को 6 दिसंबर 1925 को बम्बई में हिंदू सम्मेलन की अध्यक्षता करनी थी, इसलिए वह नाम वापस लेने के दिन चले गए। उस दिन (लालाजी के जाने के पश्चात्) रायजादा द्वारा नाम वापस लेने पर लालाजी निर्विरोध निर्वाचित हो गए। 'द पीपुल' (13 दिसंबर) में उन्होंने रायजादा हंसराज तथा निर्वाचन क्षेत्र का धन्यवाद दिया। उन्होंने अधिकारियों को भी धन्यवाद दिया कि उन्होंने "मेरे रास्ते में कोई बाधाएं खड़ी नहीं की।"

धन्यवाद के अंतिम शब्द थे

"विधानसभा के अपने कार्यक्रम को तैयार करने में मुझे कुछ समय लगेगा।"

हमने यह सारा ब्यौरा जान बूझकर दिया है, क्योंकि बाद के विवाद में सबसे बड़ा प्रश्न यह था कि क्या लालाजी ने चुनाव के समय दिए गए वचनों के अनुसार स्वराज पार्टी में शामिल होने की प्रतिज्ञा की थी। पार्टी की संहिता का कड़ाई से पालन करते हुए रायजादा हंसराज को अपना त्याग पत्र लालाजी को न देकर पार्टी के नेता को देना चाहिए था। तथ्य तो यह है कि रायजादा ने साल के दौरान लालाजी को त्यागपत्र की जो कई बार पेशकश की, थी उस समय कभी भी उन्होंने कोई शर्त नहीं रखी थी और न ही कभी आश्वासन मांगा था। अपने पत्रों में या त्यागपत्र देने के संबंध में की गई बातचीत के दौरान किसी शर्त के बारे में कोई मामूली सा संकेत भी नहीं दिया गया था। जब अंत में लालाजी ने रायजादा को त्यागपत्र देने के लिए कहा, तो यह पूरे विश्वास से कहा था कि यह स्थान बिना किसी शर्त के खाली किया जा रहा था "लालाजी" के लिए, एक या दूसरी पार्टी के सदस्य या भावी सदस्य के लिए नहीं। रायजादा की ओर से केवल एक सार्वजनिक वक्तव्य था, जिसमें उन्होंने विधान सभा में अपने सहयोगियों तथा निर्वाचन क्षेत्र के मतदाताओं को धन्यवाद दिया था और आशा व्यक्त की थी कि लालाजी पण्डित मोतीलाल नेहरू के लिए "बढ़िया मित्र तथा सच्चे सहयोगी" सिद्ध होंगे। यह आशा तो केवल उन्होंने अपनी ओर से इच्छा के तौर पर व्यक्त की थी और यह कोई आश्वासन नहीं था, जो लालाजी से मांगा

गया हो या लालाजी ने दिया हो। और इस प्रकार उन्होंने स्पष्ट तौर पर नहीं कहा था कि उन्हें आशा है लालाजी स्वराज पार्टी में शामिल होंगे। क्या यह "आशा" किसी प्रकार के "आश्वासन" पर आधारित थी ? इसके उत्तर के लिए हम दो और ब्यौरे देते हैं। एक छोटी सी बातचीत, जो रायजादा के वक्तव्य से पहले हुई थी और एक पत्र जो इसके परिणाम-स्वरूप लिखा गया था। जब रायजादा ने अपने त्यागपत्र पर हस्ताक्षर कर दिए और उसे लालाजी को सौंप दिया तो उन्होंने कुछ कहने की आज्ञा मांगी कि वह पण्डित मोतीलाल नेहरू का बहुत आदर करते हैं और उन्हें दुख होगा यदि उनके (लालाजी के) कारण पण्डितजी को किसी प्रकार का कष्ट हो। लालाजी ने इसके उत्तर में कहा था, 'पण्डितजी मुझे बढ़िया मित्र तथा सच्चा सहयोगी पायेंगे।" यह बातचीत बहुत संक्षिप्त थी और बहुत व्यापक तथा अस्पष्ट रूप में थी। बाद में जब रायजादा हंसराज ने समाचार पत्रों को वक्तव्य जारी किया, तो वह लालाजी के ही शब्द दोहराना चाहते थे, परन्तु उन्होंने स्पष्ट रूप से ऐसा न किया। इसमें गलत अर्थ निकाले जाने या गलतफहमी होने के संदेह को देखते हुए लालाजी ने रायजादा हंसराज को लिखा कि यदि किसी प्रकार यह संकेत मिला कि इसमें कोई शर्त या आभार व्यक्त होता था तो वह इस पेशकश से लाभ उठाने के लिए तैयार नहीं और यद्यपि यह स्थान पहले ही रिक्त हो गया है, तो वह जिम्मेदारी लेने को तैयार हैं कि रायजादा फिर से निर्वाचित हो जाएं और इस चुनाव का सारा खर्च वह देने को तैयार हैं। रायजादा हंसराज द्वारा इसके पश्चात् कोई और कारवाई की गई दिखाई नहीं देती—न समाचार-पत्रों को दिया वक्तव्य वापस लेने की और न लालाजी को स्पष्टीकरण देने की, और न दुबारा निर्वाचित होने के लिए लालाजी की पेशकश से लाभ उठाने की। इसके थोड़े समय बाद उन्हें नामजदगी के काम के लिए जालंधर में मिलना था, दोनों ने कागज भरे, परन्तु किसी ने भी समाचार-पत्रों के लिए वक्तव्य या पत्र की चर्चा न की। लालाजी के चले जाने के पश्चात् हंसराज ने अपना नाम वापस लेने का कागज भरा और इस प्रकार लालाजी निर्विरोध निर्वाचित हो गए।

लालाजी का निर्वाचन दिसंबर 1925 के आरम्भ में हुआ था। वह उस महीने के अन्त में कानपुर के कांग्रेस अधिवेशन में शामिल हुए परन्तु उन्होंने अपने आपको स्वराज पार्टी में शामिल होने के लिए बाध्य नहीं किया था। दरअसल कानपुर

मे वह मोतीलाल नेहरू से अलग रास्ता अपनाने के करीब पहुच गए थे। 17 जनवरी के 'द पीपुल' मे उन्होने कहा

"मैं स्वराज पार्टी का सदस्य नही हू, मुझे उसका सदस्य बनने की आवश्यकता भी नही है, क्योकि काग्रेसजन होने के नाते मैं पूर्णतया स्वराजी हू।"

जब उन्होने शपथ ग्रहण की, उस समय तक वह पार्टी मे शामिल नही हुए थे। दरअसल 25 जनवरी को पार्टी म शामिल होने से पूव, वह विधानसभा की कई बैठको मे भाग ले चुके थे। पार्टी मे विधिवत शामिल होने से पाच दिन पूर्व उन्होंने स्वराज पार्टी मे शामिल होने के बारे मे पण्डित मोतीलाल नेहरू का निमत्रण स्वीकार कर लिया था और ऐसा करते समय उन्होने उन्हें पार्टी के नेता के रूप मे एक पत्र लिखा था

मेरे प्रिय पण्डितजी, 20 जनवरी 1926

आपकी ओर से विधानसभा म स्वराज पार्टी मे शामिल होने के निमत्रण के लिए मैं आपको धन्यवाद देता हू। पिछली बार जब आपसे भेंट हुई थी, तो मने कहा था कि व्यक्तिगत रूप मे मैंने आपका निमत्रण स्वीकार करने का फैसला कर लिया है, परन्तु अपना अन्तिम निणय बताने से पूव मैं लाहौर में अपने मित्रो से सलाह लेना चाहता हू और अतिम निणय अगले सोमवार तक बता दूगा। उसके पश्चात मैंने अपने मित्रो से सलाह ली है, और यह पत्र उसी सलाह मशविरे का परिणाम है। पार्टी मे शामिल होते हुए मैं अपनी स्थिति पूरी तरह स्पष्ट कर देना चाहता हू, ताकि इस सबध मे अभी या भविष्य मे कोई गलतफहमी न रहे। जिस प्रकार मैंने पार्टी के नियम पढे है, मुझे उनमे कोई ऐसी बात दिखाई नही देती, जो मेरी स्थिति के अनुकूल न हो।

(क) मैं परिषद के काय म विश्वास करता हू। मैं परिषद या सभाओ का बहिष्कार करने के विरुद्ध हू। मैं इस बात के पक्ष मे नही हू कि स्वराज पार्टी के सदस्य सरकार से उपहार के तौर पर कोई पद स्वीकार करे।

(ख) मैं व्यापक तौर पर बाधा डालने के पक्ष मे नही हू और न ही इसम मने कभी विश्वास किया है।

(ग) साम्प्रदायिक प्रश्न पर मैं अपनी स्वतत्रता बनाए रखना चाहता हू। मै समझता हू कि साम्प्रदायिकता के प्रश्न का निणय पार्टी के मत से नही किया जाएगा।

(घ) श्रमिकों तथा पूंजीपतियों के बीच विवाद में मैं श्रमिकों का प्रतिनिधि हूं, परन्तु मैं समझता हूं कि स्वराज पार्टी के अधिकतर सदस्य भी इसी प्रकार से सोचते हैं।

इन टिप्पणियों के साथ मुझे पार्टी का सदस्य बनने में प्रसन्नता होगी।

भवदीय

लाजपत राय

इसके अतिरिक्त उन्होंने मोतीलालजी को बता दिया कि पार्टी में शामिल हो जाने से उनके समाचार-पत्र 'द पीपुल' और 'वन्दे मातरम्' पार्टी के नियंत्रण में नहीं होंगे, वे उसी प्रकार ही पार्टी से स्वतंत्र रहेंगे, जिस प्रकार पहले रहे हैं।

इन आश्वासनों तथा औपचारिकताओं के अतिरिक्त जिस समय लालाजी पार्टी में शामिल हुए, उस समय उनकी राजनीतिक विचारधारा क्या थी? जुलाई 1925 में उन्होंने साप्ताहिक 'द पीपुल' आरम्भ किया था, यद्यपि उससे पूर्व भी वह समाचार पत्रों के लिए अक्सर लिखते रहते थे और अपने विचार व्यक्त करते रहते थे और अब वह हर सप्ताह ऐसा करते थे। इसलिए संदेह की कोई गुंजाइश नहीं थी कि इस बात की पहले जानकारी नहीं थी कि वह किस बात के विरुद्ध हैं तथा किस बात का विरोध करते हैं। जब चौरी चौरा की प्रतिक्रिया के पश्चात् असहयोग आन्दोलन वापस लेना आरम्भ किया गया, उन्होंने राजनीति के बारे में पुनर्विचार आरम्भ किया था और जेल से भी लेख भेजे थे (इन लेखों का उनकी ओर से लिखा जाना गुप्त बात नहीं थी)। उन लेखों से उनके विचारों की पूरी जानकारी मिलती थी। स्पष्ट तौर पर यह स्वराज पार्टी वाला रुख था—यह था कि कांग्रेसजन विधान मण्डलों पर कब्जा कर लें। जेल में होते हुए भी उन्होंने इस पार्टी का आधार तैयार करने में सी० आर० दास की सहायता की। जब वह रिहा हुए और अभी अस्वस्थ ही थे, तो भी उन्होंने स्वराज पार्टी के उम्मीदवारों की सफलता के लिए कार्य किए। पंजाब में सारे अभियान का दायित्व उन्हीं पर था। उसके बाद जब वह इंग्लैंड गए, उनका पण्डित मोतीलाल नेहरू के साथ निकट सम्पर्क रहा और उन्होंने स्वराज पार्टी की ओर से लेबर पार्टी के नेताओं के साथ बातचीत की। परन्तु वह पार्टी में शामिल नहीं

हुए। वह उसके अनुशासन के अधीन नहीं थे और अपनी स्वतंत्रता को तथा जब उचित महसूस किया पार्टी की आलोचना करने को महत्वपूर्ण और बहुमूल्य मानते थे। वह एक प्रकार से स्वराज पार्टी में शामिल न होते हुए भी स्वराज पार्टी में थे। वह अनौपचारिक रूप से इस प्रकार स्वराज पार्टी से सम्बद्ध थे कि

(1) उन्हें परिषद के कार्यक्रम में विश्वास था और वह "परिवर्तन न चाहने वालों" की विचारधारा से सहमत नहीं थे, और (2) वह पद स्वीकार करने में विश्वास नहीं रखते थे और इसलिए प्रतिसवेदी विचारधारा से सहमत नहीं थे।

मोटे अनुमान लगाने वाले किसी जल्दबाज के लिए वह आसानी से स्वराजवादी दिखाई दे सकते थे और कुछ नहीं, फिर भी अधिक ईमानदार व्यक्ति के लिए, जो अधिक ब्यौरे में जाने वाला हो, स्वराजवाद से उनके मतभेद बिल्कुल स्पष्ट दिखाई पड़ सकते थे, जिन्हें हर सप्ताह उनके लेखों में विशेषतौर पर अंकित किया जा सकता था। एक विचार के तौर पर आरम्भ होकर और अपरिवर्तनवादियों द्वारा कुछ समय के लिए ऐसा ही समझ लेने के पश्चात स्वराज समय बीतने पर एक विचारधारा बन गया था और इसके अपने सिद्धांत नियमित हो गए जैसे "जो कोई भी बनेगा" उसे "बाधा डालने, लगातार, समान तथा बराबर बाधा डालने की प्रतिज्ञा करनी होगी।" इस सिद्धांत को लालाजी किसी भी स्थिति में स्वीकार नहीं कर पाए थे। "एक वर्ष के अन्दर स्वराज" और एक निश्चित तारीख के अन्दर की बात उन्हें बिल्कुल अव्यावहारिक महसूस होती थी और उनके कान में कपट की आवाज महसूस होती थी। व्यवहार में स्वराजवादी अक्सर इस सिद्धांत की भावना से हट जाते थे। उन्होंने वी० जे० पटेल को अध्यक्ष बना दिया था और विधान मण्डल के अन्दर उनका दैनिक व्यवहार किसी भी ढंग से बाधा डालने के सिद्धांत के अनुसार नहीं होता था। बाधा डालना तो उनके शस्त्रों में से केवल एक हथियार था। परन्तु उन्होंने अपने सहयोग के लिए बहुत कड़ी सीमाएं निश्चित की हुई थीं—वह पद स्वीकार नहीं करेंगे और इस सिद्धांत के व्यापक क्षेत्र में सदन की समितियां भी इस प्रतिबंध के क्षेत्र में आती थीं। परन्तु जब तक लालाजी का आगमन हुआ, इस निषेध की कड़ाई कम होती जा रही थी, क्योंकि स्वराजी नेता स्वयं और पूरी बुद्धिमत्ता से (जैसा लालाजी का विचार था) सेना के भारतीयकरण के संबंध में स्कीन समिति की सदस्यता स्वीकार

कर ली थी। यह स्वराजियों के निश्चित मत में महत्वपूर्ण परिवर्तन था, एक के बाद दूसरे निषेध का घोर उल्लंघन होने की आशंका थी। दरअसल कुछ एक को भय था (कुछ एक को आशा) कि संभवतः यह भेद का आरंभ हो।

कई बार लालाजी महसूस करते थे कि स्वराज पार्टी के नेता अनुशासन के नाम पर बहुत कठोर होते जा रहे थे और बहुत शीघ्र यह भूल रहे थे कि उन्होंने स्वयं अपने "अपधर्म" के लिए बहुत छूट ली थी, और हाल ही में "बीमार अंग को काट फेंकने" की बहुत बात होने लगी थी, जब कि रूढ़िवादी असहयोगी अभी भी अपने आपको यह आश्वासन नहीं दिला पाये थे कि समूचा संसदीय अंग, जो अपने आपको स्वराज पार्टी कहता था, राजनीतिक शरीर का केवल रोगग्रस्त भाग नहीं था। नेताओं के व्यवहार की, जो उन्हें असहनीय लगता था, आलोचना करते हुए, ऐसा जान पड़ता था कि लालाजी कई बार प्रतिसवेदी विचार का पक्ष लेते थे, यद्यपि 1925 के सिद्धांत के साथ उन्हें कोई सहानुभूति नहीं थी अर्थात द्विशासीय संविधान में पद स्वीकार करने की इच्छा।

स्वयं उन्होंने संदेह व्यक्त किया था कि उन्होंने संसद में आने के लिए गलत अवसर चुना था। क्योंकि, जैसा कि उन्होंने कहा था कि "स्थिति अनिश्चित तथा अस्पष्ट" थी। 1925 में स्वराज पार्टी मतभेदों के कारण अनुशासन तथा एकता की दृष्टि से क्षीण होती जा रही थी और अनुशासन पर अधिक जोर देने से स्थिति और बिगड़ रही थी। ताम्बे की घटना के कारण एक संकटपूर्ण स्थिति आ गई। श्रीपद बलवन्त ताम्बे को, जो प्रांतीय विधान परिषद में स्वराज पार्टी के सदस्य तथा अध्यक्ष थे, कार्यकारी पार्षद का पद पेश किया गया था और उन्होंने इसे स्वीकार कर लिया था। उनका यह कार्य तीन प्रकार से आपत्तिजनक था। द्विशासीय प्रणाली के अधीन किसी कांग्रेसजन के लिए पद स्वीकार करना गलत बात थी। यह एक गलत उदाहरण था कि किसी अध्यक्ष का इस प्रकार सरकार द्वारा बरगला लिया जाए। यह बात पूरी तरह स्पष्ट थी कि यह अनुशासन के घोर उल्लंघन का मामला था, क्योंकि ताम्बे ने स्वराज पार्टी की राष्ट्रीय कार्यकारिणी को इस पेशकश तथा अपने इरादे के बारे में कभी जानकारी नहीं दी थी। पण्डित मोतीलाल स्वाभाविक ही इस बात पर बहुत नाराज थे। स्थिति उस समय और भी बिगड़ गई, जब जयकर और केलकर तथा स्वराज पार्टी के कई अन्य महत्वपूर्ण सदस्यों ने, यदि सही अर्थों में क्षमा-याचना नहीं की, तो कम से कम ताम्बे के व्यवहार की इस बड़ी

बात को छोटा बनाने का प्रयत्न अवश्य किया। उनके लिए यह मामला तो प्राय वी० जे० पटेल को अध्यक्ष पद पर नियुक्त करना तथा पण्डित मोतीलाल का 'स्कीन समिति' में नामजद करना के समान ही था। यह सम्भव है कि पण्डित मोतीलाल और वी० जे० पटेल का व्यवहार तकनीकी तौर पर निन्दनीय नहीं था, क्योंकि यह पार्टी का उल्लंघन नहीं कहा जा सकता था, परन्तु मूल प्रश्न यह था (दोनों असहमतों के अनुसार) कि नियम पार्टी के सिद्धांतों तथा नीतियों के अनुकूल विकसित नहीं हो पाए। इनमें तो निरंतर परिवर्तन होता रहा है और पूर्णरूपेण बाधा डालने का सिद्धांत पार्टी द्वारा इसे आम स्वीकार करने से पहले ही बहुत बदल गया है और प्रतिसंवेदना की ओर बढ़ गया है और यह बात समय के बिल्कुल अनुकूल है कि पार्टी के नेता तथा सिद्धांत इस तथ्य को स्वीकार करें।

ताबे का यह मामला सारे अक्तूबर मास में राजनीतिक मंच पर छाया रहा। पहली नवंबर को स्वराज पार्टी की राष्ट्रीय कार्यकारिणी की बैठक नागपुर में हुई। पण्डित मोतीलाल नेहरू ने विचार व्यक्त किया कि ताबे की कार्रवाई का मामला अकेला नहीं, बल्कि अन्य लोगों का समर्थन इसे प्राप्त है और केंद्रीय प्रांतों में—जहां स्वराज पार्टी की चुनाव सफलता अन्य सभी प्रांतों के मुकाबले अधिक थी, पार्टी के नेता ने स्वयं पद प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहन दिया। यह बात स्पष्ट थी कि ताबे की घटना के बारे में स्वराज पार्टी एकमत नहीं थी और काफी संख्या प्रतिसंवेदी अपधर्म की समर्थक थी। बम्बई में जयकर तथा केलकर ने अभियान शुरू किया कि स्थानीय स्वराज पार्टी प्रतिसंवेदी सहयोग को स्वीकार कर ले। कुछ ही मास पूर्व सी० आर० दास की मृत्यु स्वराज पार्टी के नेताओं के लिए एक जोरदार धक्का थी। मोतीलाल नेहरू को इसके बाद इतनी जल्दी तूफान का सामना करना पड़ा। उन्हें सी० आर० दास की अलौकिक अन्तःप्रज्ञा की सलाह और कार्य में उनकी महान् गतिशील शक्ति का अभाव अवश्य महसूस हुआ होगा। अखिल भारतीय कांग्रेस समिति की बैठक नागपुर में हुई, जो एक संधि पर पहुंचकर समाप्त हो गई परन्तु इसके कुछ ही दिनों बाद केलकर और जयकर ने कार्यकारिणी से त्यागपत्र दे दिए, क्योंकि उन्हें शिकायत थी कि पार्टी के नेता ने प्रतिसंवेदी सदस्यों पर लगातार आक्षेप किए हैं। उन्होंने त्यागपत्र इसलिए दिए हैं, ताकि वे अपने विचार व्यक्त कर सकें।

इस प्रकार यह तूफान अभी चल ही रहा था, जब लालाजी जालधर निर्वाचन क्षेत्र से निर्वाचित होकर आ गए।

यद्यपि लालाजी स्वय पद सभालने के प्रयोग के विरुद्ध थे फिर भी उनकी सहानुभूति प्रतिसवेदिया के साथ थी। ये सबध व्यक्तिगत सम्मान पर आधारित थे—यह धारा तिलक के दिनो की थी, केलकर तथा जयकर और प्राय सारा महाराष्ट्र-गुट हिंदू सगठन स्थापित करने की उनकी राय से सहमत था। परतु अधिक बडा प्रश्न तो यह था कि "समान, लगातार और बराबर बाधा" लालाजी के लिए पदो के प्रश्न से भी अधिक थी। इसके अतिरिक्त उस समय जब असहयोग जैसे बडे कायक्रम नही चल रहे थे, जब नेता स्वय अधेरे म हाथ मार रहे थे और सभी नीतिया तथा सिद्धात अस्पष्ट हो गए दिखाई देते थे, उन्होंने महसूस किया कि ऐसे अवसर पर "अनुशासन" के नाम पर असहमति की आवाजा का गला घोटना बुद्धिमत्ता की बात नही थी। इसके विपरीत आवश्यकता तो इस बात की थी कि सभी कार्यों का पूरी तरह मूल्याकन किया जाए, ताकि कोई स्पष्टीकरण सभव हो सके। जयकर ने शिकायत की कि नेता का स्वर रोब जमाने वाला है और कई ऐसे व्यक्ति, जो जयकर के प्रतिसवेदी विचारो से तो सहमत नही थे, फिर भी महसूस करते थे कि नेता "अनुशासन" का इस्तेमाल बहुत करते है और वह नही चाहते कि नेता चीरफाड के लिए सदा तयार रहें, ताकि जो राजनीतिक अग उन्हें "रोगग्रस्त भाग" महसूस हो उसे काटकर अलग कर दें।

इस प्रकार प्रतिसवेदी लालाजी से किसी हद तक सहानुभूति और समथन प्राप्त कर रहे थे, यद्यपि स्वय लालाजी उनके इस नाम से आकर्पित नही थे और न ही उन्हें द्विशासीय सविधान के अधीन पद स्वीकार करने को अकलमदी का काम होने के बारे मे विश्वास था। दरअसल वह अध्यक्ष पद स्वीकार किए जाने के बारे म भी सहमत नही थे, यद्यपि इस सबध मे बाद के अनुभव ने शीघ्र ही शकाए दूर कर दी। इसका श्रेय वी० जे० पटेल की प्रतिभा को जाता है, जिन्होंने इस पद को गरिमा प्रदान की और आशाआ से कही अधिक देश हित के लिए सेवा की।

स्वराज पार्टी का यह आतरिक विवाद उस समय एक सकट का रूप धारण कर रहा था, जब लालाजी ने विधानसभा मे प्रवेश किया। वह दल के पक्षपाती भी

नहीं थे और यहां तक कि वह पार्टी के सदस्य भी नहीं थे। उन्होंने अपने प्रभाव का संतुलन के लिए इस्तेमाल किया। अपना नामांकन पत्र दाखिल करने के पश्चात् लालाजी हिन्दू सम्मेलन की अध्यक्षता करने के लिए बम्बई चले गए थे, जिसके लिए एम०आर० जयकर स्वागत समिति के अध्यक्ष चुने गए थे। पण्डित मोती लाल नेहरू तथा आगामी कांग्रेस अधिवेशन के लिए नवनिर्वाचित अध्यक्ष श्रीमती सरोजिनी नायडू भी बम्बई में थीं और काफी विचार विमर्श के पश्चात्, जिसमें लालाजी ने प्रभावशाली भूमिका निभाई, समझौता हो गया।

परन्तु "युद्धविराम" का अर्थ समझौता नहीं था। इससे केवल युद्धविराम हुआ। क्या समझौते की कोई संभावना थी या कि इसका निर्णय आसन्न में कानपुर में होने वाले कांग्रेस अधिवेशन में ही होना था?

जब कानपुर में कांग्रेस अधिवेशन हुआ, तब भी समझौता उतना ही दूर नजर आता था, जितना पहले था। इस अधिवेशन में सरोजिनी नायडू ने महात्मा गांधी से कार्यभार संभाला। अपने कार्यकाल के अंत में महात्माजी राजनीतिक अखाड़े से लेकर वर्ष भर के लिए अपने आश्रम में चले गए, ताकि वह अपने मनपसंद कार्यक्रम अवकाश का निर्देशन कर सकें। कांग्रेस संगठन अब उन्होंने स्वराजवादियों को सौंप दिया—सुपुर्दगी का जो काम उन्होंने कुछ माह पहले शुरू किया था, पूरा कर लिया। सुपुर्दगी का प्रारम्भ स्वराज पार्टी के अपने कार्यक्रम के संसदीय कार्यक्रम को सहन करने से हुआ था। इस प्रकार सहन करने का भी स्वराजियों को मूल्य चुकाना पड़ा था, जो खादी कार्यक्रम को विशेष समर्थन देने के रूप में था। बेलगाम में, जब गांधीजी ने अध्यक्षता की, उन्होंने उनके साथ समझौता कर लिया और यह स्वीकार कर लिया कि कांग्रेस की सदस्यता के लिए "खादी मताधिकार" होगा। जब कुछ मास पश्चात् पटना में अखिल भारतीय कांग्रेस समिति की बैठक हुई, यह स्पष्ट था कि स्वराजियों ने इस मताधिकार को अव्यावहारिक पाया, यदि इसे स्पष्टता से कहा जाए तो उसे कण्टक जैसा पाया और परिवर्तन न करने के कुछ समर्थकों ने यह बात साफ साफ कह दी कि स्वराजी इस मताधिकार को स्वीकार करने में कभी भी निष्ठावान नहीं थे। गांधीजी स्वयं और अधिक झुकने की मनःस्थिति में थे, उन्होंने यह प्रश्न भी हटा दिया कि क्या अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी को पूर्ण अधिवेशन से पारित प्रस्ताव में रद्दोबदल करने की बात उसके अधिकार क्षेत्र में आती है। साथ ही उन्होंने अपनी शर्त कताई की भी छोड़ दी। वह इसे शान्ति की पेशकश तथा विशाल हृदयता की सद्भावना के तौर पर करना चाहते थे।

कानपुर म उन्होंने संगठन का काम स्वराज पार्टी को सौंपकर यह सुपुर्दगी पूर्ण कर दी। अब तक स्वराज पार्टी चुनाव का अपने तौर पर प्रबंध करती रही थी कांग्रेस से कम से कम सहायता लेने के साथ, अब चुनाव पूरी तरह कांग्रेस के तत्त्वावधान म किए जाने थे। संसदीय कार्यक्रम अब तक केवल स्वराज पार्टी का ही मामला था। अब यह मामला कांग्रेस का मामला बन गया था। इस प्रकार स्वराजियों को कांग्रेस का सम्मान, संगठन तथा धन अपने अधिकार म मिल गए थे। कांग्रेस ने यह बात स्वीकार कर ली थी कि अब वे जो भी करेंगे वह उसके लिए जिम्मेदार होगी, इसका अर्थ यह भी था कि अपने कार्यों के लिए स्वराजवादी समूची कांग्रेस पार्टी के आगे उत्तरदायी थे। स्वराजवादियों का ऊंट अब अरब के सारे तंबू पर अधिकार कर चुका था। सुपुर्दगी मुकम्मल हो चुकी थी, गांधीजी सब कुछ छोड़कर सारा समय चर्खे तथा कताई को बढ़ावा देने के लिए साबरमती चले गए थे।

परन्तु कांग्रेस के कानपुर-अधिवेशन के प्रमुख प्रस्ताव न केवल स्वराजवादियों का कांग्रेस की सत्ता म ही स्थापित न किया, बल्कि उनके लिए कार्यक्रम भी निर्धारित कर दिया। और विवाद न अपना सिर फिर उठाया, क्या यह कार्यक्रम प्रतिसवेदी होगा या बाधा डालने वाला?

कोई बीच का रास्ता ढूंढने के सभी प्रयत्न असफल रहे। पण्डित मोतीलाल प्रतिसवेदी होने का लेबल सहन करने का तैयार नही थे, न ही कोई ऐसा फार्मूला सहन करने का तैयार थे—प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप म—कि पद स्वीकार किए जाए। इन सीमाओं म रहते हुए केलकर तथा जयकर को संतुष्ट करना संभव नहीं था।

लालाजी 1907 म सूरत और 1920 म नागपुर में हुए कांग्रेस अधिवेशन के लिए प्रश्नचिह्न थे। वह स्वराज पार्टी म भी शामिल नही हुए थे, निर्विरोध निर्वाचित होने के कारण उन्हें पार्टी की ओर से नामजद किए जाने या पार्टी अथवा इसके कार्यक्रम के नाम पर अपील करने की आवश्यकता भी नही हुई थी। और निर्वाचित होने के पश्चात समाचार पत्रों में अपने लेखों मे उन्होंने स्वराज पार्टी के कई कार्यों तथा कई सिद्धांतों की आलोचना भी की थी। प्रतिसवेदियों को कुछ सीमा तक उनका समर्थन प्राप्त था, परन्तु वह उनके गुट से सम्बद्ध नही थे, न ही उन्होंने लेबल तथा पद स्वीकार करने का उनका मत स्वीकार किया था। अपने

ही प्रांत में स्वराज पार्टी द्वारा कोई पद ग्रहण करने का प्रश्न ही नहीं था, न ही पंजाब में उनके सहायकों एवं मित्रों में कोई प्रतिमवेदी था। दरअसल, उनका पूरा दबाव तो पण्डित मोतीलाल से समझौता करने के लिए था। दूसरी ओर यदि वह नेहरू से समझौता करते तो प्रतिसंवेदी महसूस करते कि उनके साथ वफादारी नहीं हुई।

जब स्वराजवादी पहली बार इंडिपेंडेंट पार्टी के साथ विधान सभा में गए थे, तो उन्होंने सरकार के साथ समझौते के लिए कुछ शर्तें रखी थीं। यह 18 फरवरी, 1924 को हुआ था और कांग्रेस में सभी "भोली भाली आत्माएं" विश्वास करती थीं कि स्वराजवादी केवल यही मांग करेंगे—जिसे कुछ लोग "अल्टीमेटम" कहना पसंद करते थे—और हमेशा के लिए विधान सभा से निपट जाएंगे। मांग रख दी गई और करीब दो वर्ष तक इस बात का कोई संकेत नहीं था कि यह स्वीकार की जा रही थी, इस बीच जो लोग बड़ी चिंता से कांग्रेस सदस्यों के विधानसभा से निकलने की प्रतीक्षा कर रहे थे, वे आश्चर्य तथा शंका से देख रहे थे। मूल रूप से बाधा डालने का कार्यक्रम धीरे धीरे नरम पड़ता गया और अंत में स्थिति यहां तक पहुंच गई कि स्कीन समिति में नामजद स्थान भी ले लिया गया। अब जब कि अगले चुनाव निकट आ रहे थे, तो स्वराजवादी फिर से सोचने लगे थे कि काफी देर से सटके "राष्ट्रीय मांग" के प्रश्न को लेकर अलग हो जाएं। कानपुर-अधिवेशन में प्रस्ताव के प्रारूप में कहा गया था कि वे विधान सभा से बाहर निकल जाएं और गांवों में जाकर अपना समय पुराने रचनात्मक कार्यक्रम को बढ़ावा देने में लगाएं। इस प्रकार की सद्भावना से उनका विश्वास था मतदाताओं की राय बहुत प्रभावित होगी और इस प्रकार वे पार्टी के लिए 1923 के चुनाव के मुकाबले अधिक शानदार विजय प्राप्त कर पाएंगे।

ऐसा कार्यक्रम लालाजी को अधिक पसंद नहीं था। ऐसा दिखाई पड़ता था कि वह मालवीयजी, जयकर तथा केलकर का साथ देंगे और फिर स्वराज पार्टी से संबंध विच्छेद कर लेंगे—जिसका अब अर्थ था कांग्रेस पार्टी के बहुमत से। परन्तु उन पर दबाव डाला गया, विशेषकर पंजाब के मित्रों द्वारा कि वह ऐसी स्थिति को टालें, पण्डित मोतीलालजी से समझौता कर लें। नागपुर में भी पंजाब के प्रतिनिधिमंडल ने जोर दिया था कि वह गांधीजी से समझौता कर लें। परन्तु उसमें अन्तर इतना था—वह गांधीजी के साथ समझौता करने के लिए उत्सुक थे, क्योंकि उन्होंने असहयोग आंदोलन स्वीकार कर लिया था और वह बड़ा असहयोग

आदोलन आरम्भ करने के पक्ष मे थे, उन्हें केवल कुछ ब्यौरा स्वीकाय नही था। उनके अपने झुकाव तथा वचनबद्धता दिसम्बर 1925 म उन्हें नेहरू-कायक्रम से अधिक दूर ले गई, जितने दूर वह गाधी कायक्रम स चार वष पूव नही थे। बात चीत बार-बार टूट जाने की नौबत आ जाती थी, परन्तु दाना के समान मित्र इधर-उधर भाग दौड करके बार बार पण्डितजी और लालाजी का समझौते पर ले आते थे। लालाजी के आग्रह पर प्रस्ताव के मसौदे की कई व्यवस्थाओ म परिवतन कर दिया गया, विशेषकर यह व्यवस्था की गई थी कि विधानसभा तथा राज्य परिषद मे स्वराज पार्टी के सदस्य वित्त बिल को अस्वीकार करने के लिए मत देंगे और तुरत ही अपने स्थान त्याग कर चले जाएगे। तब तक वे उसी प्रकार काय करत रहेंगे, जिस प्रकार वे पार्टी के नियमो के अधीन अब तक करते रहे ह इसम यह व्यवस्था भी की गई थी —

"विशेष समिति का यह अधिकार होगा कि वह स्वराजी सदस्या को विधान मण्डला के अधिवेशन में भाग लेने की अनुमति दे द, जब उसके विचार मे यह उपस्थिति किन्ही विशेष कारणा तथा असाधारण उद्देश्या के लिए आवश्यक हो।'

दूसरे शब्दा म बजट अधिवेशन (नई दिल्ली म) का केवल अतिम भाग ही निषेधाज्ञा के खाता मे था, जब कि शिमला-अधिवेशन मे भाग लेने की मनाही थी और यदि ऐसी कोई स्थिति हो कि विशेष समिति असाधारण महत्व महसूस कर, ता वह स्वराज पार्टी के विधायका को अधिवेशन मे उपस्थित होने के लिए कह सकती थी। यह समझौता प्रस्ताव पण्डित मोतीलाल न रखा था और लालाजी ने इसका समथन किया था। मालवीयजी ने इसम एक सक्षिप्त सशोधन पश किया।

"विधान मण्डला म काय इस ढग मे किया जाए, ताकि इसस यथाशीघ्र उत्तरदायी सरकार स्थापित करन म अधिक से अधिक सहायता मिले, सहयोग केवल उस समय दिया जाए, जब इससे राष्ट्रीय हित को बढावा मिल सकना हो तो स्वराज पार्टी के सदस्या को इसमे भाग लेने क लिए कह दिया जाएगा और बाधा डालन के लिए भी तभी कहा जाएगा जब इसी हित को बढावा मिलता हो।"

प्रस्ताव का अनुमादन करत हुए जयकर न विधान सभा से अपन तथा केलकर के त्यागपत्र का तथा प्रातीय विधान परिषद से मुजे के त्यागपत्र की घोपणा की।

इस प्रकार विच्छेद हो गया—मोतीलाल नेहरू के साथ नहीं, बल्कि केलकर और जयकर के साथ—और लालाजी के लिए यह कम पीड़ा की बात न थी। यदि पंजाब से उनके सहायक इतना अधिक जोर न देते, तो संभव था कि उनका व्यवहार कुछ और ही होता, परन्तु लज्जावती, सतनाम और अचिंत राम ने उनसे इतना जोरदार अनुरोध किया कि लालाजी के लिए उनके जोरदार निवेदनों की अवहेलना करना संभव न हो पाया। शायद उनके सहायकों को, यदि इस बात का ज्ञान होता कि जयकर तथा पुणे गुट के साथ उनके नेता के बंधन कैसे हैं और यदि उन्होंने यह अहसास किया होता कि उनसे अलग होने पर वह कितना कष्ट महसूस करेंगे, तो शायद वे इतना अधिक जोर न देते। कानपुर प्रस्ताव में, जिस रूप में वह अंतिम तौर पर पारित हुआ, बहुत लचक थी और उनके अपने अनुमान के अनुसार उसमें राजनीतिक स्थिति से निपटने के लिए अधिक कुछ नहीं था, फिर भी उन्होंने जयकर तथा पुणे गुट से विच्छेद को पसंद न किया होता। प्रस्ताव के गुणों के बारे में उन्होंने अपने समाचारपत्र में लिखा कि कानपुर अधिवेशन ने "कांग्रेस को फिर अपने आप में ला दिया था।" क्योंकि अब सारा राजनीतिक काम "कांग्रेस के नाम पर और कांग्रेस के निर्देशन में होगा। स्वराज पार्टी विधान मण्डलों में छाई हुई थी, उनके बाहर उसका कोई संगठन नहीं था।" ऐसी आत्मनिर्भर पार्टी के बारे में, जो अपने मतदाताओं के अलावा किसी और के प्रति उत्तरदायी नहीं थी, उनकी टिप्पणी इस प्रकार थी "बहुत से स्वराजवादी कांग्रेस समितियों की कोई परवाह नहीं करते थे। वे कोई चंदा नहीं देते थे, किसी बैठक में भाग नहीं लेते थे और कांग्रेस के हित को बढ़ावा देने के लिए कोई काम नहीं करते थे। वे जिस अधिकार से दिशा लेते थे या जिसकी परवाह करते थे, वह उनका अपना नेता ही था। दरअसल परिषद की स्वराज पार्टी में ऐसे सदस्य थे, जो कांग्रेसजन नहीं थे। कांग्रेस प्रस्ताव ने इस सब में परिवर्तन कर दिया था।"

वर्तमान विवाद के बारे में दो ठोस प्रश्न सामने आते थे—बाधा तथा पद। उनमें से पहले के बारे में उन्होंने अपना पक्ष दोहराया "मैं परिषदों का बहिष्कार करने के विरुद्ध हूं और इसी प्रकार परिषदों में व्यापक रूप से बाधा डालने की नीति के भी विरुद्ध हूं। मेरा विश्वास है कि परिषदों से उसी प्रकार काम लिया जाए जिसके वह योग्य हैं और जिस प्रकार पिछले दो वर्षों से स्वराज पार्टी ने उन्हें इस्तेमाल किया था।"

पद स्वीकार करने के बारे म उनका विचार था "मेरा अब भी विचार ह कि राष्ट्रवाद का यह तकाजा है कि भारतीय राजनेताओ की कम से कम एक पार्टी ऐसी होनी चाहिए, जो सरकारी उपहार के तौर पर पद स्वीकार न करे। ऐसा करके भारतीय राष्ट्रवादी केवल आयरलैंड के राष्ट्रवादियो के ऐतिहासिक उदा हरण का अनुसरण ही करेगे।"

कानपुर प्रस्ताव किसी भी तरह ऐसी स्वीकृति के विरुद्ध नही था। परन्तु यह पूछा जा सकता था कि, 'प्रस्ताव के उस भाग का क्या अथ है, जिसके अनुसार स्वराजवादी अगले अधिवेशन के पश्चात परिषदा से बाहर आ जाएगे और दश से अपील करेगे ?"

इस व्यवस्था की लालाजी द्वारा व्याख्या (औचित्य) यह दी गई "जसा मै समझता हू इसका उद्देश्य असाधारण प्रदशन करता ह। हमार जैसे असहाय लोग जिनके पास अपनी माग के समथन म भौतिक स्वीकृति नही, अपन कायक्रमो मे ऐस प्रदशनो का समाप्त नही कर सकत। भारतीय राष्ट्रवाद के इतिहास म ऐसा अनेक बार किया गया है तब भी जब महात्मा गाधी के आदोलन का जन्म भी नही हुआ था। सर फिरोजशाह मेहता न एक बार सरकार के व्यवहार के विरुद्ध रोष व्यक्त करने के लिए अपने साथियो समेत सदन त्याग किया था। श्री शास्त्री उस समय परिषद से निकल आए थे, जब वाइसराय न पजाब म मार्शल ला प्रबध के बारे में उनका प्रस्ताव रद्द कर दिया था। स्वराजवादी दश के सामने नए चुनाव के लिए जा रहे हैं। वतमान विधानसभाओ म उनका मुख्य काय सविधान मे परिवतन की माग मनवाने के लिए अय पार्टियो मे सहयाग करना ह। उनके इस रास्ते के लिए अपनाए गए इस सिद्धात पर मुझे कोई आपत्ति नही। वह भारतीय जनता को और विश्व को आम तौर पर यह दिखाना चाहत है कि उन्होने ब्रिटिश सरकार के साथ सहयोग करने के लिए हर सभव उपाय किया और सरकार न अक्सर उनके प्रयत्नो को घृणा से ठुकरा दिया है।"

काग्रेस की उपलब्धियो की चर्चा करत हुए लालाजी न लिखा "म सोचता हू कि काग्रेस अधिवेशन की एक स्थायी उपलब्धि यह ह कि काग्रेस अपन आप म आ गई है। जहा तक राजनीतिक काय का प्रश्न है, पिछले तीन वष म यह न के बराबर रहा है। सारा राजनीतिक काय स्वराज पार्टी न किया है। इसके परिणाम स्वरूप वह छा गई और उसन काग्रेस को पीछे हटा दिया। स्वराज पार्टी अब

प्राय समाप्त ही हो जाएगा। कांग्रेस कार्यकारिणी अब उन लोगों का नियंत्रण तथा मार्गदर्शन करेगी जो उसके नाम पर परिषदों तथा सभाओं के लिए चुनाव लड़ेंगे। नीति तथा व्यवहार दोनों की दृष्टि से ही यह अवश्य लाभकारी बात है, हालांकि यह पूर्णत जोखिम से खाली नहीं है।"

यह आपको सुनने में चाहे कितना ही विश्वसनीय लगे, असल में दोनों विरोधी विचारधाराओं के नेता इससे संतुष्ट नहीं थे और दोनों ओर सद्भावना तथा विश्वास का अभाव था, जो किसी भी समझौते को सफल बनाने के लिए आवश्यक होता है। स्वयं लालाजी पर आवश्यकता से अधिक दबाव डाला गया था—विशेष कर लज्जावती तथा सतनाम की ओर से—कि वह पण्डित मोतीलाल से अलग न हों और समझौते का कोई मार्ग तैयार या स्वीकार करें। इसका परिणाम यह हुआ कि इस प्रकार के दबाव से कोई चिरस्थायी समझौता न हो पाया।

इस अधिवेशन में एक छोटी-सी घटना नई थी—यह थी राष्ट्रीय तिरंगे का औपचारिक रूप से फहराना। हार्डिकर का हिन्दुस्तानी सेवा दल अब नियमित रूप से कार्य कर रहा था। लालाजी को ध्वज फहराने तथा सलामी लेने के लिए चुना गया था।

परन्तु जिस प्रकार आशा की जा सकती थी, महाराष्ट्र का गुट नाराज था। शीघ्र ही लालाजी को उनकी कटु टिप्पणी के बारे में शिकायत करनी पड़ी। उन्होंने द पीपुल में लिखा

'मेरे 'मराठा' के मित्र मुझसे बहुत नाराज दिखाई देते हैं। कांग्रेस के कानपुर-अधिवेशन के बाद से 'मराठा' में मुझ पर किसी-न-किसी ढंग से आक्षेप किए गए हैं। हर मामले में उन्होंने मुझ पर आक्षेप किया है। मैंने कभी उत्तर नहीं दिया और न ही अब दूंगा। हमारी नीति में मतभेद के बावजूद श्री जयकर तथा श्री केलकर के प्रति मेरे सम्मान तथा स्नेह में कोई अन्तर नहीं आया। पुणे के ये महाराष्ट्रीयन और मैं जीवनभर के साथी रहे हैं और यदि मुझे उनके बारे में कोई कटु बात कहने पर मजबूर होना पड़े तो मुझे अत्यंत दुख होगा। मुझे उस परीक्षा से जितना मुझसे हो सके, अवश्य बचना है। मुझे यकीन है कि हम उसी मंच से और उसी उत्साह तथा सद्भावना से कार्य करेंगे जिस प्रकार से हम अब तक करते रहे हैं। वर्तमान मतभेद बिल्कुल अस्थायी है। मैं नहीं समझता कि कटाक्ष तथा व्यंग्य का मित्रों के विरुद्ध प्रयोग किया जाना चाहिए और 'मराठा' में मुझ पर किए गए अन्तिम आक्षेप का यही उत्तर है।'

उन्हें बर्मा में एक हिंदू सम्मेलन की अध्यक्षता के लिए बुलाया जा रहा था। उन्होंने निमंत्रण स्वीकार कर लिया, परन्तु सम्मेलन के आयोजकों से अनुरोध किया कि नई दिल्ली अधिवेशन समाप्त होने तक वह सम्मेलन स्थगित कर दिया जाए। परंतु जैसा कि उन्होंने बाद में 'द पीपुल' में लिखा, "बर्मा देखने की इच्छा और उसे पूर्ण करने की आशा बनी हुई थी"। ऐसा होना स्वाभाविक ही था क्योंकि 1907 के बाद वह कभी बर्मा नहीं गए थे और उस समय भी उन्हें बंदी रखे जाने के कारण उनके मन में बर्मा के प्रति उत्सुकता पैदा हुई थी, जिसे संतुष्ट करने का अवसर नहीं मिला था। संभवतः वह कानपुर की घटनाओं से उत्पन्न होने वाले विषादमय प्रभाव को दूर करना चाहते थे और पुनः विचार करके उन्होंने बर्मा जाने का बुलावा स्वीकार कर लिया। कानपुर में अचिंतराम के साथ वह नववर्ष दिवस पर कलकत्ता से स्टीमर पकड़ने के लिए रवाना हो गए।

वह अपने पुराने बर्मी मित्रों से मिले, नए लोगों से सम्पर्क किया और वहां भारतीय मूल के लोगों से बातचीत की तथा उनकी समस्याओं के समाधान के लिए समुचित सलाह दी। इन सबके अलावा वह माण्डले दुर्ग में फोर्ट डफरिन और पी०डब्ल्यू०डी० डाक बंगला देखने भी गए, जिसमें उन्हें बंदी रखा गया था।

उन्होंने पगोडा और चित्र भी देखे, पुरातन तथा नए मंदिर देखे, जहां वे अवशेष रखे जाते थे, जो ब्रिटिश अधिकारियों ने पेशावर में बर्मी पुजारियों को भेंट किए थे।

'द पीपुल' में प्रकाशित उनकी अल्प टिप्पणियां, जो बर्मी व्यवहार तथा नैतिकता के बारे में थी, बहुत रोचक थीं। उनमें सुंदर रंगीन परिधानों का, जो पुरुष भी पहनते थे और महिलाओं के अति लम्बे केशों की चर्चा की थी—जो टखनों तक होते थे—और उनसे भी लम्बे होते थे। उन्होंने सुना कि जब पूज्य महान पूर्व देशभक्त पुजारी उत्तमा को जेल से रिहा किया गया तो "उन्हें बर्मी युवतियों की दो पंक्तियों के बीच से गुजारा गया, जिन्होंने उनके मार्ग में अपने केश धरती पर बिछाए हुए थे।" जन समूह द्वारा अपने नेता के लिए सम्मानजनक व्यवहार का ऐसा उदाहरण शायद ही कोई हो, जो उन्होंने उस देश में देखा।

भारतीय समुदाय, गैर-बर्मी मूल के लोगों को [illegible] के बारे में प्रस्तावित कानून के बारे में चिंतित था। यथार्थ की गहरी दृष्टि और [illegible] स्पष्टवादिता से उन्होंने इस स्थिति का सामना किया, "भारतीय मूल के लोगों ने अपना समय जी लिया है, अब वे यहां के लिए आवश्यक नहीं हैं। देश का [illegible]

उनकी सहायता तथा सहयोग के बिना भी चलाया जा सकता है। दरअसल एंग्लो इंडियन शासक, व्यापारी तथा कारीगर भारतीयों से बर्मा से बिल्कुल चले जाने से बहुत प्रसन्न होंगे।" उन्होंने स्पष्ट तौर पर कहा, "बर्मा की समस्या का समाधान बर्मा तथा बर्मा के लोगों के हित का ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए, किसी और के हित में नहीं।" इसलिए उन्होंने वहां रहने वाले भारतीय समुदाय को समझाया कि वे वहां 'केवल बर्मियों के समान' रहें, अपने आपको पूरी तरह बर्मियों के बराबर समझें, ताकि उन्हें विशेष प्रतिनिधित्व की आवश्यकता न पड़े और बर्मा के लोग उन्हें विदेशी न समझें। यह आदर्श मशविरा बिल्कुल न माना गया और इसका परिणाम भारतीय समुदाय के लिए कष्ट तथा कठिनाइयों के रूप में आया, जब उन्हें 1942 में मजबूर होकर भारत भागना पड़ा, जिस समय जापानी आक्रमणकारी बड़ी तेजी से बढ़े चले आ रहे थे।

बर्मा से वह विधानसभा के अधिवेशन में भाग लेने के लिए नई दिल्ली लौट आए जो जनवरी 1926 के मध्य में आरम्भ हुआ था। कुछ ही दिन पश्चात् जैसा कि हमने देखा है वह स्वराज पार्टी में शामिल हो गए। इस अधिवेशन में उन्होंने अनेक महत्वपूर्ण वाद विवादों में भाग लेकर प्रमुख योगदान दिया—जब भारतीय श्रमिक संगठन बिल पेश हुआ, राजगार के बारे में और (श्री शफी का) राजनीतिक कैदियों तथा निर्वासितों के बारे में प्रस्ताव पेश हुआ। उपर्युक्त ने उनके अपने मन में ये तार झनझना दिए और समर्पण करवा दिया कि किस प्रकार उन्होंने कष्ट झेले थे और दावा किया कि सदन में व्यक्तिगत अनुभव से इस संबंध में बोलने के लिए और अधिक योग्य व्यक्ति कोई नहीं।

'व्यावहारिक' तौर पर तीनों उपधाराएं मेरे जीवन में कभी न कभी मुझ पर लागू हुई हैं। 1907 में मुझे 1818 के अधिनियम 3 के अधीन निर्वासित किया गया। 1921 में मुझे एक अपराध के लिए सजा दी गई जिसके बारे में भारत सरकार ने बाद में घोषणा की कि वह अपराध ही नहीं था। उसी वर्ष मुझे एक अन्य अपराध के लिए सजा दी गई, जो सरकारी वकीलों के कथनानुसार सिद्ध ही नहीं हुआ था। जब मैंने अमरीका से लौटना चाहा, तो मेरे साथ निर्वासित के तौर पर व्यवहार किया गया और पासपोर्ट देने से इंकार कर दिया गया।[1]

अभी यह अधिवेशन चल ही रहा था कि दिल्ली में हिन्दू महासभा का अधिवेशन राजा नरेंद्रनाथ की अध्यक्षता में हुआ। लालाजी ने इस अधिवेशन की कार्यवाही

म प्रमुख हिस्सा लिया। दरअसल महासभा की नीति की रूपरेखा उस समय मुख्य तौर पर मालवीयजी तथा लालाजी तैयार कर रहे थे। पहले स्थान पर राजाजी का अध्यक्ष पद के लिए चुनाव उन दोनों का सयुक्त निणय था। सगठन के बहुमत का विचार था कि आगामी चुनावो म, जो कुछ ही मास म होने वाले थे, हिंदू महासभा अपने टिकट पर उम्मीदवार खडे करे। लालाजी (और मालवीयजी) ने इस नीति का विरोध किया और उनके नतृत्व मे प्रतिनिधियो ने इस प्रस्ताव के विरुद्ध निणय दिया, सिवाय इस सीमा तक कि जहा स्थानीय परिस्थितियो के कारण अत्यावश्यक हो, महासभा अपने उम्मीदवार खडे करे।

माच मे जब अधिवेशन अभी चल ही रहा था, अखिल भारतीय काग्रेस समिति की बठक दिल्ली मे हुई और उसने सदन-त्याग के बारे मे कानपुर-प्रस्ताव की व्यवस्था म काफी परिवर्तन कर दिया। अब यह रास्ता अपनाया गया कि सदन त्याग वित्त विधेयक रद्द होने तक स्थगित न किया जाए। लालाजी ने आपत्ति की कि अखिल भारतीय काग्रेस समिति को पूव अधिवेशन द्वारा पास किए गए प्रस्ताव म सशोधन करने का कोई अधिकार नही। यह आपत्ति स्वीकार कर ली गई, परन्तु नया प्रस्ताव रखने वाला ने अपना आधार तब्दील कर लिया और कहा कि कानपुर प्रस्ताव म तो अन्तिम तिथि कहा गया है और किसी पहली तारीख पर सदन त्याग इसके मूल के विपरीत नही। लालाजी ने इस व्याख्या पर आपत्ति की, परन्तु उनके विरुद्ध मत अधिक थे। कानपुर मे उन्होने इस बात पर जोर दिया था कि सदन त्याग वित्त विधेयक रद्द होने के बाद ही किया जाए। वह व्यवस्था अब समाप्त कर दी गई थी, इसलिए उन्हे भी अब छूट थी और वह कानपुर मे दिए गए वचनो से मुक्त थे। दरअसल अखिल भारतीय काग्रेस समिति के प्रस्ताव ने विधानसभा म पार्टी के सदस्यो की उपस्थिति मे केवल कुछ ही दिन की कटौती की थी—वैसे भी अधिवेशन का प्राय अत ही था—लालाजी ने अपने समाचार पत्र मे लिखा कि यदि उनका बस चलता, तो वह सदन त्याग अगस्त अधिवेशन तक स्थगित कर देते, परन्तु 'अब तो निणय हो चुका था।"

59. श्रमिक प्रतिनिधि के रूप मे जेनेवा मे

'जहाज पर प्रवासियो की जाच को सरल करना' सभवत उचित समस्या थी, जो मई 1926 मे अतर्राष्ट्रीय श्रमिक कार्यालय द्वारा जेनेवा म बुलाए गए अन्तर्राष्ट्रीय सम्मलन के विचारणीय विषयो म शामिल की जा सके, परन्तु प्रवासियो की जाच के ब्यौरे मे लालाजी की रुचि क्या थी ? शायद इस ब्यौरे म लालाजी की रुचि इडिया बिल की धाराओ से भी कम थी, जिसके कारण वह 1914 म काग्रेस प्रतिनिधि के तौर पर लदन गए थे। तब की तरह अब भी उनकी अधिक रुचि अन्य सम्बद्ध मामलो मे अधिक थी। सबसे अधिक, ऐसे अतर्राष्ट्रीय सम्मेलन म, जहा विश्वभर से प्रतिनिधि एकत्र होगे, विचारणीय विषय कुछ भी हो, मित्रो की तरह मुलाकात अधिक महत्व की चीज थी।

जिस प्रकार हम देख चुके है भारतीय श्रमिक सगठन आदोलन म लालाजी की सक्रिय गतिविधिया 1920 म उस समय से आरम्भ हो गई थी, जब उन्होने कलकत्ता मे इडियन ट्रेड यूनियन काग्रेस के प्रथम अधिवेशन की अध्यक्षता की थी। उसके पश्चात वह ट्रेड यूनियन काग्रेस की राष्ट्रीय कार्यकारिणी मे रहे और अपनी महत्वपूर्ण राय देते रहे। उन्होने पजाब म श्रमिक सगठनो मे कुछ रुचि ली, उत्तर पश्चिम रलवे के हडताली कर्मचारी भी उनसे मार्गदर्शन तथा समर्थन लेते रहे, परन्तु कुल मिलाकर उनके लिए स्थिति ऐसी थी कि वह केवल सीमित समय ही दे पाते थे क्योकि वह अन्य कार्यों मे व्यस्त थे और इस प्रकार श्रमिक आदोलन के लिए उतना काय नही कर पा रहे थे, जितना उनका मन था। जैसा कि उनका विचार था, "असहयोग आदोलन' उस समय श्रमिक वर्ग के लिए उचित नही हो सकता था, उन्होने आल इडिया ट्रेड यूनियन काग्रेस के अपने पद से, अपना कार्यकाल समाप्त होने से बहुत पूर्व, त्यागपत्र दे दिया। परन्तु यह उनकी मनोकामना थी कि श्रमिक सगठन आदोलन को सशक्त बनाने मे सहयोग दें। जब उनके लिए अवसर आया, उन्होने उत्तर प्रदेश से लोक सेवा सघ के अपने दो कार्यकर्ताओ को मजदूर सभा के लिए काय करने के वास्ते कानपुर भेजा। ये दोनो, हरिहरनाथ शास्त्री और राजाराम

शास्त्री शीघ्र ही श्रमिक संगठन के महत्वपूर्ण नेता बन गए। अपने समाचार पत्रों से, विशेषकर 'द पीपुल' से उन आरम्भिक दिनों में श्रमिक तथा समाजवादी आन्दोलनों का महत्वपूर्ण सहयोग मिला। जब वह विधान सभा में आए तो उन्होंने शीघ्र ही संसदीय श्रमिक ग्रुप बनाने के बारे में विचार किया। यही कारण था कि स्वराज पार्टी में शामिल होने के बारे में मोतीलाल नेहरू का निमंत्रण स्वीकार करने वाले पत्रों में उन्होंने विशेष तौर पर लिखा था कि श्रमिकों का दृष्टिकोण व्यक्त करने के लिए वह अपने आपको स्वतंत्र रखेंगे। उनका विचार था कि विधानसभा में कुछ विशेष उद्देश्यों के लिये श्रमिक ग्रुप बनाया जाए, यद्यपि इन विशेष कार्यों के अलावा इस ग्रुप के सदस्य विभिन्न दलों, कांग्रेस, लिबरल, मुस्लिम लीग या इंडिपेंडेंट पार्टी के सदस्य रहें। एन० एम० जोशी, दीवान चमन लाल और स्वयं वह इस गुट को आरम्भ करने वाले मूल केंद्र थे। उन्होंने उनके साथ तथा तारिणी पी० सिन्हा के साथ कई बार बातचीत की परन्तु कुछ कारणों से यह योजना स्थगित कर दी गई और श्रमिक ग्रुप का उद्‌घाटन न हुआ।

लीग आफ नेशन्स के परिणामस्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक संगठन स्थापित किया जाना उन महत्वपूर्ण कारणों में से एक था, जो लालाजी ने अपने अध्यक्षीय भाषण में भारत में बिना देरी के राष्ट्रीय श्रमिक संगठन संस्था बनाने के पक्ष में कहे थे। सी० एफ० एंड्रयूज ने भी जिन्होंने महात्मा गांधी के आदेश पर प्रारम्भिक अधिवेशन में भाग नहीं लिया था, क्योंकि महात्माजी के विचार में इस उद्देश्य के लिए अभी उचित समय नहीं था, लालाजी के समान ही महसूस किया था। जब कुछ वर्ष पश्चात उन्होंने आल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस की अध्यक्षता की, तो उन्होंने भी भारत के श्रमिक वर्ग के लिए अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक संगठन के महत्व पर बल दिया और उन्हीं की अध्यक्षता में लालाजी को जेनेवा सम्मेलन के लिए श्रमिकों का प्रतिनिधि नामजद किया गया।

असहयोग के सिद्धांतवादियों ने प्रश्न उठाया कि क्या कोई कांग्रेसजन अंतर्राष्ट्रीय श्रमिक सम्मेलन के लिए नामज़दगी स्वीकार कर सकता है, यदि यह नामज़दगी स्वीकार की जा सकती है तो क्या विधानसभा से बहिर्गमन के पश्चात भी इसे मर्यादा के तौर पर इस्तेमाल किया जा सकता है। दरअसल माथ

म दिल्ली म अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक म प्रश्न उठाया गया था कि वहा वी० जे० पटेल सभा का अध्यक्ष पद न त्याग दें, और क्या पण्डित मोतीलाल को स्कीन समिति मे रहने दिया जाए। बैठक में अध्यक्ष न अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक सम्मेलन के लिए लालाजी को श्रमिकों का प्रतिनिधि नामजद करने के प्रश्न पर बहस की आज्ञा न दी, किन्तु मदन न निर्णय दिया कि पटेल विधानसभा के अध्यक्ष पद पर बने रह और नेहरू अपने स्थान पर बने रह सकते हैं। कांग्रेस अध्यक्ष तथा स्वराज पार्टी के नेता, दोनों ही इस बारे म बिल्कुल स्पष्ट थे कि अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक सम्मेलन के लिए लालाजी का चयन पदों का निषेध करने आदि के क्षेत्र से बाहर था। लालाजी स्वय इस बारे म बिल्कुल स्पष्ट थे कि वह श्रमिकों के मान्यता प्राप्त प्रतिनिधि के तौर पर जा रहे थे, सरकार के प्रतिनिधि के तौर पर नहीं और भारतीय श्रमिकों की सेवा का यह शानदार अवसर तथा अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्क बनाने का यह अमूल्य मौका व्यर्थ नहीं जाने देना चाहिए।

बम्बई म, रवानगी से कुछ दिन पूर्व उन्हे नाभा के अपदस्थ महाराजा रिपुदमन सिंह का, जो देहरादून म थे, एक तार सदेश मिला और उसके पश्चात एक विशेष सदेशवाहक पहुचा। महाराजा को सरकार अच्छा नहीं समझती थी, क्योंकि व्यापक तौर पर (कम से कम आशिक तौर पर) उन्हें शासकों का वफादार नहीं समझा जाता था जैसा कि उन्हे होना चाहिए था। महाराजा को राष्ट्रवादी नेताओं की सहानुभूति प्राप्त थी। सिखों की व्यापक सहानुभूति के अतिरिक्त उस समय महाराजा इंडिया आफिस मे अपने साथ हुई ज्यादती समाप्त करने के लिए प्रयत्नशील थे और इसके लिए उन्होंने मुख्यतौर पर लदन म अपने वकीलों की मार्फत पक्ष पेश किया था। लालाजी से भी उन्होंने इसी उद्देश्य के लिए सहायता चाही थी, ताकि उनका मामला ठीक ढग से पेश हो सके। लालाजी ने महाराजा के दूत को यह बात स्पष्ट कर दी, कि सार्वजनिक ... होने के नाते उन्हे इस प्रकार के काम म कोई ... के तौर पर उनकी सेवाए चाहें, तो ... तैयार हैं। यह बात उन्होंने ... लिखे एक पत्र म बिल्कुल स्पष्ट ... था—मने आपका केस ... प्रतिनिधि के

के तौर पर नहीं।" इस बार वह पी० एंड ओ० के स्टीमर एस० एस० रणपुरा से जा रहे थे, जो कम्पनी के सबसे बड़े जहाजों में से एक तथा आधुनिकतम था। उन्होंने देखा कि जहाज पर परोसा गया भोजन युद्ध-पूर्व के निर्धारित स्तर का नहीं था, दरअसल यह उस इटली के जहाज पर मिले भोजन से भी घटिया था, जिससे वह पहले दो बार यूरोप गए थे।

पी०एंड ओ० के नस्लभेद के कारण ही भारत में औद्योगिक प्रगति के पितामह जमशेदजी टाटा ने भारत में जहाजरानी उद्योग की आवश्यकता के महत्व को महसूस किया था। हालात काफी बदल गए थे, परन्तु "पी०एंड ओ० के वातावरण से नस्लभेद समाप्त होना अभी बहुत दूर की बात थी।"

लालाजी 7 मई 1926 को प्रात मार्साई में उतरे और तुरंत पेरिस के लिए रवाना हो गए। जेनेवा में अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक सम्मेलन जिसमें उन्हें भाग लेना था, मई के अन्तिम सप्ताह में होना था। ब्रिटेन उन दिनों बहुत बड़ी आम हड़ताल में फंसा हुआ था—इस बड़ी हड़ताल के बारे में कुछ लोगों का विचार था, क्रामवेल के बाद ब्रिटेन का यह एकमात्र गृहयुद्ध था, इसलिए उन्होंने अपना भारी सामान, यद्यपि सीधा लंदन भेज दिया था, अभी उनके स्वयं शीघ्र लंदन जाने की संभावना दिखाई नहीं देती थी। दरअसल एच० एस० एल० पोलक ने उन्हें तार द्वारा सलाह दी थी कि वह फिलहाल पेरिस में ही ठहरें। इसलिए उन्होंने ऐसा ही किया और हड़ताल समाप्त होने तक लंदन के लिए रवाना न हुए।

पेरिस में वह मोतियों के व्यापारी एस० आर० राणा तथा कई अन्य पुराने मित्रों के पास ठहरे। नए रुचिकर सम्पर्कों में ज्यां लोंगे भी था 'जां फ्रांस की सोशलिस्ट पार्टी के दो प्रमुख नेताओं में से एक था,' और कार्ल मार्क्स का नाती था, ज्यां की माता ने एक फ्रांसीसी से विवाह किया था। लालाजी ने उनके साथ बहुत दिलचस्प भेंट की। "वह बहुत सुंदर, बलिष्ठ, ऊंचे कद का, चौड़े ललाट वाला, बहुत ही विनम्र बहुत ही ज्ञानवान तथा अति संतुलित विचारों वाला व्यक्ति था।" क्योंकि वह कम्युनिस्ट विचार धारा की कसम नहीं उठाता था और उसे आशा थी कि शीघ्र ही रूस में किसान सत्ता में आ जाएंगे और कम्युनिस्ट शासन को समाप्त कर देंगे।

वह लदन में केवल एक सप्ताह के लिए ठहरे—अपने मित्रो से मिलने तथा हाल की आम हडताल के बारे मे जानकारी लेने के लिए तथा वकील मित्र, एच० एस० एल० पोलक के साथ नाभा महाराजा के मामले के बारे मे प्रारम्भिक बातचीत करने के लिए उन्होंने अधिक विस्तार मे बातचीत और कार्यक्रम तय करने की बात सम्बद्ध दस्तावेज आने तक के लिए छोड दी थी और 'लाइट आफ एशिया' नामक चलचित्र देखने के लिए चले दिए। यह इगलैंड मे भारतीय निर्माता द्वारा बनाया पहला चलचित्र था जिसकी नायिका देविका रानी थी। इस चलचित्र के निर्माता निरजन पाल थे। लालाजी को उनमे इसलिए रुचि थी कि वह विपिन चन्द्र पाल के पुत्र थे।

उसके पश्चात् वह जेनेवा के लिए रवाना हो गए। अतर्राष्ट्रीय श्रमिक अधिवेशन 26 मई 1926 को जेनेवा मे शुरू हुआ—जहाजो पर आप्रवासियो की निरीक्षण प्रक्रिया को सरल बनाने पर विचार करने के लिए पहले ही दिन लालाजी ने दो प्रस्ताव रखे, इनमे एक प्रस्ताव मे माग की गई थी कि अफ्रीका और अमरीका मे कार्यरत वहा के तथा गैर गोरे विदेशी श्रमिको की स्थिति की जाच कराई जाए। यह प्रस्ताव कुछ सशोधनो के साथ स्वीकार कर लिया गया। लालाजी ने सशोधित प्रारूप को पहली किस्त के रूप मे मान लिया। उनके दूसरे प्रस्ताव मे सचालन समिति का ध्यान भारत मे एक पत्रकार नियुक्त करने के बारे मे पहले स्वीकार किए गए एक प्रस्ताव की ओर दिलाया गया था जो पिछले चार वर्षों से बिना किसी कारवाई के पडा था। उन्हे बताया गया कि उस वर्ष की बजट व्यवस्था हो चुकी है और तुरत कुछ नही किया जा सकता, परन्तु उन्हें आश्वासन दिया गया कि उनका प्रस्ताव आगामी वर्ष से कार्यान्वित हो जाएगा।

परन्तु उनका मुख्य भाषण दो जून को हुआ, जिस दिन सस्था के निदेशक ने अपनी रिपोर्ट पेश की। उन्हें केवल द्वारा कानपुर से एक प्रतिवेदन प्राप्त हुआ था जिसमे माग कि गई थी की भारत मे श्रमिको के लिए आठ घटे की दिहाडी लागू की जाए। परन्तु इस मामले के बारे मे उन्हें पूरी जानकारी थी कि (उस समय) आठ घटे के नियम की तो अभी कुछ प्रमुख यूरोपियन देशो ने भी पुष्टि नहीं की थी और इस वर्ष लदन मे हुए एक सम्मेलन मे भी इस विषय पर विचार किया गया था। उन्हें इस बात की भी जानकारी थी कि भारत इस मामले मे अपने प्रतिद्वद्वी जापान से आगे नही जा सकता और

उन्होंने जापानियों से आग्रह किया कि इस मामले में वे ही कोई रास्ता दिखाए। उन्होंने बेगार की चर्चा की, जो ब्रिटिश शासित भारत में तथा भारतीय रियासतों में एक अपमानजनक तथ्य था और विश्व को पूरी तरह मालूम नही था। इस बात पर सर ए० सी० चटर्जी ने नाराजगी व्यक्त की, जो भारत सरकार का प्रतिनिधित्व कर रहे थे और भारत के प्रमुख प्रतिनिधि माने जाते थे। लालाजी ने सम्मेलन के अध्यक्ष को अगले दिन एक पत्र लिखा और जांच कराने की चुनौती दी और इकरार किया कि 'मैं भारत लौटते ही अन्तर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय को अपने भाषण के समर्थन मे प्रमाण भेज दूगा।' लालाजी के अनुरोध पर इस पत्र को सम्मेलन की कारवाई का भाग बना दिया गया। यह कहने की आवश्यकता नही कि उन्होंने भारत लौटते ही अपना इकरार पूरा किया।

लालाजी सम्मेलन में महाद्वीपीय वातावरण देखकर बहुत प्रभावित हुए। निस्संदेह ब्रिटेन लीग पर छाया हुआ था परन्तु श्रम सम्मेलन को अपने ढग से विकसित होने दिया गया था और वहा ब्रिटेन को प्रभुत्व प्राप्त नही था। इससे लालाजी की दलील को बल मिला कि क्यो भारत को अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन की ओर ज्यादा ध्यान देना चाहिए और सम्मेलन में पूर्णतया सही अर्थो मे भारतीय प्रतिनिधि मण्डल भेजना चाहिए। जिस सम्मेलन में लालाजी ने भाग लिया था, उसमे केवल चार भारतीय प्रतिनिधि थे– सर लुई केरशी और सर ए० सी० चटर्जी सरकार का प्रतिनिधित्व कर रहे थे। सर आथर फ्रम मालिकों के प्रतिनिधि थे और लालाजी मजदूरों के, यानी डेलीगेटो की न्यूनतम सख्या 4 साथ-साथ सरकारी प्रतिनिधि के लिए केवल एक सचिव, न कोई वैकल्पिक व्यवस्था, न मालिकों तथा कर्मचारियों का कोई सलाहकार। इस प्रतिनिधि मण्डल में केवल सर अतुल और लालाजी—दो ही भारतीय थे। सिंधिया स्टीम नेवीगेशन कम्पनी के प्रबधक एम० एन० हाजी ने, जो जेनेवा में उपस्थित थे, सम्मेलन के अधिकारियों को बहुत योग्यता से तैयार किया गया ज्ञापन भेजा, जिसमे सर आथर फ्रम के प्रतिनिधित्व को चुनौती दी गई थी, जिन्हें यूरोपियन चैम्बर आफ कामर्स ने चुनकर भेजा था, जबकि इंडियन मर्चेंट्स चम्बर को कोई अवसर ही नही दिया गया था। विशेषज्ञ सलाहकार न होने के कारण लालाजी अक्षमता महसूस कर रहे थे। शायद समूचे सम्मेलन में, जिसमे 30 से अधिक देशों

के प्रतिनिधि शामिल थे, लालाजी और सर आथर ही केवल ऐसे प्रतिनिधि थे, जिनके साथ कोई विशेषज्ञ सलाहकार नहीं था। दो भारतीयों के मुकाबले जापान के 15 प्रतिनिधि थे, जिनमें प्रतिनिधि, वैकल्पिक प्रतिनिधि और सलाहकार शामिल थे—यह संख्या अधिकतम थी और कुछ अतिरिक्त लोग भी थे। उन्होंने देखा कि जापानी उन्हें मिलने वाले प्रत्येक अवसर से पूरा लाभ उठा रहे थे।

लालाजी ने इस सम्मेलन की बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा की थी, क्योंकि अमरीका से लौटने के पश्चात् उनके लिए यह प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्क था। उसे सफल बनाने के लिए यथासंभव उपयोग किया। इस अवसर की अनौपचारिक घटनाओं में 3 जून को लालाजी का भोज उल्लेखनीय था, जिसमें यूरोपियन तथा पूर्वी देशों के लगभग सभी श्रमिक प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इनमें फ्रांस के सोशलिस्ट नेता डुफो, जापान से सुजूकी, ब्रिटिश ट्रेड यूनियन नेता पग, बेन टिलिट तथा मार्ग्रेट बॅडफील्ड (जो बाद में लेडी चटर्जी बनी) शामिल थे। इनके अतिरिक्त स्विटजरलैंड, नार्वे, स्वीडन, डेनमार्क, हालैंड, जर्मनी, बल्गारिया, आस्ट्रेलिया और दक्षिण अफ्रीका के प्रतिनिधि भी थे।

जवाहरलाल नेहरू, जो अपनी पत्नी कमला की बीमारी के संबंध में स्विटजरलैंड में थे, सम्मेलन की कार्यवाही देखने वाले भारतीय दर्शकों में थे। अन्य भारतीय दर्शकों में डा० तारकनाथ दास और चीली के वैज्ञानिक सारंगधर दास और उनकी अमरीकन पत्नी (फ्रीडा जिन्होंने बाद में दास को छोड़ दिया और एक पुस्तक लिखी, जिसका नाम उन्होंने 'मैरिज टू इंडिया' रखा) और एस० एन० हाजी (सिंधिया कम्पनी के जहाजरानी विशेषज्ञ) और श्रीमती हाजी भी थे। जेनेवा में लालाजी को अपने पुराने मित्र श्यामजी कृष्ण वर्मा से मिलने का अवसर भी मिला, परन्तु वह उदास और तन्हा व्यक्ति थे और कई मामलों में उन प्रसिद्ध विद्रोहियों के विपरीत थे—रूसो, क्रोपाटकिन, मैजिनी, लेनिन—जिन्होंने स्विटजरलैंड में शरण ली थी और सदैव समय से गरीबी तथा कठिनाई झेल रहे थे। 'श्यामजी के पास पर्याप्त धन है परन्तु वह भी गरीबी का जीवन व्यतीत करना चाहते हैं। वह कोई प्रचार नहीं करते केवल साधारण जीवन जीते हैं।" कुछ आश्चर्य की बात थी कि श्यामजी अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में पत्रकार के तौर पर भाग ले रहे थे इंडियन सोशलिस्ट के प्रतिनिधि के रूप में, जिसका नियमित प्रकाशन उन्होंने

इग्लड छोडने के बाद, कोई दो दशक पूर्व ही, बन्द कर दिया था और अन्तिम सस्करण 1920 मे प्रकाशित किया था, जब लोकमान्य की मृत्यु हुई थी।

राम्या रोला निकट ही रहते थे और लालाजी उनके घर कई बार मिलने गए।

लालाजी कोई तीन सप्ताह जेनेवा मे रहे और इस अवधि म उन्होने एक दो अन्तर्राष्ट्रीय समारोहो मे भाग लिया (उस सम्मेलन के अतिरिक्त जिसमे भाग लेने के लिए वह आए थे) इनम से एक सम्मेलन विश्व ससद सगठन के नाम का था।

उसके पश्चात वह फिर इग्लड चले गए और लगभग दो मास वहा ठहरने के दौरान अपने अनेक मित्रो से मिलते रहे।

जेनेवा मे, जो अनेक अन्तर्राष्ट्रीय सस्थाओ का केंद्र था, वह कई अन्य सगठनो के सम्पर्क मे भी आए। विश्व ससद सगठन ने उनका विशेष ध्यान आकर्षित किया। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के सम्मेलन से थोड़े समय पहले, उनका सम्मेलन लदन में हुआ था, जिसम सर पुरुषोत्तमदास ठाकुर दास भारत के प्रतिनिधि थे।

वर्ल्ड माइग्रेशन काग्रेस की बैठक लदन मे हो रही थी, जिसमे लालाजी को भारतीय श्रमिक वर्ग के प्रतिनिधि के तौर पर भाग लेने के लिए आमत्रित किया गया था। लालाजी रगभेद के प्रश्न पर उतने ही जोर से बोले और शायद कुछ ब्रिटिश तथा औपनिवेशिक "लेबर समर्थक देशो" ने भारतीय प्रतिनिधि द्वारा कही गई इन सच्ची बातो को अच्छा न समझा।

इन दोनो सम्मेलनो ने उन्हे विश्व के श्रमिक तथा समाजवादी आन्दोलनो के साथ सम्पर्क करने के बहुत बढिया अवसर दिए।

लालाजी के लन्दन प्रवास के दौरान अन्तर्राष्ट्रीय हस्ताक्षरो से मागपत्र भेजा गया, जिसमे जबरन भरती बन्द करने की माग की गई थी। इस पर हस्ताक्षर करने वालो मे राम्या रोला हैनरी बाबस तथा भारत से टैगोर, लाजपत राय और गाधी शामिल थे।

अन्तर्राष्ट्रीय सगठनो की बात करते समय हमे एक और सस्था का उल्लेख करना चाहिए, चाहे यह अलग किस्म की थी, क्योकि इसमे श्रमिको के कोई प्रतिनिधि नही थे और इसका सम्बन्ध श्रमिक या वामपथी आन्दोलनो से नही था। लालाजी ने उस समय इस सबध मे कुछ रुचि दिखाई। यह थी साम्राज्य ससदीय यूनियन, जिसमे लालाजी तथा कुछ प्रमुख स्वराजवादी रुचि लेने लगे थे। भारत मे इसकी एक स्थानीय शाखा स्थापित की गई और अगले वर्ष भारत से स्वराज पार्टी के दो विधायक उस सगठन की ओर से कनाडा तथा आस्ट्रेलिया गए। स्वराज पार्टी के मत या नीति मे उस समय ऐसी कोई बात नही थी, जो साम्राज्य की ससदो मे इस प्रकार रुचि लेने पर रोक लगाए, परन्तु हम यह कल्पना करते है कि स्वराज पार्टी के नेताओ की इस रुचि के अधिकतर कारण इस सगठन के सचिव सर हावर्ड डीऐंजविल का सहमत कर लेने वाला कूटनीतिक व्यक्तित्व था, जिन्होने भारत की सक्षिप्त सी यात्रा के दौरान अनेक भारतीय नेताओ के साथ मैत्री बना ली थी।

लन्दन मे लालाजी के निवास के दौरान भारतीय मुद्रा के बारे मे शाही आयोग, जिसके अध्यक्ष सर हिल्टन यग थे, अपनी रिपोर्ट तैयार कर रहे थे। इसी आयोग की सिफारिश पर थोडे समय बाद सरकार ने भारतीय रुपये की विनिमय दर 18 पेस नियत करने का कानून बनाया। इस निर्णय को ब्रिटेन के पक्ष मे बहुकर भारत मे इसकी आलोचना की गई, भारत के अधिकतर आर्थिक विशेषज्ञो का विचार था कि 16 पैस प्रति रुपया की दर बहुत उपयुक्त थी। सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास ने, जो इस शाही आयोग के सदस्य के रूप मे इग्लैंड मे थे, अपने सहयोगियो द्वारा सिफारिश की गई इस दर को भारतीय हितो के लिए विनाशकारी बताया, उन्होने कुछ अन्य सुझावो के बारे मे भी सदेह व्यक्त किए। उन्होने लालाजी से भी सलाह की और कई बैठको मे अनेक सदेहो तथा कठिनाइयो की बात दोहराई। लालाजी बम्बई के उस विशेषज्ञ का तकनीकी पहलू से कुछ पता पाने की बात तो नहीं कर सकते थे, फिर भी, उन्होने दृढता से यह बात कहकर बहुत सहायता की कि वह बहुमत की राय से डरे नही और न ही उनकी ओर से रजामन्द करने या मनाने पर उन सिफारिशो पर हस्ताक्षर करे, जो उनके अपने अनुमान के अनुसार भारत के हित के लिए हानिकर हो सकती है। लालाजी सर पुरुषोत्तमदास को

विशेषज्ञ की जानकारी तो नहीं दे सकते थे, परन्तु उन्होंने उन्हें नैतिक समर्थन अवश्य दिया, जिसकी आवश्यकता समझते थे। इस प्रकार लालाजी ने सर पुरुषोत्तमदास को असहमति की टिप्पणी लिखने के लिए परोक्ष रूप से योगदान दिया। यह भी कहा जा सकता है कि उन्होंने इस टिप्पणी के दृढ़ स्वर में भी योगदान दिया।

लालाजी को निर्धारित समय से अधिक लन्दन में रुकना पड़ा और वकालत के मामले के कारण एक बार और अपनी रवानगी रद्द करनी पड़ी। महाराजा का एक व्यक्ति लालाजी के साथ गया था, परन्तु उसके पास जरूरी दस्तावेज नहीं थे, विश्वास यह था कि दस्तावेज शीघ्र ही डाक द्वारा पहुंच जाएंगे। लन्दन में लालाजी ने अपने सालिसिटर मि० एच० एस० एल० पोलक से मशविरा किया, परन्तु कोई असरदार कारवाई करने से पूर्व सालिसिटर कुछ दस्तावेज चाहते थे जो लालाजी और उनके साथ गए महाराजा के प्रतिनिधि के पास नहीं थे। दस्तावेज मंगवाने का कार्य शीघ्र करने के लिए चिट्ठियों तथा तारों का कोई असर न हुआ। आखिरकार लालाजी ने महाराजा को लिखा कि वह अनिश्चित काल के लिए नहीं ठहर सकते और उसके पश्चात वह लौट आए। महाराजा बहुत नाराज हुए, परन्तु बाद में जब उन्होंने देखा कि परिस्थितियों के अनुसार लालाजी उचित ही थे, तो महाराजा ने लालाजी से अपनी नाराजगी के लिए खेद व्यक्त किया, उनके साथ समझौता कर लिया और अगले वर्ष लालाजी जब फिर यूरोप जा रहे थे, तो उन्होंने अनुरोध किया कि वह उनके लिए कुछ छोटे-मोटे मामलों पर कानूनी मशविरा ले दें, इसके लिए लालाजी सहर्ष सहमत हो गए।

लन्दन में निवास के दौरान हाउस आफ कामन्स में भारत के मामले पर बहस हुई, लालाजी ने इस बहस की कुछ बैठकें देखीं।

वापसी यात्रा पर रवाना होने से एक सप्ताह पूर्व 'द टाइम्स' ने लालाजी का एक *पत्र प्रकाशित किया,* जो *"भारत में साम्प्रदायिक तनाव"* के बारे में समाचारपत्र के कालमों में प्रकाशित पत्र व्यवहार में उठाए गए कुछ विषयों के बारे में था। इससे उन्हें असाधारण किस्म की प्रताड़ना पड़ी। वह नेशनल लिबरल क्लब में शामिल हो गए। इससे पूर्व कि वह उसके लिए निर्वाचित होते या सदस्य के तौर पर उनकी पुष्टि होती, वह उसके नियम

भग करने के दोषी हो गए। 'द टाइम्स' म प्रकाशित पत्र के नीचे लेखक के क्लब का पता था। तुरत ही सचिव ने उनका ध्यान उस नियम की ओर दिलाया, जिसमे यह व्यवस्था थी कि क्लब का कोई भी सदस्य समाचारपत्रो के साथ पत्र-व्यवहार म क्लब का नाम उस समय तक इस्तेमाल नही कर सकता जब तक उसने जनरल कमेटी से उसकी पूव अनुमति न ले ली हो।

पूरे दो दिन लालाजी पुराने मित्रो वैब्ब दम्पति के साथ रहे। उन्होने 'द पीपुल' मे लिखा कि यद्यपि उन्हें वैब्ब दम्पति के कई वष पुराने मित्र होने के विशेषाधिकार प्राप्त है "वह उन्हें इतनी अच्छी तरह पहल नही जान पाये थे जिस तरह उनके साथ दो दिन रहकर तथा श्रीमती वैब्ब की पुस्तक, 'माई एप्रटिसशिप' आदि से अत तक पढकर जान पाये हैं।"

लालाजी इस पुस्तक से बहुत प्रभावित हुए और जब वह वापस आए, तो ऐसा दिखाई देता था कि यही उनका मुख्य जाश था। उन्होने इस पुस्तक के लिए 'द पीपुल' म उत्साहपूवक लिखा ही नही, उसकी कई प्रतिया अपने साथ लाए, जो उन्होंने अपने मित्रो को पश की एक लज्जावती को, एक अपनी पुत्रवधु, सरस्वती (श्रीमती अमतराय) को, शानदार प्रशसा के साथ भट की।

वापसी यात्रा पर वज्ञानिक आचाय प्रफुल्ल चद्र राय सहयात्रियो म थे। आचाय राय उस समय आत्मकथा लिख रहे थे और वह बडे शौक से व अध्याय लालाजी को पढकर सुनाने, जो उन्होने अब तक पूण किए थ और कभी उनके बार मे लालाजी के विचार जानने या आलाचना करने को कहते, परन्तु जैसा उनकी आदत थी, सदा ही पूछते रहते "समझे आप?" कई बार लालाजी को उनके वैचित्र्य व्यवहार पर हसी आती और कई बार खीझ आती और तब वह कह देते, "म ठीक तरह से समझ रहा हू भगवान क लिए मुझसे बार बार यह कहने को न कहिए कि मैं समझ रहा हूँ।"

13 अगस्त 1926 को वह बम्बई पहुच गए।

60. सम्प्रदायवादी ?

I

देवताओ तथा दानवो ने सागर मथन किया, ताकि अमृत खोज पाए। मथन से बहुत सी बहुमूल्य वस्तुए प्राप्त हुईं तथा कुछ अनिष्टकर वस्तुए भी निकली और आखिरकार देवताओ तथा दानवो मे झगडा हो गया, दोनो पक्षो का यत्न था कि अमृत की गागर उन्हे मिल जाए। स्वतत्रता प्राप्त करने के लिए हिन्दुओ तथा मुसलमानो ने महात्मा गाधी के निर्देशन म ऐतिहासिक मथन आरम्भ किया। परिश्रम का वर्ष समाप्त हो गया, परन्तु ऐच्छिक फल की प्राप्ति न हुई, यद्यपि मथन थोडी देर बाद ही समाप्त कर दिया गया और अनिष्टकर वस्तुओ ने इससे पूर्व ही गडबड आरम्भ कर दी थी—इनमें सबसे अधिक खतरनाक था यह छिपा हुआ सदेह कि कही दूसरा पक्ष यह मनोवाछित वस्तु न ले जाए, यद्यपि यह फल अभी पहुच से बहुत दूर था और यद्यपि बुद्धिमान लोगो ने यह चेतावनी भी दी कि यदि दानो ने मिलकर प्रयत्न न किया, तो मथन नहीं हो पाएगा और ऐसा किए बिना वह वरदान प्राप्त न हो सकेगा।

यद्यपि निर्वासन के अन्तिम वर्ष की पजाब की घटनाओ से लालाजी को दुख पहुचा था, परतु स्वामी श्रद्धानन्द के जामा मस्जिद के मच पर पहुचने की बात कुछ अद्वितीय सी थी और उससे आशा बधी थी। अमरीका से स्वदेश रवाना होने से पूर्व अपने देशवासियो के नाम सदेश मे अत्यधिक जोर इस बात पर दिया था कि सर्वाधिक आवश्यकता एकता की है। उन्होने देशवासियो से गाधीजी की अगुवाई मे चलने को कहा, क्योकि सभी बातो से अधिक उसी मे एकता की आशा थी। भारत भूमि पहुचने पर उन्होने अपने देशवासियो को साम्प्रदायिकता के विरुद्ध, विशेषकर अपने सह धर्मियो को चेतावनी दी। उन्होने खिलाफत के साथ ज्यादती का गलत घोषित किया, साम्राज्य-विरोधी आधार पर भी और मुसलमानो की भावुकता के साथ सहानुभूति के तौर पर भी। अमरीका मे मित्रो ने जो धन उनके हवाले किया था, उसमे से बचे हुए धन म से उन्होने कुछ दान खिलाफत कोष के लिए दिया। असहयोग आदोलन के दौरान

उन्होंने शौकत अली के साथ दौरे भी किए। जब अली बंधुओं पर कराची में मुकदमा आरम्भ हुआ, तो वह उस वक्तव्य पर हस्ताक्षर करने वाले 17 व्यक्तियों में शामिल थे जिसके लिए अली बंधुओं के विरुद्ध मुकद्दमा चलाया गया था। यद्यपि उन्हें कुछ बातों के बारे में संदेह था, फिर भी उन्होंने महात्माजी के नेतृत्व को अमूल्य घोषित किया, क्योंकि वह मुसलमानों का समर्थन प्राप्त कर सके थे।

II

जब अभी वह जेल में ही थे, परिस्थितियां बदल गईं और हिन्दू मुस्लिम फसाद तो जैसे रोजाना का रिवाज हो गए। एकता की आवश्यकता तो अब भी पहले के समान थी, परन्तु गांधीजी के ढंग से निपटने के कारण स्पष्ट तौर पर इसे प्राप्त करने में असफलता हुई थी। कारावास में जो विश्राम मिला लालाजी ने उसका सबसे अधिक इस्तेमाल मूल्यांकन में लगाया—इसका परिणाम कई लेखमालाओं के रूप में प्रकाशित हुआ, जो जेल से चोरी चोरी बाहर भेजे गए थे और फर्जी नामों से प्रकाशित किए गए थे। इस मूल्यांकन और एकता के प्रश्न पर सोच विचार करने के परिणाम स्वरूप, लालाजी ने इस्लाम तथा मुस्लिम इतिहास का और मुस्लिम देशों में आधुनिक गतिविधियों का व्यापक अध्ययन किया। वह शिबली की रचनाओं के प्रशंसक बन गए—पैगम्बर तथा उमर की जीवनियों तथा अन्य जीवन कथाओं और ऐतिहासिक रचनाओं के।

बहुत ही स्वाभाविक था कि उन्होंने इन बातों के बारे में अपने साथी बंदियों के साथ विचार विनिमय किया। एक बार की बातचीत से कुछ स्थायी संदेह उत्पन्न हो गए थे, इसलिए यहां उनका उल्लेख करना उचित है। यह विशेष विचार विनिमय मौलवी हबीब-उर रहमान (लुधियाना) के साथ हुआ था जो खिलाफत आंदोलन के प्रमुख नेता और महत्वपूर्ण धार्मिक नेता थे और लालाजी के साथ ही जेल में थे। स्पष्ट विचारविमर्श में मौलवी साहिब को लपेटते हुए लालाजी ने यह जानने का प्रयत्न किया कि कड़ी धार्मिक सीमाओं के अंदर रहते हुए मुसलमान कहां तक हिन्दुओं के साथ सहयोग कर सकते थे। उत्तर असल में यह था कि मोमिन ईसाई शासकों को देश से हटाने की सीमा तक काफिरों के साथ सहयोग कर सकते हैं, उससे आगे कदापि नहीं। सी० आर० दास को एक

पत्र मे लालाजी ने इस प्रकार पैदा हुई गलतफहमियो का उल्लेख किया और सुझाव दिया कि वह उन गलतफहमियो की अधिकृत व्याख्या के लिए प्रयत्न करे और इस सम्बन्ध मे राष्ट्रवादी कार्यक्रमो पर उनके प्रभाव के बारे म विचार करे। लालाजी ने एक गोपनीय पत्र मे आत्म विचार के रूप म बात की थी। ऐसा दिखाई पडता था कि दास को मुस्लिम नेता द्वारा कही गई बातो मे कोई रुचि न थी और वह पत्र का गोपनीय तौर पर रख नही सकते थे क्योकि वह पत्र के उन भागो का इस्तेमाल करना चाहते थे जिनमे विधान मण्डलो का बहिष्कार करने के बारे म पुनर्विचार करन की बात कही गई थी। गया अधिवेशन मे दास न इस पत्र मे उल्लेख की गई बातो की आम चर्चा की और पत्र म निहित चेतावनी को अनदेखी करते हुए उन्होने गया अधिवेशन मे ही एक और मौलवी के कहने पर काबुल स्कीम स्वीकार कर ली—जिसका उल्लेख हम इसी अध्याय मे और किसी स्थान पर करेगे।

कुछ राष्ट्रवादियो ने ऐसे टेढे प्रश्न उठाना या ऐसे सदेह व्यक्त करना अनुचित समझा, जिनसे लोगो को परेशानी हो। निस्सदेह ये वही लोग थे जो अपन मन मे इस धार्मिक निणय के बारे म सहमत थे, यद्यपि वे समझते थे कि लुधियाना के मौलवी की स्पष्टवादिता असामयिक थी।

सी० आर० दास का लिखे उस पत्र की चर्चा करना भी जरूरी है क्योकि इससे लालाजी के अपने सहयोगियो के बारे म कुछ जानकारी मिलती है। दास का वह बहुत सम्मान करते थे—फिर भी दास की केवल उसी बात मे दिलचस्पी दिखाई देती थी, जिसका सबध तुरत राजनीतिक सदभ से हो। वह उस दष्टि से गभीरतापूवक नही सोचते थ, जिस प्रकार लालाजी उसे बुनियादी महत्व का समझते थे।

लालाजी ने यह बात अपने दिमाग मे बैठा ली और चुप रहे। वह यह सोचे बिना न रह सके कि नेताओ की इस प्रकार की लापरवाही क्षोभ पदा करने वाली बात थी।

रिहाई के थोडी देर बाद लालाजी ने देखा कि काग्रेस कायकारिणी द्वारा राष्ट्रीय सधि तैयार करने के लिए बनाई गई दो समितियो मे से एक मे उनका नाम है। अमारी–लाजपत राय समाने पर विचार किए जाने से पूव कलकत्ता से समाचार आया कि सी० आर० दास न एक स्थानीय सधि

कर ली है। बगाल की सधि अल्प अवधि की प्रारम्भिक सफलता ही थी, समय बीत जाने पर इसने केवल उलझना म ही वृद्धि की और बगाल काग्रेस म असहमति ही बढाई और इस राष्ट्रीय सधि होने की समावनाओ को समाप्त कर दिया। ऐसा दिखाई पडता था कि दास तुरत लाभ की ओर अधिक ध्यान देते है।

लालाजी सालन म स्वास्थ्य लाभ कर रहे थे और साथ म काग्रेस के कुछ अन्य नेता जिनमे अबुल कलाम आजाद भी थे, वे भी सयोगवश पहाडी स्थल पर थे। उन छुट्टियो के थोडे समय बाद सी० आर० दास की बगाल सधि आकस्मिक घटना के समान घटित हुई। लालाजी को आश्चय हो रहा था कि आजाद, जिन्होंने बहुत ही विभिन्न स्वर मे उनके साथ बात की थी, बगाल की सधि की किस प्रकार पुष्टि कर सकते थे, और यह किस प्रकार सभव हो सकता था कि दास यह सधि कर ले यदि आजाद उस प्रस्ताव से सहमत ही न हो? लालाजी के पास कोई तथ्य न थे कि पर्दे के पीछे क्या हुआ था, परन्तु मौलाना के मरणोपरात उनकी जो पुस्तक (इडिया विन्स फ्रीडम) प्रकाशित हुई, उसमे दास की राजनीतिज्ञ योग्यता को बहुत ही उच्च श्रद्धाजलि अर्पित की गई, उससे लालाजी के सदेह की पुष्टि होती है।

गाधीजी की कारा चक" वाली नीति सफल नही हुई थी और राष्ट्रीय नेता ठोस समझौते के बारे म बातचीत करते हुए, पल भर के लिए स्थानीय जरूरत के लालच म आ गए दिखाई पडते थे, जबकि उन्ह चिरस्थायी समझौते के लिए प्रयत्न करना चाहिए था, जो परस्पर उचित तालमेल पर आधारित हो।

III

हिंदू-मुस्लिम फसादो ने लालाजी के व्यवहार को कितना प्रभावित किया? 1924 की घटनाओ के विशेष उल्लेख की आवश्यकता है, विशेषकर कोहाट म हुई तबाही की।

सन 1924 मे कई स्थानो पर साम्प्रदायिक जुनून से फसाद हुए। ये एक के बाद एक स्थान पर हुए, जो एक दूसरे से काफी दूर थे—विशेषकर दिल्ली गुलबर्गा, नागपुर, लखनऊ, शाहजहापुर, इलाहाबाद, जबलपुर और सबसे भयानक कोहाट म। * कोहाट मे हिंदू बहुत ही अल्प

*हिस्ट्री आफ काग्रेस, भाग I पृष्ठ 275

संख्या में थे—पांच प्रतिशत से भी कम, तबाही बहुत हुई, परन्तु क्षोभ की एक विशेष बात यह थी कि सारी हिन्दू आबादी वहां से निकल गई और उन लोगों ने 320 किलोमीटर दूर रावलपिण्डी में शरण ले ली।

सारी साम्प्रदायिक गड़बड़ में, सितंबर 1924 में कोहाट में हुई गड़बड़ सबसे अधिक घबरा देने वाली थी। लालाजी ने पीड़ित लोगों को सहायता देने के लिए यथासंभव कार्य किया, परन्तु वह उस आदर्शवादी सलाह का अनुमोदन न कर पाये जो गांधीजी की प्रथम प्रतिक्रिया के रूप में प्राप्त हुई। गांधीजी ने शीघ्र ही अपना सर्वोच्च शक्तिशाली अस्त्र इस्तेमाल किया—घोर व्यथापूर्ण प्रार्थना, 21 दिन का अनशन, जिसके परिणामस्वरूप एक एकता सम्मेलन हुआ, जो सचमुच बड़ी शान से आरम्भ हुआ और उससे बड़ी आशाएं बंधीं, परन्तु उससे कोई इकरार न निकल पाया। जैसा कि कांग्रेस इतिहास में बड़े अर्थपूर्ण ढंग से कहा गया कोहाट ने भारत की रीढ़ की हड्डी तोड़ दी।

गांधीजी का अली बंधुओं में गहरा विश्वास था। एकता सम्मेलन के अतिरिक्त, उन्होंने अली बंधुओं की सहायता से स्थिति को सुधारने का प्रयत्न किया ताकि हालात को ऐसा बनाया जा सके कि कोहाट के विस्थापित लोग अपने घरों को लौट सकें। यह प्रयत्न भी बहुत निराशाजनक रहा। आचार्य कृपलानी ने गांधीजी की जीवनी में इस दुर्घटना की संक्षिप्त चर्चा करते हुए लिखा

"गांधीजी कुछ मुसलमान नेताओं के साथ कोहाट जाना चाहते थे ताकि वहां की साम्प्रदायिक घटनाओं की जांच कर सकें और शांति स्थापित कर सकें। सरकार ने उन्हें वहां जाने की आज्ञा न दी। फिर भी कुछ मास पश्चात उन्हें वहां जाने की अनुमति दे दी गई। कार्य समिति ने उन्हें तथा शौकत अली को जांच करके रिपोर्ट देने के लिए कहा। यह कार्य ठीक ढंग से न हो पाया। मुसलमान तथ्य पेश करने को तैयार थे। परन्तु शौकत अली ने उन्हें सिखा दिया कि वह ऐसा न करें। परिणाम यह हुआ कि गांधीजी और शौकत अली एकमत रिपोर्ट न दे पाए। यहां से गांधीजी और अली बंधुओं के बीच मन-मुटाव आरम्भ हो गया। यह बात इससे पूर्व एकता सम्मेलन में भी दिखाई दे रही थी।" *

*जे० बी० कृपलानी, गांधी जीवन तथा दर्शन (हिज लाईफ एंड थाट) पृष्ठ 102

इस विच्छेद का रोचक ब्यौरा महादेव देसाई की डायरी मे देखा जा सकता है। ऐसा दिखाई पडता है कि महात्माजी अपनी व्यथा म तडक तीन बजे उठा करते थे और भगवान से मार्गदर्शन की कामना किया करते थे। सितवर का अचानक उत्तर मिला—21 दिन का उपवास। उनके बहुत से मित्रो तथा अनुयायियो न (जिनमे महादेव भी थे) निवेदन किया कि विनाश के लिए वह किसी भी प्रकार से जिम्मेदार नहीं है, उनके लिए पश्चाताप की आवश्यकता नही, उन्होने इसका उत्तर दिया

"गलती मेरी है। क्यो मुझे हिन्दुओ के विश्वास भग का दोषी करार दिया जाना चाहिए। मैने उनसे मुसलमानो के साथ मैत्री करने का कहा था। मैंने उनसे कहा था कि वे अपनी जान तथा माल मुसलमानो को सौप दें, जिससे वे अपने धार्मिक स्थानो की रक्षा कर सकें। आज भी उनसे यही कहता हू कि वे अहिंसा पर चल और इसी ढग मे मरकर अपने झगडे हल कर, मारकर नही। और इसका परिणाम म क्या देखता हूँ? कितने मन्दिरो को अपवित्र किया गया है? कितनी बहनें मेरे पास शिकायत लेकर आई हैं। जैसाकि मैं कल हकीमजी से कह रहा था, हिन्दू महिलाओ को मुसलमान गुण्डो से प्राणो का भय है। कई स्थानो पर वे अकेली बाहर निकलती डरती हैं। मुझे एक पत्र मिला है म यह किस प्रकार सहन कर सकता हू कि उनके छोटे-छोटे बच्चो से किस प्रकार छेडखानी की गई? म हिन्दुओ को किस प्रकार कह सकता हूँ कि वे सब कुछ धैर्य से सहन कर लें? मने आश्वासन दिया था कि मुसलमानो से मैत्री का अच्छा परिणाम होगा। मने उनसे कहा था कि वे उनके साथ मित्रता करे चाहे परिणाम कुछ भी हो। आज यह मेरे बस म नहीं कि म उस आश्वासन को पूरा करु। फिर भी म आज हिन्दुओ स यही कहूगा कि वे मर जाए, किन्तु मारे नही। मै ऐसा केवल अपनी जान देकर कर सकता हूँ। म अपना उदाहरण देकर उन्हें मरने के लिए कह सकता हू।" *

एकता सम्मेलन, जो 21 दिन का अनशन के दूसरे सप्ताह म आरम्भ हुआ, बहुत प्रभावशाली समारोह था और इसमे दी गइ अपीलों तथा मेलजोल के लिए दिए गए आश्वासनो से लगता था कि इसने अनशन

*महादेव देसाई डे-टू-डे विद गांधी खड 4 पृष्ठ 195

को सचमुच सफल बना दिया था। दरअसल राष्ट्रीय पंचायत बोर्ड, जिसे इसने जन्म दिया, केवल मृतजात बच्चा सिद्ध हुआ। वर्षान्त के निकट गांधीजी ने पंजाब की यात्रा की। (गांधीजी कुछ मुस्लिम नेताओं के साथ कोहाट जाना चाहते थे, परन्तु अधिकारियों ने उन्हें मनाही कर दी)। अन्य नेता, जिनमें अली बंधु, हकीम साहिब और डाक्टर असारी भी थे, उनके साथ शामिल हो गए। लालाजी में बहुत लम्बी-चौड़ी बहस हुई, प्रत्येक ने अपने मन की बात कही और दिखाई देता था कि इस अवसर पर विशेष जोर (विधान मण्डलों आदि में) विभाजन के लिए कोई स्वीकार योग्य फार्मूला ढूढ़ने पर दिया था। कोई समझौता न हो सका। यहां पर प्रासंगिक बात यह है कि इन बहसों में, जैसा कि आम अवसरों पर होता था, चाहे वह व्यापक एकता सम्मेलन हो या छोटे आकार की राष्ट्रीय संधि समिति, लालाजी ने बड़े धैर्य और निष्ठा से तर्कसंगत ढंग से समझौता तलाश करने के लिए प्रयत्न किया (विशुद्ध भावुकता से ऊपर उठकर) और वातावरण चाहे कितना ही अविवेकी या असुखद हो, उन्होंने स्थिति के यथार्थ को ध्यान में रखा। उन्होंने हिन्दू श्रोताओं को भी संबोधित किया। उन्होंने साम्प्रदायिक मेलजोल बनाये रखने की आवश्यकता पर अधिकतम बल दिया और लोगों से आग्रह किया कि वे समझौते की भावना अपनाएं। उन्होंने साहस तथा बल की प्रशंसा की, परन्तु जवाबी गुंडागर्दी या इस्लाम या पैगम्बर का अपमान करने की यथासंभव शक्ति से निंदा की। बेलगाव में हिंदू महासभा की बैठकों में (जब कांग्रेस की बैठक वहां गांधीजी की अध्यक्षता में हुई) कोहाट का मामला बहुत छाया रहा। परन्तु वहां लालाजी का भाषण (और कांग्रेस मंच से भी उसी विषय पर दिए गए भाषण) गांधीजी को बिल्कुल आपत्तिजनक नहीं लगा। यद्यपि जब लालाजी ने कांग्रेस की बैठकों में गांधीजी के 'कताई मताधिकार' का विरोध किया, तो गांधीजी ने उनकी कुछ बातों पर आपत्ति करते हुए कहा कि कोहाट के दुखांत ने लालाजी की नींद तथा स्वास्थ्य पर कुप्रभाव डाला है। परन्तु कोहाट के बारे में लालाजी के भाषणों, विशेषकर महासभा की बैठक वाले भाषण ने स्पष्ट तौर पर दिखा दिया कि उनके स्वास्थ्य को चाहे क्षति पहुंची हो उन्होंने अपना संतुलन नहीं खोया था।

लालाजी का व्यवहार तथा सदेश गाधीजी से भिन्न नही था, सिवाय इस बात के कि लालाजी ने अपने सदेश के लिए हिंदू मच का पूरा इस्तेमाल किया और गाधीजी ने अपने आपको "दान" के विरुद्ध घोषित किया, लालाजी यद्यपि गाधीजी के इस सिद्धात की प्रशसा करते थे, फिर भी उन्होने "दान" के लिए धन एकत्र किया।

IV

जिस ढग से अली बधुओ ने कोहाट की घटना के बारे म प्रतिक्रिया दिखाई, उससे विषमता प्रकट हो गई, जिसके कारण महात्मा गाधी का उनके बारे मे भ्रम दूर हो गया। जैसाकि हमने उल्लेख किया कि लालाजी के यहा नेताओ के विचार-विमर्श म (दिसबर 1924) शौकत अली का एकमत योगदान "हाली" के लिए कोलाहल था, जिसे लालाजी ने केवल मसखरेपन का दर्जा दिया, परन्तु गाधीजी अभी भी अली बधुओ पर विश्वास करते थे और उन्हें "खालिस सोना" समझते थे। एक और बातचीत म जब एक अली बधु ने पजाब में हुए खून खराबे को हिंदू मुस्लिम गगा का नाम दिया, तो लालाजी ने स्वाभाविक प्रत्युत्तर मे कहा कि 'गगासरी रामपुर मे है," जहा के रहने वाले अली भाई थे।

अली बधुओ के बारे मे गाधीजी का भ्रम टूटने की प्रगति का पता महादेव देसाई की डायरी से चलता है। हम उसमे से कुछ उद्धरण देंगे। दिसम्बर (1924) के अन्तिम सप्ताह म बेलगाव म महात्मा गाधी ने औपचारिक रूप से निवर्तमान अध्यक्ष मुहम्मद अली से काग्रेस अध्यक्ष का कार्यभार सभाल लिया। कोहाट की घटनाओ के बारे म दोनो म कोई भिन्नता दिखाई नही देती थी, यद्यपि ये घटनाए प्रमुख समस्या तथा चिन्ता का कारण थी। परन्तु केवल कुछ ही दिन बाद बम्बई म मुस्लिम लीग की बैठक हुई और उसमे कोहाट के बारे म एक प्रस्ताव पास किया गया, जिससे गाधीजी को बहुत परेशानी हुई, विशेषकर इस बात के कारण कि यह प्रस्ताव मुहम्मद अली ने रखा था। अगले ही दिन (पहली जनवरी, 1925 को) गाधीजी ने मौलाना को एक पत्र लिखा जिसम जोरदार डाट डपट की गई थी और गहरी निराशा व्यक्त की गई थी। पत्र के बाद हम महादेव का अपना लिखा देखते है

"बापू पहले तो मुझे इस पत्र की प्रति लेने की आज्ञा नहीं दे रहे थे, परन्तु बाद में सहमत हो गए। जब मैंने शौकत अली की लज्जाहीनता की बात की, तो बापू ने कहा, "बिल्ली इस वर्ष के अन्त तक थैले से बाहर आ जाएगी।" बल्कि दो-तीन मास के अन्त तक ही बापू ! मैंने कहा। यह तो और भी अच्छा होगा, बापू का उत्तर था।"*

संशोधित अवधि निशाने के अधिक निकट सिद्ध हुई। क्या शौकत अली की "लज्जाहीनता" का प्रदर्शन मुस्लिम लीग में भी हुआ, यह बात स्पष्ट नहीं। छोटे मौलाना ने जो कांग्रेस प्रस्ताव में भागीदार थे, लीग की बैठक में बिल्कुल भिन्न प्रस्ताव पेश किया और यह प्रस्ताव मुहम्मद अली ने एक अन्य प्रस्ताव के स्थान पर पेश किया जिसे गांधीजी कम आपत्तिजनक समझते थे—यह कम आपत्तिजनक प्रस्ताव अन्य किसी ने नहीं दुर्जेय जफर अलीखां ने रखा था, जिन्होंने बेलगांव कांग्रेस अधिवेशन पर असंतोष व्यक्त किया था।

अभी भी दिखावा बनाए रखा गया और फरवरी के आरम्भ में गांधीजी शौकत अली के साथ रावलपिण्डी पहुंचे, ताकि कोहाट की घटनाओं की जांच कर सकें। कार्यकारिणी ने यह कार्य उन दोनों को सौंपा था। इस जांच का परिणाम स्पष्ट टकराव के रूप में सामने आया—बिल्ली थैले से बाहर आ गई थी और वह भी दो मास में नहीं, बल्कि एक ही मास में।

10-2-1925 की डायरी का शीर्षक है 'स्तब्ध करने वाला रहस्योद्‌घाटन'। हम व्यापक तौर पर उद्धरण नहीं दे सकते, परन्तु कुछ नमूने के उद्धरण देंगे। गांधीजी की जिरह के सामने दो प्रमुख मुसलमान गवाहों ने "अनजाने में ही रहस्योद्‌घाटन करने वाले, परन्तु सच्चे उत्तर दिए"—और ये उत्तर मौलाना के लिए असुखद सिद्ध हुए। डायरी में बताया गया है कि शौकत अली ने 'पीर तथा अन्य सभी लोगों को पूर्व चेतावनी दे दी थी" कि वह गवाही में अपने आंतरिक मतभेदों को व्यक्त न करें। परन्तु पूरी तरह पढ़ाने के बावजूद पीर ने स्तब्ध करने वाले रहस्योद्‌घाटन किए।

*महादेव देसाई डे टू डे विद गांधी खंड 5 पृष्ठ 11°

"प्रतिवर्ष धर्म परिवर्तन करके (कोहाट में) इस्लाम में शामिल होने वालों की संख्या 150 तक पहुंच जाती है। प्रत्येक शुक्रवार को निश्चित ही ऐसे कुछ न कुछ धर्म परिवर्तन होते हैं। ब्याहता महिलाओं का भी धर्म-परिवर्तन होता है। परन्तु कठिन प्रश्न यह होता है कि धर्म-परिवर्तित महिला किसकी पत्नी हो? शरीअत के अनुसार उसे अपने पति के पास जाने की आज्ञा नहीं दी जा सकती।*

गवाहों ने "स्तब्ध करने वाले" ये ब्यान "सरल भाव तथा लापरवाही से दिये, जैसे इसमें कुछ भी गलत न हो"— गांधीजी शौकत अली के "निष्कपट विचार" भी जानना चाहते थे।"

"यह सचमुच ही स्तब्ध करने वाला मामला है। यह बहुत असंगत बात है यदि आप जैसा व्यक्ति भी "उलेमा" के पास जाए और उनसे कुरान तथा शरीअत की व्यवस्थाओं की व्याख्या करने को कहे।"**

मौलाना ने कहा कि उन्हें अरबी नहीं आती। और उन्होंने (गांधीजी से) इसके अतिरिक्त नुकसान वाली कई अन्य बातें भी कहीं। शौकत अली ने टालने तथा अटपटे से उत्तर दिए।"

अगले दिन प्रातः (10 फरवरी) गांधीजी ने "दिल हिला देने वाला प्रवचन" आरंभ किया।

'मैं अब उस व्यक्ति की स्थिति में हूं जिसे अपनी रजाई में सांप देखकर धक्का पहुंचता है और वह उसे पूरी तरह झटकता है और सारे कमरे को पूरी तरह साफ कर देता है। मुझे कोहाट के बारे में आश्चर्यजनक बातों का पता चला है, जिनकी मुझे पहले बिल्कुल जानकारी न थी।†

जब गांधीजी ने अगवा करके बड़े पैमाने पर धर्म परिवर्तन की बात की तो मौलाना ने केवल 'पान की पीक की पिचकारी फेंकी और चुप रहे।'

धक्का पहुंचाने वाली अन्य कई बातें भी थीं—जिनका संबंध कोहाट से नहीं था—अफगानिस्तान से मिली खबरें, जहां जुनूनी लोगों ने विधर्मियों को ईंट-पत्थर मार-मारकर हलाल कर दिया था, और शौकत अली ने इस काम का समर्थन किया था।

---

*वही पृष्ठ 767

**वही पृष्ठ 267

†वही पृष्ठ 764

लालाजी की कसौटी गांधीजी की परख से अच्छी थी, जिन्होंने ऐसी गंदगी को "खरा सोना" कहा था।

आखिरकार नेहरू रिपोर्ट ने अली बंधुओं को उनके सही रंग में पेश कर दिया—प्रजातंत्र, राष्ट्रवाद और राष्ट्रीय कांग्रेस के खुले विरोधी। शायद मृत्यु ने उनको पूरी तरह गुमनाम होने में बहुत शीघ्र हस्तक्षेप किया था।

अनुदान में यह बात बहुत ही आश्चर्यजनक लगेगी कि बहुरूपी अली बंधुओं का कांग्रेस राष्ट्रवाद का प्रवक्ता स्वीकार किया गया था और श्रद्धानंद को ही नहीं, बल्कि मालवीय और लाजपत राय को भी, "सम्प्रदायवादी" घोषित कर दिया गया था। जब तक अली बंधुओं का कांग्रेस में सत्ता प्राप्त रही, उन्होंने सफलतापूर्वक लालाजी तथा कांग्रेस के अन्य कई नेताओं के बीच दूरी बनाए रखी। गांधीजी, लालाजी को बहुत अच्छी तरह समझते थे और अली बंधुओं के प्रयत्नों से पूरी तरह गुमराह नहीं थे, परंतु यह एक तथ्य है कि गांधीजी और लालाजी के बीच अधिक समन्वय उस समय हुआ जब अनिष्ट अली-प्रभाव समाप्त हो गया। राष्ट्रवाद तथा साम्प्रदायिकता के बारे में लालाजी के दृष्टिकोण का सही ढंग से अनुमान लगाने के लिए गांधीजी और अली बंधुओं की कहानी एक प्रामाणिक तथ्य है।

V

अली बंधुओं के बारे में लालाजी का सही निर्णय कि वह इतना धर्मांध है कि उन्हें राष्ट्रवादी नहीं समझा जा सकता, गांधीजी के निर्णय से बहुत पहले हो गया था।

एक बार कई प्रांतों का व्यापक दौरा करने के बाद दिल्ली [illegible] के दौरान लालाजी हकीम अजमल खां से मिलने गए, डाक्टर [illegible] अंसारी और शायद अबुल कलाम आजाद भी उपस्थित थे। [illegible] हिंदू-मुस्लिम तनाव पर पहुंच गई। "हिंदुओं तथा मुसलमानों में शायद पांच-पांच व्यक्ति ऐसे हों, जो स्थिति चाहे [illegible] आपसी सद्भावना तथा पूर्ण स्पष्टता में [illegible], [illegible] लाग-लगाव के पेश कर सकते हैं। मुसलमानों [illegible] आजाद और अंसारी तथा अपने [illegible], [illegible]

लिया। अपनी स्पष्टवादिता के साथ लालाजी ने तुरंत उत्तर दिया, "मैं यह बात स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि मैं अली बंधुओं को अंसारी और अजमल खां से अलग स्तर पर मानता हूं। मेरा विचार है कि मैं उन पर इस निर्विवाद ढंग से विश्वास नहीं कर सकता।"

मामला उस समय चरम सीमा पर पहुंच गया जब मुहम्मद अली ने काकीनाडा में (1923 के अंत में) कांग्रेस अधिवेशन की अध्यक्षता की और अपने अध्यक्षीय भाषण में अन्यायपूर्ण प्रस्ताव रखा, जो आगा खां की उस माहट पर था कि "अछूतों" को हिंदुओं तथा मुसलमानों में बांट दिया जाए। विभाजन के इस वार और अखंड सुझाव ने लालाजी के मन को गहरी ठेस पहुंचाई और जैसा कि हम देख चुके हैं कांग्रेस अध्यक्ष पद से किए गए इस प्रस्ताव के कारण लालाजी ने छूआछात के विरुद्ध देश-व्यापी अभियान चलाने और इस अभियान को अपने कार्यक्रम का प्रथम सूत्र बनाने का निर्णय किया। जिस प्रकार हमने इस अभियान से संबद्ध अध्याय में उल्लेख किया है, लालाजी ने कार्यकारिणी को जो प्रस्ताव दिया और मौलाना ने उसके साथ जो व्यवहार किया (कांग्रेस अध्यक्ष के रूप में) वह लालाजी और अली बंधुओं के बीच खाई को चौड़ा करने के लिए काफी था।

मुहम्मद अली में अन्य प्रतिभाओं के अलावा उनकी अत्यंत कटु लेखनी तथा अत्यंत कटु भाषा भी थी, जिसे वह अपने साथ सहमत न होने वाले व्यक्ति के विरुद्ध तेज डंक के तौर पर इस्तेमाल करने के लिए तैयार रहते थे। जब लालाजी ने कांग्रेस नेतृत्व के कई पहलुओं की आलोचना करनी आरम्भ की, मुहम्मद अली ने अपनी भाषाई गुलेल से उन पर अनेक वार किए और अपने पत्र 'कामरेड' में उनके विरुद्ध अनेक निंदा लेख प्रकाशित किए, जिनमें उनकी कलम से विभिन्न प्रकार के अपमानजनक तथा व्यंग्यात्मक लेख लालाजी के विरुद्ध लिखे गए। इन लगातार निंदा लेखों की लालाजी ने रत्ती भर परवाह न की और उन्हें केवल गाली-गलौच का महत्व ही दिया, परन्तु कुछ क्षेत्रों में इन लेखों को अवश्य ही शरारत करती थी।

लालाजी पर आक्षेप करने के लिए मुहम्मद अली अक्सर कांग्रेस द्वारा स्वीकृत कार्यक्रमों या महात्मा गांधी की अनुमति प्राप्त कार्यक्रमों के विरुद्ध लालाजी के अपधर्मों को चुनते, परन्तु कई मामलों में ऐसे बहानों का सहारा भी न लिया जाता। लालाजी ने सार्वजनिक तौर पर मौलाना के सुझाव का कि दलित

वर्गों का, जिन्हें बाद में हरिजन कहा गया, हिंदुओं तथा मुसलमानों में आधे-आधे बांट दिया जाए, उनके साथ भयानक विरोध खड़ा कर लिया था। इस विरोध को और भी कटु बनाने के लिए लालाजी द्वारा मौलाना के प्रस्ताव के विरोध में आरंभ किये कार्यक्रम का भी दखल था। शायद कोई भी प्रमुख हिंदू नेता, मौलाना के इस प्रस्ताव का, जो उन्होंने अध्यक्ष पद से किया, समर्थन नहीं कर सकता था। परंतु जब उनमें से अधिकतर उसे चुपचाप सुनते रहे, गांधीजी, जो जेल में थे और लालाजी यद्यपि काकीनाडा अधिवेशन में नहीं थे, फिर भी उन्होंने इस शरारत को असफल बनाने के लिए असरदार कारवाई करने का दुस्साहस किया। मौलाना धर्म प्रचार के जोश को न रोक सके, परंतु कांग्रेस के अध्यक्षीय पद से इस प्रकार इसे व्यक्त करना और बिना विरोध के यह संकेत बहुत क्षोभ देने वाला था और इससे मूल्यों का दूषण व्यक्त होता था। इस उल्टे प्रसंग में निस्संदेह लालाजी की भूमिका एक सम्प्रदायवादी की दिखाई देती थी।

VI

उत्साही राष्ट्रवादी के तौर पर लालाजी ने हिंदू समुदाय के प्रति अपने कर्तव्यों को त्यागा नहीं था, मुख्य तौर पर जो काम समाज सुधार के या पिछड़े वर्गों के कल्याण के थे और जहां भी हिंदुओं को किसी विपत्ति का सामना करना पड़ता था, चाहे वह मनुष्य की पैदा की हुई हो या परमात्मा का कार्य हो, वे आशा करते थे कि लालाजी (और मालवीय) तुरंत उनकी सहायता को पहुंचेंगे। इन गतिविधियों के कारण कुछ लोग लालाजी को "साम्प्रदायिक" कहते थे। हम यहां संक्षिप्त तौर पर लालाजी की साम्प्रदायिक गतिविधि को देखना है कि क्या सचमुच ही वह राष्ट्रवाद के उनके काम के विपरीत थी।

निस्संदेह लालाजी की "साम्प्रदायवादी" गतिविधियों में प्रमुख बात उन लोगों के लिए काम था, जिनके साथ 'अछूतों" सा व्यवहार किया जाता था। उनकी इस कार्य में अपने सार्वजनिक जीवन के आरंभ से ही रुचि रही थी, वह इसे सर्वोच्च प्राथमिकता देते थे—हिंदू सुधारक के रूप में, भारतीय राष्ट्रवादी के तौर पर और सबसे अधिक सभी मनुष्यों में आपसी समानता में विश्वास रखने के कारण। यहां उनका कार्य, उद्देश्यों या तौर-तरीकों के कारण राष्ट्रवाद के विपरीत नहीं था। गांधीजी के नेतृत्व में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने इस कार्य को अपने "रचनात्मक कार्यक्रम" के एक भाग के तौर पर अपनाया

और इसी प्रकार यह चलता रहा, शाह मुहम्मद अली के अध्यक्षीय भाषण में इसमें खेदजनक त्रुटि आई या यह विकृत हो गया।

लालाजी ने इस क्षेत्र में अपना राष्ट्रव्यापी कार्यक्रम, "हरिजन सेवा" संस्था की स्थापना के साथ, लगभग एक दशक पूर्व आरंभ किया। सविनय अवज्ञा कार्यक्रम स्थगित किए जाने के बाद, कांग्रेस का विचार रचनात्मक कार्यक्रम आरंभ करने का था, परन्तु जहा कांग्रेस का संबंध था अति महत्वपूर्ण भाग उपेक्षित रहा था। लालाजी ने निष्ठापूर्वक यह कार्य शुरू किया, उन्हें अपने साधन जुटाने थे और राष्ट्रीय कार्यक्रम के लिए "सांप्रदायिक" संस्थाओं का भी इस्तेमाल करना था। सभी महत्वपूर्ण पहलुओं से लालाजी का यह कार्य, गाधीजी द्वारा संघ के माध्यम से किए जाने वाले कार्य का पूर्व-संपादन ही था। लालाजी द्वारा यह कार्य शुरू किए जाने के बाद तुरत ही मुहम्मद अली का वह प्रस्ताव आया जो उन्होंने आगा खां के कहने पर किया था। इसने लालाजी को उसी प्रकार अशांत किया, जिस प्रकार रेमजे मेकडानाल्ड के निर्णय ने (काकीनाडा प्रस्ताव के समान) किया था, जिसका सीधा मसला उद्देश्य कि हरिजनों को हिंदू समुदाय का भाग न माना जाए या उन्हें हिंदू समुदाय का ऐसा भाग माना जाए जिसे अलग किया जा सकता हो। अपनी व्यथा में महात्माजी ने उपवास किया और प्रार्थना की और प्रतिनिधित्व का स्वीकारीय फार्मूला तैयार करवा लिया और हरिजन मंच स्थापित किया। लालाजी ने अशांत होने पर एक पवित्र दिन प्रेरणा चाही—यह पवित्र दिन गुरु गोबिंद सिंह जी का पवित्र दिन था—और उन्होंने घोषणा की और उसके बाद अछूत उद्धार समिति द्वारा आगे की कारवाई आरंभ कर दी।

लालाजी की गतिविधि में एक और सांप्रदायिक" कार्य हिंदू महासभा के साथ उनका सहयोग था। ऐसी संस्था के साथ लालाजी का प्रथम सहयोग, इस शताब्दी के प्रथम दशक में था, जब पंजाबी हिंदू सभा आरंभ हुई थी। यह तारीख महत्वपूर्ण है, क्योंकि लालाजी की ये सांप्रदायिक संस्थाएं एक प्रकार से संविधान की सांप्रदायिक व्यवस्थाओं का परिणाम मात्र थीं। मिंटो ने उस समय सांप्रदायिक निर्वाचन-पद्धति लागू की थी और लालाजी की खीझ के बावजूद गोखले को यह पद्धति स्वीकार करने योग्य लगी थी। हमने इस तथ्य की ओर पहले ही ध्यान दिलाया है, क्योंकि लालाजी सांप्रदायिक चुनाव पद्धति को भारतीय राष्ट्रवाद के विकास के लिए विषैला मानते थे, परंतु

यदि हम मजबूर होकर साम्प्रदायिक आधार पर मतदाताओं तक पहुंचना है, हम ने चाहते हुए भी किसी न किसी प्रकार के साम्प्रदायिक संगठन स्थापित करने होंगे, परंतु राष्ट्रीय लक्ष्य दृष्टिगत रखना होगा। भारतीय आंदोलन के एक ब्रिटिश मित्र ने लालाजी के इस सिद्धांत का संक्षिप्त रूप में इस प्रकार उल्लेख किया

" यदि सांप्रदायिक चुनाव पद्धति से बचा जा सकता, तो प्रजातांत्रिक संस्थाओं को दोनों समुदायों को एक करने के लिए इस्तेमाल किया जा सकता और इस प्रकार उन्हें आर्थिक स्तर के आधार पर इकट्ठे किया जा सकता था। परन्तु साम्प्रदायिक चुनाव-पद्धति पूरे जोर से होने और किसी प्रकार का जोरदार वर्ग हित न होने के कारण हमें समय की गति पीछे की ओर करनी पड़ी है।"

यह स्मरण रखना आवश्यक है कि हिंदू महासभा कई चरणों से गुजरी है और यह संभव है कि लालाजी ने उसकी सभी नीतियों तथा गतिविधियों की पुष्टि नहीं की होगी। (पंजाब सभा में भी लालाजी की सक्रिय रुचि अल्प अवधि की थी, क्योंकि वह उसके अनेक कार्यों को ठीक नहीं मानते थे।) महासभा में लालाजी की गतिविधियों का जायजा लेने वाले किसी भी व्यक्ति के लिए आवश्यक होगा कि वह उस संगठन की केवल उसी अवधि के कार्य का जायजा ले, जब लालाजी को उसके सलाहकारों में निर्णायक अधिकार प्राप्त था।

इस प्रकार देखने से एक बात विशेष दिखाई देगी कि मालवीय लाजपत राय नेतृत्व के अधीन महासभा के चुनाव के साथ कोई खास वास्ता नहीं था। इस प्रकार कांग्रेस जैसे संगठनों के साथ कोई टकराव नहीं था और न ही स्वाधीनता प्राप्ति के संघर्ष को किसी प्रकार कमजोर करने की बात थी। इस प्रकार महासभा से लालाजी का सहयोग परोक्ष रूप में कांग्रेस पार्टी के लिए सहायक हो सकता था। इस बात को स्वयं पंडित मोतीलाल ने स्वीकार किया और वह भी लालाजी के विरुद्ध वाद विवाद के दौरान

'भारत से रवाना होने तक आप कांग्रेस उम्मीदवार के जोरदार समर्थक थे और तब हिंदू महासभा में आपने उनके लिए जोरदार संघर्ष किया। आप वह विशेष बात नहीं कहते जिसने पिछले चार महीनों में आपके विचारों में क्रांति ला दी है।' (लालाजी द्वारा स्वराज पार्टी से त्यागपत्र देने के पैरा 3 के उत्तर में पंडित मोतीलाल के 30 अगस्त के उत्तर से उद्धृत)।

---

*जोशिया सी० वजवुड का 8 अक्तूबर 1926 का लालाजी के नाम पत्र जो 7 नवंबर 1926 को द पीपुल में प्रकाशित हुआ।

लालाजी का सभा पर प्रभाव राष्ट्रवादी हित के लिए लाभकारी था, शायद उसकी आवश्यकता भी बहुत थी। (एक "विशेष घटना" भी थी जैसा कि हम देखेंगे। मोतीलालजी को मभवत बहुत भ्रामकपूर्ण सदेह था और लालाजी इसके बारे म खुलकर नहीं कहते थे)। उस समय भी जब लालाजी न स्वराज पार्टी से त्यागपत्र दे दिया और चुनाव के लिए इडिपेंडेंट काग्रेस पार्टी की स्थापना के लिए मालवीयजी को सहयोग दिया, तो उनका उद्देश्य उत्साही लोगो का नियत्रण म रखना था, जो महासभा द्वारा अपन उम्मीदवार खडे करने के पक्ष म थे।

बबई म हिंदू सम्मेलन म किसी व्यक्ति न "गर हिंदू" के उपस्थित होने पर आपत्ति की, यह गैर-हिंदू प्रसिद्ध पारसी विद्वान जी० के० नरीमन थे। लालाजी ने सीधे ही यह आपत्ति रद्द कर दी (इस बात की चर्चा स्वय नरीमन ने की*) और कहा कि कोई भी व्यक्ति हिंदू मुस्लिम या ईसाई-सम्मेलन म शामिल हो सकता है, शर्त यह है कि वह भारत से प्रेम करता हो। हिन्दू सभा म लालाजी के कार्य की यह विशाल हृदय उनकी विशेषता थी।

उन्होंने सदा ही इस बात का विशेष ध्यान रखा कि उनके अपने समुदाय के लिए उनका काम इस ढग से किया जाए कि कुल मिलाकर उस महान लक्ष्य को योगदान प्राप्त हो सके, जिसके लिए उन्होंने अपने आपको समर्पित किया हुआ था–भारत की स्वाधीनता और महान भारतीय राष्ट्र के निर्माण। उन्होंने हिंदू मुस्लिम एकता को बढावा देने की सोची और इसके लिए साम्प्रदायिकता सगठनो द्वारा काम किया–निस्सदेह अपने राष्ट्रवादी दृष्टिकोण से, जो काम सहायक ही नही अनिवार्य भी था। उनका दृष्टिकोण और तरीके उन नेताओ से स्पष्ट तौर म अलग थे जो सकीर्ण एव साम्प्रदायिक सीमाओ को पार नही कर सकते थे। उन हिंदू नेताओ से भी, जो भारतीय सदर्भ के यथार्थ की उपेक्षा करते थे और सभी हिंदू सगठनो से दूर रहते थे कि कही उनके सम्पर्क से उनका राष्ट्रवाद दूषित न हो जाए। इनमे कई महानुभावो ने निजी तौर पर लालाजी का पूर्ण समर्थन देने का आश्वासन दिया था, परन्तु सार्वजनिक तौर पर उनका व्यवहार बिल्कुल अलग था। बलगाव मे श्रीनिवास अयगार ने असल मे उनसे कहा था "मैं आपके दृष्टिकोण से सहमत हू परन्तु चाहूगा कि एक वर्ष के लिए मुझे अलग रहने दिया जाए।'

---

* द पीपुल लाजपत राय अंक 13 अप्रल 1929

VII

अन्य कई लोगों के समान लालाजी भी महसूस करते थे कि खिलाफत आन्दोलन के साथ गलत ढंग से निपटने के कारण धर्म को बहुत अधिक छूट दे दी गई थी। वह खिलाफत मांग के लिए मुसलमानों का पूरे जोर से समर्थन करते थे परन्तु जब कुछ अधिक जोशीले लोगों ने अनवर पाशा के सैनिकों या अफगानिस्तान के सैनिकों के भारत आने के गीत गाने शुरू कर दिए, तो लालाजी चुप न रहे और विशेषतौर पर लालाजी ने जो महसूस किया उसे व्यक्त करने के लिए खिलाफत का मंच ही चुना। सर तेज बहादुर सप्रू ने, जो हिन्दू सभाई नहीं थे, लालाजी को लिखा

"खिलाफत सम्मेलन की दूसरी बैठक में आपके जोशीले तथा स्पष्ट भाषण का ब्यौरा पढ़कर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई। मैं सोचता हूँ कि यह हमारा कर्तव्य है कि शौकत अली तथा उनके मित्रों को बता दें कि हम अपनी "मुक्ति" के लिए अफगान मित्रों के आने की संभावना की कल्पना भी नहीं कर सकते। यह सरासर बकवास तथा शरारत है और मुझे डर है मुसलमान समुदाय में हमारे कुछ मित्रों ने असहयोग आन्दोलन को जो समझा है वह गांधीजी के असहयोग आन्दोलन से बिल्कुल भिन्न है यद्यपि मैं गांधीजी के विचार से भी सहमत नहीं हूँ। परन्तु चाहे कोई व्यक्ति श्री गांधी के साथ सहमत न हो, उनके विचारों का सम्मान अवश्य करता है। परन्तु शौकत अली तथा उनके मित्रों के साथ सहमत होना बिल्कुल असंभव है, जो यह स्वप्न लेते हैं कि अफगानिस्तान भारत का सहायक और मुक्तिदाता है। मुझे यह सुनकर अति प्रसन्नता हुई है कि आपने उन्हें बता दिया है कि हिन्दू इसके बारे में क्या सोचते हैं।

जब भारतीय महाअरीन युवक की मध्य एशिया में किसी स्थान पर अनवर पाशा से भेंट हुई, तो बहादुर तुर्क ने विनम्रता के साथ उनसे जो पहला प्रश्न पूछा, वह लाजपत राय के बारे में था—एकमात्र भारतीय नेता, जिसमें उसने गहरी रुचि दिखाई। युवा तुर्कों तथा मिस्री लोगों में भी लालाजी के मित्र थे। जब भी उनके शिष्टमंडल भारत आए लालाजी को उनका अतिथि सत्कार करने गर्व महसूस हुआ, जिस प्रकार उनके देश में लालाजी को उनकी मेजबानी स्वीकार करके होता था।

VIII

कोहाट की दुखांत घटना के बाद, साम्प्रदायिक जुनून की जो कारवाई लालाजी को बहुत हृदय विदारक लगी, वह थी श्रद्धानंद की हत्या। परंतु इनमें से किसी भी घटना ने, जब भी अवसर मिला, समझाने कराने के उनके प्रयत्नों से न रोका। चाहे उन्हें व्यक्तिगत तौर पर धमकियां भी दी गई। श्रद्धानंद की हत्या के कुछ दिन पश्चात उन्हें एक गुमनाम पत्र मिला जिसमें धमकी दी गई थी कि "संगठन' की उनकी गतिविधियों के लिए उन्हें अपनी जान की कीमत देनी पड़ेगी। उन्होंने यह मूल पत्र तथा जिस लिफाफे में वह पत्र आया था, वह लाहौर के जिला मजिस्ट्रेट को भेज दिया। लगभग उन्हीं दिनों एक अनजान व्यक्ति ने कोर्ट स्ट्रीट के उनके मकान पर उन पर संदिग्ध ढंग से झपटने का यत्न किया था। जब उससे पूछा गया तो वह अपने उद्देश्य के बारे में कोई संतोषजनक उत्तर न दे पाया, ऐसा दिखाई देता था वह बहुत भयभीत हो गया था। यह बिल्कुल स्पष्ट दिखाई देता था कि यह मुसलमान था और किसी साधारण काम के लिए नहीं आया था। लालाजी ने उसे वहां से चले जाने को कह दिया और उसे पुलिस के हवाले करने से इंकार कर दिया। इन परिस्थितियों में लालाजी ने एक नई आदत अपना ली थी, वह जेब में रिवाल्वर डाल कर जाने लगे थे। इसके अतिरिक्त उनके आसपास रहने वाले लोगों ने इस बात पर जोर देना आरंभ कर दिया कि यथा संभव वह अकेले घर से बाहर न जाया करें। परंतु किसी भी घटना के बारे में हो-हल्ला न किया गया—न धमकी भरे पत्र के बारे में और न आए संदिग्ध व्यक्ति के बारे में। जहां तक मुझे याद है उनकी समाचार पत्रों में भी चर्चा न हुई।

IX

लालाजी ने महसूस किया कि गांधीजी का धर्म पर जोर, जो महात्मा के लिए सभी बातों से बढ़कर था, आखिर में जाकर उलझन पैदा करेगा, क्योंकि इसमें उस बात की उपेक्षा की गई थी, जो मंदिर की सबसे बड़ी विशेषता थी। यह अकारण नहीं कि अंग्रेजी शब्द फनेटिक, जिसका अर्थ जुनूनी है, शब्द फनम के मूल से है, जिसका अर्थ मंदिर है।

लालाजी का सदा ही प्रयत्न था कि दोनों समुदायों के बीच किसी ठोस और उचित ढंग से निर्धारित समझौते पर पहुंचा जा सके जिसमें आपसी समानता और समझौते की बात हो। उन्हें इस बात के लिए सहमत नहीं किया जा सकता

था कि (हिंदुओं द्वारा) कोरा चैक देने जैसी उच्च सद्भावना दिखाई जाए और यह चैक मुस्लिम नेता भरें, या खानदानी मुसलमानों (दूसरे दशक के आरंभ में यह वाक्य गांधीजी को बहुत मनपसंद था) में निर्विवाद विश्वास समस्या का हल कर सकता था। लालाजी को इतिहास के अध्ययन से समकालीन भारतीय स्थिति के अनुभव से, ऐसे प्रचार की पुष्टि होती दिखाई नहीं देती थी। आज इस बात को आमतौर पर स्वीकार किया जाता है कि 'कोरे चैक" वाले रवैये के कारण किसी सीमा तक हिंदुओं की सहानुभूति खोने का कारण बना, इसके साथ ही मुसलमान भी इस पर विश्वास नहीं करते थे और इसे कुछ कुटिलता या टालने वाली कार्रवाई समझते थे।

लालाजी ने तीसरे दशक के आरंभ में गांधीजी के आदर्शवादी रवैये पर अधिक आशाएं नहीं लगाई थीं। इसमें व्यावहारिकता नहीं थी और लालाजी के दृष्टिकोण में व्यावहारिक राजनीति पर इसका प्रभाव नहीं हो सकता था।

लालाजी हिंदू-मुस्लिम प्रश्न पर अपने रवैये में अपने ही ढंग से दृढ़ रहे अर्थात कुछ बुनियादी सिद्धांतों के प्रति मजबूत रहे (जैसे वृक्ष दृढ़ रहता है), फिर भी ब्यौरे के बारे में समझौता करने के लिए तैयार रहते थे (जैसी लता में लचक होती है)। उनके विचारों का यह दौर जिसका हम यहां जिक्र कर रहे हैं अमरीका में उनके निवास के दौरान आरंभ हुआ जब उन्होंने साम्प्रदायिकता के विरुद्ध जोरदार घोषणा की जिसका हम पहले ही उल्लेख कर चुके हैं। जब बाद में उन्होंने देखा कि हिंदुओं को साम्प्रदायिक मंच पर संगठित करने की आवश्यकता है, उन्होंने जो चेतावनी पहले दी थी अपने सामने रखी कि वह हिंदू महासभा को उस प्रकार खतरनाक ढंग से इस्तेमाल करने की आज्ञा नहीं देंगे। उन्होंने अंत तक हिंदू महासभा को चुनाव में अपने उम्मीदवार खड़े करने की अनुमति न दी ताकि इस प्रकार राष्ट्रीय कांग्रेस के साथ झगड़ा न हो जाए। विचारों का जो दौर अमरीका में हिंदू-मुस्लिम मतभेदों से संबंधित घोषणा से आरम्भ हुआ था, अंत तक जारी रहा, क्योंकि अपने अन्तिम समय तक उनका अधिकतर समय तथा शक्ति नेहरू (मोतीलाल) द्वारा तैयार समझौते के मसौदे को कार्यान्वित करने में ही लगी। अन्तिम अध्यक्षीय भाषण जो लालाजी ने लिखा और अपने अंत से तीन सप्ताह से भी थोड़े समय पूर्व इटावा में हिन्दू सम्मेलन में दिया, नेहरू रिपोर्ट के आधार पर हिंदू-मुस्लिम समझौता लागू करने के लिए भावात्मक निवेदन था। यह तथ्य कि इस मामले

पर लालाजी और मोतीलालजी में पूरी सहमति थी, इस बात का अकाट्य प्रमाण है कि दोनों के परिपक्व विचार इस समस्या पर समान थे और दोनों एक ही परिणाम पर पहुंचे थे और एकता बनाए रखने के लिए एक दूसरे जितने ही उत्सुक थे। उदाहरण के तौर पर लालाजी ने जो बात हिंदू सभा के मंच से कही, मोतीलाल जी उस मंच का प्रयोग नहीं कर सके थे। और एक व्यावहारिक राजनीतिज्ञ की तरह मोतीलालजी ने अवश्य ही यह भांप लिया होगा कि नेहरू स्कीम को बढ़ावा देने के लिए महासभा पर लालाजी का प्रभाव कितना लाभकारी तथा आवश्यक था।

स्वाधीनता के बाद और बटवारे के बाद भी हिंदू-मुस्लिम एकता की समस्या राजनीतिज्ञों को उलझन में डाले हुए थी। परन्तु बुनियादी तौर पर भारत के नए मानचित्र में मुसलमानों के प्रतिनिधित्व के बारे में नेहरू-स्कीम के प्रस्ताव ही भारतीय संविधान में अपनाए हैं। इससे यह समस्या हल नहीं हुई, इसका अर्थ यही है कि इस समस्या का पूर्ण समाधान नहीं हो सकता और यह समझौता ही इसका आंशिक समाधान है।

लालाजी ने हिंदू-मुस्लिम मतभेदों का बड़ी ईमानदारी से व्यावहारिक तथा यथार्थपरक अध्ययन किया, जो 1924 में समाचार पत्रों के लिए लिखे गए 13 लेखों की शृंखला में प्रकाशित हुआ। जिस पुस्तिका में ये लेख दोबारा प्रकाशित किए गए हैं उसका प्रत्येक पन्ना एकता के प्रति उनकी गहरी इच्छा को व्यक्त करता है और उनमें जो सुझाव दिए गए हैं उनमें से अधिकतर आज भी सत्य हैं, यद्यपि 1947 में भारत का जो मानचित्र फिर से बना है उसने समय की कई अन्य टिप्पणियों को गलत सिद्ध कर दिया है।

जो व्यक्ति लालाजी के 'सम्प्रदायवाद' और राष्ट्रवाद का समुचित जायजा लेना चाहता हो हम उसे सुझाव देंगे कि वह बड़ी सावधानी से उस पुस्तिका का तथा हिंदू सम्मेलनों में दिए गए भाषणों का ध्यान से पढ़े।* एकता के लिए उनकी आकांक्षा और इसके लिए उनके निष्ठापूर्ण प्रयत्नों की उपेक्षा नहीं की जा सकती, चाहे उनकी ओर से दिए गए सुझावों की खूबियां कुछ भी हों।

लालाजी केवल एक समझौता ही नहीं चाहते थे, क्योंकि वह अच्छी तरह समझते थे कि केवल ऐसा करने में ही समस्या का असरदार समाधान नहीं

*हिंदू मुस्लिम समस्या पर यह रचना वी० सी० जोशी ने 'लाजपत राय संस्करण भाग 2' में 'लाजपत राय राइटिंग्स एंड स्पीचेस' में पृष्ठ 170-2?? में प्रकाशित हुई है।

हो सकता। एकता का असल काय तो शिक्षा के माध्यम से होना था और इसमें लालाजी का योगदान मार्गर्भित है—मुस्लिम शासन के इतिहास का भावारा लिखने की उलझनपूर्ण समस्या से निपटने की—जो उन्होंने राष्ट्रीय शिक्षा के बारे म अपनी पुस्तक में कही। इसमें कोई सदेह नही कि डॉ० जाकिर हुसैन विशेषतौर पर लालाजी के इस योगदान से बहुत प्रभावित हुए थे, जब उन्होंने इस पुस्तक के शताब्दी सस्करण का बहुत ही प्रशसात्मक प्राक्कथन लिखा।

X

नेहरू-स्कीम के लिए केवल हिंदुओ का समथन प्राप्त करने के लिए ही मोतीलालजी को लालाजी पर अधिक निभर नहीं रहना पडा, बल्कि जिन्ना जिन्हें प्रमुख मुस्लिम नेता का समथन प्राप्त करने के बारे म यदि उन दिनो के सभी आकडो का अध्ययन किया जाए, तो पता चलेगा कि लालाजी का योगदान अन्य किसी काग्रेस नेता के मुकाबले बहुत अधिक था। लालाजी ने साईमन कमीशन का सयुक्त विरोध करने के लिए प्रयत्न किया और जिन्ना से पूर्ण समथन प्राप्त किया। अपने अतिम दिनो म उन्होंने फिर जिन्ना से सपक बनाया हुआ था ताकि नेहरू-स्कीम पर विचार करने के लिए सवदलीय सम्मेलन के लिए उनका समथन लिया जा सके।

लालाजी को एम० ए० जिन्ना के साथ मिलकर काय करने म आमतौर पर कोई कठिनाई नही होती थी। उन्होंने असहयोग आदोलन से पहले के दिनो म अक्सर इकट्ठे काय किया था और यद्यपि गाधीजी के सत्ता में आने पर जिन्ना ने काग्रेस छोड दी थी, उन्होंने उस समय फिर मिलकर काय किया, जब लालाजी विधान सभा के लिए चुन गए थे—और उन्हें अक्सर एक दूसरे से विचार विमश करते हुए देखा गया था। यह बातचीत विधान सभा की काय सूची के बारे म नही, बल्कि हिंदू मुसलमान सबधो के व्यापक पहलुओ के बारे म होती थी। वे हमेशा एक दूसरे से सहमत नही होते थे और कई बार उनके मतभेद बहुत तीक्ष्ण होते थे और वे एक दूसरे की सावजनिक तौर पर बडे जोश और जोर से आलोचना करते थे, परतु यह सदा ही सभव होता था कि यह मालूम हो सके कि मतभेद का कारण क्या है और वे कहा तक एक दूसरे से मिलकर काम कर सकते है। साइमन कमीशन का बहिष्कार करने मे सहयोग इसका एक उदाहरण है। विधान सभा के दिनो म जिन्ना अनेक बार लालाजी के कमरे मे चले आते बिना पहले से निश्चित किये या बिना बताए। कई बार तो वह

एक एक दिन म ही कई वार इस प्रकार आया करते थे। लालाजी भी इसी प्रकार उनमे मिलने चले जाते और अक्सर बातें करते हुए दोनो इकट्ठे ही खडे हो जाते और वार्तालाप जारी रखने के लिए उसी प्रकार मालवीयजी के पास पहुच जाते। कोई औपचारिकता नहीं थी, बातचीत का परिणाम समझौता होता था या नहीं कभी यह प्रश्न नहीं उठाया कि कौन किसे मिलने जाएगा। तीसरे या चौथे दशक मे जो मामूली बात आमतौर पर बातचीत करने वाला मे रुकावट बनती थी, व नहीं थी। केन्द्रीय सभा म जिना की कोई मुस्लिम लीग पार्टी नहीं थी, वह निर्दलीय सदस्यो के एक छोटे से गुट के नेता थे। स्वराज पार्टी के नेता और निर्दलीय सदस्यो के नेता मे सबध इतने सुखद नही थे जितने विपक्ष के दो नेताओ के होने की आशा हो सकती है। लालाजी और जिना साम्प्रदायिक समझौते के लिए कोई सतोषजनक फार्मूला चाहे न ढूढ सके हो, परतु विधान सभा मे अनेक मामलो म वे एक दूसरे का पूर्ण सहयोग दे सकते थे।

XI

1926 के चुनाव की चर्चा करते हुए जवाहरलाल नेहरू ने अपनी आत्मकथा म लिखा है *

"मैं और लालाजी गर्मियो म जेनेवा म मिले थे और बातचीत से मैंने यह अनुमान नही लगाया था कि वह काग्रेस पार्टी के विरुद्ध आक्रामक रवैया अपनाने का इरादा रखते है। परतु चुनाव अभियान के दौरान उन्होने कुछ स्पष्ट आरोप लगाए, जिनसे पता चलता था कि उनका मन किस ढग से काम कर रहा था। उन्होने काग्रेस के नेताओ पर आरोप लगाया कि वे भारत से बाहर लोगो के साथ षड्यत्र कर रहे है। उन्होने यह आरोप भी लगाया कि ऐसा ही षडयत्र काबुल म काग्रेस की शाखा स्थापित करने के लिए किया गया है।

'मुझे याद है कि जब मैंने भारतीय समाचार पत्रो म लालाजी द्वारा लगाए गए आरोपो के बारे म पढा, तो मैं स्तब्ध रह गया। काग्रेस सचिव के तौर पर मुझे अपनी पार्टी के बारे म पूरी जानकारी थी। काबुल-समिति

* पृष्ठ 158 159

को सबद्ध करने म मैंने स्वय कारवाई की थी। देशबधु दास न इस मामले म पहल की थी। मुझे मालूम नही लालाजी को इस मामले म गलतफहमी कैसे हो गई । सभव है उन्होंने कई अफवाहो पर विश्वास किया हो और मेरा विचार है वह हाल ही मे मौलवी उबेदुल्ला के साथ हुई बातचीत म प्रभावित हुए हो, यद्यपि उस बातचीत म कुछ नहीं था जो मुझे असाधारण दिखाई दे।'

स्पष्ट है कि जवाहरलालजी को यूरोप म रहने के कारण सभी बातो की जानकारी नही थी, नही तो वह अन्य महत्वपूर्ण मामलो के मुकाबले, जो लालाजी के अभियान मे प्रमुख थे, काबुल काग्रेस समिति को इतनी प्राथमिकता कभी न देते, जबकि काबुल कमेटी का उन्होंने अपने भाषणो मे शायद ही उल्लेख किया हो।

परन्तु काबुल काग्रेस कमेटी का अपना योगदान भी था असल अभियान के अग के रूप म नही, बल्कि पृष्ठभूमि के रूप मे, जिन्होंने लालाजी को रवये को प्रभावित किया और उनके मन मे गहरे तथा काले सदेह उत्पन्न किए, जो उन सदेहो से भी भरे थे, जो मालाबार, मुलतान, कोहाट तथा अन्य स्थानो के लगातार दगो ने उत्पन्न किए थे।

लाहौर जेल म हबीबुरहमान ने जो सदेह उत्पन्न किए थे, वे और उग्र हो गए थे उन घटनाओ के कारण जिन्हें उबेदुल्ला घटना कहा जाता है, क्योकि भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस की वह शाखा स्थापित करने का श्रेय मौलवी उबेदुल्ला सिधी को जाता है। उबेदुल्ला घटना का उल्लेख विशेषतौर पर करने की आवश्यकता है क्योकि इसका प्रभाव, वास्तविक या काल्पनिक, 1926 के चुनाव पर बहुत महत्वपूर्ण था और इससे भी अधिक लालाजी के विचारो तथा दृष्टिकोण तथा समकालीन काग्रेस नेताओ के प्रति व्यवहार पर बहुत अधिक था। इसके अतिरिक्त बाद मे होने वाली घटनाओ की दृष्टि मे भी इसका महत्व था।

सबसे पहले ठोस तथ्य अगस्त 1924 मे उबेदुल्ला इस्ताम्बुल मे लालाजी से मिले, उनके मुलाकाती कार्ड पर लिखा था कि वह काबुल काग्रेस समिति के कार्यकर्ता थे और मौलवी ने महाद्वीप के गणराज्यो के सघ की एक छपी हुई योजना लालाजी को दी, यह स्कीम समिति की ओर से जारी की गई थी।

भारत लौटने पर लालाजी ने, जिन्होंने पहले ऐसी किसी समिति के बारे में नहीं सुना था न ही गणराज्यों के संघ के बारे में, अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के मुख्यालय में (जो उन दिनों इलाहाबाद में था) पूछताछ की, जहां से पुष्टि हुई थी कि काबुल समिति को 1922 में संबद्ध किया गया था जब देशबंधु कांग्रेस अध्यक्ष थे और लालाजी जेल में थे।

मुलाकाती कार्ड में एक त्रुटि थी, क्योंकि काबुल में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की कोई कुछ नहीं थी और इसके अतिरिक्त, कांग्रेस कार्यकारिणी का सदस्य होते हुए वह ऐसी व्यवस्था से कैसे अनजान रह सकते थे? शायद इसकी स्थापना बिना आज्ञा की गई थी। लालाजी की पैनी दृष्टि इस नई स्कीम की चाल को ताड़ गई और उन्होंने समझ लिया कि यह चाल भारत का विभाजन करने के लिए है ताकि इस प्रकार एक स्वतंत्र मुस्लिम राज्य की स्थापना हो सके। काबुल को ऐसी चाल में दिलचस्पी हो सकती थी। उबैदुल्ला ऐसा व्यक्ति था जिसके इरादों की विशेष जानकारी नहीं थी, परंतु उसका क्या इरादा था? और इस सबसे अधिक कि कांग्रेस का क्या अधिकार था कि वह उसे अपनी मांग और अधिकार का उस प्रकार प्रयोग करने दे, जिसकी झलक उन्होंने काबुल समिति की स्कीम के रूप में देखी थी? छद्मावरण के बारे में उन्हें कोई संदेह नहीं था, जो कुछ उसके पीछे था वह खतरनाक हो भी सकता था और नहीं भी, यदि खतरनाक था भी तो कितना? परन्तु सावधानी से जांच करने तथा चौकसी बरतने की आवश्यकता की जरूरत थी।

मन में आनेवाले भय लालाजी ने प्रमुख नेताओं के साथ उनके बारे में बात करनी चाही। परन्तु असल सवाल (इस बात पर जोर दिया जाना चाहिए) तो उनकी प्रतिक्रिया में था जो 'तो क्या हुआ?' के रूप में ... लापरवाही वाले व्यवहार और प्रश्न की उपेक्षा करना तक थी। उनके अपने साथियों तथा सहयोगियों द्वारा जो व्यवहार था, इस प्रकार का व्यवहार अति बुरा था।

अब यह समय आ गया था कि भारत ... का व्यावहारिक तौर पर और नक्शे के आधार पर विभाजन किया जाए। छद्मावरण के पीछे छिपी बातों के बारे में अब कोई संदेह नहीं था। एक सिख परिवार में पैदा हुए लड़के ने इस्लाम कबूल कर लिया और अपना नाम उबैदुल्ला सिंधी रख लिया। जब यह बड़ा हुआ तो उसने अपना जीवन इस्लाम की सेवा में अर्पित

करने का निर्णय कर लिया और अपने को भारतीय धर्मतत्वा की एक विचार-धारा से पूरी तरह् जोड लिया, जिसने मुगल साम्राज्य के पतन से लेकर उस समय तक पीढ़ी-दर पीढ़ी यह दृढ इच्छा कायम रखी थी कि धर्म के आधार पर एक मुस्लिम राज्य की स्थापना की जानी चाहिए। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए बड़े-से-बड़ा बलिदान भी कम था। साधनो मे छद्म वरण, विदेशी मुस्लिम शक्तियो के साथ समझौते और बाद मे—प्रथम विश्व महा युद्ध के पश्चात भारत की स्वाधीनता के लिए प्रयत्न करने वाली राष्ट्रवादी तथा क्रांतिकारी शक्तियो के साथ काय करना। दूसरे दशक मे इस विचारधारा के उपदेशो, तरीको तथा उद्देश्यो की जानकारी प्राप्त करना कठिन था। आज उस घटना का स्मरण करने वाला कोई भी व्यक्ति, जो ठास तथ्यो पर व्यवहारिक जाच करेगा, लालाजी की पैनी दृष्टि की प्रशसा किए बिना नही रहेगा कि उन्होने इस्तबुल की एक ही भेंट मे दूर-दृष्टि से उस बात को भाप लिया था जो छद्मावरण के पीछे बडी चालाकी से छिपी हुई थी और दास तथा नेहरू पिता-पुत्र को सावधान कर दिया था। लालाजी को उस समय पृथक्ता की गध आ गई जब कि अन्य लोगो को कोई संदेह नही था।

परतु वह "पृथकता" की सावजनिक चर्चा करते हुए झिझकते थे कि कही ऐसा न हो कि इस सावधानी से परिस्थितिया बिगड जाएं और यह एक जीवत समस्या बन जाए, जब कि यह सभव था कि चौकसी और अनभवी व्यवहार से इस बुराई को आरभ मे ही समाप्त किया जा सकता था। उनका यह पूर्वाभास जो अधिकतर उन्होने उन व्यक्तियो के साथ निजी बातचीत मे ही व्यक्त किया, जिनके साथ वह उस विचार के बारे म पता करना चाहते थे और जो उस समय एक बेसिर-पैर की कथाएं कहते थे—उनकी मृत्यु के दो दशक मे ही बडी ठोस वास्तविकताएं बन गया। इतिहास के निर्णय ने इस विवाद को समाप्त कर दिया, जब उस पूवज्ञान को भविष्यवाणी सिद्ध कर दिया। यहा जिस बात के उल्लेख की आवश्यकता है वह यह है कि उबेदुल्ला घटना 1926 के चुनाव मे एक महत्वपूर्ण सहायक तथ्य थी, क्योंकि यद्यपि लालाजी ने सीधे तौर पर उबेदुल्ला की चर्चा न की और न ही खुलेआम पृथकता का उल्लेख किया, फिर भी मजबूर हो कर उन्होने नेताओं की असावधानी और उनकी लापरवाही के रवये के लिए आलोचना की, जो उन्होने बुनियादी महत्व के मामलो के प्रति अपनाया था। चुनाव

प्रचार म काफी कटुता बढ़ी और इस प्रकार कुछ समय के लिए इसके कारण लालाजी और कुछ अय नेताओ के बीच दुर्भाग्यपूण अनबन हो गई।*

इस घटना का राजनीति के प्रति लालाजी के दृष्टिकोण पर क्या प्रभाव पडा उसका इस अध्याय मे सक्षिप्त सार इस प्रकार है

(क) "पृथकता" की यह छद्मावरण योजना या धम के आधार पर मुस्लिम राज्य स्थापित करने की योजना ने साप्रदायिक चुनाव पद्धति के बारे म उनकी आश काओ की और पुष्टि कर दी, विशेषकर इसने उन्हें साप्रदायिक चुनाव पद्धति के विरोध मे और कठोर बना दिया, क्योकि इसका तकसगत परिणाम उन्ह "पृथकता" के रूप मे दिखाई दे रहा था। इसलिए यह अनिवाय था कि केवल छद्मावरण वाली उबेदुल्ला योजनाओ से ही सावधानी न बरती जाए, बल्कि साप्रदायिक चुनाव पद्धति के विस्तार करने का भी विरोध किया जाए और दृढ़ता के साथ साप्रदायिक चुनाव पद्धति पर आधारित समझौते के फामूला का डटकर विरोध किया जाए।

(ख) राष्ट्रीय नेताओ को काबुल समिति जैसी योजनाओ से सावधान रहना चाहिए। इस मामले म असावधानी भारतीय एकता के लिए हानिकारक हो सकती है।

विरोधाभास की बात तो यह है कि उबेदुल्ला विचारधारा वाले लोग चौथे दशक के आरभ मे लीग द्वारा तयार की गई विभाजन की स्कीम के विरुद्ध दिखाई देते थे। इसम अतर केवल यह था कि इस विचारधारा के उलमा ब्रिटिश सत्ता के साथ बातचीत को पसद नही करत थे और अपने अतिम लक्ष्य (अभी भी गुप्त) मे वह अभी भी पूरी तरह धमतत्रीय थे। "पृथकता" के बारे मे लालाजी के सदेह दोनो पर लागू होते थे, यद्यपि काग्रेस खिलाफत सहयोग की समाप्ति के बाद, उबेदुल्ला विचारधारा, गुप्त ढग से काय करने के कारण और पार न की जा सकने वाली धमतत्रीय बाधा खडी करने के कारण जो स्थायी एकता के विरुद्ध थी, एक गभीर विनाशकारी थी।

*इस दुघटना का पूरा विवरण इसी लेखक की पुस्तक द अनहोल्ड प्रोफेट में दिया गया है।

हमने प्रमुख घटनाओ की ओर ध्यान दिला दिया है, जो दगो मे उत्पन्न होने वाले सामान्य निराशावाद के अतिरिक्त लालाजी को एकता के बारे म और अधिक निराशावादी बनाती थी—लाहौर जेल मे स्पष्टतापूण वाद-विवाद, मुहम्मद अली का अध्यक्षीय भाषण और उबेदुल्ला घटना । इन निराशाजनक प्रभावो के बावजूद लालाजी ने एकता के बारे म अपन प्रयत्नो में बिल्कुल ढील न आने दी। ऐसी कठिनाइयो के कारण प्रयत्न और बढान की आवश्यकता थी। जेल से बाहर आते ही उन्होंने असारी के सहयोग से "राष्ट्रीय सघ" तैयार करने का काम आरभ किया। उबेदुल्ला से भेट के बाद उन्होने तेरह लेखो की शृखला लिखी, जो एक ही समय कई समाचार-पत्रो मे प्रकाशित कराई और उसके पश्चात् उन्हें एक पुस्तिका के रूप मे जारी किया। यह इस विषय पर लालाजी का बहुत ही सोचा समझा और निष्ठापूण योगद न था। मुझे नही मालूम कि किसी अय व्यक्ति न इतने कष्ट उठाकर सारी समस्याओ तथा कठिनाइयो को इतने विस्तार मे पेश किया हो और उनका सामना करने के लिए गभीरतापूर्वक विचार करने के लिए सुझाव दिए हो और वह भी न्यायोचित तथा आपसी समझौते की भावना से।

विशेष बात तो यह है कि ये लेख लिखते समय लालाजी के मन पर 'पृथकता" की पूव सूचना की बात छाई हुई थी, उन्होंने इन लेखो म काबुल-स्कीम तथा उसके प्रवतक के बारे मे एक शब्द भी नही लिखा, परतु कुछ रहस्यमय ढग मे उन्होंने इस शृखला का अत इस प्रकार किया

"मने वह सब कुछ नही कहा, जो मै कहना चाहता हू। मैने जान बूझकर कुछ महत्वपूण और अरुचिकर तथ्य, जो हाल ही मे मेरी जानकारी में आए है, नही दिए, इस आशा के साथ कि उनका प्रचार करने की कोई आवश्यकता नही।

61. सेवा के लिए सेवा

''सेवा की भावना हमारे चरित्र का अग बन जानी चाहिए, जो हमारे अनुशासन का अनिवाय अश हो। सेवा के लिए सेवा की भावना डालनी चाहिए, जो सभी प्रकार के उद्देश्या तथा प्रतिफल के विचारा मे स्वतत्र हो। कैदियो की सेवा, इस बात की चिन्ता किए बिना कि समय नष्ट हुता है, निधनो के बच्चा को खिलाना, पिलाना, उन्हें सुरक्षा तथा स्नेह देना चाहे वे गदें या भद्दे हा, जाति, रग या राष्ट्रीयता के भेद के बिना महिलाओ की सहायता करना और सामान्य तौर पर अय लागो की सेवा करना, अपने हिता का बलिदान करना—यह हमारा प्रतीक होना चाहिए।"

—लाजपत राय

जब लालाजी युद्धकाल के निर्वासन से स्वदेश लौटे, वह समय एक विशाल सामूहिक सघष की जन्म पीडाआ का या और भाग दौड का यह समय लम्बी अवधि की योजनाआ के उपयुक्त नही हो सकता था। परन्तु ऐसा दिखाई पडता है कि निर्वासन काल के दौरान सोच विचार ने कई योजनाओ को रूप दिया था, जो निर्वासन समाप्ति के बाद समय मिलने पर सामने आती गइ।

इनमें से सवप्रथम घोपित तथा क्रियान्वित की गई योजना अपना दैनिक समाचार-पत्र शुरू करने की थी। थोडी अवधि के बाद, अगली जा योजना सामन आई, वह थी तिलक स्कूल आफ पालिटिक्स, जो रूप बदलकर आजीवन सदस्यो के रूप मे लोक सेवा सघ बन गया और लालाजी द्वारा स्थापित सस्थाआ मे सवप्रमुख बन गया। यह अध्याय, जो लालाजी द्वारा निर्वासन से लौटने के पश्चात स्थापित की गई योजनाओ से सम्बद्ध है, लोक सेवा सघ स आरम्भ करना उचित है, जो काल क्रमानुसार प्रथम होने का दावा कर सकती है।

लाक सेवा सघ का, उसके प्रवतक के मन म मूल ढूढने के लिए, हम 1905 मे लौटना होगा, जब पजाब की इडियन एसासिएशन ने लालाजी की इग्लैंड यात्रा के लिए लगभग तीन हजार रुपये एकत्र किए। लालाजी उस

समय भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस तथा इंडियन एसोसिएशन के संयुक्त प्रतिनिधि के रूप में इंग्लैंड गए थे। स्वदेश लौटने पर लालाजी ने घोषणा की कि उन्होंने विदेश यात्रा के दौरान अपनी ही ओर से ही खर्च किया था और जो धन जमा किया गया था उसमें से उन युवकों को वजीफे दिए जाएंगे जो अपना समय राजनीतिक अध्ययन तथा स्नातकोत्तर अनुसंधान के लिए लगाना चाहते हों। वह उस व्यवस्था से बहुत प्रभावित हुए थे जो उन्होंने बम्बई से इंग्लैंड के लिए रवाना होने से पूर्व पुणे में देखी थी। गोखले ने उस समय सर्वेंट्स आफ इंडिया सोसायटी स्थापित की ही थी। लालाजी ने जो कुछ देखा तथा सुना था उससे प्रभावित होकर उन्होंने इसी प्रकार की संस्था पंजाब में स्थापित करने का निर्णय किया। राजनीतिक शिक्षा के लिए वजीफे देने की योजना उस महान लक्ष्य की ओर पहला लघु कदम था।

1905 के इस स्वप्न के फलिभूत होने में कई रुकावटें आईं। जब सोसायटी अभी पांच वर्ष पुरानी ही थी, तो लालाजी ने लिखा, जो उस समय से लेकर सोसायटी की रिपोर्टों का प्राक्कथन सा बन गया है।

"परन्तु 1907 में मेरे निर्वासन ने कोई निश्चित कारवाई किए जाने में बाधा डाल दी। 1907, 1910 और 1914 में मेरी विपत्तियों और इस अवधि में मेरी सार्वजनिक गतिविधियों तथा निराशाओं ने मुझे चैन न लेने दिया और न ही अपने विचारों का विस्तार करके व्यावहारिक रूप देने दिया।"

प्रारम्भिक भाग में, जिसमें से हमने अभी उद्धरण दिया है, दक्कन एजुकेशन सोसायटी जैसे अग्रगामी कार्य करने के लिए महाराष्ट्र और गोखले के प्रति, जिन्होंने सर्वेंट्स आफ इंडिया सोसायटी स्थापित की थी, आभार व्यक्त करने के पश्चात, लालाजी कुछ अमरीकी संस्थाओं की चर्चा करते हैं जिन्होंने उनके विचारों को निश्चित रूप देने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। अमरीका में अपने प्रवास के वर्षों में उन्होंने अनेक बातें "सीखीं तथा अनेक पहले की सीखी हुई भुला दीं" और कुछ अमरीकी संस्थाओं में कभी कभार वह "प्राध्यापक भी रहे तथा छात्र भी।" वह विशेषतौर पर न्यूयार्क के रेंड स्कूल आफ सोशियालाजी की ओर आकर्षित

हुए, जो ऐसे लोगो का समाज विज्ञान की शिक्षा देता था, जिन्हें उनकी परिस्थितियो ने विधिवत रूप से विश्वविद्यालयो म इन विषयो की शिक्षा का अवसर नही दिया था और ऐसे लोगो का भी, जो भारी फीस नही दे सकते थे। उन्होने कहा था, "यह स्कूल प्राय स्वसहायता के आधार पर चलाया जाता था। प्राध्यापको को फीसो में से थोडा सा मानदेय दिया जाता था" व्यक्तिगत आभार स्वीकार करते हुए लालाजी कहते ह "राजनीति और समाज विज्ञान मे मेरी अधिकतर पढाई न्यूयार्क मे प्रवास की देन है और एक विचार, जो मैं वहा से लाया हू, वह यह है कि मेरे देश मे भी ऐसी सस्था होनी चाहिए।"

रैंड स्कूल, जैसा कि लालाजी कहते ह, "समाजवाद का एक केंद्र है।" इस केंद्र से लालाजी ने अपने देश मे राजनीति स्कूल (स्कूल आफ पालिटिक्स) स्थापित करने की प्रेरणा ली, जिसकी घोषणा उन्होने स्वदेश लौटने के थोडे समय बाद की।

बम्बई मे एक विशाल सभा म लाजपत राय का स्वागत करने के छ मास के अदर ही तिलक इस ससार से 1 अगस्त 1920 को चले गए और भारत के लोगो को, जो उन्हें सादर–"लोकमान्य" कहते थे, शोकाकुल छोड गए, जिनके लिए उन्होने अपना सवस्व बलिदान कर दिया था और असह्य कष्ट झेले थे। इस शोकमय घटना के थोडा समय पश्चात लालाजी ने घोषणा की कि वह "तिलक स्कूल आफ पालिटिक्स" नाम की सस्था स्थापित कर रहे है। इस स्कूल की प्रारम्भिक योजनाए बहुत हद तक रैंड स्कूल की स्मृतियो से प्रभावित थी परन्तु जिस प्रकार हम देखेंगे, बाद की घटनाओ के प्रभाव ने उन्हें इन योजनाओ मे परिवतन करने के लिए बाध्य कर दिया।

तिलक स्कूल द्वारा आरम्भ म बडी आशाजनक प्रगति दिखाई गई—उसका अपना भव्य भवन, बढिया पुस्तकालय, लालाजी की अपील पर काफी धन, जो उनके यत्नो मे शीघ्र ही 6 अको की पूजी बन गया। लालाजी के प्रोत्साहन स इस स्कूल द्वारा शीघ्र प्रगति की आशा की जा सकती थी। परतु इस स्कूल की स्थापना की घोषणा तथा दिसबर 1920 मे इसके काय आरम्भ करने के बीच के तीन मास मे ऐसी ही घटनाए घटी जिनका प्रभाव अन्य पुरानी स्थापित अच्छी सस्थाओ पर भी पडा–इस उदीयमान सस्था पर तो पडना ही था।

ये घटनाएं, जिनका इतना प्रभाव पड़ना था, निस्सदेह असहयोग आंदोलन से सम्बद्ध थी। 1920 के अन्त में नागपुर के कांग्रेस अधिवेशन में लालाजी ने कालिज छात्रों को असहयोग आंदोलन में भाग लेने के लिए आह्वान करने के लिए अपने आप को वचनबद्ध कर लिया था। किन्तु यह स्वाभाविक ही था कि कुछ छात्र शिक्षा की वैकल्पिक व्यवस्था चाहते थे। पंजाब में राष्ट्रीय पद्धति पर शिक्षा की व्यवस्था करने के लिए एक बोर्ड स्थापित करना पड़ा और एक महाविद्यालय या राष्ट्रीय कालिज इस बोर्ड के अधीन बनाया गया। यद्यपि तिलक स्कूल हूबहू उन्हीं नियमों पर नहीं बनाया गया था, फिर भी बहुत से मामलों में दोहरा काम हो गया। इसके परिणामस्वरूप जब महाविद्यालय स्थापित हुआ, लालाजी ने कुछ प्राध्यापकों को, जो तिलक स्कूल के लिए नियुक्त किए गए थे, उसमें भेज दिया, जिनमें एक प्रिंसिपल भी थे। इस प्रकार स्कूल अपने प्रारम्भिक भूमिका से वंचित हो गया।

इसके साथ ही नई स्थिति ने एक अधिक महत्वकांक्षी अवसर प्रदान किया। असहयोग करने वाले कुछ युवक संभवत लम्बी अवधि के लिए निष्ठापूर्वक सेवा के लिए उपलब्ध हो जाएं और इस प्रकार पूर्णकाल के सामाजिक तथा राजनीतिक कार्य के लिए पूर्णकालिक निष्ठावान लोगों का एक दल उपलब्ध हो जाए—जो पुणे सोसायटी के समान कार्यरत होकर आजीवन संगठन में रहने का स्वप्न पूरा कर दे। तिलक स्कूल का शैक्षिक कार्य अब महाविद्यालय ने संभाल लिया था। यह सारी सम्पत्ति (भवन, पुस्तकालय तथा कोष) आजीवन व्यवस्था के लिए प्राप्त हो गई। परंतु इस बात का उल्लेख कर दिया जाना चाहिए कि इस आजीवन व्यवस्था का नाम यद्यपि लोक सेवा संघ (सर्वेंटस आफ द पीपुल सोसाइटी) रखा गया, फिर भी कई वर्षों तक प्रथम चरण के लिये स्वीकार किया गया नाम "तिलक स्कूल" जारी रहा। विशेषकर स्वयं लालाजी दोनों नामों को अक्सर एक ही अर्थ में इस्तेमाल किया करते थे।

लालाजी आमतौर पर अन्य लोगों के कोई कार्य करने से पूर्व स्वयं वह कार्य करते थे। लोगों से चन्दा मांगने से पूर्व उन्होंने घोषणा की कि वह तिलक स्कूल आफ पालिटिक्स की स्थापना के लिए बनाए जाने वाले ट्रस्ट (न्यास) के लिए 2, कोर्ट स्ट्रीट वाला अपना मकान दान में देते हैं। इस घोषणा में थोड़ी सी शर्त थी—लालाजी अपने परिवार के लिए ट्रस्ट

के कोष म से थोडा धन लेकर उस मकान के आगन मे एक झोपडी बनाना चाहते थे। शायद अपने परिवार के सदस्यो को इस निणय की सूचना देने के लिए यह ढग अपनाया गया था, ताकि उनकी ओर से यदि कोई विरोध हो, तो उसको दूर किया जा सके। जब उन्होंने अपने परिवार को सहमत कर लिया तो किसी ने फिर उस बात के बारे मे न सुना। आगन का दक्षिणी भाग परिवार के पास रहा, परन्तु ट्रस्ट के धन को छुआ नहीं गया।

ट्रस्ट मे दुनीचन्द (बैरिस्टर), भाई परमानन्द, रामप्रसाद और जसवत राय थे, और लालाजी उसके अध्यक्ष थे।

तिलक स्कूल को गोखले के "सर्वेंटस आफ इडिया" के समान आजीवन सदस्य बनाने के निणय ने, रावलपिण्डी म 1921 की वसत ऋतु मे हुए एक राजनीतिक सम्मेलन मे निश्चित रूप लिया। अचिन्तराम, पी० एल० सोंधी तथा इस पुस्तक का लेखक इसके पहले तीन सदस्य थे।

सक्षिप्त तथा सरल नियमो मे—केवल एक छपा कागज—केवल एक व्यवस्था थी, 20 वष के लिए काय करने का वचन। कई प्रतिज्ञाए और अनेक "यह करो और यह न करो" का कोई नियम नहीं, अग्नि को साक्षी रखकर यह प्रतिज्ञा करना अलग मामला था। धार्मिक सिद्धान्तो में रूढता आ जाने पर भी उनके कुछ मौलिक तत्व इस रीति को गभीरता प्रदान करते है।

उदघाटन के कोई तीन सप्ताह बाद लालाजी जेल चले गए।

इस बात से पूरी तरह जागरूक कि नए युवको को उनकी अपनी देख रेख मे "प्रशिक्षण" का अवसर नहो मिल पाया, उन्होने जेल से एक पत्र भेजा "तिलक स्कूल आफ पालिटिक्स (अथवा सोसायटी) के युवको को, जिसमे लालाजी ने इच्छा व्यक्त की थी कि वह उनसे किस प्रकार का जीवन जीने की आशा करते हैं और उन्हें किस प्रकार के प्रशिक्षण म से गुजारना चाहते हैं।" यह पत्र उर्दू म था और उसके नीचे लिखा गया था, "आपका मित्र, कैदी"। यह नव दीक्षितो के लिए एक बुनियादी दस्तावेज बन गया, जिससे उन्हें अध्ययन के पाठयक्रम के लिए महत्वपूर्ण मागदशन मिला। इसके अतिरिक्त उन्हें अपने "प्रमुख" के विचारो की

जानकारी भी मिली कि जीवन के लिए वह उनसे किस प्रकार का प्रशिक्षण प्राप्त करने की आशा करत हैं, ताकि उनका जीवन लक्ष्य प्राप्त हो सके। उस पत्र म वह सुनहरे शब्द भी थे, जिस भावना को लेकर उन्हें अपना काय करना था और जो उनके हर काय की तह म होनी अनिवाय थी और जिसके बिना उनकी प्रशिक्षण तैयारी, यहा तक कि काय भी, खाली छिलका ही होगा और उसमे से गिरी गायब होगी। इस अध्याय के विवरण से पूव जो उद्धरण दिया गया है, वह उस बुनियादी दस्तावेज से है।

भाग-दौड के उन दिना मे सुव्यवस्थित ढग से क्रमानुसार प्रशिक्षण देने का ता प्रश्न ही नही उठता था, परतु भाग-दौड का समय अपने आप मे बहुत ही बहुमूल्य शिक्षा थी—लोगा के साथ निकट सम्पर्क, सामूहिक प्रचार के लिए देहात का अनुभव, साथियो के साथ सहयोग की भावना से काय करना सगठन करने का अनुभव, तथा जेल। कक्षा मे प्रशिक्षण तथा पाठ्यक्रम का अध्ययन मूल्यवान हो सकता है, परन्तु सक्रिय प्रशिक्षण अपने ही ढग से बहुमूल्य है। किसी भी व्यक्ति के लिए, जा बुद्धिजीवी सामग्री की खोज म हो, द्वारका दास पुस्तकालय, जो लालाजी के उपहार से इसी नाम से आरम्भ किया गया था, पाठ्यक्रम के मागदशन के लिए लालाजी का पत्र कम से कम बुनियादी आवश्यकताओ के लिए तो पर्याप्त था। यह बात बिल्कुल स्पष्ट थी कि जिस प्रशिक्षण की लालाजी अपने पूर्ण-कालिक कायकर्ताओ के लिए कामना करते थे, यद्यपि उसमे बौद्धिकता की आवश्यकता को स्वीकार किया गया था, फिर भी यह शक्षिक सस्थाओ से बिल्कुल भिन्न किस्म का प्रशिक्षण था। यह प्रशिक्षण यथाथ जीवन और पुस्तको, दाना से प्राप्त हाना था। इस प्रकार जिन लोगा को बुद्धिजीवी क्षेत्र म काय करना था, उन्हे भी सावजनिक काय करने का अनुभव अवश्य प्राप्त करना था। लगभग सभी लोगो को, जिन्हें लालाजी ने अपने इस मत के लिए आजीवन सदस्य बनाया, असहयोग आदोलन म सामूहिक प्रचार करने का अनुभव था और अगले चरण म जब लालाजी न अस्पृश्यता उन्मूलन अभियान आरम्भ किया, प्राय सभी कायकर्ताओ ने अछूत उद्धार समिति मे सावर्जनिक काय किया।

यद्यपि हमारे संस्थापक ने मार्गदर्शी संस्था के लिए गोखले का आभार व्यक्त किया था, ये दोनों सोसायटियां एक दूसरे से बहुत भिन्न थीं। पुणे सोसायटी ने हमारी सोसायटी की स्थापना होने तक अपने आपको पूरी तरह लिबरल पार्टी की राजनीति के साथ जोड़ लिया था, जबकि लाहौर वाली सोसायटी की स्थापना असहयोग कार्यकर्ताओं ने की थी। एक और बुनियादी अंतर यह था कि हमारे संस्थापक नहीं चाहते थे कि परिवर्तनशील राजनीतिक आवश्यकताओं या कार्यक्रमों को स्थाई विश्वास का विषय बनाया जाए, जबकि 'सर्वेंट्स आफ इंडिया' ने अपनी संस्था में ब्रिटिश संबंधों का उल्लेख किया हुआ था, जैसे वे धार्मिक सिद्धांतों जैसे पवित्र हों। यद्यपि आजीवन कार्यकर्ताओं का यह संगठन प्रचारकों की भावना से कार्य करता था, लाजपत राय का यह संगठन यहूदियों के संगठन के समान बिल्कुल नहीं था—अर्थात इसमें न प्रतिज्ञा थी, न बहुत ही पक्के नियम और न ही असहमति पर प्रतिबंध।

कुछ लोगों को शायद यह अजीब लगे, हमारे संस्थापक हमारे नए संगठन के सदस्य नहीं थे, यह दोनों सोसायटियों में एक और प्रमुख अंतर था। हमारे संक्षिप्त संविधान में उन्हें आजीवन संस्थापक निदेशक का पद स्पष्ट करने के लिए विशेष व्यवस्था करनी पड़ी थी। संस्थापक सदस्य के रूप में गोखले ने पहले शपथ ग्रहण की थी और फिर उन्होंने पहली टोली के सदस्यों को सात सूत्री शपथ दिलाई थी। लालाजी ने न स्वयं कोई शपथ ग्रहण की और न अन्य सदस्यों को दिलाई। उनका जीवन तो पहले ही त्याग का जीवन था, जो कई वर्ष पूर्व समर्पित किया जा चुका था, फिर से समर्पित करने की बात बिल्कुल फिजूल और व्यर्थ दिखाई देती थी। यद्यपि उन्होंने राजभार के लिए सामान्य व्यवसाय छोड़ दिया था वह सार्वजनिक सम्पत्ति पर बोझ नहीं बने थे। यदि वह इस पद्धति में परिवर्तन करते, तो संभवत उससे मानसिक बोझ बढ़ता। वह संगठन के सदस्य नहीं थे इसलिए संगठन से कोई धन नहीं लेते थे। कुछ लोगों के लिए शायद यह बात गलत हो परन्तु हमारे यह स्वाभाविक बात थी।

परिवार के पिता के नाते उन्हें नैतिक
आजीवन निदेशक बनाकर संविधान ने मान्यता

तौर पर उनकी ओर से मार्गदर्शन तथा पिता का स्नेह सदा ही प्राप्त रहा, परन्तु सदस्यों के लिए नियम बनाना उन्हें पसंद नहीं था, उस समय भी नहीं जब वह प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे थे। स्वच्छंद, बहस और विचारों के स्वतंत्र आदान-प्रदान से अगर सहमति प्राप्त होती थी, परन्तु जहां सहमति नहीं होती थी, असहमति को पूरी तरह स्वीकार किया जाता था। क्या इस समाज में यह संभव था ? इसका उत्तर यह है कि कभी-कभार कोई सदस्य 20 वर्ष का कार्यकाल पूरा करने से पूर्व ही छुट्टी चाहता था, परन्तु ऐसा राजनीतिक मतभेद के कारण कभी नहीं हुआ था। राजनीतिक परिस्थितियां बदलती रहती थीं और कार्यक्रमों का समय-समय पर जायजा लिया जाना आवश्यक था। इनमें कोई स्थायित्व नहीं हो सका इसलिए कोई नमूना तैयार करना अत्र आवश्यक था, जिसमें चिरस्थायी आवश्यक बातों को कायम रखा जाए और शेष के लिए समन्वय रखना लक्ष्य था, समानता नहीं। आमतौर पर सर्वसम्मति की इच्छा होती थी, परन्तु जिस मामले में यह न हो पाता, अन्य लोगों के विचारों का सार्वभौम समन्वय प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाता था।

मैं सिंहावलोकन करता हूं तथा स्मरण करता हूं तो यह देखे बिना नहीं रह सकता कि हमारा प्रशिक्षण तथा सेवा का जीवन अन्य सभी बातों के मुकाबले, जिनकी मैं चर्चा की है, हमारे संस्थापक के व्यक्तित्व के प्रभाव का परिणाम थी। प्रेरणा का स्थायी स्रोत था उनका स्वतंत्रता के लक्ष्य तथा भारत के लोगों के प्रति अपना पूर्ण समर्थन था और समन्वित ढंग से काम करने के लिए उनकी सार्वभौम विशाल हृदयता और विश्वास के प्रति निष्ठापूर्ण सम्मान, चाहे वह उनके अपने विश्वासों से भिन्न ही क्यों न हो। 1926 के चुनाव में जब अचिन्त राम लालाजी के विरोधी स्वराज पार्टी के उम्मीदवार को वोट देकर आए तो लालाजी ने उनका स्नेहपूर्वक आलिंगन किया—जिसकी कहानी उस समय से सम्बद्ध वर्णन में दी गई है—यह बात अद्वितीय सुंदरता और चिरस्थायी महत्व की थी, ऐसा प्रकाश जो कई वर्ष धीमा न हो तथा जिसे कोई आंधी न बुझा सके, यह विरासत जो हमारे संस्थापक ने हमारे लिए छोड़ी, यह हमारी परम्परा का शानदार भाग बन गया।

उनके जेल से छूटने के पश्चात् सोसायटी पंजाब तथा उत्तर प्रदेश के कई केन्द्रों अथवा शाखाओं द्वारा कार्य कर रही थी और लालाजी के अधिकतर

काय मे सोसायटी के एक या दो सदस्य उनके साथ काय करत थे, विशेषकर आरम्भ मे, अस्पृश्यता उ मूलन काय मे। इसके अतिरिक्त वह काग्रेस के काय म भी उनकी सहायता करते थे और बाद मे पत्रकारिता के काम मे तथा उनके निर्देशन म आरम्भ की गई अ य गतिविधिया म, जिनमे कानपुर श्रमिक सगठन के द्र भी काय करते थे। पी० एल० साधी 'वदे-मातरम्' की देख-रेख कर रहे थे और छबाल दास प्रिंसिपल के तौर पर नेशनल कालिज चला रहे थे।

जब सोसायटी ने अपना आरम्भिक काल पूरा कर लिया और सस्थापक का इसकी स्थिरता और इसकी ओर से किए गए काफी लाभकारी काय के बारे मे सतोष हो गया जिससे उसे सावजनिक सहायता मिल सके, ता माच 1927 मे पहली बार सावजनिक रूप से उसकी "वषगाठ' मनाई गई। सोसायटी को अब सभा भवन की आवश्यकताओ और पुस्तकालय तथा कार्यालय के लिए पीला बगला अपर्याप्त महसूस होता था। उसी समय एक दा मजिले भवन की योजना बनाई गई। उस भवन के लिए आवश्यक धन प्रथम सावजनिक समारोह से पूव सस्थापक की साठवी वषगाठ पर प्राप्त हुआ, जब काफी नकद उपहार मिले। लाजपत राय हाल के निमाण के लिए, जो इस भवन का नाम रखा गया था मालवीयजी ने 1928 म लालाजी के ज म दिवस पर शिलान्यास किया।

सस्थापक निदेशक ने काठियावाड से पहले ही एक सदस्य बलव त राय जी० मेहता को ले लिया था और उडीसा म सोसायटी की एक शाखा गोपबधु दास के अधीन काय कर रही थी, जो सोसायटी के उपाध्यक्ष भी चुने गए थे। 'समाज' उसका छापाखाना तथा गोपबधु के कुछ सहायक (लिगराज मिश्रा, राधानाथ रथ) इस शाखा के अग थे। 1928 के ज म दिवस समारोह से लाटते समय गोपबधु बाबू बीमार पड गए और कुछ समय बाद उनका देहात हो गया। निस्सदेह उडीसा न अपने नता का शाक मनाया, लालाजी तथा सोसायटी ने भी इस क्षति का बहुत महसूस किया। गोपबधु के स्थान पर लालाजी (तथा सदस्यो ने) उपाध्यक्ष पद के लिए इस पुस्तक के लेखक को चुना। यू० पी० की सदस्यता काफी बढ गई थी, इनम काशी विद्यापीठ के चार शास्त्री थे—अलगूराय हरिहरनाथ, लालबहादुर

(जो लालजी के समय प्रशिक्षण ले रहे थे) और राजा राम तथा इनके अतिरिक्त बलदेव जो सबसे वरिष्ठ थे (हरनाम सिंह त्याग-पत्र दे चुके थे) और मोहनलाल गौतम भी थे।

1947 के विभाजन के पश्चात सोसायटी ने अपना मुख्यालय नई दिल्ली में स्थापित किया और कुछ ही समय में बहुत विकास किया शाखाओं की संख्या बढ़ाई तथा कार्यक्षेत्र विस्तृत किया। इसका विशेष सौभाग्य यह रहा कि इसे पुरुषोत्तम दास टंडन, बलवन्त राय मेहता और लाल बहादुर जैसे अध्यक्ष मिले, तत्कालीन अध्यक्ष विश्वनाथ दास थे। इनमें से बलवंत राय तथा लालबहादुर को स्वयं लालाजी ने सोसायटी में शामिल किया था। टंडनजी, लालाजी के अनुरोध पर, इलाहाबाद से लाहौर आए थे (पंजाब नेशनल बैंक के सचिव के तौर पर) जहां वह लालाजी और सोसायटी के निकट सम्पर्क में रहे। निस्संदेह लालाजी चाहते थे कि टंडनजी उनके मत में एक दिन शामिल हो जाएं, परन्तु वह यह सोचते हुए हिचकिचा रहे थे कि उनसे बलिदान की मांग उस समय तक करना उचित नहीं होगी, जब तक परिवार के युवा सदस्य रोज़गार कमाने योग्य नहीं हो जाते। यह बलिदान लालाजी के देहांत के पश्चात् हुआ, क्योंकि यह हमारे "प्रमुख" की इच्छा थी, जिसकी हमें जानकारी थी।

लालाजी के अंतिम दिनों में एक और उल्लेखनीय बात उनकी माताजी के नाम पर तपेदिक अस्पताल की स्थापना थी। यह अधिक सही है कि अस्पताल की स्थापना उनके मरणोपरांत हुई, लालाजी ने तो केवल ट्रस्ट स्थापित किया था और उसको दो लाख रुपये से अधिक की पूंजी दी थी। तपेदिक, जिसने लालाजी के होनहार भाई दलपत राय की जान ली थी और वह भी युवावस्था में और फिर उनके बहुत ही होनहार बेटे प्यारे कृष्ण के प्राण ले लिए थे, जब वह केवल 20 वर्ष का था, इस रोग की ओर उनका विशेष ध्यान जाना स्वाभाविक ही था।

लालाजी ने गुलाबदेवी ट्रस्ट की अस्थायी योजना टिप्पणी के लिए अपने कुछ मित्रों को भेजी, जिनमें गांधीजी भी थे। गांधीजी ने विचार व्यक्त किया कि विचार बहुत नेक है, परन्तु योजना को कार्यान्वित करने में

सुधार की आवश्यकता है। इस प्रकार मूल योजना मे गाधीजी के विचार के अनुसार सशोधन किया गया।

1947 म विभाजन के समय गुलाबदेवी अस्पताल सुस्थापित सस्था बन चुका था, जो बहुत ही लाभकारी काय कर रहा था। अस्पताल तथा उसका साज-सामान नई सीमा रखा का पार न कर पाया। अनुमान ह कि लाहौर हवाई अड्डे के निकट यह अस्पताल अब भी पाकिस्तान के लोगा की सेवा कर रहा है।

लालाजी के कल्याणकारी कार्यों मे गुलाबदेवी ट्रस्ट अन्तिम नही था। क्योंकि उनका अन्तिम उपहार, जो उन्होन अपने जीवन के अन्तिम महीना म स्थापित किया, महिलाओ का शारीरिक सरचना केंद्र था। यह एक छोटी योजना थी, जो योजना स्तर पर व्यापक तैयारी के बिना कार्यान्वित हो सकती थी। परन्तु लालाजी इसे फलीभूत होते देखने को इस ससार म न रहे।

इस योजना की कल्पना करने के लिए हम स्मरण करना होगा कि उनके मन मे (अन्तिम वर्षों मे) कौन से सदेह भरे हुए थे। योजना तथा सदेह, दानो का मूल हिंदू मुस्लिम समस्या के गदा रूप लेन की तह म था। वह उस स्थिति की स्पष्ट रूप से कल्पना करने लगे थे जब 'पृथकता" की माग को जाएगी तो उसके साथ व्यापक रूप म हिंसा होगी—विशेषकर भीड और गुडा द्वारा। वह चाहते थे कि हमारी महिलाए ऐसी परिस्थिति का सामना करन के लिए तयार हो जाए और कुछ प्रशिक्षण प्राप्त कर ले जा ऐसी स्थिति मे उनके काम आ सके। उनके विचारो का यह दौर आरम्भ होने मे कुछ समय पूव उन्होन एक महिला को, जो उनके बहुत निकट थी, एक कटारी उपहार के रूप मे दी थी और उसे ऐसा असाधारण उपहार देने की तह मे छुपा उददेश्य स्पष्ट किया। निस्सदेह उन्हे इस बात की प्रेरणा गुरु गाविंद सिंह से मिली थी, जिन्होने किरपान को अपने अनुयायियो के परिधान का अग बना दिया था। भारत की अखडता तथा स्वतत्रता की माग थी कि हिंदू महिलाए उस ढग का जीवन अपनाए, असहाय तथा दुबल न रहें और कठिन और लडाकू रवैया अपनाए, जिस प्रकार का रवैया राजपूता या खालसा का था।

परोपकार की इस शृंखला के एक पहलू की उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए। परोपकार जैसा आमतौर पर समझा जाता है या जिस प्रकार अपनाया जाता है, यह उस प्रकार का न था। इसे "त्याग" कहते हुए हिचकिचाहट होती है, क्योंकि इस शब्द के प्रत्यक्ष या निहित अर्थों से लालाजी को चिढ़ थी। परन्तु इसे कोई भी नाम दिया जाए, यह सिलसिला उस समय आरम्भ हुआ था, जब उन्होंने युवाकाल में घोषणा की थी कि वह सार्वजनिक कार्य को व्यावसायिक कार्य की तुलना में स्पष्ट प्राथमिकता देंगे। इसके अतिरिक्त धन का मोह कम करने के लिए उन्होंने निश्चय किया था कि घर का खर्च चलाने के बाद बचने वाली शेष आय का सारा धन वह लोगों के लिए दे देंगे।

यह इस निश्चय के अनुसार ही था कि उन्होंने अपनी सारी पूंजी का त्याग कर दिया, जो लगाई गई पूंजी के रूप में, या बचत के रूप में, जो उनकी पहले की आय से बचा था या दूसरे दशक में अर्जित धन से आगे अर्जित हुआ था, जो घर का साधारण खर्च चलाने से शेष बचा था।

एक नियमित तथा प्रमुख परोपकारी सीसिल रोड्रेज का एक कथन है कि परोपकार अच्छा है, परन्तु परोपकार जमा पांच प्रतिशत बहुत अच्छा है। इस काल की लालाजी की संस्थाओं में से एक लक्ष्मी इंश्योरेंस, रोड्रेज के इस कथन के अनुकूल दिखाई देती है। व्यक्तिगत दृष्टि से यह संस्था के० सतनाम का रखने की समस्या के समाधान के लिए स्थापित की गई थी, जिन्होंने असहयोग आन्दोलन के दौरान वकालत का उदीयमान व्यवसाय छोड़ दिया और लालाजी उन्हें अपने उच्चकोटि के सहायकों में मानते थे। यदि उन्होंने दोबारा वकालत नहीं शुरू करनी थी, तो लाहौर छोड़कर नया व्यवसाय आरम्भ करने के लिए दक्षिण जाना था। लालाजी ने इसके समाधान की जो कल्पना की वह सतनाम के लिए आजीवन पद की व्यवस्था थी और निस्सन्देह यह आजीवन पद लालाजी के स्वदेशी कार्यक्रम का एक भाग होना चाहिए था। लालाजी इस नई संस्था के अध्यक्ष थे और इस संस्था ने आश्चर्यजनक तेजी से प्रगति की। लालाजी के कार्यकाल की एक विशेष बात थी अधिकारों की संभावना को सीमित करना, क्योंकि (अध्यक्ष के जोर देने पर) यह नियम बना गया था कि बोर्ड एक सौ से

अधिक शेयरों (100 रुपये का प्रति शेयर) से अधिक के किसी आवेदन को स्वीकार नहीं करेगा। गननाम का भी इस सीमा का उल्लंघन करने की आशा न थी।

लालाजी के समाचार पत्र उनके काय का महत्वपूर्ण अंग थे। निर्वासन में स्वदेश लौटने से पूर्व ही उन्होंने अपना समाचार पत्र शुरू करने का निर्णय किया होगा। जैसे ही वह ठीक ढंग से व्यवस्थित हुए, उन्होंने एक ज्वाइंट स्टाक संस्था रजिस्टर करवा ली, जिसका नाम था पंजाब अखबारात एंड प्रेस कम्पनी लिमिटेड, जिसने 'वंदे मातरम्' समाचार-पत्र आरम्भ किया। लालाजी इस कम्पनी के चेयरमैन तथा दैनिक के सम्पादक थे। किसी भी हिस्सेदार को नियंत्रण अधिकार प्राप्त नहीं था। परन्तु हरकिशन लाल के पास काफी शेयर थे और वह उस समय तक निदेशक मण्डल में रहे, जब तक वह माटेग्यू चेम्सफोर्ड सुधारों के अन्तर्गत पंजाब के मंत्री नहीं बन गये।

वन्दे मातरम्' आरम्भ से ही बहुत महत्वपूर्ण समाचार-पत्र था। उर्दू पत्रकारिता के इतिहास में यह समाचार पत्र एक महत्वपूर्ण अध्याय है और उसने स्वाधीनता संग्राम में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

लालाजी ने अभी अपना नाम नहीं दिया था। यद्यपि ग्वालमण्डी में उनका सम्पादकीय कार्यालय नहीं था, वहां वह कभी कभार, थोडी देर के लिये जाया करते थे, परन्तु उनका दूसरे नंबर का व्यक्ति, आर्य समाज के समय से उनका विश्वसनीय सहायक रामप्रसाद, निश्चित रूप से दोपहर बाद उनके निवास स्थान 2, कोर्ट स्ट्रीट पर आता था, जब लालाजी कहीं बाहर नहीं गए होते और दोनों के बीच इस प्रतिदिन के सम्पादकीय सम्मेलन में पिछले दिन की प्रगति और उस दिन दोपहर बाद निकलने वाले समाचार पत्र के बारे में विचार-विनिमय किया जाता था। लाहौर से प्रात प्रकाशित होने वाले समाचार पत्र कुछ दिनों के बाद आरम्भ हुए थे और यह परिवर्तन लागू करने में 'वन्दे मातरम' पहले पत्रों में से था।

थोडे ही समय में वन्दे मातरम्' प्रमुख उर्दू दैनिक बन गया, जिसका प्रभाव पंजाब में किसी भी अन्य दैनिक समाचार पत्र से अधिक था। इस समाचार पत्र ने उर्दू पत्रकारिता का स्तर सुधारने में सर्वोमुखी योगदान

दिया। इस योगदान में विविधता, जोरदार और विचार से भरपूर टिप्पणियां, जोरदार तथा उच्च नैतिक मूल्यों के साथ उच्चकोटि के निष्पादन और चमत्कारिता का उदार वतन देने के रूप में था। 'वन्दे मातरम्' ने महात्मा गांधी के नेतृत्व में आरम्भ किये गए महान सामूहिक आन्दोलन का निडर और सुसमाचार प्रचारक बनकर शीघ्र ही प्रबलता, प्रसिद्धि तथा शक्ति प्राप्त कर ली। अंग्रेजी साप्ताहिक 'द पीपुल' का जन्म उस समय हुआ जब असहयोग आन्दोलन का जोर कम हो गया था। 'द पीपुल' की भूमिका साप्ताहिक विषयों के बारे में थी, जिनमें अधिकतर जोर शैक्षिक मूल्यों पर और निश्चय ही अलग रूप का था। उसने विशेष सफलता तटस्थ यथार्थवादी पड़ताल और लेखा-जोखा, स्वतंत्र, निडर, यथार्थपरक विश्लेषण तथा राजनीतिक समस्याओं, नीतियों, नारों और रूढ़िवादी विश्वास-सिद्धांतों के विश्लेषण से प्राप्त कर ली थी और इस बात का कोई पक्षपात नहीं किया जाता था कि कौन सा व्यक्ति या अधिकार इसका स्रोत है। उसे अपधर्म के आरोप का भय नहीं था और न ही "अनुशासन' के नाम पर वह अपना अधिकार छोड़ने या कर्तव्य की उपेक्षा करने को तैयार था। इस काम के लिए उससे भी बहुत उच्च नैतिक साहस की आवश्यकता थी, जो कि विदेशी शासन पर जोरदार आक्रमण करने के लिए आवश्यक था।

कैदी के रूप में लालाजी ने निश्चय किया था कि जेलों के सुधार के लिए वह यथासंभव प्रयत्न करेंगे, केवल जेल जाने वाले नेताओं के हित में ही नहीं, बल्कि "साधारण कैदियों" की खातिर भी। यह वचन उन्होंने अपने समाचार-पत्रों के माध्यम से पूरा करना था।

'वन्दे मातरम्' द्वारा जेलों की स्थिति के रहस्योद्घाटन के परिणामस्वरूप मानहानि का एक मामला बन गया था, जिसके कारण कुछ अन्य रहस्योद्घाटन हुए, फिर एक समिति नियुक्त हुई और इसकी सिफारिशों पर एक कानून बना, जिस पर लार्ड आलिवर (सैक्रेट्री आफ स्टेट फार इंडिया) ने 'द पीपुल' और 'वन्दे मातरम्' की शानदार प्रशंसा की।

62. कहानी एक मुकाबले और पराजय की

ऐसा दिखाई पडता था कि श्रीमती सरोजिनी नायडू को यह विशेषा धिकार प्राप्त था कि जब कभी भारतीय राजनीति के चोटी के नेताओं मे गरमा-गरमी हुई, तो उन्होंने शान्ति और सद्भावना के दूत के तौर पर काय किया। 1926 मे जब वह कांग्रेस अध्यक्ष थी, तो अनेक बार उनकी जादुई प्रतिभा गरम हुए माहौल को शात करने के लिए इस्तेमाल करनी पडी। कानपुर तथा साबरमती म उन्होंने जोरदार प्रयत्नो मे जो सफलता प्राप्त की थी, वह अधिक समय के लिए न रह पाई और विधान सभा के शिशिर अधिवेशन की पूव सध्या के अवसर पर शायद उनके सामने अधिकतम कठिन काय था। विशेष दशकों की दीर्घा से दिल्ली के अधिवेशन देखना अवसर उन्हें बहुत रोचक लगा, परन्तु शिमला के अधिवेशन, जो सामान्य तौर पर सक्षिप्त हुआ करते थे, आम तौर पर महत्वपूण नही होते थे, उनके लिए अधिक आकपण का कद्र नही होते थे। परन्तु 1926 की समस्या विशेष थी और उनके कतव्य का आह्वान जरूरी था, क्योंकि वह भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की प्रमुख थी।

लालाजी मध्य अगस्त मे विदेश से लाटे। कुछ ही दिना म विधान सभा का शिशिर अधिवेशन आरम्भ होन वाला था।

जब अप्रैल के अत मे वह भारत मे रवाना हो रहे थे, साबरमती सधि अभी सम्पन्न हुई ही थी, यद्यपि उनका जहाज अभी भारत की सागर सीमा मे ही था जब उस सधि के बारे म सदेह व्यक्त किए जाने लगे। उसी समय से कलकत्ता से साम्प्रदायिक दगों तथा खून खराबे के समाचार मिल रहे थे।

स्वदेश लौटने पर लालाजी ने देखा कि उनकी साबरमती-सधि का पहले ही बहुत गहरा दफन किया जा चुका था। यह सधि (मोतीलालजी

के शब्दों में) मृतजात सिद्ध हुई। प्राय आरम्भ से ही प्रत्येक पक्ष ने इसकी अपनी ही व्याख्या दी। स्वराजवादियों तथा प्रतिसवेदियों के बीच झगड़ा जारी रहा। साम्प्रदायिक अत्याचार की दुर्गन्ध से वातावरण बोझिल तथा गदा हो गया था।

जब लालाजी यूरोप से लौटे, तो उन्होंने यहा-वहा कुछ मित्रों से बातचीत की कि उन्होंने कुछ योजनाओं के बारे में सुना था, जो कुछ "क्रांतिकारियों" द्वारा रखी गई थीं कि भारत का विभाजन कर दो। इन योजनाओं को कार्यान्वित करने में सहायता देने के लिए काबुल में कांग्रेस समिति बनाई गई थी।

हमने इस काबुल समिति का उल्लेख किसी अन्य स्थान पर कर दिया है। प्रासंगिक बात तो यह है कि यद्यपि लालाजी इस मामले को लेकर सार्वजनिक विवाद खड़ा नहीं करना चाहते थे, फिर भी उन्होंने देखा कि यद्यपि कोई भी व्यक्ति इस योग्य नहीं था कि इस त्रुटिपूर्ण स्थिति को स्पष्ट कर पाता, यह बात इस प्रकार शरारतपूर्ण थी, जिस के परिणाम बहुत ही गंभीर हो सकते थे। उन लोगों द्वारा लालाजी की बात को गंभीरता से न लेना उन्हें मूल त्रुटि से भी अधिक गंभीर स्थिति के लक्षण दिखाई दिए। इसने लालाजी तथा उन लोगों के बीच रिक्ति बढ़ा दी। यह एक महत्वपूर्ण पहलू था, यद्यपि यह परिणाम की पृष्ठभूमि में ही था।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि लालाजी उस लापरवाही को ठीक नहीं समझते थे, जो कुछ लोगों का "साम्प्रदायिकता" के प्रश्न के बारे में स्वांगसा बन गया था। उन्होंने उस संसदीय कार्यक्रम को कभी स्वीकृति नहीं दी थी जिसमें सदन में अधिकतर अनुपस्थित रहने की बात कही गई हो। उन्होंने यह अहसास करना भी शुरू कर दिया था कि विधायक अनुपस्थित रहकर, उन निर्वाचन क्षेत्रों के हितों को जिन्होंने उन्हें चुनकर सदन में भेजा है, हानि पहुंचाते हैं या उनकी उपेक्षा करते हैं। चूंकि अनुपस्थित रहने वाले विधायक अधिकतर हिंदू निर्वाचन क्षेत्रों के प्रतिनिधि थे, तो स्पष्ट था कि विधायकों की इन कारवाइयों से हिंदुओं के हितों को ही अधिक हानि पहुंचती थी। जो विधायक इस कार्यक्रम में रुचि लेने के लिए विधान सभा के पिछले अधिवेशन से ही अधिक उत्सुक थे, वे सदन-त्याग को विशिष्ट

कारवाई मानते थे। असल में उनका विचार था कि चुनाव में, जो शीघ्र ही होने वाले थे, इस कारवाई का बहुत अच्छा लाभ प्राप्त होगा। जबकि दूसरी ओर लालाजी का विचार था कि मभय है मतदाता अपने प्रतिनिधि से यह कह दें कि उन्होंने अपने कर्तव्य की ओर ध्यान नहीं दिया, इसलिए वह उनका विश्वास खो बैठा है। शिमला अधिवेशन में दो महत्वपूर्ण सरकारी बिल आने वाले थे, इनमें से एक में मुद्रा तथा वित्त के बारे में शाही आयोग के निर्णयों को लागू करना था। इस प्रकार यह भारत में उद्योग तथा व्यापार के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण था, अन्य बिल में जाब्ता फौजदारी में सशोधन की व्यवस्था थी, जिससे नागरिक स्वतन्त्रता पर प्रभाव पड़ना था। सभव था कि सरकार इन बिलों के बारे में जल्दबाजी से काम लेना चाहती थी, क्योंकि उसका विचार था कि स्वराज पार्टी के विधायकों द्वारा सदन-त्याग से उसे बहुत बढ़िया अवसर मिल जाएगा कि जो कुछ उनके लिए बहुत सुखद रहेगा वही, सदन से पास करवा लेंगे।

इस प्रकार सदन त्याग नीति की बुद्धिमत्ता के बारे में सदेह से भरे हुए तथा साबरमती संधि की पुष्टि न होने के कारण महाराष्ट्र के अपने मित्रों से अलग होने पर क्षोभपूर्ण विचारों में डूबे हुए लालाजी शिमला पहुंचे।

उन्होंने मालवीयजी से विचार विनिमय किया, जो उनके सदेहों तथा शकाओं से बहुत हद तक सहमत थे और जिन्होंने कभी भी स्वराज पार्टी के अनुशासन तथा चालों को स्वीकार नहीं किया था। उन्होंने उसी समय मोतीलाल तथा अन्य स्वराजवादी मित्रों के साथ भी बातचीत की। चूंकि इन बातों का अधिक से अधिक रुख विच्छेद की ओर था, सरोजिनी नायडू ने एकता बनाए रखने की चिन्ता में महिलाओं वाली दक्षता से कार्य शुरू कर दिया। असीम धैर्य से प्रत्येक की स्थिति प्रत्येक को स्पष्ट करते हुए, जो भी सदेश, फार्मूला, प्रश्न या उत्तर उन्हें मिला, बेवक्त भी लेकर कभी फिरग्राव (जहां लालाजी ठहरे हुए थे) और कभी शान्ति कुटीर (जहां मालवीयजी का निवास था) और कभी सीसिल होटल गई (जहां मोतीलालजी का मुख्यालय था)। परन्तु आराम देने वाला मरहम जिसमें

मुक्ति या बुद्धि-मादय तथा धय शामिल थे, राग हरन म सफल न हा पाया । स्वराजवादियो ने मुद्रा सबधी प्रस्तावित बिल की कारवाई की अवधि के लिए विधान सभा म उपस्थित होन पर प्रतिबध एक दिन के लिए उठा लिया । इसका परिणाम यह हुआ कि सरकार न बहुमत के बार म विश्वास न होन के कारण इस बिल पर बहस नई विधान सभा क प्रथम अधिवेशन तक के लिए स्थगित कर दी । उसके बाद स्वराज पार्टी की कायकारिणी न शेष अधिवेशन की उपेक्षा करन का निणय कर दिया। यह बात लालाजी को ठीक न लगी। 24 तारीख को पार्टी की महत्वपूण बठक हुई । रात को सरोजिनी नायडू और ए० रगास्वामी अयगार ने लालाजी को एक सदेश दिया था कि मोतीलालजी चाहत ह कि लालाजी बैठक म आए और मोतीलालजी बठक से पूव सीसिल होटल मे अपन कमरे म उनसे मिलना चाहेंगे । लालाजी का विचार था कि अब बातचीत का सिलसिला समाप्त हो चुका है । वह बठक मे पूव पडितजी से मिलने गए, परन्तु विशेष सदेश के कारण वह बैठक मे शामिल हुए जहा स्वराज पार्टी से उनका त्यागपत्र, जो टाइप किया हुआ लम्बा पत्र था, पढा गया ।

सरोजिनी नायडू न अपने प्रयत्न तब भी जारी रखे कि शायद अभी भी मतभेद दूर हो जाए और त्यागपत्र वापस ले लिया जाए । किन्तु तीन चार दिन बाद यह त्यागपत्र समाचार पत्रो को दे दिया गया और इस प्रकार यह उस वष राजनितिक युद्ध का ही नही, शायद कई वर्षों के स्मरणीय राजनीतिक युद्ध का पहला गोला सिद्ध हुआ ।

त्यागपत्र का पहला लम्बा पैरा मुख्यत सदन-त्याग की आलोचना की आलोचना ही था और लालाजी ने शिकायत की कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का माच का प्रस्ताव उनके प्रति न्यायपूण नही था ।

'कानपुर म मन बजट पर बहस के बारे म अपने सशोधन पर जोर दिया था और प्रस्ताव का समर्थन करने की अनिवाय शत के तौर पर उस स्वीकार करन के लिए कहा था। पार्टी न इसे स्वीकार कर लिया था । यदयपि हिचकिचाहट के साथ ऐसा किया गया था। परन्तु दो मास पश्चात कानपुर में स्वीकार किया गया सशोधन कांग्रेस न नगण्य शक्ति से रदद कर दिया था। मने इस परिवतन के विरुद्ध

मत दिया था और अखिल भारतीय कांग्रेस समिति द्वारा ऐसा करने के अधिकार को चुनौती दी थी। परन्तु मेरी आपत्ति रद्द कर दी गई थी। फिर भी, अनुशासन के हित में, मैं शेष पार्टी के साथ बैठक से उठकर चला आया था।"

परन्तु उन्होंने विचार व्यक्त किया कि बाद में प्रस्ताव में परिवर्तन किए जाने के कारण, इसका पालन करने का उनका अपना दायित्व भी समाप्त हो जाता है।

पत्र में लिखा था, "धीरे धीरे मैं अन्य हिन्दुओं के इस विश्वास से सहमत हो गया हूं कि स्वराज पार्टी, जिस प्रकार उसका वर्तमान गठन है, स्पष्ट तौर पर हिन्दुओं के हितों के लिए हानिकर है—मुसलमानों के साथ उनके मतभेदों के मामले में, सरकार और हिन्दुओं के बीच मतभेदों के मामले में, यह हानि अधिक है। जहां तक सदन-त्याग की बात है वह विधायकों द्वारा अपने सामान्य कर्तव्य की उपेक्षा है। इस प्रकार जिन हिन्दू निर्वाचन क्षेत्रों ने हमें चुनकर भेजा है, इस नीति से उनको उनके प्रतिनिधियों की सेवाओं से वंचित होना पड़ा है। मैं इस निर्वाचन क्षेत्रों के साथ विश्वास भंग मानता हूं और मैं इस प्रकार के विश्वास भंग में और अधिक भागीदार नहीं बन सकता।"

अन्त में उन्होंने सुझाव दिया कि राजनीतिक स्थिति की विशेष आवश्यकता यह नहीं है कि जोरदार पार्टी नीति को कार्यान्वित किया जाए, बल्कि आवश्यकता इस बात की है कि सभी प्रगतिशील व्यक्ति तथा गुट इकट्ठे हो जाएं।

कुछ समाचार पत्रों ने इस पत्र को स्वराज पार्टी के विरुद्ध गंभीर अभियोग पत्र बताया। यह सत्य है कि इस पत्र में स्वराज पार्टी की रणनीति की कटु आलोचना की गई थी, परन्तु अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट तौर से पेश करते हुए, लालाजी यह प्रयत्न करते रहे थे कि बहस में किसी प्रकार की कटुता न आए।

मोतीलालजी ने इस "अभियोग-पत्र" का उत्तर दिया। इस उत्तर में सदन त्याग की रणनीति को उचित सिद्ध करने का अधिक यत्न नहीं किया गया था, जो त्यागपत्र का मुख्य आधार था और जिस

पत्र का उत्तर दिया जा रहा था, उसका मुख्य विषय यही था, परन्तु उसमें व्यंग्य तथा कटाक्ष का कोई अवसर व्यर्थ नहीं जाने दिया गया। गुण दोष के आधार पर मोतीलालजी की मुख्य दलील यह थी कि लालाजी स्वराज पार्टी से उसी प्रकार बंधे हुए थे जिस प्रकार वह तब होते, यदि वह स्वराज पार्टी के टिकट पर निर्वाचित होते। यह तो केवल मात्र सैद्धान्तिक फिजूल दलील थी, क्योंकि उस विधान मण्डल के अन्तिम अधिवेशन में केवल दो-तीन दिन ही शेष रह गए थे और नए चुनाव की प्रक्रिया प्राय शुरू होने वाली थी। हम इस प्रश्न से सम्बद्ध मामलों के बारे में मोतीलालजी द्वारा अपने दो पत्रों में उठाए मामलों की पहले ही चर्चा कर चुके हैं और उन्हें इस जगह दुहराने की आवश्यकता नहीं है। इन तथ्यों के आधार पर पाठकों को स्वयं निष्पक्ष निर्णय कर मोतीलालजी के प्रश्नों तथा दलीलों का स्वयं उत्तर देना चाहिए (उन दलीलों का, जो उन्होंने अपने दूसरे पत्र में दी हैं)।

परन्तु मोतीलालजी के पत्र में विशेष अंश न तो इसके तथ्य थे और न ही स्वराजवादियों की रणनीति के समर्थन में दी गई दलीलें थीं, बल्कि थे उनके व्यंग्यात्मक आक्षेप थे। पत्र का आरम्भ उन्होंने स्वाभाविक तौर पर लालाजी को बधाई देने से किया, 'आपको भारत के अधिकारों तथा आकांक्षाओं के पायनियर जैसे मित्र की ओर से बहुत ही उचित अभिनन्दन और बधाई।" सदन त्याग की रणनीति पर आपत्ति पक्ष का उत्तर देते हुए, मोतीलालजी ने बार-बार कहा कि लालाजी (कानपुर में लिए गए) इस निर्णय में भागीदार थे या उनको स्वीकार करने में या उनसे मतभेद होने में (दिल्ली ए० आई० सी० सी० बैठक में) उन्होंने परिस्थितियों का स्पष्ट विच्छेद का रूप न दिया। धीरे-धीरे और सहज, से व्यवहार ने मोतीलालजी को व्यंग्य करने का बहुत उपयुक्त अवसर दिया—शायद उन्हें दलील का उत्तर देने के लिए आभार मुक्त कर दिया। उन्हें एक वाक्य व्यंग्य के लिए और भी अच्छा लगा—लालाजी की यह घोषणा कि स्वराजवादियों की रणनीति अपने निर्वाचन क्षेत्रों से विश्वास भंग की कारवाई है और उनका यह कथन कि अब वह और अधिक समय के लिए इसमें भागीदार नहीं बन सकते।

मोतीलालजी ने साबरमती-संधि की पुष्टि न किए जाने की जिम्मेदारी लेने से इन्कार कर दिया, "यदि उस संधि को उसी रूप मे ले लिया जाए, जिस प्रकार वह है, तो इसकी पुष्टि न करने के लिए कौन जिम्मेदार है?" और ऐसे स्वर में, जिसमे व्यग्य था, उन्होंने कहा, "मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि पद स्वीकार करने के बारे मे आपके विचार नही बदले और मै विश्वास करता हू कि आप इन विचारो पर कुछ और समय के लिए कायम रहेंगे।" यदि छिपे हुए व्यग्य के साथ वह किसी भविष्यवाणी की ओर संकेत कर रहे थे, तो वह सत्य न हुई।

कार्य समिति का यह प्रस्ताव कि एक समुदाय विधेयक की स्वीकृति मे बाधा डाल सके, मोतीलालजी का भी स्वीकार नही था। उन्होने कहा कि "यह गलतफहमी के कारण मेरी अनुपस्थिति मे पास किया गया था और इस पर फिर से विचार किया जा रहा है।" उनकी अपनी प्रांतीय कांग्रेस समिति का प्रस्ताव, जिसमे सिफारिश की गई थी कि स्वराज पार्टी चुनाव लडे, जिस प्रकार कानपुर प्रस्ताव से पहले था और कांग्रेस सीधे चुनाव न लडे, पण्डितजी ने तकनीकी आधार पर एक आरोप का सहारा लेकर रद्द कर दिया, जिसको अन्य लोगो के अलावा अध्यक्ष ने भी इन्कार किया—कि 'यह बहुत से व्यक्तियों का, जो सदस्य नही थे, बैठक मे भाग लेने की अनुमति देने से हुआ और कांग्रेस कार्यकारिणी ने इस प्रस्ताव पर विचार से इन्कार कर दिया था।' वह कांग्रेस जनता के बीच बढ रही इस भावना को स्वीकार करने को तैयार नही थे कि कांग्रेस के अधिकार को चुनाव झगड़ो के बीच न लाया जाए। एक अन्य आक्षेप त्यागपत्र की उस बात पर किया गया कि पार्टियो मे विरोध के स्थान पर संयुक्त मोर्चा होना चाहिए।

पत्र मे अन्य कई स्थानो पर भी छींटाकशी की गई, जिनमे लालाजी पर "मिताचारी" का आरोप लगाया गया था। कुछ व्यग्य तो ऐसे थे जिनसे स्पष्ट दिखाई पडता था कि वह उसी व्यक्ति पर उल्टा वार करेंगे, जिसने वह व्यग्य किए थे। लालाजी के पत्र के समान मोतीलालजी का पत्र भी सद्भावना के स्वर में समाप्त हुआ, यद्यपि इस अवसर पर भी वह 'धीरे धीरे और सहज से' के कथन को गलत तौर पर

माडने से न रुके, जो उन्होंने लालाजी के पत्र से खिल्ली उडाने के लिए चुना था— "मुझे आशा है कि आप अपना मन बदलने में जल्दबाजी से काम नही लेंगे, परन्तु मुझे आशा है कि 'धीरे धीरे और सहज से आप देखेंगे कि आप अपना विश्वास पा लेंगे और स्पष्ट शब्दों में उसकी घोषणा कर देंगे।"

एक के बाद एक चोट बडी शीघ्रता से आई थी, जिस दिन लालाजी का पत्र प्रकाशित हुआ मोतीलालजी ने अपना पत्र लिखकर समाचार-पत्रों को भेज दिया। (सरोजिनी नायडू ने निराश होते हुए भी आशा बनाए रखी और अपने प्रयत्न जारी रखे, परन्तु मोतीलालजी ने उचित समझते हुए अपने सदेशवाहक को बदल दिया और अपना पत्र अमृतसर के लाला गिरधारी लाल के माध्यम से लालाजी को भेजा) मोतीलालजी का पत्र 30 अगस्त की रात को लालाजी को पहुचाया गया और 2 सितबर को लालाजी ने दूसरा पत्र भेजा, क्योंकि उन्होंने देखा कि मोतीलालजी का पत्र 'आरोपों व वक्रोक्तियों, अर्ध-सत्यों तथा गलत बयानों से भरा हुआ था, जिन्हें मैं नजरअन्दाज नही कर सकता था और उनका उत्तर दिए बिना नही रह सकता था।"

मोतीलालजी ने यह कहने की चिंता न की कि क्या वह जाब्ता फौजदारी मे सशोधन बिल को इतना अधिक महत्वपूर्ण नही समझते थे कि स्वराजवादी विधान सभा की बैठक म भाग लें। लालाजी के विचार म, वह सशोधन को नागरिक अधिकारों (विशेषकर समाचारपत्रों की स्वतत्रता की) की गभीर अवहेलना मानते थे। इसके विपरीत उन्होंने यह लाभ लिया कि मालवीयजी ने इस व्यवस्था की सराहना की थी और लालाजी ने मालवीयजी को दिए गए इस ताने पर अपने पत्र म सबसे अधिक रोष व्यक्त किया था। मालवीयजी को "आपका वर्तमान सहयोगी" कहते हुए और बिल के समर्थन म दिए उनके भाषण की चर्चा करते हुए मोतीलालजी ने पूछा था, "मैं आपसे ही पूछता हू कि इस प्रकार की सगति मे एक स्वराजवादी क्या कर सकता है।"

यह आलोचना कि सदन त्याग जोरदार प्रदर्शन था, अपना महत्व खो चुकी थी। अपवादों के कारण अर्थात "सदन गमन" के कारण यह असफल सिद्ध हो चुकी थी क्योंकि यह आशा कि स्वराजवादी

मिताचारिता तथा उग्रवाद के न्यायोचित मध्य का रास्ता अपनाया यह बहुत ही उचित बात थी, जैसा कि आपके भाषण से व्यक्त होता है जिसमें आपने इच्छा व्यक्त की थी कि भारतीय अपीलें भारतीय उच्चतम न्यायालय के स्थान पर लन्दन में प्रीवी कौंसिल द्वारा सुनी जाएं और आपने अदालत की मानहानि से सम्बद्ध बिल के प्रारम्भिक रूप में समर्थन भी दिया था। मेरा अनुमान है कि इन दोनों कार-णों से आपको पायनियर तथा सरकार दोनों का समर्थन प्राप्त था।"

उससे अधिक लालाजी ने मालवीयजी को दिए गए ...व्यक्त की।

"...फिर अपील की कि रुखाई से बचा जाए—... तो स्वच्छ तौर से लड़ा जाए।"

...के एक और पत्र के बाद समाप्त ...के प्रकाशित होने के साथ आरम्भ मेरा अनचाहा अन्तिम योगदान। इस पत्र ...गई और न पहले से बहस के अधीन मामला ...दी गई। पण्डितजी ने एक बार विधान ...चुनाव की चर्चा की और इस विषय पर ...तथ्या" में इस विषय को लिया। "मैं ...तथ्यों के बारे में खंडन चाहूंगा। यह ...आपकी आपकी दया पर छोड़ दूंगा।"

...दिया कि लालाजी का यह निष्कर्ष ...मदनमोहन मालवीय के प्रति सम्मान ...में हिस्सेदार नहीं और उन्होंने ...बदलते हुए अस्थिर व्यवहारों का मिश्रण ...चित थे और त्याग पत्र देने वाले को

...ही समाप्त हो गई दोनों और से ...(सितंबर) के साथ भेंट में लालाजी ...जाने के लिए मैंने रायजादा

अपना समदीय अमल छोड देगें, ताकि वे अपना समय चरखा कातन, खादी का प्रचार करने और रचनात्मक कार्यक्रम के अन्य काम करने म लगाएगे, अधिक सीमा तक पूरी नहीं हुई थी। यहा भी मोतीलालजी ने न तो आरोप का खण्डन किया और न ही इसके सत्य का स्वीकार किया, बल्कि लालाजी को बताया कि "सदन गमन" की अनुमति केवल उन पर आभार व्यक्त करने के लिए दी गई और यदि "रचनात्मक" कार्य आरम्भ नहीं किया गया तो पार्टी के सदस्य के तौर पर लालाजी किसी अन्य व्यक्ति के मुकाबले अधिक जिम्मेदार थे, अन्य बातो के अतिरिक्त, यद्यपि पडितजी जानते थे कि लालाजी ने छुट्टिया यूरोप म बिताई थी।

लालाजी के दूसरे पत्र म एक बार फिर यह सिद्ध करने का यत्न किया गया था कि वह एक निर्दलीय उम्मीदवार के तौर पर निर्वाचित हुए थे और उन्होंने मतदाताओ को कोई वचन नहीं दिया था, न ही स्वराज पार्टी को कोई आश्वासन दिया था। और "सदन मे रहन" की धारा तथा उसके उपयोग के बारे मे मोतीलालजी ने जब इनकी जिम्मेदारी लालाजी पर डालनी चाही, तो उन्होंने उत्तर दिया, 'यह सभी सदन गमन मेरी भारत से अनुपस्थिति के दौरान हुए और मैं उनके बारे म किसी भी निर्णय म शामिल नहो था।"

'सदन गमन' के बारे म कई बार आज्ञा विशेष समिति ने दी थी और कुछ एक की तो औपचारिक स्वीकृति भी नही दी गई थी केवल मिली भगत थी और थी मौन स्वीकृति।

उन्होंने फिर साबरमती सधि की भद्दी कथा की चर्चा की।

'पायनियर की बधाई के ताने और मिताचारी होने के व्यग्य का तुरत उत्तर मिला

"पायनियर की बधाई के बारे म आपकी टिप्पणी की चुभन चुनाव क सबध म एक रणनीति ही है। इस प्रकार की टिप्पणी एक ऐसे सज्जन को शोभा नही देती, जिसे उस समाचार पत्र म तथा अनेक एग्लो इडियन समाचार-पत्रो से विधान सभा म उनकी समतल मिताचारी राजनीति के लिए स्वय बधाई मिल चुकी हो। आपने

मिताचारिता तथा उग्रवाद के न्यायोचित मध्य का रास्ता अपनाया यह बहुत ही उचित बात थी, जैसा कि आपके भाषण से व्यक्त होता है जिसमें आपने इच्छा व्यक्त की थी कि भारतीय अपीलें भारतीय उच्चतम न्यायालय के स्थान पर लंदन में प्रीवी कौंसिल द्वारा सुनी जाएं और आपने अदालतों की मानहानि से सम्बद्ध बिल के प्रारम्भिक चरणों में समर्थन भी दिया था। मेरा अनुमान है कि इन दोनों कार्रवाइयों को पायनियर तथा सरकार दोनों का समर्थन प्राप्त था।"

परन्तु इन सबसे अधिक लालाजी ने मालवीयजी को दिए गए ताने पर बहुत नाराजगी व्यक्त की।

अन्तिम पैरे में उन्होंने फिर अपील की कि रुखाई से बचा जाए—"यदि हमें लड़ना ही है, तो स्वच्छ तौर से लड़ा जाए।"

यह पत्र-युद्ध मोतीलालजी के एक और पत्र के बाद समाप्त हो गया। "आपके त्यागपत्र के प्रकाशित होने के साथ आरम्भ हुए अनुचित वाद-विवाद में मेरा अनचाहा अन्तिम योगदान।" इस पत्र में न कोई नई बात कही गई और न पहले से बहस के अधीन मामला के बारे में कोई और दलील दी गई। पण्डितजी ने एक बार विधान सभा के लिए लालाजी के चुनाव की चर्चा की और इस विषय पर अपने आरोपों के "चार केंद्रीय तथ्यों" में इस विषय को लिया। "मैं आपकी ओर से चार केंद्रीय तथ्यों के बारे में खंडन चाहूंगा। यह निर्णायक होगा और मैं अपने आपको आपकी दया पर छोड़ दूंगा।"

उन्होंने यह स्पष्टीकरण भी दिया कि लालाजी का यह निष्कर्ष बिल्कुल गलत था कि "मैं पंडित मदनमोहन मालवीय के प्रति सम्मान तथा आदर की आपकी भावनाओं में हिस्सेदार नहीं और उन्होंने त्यागपत्र के बारे में विवाद का बदलते हुए अस्थिर व्यवहारों का मिश्रण बताया, जो सारे के सारे अनुचित थे और त्याग पत्र देने वाले को मजबूर होकर अपनाने पड़े थे।"

कागजी गोलाबारी इसके साथ ही समाप्त हो गई, दोनों ओर से दो दो गोले दागे गए। 'ट्रिब्यून' (5 सितंबर) के साथ भेंट में लालाजी ने दोहराया कि विधान सभा में जाने के लिए मैंने रायजादा

हंसराज की पेशकश बिना शर्त स्वीकार की थी, पंजाब के अन्य सदस्यों ने भी उनके लिए स्थान छोड़ने की पेशकश की थी और किसी ने भी कोई शर्त नहीं रखी थी। उन्होंने दलील दी थी कि सदन-त्याग की नीति देश के लिए, विशेषकर हिन्दुओं के लिए हानिकर थी। उन्होंने यह भी बताया कि स्वराज पार्टी से उनका त्याग पत्र देने की संभावना नहीं थी, यदि पार्टी ने जाब्ता फौजदारी संशोधन बिल तथा साम्प्रदायिक प्रस्ताव पर बहस में भाग लेने का निर्णय किया होता। बातचीत जो त्यागपत्र देने के बाद भी जारी रही थी अचानक समाप्त हो गई और इसके शीघ्र ही फिर से शुरू होने की आशा न थी, क्योंकि पण्डित मोतीलाल के पत्र में मालवीयजी का अपमान किया गया था।

त्यागपत्र में कुछ राजनीतिक प्रश्न उठाने का प्रयत्न किया गया था—साबरमती संधि, अखिल भारतीय कांग्रेस समिति का मार्च का प्रस्ताव, सदन त्याग की नीति तथा उसके प्रभाव, और क्या कांग्रेस संगठन को चुनावों में भाग लेना चाहिए और या कांग्रेसजनों को, जैसा कि उन्होंने पहले किया था, संसदीय कार्य के लिए अलग संगठन के माध्यम से कार्य करना चाहिए। परन्तु इन प्रश्नों की ओर अपेक्षाकृत थोड़ा ध्यान दिया गया था, और क्या लालाजी द्वारा विधान सभा में आने के समय कोई आश्वासन दिए गए थे या वायदे किए गए थे अथवा नहीं, यह बात विवाद का केंद्रीय विषय बन गयी थी। इस बात में लालाजी अपना ध्यान रखने में सक्षम थे क्योंकि तथ्य जोरदार तौर पर उनके पक्ष में थे, स्वराजवादियों की रणनीतियों की लालाजी द्वारा जोरदार आलोचना का कुछ प्रभाव पड़ना भी आवश्यक था, परन्तु यद्यपि उन बहुत से लोगों के लिए जो इस पत्राचार का राजनीतिक जानकारी के लिए नहीं बल्कि केवल साहित्यिक विवाद के तौर पर अध्ययन करना चाहते थे कि दोनों में से किस व्यक्ति ने व्यंग्य और कटाक्ष के शस्त्रों का अधिक दक्षता से प्रयोग किया है उनके विचार में विजय इलाहाबाद के प्रख्यात वकील के पक्ष में थी।

द्वंद्व युद्ध लड़ने वाले इन दोनों अनुभवी महारथियों द्वारा जोरदार आक्रमण करने तथा वार बचाने के दांव पेंचों से उस महान युद्ध की पूर्व जानकारी मिलती थी जो आगामी चुनाव में, दो मास बाद होने वाले थे।

ये पत्र आम चुनाव की उस असल प्रतियोगिता का प्रारम्भ मात्र थे, जिसके लिए टीमों का चयन दोनों पार्टियों द्वारा किया जा रहा था। अधिकृत तौर पर कांग्रेस के उम्मीदवारों का चयन अब भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की कार्यकारिणी को करना था और लालाजी उस संस्था के अभी भी सदस्य थे। कार्य समिति ने सितंबर के आरम्भ में उम्मीदवारों का चयन आरम्भ कर दिया था और अपनी योजनाओं को अन्तिम रूप देना शुरू कर दिया। लालाजी ने जान-बूझकर उस बैठक तथा आगामी बैठकों में भाग न लिया। इसकी बजाय वह उन कांग्रेसजनों की एक और पार्टी बनाने में व्यस्त हो गए, जो संसदीय कार्यक्रम के पक्ष में थे और इसके साथ ही स्वराजवादियों की रणनीति से असंतुष्ट थे—जो सामान्य तौर पर उनके अपने तथा मालवीयजी और महाराष्ट्र गुट के दृष्टिकोण से सहमत थे।

एक ओर मोतीलालजी तथा उनके सहायकों ने तथा दूसरी ओर मालवीयजी, लालाजी तथा उनके मित्रों ने जोरदार अभियान आरम्भ कर दिया था। दूसरे पक्ष ने अपने आपको इंडिपेंडेंट कांग्रेस कहलवाने का निर्णय किया, शायद अचेतन तौर पर यह ब्रिटिश आइ० एल० पी० की प्रणाली के अनुसार था। उन्होंने मतदाताओं को न केवल हिंदू महासभा के नाम पर अपील करने से ही इन्कार किया, उन्होंने यह दावा भी किया कि वे स्वराज पार्टी वाले कांग्रेस कार्यकर्ताओं जैसे ही अच्छे कांग्रेसजन थे। यद्यपि वे स्वराजवादियों के समान 'बाधा डाल' नीति में विश्वास नहीं रखते थे। इसके अतिरिक्त उन्होंने यह बात भी स्पष्ट कर दी कि वे कांग्रेस पार्टी द्वारा चुनाव में भाग लेने के पक्ष में नहीं थे।

अक्सर यही प्रश्न किया जाता था कि क्या असल टकराव सिद्धांतों और नीतियों का था या व्यक्तित्व का। सिद्धांतों और नीतियों के मतभेदों का तो हम पहले ही स्पष्टीकरण दे चुके हैं और किसी भी तरह से यह मतभेद अवास्तविक अथवा मामूली नहीं थे। परन्तु यह संभव है कि व्यक्तित्वों के टकराव ने उन्हें विराट तीव्रता प्रदान कर दी हो तथा मामले को और उलझनपूर्ण बना दिया हो। जब आरम्भ में स्वराज पार्टी की स्थापना की गई थी, लालाजी जेल में थे (यद्यपि उन्होंने

वहां से ही सहयोग दिया था) । जब वह जेल से रिहा होकर आए तो वह विधान मंडल की सदस्यता के अयोग्य थे और उन्होंने पार्टी में शामिल होना जरूरी न समझा। दास और नेहरू पार्टी के संस्थापक थे और उन्होंने अच्छा ही किया कि अपने लिए कार्यक्षेत्र निर्धारित कर लिए—दास पार्टी के अध्यक्ष और बंगाल विधान मंडल में पार्टी के नेता थे, नेहरू पार्टी के सचिव और केंद्रीय सभा में पार्टी के नेता थे। दास के देहांत के बाद नेहरू ही इसके प्रधान तथा केंद्रीय सभा में इसके नेता थे, जब लालाजी के लिए सदन की सदस्यता की व्यवस्था की गई। दोनों के दृष्टिकोण में मतभेद होने के बावजूद, लालाजी और मोतीलालजी ने आपसी सहयोग बहुत अच्छी तरह किया, जब तक लालाजी औपचारिक रूप से मोतीलालजी के दल में शामिल न हो गए। इस दृष्टिकोण से लालाजी का विधान मण्डल में प्रवेश एक गलती थी, क्योंकि पार्टी के नेता के साथ समझौता अब और अधिक अनिवार्य और कठिन हो गया था। कई बार ऐसे अवसर भी आए जब या तो उन्होंने महसूस किया कि अनुशासन बहुत कष्टप्रद था या नेता बहुत रोबीला था या जब नेता ने महसूस किया कि उसने जो ढंग निपटने के लिए अपनाया था, लालाजी का व्यक्तित्व उससे कहीं अधिक बड़ा था। लालाजी मोतीलालजी से कनिष्ठ स्थान पर हों, यह बात बहुत से लोगों को अनुपयुक्त दिखाई देती थी, यद्यपि इस स्थिति को समाप्त करने के लिए विच्छेद ही समाधान नहीं था, क्योंकि लालाजी आसानी से सभा से बाहर रह सकते थे और तब वह मोतीलालजी की सहायता भी कर सकते थे और आलोचना करने के लिए भी स्वतंत्र रह सकते थे।

चुनाव अभियान ने लालाजी की बहुत शक्ति खर्च करवाई। विभिन्न प्रांतों से पार्टी के उम्मीदवार नामजद करना उनकी जिम्मेदारी थी और अभियान की योजना को प्रभावित करने वाले प्रमुख प्रश्नों का निर्णय करना भी उनके जिम्मे था। निस्संदेह उन्हें अपने प्रांत तथा अन्य प्रांतों में बहुत से निर्वाचन क्षेत्रों का दौरा करना पड़ा, ताकि अपनी पार्टी के उम्मीदवारों की सहायता कर सकें और मतदाताओं को बता सकें कि नई पार्टी का लक्ष्य क्या था। इसके अतिरिक्त उनका व्यक्तिगत रूप से बहुत डटकर

विरोध किया जा रहा था । जब मोतीलालजी लाहौर आए ताकि लालाजी को उनके गढ़ में ही पराजित किया जाए, तो बहुत से कांग्रेस-जनों ने इच्छा व्यक्त की कि लालाजी और मालवीयजी का विरोध न किया जाए, क्योंकि उनकी निजी हैसियत माग करती थी कि उन्हें विधान मडलों में होना चाहिए, चाहे कुछ मामलों में उनका कांग्रेस के ससदीय नेताओं से साथ मतभेद भी क्यों न हो और इसलिए भी कि विरोध न करने से फिजूल ही कटुता से बचाव होगा, नहीं तो पीछे बहुत अधिक तल्खी रहेगी। कुछ वक्ताओं ने उनका दृष्टिकोण पण्डित मोतीलाल के सामने रखा। पडित मोतीलालजी से आग्रह किया गया कि ऐसे प्रमुख देशभक्तों के विरुद्ध उम्मीदवार खड़े किए जाने को मतदाता पसद नहीं करेंगे और ऐसा करना सामान्य तौर पर कांग्रेस पार्टी के हित में नहीं होगा। परन्तु मोतीलालजी को पजाब में उनके कुछ समर्थकों ने आश्वासन दिया था कि उनकी भारी बहुमत से विजय होगी और इस बहुत ही गलत आश्वासन के अनुमान के कारण वह बहुत ही घमड में थे। नायड जाज का उद्धरण देते हुए उन्होंने अपनी भेंटवार्ताओं में कहा, 'मैं अपनी पार्टी के माची को भी विरोधी पार्टी के नेता से अच्छा समझता हूं।"

यद्यपि उन्हें बहुत ही अहकार था परन्तु यह अहकार तो उनका सिर नीचा करने के लिए था। जब चुनाव परिणाम घोषित हुए तो उन्हें पराजय नहीं, बल्कि घोर पराजय को स्वीकार करना पड़ा। वह विधान सभा में अब भी विपक्ष के नेता बने रहे, परन्तु वह केवल इसलिए कि लालाजी और मालवीयजी ने केवल उत्तर भारत में ही उनका मुकाबला किया था, प्रायद्वीप में नहीं। मोतीलालजी विपक्ष के नेता भी नहीं रह सकते थे, यदि मद्रास के विधायक उनका समर्थन न करते। उनके अपने प्रांत में मतदाताओं ने उन्हें बहुत बड़ी सजा दी थी।

पजाब के स्थानीय परिषद के लिए स्वराज पार्टी का प्राय सफाया ही हो गया, केवल एक स्थान को छोडकर, जहा उम्मीदवार के व्यक्तिगत सम्मान को देखते हुए लालाजी का उस निर्वाचन क्षेत्र का खुला छोड देने के लिए सहमत कर लिया गया था। मतदान के अन्तिम चरणों में, जब लालाजी का मतदान सम्पन्न हो चुका था, उन्हें सहमत कर लिया

गया कि वह बोधराज (मुलतान का) का विरोध न करे और इस प्रकार बोधराज को निर्वाचित होने दिया गया, जो बहुत कम मतों से निर्वाचित हुए थे। पंजाब में केंद्रीय सभा के लिए स्वराज पार्टी का एक भी उम्मीदवार सफल न हुआ। लालाजी ने दो निर्वाचन क्षेत्रों से चुनाव लड़ने का असाधारण कदम उठाया और इस व्यक्तिगत संघर्ष के अतिरिक्त वह पार्टी के उम्मीदवारों की सहायता के लिए पंजाब ही नहीं, अन्य प्रांतों में भी दौड़-भाग करते रहे।

अपने दो निर्वाचन क्षेत्रों में लालाजी का विरोध रायजादा हंसराज तथा दीवान चमनलाल कर रहे थे। रायजादा हंसराज चुनाव लड़ने के लिये तैयार न थे और उन्होंने अपने नेता को लालाजी के विरुद्ध उम्मीदवार खड़ा न करने के लिये सहमत करने की कोशिश की, परन्तु उनकी सलाह नजरअन्दाज कर दी गई और उन्हें आदेश दिया गया कि वह चुनाव अवश्य लड़ें। उन्होंने वफादारी से आदेश का पालन किया और सूचियां प्रस्तुत कीं और कुछ समय के लिए पूरी शक्ति भी लगाई। परन्तु उन्हें यह अहसास होने में अधिक समय नहीं लगा कि उनकी सफलता की लेशमात्र भी संभावना नहीं, इसलिए वह मतदान से काफी समय पूर्व चुनाव मैदान से हट गए।

लाहौर के कांग्रेसजनों का जो प्रतिनिधि मंडल पंडित मोतीलाल से मिला था, उसे डांट-डपटकर, शायद जान के चुभते हुए, रूखे शब्द कहकर लौटा दिया गया था। उसमें कुछ लोग लोक सेवा संघ के थे, जिन्होंने पूरा आश्वासन दिया था कि उनकी नई पार्टी बनाने में कोई रुचि नहीं, जैसा कि लालाजी और मालवीयजी का प्रस्ताव था और न ही बदली हुई परिस्थिति में उनका वफादारी बदलने का इरादा था। लालाजी ने कभी उनसे नई पार्टी में शामिल होने को कहा भी न था (इस पुस्तक का लेखक प्रतिनिधि मंडल का एक सदस्य था)।

यद्यपि भेंट के समय मिली झिड़की से मन को बहुत ठेस लगी हुई थी, फिर भी अचिन्तराम, जो संघ के संस्थापक सदस्यों में से थे, चमनलाल को वोट डालने के लिए मतदान केंद्र गये। जब वोट डालने के बाद वह घर लौटे तो लालाजी ने उन्हें गले लगाकर स्नेहपूर्वक थपकी

दो कि उन्होंने अपने विश्वास के अनुसार कार्रवाई की थी। अचिन्तराम को शायद अपने व्यवहार पर अप्रसन्नता हुई हो, क्योंकि अगले दिन के समाचार-पत्रों में स्वराजवादी नताओं न (जिन नेताओं ने अचिंतराम को उकसाया था) इस बात को गलत ढग से पेश किया था।

परन्तु लालाजी ने कोई शिकायत न की। लालाजी की अपनी लाहौरी विजय की कहानी भी उल्लेखनीय है। दीवान चमन लाल तुरत 2, कोर्ट स्ट्रीट पहुचे, ताकि अपन लिए वह स्थान पक्की बना सकें जो लालाजी को खाली करना था। उन्होंने कहा "यदि मैं विधायक न बन पाया तो मेरा महत्व कुछ भी नही और मैं कही का भी नही।" लालाजी के विरुद्ध अभियान म जो कुछ वह करते रहे थे, वह अब समाप्त हो चुका अध्याय था। लालाजी ने तुरत स्वीकार कर लिया कि उन्होंने विधान सभा म सराहनीय काय किया था और इसलिए उन्होंने रायजादा हसराज वाला स्थान (जालधर) रख लिया। रायजादा हसराज भी लाहौर आये। व पहल जैसी ही सदभावना से मिले और ऐसी व्यवस्था की गई कि वह भी पजाब विधान मण्डल क सदस्य बन गये। यदि लालाजी न लायड जाज वाला सिद्धात इस्तेमाल किया होता तो न चमन लाल सभा मे पहुचत और न हसराज विधान परिषद के सदस्य बन पात।

चुनाव भी अजीब परिस्थिति म होत है और चुनाव लडने वाला का व्यवहार अक्सर विचित्र होता है। लालाजी की नामजदगी पर भी इस आधार पर काग्रेस पार्टी की आर स आपत्ति की गई थी कि उनका वकालत का लाइसेंस चीफ कोट न इसलिए रद्द कर दिया था कि उन्होंन एक पुस्तक लिखी थी जिसे राजद्रोही समझते हुए सरकार ने उसपर पाबन्दी लगा दी थी। इसलिए वह विधान सभा के लिए चुन जान के अयोग्य हैं, यह दलील प्रतिद्वदवी काग्रेस पार्टी के उम्मीदवार ने कागजों की पडताल के समय दी थी। परन्तु लालाजी न इस किस्म की परिस्थिति के लिए अपन आपको पहले से तैयार कर लिया था और एक याचिका दवारा 1917 के बेहदा आदेश को रदद करवा लिया था।

यद्यपि स्वराज पार्टी द्वारा उनका डटकर विरोध किया जा रहा था तथा उन्हें परेशान किया जा रहा था और मोतीलालजी ने कहा था कि उनका मोची लालाजी से अधिक महत्व का है, परन्तु जब उन्हें पता चला कि यू० पी० में मालवीयजी के कुछ समर्थक मोतीलालजी के विरुद्ध उम्मीदवार खड़ा करने पर बहुत ज़ोर दे रहे हैं, तो उन्होंने इस प्रस्ताव का विरोध किया और मालवीयजी को लिखा

14 अक्तूबर 1926

मेरे प्रिय पंडित मालवीय,

मैंने समाचार पत्रों में एक वक्तव्य पढ़ा है कि यू० पी० में इंडिपेंडेंट कांग्रेस पार्टी के सदस्य आप पर दबाव डाल रहे हैं कि उसी स्थान से विधान सभा के आगामी चुनाव लड़ें, जहां से पण्डित मोतीलाल के खड़े होने की आशा है। मेरा ख्याल है इस वक्तव्य में कोई सार नहीं। कुछ भी हो, मैं आपसे प्रार्थना करूंगा कि इस मामले में आप अपने मित्रों की सलाह न मानें, क्योंकि मेरे अनुमान में आप दोनों का विधान सभा में होना देश के हित में है।

जहां तक मेरा प्रश्न है, मैं अपना ध्यान स्वयं रख सकता हूं। मैं प्रतिशोध के सिद्धांत में विश्वास नहीं रखता।

भवदीय
लाजपत राय

स्वतंत्रता के लिए व्यापक संघर्ष के संबंध में लालाजी पार्टी लेबलों को अधिक महत्व नहीं देते थे। यहां भी राजनीतिक पार्टी में अनुशासन की धारणा के मामले में उनके सिद्धांत स्वराज पार्टी के प्रमुख द्वारा घोषित तथा स्वीकृत सिद्धांतों से भिन्न थे।

लालाजी ने जोरदार संघर्ष किया और यथाशक्ति युद्ध का स्वच्छ और सम्मानपूर्वक रखने का प्रयत्न किया, उस समय भी जब उन्हें पता था कि उन पर कीचड़ उछाली जा रही थी। उनके पक्ष की ओर से एक खेदजनक घटना हुई, जबकि इसमें लालाजी का कोई हाथ नहीं था। यह घटना 'वंदे मातरम्' (तथा कुछ अन्य समाचार पत्रों में भी) में मोतीलालजी के विरुद्ध एक निन्दात्मक कहानी के प्रकाशन

की थी । जब यह घटना हुई उस समय लालाजी लाहौर से बाहर गए हुए थे, परन्तु जैसे ही उन्हें इसकी जानकारी मिली उन्होंने उसकी जोरदार निन्दा की और चुनाव के बाद उन्होंने दोषी समाचार पत्र को मोतीलालजी से बिना शर्त क्षमा याचना करने और स्वराज पार्टी के नेता के संतोष के अनुसार भूल सुधारने के लिए कहा।

जवाहरलाल नेहरू उस समय कमला नेहरू की बीमारी के कारण उनके पास थे । अपना चुनाव अभियान समाप्त करने के पश्चात, जबकि अभी सभी चुनाव परिणाम आए भी नहीं थे, मोतीलालजी ने उन्हें बहुत ही निराशापूर्ण पत्र लिखा । घोर पराजय ने उन्हें इतना हताश किया था कि वह विधान सभा की सदस्यता से त्यागपत्र देने और सार्वजनिक जीवन से अवकाश लेने की सोच रहे थे । यद्यपि वह "अभी भी सबसे बड़ी पार्टी के नेता" होने का दावा करते थे, वह इस बात को नहीं भूल सकते थे कि केवल पंजाब से ही नहीं, अपने प्रांत यू० पी० में भी जो हुआ, यह पूर्ण विनाश के सिवा कुछ नहीं था।*

मतदाताओं द्वारा किसी को अस्वीकार करने की बात तो समझ में आ सकती थी, परन्तु सबसे अधिक आश्चर्यजनक स्वीकृति तो यह थी — "मेरे अपने प्रांत में मेरी सहायता करने के लिए नाममात्र को भी कार्यकर्ता नहीं हैं।"** यकीनी तौर पर इसका कारण "बिरला का धन" या "मालवीय लाला टोली" के "झूठ" नहीं हो सकते थे परन्तु कारण चाहे कुछ भी हो, असल बात यह थी— "मैं पूरी तरह निराश हूं और अब सार्वजनिक जीवन से अवकाश ले लेना चाहता हूं।"*** वह इस संबंध में चुप रहना चाहते थे, जबकि तीन चार सप्ताह बाद गुवाहाटी में कांग्रेस की बैठक होने वाली थी । वह कांग्रेस अधिवेशन के पश्चात त्यागपत्र देने के बारे में सोच रहे थे, परन्तु ऐसा दिखाई देता है कि अधिवेशन में अनुकूल वातावरण देखकर उन्होंने अपना विचार बदल लिया।

---

* ए बंच आफ ओल्ड लैटर्स पृष्ठ 49

** वही पृष्ठ 49

*** वही पृष्ठ 50

63. केंद्रीय विधान सभा में

विधान सभा में आखिरकार पण्डित मोतीलाल विपक्ष के नेता बने रहे। दक्षिण भारत में लालाजी या मालवीयजी ने कोई मुकाबला नहीं किया था। उन्होंने तो केवल उत्तर भारत के हिंदुओं का निर्णय लिया था और यह निश्चित तौर पर उनके पक्ष में गया था। मध्य भारत तथा पश्चिमी प्रेसीडेंसी की उपेक्षा नहीं की गई थी, परंतु दक्षिणी प्रेसीडेंसी को अभियान-क्षेत्र से बाहर रखा गया था। चुनाव का परिणाम भारी बहुमत से (अभियान-क्षेत्र में) उनके पक्ष में गया था, परंतु चुनाव अभियान का लालाजी के स्वास्थ्य पर बहुत भारी बोझ पड़ा था। सिंध यात्रा के दौरान तो प्रायः उनका स्वास्थ्य जवाब ही दे गया था। इंडिपेंडेंट कांग्रेस पार्टी में पर्याप्त मात्रा में प्रतिभा तथा असली देशभक्त तत्व भी थे और उनके पास लालाजी और मालवीयजी का अनुभवी नेतृत्व भी था। "मैं पार्टी का नेता हूं और मालवीयजी मेरे नेता हैं" लालाजी यह कहा करते थे। दोनों नेताओं में बहुत समन्वय था। इस नई पार्टी ने स्वाधीनता के लिए संघर्ष शानदार ढंग से जारी रखा। अफसरशाही के विरुद्ध सभी संघर्षों में स्वराजवादी तथा इंडिपेंडेंट कांग्रेसजन कंधे-से-कंधा मिलाकर लड़े।

चुनाव के शीघ्र बाद कांग्रेस अधिवेशन गुवाहाटी (असम) में एस० श्रीनिवास अयंगार की अध्यक्षता में हो रहा था। लालाजी के सहयोगियों का उचित सुनवाई का अवसर प्राप्त करने के लिए जोरदार प्रयत्न करने का इरादा था और यदि संभव हो सके तो कांग्रेस से अपने पक्ष में निर्णय लेने का। मालवीयजी ने जोरदार आग्रह किया कि लालाजी गुवाहाटी अधिवेशन की कार्यवाही में भाग लें। एम० आर० जयकर ने भी ऐसा ही आग्रह किया। लालाजी ने शायद गुवाहाटी में अपने समर्थकों को एकत्र करने या समर्थन प्राप्त करने के लिए कोई प्रयत्न न किया परंतु स्वयं गुवाहाटी अधिवेशन में भाग लेने के लिए सहमत हो गए। वह रास्ते में थे कि उन्हें दुखदायी खबर मिली कि एक जुनूनी मुसलमान हत्यारे ने स्वामी श्रद्धानंद को

शहीद कर दिया था। गुवाहाटी में शोकमय वातावरण होना स्वाभाविक था और उस दुखांत घटना की पृष्ठभूमि में सारे राजनीतिक विवाद कुछ समय के लिए बहुत फीके तथा हल्के दिखाई पडने वाले थे। कोई भी व्यक्ति यह भविष्यवाणी नहीं कर सकता था कि इस घटना के पश्चात दिल्ली में क्या होगा या उत्तर क्षेत्र के अन्य स्थानों पर क्या होगा? गुवाहाटी जाते हुए कलकत्ता में लालाजी के मन में पहले तो यह विचार आया कि तुरंत दिल्ली तथा पंजाब लौट जाएं। महात्मा गांधी इस बात से सहमत थे। गुवाहाटी जाने की बजाय लालाजी तुरंत दिल्ली पहुंचे (केलकर और जयकर बीमारी के कारण जा नहीं पाए थे, इसलिए मैदान स्पष्ट तौर पर स्वराजवादियों के पक्ष में था)। लालाजी का अन्तिम कांग्रेस अधिवेशन यू० पी० का था—चालीसवां अधिवेशन कानपुर में—उनका पहला अधिवेशन भी यू० पी० में ही था—चौथा अधिवेशन इलाहाबाद में।

शीघ्र ही दिल्ली में विधान सभा का अधिवेशन आरम्भ हो गया, पार्टी के नेता के तौर पर उनका काम बहुत कठिन था। पिछले वर्ष मध्य अगस्त में यूरोप से लौटने के बाद से लेकर उन्होंने आराम नहीं किया था और अधिवेशन के दौरान वह लगातार थकान महसूस करते रहे थे। सभा का अधिवेशन समाप्त होने के बाद उन्होंने मन बना लिया कि वह अवश्य ही आराम करेंगे और उन्होंने पिछले वर्ष की तरह इस बार भी यूरोप की तीन चार मास की यात्रा की व्यवस्था कर ली। उन्होंने 'द पीपुल' में लिखा

'मैं यूरोप किसी लक्ष्य से नहीं जा रहा हूं। इस यात्रा का और कोई उद्देश्य नहीं, केवल आराम तथा स्वास्थ्य लाभ है। भारत के स्वास्थ्यवर्धक स्थानों (पहाड़ों तथा सागर तट के) के अनुभव से मैंने देख लिया है कि उनका जलवायु तथा वातावरण मुझे वह विश्राम नहीं दे सकते, जिसकी मुझे आवश्यकता है। पहाड़ों की जलवायु मेरे अनुकूल नहीं, मेरा आमाशय गडबड हो जाता है। इसके अतिरिक्त भाषणों तथा बैठकों आदि के लिए बुलावे इतने अधिक तथा इतने जोरदार होते हैं कि उनसे इंकार करना कठिन हो जाता है। यदि इंकार भी किया जाए तो मित्र अथवा निर्वाचन क्षेत्र के लोगों की

नाराजगी का डर रहता है। भारत के पहाड़ी स्थलों का खर्च यूरोप के पहाड़ी स्थलों से कम नहीं। मैं यूरोप में भी काफी कम खर्च पर गुजारा कर सकता हूँ, क्योंकि मुझे अधिक आमोद प्रमोद अथवा शानदार ढंग से रहने की जरूरत नहीं। मेरा विश्वास है कि साढ़े तीन मास की यह यूरोप यात्रा (क्योंकि मुझे इतना ही समय मिलेगा) मुझे इतनी शक्ति दे देगी कि मैं भारत में फिर गंभीर कार्य करने के योग्य हो जाऊं, इसलिए मुझे आशा है कि मेरे मित्र तथा देशवासी भारत से मुझे इस थोड़ी सी अवधि की अनुपस्थिति के लिए क्षमा करेंगे। स्वदेश लौटने पर मैं फिर उनकी यथायोग्य सेवा में उपस्थित हो जाऊंगा।"

4 मई 1927 को वह पी० एंड ओ० के जलपोत 'एस० एस० रावलपिण्डी' द्वारा रवाना हो गए।

इस बार विदेश में उन्होंने जान-बूझकर अपने स्वास्थ्यहित में राजनीतिक कार्य से परहेज किया। मध्य अगस्त में स्वदेश लौटने पर उन्होंने लिखा

"मैं उनके साथ बिल्कुल साफगोई से पेश आऊंगा। मैंने विशेष तौर पर कुछ नहीं देखा और न ही कुछ किया, केवल विश्राम किया और डाक्टरों से उपचार कराया। बिल्कुल आरम्भ से ही मैंने दृढ़ निर्णय कर लिया था कि इस यात्रा में राजनीतिक कार्य बिल्कुल नहीं किया जाएगा। पिछले नवंबर में मेरा स्नायु तंत्र प्रायः जवाब दे गया था। अप्रैल में फिर सिंध-यात्रा के दौरान मेरा जिगर खराब हो गया था। इसलिए मैं अपने निर्णय पर कायम रहा। जहाज पर जाते हुए मैंने कोई कार्य नहीं किया और पहले दस दिन बिल्कुल ठीक रहा, काफी स्वस्थ तथा ताजगी महसूस की। दुर्भाग्य से भूमध्य सागर में मुझे सर्दी लग गई, जिससे जुकाम हो गया, जिसके कारण मैं प्रायः पांच सप्ताह के लिए अस्वस्थ रहा। मैं लंदन में चार सप्ताह तथा कुछ दिन के लिए रहा। इस अवधि में मैंने कोई कार्य न किया और न ही किसी से मिला, सिवाय लेबर पार्टी के कुछ मित्रों के। मैंने सेक्रेट्री आफ स्टेट फार इंडिया से मुलाकात के लिए कोई समय नहीं मांगा और इंडिया आफिस भी नहीं गया। मेरी अण्डर सेक्रेट्री फार इंडिया के साथ हाउस

आफ कमरस में एक भोज म भेंट हो गई थी, जहा मैंने कोई राजनीतिक बात नही की। अधिक बातें, कविता, साहित्य तथा प्रार्थना पुस्तक की हुई।"

परन्तु जब वह लौटे तो ऐसा दिखाई देता था कि उनके पास हाथ में और काम है, जिसके कारण वह आगामी छ मास के लिए व्यस्त रहेंगे। यह एक पुस्तक के बारे में था, जो अभी प्रकाशित हुई थी और जो यूरोप से लौटने वाले अन्य यात्रियो के समान जहाज पर वह भी अपने साथ लाए थे। यह कोई और पुस्तक नही थी, बल्कि कैथरीन मेयो लिखित मिथ्यापवाद 'मदर इंडिया' थी। स्वदेश लौटने पर शिमला में अपने निवास के आरम्भ में, जहा उन्हें विधान सभा अधिवेशन के सबध में रहना पडा था, ऐसा दिखाई पडता था कि उन्होंने इस अपवाद पुस्तक का उत्तर प्रकाशित करने का निर्णय किया। दरअसल, जब वह शिमला से लाहौर लौटे, तो ऐसा दिखाई पडता था कि उन्होंने पुस्तक लेखन का काफी काय समाप्त कर लिया था। परन्तु लाहौर में यह काय काफी धीमी गति से हुआ। उन्हें अधिक आराम न मिला। इसके अतिरिक्त वह चाहते थे कि मैं जल्दी में लिखी उनकी पाण्डुलिपि का सम्पादन करू और उसे सही रूप में दू, किन्तु मैं स्वय कई गतिविधियो में फसा हुआ था। इसलिए उन्होंने निर्णय किया कि हम दोनो कलकत्ता चलें और जब तक यह काय सम्पन्न न हो जाए, अपने आपको अन्य कार्यों से अलग रखें। हम कलकत्ता चले गए और कोई एक मास के कठिन परिश्रम के बाद हमने 'अनहैप्पी इंडिया' तैयार कर ली। यह नाम लालाजी की उस अन्तिम पुस्तक के लिए चुना गया, जो प्रकाशक को दी गई। यह पुस्तक 1928 की वसत ऋतु में ही प्रकाशित हो सकी।

विधान सभा का उनका काय कुछ अधिक ही समय ले लेता था, क्योंकि वह दो समितियो के सदस्य थे, एक मताधिकार की आयु के बारे में तथा दूसरी सडको के बारे मे और इन दोनो के सबध मे काफी यात्रा करना अनिवाय था। सडक समिति के काय के सबध मे उन्हें कई स्थानो की यात्रा करनी पडी जिनमे अडयार भी शामिल थे, जहा उन्हें एनी बेसेंट के साथ कई वर्ष के बाद फिर से मुलाकात का अवसर

अगस्त के अंत में लखनऊ में सर्वदलीय समिति ने नेहरू-रिपोर्ट पर विचार किया और मामूली परिवर्तनों के साथ उसे स्वीकार कर लिया। लालाजी, डॉ० अंसारी श्रीमती बेसेंट मालवीयजी श्री जिन्ना और विजय राघवाचारियर को समिति में शामिल कर लिया गया। लालाजी ने अपने आपको पूरे तन मन से अभियान में झोंक दिया। लालाजी और पण्डित मोतीलाल के बीच सहयोग की सही तस्वीर कुछ उन पत्रों में प्राप्त की जा सकती है, जो इस अवधि में उन्होंने एक दूसरे को लिखे थे

मिला। जब 4 अप्रैल को समिति का काय समाप्त हो गया, तो वह 6 अप्रैल को महात्मा गांधी से मिलने साबरमती चले गए, जो यूरोप यात्रा की तैयारी कर रहे थे। यह यात्रा रद्द करनी पड़ी थी जिसका मुख्य कारण साइमन कमीशन था। लालाजी ने महात्माजी के साथ कांग्रेस के लिए करोड़ मताधिकार बहिष्कार अभियान के बारे में विचार-विमर्श किया, जिसका उन्होंने पहले विरोध किया था। स्पष्ट तथ्य तो यह है कि वह जोरदार बहिष्कार अभियान चलाना चाहते और वह मिल मालिकों के विरुद्ध सुरक्षा व्यवस्था चाहते थे, ताकि वह राष्ट्रीय वस्तुओं की कीमत पर शोषण न कर पाएं। उन्होंने यह महसूस भी किया कि केवल मिलों के उत्पादन से भारत कपड़े की अपनी सारी जरूरत पूरी नहीं कर सकता। श्री ग्रेग की पुस्तक की जिस मुख्य बात ने उन्हें प्रभावित किया वह भारत में "बेरोजगारी" के कारण होने वाली हानि के बारे में था और इसे घरेलू कताई बुनाई से किस प्रकार दूर किया जा सकता था।

जून तक बारदोली में लगान न देने का अभियान शुरू कर दिया गया था। जब वह पुणे में थे, तो उन्होंने वल्लभ भाई पटेल को लिखा, "क्या वह उनकी कुछ सहायता कर सकते हैं," परन्तु सरदार ने उन्हें उत्तर में लिखा

"वर्षा ऋतु आरम्भ हो गई है और गांवों में पहुंचना असंभव हो गया है। जब्ती की कारवाई ठप्प हो गई है और लोग कृषि संबंधी कार्यों में लग गए हैं। मेरे लिए आपको विभिन्न कस्बों तथा महत्वपूर्ण गांवों में ले जाना कठिन होगा। दरअसल, आप केवल बारदोली आश्रम तक ही आ सकते हैं, जहां आपके लिए मुझसे तथा इस आश्रम में काय करने वाले कुछ सहयोगियों से मिलना संभव होगा।'

इसलिए उन्होंने वहां न जाने का निर्णय किया। चुनाव समिति की बात अब बीते दिनों की बात हो रह गई थी और लालाजी तथा पण्डित मोतीलाल विधान सभा में मिलकर मैत्रीपूर्ण ढंग से इकट्ठे काय कर रहे थे। परन्तु जिस ढंग से लालाजी ने नेहरू रिपोर्ट का समर्थन किया और जिस विशाल हृदयता से उन्होंने सभी कार्यों के लिए पण्डित मोतीलाल को अपनी सेवाएं अर्पित कीं ताकि यह काय पूरी तरह सफल हो, इससे दोनों द्वारा मिलकर पूरे विश्वास के साथ काय करना संभव हो गया, उसमें भी अधिक विश्वास के साथ जैसा उन्होंने 1921 या 1924 में किया था।

अगस्त के अंत में लखनऊ में सर्वदलीय समिति ने नेहरू रिपोर्ट पर विचार किया और मामूली परिवर्तनों के साथ उसे स्वीकार कर लिया। लालाजी, डॉ० अंसारी श्रीमती बेसेंट, मालवीयजी, श्री जिन्ना और विजय राघव चारियर को समिति में शामिल कर लिया गया। लालाजी ने अपने आपको पूरे तन-मन से अभियान में झोंक दिया। लालाजी और पण्डित मोतीलाल के बीच सहयोग की सही तस्वीर कुछ उन पत्रों से प्राप्त की जा सकती है जो इस अवधि में दोनों ने एक दूसरे को लिखे थे

64. अंतिम...

जब आप आत्मत्याग की सलाह देते हैं, तो यह मत कहो "जाओ", बल्कि कहो 'आओ" । श्रीमती ऐनी बेसेंट ने लालाजी को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए बहुत ही उचित ढंग से चार्ल्स ब्रेडला के कथन का उद्धरण दिया ।

साइमन कमीशन दूसरी बार 11 अक्तूबर 1928 को रात्रि के समय पहुंचा था और कार्यक्रम के अनुसार उसे 30 तारीख का लाहौर पहुंचना था । 27 और 28 तारीख का लालाजी ने इटावा में आगरा प्रांतीय हिंदू सम्मेलन की अध्यक्षता की । वह वहां नेहरू रिपोर्ट के प्रस्तावों के पक्ष में हिंदू जनमत तैयार करने के लिए गए थे । नेहरू योजना तथा साइमन कमीशन का बहिष्कार, दो बातें ही उस समय उनके ध्यान का केंद्र थीं । इटावा से वह यथाशीघ्र लाहौर पहुंचे, ताकि अपने शहर में साइमन कमीशन के पहुंचने के समय वहां हों और बहिष्कार के प्रदर्शनों में वह 'आओ" कह सकें और दूर से ही "जाओ" न कहें ।

30 तारीख की प्रातः जब वह "साइमन वापस जाओ" के विशाल जनसमूह की अगुवाई कर रहे थे, तो उन्होंने कहा—"आओ" । यह एक विशाल जन समूह था, जिसकी 'वापस जाओ' आवाज गूंजती थी, फिर भी उनके दिलों की निराशा का उचित प्रतीक थीं वे उदास छोटी झंडियां जिन्हें वे लिए हुए थे और लहरा रहे थे । काले झंडे यह व्यक्त कर रहे थे कि वे नहीं चाहते थे कि जान साइमन तथा उनके साथी आए और वह 'वापस जाओ, साइमन" की मांग को और जोरदार बनाने के लिए उन झंडों को लहरा रहे थे । यह प्रदर्शन लाहौर में हुए सभी प्रदर्शनों में अधिक व्यवस्थित तथा नियंत्रित था । प्रदर्शन के आगे लालाजी की उपस्थिति ने जोश और बढ़ा दिया था, परन्तु यह इस बात की गारण्टी भी थी कि प्रदर्शनकारी बिल्कुल अनुशासन में तथा शांतमय होंगे । वह ब्राउनिंग के 'पाइड पाइपर' के समान भीड़ की अगुवाई कर सकते थे परन्तु उन्होंने सदा ही अनुभवी और जिम्मेदार सेनापति के समान उनका नेतृत्व किया ।

अधिकारियो ने पहले से ही अपनी व्यवस्था की हुई थी। रात ही रात म उन्होंने रलवे स्टेशन के पश्चिम की ओर सभी रास्ता पर काटेदार तारो की बाधाए खडी कर दी और यह प्रबध किया गया कि साइमन कमीशन पूर्वी सिरे के रास्ते से निकलेगा। जुलूस बाधाओ के पास रुक गया। वे जानते थे कि उनके जोरदार नार इतन ऊचे अवश्य होगे कि जब सर जान साइमन तथा उनके साथी रेलवे स्टेशन से बाहर खडी मोटरकारो मे बैठेंगे, ता उनके काना तक अवश्य पहुचगे। उनका अभिवादन उन काना तक अवश्य पहुचेगा, जिनके लिए वह थे, चाहे काले झडे दूर होने के कारण वह न तो देख पाए जो उन अवाछनीय विदेशियो के लिए थे।

वही पर जुलूस को रुकना पडा और साइमन टीम के पहुचन के सकेत की प्रतीक्षा करनी पडी। वहा रुककर वे अपना समय काट रह थे। भीड को नियत्रण मे रखने वाल जादूगर, अताउल्लाशाह बुखारी, जा लागा को आधी आधी रात तक मत्र मुग्ध रख सकते थे, वहा उपस्थित थे। जनसमूह का व्यस्त रखन म उन्हाने बहुत सहायता की। काफी देर तक प्रतीक्षा करनी पडी और यह समय भी प्रात का नही था। धूप की तेजी बढती गई। लालाजी छाते के नीचे खडे थे और इस बात से बहुत सतुष्ट थे कि भीड सयत थी चाहे काटेदार तार की बाधा रह-रहकर उन्हें उत्तेजित कर रही थी।

परतु कानून और व्यवस्था के अधिकारियो की मनास्थिति कुछ और ही थी। उन्होंने पुलिस कमचारियो को लाठियो के साथ तैयार रखा हुआ था। केवल प्रदशनकारियो के लिए ही नही, पत्रकारो के प्रति भी उनका व्यवहार ऐसा था जैसे व "काई बेहूदगी" सहन करन को तयार न हो। पुलिस के वरिष्ठ अधीक्षक ने उस आज्ञा-पत्र की प्रमाणिकता के बारे म पूछा, जिसे लेकर 'ट्रिब्यून' का प्रतिनिधि रेलवे स्टेशन पर जा पहुचा था। उसने उसका अपमान किया—बाद म इस सबध मे वह एक मुकदमा हार गया और उसे काफी हर्जाना दना पडा।

इस बात की जाच करना व्यर्थ होगा कि अमल मे किस कारण पुलिस उत्तेजित हुई और उसे प्रदशनकारियो पर धावा करने का आदेश दिया गया। केवल यही दिखाई दता था कि ऐसा करने के लिए उन्होंने पहले से ही

आक्रमण रुक गया और प्रदर्शन का अवसर समाप्त हो गया,
, मानसिक तौर से सघातिक रूप से घायल, परन्तु देखने म
ः जुलूस का वापसी के समय भी नेतृत्व किया।

लाहौर के लोग भाटी गेट के बाहर एक विशाल
। घायल शेर फिर दहाड़ा। लाजपत राय न घटना
अपने लोगों को गंभीर उत्तेजना के बावजूद
व्यवस्था का अपूर्व परिचय देने के लिए बधाई
हुए अत्याचार का चिरस्मरणीय उत्तर दिया।
कहा, अगले दिन उसे सारा शहर दोहरा
वाक्य सारे भारत में गूंजने लगा। आज
ध्यान सुनाई देती है, जिसकी भविष्यवाणी सही
।रो गई लाठी की प्रत्येक चोट साम्राज्य के
।" और उन्होंने कहा कि यदि उनकी
। ने जिन्हें उन्होंने नियंत्रण में रखा हुआ
।ा, तो जो कुछ भी वे करना पसंद करेंगे,
होगा। मुलम्मेदार कमरों तथा विद्वान
।ा, चाहे जो भी हो, वह घायल शेर
नहीं था। ऐसे भाषण तथा व्याख्यान इस
दुर्बल तथा बेहूदा बात लगेंगे।

।। बहुत तीव्र हो चुकी थी—एक लाख
आदेश की प्रतीक्षा कर रहे थे या
के आदेश के लिए सैनिक सेनापति के
लालाजी ने एक दृढ़ निश्चय स्पष्ट निर्णय
।प जारी रखो और किसी भी कष्ट या
तैयार रहो।

तौर पर विवरण दिया गया। उसके
स को बिल्कुल दोष मुक्त करार
और जांच का आदेश दिया गया।
ड, आई० सी० एस० को यह जांच

निर्णय पर रखा था। यदि आपके लिए कोई "कारण" अवश्य ही चाहिए तो उसके लिए ईसप की मेमने और भेड़िये की कहानी आपको उपयुक्त कारण बताने के लिए काफी रहेगी।

शांतिपूर्ण जनसमूह पर लाठी चार्ज किया गया, विशेषकर उसके नेता पर जिसने जनसमूह को उत्तेजना के बावजूद संयत और व्यवस्थित रखा। नेता पर लाठियां बरसती रहीं। मुख्य आक्रमणकारी पुलिस का वरिष्ठ अधीक्षक स्कॉट स्वयं था और दूसरा था उसका सहायक सांडर्स। उस दिन अंग्रेज की "शानदार क्रूरता" का प्रमुख निशाना छाते के नीचे का नेता थे, नाटे कद के वृद्ध व्यक्ति, जिनके हाथ में सैर करने की छड़ी थी, जो निहत्थे जनसमूह की कमान कर रहे थे और जिसे उन्होंने संयत तथा शांतिमय रखा, चाहे उनके अपने शरीर पर लाठियों की सीधी और पूरे जोर की वर्षा हो रही थी।

देखने में वह कमजोर और छोटे लगते थे, परन्तु उनकी आत्मा निर्भीक थी। उन्होंने पूरे साहस और पौरुष से लाठियां झेली। वह भागे नहीं, न ही पीछे हटे, न अपने स्थान से हिले। उन्होंने अपने लोगों को प्रतिकूल वार करने के लिए नहीं कहा। उनके सहायकों ने उन्हें घेरने और लाठियों के वार अपने ऊपर सहने का यत्न किया, फिर भी वह लाठियों के अधिकतर वार सहते रहे। उनके अपने डाक्टरों में से एक—डाक्टर गोपीचन्द भार्गव, जिन्होंने उपस्थित गवाह के रूप में नहीं, बल्कि स्वयं अपने ऊपर सहकर लाठी के वार का चोट का असर देखा था, जो उनके प्रमुख पर पड़ रही थी—उन्हें आश्चर्य हो रहा था कि उनके प्रमुख ने इतना लाठियां किस प्रकार सहा और वह घटनास्थल पर गिरे क्यों नहीं।

उन्होंने वीरता से चोटें सहन की और अपने आक्रमणकारियों को शेर के समान ललकारा। उत्तर में लाठियों के और प्रहार हुए। उन्होंने प्रहार करने वाले के पौरुष को फिर चुनौती दी और फिर उसका नाम पूछा। परन्तु लाठी वाले उस अमानवीय जन्तु पर उस चुनौती का कोई प्रभाव न पड़ा। उसने लाठी के और प्रहार किए। उन्हें नाम मालूम न हो पाया, कम से कम उस गैर-मानवीय जन्तु का। परन्तु उनकी ललकार जनसमूह को अपने स्थान पर कायम रखने में सफल रही—जनसमूह गुस्से से बिफरा हुआ, परन्तु पूरी तरह नियंत्रित था।

जब आक्रमण रुक गया और प्रदर्शन का अवसर समाप्त हो गया, क्षतविक्षत, मानसिक तौर से सघातिक रूप से घायल, परन्तु देखने म निर्भीक, उन्होंने जुलूस का वापसी के समय भी नतृत्व किया।

शाम के समय लाहौर के लोग भाटी गेट के बाहर एक विशाल जनसभा म एकत्र हुए। घायल शेर फिर दहाड़ा। लाजपत राय ने घटना का पूरा विवरण दिया, अपने लोगों को गभीर उत्तेजना के बावजूद शानदार नियत्रण तथा व्यवस्था का अपूव परिचय देने के लिए बधाई दी और उस दिन प्रात हुए अत्याचार का चिरस्मरणीय उत्तर दिया। एक वाक्य जो उन्होने वहा कहा, अगले दिन उसे सारा शहर दोहरा रहा था और शीघ्र ही वह वाक्य सारे भारत मे गूजने लगा। आज भी उस आवाज की प्रतिध्वनि सुनाई देती है जिसकी भविष्यवाणी सही सिदध हुई।—"हम पर मारी गई लाठी की प्रत्येक चोट साम्राज्य के ताबूत मे कील सिद्ध होगी।" और उन्होंने कहा कि यदि उनकी मृत्यु हो गई और उन युवको ने जिन्हे उन्होंने नियत्रण में रखा हुआ था, कोई और कारवाई अपनाई, तो जो कुछ भी वे करना पसद करेंगे, उसे उनका आशीर्वाद प्राप्त होगा। मुलम्मेदार कमरो तथा विदवान सभाओ मे जोरदार भाषण दवारा, चाहे जो भी हो, वह घायल शेर की गरज के सामने कुछ भी नही था। ऐसे भाषण तथा व्याख्यान इस ललकार के मुकाबले बहुत ही दुबल तथा बेहूदा बात लगेंगे।

उनके श्रोताओं की प्रत्याशा बहुत तीव्र हो चुकी थी—एक लाख आयरिश लोग ओ' कैनिल के आदेश की प्रतीक्षा कर रहे थे या शत्रु के दुग पर चढाई करने के आदेश के लिए सनिक सेनापति के आदेश पर तत्पर खडे थे। लालाजी ने एक दढ निश्चय स्पष्ट निणय की घोषणा की कि अपना सघष जारी रखा और किसी भी कष्ट या बलिदान का सामना करने के लिए तैयार रहो।

अगले दिन घटना का सरकारी तौर पर विवरण दिया गया। उसके बाद विभागीय जाच हुई, जिसने पुलिस को बिल्कुल दोष मुक्त करार दिया। कोई दो सप्ताह पश्चात एक और जाच का आदेश दिया गया। रावलपिंडी प्रभाग के कमिश्नर डी० जे० बायड, आई० सी० एस० को यह जाच

निगम पर रखा था। यदि आपको लिए गए "कारण" अवश्य ही चाहिए तो उसके लिए ईसप की मेमने और भेड़िये की कहानी आपको उपयुक्त कारण बताने के लिए काफी रहेगी।

शांतिपूर्ण जनसमूह पर लाठी चार्ज किया गया, विशेषकर उसके नेता पर जिसने जनसमूह को उत्तेजना के बावजूद संयत और व्यवस्थित रखा। नेता पर लाठियां बरसती रहीं। मुख्य आक्रमणकारी पुलिस का वरिष्ठ अधीक्षक स्काट स्वयं था और दूसरा था उसका सहायक साडर्स। उस दिन अंग्रेज की "शानदार क्रूरता" का प्रमुख निशाना छाते के नीचे का नेता थे, नाटे कद के वृद्ध व्यक्ति, जिनके हाथ में सैर करने की छड़ी थी, जो निहत्थे जनसमूह की कमान कर रहे थे और जिसे उन्होंने संयत तथा शान्तमय रखा, चाहे उनके अपने शरीर पर लाठियां की सीधी और पूरे जोर की वर्षा हो रही थी।

देखने में वह कमजोर और छोटे लगते थे, परन्तु उनकी आत्मा निर्भीक थी। उन्होंने पूरे साहस और पौरुष में लाठियां झेलीं। वह भागे नहीं, न ही पीछे हटे, न अपने स्थान से हिले। उन्होंने अपने लोगों को प्रतिकूल वार करने के लिए नहीं कहा। उनके सहायकों ने उन्हें घेरने और लाठियां के वार अपने ऊपर सहने का यत्न किया, फिर भी वह लाठियों के अधिकतर वार सहते रहे। उनके अपने डाक्टरों में से एक—डाक्टर गोपीचन्द भार्गव, जिन्होंने उपस्थित गवाह के रूप में नहीं, बल्कि स्वयं अपने ऊपर सहकर लाठी के वार की चोट का असर देखा था, जो उनके प्रमुख पर पड़ रही थी—उन्हें आश्चर्य हो रहा था कि उनके प्रमुख ने इतनी लाठियां किस प्रकार सहन कीं और वह घटनास्थल पर गिरे क्यों नहीं।

उन्होंने वीरता से चोटें सहन कीं और अपने आक्रमणकारियों को शेर के समान ललकारा। उत्तर में लाठियों के और प्रहार हुए। उन्होंने प्रहार करने वाले के पास जाकर फिर चुनौती दी और फिर उससे नाम पूछा। परन्तु लाठी वाले उस अमानवीय जन्तु पर उस चुनौती का कोई प्रभाव न पड़ा। उसने लाठी के और प्रहार किए। उन्हें नाम मालूम न हो पाया, कम से कम उस गैर मानवीय जन्तु से। परन्तु उनकी ललकार जनसमूह को अपने स्थान पर कायम रखने में सफल रही—जनसमूह गुस्से से बिफरा हुआ, परन्तु पूरी तरह नियंत्रित था।

जब आक्रमण रुक गया और प्रदर्शन का अवसर समाप्त हो गया, क्षतविक्षत, मानसिक तौर से सघातिक रूप से घायल, परन्तु देखने में निर्भीक, उन्होंने जुलूस की वापसी के समय भी नेतृत्व किया।

शाम के समय लाहौर के लोग भाटी गेट के बाहर एक विशाल जनसभा में एकत्र हुए। घायल शेर फिर दहाड़ा। लाजपत राय ने घटना का पूरा विवरण दिया, अपने लोगों को गंभीर उत्तेजना के बावजूद शानदार नियंत्रण तथा व्यवस्था का अपूर्व परिचय देने के लिए बधाई दी और उस दिन प्रातः हुए अत्याचार का चिरस्मरणीय उत्तर दिया। एक वाक्य जो उन्होंने वहां कहा, अगले दिन उसे सारा शहर दोहरा रहा था और शीघ्र ही वह वाक्य सारे भारत में गूंजने लगा। आज भी उस आवाज की प्रतिध्वनि सुनाई देती है जिसकी भविष्यवाणी सही सिद्ध हुई।—"हम पर मारी गई लाठी की प्रत्येक चोट साम्राज्य के ताबूत में कील सिद्ध होगी।" और उन्होंने कहा कि यदि उनकी मृत्यु हो गई और उन युवकों ने, जिन्हें उन्होंने नियंत्रण में रखा हुआ था कोई और कारवाई अपनाई तो जो कुछ भी वे करना पसंद करेंगे, उसे उनका आशीर्वाद प्राप्त होगा। मुलम्मेदार कमरों तथा विद्वान सभाओं में जोरदार भाषणों द्वारा, चाहे जो भी हो, वह घायल शेर की गरज के सामने कुछ भी नहीं था। ऐसे भाषण तथा व्याख्यान इस ललकार के मुकाबले बहुत ही दुर्बल तथा बेहूदा बात लगेंगे।

उनके श्रोताओं की प्रत्याशा बहुत तीव्र हो चुकी थी —एक लाख आयरिश लोग ओ' कैनिल के आदेश की प्रतीक्षा कर रहे थे या शत्रु के दुर्ग पर चढ़ाई करने के आदेश के लिए सैनिक सेनापति के आदेश पर तत्पर खड़े थे। लालाजी ने एक दृढ़ निश्चय स्पष्ट निर्णय की घोषणा की कि अपना संघर्ष जारी रखो और किसी भी कष्ट या बलिदान का सामना करने के लिए तैयार रहो।

अगले दिन घटना का सरकारी तौर पर विवरण दिया गया। उसके बाद विभागीय जांच हुई, जिसने पुलिस को बिल्कुल दोष मुक्त करार दिया। कोई दो सप्ताह पश्चात एक और जांच का आदेश दिया गया। रावलपिंडी प्रभाग के कमिश्नर डी० जे० बायड, आई० सी० एस० को यह जांच

करने तथा रिपोर्ट देने का आदेश दिया गया। लालाजी तथा अन्य सार्वजनिक नेताओं ने श्री बायड के सामने पेश होने से इन्कार कर दिया। लालाजी ने कुछ वैकल्पिक सुझाव दिये।

"मैने पुलिस द्वारा 30 अक्तूबर को स्वयं पर तथा अन्य लोगों पर प्रहार के बारे में सरकारी सूचना पढी है। यह हमेशा की तरह पूरी तरह एक तरफा दस्तावेज है और झूठ का पुलिंदा है। मैं इस पर अभी कोई टिप्पणी नही करूगा और श्री बायड की रिपोर्ट की प्रतीक्षा करूगा। सरकारी विवरण दिन-प्रतिदिन बदल रहा है और हम प्रतीक्षा करेंगे तथा देखेंगे कि श्री बायड की रिपोर्ट प्रकाशित होने तक और क्या परिवर्तन किए जाते है। हम इस जाच को स्वीकार नही करते और मेरा श्री बायड के सामने उपस्थित होकर कोई सबद्ध प्रमाण पेश करने का इरादा नही। मै अपने सभी मित्रो को भी यही सलाह दूगा। मै स्पष्ट तौर से स्वीकार करता हू कि मुझे पजाब सरकार से और अच्छे व्यवहार की आशा नही थी। हम विभागीय जाच नही चाहते और न ही हम अकेले आई० सी० एस० अधिकारी से जाच चाहते हैं। यदि जाच की जानी है तो यह एक आयोग द्वारा खुली जाच हो, जिसके दो गैर सरकारी सदस्य तथा एक सदस्य न्यायिक अधिकारी हो। यदि पुलिस अधिकारियो का बयान झूठा सिद्ध हो, तो उनसे जिरह करने की अनुमति होनी चाहिए। मै पहले से दी गई अपनी चुनौती दोहराने मे अच्छा और कुछ नही कर सकता।"

विधान मण्डल मे, जहा बहुत विलम्ब होने के कारण लालाजी की रुचि नही रही थी जाच करवाने के बारे मे एक प्रस्ताव सरकार के मतदान से अस्वीकार कर दिया गया।

मौके के गवाह का अपना विवरण लालाजी ने स्वय उसी शाम सार्वजनिक सभा मे दे दिया था। उनके डाक्टरो ने प्रहार के बाद उनकी जाच की थी और देखा था कि छाती के बाई ओर लम्बाई के रुख में नील के दो निशान अथवा गुमटे बने हुए थे। उन्होंने 29 घंटे के बाद उनके चित्र उतरवाए और वे चित्र समाचार पत्रो मे प्रकाशित हुए थे। उन्होंने अस्पष्ट आरोप लगाने पर ही सतोष नही किया, बल्कि साप्ताहिक

के आगामी संस्करण में उन्होंने अपने हस्ताक्षरों से लेख लिखा, जिसका शीर्षक था "कानून के रक्षकों का व्यवहार कैसा है" और उन्होंने कुछ दोषी कर्मचारियों के नाम प्रकाशित किये और निर्भीक चुनौती दी।

"भारत में शासन चलाने वाली शक्तियों के नैतिक पतन के बारे में प्रमाण एकत्र हो रहे हैं। मैंने ऐसे नैतिक पतन के ऐसे अकाट्य प्रमाण पहले कभी नहीं देखे, जिस प्रकार के प्रमाण मैंने मंगलवार को साइमन कमीशन के विरुद्ध प्रदर्शनकारियों के विरुद्ध कारवाई के समय देखे ।"

घटनाओं का विवरण देते हुए उन्होंने बताया कि किस प्रकार जुलूस कांटेदार तार की बाधा के निकट ठहर गया था, जो रेलवे औद्योगिक स्कूल की दीवार से लगभग पांच फुट या इससे कुछ अधिक दूरी पर था और 'बाधा पार करने का कोई इरादा बिल्कुल ही नहीं था ।" सरकारी विवरण में दिया गया यह वक्तव्य घृणित झूठ है कि मैंने या किसी अन्य व्यक्ति ने बाधा पार करने का यत्न किया। यह झूठ लाहौर के पुलिस अधीक्षक श्री स्काट तथा अन्य पुलिस अधिकारियों द्वारा मुझ पर तथा बाधा और दीवार के बीच के खाली स्थान के निकट हमारी ओर खड़े अन्य लोगों पर किए गए कायरतापूर्ण प्रहार को उचित बनाने के लिए गढ़ा गया है। स्काट तथा दो अन्य पुलिस अधिकारियों ने जिस ढंग का व्यवहार किया उससे उनके पूर्ण नैतिक पतन का पता चला है। उत्तेजना दिलाने वाली कोई कारवाई नहीं हुई तब भी इन लोगों का पारा चढ़ गया क्योंकि उनके विचार में यह हमारी बहुत बड़ी गुस्ताखी थी कि हम वहां आ पहुंचे थे और फिर उन्होंने हमारी इतनी अधिक पिटाई की, जबकि हम बिल्कुल निहत्थे थे—मेरे हाथ में सैर करने की छड़ी थी और अन्य लोगों के हाथों में तो वह भी नहीं थी। मुझे ऐसा दिखाई देता है कि भारत पर शासन करने वाले ब्रिटिश अधिकारी अपने चरित्र का नियंत्रण खो चुके हैं जिससे उन्होंने भारत का शासन प्राप्त किया था। कोई शालीनता नहीं थी और न ही विनम्रता का प्रदर्शन मैंने कई बार चिल्लाकर उन अधिकारियों के नाम पूछे, जिन्होंने मुझ पर प्रहार किए थे। पंजाब विधान परिषद के सदस्यों ने, जो मेरे पास खड़े थे, मजिस्ट्रेट को पर्चियां लिखकर भेजीं और डिप्टी

कमिश्नर को भी और मुझ पर प्रहार करने वाले आदमी का नाम पूछा, परन्तु कोई उत्तर नही दिया गया। मैंने अपने आक्रमणकारी से चिल्लाकर कहा कि यदि वह आदमी है, तो अपना नाम बताये, परन्तु कोई उत्तर नही मिला। घटना के कई मिनट पश्चात उन्हें कुछ प्रमाण एकत्र करने का विचार आया, ताकि यह दिखा सकें कि भीड ने उन पर पत्थर फेंके थे। भीड पर यह आरोप बिल्कुल झूठा है और जिस व्यक्ति ने भी यह तथाकथित सरकारी बयान लिखा है या लिखवाया है। जो ट्रिब्यून में प्रकाशित हुआ है, मुझे यह कहने में झिझक नही वह घृणित और झूठा है और मैं उसे चुनौती देता हू कि मेरे इस बयान के लिए मुझ पर मुकदमा चलाए। इस सरकारी बयान में कई बातें झूठी हैं और इनका घटनाचक्र व्यक्त करता है कि सारी बातें जानकर गढी गई हैं, ताकि औचित्य दिखाया जा सके।"

असहयोग आन्दोलन के प्रारम्भिक दिनों के शुरू की घटनाओं का वर्णन करते हुए उन्होंने बताया कि पंजाब के अधिकारियों में कानून के ज्ञान का अभाव, राजनीतिक सूझबूझ की कमी और ज्यादती करने की प्रवत्ति है। लालाजी ने अपने विवरण में आगे कहा

"बताया गया है कि पुलिस के वरिष्ठ अधीक्षक ने उस सरकारी आज्ञापत्र की प्रामाणिकता पर सदेह किया, जो ट्रिब्यून के प्रतिनिधि ने रेलवे प्लेटफार्म पर प्रवेश के समय दिखाया था और रेलवे स्टेशन के इस ओर उसी पुलिस अधिकारी ने एकत्र भीड से उत्पन्न स्थिति से निपटने के लिए अयोग्यता का परिचय दिया। मैं महामहिम गवर्नर महोदय से पूछ सकता हू कि क्या वह प्रांत पर ऐसे अधिकारियों के सहयोग से शासन चलाना चाहते हैं? यदि ऐसा है तो राज्य में राजनीतिज्ञों का कोई काम नही रह जाता क्योंकि शांति के ये रक्षक खूनी सघर्ष के लिए मार्ग प्रशस्त कर देंगे और सरकार इस काय में हमारी काफी सहायता करेगी यदि वह आन्तरिक शान्ति को रखने के लिए इस वर्ग के अधिकारियों पर निर्भर करेगी।'

सहानुभूति के अनेक संदेशों को स्वीकार करते हुए समाचार पत्रों में प्रकाशित एक पर्चे में उन्होंने कहा

"मैं बधाई तथा सहानुभूति के उन अनेक संदेशों से बहुत प्रभावित हुआ हूं, जो मुझ पर हाल ही के पुलिस प्रहार की घटना के बारे में मुझे अनेक देशवासियों से मिले हैं। मैं इन संदेश भेजने वालों की स्नेहपूर्ण कृपा तथा सहानुभूति का पर्याप्त मात्रा में धन्यवाद नहीं कर सकता। मेरा विचार है कि पुलिस का प्रहार कुल मिलाकर राष्ट्रीय अहित के स्थान पर हितकर रहा है। सबसे पहले मैं उन लोगों का आभारी हूं, जिन्होंने मेरे ऊपर पड़ने वाली लाठियां अपने ऊपर सहन कीं, इनमें डाक्टर सत्यपाल, डाक्टर गोपीचन्द, रायजादा हंसराज और डाक्टर आलम तथा अन्य लोग शामिल हैं। मैं सरदार शार्दूल सिंह क्वीश्वर के इस वक्तव्य को स्वीकार करता हूं कि इन लाठियों का निशाना मैं ही था और यदि ये सज्जन अपने ऊपर चोटें सहन न करते, तो ये जख्म अधिक गंभीर और शायद घातक ही होते।'

फिर भी वह दैनिक काय सामान्य तौर से करते रहे। ए० आई० सी० सी० की बैठक दिल्ली में 3 और 4 नवम्बर को हो रही थी और वह उस बैठक में शामिल हुए, वहां भाषण दिया और उसकी कार्यवाही में महत्वपूर्ण भाग लिया। परन्तु उन्होंने महसूस किया कि यह दबाव बहुत अधिक था। उन्हें बैठकें छोड़कर शीघ्रता से लाहौर जाना पड़ा। दरअसल उन्होंने एक सार्वजनिक बैठक एनी बेसेंट के लिए छोड़ी जिसके लिए उनके नाम की घोषणा की गई थी। लाहौर लौटकर उन्होंने अपने समाचार पत्र (द पीपुल 8 नवंबर) में लिखा

"अखिल भारतीय कांग्रेस समिति में मेरे भाषण का समाचार उचित ढंग से नहीं दिया गया। मैं कुछ उत्तेजित अथवा घबराया हुआ था। लाहौर में पुलिस के प्रहार से मुझे जो चोटें आई थीं वे अधिक गंभीर नहीं थीं, परन्तु मेरा विचार है कि उनके बाद के प्रभाव के कारण मेरी शारीरिक अवस्था को सदमा पहुंचा है, जिसका प्रभाव मेरे स्वास्थ्य पर पड़ रहा है। दिल्ली में ठहरने के दौरान सारा समय मैंने बहुत कमजोरी महसूस की और सोमवार को बुखार के कारण मैं उस सार्वजनिक सभा में भाग न ले सका, जिसमें मेरे भाषण देने के बारे में घोषणा की गई थी। एक प्रकार के इन्फ्लुएंजा के कारण मुझे बैठक छोड़नी पड़ी और उस रात्रि के बाद से मैं अभी भी स्वस्थ नहीं हूं।"

अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के भाषण में उन्होने जवाहरलाल नेहरू के साथ विवाद किया। अपनी आत्मकथा में नेहरू ने इसकी चर्चा करते हुए लिखा है

"साइमन कमीशन के समय पीटे जाने के थोड़े समय बाद लाला लाजपत राय दिल्ली में अखिल भारतीय कांग्रेस समिति की बैठक म शामिल हुए। उनके शरीर पर अभी चोटों के निशान थे और उस मारपीट के बाद का प्रभाव अभी शेष था स्वाधीनता का प्रश्न किसी न किसी प्रकार विचार के लिए आया मुझे याद है मैंने कुछ भाषण दिया तथा भाषण इतना महत्वपूर्ण नहीं था और शायद मैं उसे भूल ही जाता, परन्तु इसलिए नहीं भूल पाया क्योंकि लालाजी ने उसका उत्तर दिया था और उसके कुछ भागों की आलोचना की थी।

"लाहौर लौटने के पश्चात्, लालाजी ने अखिल भारतीय कांग्रेस समिति की बैठक म मेरे भाषण के विषय का प्रश्न फिर उठाया और अपनी साप्ताहिक पत्रिका 'द पीपुल' में उस भाषण के विभिन्न पहलुओं से सम्बद्ध विषयों पर लेखों की एक शृंखला लिखनी आरंभ कर दी। अगले संस्करण में दूसरा लेख प्रकाशित होने से पूर्व उनका देहान्त हो गया। उनका पहला अपूर्ण लेख, जो शायद उनकी अन्तिम प्रकाशित रचना थी, मेरे लिए बहुत ही विषाद का विषय था।"

व्यावहारिक तौर पर उन्होने जवाहरलाल नेहरू और सुभाष चन्द्र बोस की बहुत प्रशंसा की थी और कहा था, "युवा लोगों म से केवल दो है जिनकी वफादारी, उच्च चरित्र और विद्वत्ता की मैं कद्र करता हू।" परन्तु वह "पूर्ण स्वराज" की बात से पूरी तरह सहमत नहीं थे, क्योंकि यह अभी सैद्धांतिक सी बात ही थी और दूसरी महत्वपूर्ण बात यह थी कि उनके विचार से कुछ लोग इसका लाभ केवल 'नेहरू-मसौदे' को विफल करने के लिए कर रहे थे या तो वह कुछ कारणों से इस मसौदे को अच्छा नहीं समझते थे या फिर इसलिए कि इसे मोतीलाल नेहरू ने बनाया था।

पहली नवबर के 'द पीपुल के संस्करण म लाला लाजपत राय ने चुनौती दी थी, 'जो हमारे साथ नहीं, वह हमारे विरुद्ध है' —यह नारा उन्होने अपने विरोधियों द्वारा कोई दो दशक पूर्व कही बातों से लिया था।

इसकी उन्होंने अगले लेख मे व्याख्या की थी, जो अप्रकाशित ही रहा—यह उनकी अतिम रचना थी, जो प्राय उसी स्वर मे लिखी गई थी जिस स्वर मे उनका 30 अक्तूबर का भाषण था, जिसमे उन्होंने कहा था कि उनकी आत्मा युवा लोगो को उस ढग से काम करने की अनुमति देगी जैसा वह अधिक उचित समझेगी—और उनके काम के लिए उनका आशीर्वाद देगी।

*　　　*　　　*

"प्रत्येक लाठी प्रहार —साम्राज्य के तावूत मे कील सिद्ध हुई।" उसने प्रहार करने वाले को घायल किया, उन्हें नही। महान अध्यापक ने अपने अन्तिम और अमर भाषण म स्वय यह कहा था

"कोई चीज मुझे घायल नहीं करेगी, न मैलटूस को और न ही एनीटस—वह घायल कर ही नही सकते, क्योंकि एक बुरे व्यक्ति को अपने से अच्छे व्यक्ति को घायल करने की अनुमति नही दी जा सकती। मैं इस बात से इन्कार नही करता कि शायद एनीटस उसे मार डाले या उसे निर्वासित कर दे या उसे नागरिक अधिकारो से वचित कर दे और वह सोचे या अन्य लोग यह सोचें कि शायद वह उसे बहुत बडी क्षति पहुचा रहा है। परन्तु मैं इस बात से सहमत नही हू, क्योंकि जो कुछ वह कर रहा है, उसकी अन्यायपूर्ण ढग से दूसरे के प्राण लेने की बुराई और भी बडी है। और अब, एथेंसनिवासियों (महान, शक्तिशाली तथा बुद्धिमान ब्रिटेनवासियो), मैं अपनी खातिर दलीलबाजी नही कर रहा, जिस प्रकार शायद आप सोचे, परन्तु आपकी खातिर क्योंकि यदि आप मेरी हत्या कर दें, तो आपको मेरा उत्तराधिकारी आसानी से नही मिलेगा।"

और फिर भी उन्होंने अपना काय जारी रखा, विशेषकर नेहरू-रिपोर्ट के बारे मे उन्होंने बहुत ही अच्छे ढग से काय किया। वह हिंदू नेताओ से मिलने मे व्यस्त रहे, उन्हें अपने विचारो से सहमत करते रहे और उनकी आपत्तिया दूर करते रहे। उन्हें अपने नगरो को वापस भेजा, ताकि वे नेहरू-समझौते के पक्ष मे समथन का प्रचार कर सकें और उसके लिए समाचार पत्रो तथा प्रचार मच से प्रचारित करने की व्यवस्था करें। उन्होंने अपने आपको इस काय मे व्यस्त रखा और अपने आपको यह आवश्यक

आराम न दिया, जो डाक्टरों के अनुसार उनके लिए अनिवार्य था। चोटें अब भी उनका ध्यान आकर्षित करती थी। कभी-कभार पीड़ा के रूप में और कभी मामूली बुखार की शक्ल में, परन्तु वह उनकी अधिक चर्चा नहीं करते थे। इसमें संदेह नहीं कि अपने मन में वह हर समय एक भारी बोझ लिए फिरते थे और गहरे अपमान की भावना उनके अंतर्मन को कुतरती रहती थी। उनके डाक्टर ने देखा कि वह कुछ अधिक थके हुए और पहले से अधिक जर्द नजर आ रहे थे, परन्तु आराम करने के लिए उनके आग्रहों का कोई असर नहीं था।

दीवाली के अवसर पर उनके मन में प्राकृतिक प्रसन्नता के तार झनझनाने में कभी विलम्ब नहीं होता था। बच्चों के समान वह मोमबत्तियों तथा मिठाइयों में प्रसन्न होते। इसलिए उन्होंने अपने कुछ युवा मित्रों को 12 नवम्बर, दीवाली की शाम को, अपने साथ भोजन पर बुलाया। उस शाम का बहुत ही स्पष्ट चित्र उस दिन भोजन पर आमंत्रित मित्रों में से एक* ने खींचा है

"परन्तु हुजूर मैं आज शाम व्यस्त हूं।" वह मुझे उस शाम भोजन पर आने के वास्ते कह रहे थे। मैं उसी शाम एक पखवाड़े के लिए लाहौर से बाहर जा रहा था। और अनेक छोटे-मोटे काम करने शेष थे। मेरा इन्कार तथा चिन्ता दोनों व्यर्थ थे। उन्होंने एक हाथ मेरे कंधे पर रखा, पहले पुराने दिनों के ढंग से, जब मैं अभी केवल लड़का था, और कहा "हां, मैं जानता हूं। परन्तु आप आज शाम आ रहे हैं। शायद मैं बहुत शीघ्र जा रहा हूं और काफी समय तक वापस न आऊं।"

"हम कमरे में बैठे थे, फर्श पर पालथी मारकर। मौसम में कुछ सर्दी थी। वह दीवार का सहारा लिए बैठे थे। कमरे में हंसीमजाक का माहौल था—उनकी हंसी लड़कों जैसे ठहाकों में, कमरे से बाहर तक जा रही थी। खाना बहुत स्वादिष्ट था और हमने पेट भर खाया—परन्तु किसी ने ध्यान न दिया कि उन्होंने क्या खाया। हम सदा उनकी बातें सुनते—और हमें आश्चर्य होता कि वह जो सलाह देने में सदा इतने बुद्धिमान हैं, हंसी दिल्लगी में इतने विनोदी कैसे

*मदन मोहन सिंह।

हो सकते हैं। कभी-कभार आवाजें मद्धिम होतीं और हम सब पर थोड़ी गर्मी छा जाती, क्योंकि उनकी आवाज न निकलती थी। हमें पता था वह अभी भी कष्ट में हैं और उनमें पीड़ा की एक धड़कन थी। उन्होंने कभी शिकायत न की। नहीं, उन दिनों भी नहीं, जब वह "उन चोटों पर हंसते हुए बिस्तर में लेटे होते थे, जिन चोटों ने उन्हें मरणासन्न कर दिया था।"

वह शेर दिल थे, जैसा कि हम उन्हें जानते थे, जैसा दुनिया उन्हें हमेशा कहती थी।"

* * *

'हम दूसरे कमरे में चले गए थे, सोने के कमरे में। वह बिस्तर में लेटे आराम कर रहे थे। उनकी शक्ति क्षीण हो चुकी थी। उन्होंने हमें अपनी मूल्यवान मुस्कान से वंचित न किया। हम उनके साथ हंसते रहे। परन्तु उस शाम वह पहले से अधिक प्रसन्नचित्त थे। वह उस कार्य की बातें करते रहे थे, जो उनके सामने था। उन्होंने कहा कि राष्ट्रीय मामलों में हम उस मोड़ पर पहुंच गए हैं जहां से हमारे रास्ते अलग हो जाते हैं। हमें सही मार्ग का चयन करना है। हमें केवल अतीत के अपने अनुभव पर ही निर्भर करना चाहिए। हमारे पास और कोई चारा भी नहीं। दूरदर्शिता, व्यावहारिक बुद्धि से उन्होंने दृढ़ आधार पर निर्माण किया। उन्होंने संयोग पर कोई बात नहीं छोड़ी, वह हमारी कठिनाइयों को जानते थे और हमें उनसे संघर्ष करने के लिए तैयार करने के पक्ष में थे। उनके अपने कष्ट तथा कठिनाइयां तो केवल आरम्भ मात्र थीं। परन्तु यह आने वाली बातों का पूर्व अनुभव था। उन्होंने यह बिल्कुल स्पष्ट अनुभव किया, जैसे वह स्वयं उन संघर्षों में रहे हैं।

* * *

हां, अब हम सभी कुछ संजीदा हो गए थे। मैं उनके बिल्कुल निकट बैठा था, उनके बिस्तर के पायते के निकट। शायद इसी लिए मैं सबसे अधिक उदास था। वह उदास नहीं थे कुछ गंभीर

थे। कुछ देर के लिए दूर ताकते, किसी चीज का पूर्वाभास करते, फिर बताते। यह उनकी सामान्य मनस्थिति नहीं थी। वह अपने स्वप्न अपने तक ही रखते थे। वह केवल उसी के बारे में बात करते थे, जो था — उसकी नहीं, जो होगा। परन्तु आज की रात यह भिन्न था। यही कारण है कि यह सभी कुछ मुझे स्मरण हो रहा है, जैसे कल की ही बात हो।

*   *   *

"हां, मैं उनके सबसे ज्यादा निकट बैठा था और उन्हें बिस्तर में लेटे हुए बातें करते सुन रहा था। उन्होंने कष्ट झेले थे, परन्तु शिकायत नहीं की थी। भला हम किस प्रकार जान सकते थे जिन्होंने कष्ट कम झेले हों और शिकायतें अधिक की हों। हमने सोचा यह थकान के कारण है। उन्होंने हमारी खातिर अपना सब कुछ दे दिया। मैं वहां से जाने के बारे में अपना फैसला नहीं कर सका। मैंने नजरें उठाकर उनकी ओर देखा और जाने ही वाला था कि वह बोले—तनिक और रुक जाओ। तुम तो कभी-कभार ही मेरे पास आते हो। और सब तो सदा यहीं रहते हैं। वे मेरे साथ ही काम करते हैं।

"उनकी आवाज या शब्दों में कोई उलाहना न था—एक अपूर्ण इच्छा थी, एक आकांक्षा थी जो पूरी न हो पाई थी। हां, मैंने निराशाजनक स्थिति में अपने आपको गड़बड़ स्थिति में डाल लिया था। मैं उनके लिये या उनके महान कार्य के लिए व्यर्थ था। परन्तु उन्होंने सदा ही मेरी बात को समझा था और उसके बारे में मेरी इच्छा के बिना कभी बात नहीं की थी। और क्या हमने अक्सर योजनाएं नहीं बनाई थीं और सोचा नहीं था कि जीवन के मेरे दृष्टिकोण में किस प्रकार निकला जाए और स्वतंत्र, सादा और नेक बना जाए? परन्तु उनकी आवाज मुझे कभी ऐसी सुनाई नहीं दी थी, जिस प्रकार आज सुनाई दी थी—एक अपूर्ण इच्छा।

*   *   *   *

"हां, मैंने उन्हें निराश किया था, क्योंकि मेरी आशा से पहले ही अन्त आ गया था। दरअसल वह दूर देश की लम्बी यात्रा पर जा चुके थे और मैं उनसे फिर कभी न मिल पाऊंगा।"

2, कोर्ट स्ट्रीट में इस प्रकार की परिस्थिति थी।

16 नवम्बर दोपहर बाद, अपनी आदत के अनुसार वह आने वालों तथा मित्रों से बातें कर रहे थे। विशेषकर उन्होंने जी०एस० राघवन से कारोबारी बातचीत की, जिसके बीच में वह जोरदार ठहाके लगाते रहे। उन्होंने राघवन को बताया था कि 'नेहरू-रिपोर्ट' के समाचार-पत्रों में प्रचार के लिए उन्हें नियुक्त किया जा रहा है। इससे पूर्व उनके डाक्टर एन० आर० धर्मवीर उनसे मिलने आए थे और उन्होंने वहां एक घंटा बिताया था। लालाजी ने उन्हें बताया था कि वह एक महत्वपूर्ण बैठक की अध्यक्षता करने से इन्कार कर रहे हैं, क्योंकि वह अपने आपको उसके योग्य नहीं समझते। उन्होंने डाक्टर से यह भी कहा कि वह शाम को उन्हें घुमाने ले चलें। परन्तु डाक्टर के आने से पूर्व ही उन्होंने सवारी पर जाने की बजाय टहलने का इरादा कर लिया था और टहलने *निकल गए थे और डाक्टर को अपने पीछे आने का संदेश दे गए थे।* उन्हें ढूंढ़ पाने में असफल रहने के कारण डाक्टर रात के खाने के बाद फिर आये।

परिवार में ब्रिज का खेल हो रहा था, शायद लालाजी का मन कोई गंभीर काम करने को नहीं चाह रहा था। लालाजी भी खेल रहे थे और डाक्टर से जांच करवाने के लिए उठ खड़े हुए। डाक्टर ने देखा कि उनकी थकान ने सारे शरीर में दर्द का रूप ले लिया था और इसके साथ ही उनकी छाती के दाईं ओर पीड़ा भी आरम्भ हो गई थी और रीढ़ के निकट भी दर्द होने लगा था। हृदय गति अथवा नब्ज में कोई गड़बड़ नहीं दिखाई दे रही थी। धड़कन सामान्य थी और यही हालत तापमान की थी, यद्यपि सांस की गति सामान्य से कुछ अधिक थी, जीभ कुछ खुरदरी थी, परन्तु न सिरदर्द था न प्यास। और दर्द भी बहुत मामूली था। यद्यपि लालाजी को संदेह था कि उन्हें शायद डेंगू ज्वर हो जाए, जो पहले कभी नहीं हुआ था। डाक्टर ने देखा कि थकान, जो पहले आराम या मालिश करने या खुली हवा में टहलने या गाड़ी में सैर करने से दूर हो जाती थी, तीस अक्तूबर के बाद से प्रायः लगातार रहने लगी थी। निस्संदेह उन्हें यह सोचकर चिन्ता हुई थी। परन्तु उन्हें खतरे का कोई कारण नहीं दिखाई दिया। वह लालाजी को एस्प्रीन दे देते हैं और 11 बजे शुभ रात्रि कहकर चले जाते हैं।

17 नवबर अभी ऊषाकाल ही है और लालाजी का नौकर उनकी रिहायश के कमरो से भागता हुआ पुराने बगले के उन कमरो मे आता है, जहा लोक सेवा सघ के कार्यकर्त्ता रहते ह। अभी उनमे से सभी बिस्तरा से नही निकले हैं। तुरत ही सभी लालाजी के कमरे की ओर दौडे। पत्नी, पुत्र, पुत्री तथा परिवार के अय सदस्य पहले ही जडवत वहा खडे थे। डाक्टरा को टेलीफोन किया गया और उनकी प्रतीक्षा की जा रही है, यद्यपि स्पष्ट दिखाई देता ह कि सब खेल खत्म हो चुका है। पूरी तरह फैली हुई शाति जैसे फुसफुसाते हुए कह रही हो कि "अनियमित बुखार समाप्त हो गया है"।

डाक्टर आते है और इसी बात की घोषणा करते हैं।

बीती रात जब डाक्टर चला गया था, तो वह सो गए थे। परन्तु उन्हे शीघ्र नीद कभी कभार ही आती थी और उस रात उनका पौत्र, भारती उनकी डेढ बजे के बाद तक मालिश करता रहा। साढे छ बजे भारती ने सुना वह पीडा बढ जाने की शिकायत कर रहे थे और तुरत ही वह अमृत को जगाने उन के कमरे मे चला गया। पौने सात बजे से पूर्व ही जब वह दोना उनके बिस्तर के पास खडे हुए, तो पहले ही उनका अन्त हो चुका था।

असल कारण कौन बता सकता था और मृत्यु भेद का कौन जान सकता है? परतु धर्मवीर, गोपीचन्द और अन्य डाक्टर मित्रो को, जो उनके सम्पर्क मे थे, कोई सदेह नही था कि शारीरिक तथा मनोवैज्ञानिक चोटा ने, जो तीस अक्तूबर को पाशविक प्रहारो से लगी थी, अपना भयानक प्रभाव डाला था।

कुछ ही पलो म यह समाचार सारे शहर म फैल गया। पुराना तथा नया लाहौर (फसील के अन्दर का क्षेत्र तथा सिविल लाइस) अन्तिम दर्शना के लिए उमड पडा, ताकि वरिष्ठतम नागरिक का श्रद्धाजलि अर्पित कर सकें। उपस्थित लोगो म से सभी फौरन ही 17 नवबर के दुखात को 30 अक्तूबर की घटना से जोडते हैं। सभी उस दिन रेलवे स्टेशन के बाहर हुई पाशविकता के बारे मे सोचते ह, जिसमे स्पष्ट तौर पर प्रमुख को चोटें मारी गई थी। परन्तु अप्रत्यक्ष तौर से उन चोटो न लोगो के मना को और भी गहरा और गभीर आघात पहुचाया था। उदासी मे वे इसके बारे मे सोचते ह — उस शाम की उन्हें शेर की अतिम गौरवपूर्ण दहाड स्मरण हो आती है— "प्रत्येक चोट ने साम्राज्य के ताबूत म कील ठोकी है।"

दोपहर बाद मनुष्यों का सागर शोकाकुल रावी की ओर बढ़ता दिखाई देता है और उस नदी के किनारे पर धर्म क्रिया से इस अग्नि-पुत्र को आदिपिता को, अर्पित कर देता है।

नगर के शोकाकुल लोग जलती हुई चिता के इर्द गिर्द खड़े हैं, जिसकी लपट गगनचुम्बी लगती है, जिनका प्रतिबिम्ब रावी के शांत जल में दिखाई देता है। हम वहां मूक मूर्तिवत खड़े उस जन समूह को और अस्त हो रहे सूर्य को देख रहे थे। मनुष्य, प्रकृति और आग की लपटें सभी एक ही रंग में—शांत, दीप्तिमान, समृद्ध और शानदार।

हां, यह शानदार सूर्यास्त ही तो था।

65. भरतवाक्य

यह कोई गीत नहीं, जो
सीने में दबा रहे,
द्वार पर व्यक्त हो, मंच से न कहा जाए।

(गालिब के फारसी शेर का सारांश)

एक माम पश्चात

17 दिसम्बर शाम के झुटपुटे में जिला पुलिस कार्यालय के नजदीक रिवाल्वर से गोली चलने की आवाज आती है। बिजली की तेजी से गंभीर समाचार फैलता है। रात के अंधेरे में लोग 30 अक्तूबर की स्मरणीय सभा को याद करते हैं और उस स्मरणीय वाक्य को "प्रत्येक चोट ने साम्राज्य के तावूत में एक कील ठोकी है।" क्या यह बात उस व्यक्ति दवारा भविष्यवाणी थी, जिसको अस्पष्ट रूप से निकट आ रहे अपने अन्त का अहसास हो गया था? "और अब जब आपने मुझे दंड दे दिया है, मैं आपके लिए भविष्यवाणी करने को तैयार हूं, क्योंकि मैं अब मरने ही वाला हूं और मृत्यु की घड़ी में मनुष्य में भविष्यवाणी की शक्ति आ जाती है। और अब मैं आपके लिए, जिन्होंने मुझे मृत्युदंड दिया है, भविष्यवाणी करता हूं कि मेरी मृत्यु के तुरंत बाद, आपको उससे भी कड़ी सजा मिलेगी, जो आपने मुझे दी है क्योंकि उस समय अभियोक्ताओं की संख्या अब के मुकाबले बहुत अधिक होगी, अभियोक्ता को मैंने अब तक नियंत्रित रखा है और चूंकि वे युवक हैं वह आपके साथ अधिक बेलिहाज होंगे और आपको उन पर अधिक रोष आएगा यह भविष्यवाणी है जो मैं अपने जाने से पूर्व करता हूं।"

टिप्पणीकार हमें आश्वासन दिलाते हैं कि यह भविष्यवाणी सुकरात की मृत्यु के शीघ्र बाद ही पूरी हो गई थी। उसके अभियोक्ताओं का सार्वजनिक तौर पर तिरस्कार और अपमान किया गया—एक के टुकड़े-टुकड़े कर दिए गए और दूसरा शरण लेने के लिए भाग गया और इसके अतिरिक्त एथेंस को भयानक प्लेग ने बर्बाद कर दिया। लाजपत राय पर प्रहारकर्ता स्काट को, जो प्रमुख था, लाहौर से अपनी नौकरी से दूर किसी सुरक्षित स्थान पर

शरण लेने के लिए भेज दिया गया । उनके एक युवा साथी का लडका ने गोली से उडा दिया (शायद वह सांडस के स्थान पर स्काट की ही जान लेना चाहते थे) और यह घटनास्थल पर ही मर गया । परन्तु य घटनाएं और "एथेन्स की प्लेग", जा कई वर्ष फैली रही, हमारे वणन के कार्यक्षेत्र से बाहर है। जवाहरलाल नेहरू ने उचित ही कहा

'भगत सिंह अपनी आतक की कारवाई स प्रसिद्ध नही हुए, बल्कि इसलिए हुए कि ऐसा दिखाई दता था उन्होन लाजपत राय के सम्मान का और उनके द्वारा राष्ट्र के सम्मान को ऊचा उठाया था । वह प्रतीक बन गये है, कारवाई भुला दी गई, प्रतीक शेष रह गया और कुछ ही मास म पजाब के प्रत्येक शहर तथा गाव और शेष उत्तर भारत म कुछ कम, यह नाम गूजता रहा । उनके बारे म अनेक गीत बने और उन्हे जो ख्याति प्राप्त हुई, वह आश्चयजनक थी ।"

इन घटनाओ का इतिहासकारा का काय क्षेत्र रहने द । 1907 म लाजपत राय का निर्वासन युवा लोगा द्वारा हिंसा पर उतारु हाने म निर्णायक था । 1928 मे लालाजी पर प्रहार, उसम निहित राष्ट्रीय अपमान और लालाजी की मृत्यु ने फिर वही भावना उत्तेजित की । उन्हाने युवा गुट को, जो पहले ही बेचैन था, इस निणय की ओर बढ़ाया । 1907 की घटना और परिणाम का स्पष्ट तौर से लालाजी ने स्वय 'यग इडिया' म वणन किया था 'एन इटरप्रेटेशन एड ए हिस्ट्री' लेखक ने अपनी चर्चा (ग्रीक इतिहासकार थ्यूसीडाइडस के समान) अन्य पुरुष के रूप मे की और अपने सम्बध म घटनाओ की चर्चा बहुत निर्विकार ढग से की । 1928 की घटना का शायद उस योग्यता और कौशल से वणन न हो सके । परन्तु इतिहासकार चाहे कोई भी हो और इन घटनाओ का वणन वह चाहे किसी भी ढग से कर, उसकी रचना के पन्ना म यह भविष्यवाणी तथा इसके सत्य होने की गूंज सुनाई देती रहेगी ।

"क्योकि मैं कहता हू कि अब के मुकाबले उस समय अधिक अभियोक्ता होगे, अभियोक्ता, जिनको मने अब तक नियत्रित रखा है और चूकि वे युवा है, व आपके साथ अधिक बेलिहाज होगे यह भविष्यवाणी है, जो मै अपने जाने से पूव करता हू ।"

1907 में पंजाब के अधिकारियों ने लाजपत राय तथा अजीत सिंह का एक प्रकार से 'निष्कर्मी व्यवस्था' करा लिया था—लाला का एक ही अधिनियम के अधीन निर्वासित करना, दोनों का एक ही किले में बन्द रखना, सम्पत्ति लाला का मुलाकात का अवसर न देना और दोनों का उसी गाड़ी में वापस लाकर लाहौर में रिहा करना। यह उन्हीं अजीत सिंह के भतीजे थे भगतसिंह जिनका नाम 1928 में अचिह्न तौर पर जुड़ गया था और जो युवा पार्टी के 'आत्म पुरुष' बन गए क्योंकि उन्होंने अत्याचारात्मक प्रहार और कौम के अपमान का बदला एक मास के अन्दर लिया और स्वयं शहीद हुए और प्रहार सहन करने वाले को शहीद का दर्जा दिलाया।

युवा भगतसिंह को समृद्ध पारिवारिक विरासत मिली थी—उनके पिता किशन सिंह ने लाजपत राय के निर्देशन में समाज सुधार का कार्य आरम्भ किया था और शताब्दी के प्रथम दशक में "भारत माता" दिनों में उनका सबसे उग्रवादी राजनीतिक आन्दोलन में रहा था। अधिक शक्तिशाली प्रभाव उनके चचा अजीत सिंह का था, उस चर्चा की आश्रित की कहानियाँ, वह लड़का चचा के लम्बे निर्वासन के कारण उनसे मिल ही नहीं पाया था और जब वह बड़ा हुआ उसे दृढ़ता और उनके साथ सम्पर्क बनाना तो उस युवा भगत की चरम कामना बन गई थी। यह भावना राष्ट्रीय कालिज लाहौर के दिनों में और तीव्र हो गई, इस तीव्रता की प्रेरणा मुख्य तौर पर भाई परमानन्द से मिली, जहाँ वातावरण भारत की स्वाधीनता प्राप्ति की आकांक्षा से गरम था। यहाँ उन्होंने कूका विद्रोह के बारे में सुना और कुछ युवा क्रान्तिकारियों के कारनामों के बारे में भी, जिनमें करतार सिंह सराबा भी थे, जिन्होंने इस लक्ष्य के लिए आत्मबलिदान दिया था।

साहस और दृढ़ता की अद्वितीय प्रतिभाओं वाले भगतसिंह में नेतृत्व की बहुत खूबियाँ थीं और उन प्रभावों से, जिनकी हमने चर्चा की है, भगतसिंह के लिए शहीद की भूमिका प्रायः निश्चित थी। वर्तमान लेखक को उन्हें कई वर्ष देखने का अवसर मिला और वह उनके व्यक्तित्व के पूर्ण चित्र का स्मरण करने का यत्न करता है, तो उसे गालिब का फारसी शेर याद आता है, जो इस अध्याय के प्रारम्भ में दिया गया है।

लोगो के नेता पर प्रहार और राष्ट्र के बहुत ही अधिक अपमान ने उस अवर्णनीय/गोपनीय बात को फासी के तख्ते से व्यक्त होने के लिए प्रोत्साहन दिया, निर्णायक प्रेरणा, जिसने इस मामले को शिखर तक पहुचाया, बासती देवी (देशबधु सी०आर० दास की विधवा) के चुनौतीपूर्ण वक्तव्य से मिली, जिन्होंने "भारत की महिला" के रूप में भारतीय युवकों को राष्ट्र के अपमान का समुचित बदला लेने का आह्वान किया था।

भारत के युवक ऐसी चुनौती की अनदेखी कैसे कर सकते थे। यह उत्तर भगतसिंह द्वारा अवश्य आना था। उन्होंने बार-बार बासती देवी के वक्तव्य के बारे में सोचा। ऐसा लगता था कि वह चुनौती उनके पीछे पड गई हो। उन्होंने बहुत गहराई से सोचा, आखिरकार उन्हें प्रकाश दिखाई दे गया—और उन्होंने निश्चय कर लिया।

बहुत जोरदार सरकारी व्यवस्था के बावजूद कि फासी के मामले को गुप्त रखा जाए, यह सदेश प्रकट तथा प्रसारित हो गया। "इन्कलाब जिन्दाबाद" शायद केवल नारा ही रह जाता परन्तु फासी के तख्त से भगतसिंह ने इसे साकार कर दिया और अद्वितीय शक्ति के साथ फासी से हुआ यह प्रसारण एकदम भड़क उठा।

सामग्री स्रोत

लाजपत राय के अपने दस्तावेजा, आत्मकथा आदि सामग्री पर सक्षिप्त टिप्पणी के सम्बंध में अक्सर ही प्रश्न किया जाता है कि लाजपत राय के कागजात कहा देखे जा सकते हैं। लालाजी के निजी कागजात, जैसा कि एसी चिट्ठी-पत्री (और समाचार पत्रा की कतरनें) जो युद्धकाल तथा निर्वासन के समय उन्होंने सुरक्षित रखी थी, मुझे लाहौर म उस समय उपलब्ध थी, जब मैंने उनकी जीवनी लिखने का काय आरम्भ किया था। यह महत्वपूण सामग्री अब पूरी तरह 1947 के विभाजन के कारण समाप्त सामग्री मानी जानी चाहिए। लालाजी के पत्र या तो अब प्रकाशित सामग्री म मिल सकते हैं या उन लागो के कागजात मे, जिनके साथ उनका पत्र व्यवहार होता था।

लालाजी डायरी नही रखते थे। यदि उन्हाने कभी डायरी रखी भी होगी, तो कुछ अवधि के लिए और वह भी उन्होंने सुरक्षित नही रखी।

आत्मकथात्मक रचनाए 'स्टोरी आफ माई डिपोर्टेशन' (उर्दू मे मेरी जलावतनी की दास्तान) उनके माण्डले से लौटने के थोडा समय बाद प्रकाशित हुई थी। लालाजी के निर्वासन तथा माण्डले के किले मे नजरबदी के ज। उद्धरण इस पुस्तक मे बिना आभारोक्ति के दिए गए ह, वे इसी पुस्तक से हैं। निर्वासन मे पूव की कहानी उन्होंने 1914 मे उर्दू मे लिखी थी और यह विदेश मे सुरक्षित रही। असहयोग आन्दालन के बाद यूरोप की यात्रा के दौरान वह इस पाण्डुलिपि को अपने साथ ही लाए थे—परन्तु यह अप्रकाशित ही पडी रही। उनके मरणोपरात यह उर्दू पुस्तक दैनिक 'वन्दे मातरम्' मे प्रकाशित की गई और इसका अग्रेजी रूप 'द पीपुल' म छपा (अप्रैल 1929 से आरम्भ होकर)। हिन्दी मे इसे साप्ताहिक 'पजाब केसरी' ने, जो लाहौर से प्रकाशित होता था, प्रकाशित किया। यह समाचार पत्र लोक सेवा सघ द्वारा प्रकाशित किया जाता था।

अपने अन्तिम दिना म लालाजी ने अपने युद्धकाल के निर्वासन के बारे म लिखना आरम्भ किया था। यह अश अग्रेजी मे उनके मरणोपरात 'द पीपुल' म प्रकाशित हुए थे (1929-30)।

गदर पार्टी के जो व्यक्ति उनके सम्पर्क में आए, उनके बारे में स्मरणपत्र दिखाई देने वाले कागज लाजपत राय ने जून 1919 में तैयार किये थे और मुहरबंद लिफाफे में बन्द करके न्यूयार्क के अपने मित्र तथा प्रकाशक श्री बी० डब्ल्यू० ह्यूब्श को सौंप दिए। लालाजी के देहांत के कई वर्ष बाद श्री ह्यूब्श ने यह बन्द लिफाफा, जिसे किसी ने नहीं मांगा था, न्यूयार्क पब्लिक लायब्रेरी को सौंप दिया। अब यह भारतीय राष्ट्रीय अभिलेखागार में है। स्पष्ट है कि यह कभी प्रकाशित करने के लिए नहीं था। लालाजी की 'जीवनी की पुस्तकों' में इसे पुनः प्रकाशित किया गया। इसे बी० सी० जोशी ने (लोक सेवा संघ के लिए) सम्पादित किया।

लालाजी के यात्रा विवरण निस्संदेह जीवन कथा के लिए दिलचस्प है। इनका आरम्भ लालाजी द्वारा 'पंजाबी' को लेख भेजने के सिलसिले के साथ शुरू हुआ, जब (1904 में) वह पहली बार यूरोप तथा अमरीका गए थे। (उन्होंने कुछ उर्दू पत्रिकाओं के लिए भी लिखा—विशेषकर कानपुर से प्रकाशित होने वाले साहित्यिक मासिक पत्र 'जमाने' के लिए। 'द पीपुल' के आरम्भ के बाद वह, जब भी विदेश गए, अपने साप्ताहिक को ऐसे पत्र भेजते रहते थे।

'द पीपुल' का लाजपत राय अंक अप्रैल 1929 में प्रकाशित हुआ था। लालाजी के आत्मकथात्मक लेखों का सिलसिला इस अंक के साथ आरम्भ हुआ। लालाजी के कागजों में कुछ चुनी हुई रचनाएं भी इसमें प्रकाशित की गईं, इसके अतिरिक्त भारत तथा विदेश में लालाजी के मित्रों के संस्मरणों का महत्वपूर्ण भाग तो था ही।

भारमुद्रा—विभाग 6—136 एम० आफ आइ एण्ड बी० (एन० डी०) 85 3000